

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ८८

श्रीमद्यास्काचार्यप्रणीतं दुर्गाचार्यकृतवृत्तिमंत्रं

निरुक्तम् ।



उत्तरपटकालको द्वितीयो भागः ।

एतत्पुस्तकं

मास्टर ऑफ आर्ट्स इत्युपपदधारिभिः वैजनाथ
काशीनाथ राजवंडे इत्येतैः संशोधितम् ।

तच्च

बी. ए. इत्युपपदधारिभिः

विनायक गणेश आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

श्रीमन् 'महादेव चिमणाजी आपटे' इत्यभिधेय-
महाभागप्रतिष्ठापिते

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८४८ ।

ख्रिस्ताब्दाः १९२६ ।

(अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः) ।

मूल्यं सार्धरूपकमसकम् (७८८) ।

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ८८

श्रीमद्यास्काचार्यप्रणीतं दुर्गाचार्यकृतवृत्तिममेतं

निरुक्तम् ।

उत्तरपटकाल्मको द्वितीयो भागः ।

एतत्पुस्तकं

मास्टर ऑफ आर्ट्स इत्युपपदधारिभिः वैजनाथ
काशीनाथ राजवाडे इत्येतैः संशोधितम् ।

तच्च

बी. ए. इत्युपपदधारिभिः

विनायक गणेश आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

श्रीमन् 'महादेव चिमणाजी आपटे' इत्यभिधेय-
महाभागप्रतिष्ठापिते

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८४८ ।

ख्रिस्ताब्दाः १९२६ ।

(अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः)

मूल्यं सार्धरूपकसप्तकम् (७८८) ।

विषयानुक्रमणी ।



| | पत्रं | | पत्रं |
|-----------------------------------|----------|--------------------------------------|-------|
| दैवतप्रकरणस्य विषयः | ६०९ | अनादिष्टदेवतेषु मन्त्रेषु देवतो- | |
| दैवतमित्यस्य व्याख्या | ... ६१० | पपरीक्षा | ६२६ |
| मन्त्रस्यदेवतानिर्णयः | | ,, | |
| स्तुतिः चतुर्विधा | ... ६११ | यज्ञप्रकरणाद्यज्ञाङ्गप्रकरणाद्वा | |
| ऋचः त्रिविधाः | ... ,, | देवतानिर्णयः | .. |
| परोक्षकृतानामृचां लक्षणम् | ... ,, | यज्ञादन्यत्र प्राजापत्या इति | |
| तासां सप्तमु विभक्तिषु | ... ,, | याज्ञिकमतम् | .. |
| उदाहरणानि | ६१२-६१४ | नाराशंभा इति नैरुक्तमतम् | ६२७ |
| प्रत्यक्षकृतानां लक्षणम् | ६१४ | नाराशंभोऽव्युत्पत्त्या अनावि- | |
| त्वंपदयुक्तमुदाहरणम् | ६१५ | ष्कृतदेवता मन्त्रा मनुष्यपग | |
| त्वंपदधिरहितम् | ... ,, | इत्युक्तम् | .. |
| प्रत्यक्षकृताः स्तोतारः | ६१५-६१६ | कामदेवता वा | .. |
| आध्यात्मिकीनां लक्षणम् | ... ६१७ | प्रायोदेवता वा | ६२८ |
| तासामुदाहरणानि | ६१७-६१८ | प्रायःशब्दस्यार्थौ | .. |
| तासां विषयः | ६१९ | याज्ञदेवतो मन्त्र इति | |
| स्तुतिपरेषु मन्त्रेषु आशीर्योज्या | ,, | निर्णयः | .. |
| आशिष अश्वर्यवे बहुला याज्ञेषु | ,, | याज्ञ आदित्यदेवतः | ६२९ |
| च मन्त्रेषु | ... ,, | देवत आशेषः | .. |
| शपथाभिशापौ | ,, | यदेवत इत्यादेरपरा व्याख्या | .. |
| भावकथनम् | ६२० | अथान्यत्र यज्ञात् इत्यस्य | ६३० |
| पारिदेवनम् | ६२१-६२२ | प्राजापत्या इति याज्ञिका इत्यस्य | .. |
| निन्दा | ,, | नाराशंभा इति नैरुक्ता इत्यस्य | .. |
| ‘ मोघमन्त्रं विन्दते ’ इत्यस्या | .. | अपि वा कामदेवता इत्यस्य | .. |
| ऋच आत्मपरोऽर्थः | ... ६२३ | अदेवता देवतावत्स्तूयन्ते | .. |
| प्रशंसा | ,, | अश्वादय आगन्तवः । तस्मात्तेषां स्तु- | |
| द्यूतनिन्दा कृपिप्रशंसा च | ६२४ | निरयुक्ता | ६३१ |
| ऋचयो मन्त्राणां द्रष्टारो न द्यु | .. | देवतानां माहाभाग्यात् नायुक्ता | .. |
| कर्तारः | ६२४-६२५ | देवतानानात्वं निगमेन प्रख्याप्यते | .. |
| | | नानात्वे देवतासंवादः प्रमाणम् | ६३२ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|--------------------------------------|-------|------------------------------------|-------|
| त्रित्वे हविर्वहनादिकर्माणि प्रमाणम् | ६३२ | इन्द्रवायुशब्दौ पर्यायौ | ६३९ |
| ऐकात्म्यं नानात्वनिरासात् | ,, | मध्यमस्य मुख्यः संबन्ध | |
| अङ्गाङ्गित्वं नानात्वस्य हेतुः | ,, | इन्द्रेण न वाग्वादिभिः | ,, |
| एकत्वस्य च | ,, | मध्यमस्य शब्दद्वयेनोपदेशे | |
| कान्यङ्गानि कानि प्रत्यङ्गानि | ,, | प्रयोजनम् | ६४० |
| सत्त्वानं प्रकृतेरभिज्ञानं । तस्मा- | | आंभेधानद्वयं हंतुद्रयासिद्धिः | ,, |
| त्सत्त्वस्तवः प्रकृतेरेव स्तवः | ६३३ | अभिधानबहुत्वस्य कारणं | |
| प्रकृतिसार्वनाम्यादेतदुपपद्यते | ,, | माहाभाग्यम् | ,, |
| देवताधर्मो मनुष्यधर्मविपरीतः | ६३४ | अथवा कर्मपृथक्त्वम् | ६४१ |
| देवा इतरेतरजन्मानो भवन्ति... | ,, | यथा कुण्डपायिनामयने | ,, |
| देवानामश्वादयो नाऽऽगन्तवः.... | ,, | लौकिको दृष्टान्तः | ,, |
| देवतानां जन्म कर्मासिद्धयर्थम्.... | ,, | अथवा पृथक्स्तुतित्वात्पृथक् स्तुः | ,, |
| देवता आत्मनो जायन्ते ... | ,, | अभिधानपृथक्त्वाच्च ... | ६४२ |
| कामकारेण देवतानां जन्म । | | कर्मपृथक्त्वात् इत्यनेकान्तः ... | ,, |
| अकामकारेणेतरेषाम् ... | ६३५ | एकत्वं स्थानेन संभवेन च | ६४३ |
| रथादि सर्वेषामैव ... | ,, | लौकिको दृष्टान्तः ... | ,, |
| माहात्म्यात् एकैकस्य बहुनाम- | | संभोगैकत्वे उदाहरणम् ... | ,, |
| धेयता ... | ,, | एकत्वं नाम समानकार्यत्वम्.... | ,, |
| तेन यत्कामः इत्यादि लक्षणं | | भेदाभेदे दृष्टान्तः | ६४४ |
| युक्तम् ... | ,, | एकत्वे त्रित्वनानात्वयोगौण- | |
| आत्मवित्पक्षेणैकात्म्यम् | ६३६ | त्वम् । त्रित्वे इतरशब्दयोः । | |
| याज्ञिकपक्षे देवतानानात्वम् .. | ६३७ | तथा नानात्वे | ,, |
| नैरुक्तपक्षे त्रित्वम् ... | ,, | वक्तृप्रतिपत्तृत्वशेन भेदाभेदौ | ,, |
| त्रित्वं स्थानभेदात् | ,, | परमार्थत एकात्म्यम् | ६४५ |
| श्रुतिलिङ्गाच्च ... | ,, | देवताकारविचारः | ,, |
| अन्यार्थदर्शनाच्च | ६३८ | आत्मैक्यपक्षे आकारचिन्तनं | |
| अग्नादीनां स्थानवैशिष्ट्ये | | नोद्भवति | ६४६ |
| निगमः | ,, | नापि त्रित्वपक्षे | ,, |
| वायुर्वेन्द्रो वेति विकल्पः कि- | | याज्ञिकपक्षेऽयं विचार आव- | |
| मर्थः ... | ,, | श्यकः ... | ,, |

| | पत्रं | | पत्रं |
|--|---------|--|------------|
| देवताः पुरुषविधाः स्युरि- त्येकं मतम् ... | ६४७ | एवं देवताकारचिन्तने चत्वारि अविरुद्धानि मतानि | १ |
| यस्मात् चेतनावतामिव तेषां स्तुतिः ... | १ | तिसृणां देवतानां भाक्तिमाह्वयम् पृथिव्यादीनि अशिभक्तीनि ... | ६५६ ६५७ |
| अभिधानतः पौरुषविध्यम् | ६४८ | इळा कथं पृथिवीस्थाना अग्नेः कर्म | १ |
| देवतानामङ्गानि स्तूयन्ते | १ | संस्तविका देवाः ... | ६५८ |
| यथा इन्द्रस्य बाहू स्तूयेते | १ | इन्द्रेण सह स्तवः | १ |
| द्रव्यसंयोगोऽपि पुरुषविधत्वे कारणम् ... | ६४९ | सोमेन सह ... | १ |
| यथा इन्द्रस्याश्वाभ्याम् | १ | वरुणेन | ६५९ |
| गृहेण जायया च ६४९-६५० | ६४९-६५० | पर्जन्येन ... | १ |
| कर्माण्यपि कारणम् ... | ६५० | ऋतुभिः ... | ६६० |
| इन्द्रोऽसि पिबति ... | १ | भासाविष्णवं हविः | १ |
| शृणोति च ६५०-६५१ | ६५०-६५१ | अशाविष्णोः संस्तविकी ऋक् दशतयीषु न विद्यते ... | १ |
| अपुरुषविधा देवताः स्युरित्यपरं मतम् ... | ६५१ | अशिषािष्णं हविरेव न संस्तवः | ६६१ |
| यथाभ्यादयोऽपुरुषविधास्तथे- न्द्रादयः | ६५२ | अशापृष्णोर्विभक्तस्तुतिः ६६१-६६२ | ६६२ |
| अचेतना अपि स्तूयन्ते ... | १ | स्तुतिविभागे द्वे मते | ६६२ |
| यथा ग्रावाणः ६५२-६५३ | ६५२-६५३ | सुविदत्रशब्दस्य व्युत्पत्तिः | १ |
| तेषामपि अङ्गानि स्तूयन्ते | ६५३ | इन्द्रकर्म ... | ६६३ |
| द्रव्यसंयोग औपचारिकः | १ | संस्तविका देवाः ... | १ |
| यथा नदीस्तुतौ ... | ६५४ | अग्निना मह स्तवः ६६३-६६४ | ६६४ |
| कर्माण्यपि औपचारिकाणि ... | १ | सोमेन | ६६४ |
| अथवा देवता उभयविधाः स्युः | १ | वरुणेन | १ |
| देवताः क्षितिजलादीनां कर्मा- त्मानः | ६५५ | पृष्णा ... | १ |
| महाभारतादीनामेषु च सि- द्धान्तः | १ | वृहस्पतिना | १ |
| | | ब्रह्मणभ्पतिना | ६६५ |
| | | पर्जन्येन | १ |
| | | कुत्सेन ... | ६६६ |
| | | विष्णुना | १ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|-----------------------------------|----------|--|----------|
| वायुनः | ६६७ | देवताभिधानमेव समाह्नातव्यम् | ” |
| मित्रो वरुणेन संस्तूयते | ६६७-६६८ | कर्मनामानि न समाह्नातव्यानि | ” |
| पृषा सोमेन | ... ६६८ | यस्मात्तानि मुग्ध्याभिधानं विशेष- | |
| सोमो रुद्रेण | ... ६६९ | पयन्ति | ” |
| अग्निना पृषा | ... ” | तत्र दृष्टान्तः | ६८० |
| वातेन पर्जन्यः | ६६०-६७० | विशेषव्याख्याया लक्षणमुदाह- | |
| आदित्यकर्म | ... ” | रणं च | ६८०-६८१ |
| चन्द्रमसा सह स्तवः | ६७१ | आत्मविद्याज्ञिकनैरुक्तानामग्नि- | |
| वायुना | ” | विषये मतानि | ६८१ |
| संवत्सरेण | ” | अग्निः किमिति पृथिवीस्थानः.... | ” |
| अग्नेषामृतुच्छन्दआदीनां स्थाना- | ६७२ | देवतापदनिर्वचनस्य फलं देवता- | |
| नि मन्त्र-छन्दः-साम-गायत्र्या- | | तादात्म्यम् | ” |
| दीनां व्युत्पत्तिः | ६७३-६७६ | अग्निशब्दस्य निर्वचनम् | ६८२ |
| देवताः स्तुतिभाजो हविर्भाजश्च. | ६७६ | स्थांलाष्टाविमतम् | ” |
| भूयिष्ठा ऋग्भाजः | ” | शाकपूणिमतम् | ६८३ |
| काश्चिदर्धर्चभाजः | ... ” | अग्निमूले | ... ६८४ |
| पाद्भाजोऽपि काश्चित् | ६७७ | अग्निः पूर्वभि० | ... ६८५ |
| काश्चित् निपातभाजः | ” | अग्न्यभिधानस्यार्थान्तरे वृत्तिः. | ” |
| निपाता द्विविधाः | ” | अभिधानानां द्वे वृत्ती गौणी मुग्ध्या च | ६८६ |
| साधारण्येन | ” | उत्तरे अपि ज्योतिषी अग्नी | |
| नैघण्टुकत्वेन | ... ” | इत्युच्येते | ” |
| अपरो निपातप्रकारः | ” | अभि प्रवन्त समानेव योषा इति | |
| अत्यन्तनैघण्टुकं देवताभिधानम् | ६७८ | मध्यमाग्नेरुदाहरणम् | ६८७ |
| अनत्यन्तनैघण्टुकम् | ... ” | त्रिमर्थमत्र अग्निर्मध्यमः | ” |
| विशेषणयुक्ताभ्यो देवताभ्यो हवि- | | समुद्रादूर्ध्वः इति उत्तमस्याग्नेरुदा- | |
| श्चोऽन्ते | ” | हरणम् | ६८८ |
| तानि विशेषणानि समाह्नातव्यानि | | अग्निशब्दाभावे अग्निरत्र सूर्य इति | |
| इति केषां चिन्मतम् | ” | कथमुच्यते | ६८९ |
| न समाह्नातव्यानि इति यास्कमतम् | ६७९ | इन्द्रं मिथं० इत्यत्र इन्द्रादयः | |
| संविज्ञानभूतं तथा प्राधान्यस्तुति | | अग्निरिति उच्यन्ते | ... ६९० |

| | पत्रं | | पत्रं |
|--------------------------------------|----------|--------------------------------------|----------|
| किंतु एतासु ऋक्षु आशिःशब्दो | | पालः | ... ७०२ |
| गौणः | ६९० | आदित्यस्य वैश्वानरत्वे ब्राह्मणम् | ,, |
| पार्थिवोऽग्निरेव सूक्तभाक् हवि- | | निवित् सार्वैश्वानरीया | ... ,, |
| र्भाक् च | ,, | छान्दोमिकं सूक्तमपि तथैव | ... ,, |
| इतरे ज्योतिषी अप्राधान्येन आशि- | | तथा हविष्पान्तीयम् | ... ७०३ |
| शब्दं भजेते | ... ६९१ | पार्थिवोऽग्निः वैश्वानर इति शाक- | |
| जातवेदाः कस्मात् | ६९२ | पृणिः | ,, |
| प्र नूनं जातवेदसम् | ... ६९३ | उत्तरे ज्योतिषी विश्वानरो । | |
| जातवेदसं गायत्रं तृचमेकमेव.... | ,, | ताभ्यामर्थं जायते | ... ,, |
| यत्र एतादृशाणां मन्त्रानां प्रयो- | | मध्यमात् पार्थिवाग्नेः जन्म | ... ,, |
| जनं तत्र गायत्रच्छन्दसि वर्त- | | मध्यमस्य ज्योतिषः स्वभावः | ,, |
| माना आग्नेया मन्त्राः प्रयुज्यन्ते | ६९४ | तथा पार्थिवस्य | ७०४ |
| मध्यमोऽपि जातवेदाः | ,, | आदित्यात् पार्थिवाग्नेः जन्म.... | ,, |
| तथोत्तमः | ,, | ‘ वैश्वानरो यतते सूर्येण ’ अत्र | |
| तथाऽपि पार्थिवोऽग्निरेव जातवेदाः | ६९५ | सूर्यवैश्वानरो भिक्षौ | ,, |
| वैश्वानरः कस्मात् | ६९५-६९६ | अस्यामृचि तयोर्भासोः संगमः | ७०५ |
| वैश्वानरस्य सुमतौ | ६९६ | भगादयो वैश्वानर इति नोच्यन्ते | ,, |
| अस्या ऋचो निरूपणवैशिष्ट्यम् | ६९७ | वैश्वानरमृक्तेषु उदयादीनि आदि- | |
| को वैश्वानरः | ... ,, | त्यकर्माणि न कश्यन्ते | ... ,, |
| मध्यम इति नैरुक्ताः | ... ,, | अग्निमृक्तेष्वेव वैश्वानरतीयप्रवादाः | ७०६ |
| प्र नृ महित्वं० अत्र वर्षकर्म । | | वैश्वानरः अग्निर्कर्मभिरेव संबध्यते | ,, |
| तस्मात् वैश्वानरो मध्यमः | ६९९ | अग्नी अपि वर्षवर्मापपद्यते | ७०६-७०७ |
| आदित्य इति पूर्वं याज्ञिकाः... | ७०० | वर्षकर्म मध्यमस्य न वैशेषिकं | |
| यस्मात् प्रत्यवरोहे द्विवि वैश्वान- | | लक्षणम् | ... ७०७ |
| रीयं शस्त्रं शस्यते | ७००-७०१ | कृष्णं नियानम् | ७०८-७०९ |
| यथा स्तोत्रं तथा शस्त्रमित्युत्स- | | अग्नेः वर्षकर्मसंबन्धे ब्राह्मणम् | ७०९ |
| भस्यात्रापवादः | ... ७०१ | वर्षकर्म सर्वेषां समानम् | ... ७१० |
| पृथिवीलोकं प्रत्यवस्थ्य यज्ञायज्ञीयं | | आम्नायवचनान् प्रत्यवरोहे यः | |
| शस्त्रं शस्यते | ... ,, | कोऽपि मन्त्रः प्रयुज्येत | ,, |
| वैश्वानरीयः पुरोडाशो द्वादशक- | | वैश्वानरीयः पुरोडाश एकपालः | |

| | पत्रं | | पत्रं |
|---|-------|---------------------------------------|-------|
| पञ्चकपालोऽपि | ७१० | तथाऽपि सूक्तभाक् हविर्भाक् वैश्वः- | |
| ब्राह्मणप्रवादो न प्रमाणः यस्मात् | | नरः पार्थिवोऽशिरैव ... | ” |
| ब्राह्मणेऽन्येऽपि प्रवादा वर्तन्ते | ” | इतरयोर्ज्योतिषोः वैश्वानर इत्य- | |
| निविदपि अग्नेरेव भवति ... | ७११ | भिधानं गौणम् ... | ७२४ |
| तथा छान्दोमिकं सूक्तम् ... | ७१२ | द्रविणं धनं बलं वा । तस्य दाता | |
| हविष्पान्तीयमपि तथैव ... | ” | द्रविणोदाः ... | ७२५ |
| ‘ हविष्पान्तमजरं० ’ इयमृक् | | ‘ द्रविणोदा द्रविणसः ’ इत्यग्न्या | |
| आशेयी एव ... | ७१३ | ऋचो विशिष्टं निरूपणम् ७२६-७२७ | |
| यस्मान्प्रथमा ऋक् आशेयी तस्मा- | | को द्रविणोदाः ... | ” |
| त्सर्वं सूक्तं तथैव ... | ७१४ | इन्द्रः । यस्मात्स बलस्य दाता ... | ” |
| ‘ अपामुपस्थे० ’ इयमृक् पार्थि- | | इन्द्रो बलाज्जातः । तेनास्य बलेन | |
| वोऽशिरैव वैश्वानर इति दर्शयति | ७१५ | संबन्धः ... | ” |
| अस्यामृचि विवस्वान् वैश्वानरान् | | ‘ अश्वादिद्याद्य ’ अत्रेन्द्र ओजसो | |
| पृथक् ... | ” | जात इत्युच्यते ७२७-७२८ | |
| हविष्पान्तीये सूक्ते अशिरैव तेन | | अशिर्द्रविणोदस इत्युच्यते । इन्द्रा- | |
| तेन रूपेण स्तूयते ... | ७१६ | चाग्निर्जातः । तस्मादिन्द्रो द्रवि- | |
| ‘ मूर्धा भुवो भवति० ’ अस्यामृचि | | णोदाः ... | ७२८ |
| अशिरैव सूर्यो भवति ... | ७१७ | यो हत्वाऽहि० ’ अत्रेन्द्रोऽग्निं जन- | |
| ‘ स्तोमेन हि० ’ अस्यामृचि अग्निः | | यामासेत्युच्यते ७२८-७२९ | |
| त्रिष्वपि लोकेषु वर्तते ... | ७१८ | ऋतुयानेषु द्रविणोदाः सोमं पिबति । | |
| अग्नेस्त्रिधाभावे ब्राह्मणम् | ७१९ | पात्रं चेन्द्रपानमित्युच्यते । तस्मा- | |
| ‘ यदेदेनमदधु० ’ अत्राग्निः आदित्य | | दिन्द्रो द्रविणोदाः ७२९-७३० | |
| इति स्तूयते ... | ” | इन्द्र एव सोमपानेन स्तूयते । | |
| मिथुनशब्दव्युत्पत्तिः ... | ७२० | इन्द्रायैव सोमः संस्क्रियते ७३०-७३१ | |
| ‘ यत्रा वदेते० ’ अत्र सूर्यो होता । | | यस्मादग्निः द्राविणोदसः तस्मा- | |
| होतृत्वं चाग्नेः । तस्मात्सूर्योऽग्निः | ७२१ | दिन्द्रः द्रविणोदाः ... | ७३१ |
| ज्ञाने होताऽग्निः ब्राह्मणहोतुर्वरीयान् | ७२२ | अयमेवाग्निर्द्रविणोदा इति शाक- | |
| किंतु होतृजपो नाग्निवैश्वानरीयो | | पूणिः ... | ” |
| यस्मात्तत्र वैश्वानरोऽग्नेः पिते- | | आशेयेष्वेव सूक्तेषु द्रविणोदः- | |
| त्युच्यते ... | ७२३ | शब्दः प्रयुज्यते ... | ” |

| | पत्रं | | पत्रं |
|--|---------|----------------------------------|-------|
| ‘स प्रत्नथा०’ इत्यत्राग्निः द्रवि- | | एवं पार्थिवोऽग्निः द्रविणोदाः | |
| णोदाः | ७३१-७३२ | मूक्तभाक् हविर्भाक् च ... | १ |
| ऐश्वर्यात् सर्वा एव देवता बलधनयो- | | आप्रियः इध्मादीनि । तानि | |
| र्द्राण्यः । न केवल इन्द्रः | ७३२ | विवक्षितक्रमाण | ७३९ |
| अग्निः ओजसा मथ्यमानो जायते | १ | अग्न्यादीनि अपि तथैव ... | १ |
| एतासु ऋक्षु अग्निः सहस्रः पुत्रः | | पृथिवीस्थाने सर्वत्र विवक्षित एव | |
| सहस्रः मूनुः सहस्रो यहुः | | क्रमः | ७४० |
| इत्युच्यते | ७३३ | इतरयोः स्थानयोरपि तथैवेति | |
| यस्मात् ऋत्विजो हविषां दातारः | | शाकपूणिः ... | १ |
| तस्मात्ते द्रविणोदमः । तेषां | | आग्नीशब्दव्युत्पत्तिः | १ |
| पुत्रः अग्निः ... | ७३४ | आग्नीशब्देन ऋचः देवताश्चाभि- | |
| ‘अग्नावग्निश्चरति०’ अत्राग्निः | | धीयन्ते ... | १ |
| ऋषीणां पुत्र इत्युच्यते | १ | ‘समिद्धो अद्य०’ अत्र इध्मः | |
| पात्रस्य इन्द्रधानमिति समाख्या | | अश्वित् वर्ण्यते ७४१-७४२ | |
| गौणी ... | ७३५ | इध्मो यज्ञेध्म इति कात्थक्यः ... | ७४२ |
| अग्नौ अपि सोमपानमुपपद्यते ... | १ | अग्निरिति शाकपूणिः ... | ७४३ |
| ऋतुयाजेषु अग्निरपि सोमभाक् | | यस्मात् आप्रियः अग्न्यर्थाः | १ |
| ७३५-७३६ | | शाकपूणिमतं यागकसंमतम् ... | १ |
| यद्यपि सोम इन्द्रार्थं संस्क्रियते | | शाकपूणिपक्षे मन्त्रार्थः | ७४४ |
| तथाऽपि सोऽग्न्याभ्यो देवताभ्यो | | तनूनपात् आज्यमिति कात्थक्यः | १ |
| गृह्यते ह्यते च ... | ७३६ | अग्निरिति शाकपूणिः | १ |
| ऐन्द्राग्ने ग्रहे अग्निरपि इन्द्रेण सह | | ‘तनूनपात्पथ०’ अत्र तनूनपात् | |
| सोमं संभुङ्क्ते | १ | संत्रोध्र्यते | ७४५ |
| ‘मेघन्तु ते बह्वयः’ अत्र वनस्पतिः | | शाकपूणिमते मन्त्रार्थः | ७४६ |
| द्रविणोदाः । स ऋतुभिः सह सोमं | | नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः ... | १ |
| पानुमाह्वयते ... | ७३७ | अग्निरिति शाकपूणिः ... | १ |
| धिष्ण्यशब्दस्य व्युत्पत्तिः | ७३८ | यज्ञ इति मते मन्त्रयोजना | ७४७ |
| वनस्पतिः अग्निः । तस्मात् द्रविणो- | | उभयानि हवीषि सोमं चेताराणि | |
| दा अपि अग्निरेव ... | १ | च । अथवा तान्त्राणि आवापि- | |
| अग्निः वनस्पतिः कथम् ... | १ | कानि च | १ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|------------------------------------|-------|-------------------------------|----------|
| अशिरिति मते मन्त्रयोजना | ७४७ | द्यावापृथिव्याँ | ... |
| इळशब्दस्य व्युत्पत्तिः ... | ७४८ | अहोरात्रे | |
| ‘ आज्ञुह्वान ईदृचः ’ अत्र इडः | | अग्नी वा | ... |
| इत्येकवचनमभ्यभिप्रायम् ... | .. | ‘उपावसृज त्मन्या’ अत्र वन- | |
| प्रेष्टिके होत्रे इडः इति बहुवचनम- | | स्पतिः | ... ७६१ |
| न्नाभिप्रायम् | ७४९ | को वनस्पतिः | ७६२ |
| बर्हिःशब्दस्य व्युत्पत्तिः | .. | गृप इति कात्थक्यः | |
| ‘ प्रार्चनं बर्हिः ’ | .. | ‘ अज्जन्ति त्वामध्वरे | |
| बर्हिः इति यज्ञाङ्गमेव नाशिः.... | ७५० | अशिरिति शाकपृणिः | ७६३ |
| अशिरिति मते मन्त्रार्थः ... | .. | ‘ देवेभ्यो वनस्पते ० ’ अत्र | |
| द्वारः इत्यस्य व्युत्पत्तिः | ७५१ | वनस्पतिरग्निः | ७६३—७६४ |
| यज्ञगृहस्य द्वारः इति कात्थक्यः | .. | ‘ वनस्पते रशनया ’ इत्यत्रापि | |
| अशिरिति शाकपृणिः | ७५२ | तथैव | ७६४—७६५ |
| उषःशब्दस्य व्युत्पत्तिः | .. | ‘ यथा ज्ञानियायामृचि अपि तथैव | ७६५ |
| नक्तशब्दस्य च ... | .. | ‘ देवेभ्यो वनस्पते ’ ‘ वन- | |
| ‘ आ सुष्वयन्ती यजेते ’ | ७५३ | स्पते रशनया ’ इत्यनयोः | |
| उषामानक्ता अशिरिति केचित् | ७५४ | ऋचोः गूपर्थे योजना | ७६६ |
| कौ दैव्याँ होतारो | .. | स्वाहाकृतयः काः | |
| ‘ दैव्या होताराः ’ ... | ७५५ | ताः किमर्थं समाह्वताः | ७६६—७६७ |
| ‘ आ नो यज्ञ ’ अत्र तिस्त्रो | | स्वाहाकृतयः कस्मात् | ... ७६७ |
| देव्यः | ७५६ | ‘ सद्यो जातः ’ | ... ७६८ |
| त्वष्टृशब्दव्युत्पत्तिः | ७५७ | आग्नीदेवता एकादश | |
| ‘ य इमे द्यावा ० ’ | .. | किदेवताः प्रयाजाः | ... ७६९ |
| कस्त्वष्टा | ७५८ | आग्नेया इत्येके | |
| माध्यमिक इति नैरुक्ताः | .. | प्रयाजानुयाजा आग्नेया इत्य- | |
| द्वादशानामादित्यानामन्यतम | | र्थं ऋचोँ | ७७० |
| इत्यैतिहासिकाः ... | .. | नानादेवता इत्यपरे | ... ७७१ |
| अशिरिति शाकपृणिः | .. | आग्नेया इति तु स्थितिः | |
| ‘ आविष्ट्यो वर्धते ’ ... | ७५९ | अयं देवताविचारः किमर्थः ... | .. |
| अस्यामृचि उभे वे | ७६० | | |

| | पत्रं | | पत्रं |
|-------------------------------------|---------|---------------------------------|----------------|
| अत्र ब्राह्मणवचनम् | ७७१-७७२ | नाराशंसः | ... |
| आप्रीमृक्तानि एकादश | ... | 'अमन्दानस्तोमान् ०' | अत्र राज्ञो |
| तेषु कानिचिच्चारशंसवन्ति... | .. | भाव्यस्य म्लुतिः | ... ७८९ |
| कानिचिदुभयवन्ति | ... | राजा यज्ञसंबन्धात्स्तुतिं लभते | ७८६ |
| शेषाणि तनूनपात्वन्ति | | युद्धोपकरणानि राजसंबन्धात्स्तु- | |
| अन्येषामाप्रीमृक्तानामानिर्देशे | | यन्ते | ... |
| कारणानि | ७७३-७७४ | रथः कस्मात् | ... ७८७ |
| प्रयाजानामाग्नेयत्वे 'विश्वो देवीः' | | 'वनस्पते वीड्वङ्ग ०' | अत्र रथः |
| इत्ययं प्रयाजः कथमाग्नेयः | ... ७७६ | दुन्दुभिः कस्मात् | ... ७८८ |
| पृथिव्यायतनेषु मत्त्वेषु अश्वः | | 'उपशामय ०' | अत्र दुन्दुभिः |
| प्रथमः | ... | इषुभिः कस्मात् | ... ७८९ |
| 'अश्वो वोक्त्या' | ... | 'बलीनां पिता ०' | अत्र इषुभिः |
| 'मा नो मित्रो ०' | | हस्तघ्नः कस्मात् | ... ७९० |
| शकुनिः कस्मात् | ... ७७८ | 'अहिरिव भोगैः ०' | अत्र |
| 'कनिकदञ्जनुषम्' | ... ७७९ | हस्तघ्नः | |
| शकुनिनामानि प्रायः ध्वनि- | | 'रथे तिष्ठन्नयति ०' | अत्र अभी- |
| म्लानि | ... | शवः | ... ७९१ |
| मङ्गलं कस्मात् | ... | धनुः कस्मात् | |
| गृत्समदः कपिञ्जलरुतात् | | 'व तना गा ०' | अत्र धनुः |
| भविष्यं पश्यति | ... | संभदः कस्मात् | |
| 'भद्रं यद् दक्षिणतः' | ... ७८० | ज्या कस्मात् | |
| मण्डूकाः कस्मात् | | 'वक्ष्यन्तीवेदा' | अत्र ज्या |
| 'भवंत्समं शशयानाः' | ... ७८१ | इषुः कस्मात् | |
| वमिष्ठो वर्षकाभो मण्डूकान्मुष्टाव | .. | 'सुपर्णं वस्ने ०' | अत्र इषुः |
| 'उप प्लवद् मण्डूकि ०' | ... | कशा कस्मात् | |
| अक्षाः कस्मात् | ... ७८२ | 'आ जग्दन्ति ०' | अत्र अश्व- |
| 'प्रावेपा मा वृहतोः' | ७८२-७८३ | जनिः | ७९९ |
| सोमः कथं मौजवतः | ... ७८३ | उल्लवले कस्मात् | ७९६ |
| श्रावाणः कस्मात् | .. | 'यच्चिद्धि त्वं ०' | अत्र उल्लव- |
| 'प्रेते वदन्तु ०' | ... ७८४ | लम् | ७९६-७९७ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|-------------------------------------|----------|-------------------------------------|----------|
| वृषभः कस्मात् | ७९७ | अष्टौ द्वंद्वानि | ८१२ |
| ‘न्यकन्दयन्नुपयन्त०’ अत्र | | अन्यानि द्वंद्वानि किं न समा- | |
| वृषभः | ७९८ | स्रातानि | ... ” |
| द्रुघणः कस्मात् | ७९९ | मुसलं कस्मात् | ” |
| द्रुघणस्य इतिहासः | ” | ‘आपनी वाजसातमा०’ अत्र | |
| ‘इमं तं पश्य०’ अत्र द्रुघणः | ७९९-८०० | उल्लवलमुसले स्तूयेते | ८१३ |
| पृतनाज्य मुद्गल-भार्ग्यश्च-शब्दानां | | हविर्घनि कस्मात् | ” |
| व्युत्पत्तिः | ८०० | ‘आ वामुपस्थ०’ | ८१४ |
| पितुः कस्मात् | ” | ‘छावा नः पृथिवी०’ | ” |
| ‘पितुं नु स्तोपं०’ | .. ८०१ | ‘प्र पर्वतानामुशती०’ अत्र | |
| ‘इमं मे गङ्गे यमुने’ | ८०२ | विधाट्शुतुद्यौ | ... ८१५ |
| गङ्गादिशब्दानां व्युत्पत्तिः | ८०२-८०३ | आर्त्ना कस्मात् | ” |
| आपः कस्मात् | ... ८०३ | ‘ते आचरन्ती०’ | ... ८१६ |
| ‘आपो हि ष्ठा | ८०४ | शुनासीरो कस्मात् | ” |
| ओपशयः कस्मात् | ... ” | ‘शुनासीराविमां वाषं०’ | ... ८१७ |
| ‘या ओपधीः पूर्वा जाता०’ | ... ८०५ | के देवी जोष्टी | ” |
| धामशब्दस्यार्थाः | ... ” | ‘देवी जोष्टी वसुधिति०’ | ८१८ |
| ‘आ रात्रि पार्थिवं’ | ... ८०६ | ‘देवी ऊर्जाहुती०’ | ८१९ |
| अरण्यं कस्मात् | ... ८०७ | मध्यस्थानामु देवतासु वायुः | |
| ‘अरण्यान्यरण्यान्यसां’ | ” | किमर्थं प्रथमः | ८२१ |
| श्रद्धा कस्मात् | ... ८०८ | वायुः कस्मात् | ८२२ |
| ‘श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते’ | ... ” | ‘वायवा याहि दर्शित०’ | ” |
| ‘स्थोना पृथिवि’ | ८०९ | इन्द्र एव वायुः | ८२३ |
| ऋक्षरः कस्मात् | ... ” | ‘आसुखाणासः शक्सानमच्छा०’ | ... ” |
| ‘अमीषां चित्तं०’ अत्र अप्त्वा | | अत्र वायुर्नैवण्टुकः इन्द्रः प्रधा- | |
| संनोध्यते | ८१० | नमित्येके । उभौ प्रधाने | |
| अग्रायी कस्मात् | ” | इत्यपरं मतम् | ... ८२४ |
| ‘इहेन्द्राणीमुपह्वये’ | ... ८११ | वरुणः कस्मात् | ... ” |
| इयमृक् न केवलमग्रायी स्तौति | | ‘नीचीनवारं वरुणः०’ | ८२४-८२५ |
| किं च इन्द्राणी वरुणाणीमपि | .. ” | ऋचोऽन्त्रोऽर्थः | ८२५ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|---------------------------------|---------|-----|---------------------------------------|
| कबन्धः कस्मात् | | ८२५ | स्वरूपेऽपि मेढे अजामि भवतीति |
| ‘ तम् षु समना० ’ इयं वरु- | | | यास्कः |
| णस्य मध्यमत्वे अपरा ऋक्... | | ८२६ | पुनरुक्तौ काश्चिद्विशेषो वर्तते एव । |
| रुद्रः कस्मात् | ... | ” | यथा ‘ मण्डूका उदकादिव ’ |
| ‘ इमा रुद्राय० ’ | | ८२७ | इत्यत्र |
| रुद्रो मध्यमो बलकृतेः | | ” | को वारतोऽपतिः |
| ‘ या ते दिद्युः वसृष्टा ’ | | ८२८ | वास्तुः कस्मात् |
| दिद्युत् तोकं तनयः कस्मात् | | ” | ‘ अमाविहा वास्तोऽपते० ’ |
| ‘ जराबोध तद्विविद्धि० ’ अत्र | | | धेवः कस्मात् |
| रुद्रः अग्निः | | ८२९ | ऐश्वर्याद्देवता इष्टं रूपं स्वी करोति |
| इन्द्रः कस्मात् | ८३०-८३१ | | यथा ‘ रूपं रूपं मग्नवा० ’ |
| ‘ अदृद्धरुत्समसृजो० ’ | | ८३२ | इत्यत्र |
| ‘ यो जात एव प्रथमो० ’ | ८३२-८३३ | | वाचस्पतिः कस्मात् |
| ऋचो निदानम् | | ८३३ | ‘ पुनरोहि वाचस्पते० ’ |
| पर्जन्यः कस्मात् | | ८३४ | अपानपात् कस्मात् |
| ‘ वि वृक्षान्हन्ति० ’ | | ८३५ | ‘ यो आनिभो दीदयत्० ’ |
| बृहस्पतिः कस्मात् | ... | ” | यमः कस्मात् |
| ‘ अश्नापिनद्धं मधु० ’ | ८३५-८३६ | | ‘ परोयिवांमं प्रवतो० ’ |
| ब्रह्मणस्पतिः कस्मात् | | ८३६ | प्रवतः अवतः कथं स्यात् |
| ‘ अश्मास्यमवतं० ’ | ८३६-८३७ | | ‘ सेनेव सृष्टा० ’ अत्र अग्निः |
| क्षेत्रं पतिश्च कस्मात् | | ८३७ | यमः |
| ‘ क्षेत्रस्य षतिना वयं० ’ | ... | ८३८ | ‘ बलित्था० यमाविहेह मातरा ’ |
| ‘ क्षेत्रस्य पते मधुमन्त० ’ | | ८३९ | इत्यत्रापि तथैव |
| जाम्यजामिताविचारः | ८३९-८४१ | | ‘ सोमः प्रथमो विविदे० ’ अत्र |
| द्विविधं जामि । समानशब्दार्थम- | | | कन्यानामग्निः तुरीयः पतिः |
| समानशब्दं समानार्थं च | | ८४० | ‘ सोमं ददद्भन्वर्वाय० ’ अत्रापि |
| एकस्यामपि ऋचि वर्तमाना पुन- | | | तथैव |
| रुक्तिः जामिदोषार्हेत्येकं मतम् | | ” | मित्रः कस्मात् |
| समानपादे एव वर्तमाना दोषार्हे- | | | ‘ मित्रो जनान्यातयति० ’ |
| त्यपरम् | ... | ” | कृष्टयः कस्मात् |

| | पत्रं | | पत्रं |
|----------------------------------|--------------|------------------------------------|-----------|
| कः कथं मध्यमः | ... ८५१ | अमुरत्वमित्यस्यार्थाः | ८६८ |
| कः कस्मात् | , | वातः कस्मात् | , |
| ‘हिरण्यगर्भः र.मवर्तताम्रे०’ | ८५२ | ‘वात आ वातु०’ | ८६९ |
| हिरण्यगर्भः कस्मात् | ८५२-८५३ | ‘प्रति त्वं चारुमश्वरं०’ | अत्र |
| गर्भस्य ममांसा | ... ८५३ | अग्निः मध्यमः | ९६९-९७० |
| ‘ये ते सरस्व उर्मयः०’ | अत्र | ‘अभि त्वा पूर्वपीतये’ तथैव... | ९७० |
| सरस्वान् स्तूयते | ८५३-८५४ | वेनः कस्मात् | ८७१ |
| विश्वकर्मा कस्मात् | ८५४ | ‘अयं वेनश्चोदयत्०’ | ८७१-८७२ |
| स कथं मध्यमः | ... , | जगयुः शिशुः कस्मात् | ८७२ |
| ‘विश्वकर्मा विमना०’ | ८५५-८५६ | अमुनीतिः कस्मात् | ... , |
| ऋचः आत्मपरः अर्थः | ८५७-८५८ | ‘अमुनीते मनो अस्मासु०’ | ८७३ |
| विश्वकर्माणः आत्मयोगे इतिहासः | ८५८ | ‘देवीः पल्लुर्वारु०’ | अत्र रथ- |
| विदुषः सर्वमेधः कथं संपद्यते.... | ,, | तिर्विशगमने | ८७३-८७४ |
| निरुद्धसंज्ञः सर्वमेधो भिन्नः | ८५९ | ‘ऋतस्य’ हि शुरुभः०’ | अत्र |
| ‘य इमा विश्वा भुवनानि०’ | अत्र | ऋतः स्तूयते | ८७४-८७५ |
| विदुषः सर्वमेधसंपत् दृश्यते | ८५९-८६० | इन्द्रः कस्मात् | ८७५ |
| ‘विश्वकर्मा हविषा०’ | ८६०-८६१ | ‘प्र तद्वेचेयं भत्यायेन्द्रवे०’ | ८७६ |
| तार्क्ष्यः कस्मात् | ८६१ | अभ्यासे भूयानर्थः | ८७६-८७७ |
| ‘त्यमू षु वाजिनं०’ | ८६१-८६२ | अभ्यासः परच्छेपस्य शीलम् | ८७७ |
| ‘सद्यश्चिद्यः शवसा०’ | ८६२-८६३ | परच्छेपः कस्मात् | ... , |
| मन्युः कस्मात् | ८६३ | एष देवतानामधेयेषु कानिचित् | |
| ‘त्वया मन्यो सरथ०’ | ... ८६४ | सूक्तभाञ्जि हविर्भाञ्जि च । | |
| ‘दा दधिक्ताः शवसा०’ | अत्र | कानिचित् सूक्तभाञ्जि एव | .. |
| दधिक्ताः स्तूयते | ८६४-८६५ | प्रजापतिः कस्मात् | ... , |
| ‘सविता यन्त्रैः०’ | ८६५-८६६ | ‘प्रजापते न त्वदेतानि०’ | ८७८ |
| अत्र सविता मध्यम एव | ८६६ | ‘अठजामुकथैरहिं०’ | अत्र अहिः |
| ‘हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा०’ | | स्तूयते | ८७९ |
| अत्रापि तथैव | ८६७ | बुधं कस्मात् । अहिर्बुध्न्यश्च.... | .. |
| ‘देवस्त्वष्टा सविता०’ | अत्र त्वष्टा | ‘मा नोऽहिर्बुध्न्यो०’ | , |
| स्तूयते | ८६७ ८६८ | ‘एकः सुपर्णः स समुद्र०’ | अत्र |

| | पत्रं | | पत्रं |
|------------------------------------|----------|-----------------------------|----------|
| सुपर्णः स्तूयते | ८८० | ‘उद्दु ज्योतिरमृतं०’ तथैव | ८९४-८९५ |
| पुरूरवाः कस्मात् | | धाता कस्मात् | ८९५ |
| ‘समस्मिन् जायमान०’ | ... ८८१ | ‘धाता ददातु दाशुषे०’ | |
| ज्ञाः अत्र आपः देवपत्न्यो वा | ८८१-८८२ | ‘सोमस्य राज्ञो वरुणस्य०’ | |
| ‘आदाय श्येनो०’ अत्र श्येनः | | अत्र विधाता स्तूयते | ... ८९६ |
| स्तूयते | ८८३-८८४ | कलशः कलाः कलिः कस्मात् | .. |
| अत्र अयुतशब्देन दक्षिणाः वा | | मरुतः कस्मात् | ८९७-८९८ |
| प्रासर्पका वा बहुत्वं वा द्योत्यते | ८८४ | ‘आ विद्युन्माद्भिर्मरुतः०’ | ८९८ |
| सोमः कस्मात् | ... ८८५ | ‘आ रुद्राम इन्द्रवन्तः०’ | |
| स कथं मध्यमः | | अत्र रुद्राः स्तूयन्ते | ८९९-९०० |
| सृक्तेषु स गौणवृत्त्या स्तूयते । | | ऋभवः कस्मात् | ९०० |
| क्वचित्प्राधान्येन | | ‘विष्ठी शमी तरणित्वेन०’ | ... ९०१ |
| ‘स्वादिष्टया मदिष्टया’ | | ऋम्वादीनामितिहासः । ऋक्षु | |
| ‘सोमं मन्यते०’ इयं सोमस्य | | वैशिष्ट्यं च । ऋभुभिः कृतं | |
| चन्द्रमसो वा स्तुतिः । अधि- | | चमस्तस्य चतुर्धाकरणम् | |
| थक्ते सोमः । अधिदेवते | | ‘उद्भृत्वमा अकृणोतना’ | |
| चन्द्रमाः | ८८६-८८७ | अत्र आदित्यरश्मय ऋभवः | ९०२ |
| ‘यत्त्वा देव प्र पिबन्ति०’ अत्रा | | ‘विरूपाम इष्टपयस्त०’ | |
| पि तथैव | ८८७ | अत्र अङ्गिरसः स्तूयन्ते | ... ९०३ |
| वायुः कथं सोमस्य रक्षिता .. | ८८८ | ‘उद्दीर्गतामवर उत्परास०’ | |
| ‘स्वादिष्टया मदिष्टया०’ अत्रापि | ८८९ | अत्र पितरः स्तूयन्ते | ९०३-९०४ |
| चन्द्रमाः कस्मात् । चन्द्रः चन्दनं | | पितृणां माध्यमिकत्वं किंका- | |
| चारु च | | रणम् | ... ९०४ |
| ‘नवो नवो भवति०’ | ८९०-८९१ | ‘अङ्गिरसो नः पितरः०’ | |
| आदित्यदेवतो द्वितीयः वाद इत्येके | ८९१ | अत्र अथर्वाणः स्तूयन्ते | ... ९०५ |
| चन्द्रमाः कथं मध्यस्थानः | ८९१-८९२ | अथर्वादयो माध्यमिको देव- | |
| मृत्युः कस्मात् | ८९२ | गण इति नैरुक्ताः । पितर | |
| ‘परं मृत्यो अनु परेहि०’ | | इत्याख्यानम् | |
| ‘प्रवो महे मन्दमानाय०’ | | अथवा एते ऋभवः स्युः यस्मा- | |
| अत्र विश्वानरः स्तूयते | ८९३-८९४ | दृषयोऽपि स्तूयन्ते | ९०६ |

| | पत्रं | | पत्रं |
|-------------------------------------|-------|----------------------------------|----------|
| ' सूर्यस्येव वक्षथो० ' अत्र | | नैरुक्ताः | ... " |
| वसिष्ठाः स्तूयन्ते ... | ९०६ | ' यद्वाग्वदन्त्यविचेतनाभि० ' | |
| अस्या ऋचोऽर्थोऽन्य इत्यपरं | | अत्र वाक् स्तूयते | ... ९१६ |
| मतम् ... | ९०७ | ' देवीं वाचमजनयन्त० ' ... | |
| आप्त्यानामितिहासः । आप्त्यः | | तथैव | ९१७ |
| कस्मात् ... | ९०७ | अनुमतिः राका देवपत्न्यौ इति | |
| ' स्तुपेयं पुरुवर्षसम्० ' ९०७-९०८ | | नैरुक्ताः । पौर्णमास्यौ इति | |
| अदितिः कस्मात् ... | ९०८ | याज्ञिकाः | ... " |
| ' दक्षस्य वाऽदिते जन्मनि० ' ९०९-९१० | | अनुमतिः कस्मात् | ९१७-९१८ |
| ऋचोऽन्योऽर्थः ... | ९१० | ' अन्विदमनुमते० ' | ९१८ |
| ' यो अग्निं देववीतये० ' अत्र | | राका कस्मात् | ... " |
| विवासतिः परिचर्यायाम् ... | ,, | ' राकामहं सुहवाम्० ' | ... ९१९ |
| दक्ष आदित्यो यस्मादादित्यमध्ये | | सिनीवाली कुहूः देवपत्न्यौ इति | |
| स्तुतः ... | ,, | नैरुक्ताः । अमावास्ये इति | |
| ' अदितेर्दक्षो अजायत० ' अत्र | | याज्ञिकाः | " |
| अदितिः दाक्षायणी ... | ९११ | सिनीवाली कस्मात् । तथा | |
| अस्यामृचि दक्ष आदित्य इत्य- | | सिनं वालं च | ९१९-९२० |
| प्युच्यते ... | ,, | ' सिनीवालि पृथुष्टुके० ' | ... ९२० |
| ' यस्मै त्वं सुद्रविणो० ' अत्र | | कुहूः कस्मात् | ... ९२१ |
| अग्निः अदितिः ... | ९१२ | ' कुहमहं सुकृतं० ' | " |
| सरमा कस्मात् ... | ,, | ' अन्यमू षु त्वं यम्यन्य० ' अत्र | |
| ' किमिच्छन्ती सरमा० ' ... | ९१३ | यमी संबोध्यते | ... ९२२ |
| सरमाया इतिहासः ... | ,, | माध्यमिकपक्षे यमी उपाः तदा | |
| सरमा वाक् इत्यास्मिन् पक्षे ... | | ऋचोऽर्थः | ९२२-९२३ |
| ऋचोऽर्थः ९१३-९१४ | | ' विद्युन्न या पतन्ती० ' अत्र | |
| ' पावका नः सरस्वती० ' अत्र | | उर्वशी स्तूयते | ९२३-९१४ |
| सरस्वती देवता ... | ९१४ | ऐतिहासिकपक्षे अर्थः | ९२४ |
| ' महो अर्णः सरस्वती० ' ... | | ' बळित्या पर्वतानां० ' अत्र | |
| तथैव ... | ९१५ | पृथिवी स्तूयते | ... ९२५ |
| सरस्वती माध्यमिक वाक् इति | | यास्कनिरूपणं मैत्रायणीसंहिता- | |

| | पत्रं | | पत्रं |
|------------------------------------|---------|------------------------------------|---------|
| दत्तविनिशेगेन विरुद्धम् | ९२५ | रोदसी कस्मात् | ... |
| इन्द्राणी कस्मात् | ... | ‘ रथं म मारुतं वयं० ’ | ९३७ |
| ‘ इन्द्राणीमासु नारिषु० ’ | ९२६ | द्युस्थानदेवतासु अश्विनौ किमर्थं | ... |
| ‘ नाहमिन्द्राणि रारण० ’ | | प्रथमं समाप्नायेते | ९३९ |
| अत्रापि इन्द्राणी | ९२७ | द्वयोरेकत्र कथने किं कारणम् | .. |
| गौरीः कस्मात् | | अश्विनौ कस्मात् | ९४० |
| ‘ गौरीर्भिमामय सलिलानि० ’ | | कौ अश्विनौ | .. |
| ‘ तस्याः समुद्रा अधि० ’ | ... | तयोः कालः | |
| अत्रापि गौरीः | ९२८-९२९ | ‘ वसातिषु स्म चरथः० ’ | ... |
| ‘ गौरमीमदनु वत्स० ’ अत्र.... | | समानकालयाः समानकर्मणोः.... | |
| गौः स्तूयते | | संस्तुतप्राययोः तयोः क्वचित् | ९२९ |
| घर्मधुकपक्षे अर्थः | | असंस्तवः यथा ‘वासात्यो अन्य०’ | ९३० |
| धेनुः कस्मात् | ... | इत्यत्र | ९४१-९४२ |
| ‘ उपह्वये सुदुवां धेनुमेतां० ’ | .. | ‘ वसातिषु स्म चरथः० ’ इय- | |
| घर्मधुकपक्षे अर्थः | ... | मृक् नाश्विपरा । नापि अर्धर्चः.... | ९४१ |
| अध्या कस्मात् | ... | द्वावपि मन्त्रौ अश्विपौ एव ... | |
| ‘ सूरवसाद्भगवती हि भ्या० ’ | | | ९४१-९४२ |
| | ९३१-९३२ | ‘ इहेह जाता समवा० ’ अत्रापि | |
| घर्मधुकपक्षे अर्थः | ... | अश्विनौ | ९४२ |
| ‘ हिंक्रुण्वती वसुपत्नी० ’ अत्रापि | ९३२ | ‘ प्रातर्युजा विबोधय० ’ तथैव | ९४३ |
| अध्या | | ‘ प्रातर्युजध्वमश्विना० ’ तथैव | ९४४ |
| पथना कस्मात् | ... | आश्विने काले अन्यासां देवता- | |
| ‘ स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा० ’ | | नामावापः | |
| अत्र स्वस्तिः | | उपाः कस्मात् | |
| ‘ अपोषा अनसा सरत्० ’ अत्र | | ‘ उपस्तच्चित्रमा भर० ’ | ९४५ |
| उपाः | | ‘ एता उ त्या उपसः० ’ अत्रापि | |
| ‘ एतदस्या अनः शये० , तैव | | उपाः | |
| | ९३५ | निः = सम् । यथा ‘ यदा | ९४६ |
| ‘ अभि न इळा यूथस्य माता० ’ | | दीध्ये न द्विषाणि० ’ इत्यत्र | ९४६-९४७ |
| अत्र इळा | | का मूर्गा | |

| | पत्रं | पत्रं | |
|-----------------------------------|----------|-------------------------------------|-----------------|
| ‘सुकिंशुकं शलमलिं’ | ९४७-९४८ | पूषा | ... ९५९ |
| सविता सूर्या प्रायच्छत् इति | | विष्णुः कस्मात् | ... ९६० |
| ब्राह्मणम् | ९४८ | ‘इदं विष्णुर्विचक्रमे०’ | ... ९६०-९६१ |
| तस्य नैरुक्तपक्षे अर्थः | | ‘विश्वानरस्य वस्पर्ति०’ | अत्र |
| वृषाकपायी का | ९४९ | विश्वानरः | ... ९६२ |
| ‘वृषाकपायि रेवति०’ | | ‘येना पावक चक्षसा०’ | अत्र |
| सरण्युः कस्मात् | ... ९५० | वरुणः। ऋचः चतुर्विधा वाक्य- | |
| ‘अपागूहन्नमृतां०’ | ९५१ | समाप्तिः | ९६३-९६५ |
| अत्र मिथुनी मध्यमः माध्यमिका | | केशि कस्मात् | ... ९६५ |
| च वाक् | | ‘केश्यग्निं केशी विषं०’ | ... ९६६ |
| यमो यमी च इत्यैतिहासिकाः | .. | इतेर ज्योतिषी अपि केशिनी उच्येते | .. |
| ‘त्वष्टा दुहित्रे वहतुं०’ अत्रापि | | ‘त्रयः केशिनः’ अत्र अग्निवा- | |
| सरण्युः | ९५२ | युसूर्याः केशिनः | ९६७ |
| नैरुक्तपक्षे अर्थः | ९५२ | वृषाकपिः कस्मात् | ९६७ |
| ‘विश्वारूपाणि प्रति०’ अत्र | | ‘पुनरोहि वृषाकपे०’ | ९६८ |
| सविता | ... ९५४ | ‘यन्मिन् वृक्षे सुपलाशे०’ | अत्र |
| अधोरामः किमर्थं सावित्रः | | यमः | ९६९ |
| अधोरामः कस्मात् | | कः एकपात् कस्माच्च | |
| रामः=कृष्णः इति कथम् | ९५५ | ‘एकं पादं नोत्खिदति०’ | अत्र |
| कृकवाकुः किमर्थं सावित्रः | | जीवः ब्रह्मणः एकः पादः | ९७० |
| कृकवाकुः कस्मात् | | ‘पावीरवी तन्यतु०’ | अत्र एकपाद९७१ |
| प्रातर्जितं भगमुग्रं०’ अत्र भगः | ९५६ | पावीरवी कस्मात् | ... ९७१ |
| भगः किमर्थमन्धः | | पवारिवान् इन्द्रः | .. |
| सूर्यः कस्मात् | | ‘यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां०’ | |
| ‘उदु त्थं जातवेदसं०’ | ९५७ | अत्र पृथिवी | ९७२ |
| ‘चित्रं देवानामुदगादनाकिं०’ | | ‘पवित्रवन्तः परिवाचं०’ | अत्र समुद्रः९७३ |
| अत्र सूर्य एव | ९५७-९५८ | ‘उतनोऽहिर्बुध्न्यः०’ | अत्र अज |
| पूषा कस्मात् | ... ९५८ | एकपात् पृथिवी समुद्रः नैवण्डुकाः | ९७४ |
| ‘शुकं ते अन्यद्यजतं० | ९५८-९५९ | द्वयङ् कस्मात् | |
| ‘पथस्पथः परिपतिं०’ अत्रापि | | | .. |

| | पत्रं | | पत्रं |
|------------------------------------|-----------|--|-----------|
| मनुर्मननात् | ९,७५ | के साध्याः । कस्माच्च | .. १, |
| ‘याम्थर्वा मनुष्यिता०’ अत्र | | ‘यद्देन यज्ञमयजन्त०’ | ९८६-९८७ |
| अथर्वा दध्यङ् मनुः स्तूय- | | के वसवः । कस्माच्च | ९८७ |
| स्ते | ९,७५-९७६ | ‘सुगा वो देवाः०’ | ९८७-९८८ |
| द्युम्यानदेवगणेषु आदित्याः प्रथमाः | ९,७६ | ‘ज्मया अत्र वसवो०’ अत्र | |
| ‘इमा गिर आदित्येभ्यो०’ | ९,७७ | वसवः त्रिस्थानाः | ९८८-९८९ |
| ‘सप्त ऋषयः प्रनिर्हताः’ अत्र | | ‘शानो भवन्तु वाजिनो०’ अत्र | |
| सप्त ऋषयः | ९,७८-९,७९ | वाजिनः | ९८९-९९० |
| ‘तिर्यग्बिलश्चमम०’ ते एव | ९,८० | ‘देवपत्न्यः कस्मान् | ९९० |
| ‘देवाना भद्रा मुमनि०’ अत्र | | ‘देवाना पत्नीरुशती०’ | ९९०-९९१ |
| देवाः | ९,८१-९,८२ | उत सा ज्यन्तु देवपत्नी० | |
| विश्वे देवाः के | ९,८२ | अत्रापि देवपत्न्यः | ९९१-९९२ |
| ‘ओमामश्चर्षणीधृतो०’ ... | ९,८३ | अतिस्तुतयः | ... ९,९३ |
| वैश्वदेवं गायत्रं तृचमेकमेव .. | ” | अथवा नैना अतिस्तुतयः । किंतु | |
| एतादृशां तृचानां प्रयोजनं बहुदेव- | | देवतानां माहाभाग्यमेव | ... ” |
| तानि तृचानि प्रयुज्यन्ते | ” | ‘त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाहुशुशुक्षणिः०’ | |
| ‘विश्वशब्दोपेतमेव मन्त्रजातं | | अत्र अग्नेः अतिस्तुतिः | ९,९४ |
| युज्यते इति शाकपृणिः | ” | ‘अपो मु भ्यक्ष वरुण०’ अत्र | |
| शाकपृणैरेतन्मतमनेकान्तिकम्... | .. ” | वरुणस्य | ... ” |
| बहुदेवं गायत्रं मन्त्रजातं विनि- | | ‘यदद्यात् इन्द्र ते०’ अत्र | |
| योक्तव्यमिति यास्कः | ९,८४ | इन्द्रस्य | ... ९,९५ |
| अश्विशब्दशुक्त्या एकयाऽपि ऋचा | | ‘यदुदञ्चो वृषाकपे०’ अत्र | |
| सर्वं मृक्तमाश्विनमिति भूतांशः... | .. ” | अश्विनस्य | ९,९५-९,९६ |
| पर्यागृप्तं ‘ऋ-याम’ इत्येव | | ‘वि हि मोतोरमृशान०’ अत्र | |
| ऋक् अश्विलिङ्गा | ” | आदित्यरश्मीनाम् | १,२६ |
| ‘ऋ-याम स्तोमं०’ | ९,८४-९,८५ | ‘सृणुयव जर्मर्ग०’ अत्र | |
| अभितथीये मृक्तेः एकस्यामेव | | अश्विनोः | ९,९७ |
| ऋचि इन्द्रलिङ्गम् । तथाऽपि सर्वं | | ‘तस्मै भन्दी०’ अत्र सोमस्य | .. ” |
| मृक्तमन्द्रम् | ... ९,८५ | ‘चत्वारि शृङ्गाः’ अत्र यज्ञस्य | .. ” |
| | | ‘भ्यर्गन्तो नोपक्षन्ते०’ तस्मैव९,९७-९,९८ | |

| | पत्रं | | पत्रं |
|---------------------------------------|----------------------------------|-----------|-------|
| ' चत्वारि वाक्परिमिता० ' ९९८-९९९ | रत्नेव | | " |
| चत्वारि पदानि कानि ९९९ | महान्तमात्मानं प्रवदन्त्यः ऋचः | १००७ | |
| नामादीनि इति वैयाकरणाः । | 'सूर्य आत्मा०' | | " |
| मन्त्रादीनि इति याज्ञिकाः । | 'अग्निग्मि जन्मना०' | | " |
| ऋगादीनि इति नैरुक्ताः । सर्पा- | 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य... | | " |
| दीनां वाच इति एके । पश्चादीनाम् | 'अपश्यं गोपा०' | | " |
| इत्यात्मप्रवादाः । ब्राह्मणमतम्.... | आत्मस्वरूपम् | | " |
| ' ऋचो अक्षरे परमे० ' अत्र | महानात्मा प्रतिभाद्भिः | १००७-१००८ | |
| अक्षरस्य १००० | महाभूतानां गुणाः | १००८ | |
| अक्षरम् ॐ इति शाकपृष्णिः | सृष्टिः | | " |
| १०००-१००१ | प्रलयः | | " |
| आदित्य इति शाकपृष्णेः पुत्रः | ब्रह्मणः अहः रात्रिश्च | | " |
| १००१-१००२ | आत्मनः शरीरेण तादात्म्यम् | | " |
| आत्मा इत्यात्मप्रवादाः | शरीरघटकाः | | " |
| अक्षरं कम्मात् ... १००२ | धर्मानुगोधने देवभावः । ज्ञानानु- | | |
| अक्षः कम्मात् ... | गोधने अमृतत्वम् । कामानुगो- | | |
| निरुक्तशास्त्रं श्रुतिमाहाय्यं तर्क- | धने नग्देहः | | " |
| साहाय्यं चापेक्षते १००३ | गर्भोत्पत्तिः | | " |
| मन्त्रनिरूपणे प्रकरणमवश्यम् | पृमान्स्त्रीनपुंसकाः । एतेषां | | |
| मन्त्राः आश्रुनिकानां न प्रत्यक्षाः । | भेदानां कारणानि | १००८-१००९ | |
| तस्मात् श्रुतिनिर्वचनय श्रुतिज्ञा- | केन कारणेन यमो भवति... | १००९ | |
| नरूपं बहुविद्यत्वमावश्यकम् | गर्भघट्टिः | | " |
| तर्कश्चाऽऽवश्यकः ... १००४ | पुनर्जन्म | | " |
| 'हृदा तष्टेषु मनमा०' अत्र तर्क- | जन्ममासः | | " |
| प्रशस्यते १००४-१००९ | प्राग्जन्मविस्मृतिः | | " |
| अयं तर्कः श्रुति-मति-बुद्धि-माहा- | शरीरस्य अन्तर्बाह्याङ्गानां | | |
| य्यमपेक्षते १००५ | प्रमाणानि | | " |
| तर्कः परां कोटिं नेत्यः | प्राग्जन्मसंस्कारः | | " |
| किंतु आयुरिच्छता परां कोटिं | मरणस्यानन्तरं तजसं | | |
| नेतुं न शक्यते ... १००६ | शरीरम् | १०१० | |
| अनिरुक्ताः शेषाः छन्दसि वर्ते- | | | |

| | पत्रं | | पत्रं |
|------------------------------------|-----------|------------------------------------|-----------|
| कर्मणोऽनुरूपस्य फलस्य भोगः | १०१० | ‘ न वि जानामि० ’ | १०१६-१०१७ |
| हिंसां वेदोक्तानि कर्माणि वा | | ‘ अपाङ् प्राङ्ङेति० ’ | ,, |
| कुर्वन्तामूर्ध्वमार्गः इह लोके | | ‘ तदिदाम भुवनेषु० ’ | ,, |
| पुनरागमनं च | ,, | ‘ को अद्य युङ्क्ते० ’ | ... १०१८ |
| हिंसामुत्सृज्य ज्ञानोक्तानि कर्मा- | | ‘ क ईषते तुज्यते० ’ | ,, |
| णि कुर्वन्तामूर्ध्वमार्गः अपुनरा- | | ‘ को अग्निमट्टे० ’ | १०१८-१०१९ |
| वृतिश्च | ,, | ‘ त्वमङ्ग प्रशमिषो० ’ | १०१९ |
| शिष्टा दन्दशकाः | | ‘ हंसः शुचिपद्ममु० ’ | १०१९-१०२० |
| सृष्टिकर्तारं ज्ञातुं के समर्थाः | | ‘ द्वा सुपर्णा सन्नुजा० ’ | ... १०२० |
| | १०१०-१०११ | ‘ आ यार्हान्द्र० ’ | ... ,, |
| महत आत्मनो नामधेयानि | | ‘ विप्रं विप्रासोऽवसे० ’ | १०२१ |
| | १०११-१०१२ | ‘ जातवेदसे सनवाम ’ | ... ,, |
| अतः परं पठ्यमानासु ऋक्षु | | ‘ इदं तेऽन्याभि० ’ | १०२२ |
| महान् आ-मा स्तूयते | ... १०१२ | ‘ त्र्यम्बकं यजामहे० ’ | ... ,, |
| ‘ सोमः पवते० ’ | ... ,, | ‘ शतं जवि शरदो० ’ | ,, |
| ‘ ब्रह्मा देवानां० ’ | १०१२-१०१३ | ‘ मा ते गवांमि० ’ | १०२२-१०२३ |
| ‘ तिस्रो वाच० ’ | ... ,, | आत्मजिज्ञामायाः सर्वभूतजि- | |
| ‘ सोमं गावो धेनवो० ’ | १०१३-१०१४ | ज्ञामायाश्च फलं ब्रह्मणः सागिष्टिः | |
| ‘ अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे० ’ | १०१४ | सरूपता सलोकता | ... १०२३ |
| ‘ महत्तत्सोमो० ’ | १०१४-१०१५ | टिप्पणी | ... १-२८१ |
| ‘ विधुं दद्राणं० ’ | ... १०१५ | अनुपलब्ध मूलानि । | २८२-८४ |
| ‘ साक्रं जानां सप्तथ० ’ | ,, | मुद्रणानन्तरमुपलब्धमूलम् । | ८४ |
| ‘ त्रियः सतीमँ उ० ’ | ... १०१६ | शुद्धिपत्रकम् | १-४४ |
| ‘ सप्तार्धगर्भा भुवनम्य० ’ | | | |

अथोत्तरषट्कम् ।

सप्तमाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

देवतं काण्डम् ।

ॐ ३ म् । अथातो देवतं तत्रानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्देवतमित्याचक्षते सैषा देवतोपारीक्षा यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्देवतः समन्त्रो भवति तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता अध्यात्मिक्यश्च तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्गुञ्जन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य ॥ १ ॥

ॐ नमः । समाप्तं चैकपादिकं प्रकरणम् । अभ्यानु देवतं तद्भवति यस्यायमादिः 'अथातो देवतम्' इति । यावन्तो मन्त्राः सर्वशास्त्रसु तेषु यानि गुणपदानि लक्षणोद्देशतस्तानि सर्वाण्येव व्याख्यातानि द्वयोः प्रकरणयोर्नैघण्टुकैकपादिकयोः । संविज्ञातपदानि तु प्रधानस्तुतिभागे देव-

ताविषयाण्यन्यादीनि सर्वमन्त्रेष्ववशिष्यन्ते । तानि च पुनरगुनि समासज्ञानान्यस्मिच्छास्त्रेऽग्न्यादीनि देवपत्त्यन्तानि । येनस्तद्व्याचिख्यासयेदमारभ्यते 'अथातो देवतम्' इति । 'अथ'शब्दोऽधिकारार्थः । 'अतः'शब्दः क्रमे हेतौ वा । प्रकरणद्वयादनन्तरमिदमवश्यं समासायानुक्रमप्राप्तं व्याख्यातव्यमित्येवं क्रमे । देवतमन्त्रेण न शक्यो देवतार्थः सम्यगवबोधम् । देवतापरिज्ञानानुबद्धस्त्वन्विलः पुरुषार्थ इत्यनो देवतं प्रकरणं

१ इ. थ. ध श्रीगणेशायनमः । हरिः ॐ ; छ. उ. श्रीगणेशायनमः । ॐ ; २१ द. श्रीगणेशपरत्सनीगुरुभ्यो नमः । २ इ. 'च्छन्ते' ; छ. मिच्छन्ते च्छन्. ३ ग. च. ॐ नमो विद्महे ; घ. झ. ट. श्रीगणेशायनमः ; उ. श्रीगणेशायनमः । श्रीमद्वेणुकाचरणाय नमः । श्रीमद्वेणुकाय गुणै नमः ; इ. ॐ नमः । श्रीगणेशाय. ४ क. ख. अतस्त ; ग. न. यत्सन्त्यासमंयद्. ५ ग. न. क्रमो दे. ६ च. देवतापार्थः.

व्याख्यास्याम इति वाक्यशेषः । एवं हेतौ । आह १ किंसतत्त्वं पुनस्त-
 दैवतं प्रकरणमिति । तदुच्यते । ' यानि नामानि
 'दैवतम्' इत्यस्य प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तदैवतमित्याचक्षते ।
 व्याख्या तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनामग्न्यादीनां देव-
 ५ पर्यन्तानां तदैवतं प्रकरणमित्येवमाचार्या च्याच-
 क्षते । निरूढा हीयमेतस्मिन् प्रकरणे संज्ञेयमिप्रायः ।

१० 'सैषा देवतोपपरीक्षा' । सा यापुनस्तात् प्रकरणत्रयोपन्यासे 'नैघण्टुक-
 मिदं देवतानाम प्राधान्येनेर्दमि ते तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां
 तदैवतमित्याचक्षते तदुपरिष्ठाङ्ग्याद्यास्यामः' (निरू० १ । २०) इति
 प्रैतिज्ञाता सेदानीं प्रकरणद्वये निर्णिते यथाप्रकरणोपन्यासेनैवावसरप्राप्ता ।
 सामान्यविशेषस्वालक्षण्यसतत्त्वोपपत्तिभिरैकैकस्या देवताया उपगम्योपगम्य
 परीक्षा वर्तिष्यत इति वाक्यशेषः । इदमिहोक्तम् । प्राधान्यस्तुतिभ्यश्च यानि
 देवताभिधानानि तत्समुदायो दैवतं प्रकरणं तद्व्याख्यास्याम इति । तस्य
 पुनरियमेव समाप्तो व्याख्या यदैवतोपपरीक्षां तदभिधानव्युत्पत्तितस्तुत्यादा-
 १५ हरणतन्निर्वचनानि ।

तत्पुनरेतत्सर्वमपि मन्त्राभिदैवतलक्षणमनुक्त्या न शक्यं व्याख्यातुं
 मन्त्रार्थान्त्वात्सर्वस्यास्य । यतो मन्त्रदेवतलक्षणावदिवारयिपयस ब्रवीति ।
 'यत्काम ऋषिर्पयस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्त्सुति
 मन्त्रस्थदेवता- प्रयुञ्जे तदैवतः स मन्त्रो भवति' । यदर्थवस्तु
 २० निर्णयः कामयमान ऋषिः यस्यां देवतायामभिष्टुतायाम्
 आर्थपत्यम् अर्पयतिभावमात्मन इच्छन् अमुष्या
 देवतायाः प्रसादेनाहममुष्यार्थस्य पतिर्भविष्यामीत्येतां बुद्धिं पुरोधाय

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तद्' नास्ति २ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. तद्यानि ३ क. ख. घ. झ. ट. 'न्तानां देवतानां तदै' ; च. 'न्तानां ~ तदै' देव-
 २५ तानां. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. आ दक्षते. ५ घ. ट. प्रति' नास्ति. ६ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'विशेषतः स्वलक्षणम्' ; च. 'विशेषै (पात)स्त्वा (स्व)-
 लक्षण्यं (ण) स' ; ग. ज. 'विशेषस्याळ'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'परिष्ठां' ;
 च. 'परिष्ठां' क्षणं. ८ क. ख. घ. झ. 'लक्षणविदिधा' ; ट. 'लक्षणविदि' णाव.
 ९ ठ. ड. ऋषिर्पयति. यदर्थ'. १० ग. च. ज. 'मिच्छन्त्सुति' ; व. ट. 'मिच्छन्त्सु' ;
 झ. 'मिच्छन्त्सु'. ११ ग. ज. यदर्थवस्तु' ; च. यदर्थवस्तु' थै. १२ व. ट.
 ३१ 'तायहः प्र'.

स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदैव न एव स मन्त्रोऽर्थाद्भवति । एतन्मन्त्रे देवतालक्षणम् ।

चतुर्विधा स्तुतिः एतेन लक्षणेन सर्वमन्त्रेषु देवतोपलक्ष्या । अथवा ।
देवतायामस्यार्थस्येयं देवता दातुं समर्थेति जानानः

स्तुतिं प्रयुङ्क्ते येन मन्त्रेण सा प्राधान्यस्तुतिभावेऽवता । सा पुनरियं
स्तुतिश्चतुर्विधा नाम्ना बन्धुभिः कर्मणा रूपेणेति । ' स्तुतिर्नाम-
कर्मबन्धुरूपैः ' इत्युक्तम् ।

ऋच एव हि प्रायेणातिरामपिहितार्थाः । न तथा यजूपि । तासु हि
विज्ञानासु यजूंश्चपि विज्ञानान्येव भवन्ति तस्माद्ऋच
ऋचस्त्रिविधाः एव पुरस्कृत्य ब्रवीति । ' तास्त्रिविधा ऋचः ' ।

याः काश्चन सर्वत्रेष्टृचस्ता एताः सर्वा अपि
त्रिविधा एव भवन्ति । तद्यथा ' परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यत्मि-
क्यक्ष ' इति ।

तत्रैविध्यं सामान्यत उद्दिष्टाभ्युना प्रत्येकं लक्षणतो ब्रवीत्युदाहरणैश्च
दर्शयति । तत्र तस्मिन्त्रैविध्ये परोक्षकृतानामृचा-
परोक्षकृतानामृचां मेतल्लक्षणं भवति । ' परोक्षकृताः सर्वाभिर्नाम-
लक्षणम् विभोक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य ' ॥ १ ॥

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रमिद्राथिनो बृहदिन्द्रेणैते
तृन्सर्वो वेविषाणा इन्द्राय साम गायत नेन्द्रादृते पवते धाम
किंचनेन्द्रस्य नु धीर्याणि प्रवोचमिन्द्रे कासा अयंसतेत्यथ प्रत्य-
क्षकृता गध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्नां त्वमिन्द्र
बलादधि वि न इन्द्र मृधो जहीत्यथापि प्रत्यक्षकृता स्तोतारो
भवन्ति परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि मा चिदन्यद्विशंसत कणा

१ ग ज देव देवता° । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °निरुक्तरूपकर्मबन्धुभि-
रित्युक्तम् । ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ऋच इति । ४ घ. झ. ट. ठ. ड. तत्र
परोक्ष°; च. ° परोक्ष° तत्र. ५ ठ. °विभक्तिषु इन्द्रो दिव इत्येवामादीनि । इति
निरुक्तटीकायां उत्तरपट्टके प्रथम अध्याये निचगुत्तारभ्य द्वादशे च प्रथमः खण्डः । १।
इन्द्रो दिव° । ६ घ. झ. ट. °खण्डसमाप्तिर्नास्ति; ग. छ; च. ज. अइस्थाने छ.
७ अस्मिन्खण्डे थ ठ. ड. वर्जं सर्वेषु पुस्तकेषु प्रतीकानि सस्वरणि वीर्यन्ते. ८
°यंसतेति । अथ° । ९ क. ख. छ. त. द. °नाम्ना । त्व°; थ. नाम्नात्त्व° । १०
क. ख. छ. त. द. °व्यानि । स्तो°; थ. °व्यानि-स्तो ।

५

१०

१५

२०

२५

३१

अभि प्र गायतोपमेत कुशिकाश्चेतयध्वमित्यथाध्यात्मिक्य उत्तम-
पुरुषयोगा अहमिति चैनेन सर्वनाम्ना यथैतदिन्द्रो वैकुण्ठो लवसूक्तं
वागाम्भृणीयमिति ॥ २ ॥

५ तद्यथैतान्युदाहरणान्यानूपर्व्येणैव सप्तस्वपि विभक्तिषु इन्द्रो दिव इत्ये-
वमादीनि ।

‘ इन्द्रो दिव इन्द्रे ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्यर्षतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे
प्रथमाविभक्त्यु- हव इन्द्रः ’ (ऋ० सं० १० । ८९ । १०) ॥

१० दाहरणम् रेणो वैश्वामित्रस्योर्मार्षम् । सूर्यस्तुत्येकाहं निष्के-
दस्ये विनियुक्ता (आश्व० श्रौ० ९ । ८) ।

इन्द्रो दिवः ईशे ईष्टे । इन्द्र एव पृथिव्या ईष्टे । इन्द्र एव अपाम् ईष्टे
वर्षकर्मादिना । इन्द्र एव पर्वतानां भेषानाम् ईष्टे । इन्द्र एव वृधाम्
अतिप्रवृद्धानामपि भूतानाम् ईष्टे । इन्द्र एव मेधिराणां यज्ञैस्तद्गतार्षे । इन्द्र
एव हि योगे अर्थभेद्ये प्रासव्ये क्षेमे च परिपालने कर्तव्ये आह्वतयः ।
नान्यः कश्चिन्समर्थ एतत्कर्तुमिहमिद्रायः । प्रथमाया एतदुदाहरणम् ।
इन्द्र इत्येतस्मादुपपदादीशे इत्येव प्रथमपुरुष इति प्रतीयते नात्तमैरुच्य इति ।

१५ ‘ इन्द्रमिन्द्राधिना बृहदिन्द्रमैकीभिरर्षिणाः । इन्द्रं वाणीरनुपत ’
द्वितीयायाम् (ऋ० सं० १ । ७ । १) ॥ मधुच्छन्दसं
आर्षम् । भैहात्रते महदुक्त्ये शिरसि शस्यते (ऐ०

२० आ० ९ । २ । १) ॥ हे गाथिनः सामगा इन्द्रमेव ययं बृहता साम्नाभिष्टुत ।

१ क. ल. छ. त. द. नाम्ना २। यथैव । २ छ. त. द. खण्डसमाप्ति-
नास्ति. ३ म. च. ज. ँक्लिषु । १ (च. ज. अङ्को नास्ति) इन्द्रो दिव इत्येवमादीनि ।
रेणे (च. सर्वा ऋक् पठ्यन्ते) ४ ड. ०दीनि । इति जम्बूमागर्भमनिवासिन आचार्य-
भगवद्दुर्गास्य कृतां ऋज्वर्यायां निरुक्तटीकायां निवण्टपञ्चाध्यायेन मह द्वाद्वाध्यायो.

२५ त्रषट्के प्रथमाध्याये प्रथमः स. षडः. ५ व. झ. ट. ठ. ईशे० क्षेमे०. ६ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. ०मार्षन् । ऐन्द्री । त्रिष्टुप् । सूर्यः; च. ०मार्षन् । ७ सूर्यं ऐन्द्री
त्रिष्टुप् । ८ म. ज. ‘ईशे’ नास्ति; च. ईशे ईष्टे. ८ म. ज. श्रेष्ठे; च. श्रेष्ठे, ९ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ०मायामन०. १० म. ज. ०दीष्टे इति; च. ०दीष्टे इति० शे.
११ च. ज. ०त्तमः पु०. १२ म. ज. ०मिद्राथिनः । २ (ज. ‘ २ ’ नास्ति) ।
मधु०; व. झ. ट. ठ. ०मित् ० वाणीरनु०. १३ च. ०दिन्द्रमाकीचिरर्षिणः०.

३१ १४ च. ०न्दसा. १५ च. माहा०.

युयमपि हे होतारः अर्किणः अर्कीभिः अर्कैः ऋद्धमयैर्मन्त्रैः इन्द्रमेवाभिष्टुत ।
युयमपि च हे वध्वर्यवः इन्द्रमेव वाणीभिः वाग्भिर्यजुर्मयीभिः अनूपत
अभिष्टुत । द्वितीयाया एतदुदाहरणम् ।

‘ इन्द्रेणैते ’ इति तृतीयस्यो उदाहरणम् । व्याख्यातः शेरः
तृतीयायाः (निरु० ६ । ६) ।

‘ इन्द्राय सोमं गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पन-
स्यवे ’ (ऋ० सं० ८ । ९८ । १) ॥

चतुर्थ्याः नृमेधस अप्तम् । सात्रिकेष्वहःसु स्तोत्रियानुरूप-
पर्यो तृतीयमवने ब्राह्मणाच्छसिनः शस्त्रे विनि-
युक्ता (अ.श्व० श्रौ० ७ । ८) । हे उदाहारः इन्द्राय बृहत्साम गायत
विप्राय मेधादिने बृहते महते धर्मकृते कृतधर्मणे विपश्चिते विदुषे पनस्यवे
पन इच्छते आत्मनः स्तुतिमिच्छते । चतुर्थ्या एतदुदाहरणम् ।

‘ सूर्यस्थेवै रश्मयो द्रावयित्त्वो मत्सरासः प्रसुपः साकमरिते । तन्तुं
तत् परिसर्गास आशयो नेन्द्रादृते पवते धाम
पञ्चम्याः किंचन ’ (ऋ० सं० ९ । ६९ । ६) ॥
रणोनेश्वामित्रस्यमर्षम् । पावमानी सौमी ।

जगती । यथा सूर्यस्य रश्मयस्तमसां द्रावयित्त्वो द्रावणशीला एवमेने
मत्सराः सोमाः पाप नां द्रावणशीलाः । किंच । प्रसुपः प्रसृता एतैर्कृत्विग्भिः
साकम् इन्द्रं प्रति ईरते । गच्छन्तीत्यर्थः । गत्या च तन्तुं तनं तन्तुमिव
तत् तन्ववयवाः परिसर्गासः आशाः परिसृता यथा व्याप्नुवन्ति एवमेनं
पातारमिन्द्रं प्रत्यश्रुवन्ति । व्याप्नुवन्तीत्यर्थः । कस्मात्पुनरेवं ब्रूमः । इतो
यस्मात् नेन्द्रादृते सोमः प्रातःमवनादीनां सोमसवनस्थानानां किंचिदपि
प्रतिपवते पृथते । तस्मादेवं ब्रूमह इन्द्रमेवैते व्यप्नुवन्तीति । पञ्चम्या
एतदुदाहरणम् ।

१ क. ख. व. झ. ट. उ. ड. ‘यायामेत’; च ‘याथो एत’ शं. २ ग. इति २५
वृ०. ३ क. ख. तृतीयायामेतदुदा’; व. झ. ट. उ. ‘यस्गमुदा’; च. ‘यस्थो
उदा’ स्थां. ४ ग. ज. व्याख्यातशेषः; च. व्याख्यातशेषः० तः. ५ ग. सार्धं०। नृमे’;
घ. झ. ट. उ. साम गायत० पन’ ६ क. ख. व. झ. ट. उ. ‘थयमित’ ७ ग.
सूर्यस्थेवै० रेणो’ ८ घ. झ. ट. उ. रश्मयः० धाम’ ९ क. ख. व. झ. ट. उ. ड.
‘निन्द्रं स्वामिनं प्रत्य’; च. ‘निन्द्रं ० प्रत्य’ स्वामिनं. १० क. ख. घ. झ. ट. उ.
ड. ‘ प्रति ’ नास्ति; ग. ज. ति।वते. ११ क. ख. व. झ. ट. उ. पञ्चम्यामित’ ३१

‘ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकारं प्रथमानि वञ्ची । अहन-
हिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणां अभिनत्वर्षतानाम् ’

पष्ठथाः

(ऋ० सं० १ । ३२ १) ॥ हिरण्यस्तु-
पस्थेयमार्गम् । निष्केवल्ये शस्यते (आश्व०

५

श्रौ० ५ । १५ ॥ ८ । ६ ॥ ऐ० आ० ५ । २ । २) । इन्द्रस्य
अहं वीर्याणि वीरकर्माणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि अकृतपूर्वाण्यन्यैः
वञ्ची वञ्चसंयुक्तः । अहन्नाहिं व्रन् मेधम् अनु ततर्द अयः वर्षार्थाः ।
पुनः पुनश्च प्राभिनत् वक्षणाः उदकवहनशिराः पर्वतानां मेघानाम् ।
एवमादीनि वीर्याण्यहमिन्द्रस्य प्रवोचमिति । पष्ठकमेादुदाहरणम् ।

१०

‘ इन्द्रे कौमा अयंसन दिव्यामः पार्थिवा उत । त्यम् षु गृगता
नरः ’ ॥ हे स्तोतारः ये दिव्याः कामाः ये च
सप्तम्याः पार्थिवाः त इन्द्र एव उपनिवद्वाः । तं प्रार्थि-
यत । सहि कामानामिष्टे । त्यम् पु तं सुष्ठु काम-
प्राप्तयर्थं गृणत स्तुत हे नरः । सप्तम्यामेतदुद हरणम् ।

१५

उक्तं सोदाहरणं परोक्षकृतलक्षणम् । अधुना प्रत्यक्षकृतलक्षण-
मुच्यते । तदधिक सार्थोऽयम् ‘ अथ’शब्दः
प्रत्यक्षकृतलक्षणम् ‘ अथ प्रत्यक्षकर्ता’ इति । ‘ मध्यमपुरुषयोगाः ’
मध्यमेन पुरुषेण ये संयुक्ता मन्त्रास्ते प्रत्यक्षकृताः ।

२०

‘ त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना ’ संयुक्तास्ते च प्रत्यक्षकृताः । यत्र त्वमि-
त्येवं श्रूयते तत्राविद्यमानमपि मध्यमपुरुषयुक्तमाख्यातमध्याहार्यम् । यत्र
मध्यमपुरुषयुक्तमाख्यातपदं श्रूयते तत्राविद्यमानमपि त्वमित्येतसर्वनामा-
ध्याहार्यं संबन्धिशब्दत्वादनयोः ।

१ ग. नु हिरि; थ. झ. ठ. नु वीर्याणि० पर्वताना. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. वर्षार्थ; च. वर्षार्थाः० थ. ३ ग. ज. कामाः० (ज. ‘ ५’ नास्ति) । हे स्तो०

२५

४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. उक्तं परोक्षकृतमन्त्रलक्षणं सोदाहरणम् (ठ. ड.
‘ मन्त्र’ नास्ति). ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ट. कृतमन्त्रलक्षणम्. ६ घ. झ. ट.
ठ. ड. कृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना । मध्या; च. कृता० इति०
मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. संयुक्ता
ये. ८ ग. ज. ति नास्ति; च. मन्त्रा० अत्य० स्ते. ९ क. ख. झ. ठ. ड. ० त्वेवं; ट.
त्येवं वं. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ विद्यमानोऽपि मध्यमपुरुषोऽध्याहार्यः ।
यत्र’ (ट. ‘ विद्यमानोऽपि ’ इत्याद्यस्मात्वीकृतपाठश्च स्वीक्रियते स्वकी-

३२

यपाठो निराक्रियते. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. यत्र तु मध्यमः पुरुषः श्रू०

‘त्वमिन्द्र बलादधि’ वि न इन्द्र मृधो जहीति ’ चैते उदाहरणे ।
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं

प्रत्यक्षकृतदेव- वृन्वृषेदसि’ (ऋ० सं० १०।१५३।२) ॥
तास्वे ‘त्वं’पद्युक्तमु- देवजामयः सूक्तं ददृशुः । तत्रेयं महारात्रिके
दाहरणम् पर्याये प्रशास्तुः स्तोत्रे विनियुक्ता (आश्व० श्रौ० ५
६।४) । हे इन्द्र त्वं बलादधि जायसे सहमः
अभिभयनसमर्थात् ओजसश्च तेजसः । किञ्च । हे वृान् वर्षितः वृषासि ।
वर्षितासीत्यर्थः ।

‘वि न ईन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्मां अभि-
दासत्यधरं गमया तमः’ (ऋ० सं० १०। १०

‘त्वं’पदधिर- १५२।४) ॥ शासस्य भारद्वाजस्येयमार्षम् ।
हितम् वैमृधस्य हविषो याज्या (मैत्रा० सं० २।२।
१० ॥ ४।१२।३) । हे इन्द्र विजहि न

एतान् मृधः मृधकर्तृन् शत्रून् । किञ्च । नीचैः यच्छ तान् येऽस्माभिः सह
पृतन्यन्ति । पृतनां कर्तुमिच्छन्तीत्यर्थः । किञ्च । योऽस्मां अभिश्राप्ति ।
अभ्युपक्षर्षयितुमिच्छतीत्यर्थः । तम् अधरं गमय तमः । नाशयत्यर्थः ।

‘अथापि’ क्वचित् ‘प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति’ । युष्मत्प्रयोगैर्हि
क्वचिस्तोतारः संबध्यन्ते । तद्यथा । ‘मा चिदन्य-
प्रत्यक्षकृ ॥: द्विशंसत कण्वा अभि प्रगायतोप प्रेत कुशिका-
स्तोतारः श्वेनयधमिति’ एतान्युदाहरणानि ।

‘मा चिदन्यद्वि शंसित सग्वीयो मा रिपणत । इन्द्रमिस्तोता वृषणं
सचा सुते मुहुक्कथा चं शंसत’ (ऋ० सं० ८।१।१) ॥ प्रगाथस्येय-
मार्षम् । बृहती । तृचाशीतिषु विनियुक्ता (ऐ० आ० ५।२।४) ।

१ च. ‘त्वमिन्द्र’ इति सर्वा ऋक् पठिता. २ ग. बलादधि । वि. ३ ग.
च ज. ‘त्वमिन्द्र’ इति ऋक् न पठिता. ४ घ. झ. ट. ‘दधि० वृषेदसि. ५ क. २५
ख घ. झ. ठ. ड. त्वं ह. ६ ग. इन्द्रं० शासं; घ. झ. ट. ठ. इन्द्र मृधो०
गमया तमः; च इन्द्र० । शासं. ७ ठ ड. नीचा नीचैः. ८ ठ. ड. ‘अधरं
निकृष्टं तमः अन्धकारं मरणलक्षणम्’ इदं ट. पुस्तके सायणभाष्यादृशितं प्रान्ते
लिख्यते । ठ. ड. पुस्तकयोस्तत ‘तमधं तमः’ इत्यस्य स्थाने लिख्यते. ९ क. ख.
घ झ. ट. ठ ‘न्ति परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि यु०; च न्ति० । यु० परोक्षकृतानि
स्तोतव्यानि. १० ग. ‘चिदन्यत् । प्रगा’. ११ घ. झ. ट. ठ. ‘सत० एकथा च
शंसत.

हे स्तोतारः सखायः मा अन्यत् किञ्चिदपि देवतान्तरं शंसत विवि-
धाभिः स्तुतिभिः । मा च रिपण्यत चेतमा मा गच्छतान्यदेवतान्तरम् ।
किं तर्हि । इन्द्रमेव वृषणं धरितारं स्तुत सखा सहभृताः एतस्मिन् सुते
सोमे । मुहुर्मुहुश्च हे होतारः उक्तानि च शंसत ।

५ 'क्रीलं वः शीर्षो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्रगायत' (ऋ०

सं० १ । ३७ । १) ॥ कण्वस्ययमार्यम् । क्रीलिनस्य हविषा याग्या
(मैत्रा० सं० १ । १० । १ ॥ १ । १० । १६ ॥ ४ । १० । ५ ॥
मान० श्रौ० १ । ७ । ५ । ३१) । शत्रुनपि दृष्ट्वा यत्क्रीडनशीलमे-

१० भिप्रायः । रथेशुभं रथैस्थितं शोभिष्टं हे कण्वा मेधाविन ऋषिज एतत्
अभिप्रगायत । एतद्वा ब्रवीमि ।

'उप प्रेतै' कुशिकाश्चतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः । राजा वृत्रं
जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाने वर आ पृथिव्याः' (ऋ० सं० ३ ।

५३ । ११) ॥ विश्वामित्रस्ययमार्यम् । हे कुशिकाः स्तुतिक्रोष्टार ऋषिजः
५५ उपप्रोगच्छत । चेतयध्वं विजानीध्वमेतद्यथैप राजा वृत्रं शत्रुं जङ्घनत् हत-
वान् सर्वासु दिक्षु । अथ एत्रं सर्वहतामित्रो भूत्वा वरं श्रेष्ठे प्रदेशे पृथिव्याः
यजते । ते ययमेतद्विज्ञाय उपप्रगच्छत । उपप्रगय चैतमाश्वमेधिकमश्वं
मुञ्चत उत्मृजत विधानतः प्रोक्ष्याश्वमेधयागार्थं योऽयमेतस्मिन्सुदासे
कल्याणदानं यजमाने वर्तते ।

२० एवमेतेषु युष्मद्गुणप्रयोगेषु संबद्धाः स्तोतारः स्तोतव्यानि यानि देवता-
न्तराणि तानि परोक्षकृताभिसंबन्धीनीत्येवंलक्षणं मन्त्रजातमुपक्षितव्यम् ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'देवतान्तरं' नास्ति. २ घ. 'मा' नास्ति.
३ घ. झ. ट. ठ. ड. सुते सुते सोमे. ४ घ. ट. मुहु २ अ. ५ क. ख. च. ज.
घ. क्रीलं; ग. क्रीलं वः । क-व'. ६ घ. झ. ट. ठ. शार्शो० प्र गापत. ७ ट.
६५ ठ. ड. क्रीलिनस्य. ८ ग. क्रीडिनशीलनमेव; घ. झ. ठ. क्रीलनशी लमेव; ज.
क्रीडिनशीलनमेव; च. क्रीडिनशीलि [ल] नमेव; ट. क्रीलिनशीलमेव; ठ. ड.
क्रीलनशीलमेव. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड 'कचित्' नास्ति १० क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. रथोस्थितं. ११ ग. धेत० । विश्वा; घ. झ. ट. प्रेत कुशिका० वर
आ०. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड उपगय; च. उपप्रोग प्र. १३ न. ड.
यागय । राये धनाप । यो (अथ 'राये धनाय') ट. पुस्तके प्रान्ते लिखितम्. १४ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. व्यानि तु यानि. १५ क. ख. घ. झ. ट. उ. ड. 'इति'
१२ नानि.

‘अथाध्यात्मिक्यः’ । उक्तमेव पुरुषेण या ऋचो युक्तास्ता आध्यात्मिक्यः ।
 ‘अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना’ या युक्ताः ताश्चा-
 आध्यात्मिकी- ध्यात्मिक्यः । अत्रापि यत्राहमित्येतत्सर्वनाम श्रूयते
 नामृचां लक्षणम् तत्राविद्यमानमर्थु तमपुरुषसंबन्धमाख्यातपदमध्याह-
 र्त्तव्यम् । यत्र चोक्तमपुरुषसंबन्धमाख्यातपदं श्रूयते
 तत्राविद्यमानमप्यहमित्येतत्सर्वनामाध्याहर्त्तव्यं संबन्धि शब्दत्वादनर्थाः ।

‘यथैतत्’ उदाहरणत्रयमाध्यात्मिकम् । इन्द्रो वैकुण्ठमिति’ एव-
 मादि एवमप्यन्येऽप्याध्यात्मिका मन्त्रा उपेक्षितव्याः ।

विकुण्ठा नामामुरी बभूव । तस्याः किल तपसः प्रभाषेणापत्यत्वमिन्द्र
 आजगाम । वैकुण्ठो नाम बभूव । तस्याः मन्त्रुतिभिर्युक्तो जेवमादि ब्रह्म प्रादुरभूत् ।
 ‘अहं भुवः’ वसुनः पूर्वस्पातिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः । मां हवन्ते

पितरं न जन्तयोऽहं दाशुपे त्रिभजामि भोजनम्’
 वैकुण्ठनाम्न इन्द्रस्य (ऋ० सं० १० । ४८ । १) ॥ अहम् एव
 सुक्ते प्रथमा ऋक् अर्भुवं वसुनो धनस्य पूर्व्यः प्रथमः पतिः ।
 किंच । सांप्रतमप्यहमेव पतिः । अहमेव च शत्रुस्यः सकाशात्साम्नानि
 धनानि जयामि शश्वतो नियकालमेव । किंच । मामेव हवन्ते आह्वयन्ति
 पितरं न पितरमिव तासु तास्वानिषु जन्तवो मनुष्याः । किंच । अहमेव
 दाशुपे दत्तवते हत्रीपि यजमानाय त्रिभजामि यथाहं भोजनम् । धनमित्यर्थः ।

‘इति वा इति मे मनो गामश्च मनुयामिति । कुत्रिसोमस्यापामिति’
 लवसुक्तस्था (ऋ० सं० १० । ११९ । १) ॥ लवसुक्ते
 स एव लवो प्रवीति । एवं चयं च मे मनो वाने ।
 आह । कथमिति । उच्यते । गामश्च गां वा अश्वं वा सनुयां संभोजयमेतीन्

१ क. ख. ग. ज. घ. ङ. ट. ठ. ड. ‘त्तिक्य उक्तमपुरुषयोगः । उक्त’; च.
 ‘त्तिक्यः । उक्त’ उक्तमपुरुषयोगः । २ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. ‘मपि हतु’.
 ३ ग. ज. ‘संबन्धा’; च. संबन्धना’ बद्ध. ४ ग. ज. वक्त’; च. वक्त’ चो. २५
 ५ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. ध्यात्मिक्यः. ६ क. ख. ग. ‘नयोः । २ । यथे’. ७
 क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. स वैकु’; ८ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. ‘स्तुतिसंयुक्त’.
 ९ घ. ङ. ट. ठ. ड. भृद्विष्यन्तरं ण्डतपतिः १० ग. मी० । अहमेवामुव’;
 ज. भुं यजमानस्य० । अहमसामव’; घ. ङ. ट. ठ. भुं वपुः० त्रि भजामि’.
 २ ग. अभुम्’; च. अभुं० भू ३ च. ‘च’ नास्ति ४ ग. वा० । लव’, घ. ङ.
 ट. वा इति० स्यापामिति. १४ घ. लवसु’ १५ ग. घ. ङ. लवो. १६ क.
 ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. चान्वं च स’; च. चान्वं वा’ चान्वं च. १७ क. ख. घ.
 ङ. ट. ठ. ड. ‘मतां’; च. ‘मेतां’ वा.

यजमानानिति । अथैवमतितरां प्रन्युपकाराभिप्राये सति किमर्थं ब्रूते ।
कुर्वित् बहु अहं सोमस्यापामिति ।

‘ अहं रुद्रं भिर्वसुं भिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः । अहं मित्रा-

वारांम्भृणीसुक्तस्था

वरुणोभा भिर्मर्माहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ’

५

वारांम्भृण्या
आध्यात्मिकी ऋक्

(ऋ० सं १० । १२५ । १) ॥ वागांम्भृणीये

वागेव ब्रवीति । अहम् एव रुद्रैः वसुभिः

आदित्यैः विश्वैश्च देवैः सहभृता चरामि^३ ।

स्तुतिरूपेण अहमेव मित्रावरुणौ उभावपि

इन्द्राग्नी अश्विनौ च उभावपि विमर्भि हविषा । मत्पूर्वकं हविः-

१० संप्रदानं सर्वदेवताभ्य इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताश्च मन्त्रा भूयिष्ठा अल्पश आध्यात्मिका
अथापि स्तुतिरेव भवति नाशीर्वाद इन्द्रस्य नु शीर्याणि म बोच-

१५

मिति यथैतस्मिन्सूक्तेऽधाप्याशीरेव न स्तुतिः ‘सुचक्षा अहमक्षीभ्यां

भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति’ (मान० गृ० १।९।

२५।) तदेतद्बहुलमाध्वर्यवे याज्ञेषु च मन्त्रेष्वथापि शपथाभिशापौ ।

अद्या मुंरीय यदि यातुधानो अस्मि । अथा स वीरैर्दशभिर्वियु-

या इत्यथापि कस्यचिद्भावस्याचिरव्यासा । न मृत्युशंसीदमृतं

न तर्हि । तम आसीत्तमसा गूर्हळमग्रे । अथापि परिदेवना

२०

कस्माच्चिद्भावात् । सुदेवो अत्र प्रपतेदनावृत् । न विजानामि

यदि वेदमस्मीत्यथापि निन्दाप्रशंसे । केवलाद्यो भवति केवलादी ।

भोजस्येदं पुष्करिणीव येऽमेत्येवमक्षसूक्ते श्रूतनिन्दा च कृपिप्रशंसा

चैवमुच्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति ॥ ३ ॥

१ ग. रुद्रैभिः । वागा°; व. झ. ट. ठ. रुद्रैभिः ० मन्विनोभा. २ च. °म्भृणीये.

३ क. ख. व. झ. ट. ठ. ह. चरामि स्तनिरूपेण । अःमे°. ४ ठ. ड. °प्रायः ।

इति तिरुक्कवृत्ती उत्तरपटके (इ. तिरुक्कोत्तरपटके) प्रथमाध्याये आदितः सप्तमे

(ड. ‘ आदिनः सप्तमे ’ नास्ति) द्वितीयः खण्डः । २१ (ड. ‘ २ ’ नास्ति).

२९

५ छ. त. थ. द. °स्मि मू°. ६ क. ख. छ. त. द. गूर्हळम°.

‘परोक्षकृताश्च प्रत्यक्षकृताश्च मन्त्रा भूयिष्ठाः’ । शास्त्रान्तरेषु बहवः ।
आध्यात्मिका मन्त्राः
‘अल्पज्ञः’ क्वचित् क्वचित् ‘आध्यात्मिकाः’
लक्ष्यन्ते । आत्मानमेव स्तोतव्यमधिकृत्य येऽभि-
व्यक्तास्त इह शास्त्रे आध्यात्मिका उच्यन्ते ।

‘अथापि’ क्वचित् ‘स्तुतिरेव भवति नाशीर्वादः’ । तत्र पुनराशी- ५
र्योज्या । किं कारणम् । आशिषो ह्यर्थे स्तुतिः
स्तुतिपरेषु मन्त्रेष्वशी- प्रयुज्यते । आह । किमुदाहरणमिति । उच्यते ।
र्योज्या
‘इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवाचमिति यथैतस्मिन्सुक्ते’
(ऋ० सं० १ । ३२ । १) । अत्र हि स्तुतिरेव

श्रूयते नाशीः । सा पुनर्योज्येति प्रतिपादितम् । ‘अथापि’ क्वचित् १०
‘आशीरेव न स्तुतिः’ । तद्यथा । ‘सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासमिति’ ।

आशिष आध्वर्यवे ‘तदेतत्’ एतलक्षणं मन्त्रज्ञातम् ‘आध्वर्यवे’
बहुला यज्ञेषु च मन्त्रेषु वेदे ‘बहुलं’ प्रायेण पठ्यते । ‘याज्ञेषु च मन्त्रेषु’
कर्मकरणेषु । इतरथोरपि वेदयोरिष्टाशीरेव भवति
न स्तुतिरेव केवला । यत्राप्याशीरेवं केवला तत्रापि तस्यार्थस्य या देव- १५
तेष्ट तस्याः स्तुतिर्योज्या । किं कारणम् । न ह्यनभिष्टता देवताशिषं समर्धयति ।

‘अथापि शपथाभिशापौ’ भवतः । ‘अद्या मुरीय’ इत्येकमुदाहरणं द्वयो-
रपि । वसिष्ठः किल राक्षसस्त्रमित्यभियुक्तः ।
शपथाभिशापौ सोऽनयचा शपथं प्रतिषेदे परं चाभिशाप ।

‘अद्या मुरीयै यदि यातुधानो अस्मि यदि वार्युस्ततप पुरुषस्य । २०
अथा स वारैर्दशभिर्भि य्यूया यो मा मोघं यातु-
वसिष्ठोऽनृतशंस- धानेत्याह’ (ऋ० सं० ७ । १०४ । १५) ॥

मभिशापति अशेवाहं म्रिये यदि यातुधानः स्याम् । यदि वा
आयुः ततप तप्तधानहं कस्यचिदपि पुरुषस्य
पुरुषस्य । अथ पुनरयानुधानमेव मां सन्तं यो मोघमनृतं यातुधानस्त्वमि- २५
त्येवमाह स वारैः पुत्रैः दशभिः वियुर्थाः । वियुज्यतामित्याभिशापः ।

१ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘क्वचित्’ सङ्कदेव. २ ग. च. °तस्मिन्सु°,
ज. °तस्मिन्सु°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वृश्यते. ४ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. देवतेष्टा. ५ ग. मुरीयै. अथा°; घ. झ. ट. ठ. मुरीय यदि > यातुधाने°. ६
क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘पुरुषस्य’ नास्ति; च. पूरुषस्य. ७ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. °यूयाः वियूयात् वियु°; च. ‘यूयाः > वियु° वियूयात्. ३१

‘ अथापि कस्यचिद्भावस्थीचिख्यासा ’ मन्त्रेषु भवति । अथापि कस्य-
चिदर्थस्याचिख्यासा मन्त्रेषु भवति । ‘ न मृत्युर्गंसीदमृतं न तर्हि न रात्र्या
अहं आर्मात्प्रकेतः । आनीदवातं स्वधया तदेकं
केपुचिद्भावस्थनम् । तस्मान्द्वान्यन्न परः किं चनासं ’ (ऋ० सं०

- ५ १० । १२९ । ३२) ॥ प्रजापतेः परमेष्ठिन आर्षम् । तम आसी-
दित्यं चै (ऋ० सं० १० । १२९ । ३) । प्रागुत्पत्तेरस्य जगतो नापि
मृत्युरित्यं व्यपदेश आसीन्मृत्युस्थाभावात् । न अपि अमृतम् इत्यं व्यपदेश
आसीन्मृत्योरभावान्देव । इतरेतरापेक्षया हि मृत्युश्चामृतं च व्यपदिश्यते । न
एव रात्र्याः प्रज्ञानम आर्मात् इयं रात्रिरिति । नापि अहः । एते अपि ह्यहो-
१० रात्रे यतो भगवतो विवस्वत् उदयास्तमयाभ्यामुपलक्ष्येते तदभावे ह्येतौ अपि
नास्तामित्येतद्गुणपद्यते । आह । अथ किम सीदिति । उच्यते । अविशिष्टमप्र-
ज्ञातम् एकम् एव सर्वशक्तिमद्ब्रह्मासीत् । तत्कार्यकारणाभावात् अवातम्
अनिति । प्राणितीत्यर्थः । सति हि कार्यकारणभावे परमात्मनि या प्राणन-
शक्तिः सा पञ्चधा भिद्यमाना प्राणापानादिभावमापद्यते । तदभावे न
१५ वातोऽस्तीत्यवातमनिसीत्युपपद्यते । स्वधया अन्नेन । तस्मिन्नेव पर-
मात्मनि यावत्शक्तिस्तथा निर्मितभूतया प्राणितीत्यवशिष्यते तद् ब्रह्म ।
आह । किमन्यदपि ततः परस्तात्किंचिदासीदिति । नेत्युच्यते । तस्मा-
द्द्वान्यन्न परः परस्तात्काचदप्यासात् । इदमत्र तावदातक्रान्तसर्वविशेष
ब्रह्म व्यपदेष्टुमशक्यम् । अतोऽपि परस्तात्किमन्यद्ब्रविष्यतीत्यभिप्रायः ।
द्वितीयमुदाहरणमाचिख्यासायामेव । ‘ तम आसीत्तमसा गृह्णन्मेष्टप्र-
केतं मल्लिं सर्वमा इदम् । तुच्छेयनाम्बपिहितं
भावाचिख्यासायां यदासीत्तमस्तन्महिनाजायतैकम् ’ (ऋ० सं०
द्वितीयमुदाहरणम् १० । १२९ । ३) ॥ तम आसीत् अन्धेनैव
तमसा निगृहम् अविशिष्टम् अप्रज्ञातम् अग्रे । प्राक् सृष्टेरित्यर्थः ।

- २५ १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘द्भावस्य कस्यचिदर्थस्याचख्यासा मन्त्रेषु
भवति । न मृत्युः’ २ च. मन्त्रेषु भवति. ३ ग. ‘रात्रिर्’ ० । प्रजा°; घ. झ. ट.
ठ. ‘रासीदं किं चनास. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. च । त्रिष्टुप् । भाववृत्तम् ।
तर्हि प्रागु°’ ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘नापि’ नास्ति. ५ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. नासीत्. ६ घ. ट. ठ. ह्यनं; च. ह्यंतं° ने. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
‘ इति ’ नास्ति. ८ ग. आसीत्° । तमः°; घ. झं. ट. ठ. आसीत्तमसा°
३१ महि° ९ च. गृहम्°.

तदा हि न द्रष्टा न दर्शनं नापि दृश्योऽर्थ आसीदित्यभिप्रायः । सांख्यास्तु प्रधीनं तमःशब्देनोपादानमुच्यमानमिच्छन्ति । ते हि पारमार्थ्यं सूत्रमधीयते । ' तम एव खल्विदमग्रं आसीत्सिर्मिस्तमसि क्षेत्रज्ञ एव प्रथमोऽध्वैवर्तत ' इति । सखिलं सद्भावे लीनं सर्वविदं जगत्सन्मात्रस्यैव भावस्योपरि लीनमासीत् । तुच्छैवेन सूक्ष्मभूतेन पटमण्डपस्थानीयेन कर्मणा यदपिहितम् इव जगत् आसीत् सर्गकालोपक्षि तदिदमर्नादित्वा संसारस्य तपसः तस्यैव कर्मणो महिना महिष्वा मौहाभागेन कारणावस्थायाम् एकम् अपि सद् अनेकधा उगस्थिते सर्गकाले प्रतिनियतकर्मोपभोगार्थम् अजायत इति ।

‘ अथापि परिदेवना कस्माच्चिद्भावात् ’ । ‘ सुदेवो अथ प्रपतेदना-
परिदेवना वृत् न विजानामि यदि वेदमस्मीति ’ एते उदाहरण ।

‘ सुदेवो अथ प्रपतेदनाच्छ्रावते परमां गन्तव्या उ । अधा शयीत निधेः रूपस्थेऽथैनं वृका रमसासो अयुः ’
पुरूरवसः प्रिया- (ऋ० सं० १० । ९.५ । १४) ॥ पुरूरवस
विशुक्तस्य परिदेवना अर्षम् । स शोभनो देवः स्यात् योऽथ तथा । प्रथया विशुक्त उच्यथा भृगुप्रपातम् अनावर्तमानः

प्रपतेत् । पतितश्च दृग्दृग्दर्शनं गच्छेत् । अथ गत्वा शयीत मृतः सन् निर्ऋतेः भूमिः उपस्थे उपरि । अथैनं तामवस्थाभाषणं वृकाः विकर्तिता- रक्षं सृगालादयः रमसाः रमसास्तो वेगवन्तः अयुः भक्षयेयुः । नाहं

१ घ. इ. ट. ठ. ड तमःशब्देन प्रथमानमुभा . २ ग. ज. पारमार्थ्यं; घ. झ. ठ. परमार्थ्यपुत्रं; ट. परमार्थ्यं पारमार्थ्यं. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. मये; च. मद्यं घे. ४ ग. तस्मिन्नामसि; च. ज. तस्मिन्नामसि. ५ ग. ज. मां वावर्त इति. ६ घ. ट. तुच्छयानेन; झ. तुच्छेन. ७ ट. ड. कर्मणा 'आमन्नाज्जवतीत्यायुः अज्ञानं' । यद् (' ' चिद्धस्थाः रुद्राः सत्यणभाष्यं ब्रह्मताः ट. प्रत्यकप्रान्तभाष्ये लिख्यन्ते). ८ क. ख. ठ. तमनादि; च. 'नादित्वा'; म. ड. 'तदमनादि'. ९ च. ज. महाभा. १० ग. सुदेवा० । पुल्ले; च. सुदेवः । पुरू. ११ घ. ट. 'पतेत्' रमसा. १२ क. ख. घ. ट. ठ. इ. आर्षम् । त्रिष्टुप् । परिदेवना । सुदेवः स; च. आर्षम् । १३ सुदेवः. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यो ह्यनया पि; च. यो- यै तैया ह्यन. १४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. जवेस्या विशुक्तः. १५ क. ख. घ. झ. ट. 'मानोऽथ प्रप'; च. मानः १ प्री अय; ठ. ड. 'मानोऽथ प्रप'. १६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तारः श्वग्रामा'.

मुदेवः किंतु स मुदेवः स्याद्यैः प्रियाविद्युक्त एतामवस्थामाप्नुयादित्येवमेवा
पारिदेवर्ना ।

‘ न वि जानामि यदिवेदमस्मि निष्पद्यः संनद्धो मनसा चरामि । यदा
मार्गप्रथमजा ऋतस्यदिद्धाचो अश्रुत्रे भागमस्याः ’ (ऋ० सं० १ ।

५

१६४ । ३७) ॥ दीर्वितमस ईयमार्षम् ।

जीवात्मना द्वैता- अस्थवामीथ । न पतदह इवस्पष्ट जानाम
द्वैतविषये संशयः यदि वेदमस्मि कारणं परं ब्रह्माख्यम् अथ-
वा इदं तत्कार्यं द्वैतमस्मीति । अनयोः कार्यका-
रणयोर्द्वैताद्वैतयोरन्तरा वर्तमानो निष्पद्यः अन्तर्हितोऽविद्यया संनद्ध-

१०

श्चानेकैः संदेहप्रन्थिभिः मनसा उभे अपि द्वैताद्वैते चरामि । गच्छामी-
त्यर्थः । एवं सति यदा मा आगन् मामागच्छेत् प्रथमजा बुद्धिः । सा
हि सर्वेन्द्रियेभ्यः प्रथमं जायते । ऋतस्य भगवत आदित्यस्य स्वभूता ।
तस्य हि प्रकृष्टा बुद्धिः प्रहीणसर्वसंशया । तया सर्वमिदमसंशयं परिज्ञाय

१५

किमहं कारणसत्त्वं उत वा द्वैतसत्त्वं इति । ततः अस्याः कृत्स्नप्रज्ञा-
ताया वाचो भागम् अहम् अश्रुयाम् । यदियं कृत्स्ना वागभिवदति
तत्सर्वमहमाप्नुयामित्यर्थः । एवमयमात्मनिन्दापूर्वको विलापः पारिदेवनेत्यु-
च्यते । यदि नामैवं स्यात्साधु स्यादिति ।

२०

‘ अथापि ’ मन्त्रेषु ‘ निन्दाप्रशंसे ’ भवतः । तद्यथा ‘ केवलाद्यो
भवति केवलादी भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्मेति ’
निन्दाप्रशंस एते उदाहरणे ।

‘ मोघमन्त्रं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य । नार्थमगं
पुष्यति नो सखीयं केवलाद्यो भवति केवलादी ’
अन्नमददतो निन्दा (ऋ० सं० १० । ११७ । ६) ॥ भिक्षोरा-

ङ्गिरसस्येयमार्षम् । मोघं वितथम् अन्नं विन्दते प्राप्नोति । आह । क

२५

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘दुर्गा यत्तया (ठ. ड. यत्तया) वि’ . २ क.
ख. ‘देवना । संशयोत्थापनम् । न° . ३ ग. जानामि । दीर्वि° ; घ. झ. ट. ठ.
जानामि यदि ° अश्रुत्रे° ; च. जानामि ! दीर्वि° . ४ क. ख. ‘तमस आर्षम् ।
अस्य° ; घ. झ. ट. ठ. ड. ‘तमस आर्षम् । संशयोत्थापनम् ।
त्रिष्टुप् । अस्य° . ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ वा ’ नास्ति. ६ घ. झ. ट.
ड. ‘ अहं ’ नास्ति; ट. भागं ~ अश्रु° अहं . ७ ग. ‘रणे । मोघ° . ८ ग. ज.
°मन्त्रं । भिक्षो° ; घ. झ. ट. ‘मन्त्रं केवलादी . ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.

३२

भिक्षुर्नामाङ्गिरसस्तस्येयमार्षम् । त्रिष्टुप् । अददतो (उ. ड. अदात्) निन्दा । मोघ° .

इति । उच्यते । यः अप्रचेताः अप्रद्विज्ञानः । सत्यम् अहं ब्रवीमि वध
इस तस्य । वध एव सोऽन्नलाभस्तस्य । वरमलम्बं तेनान्नमित्यभिप्रायः ।
किं पुनः कारणं मोघमसावन्नं विन्दते^१ इति । उच्यते । न असौ अर्थमणम्
आदित्यं पुष्पति नापि सखायं समानख्यानं मनुष्यम् । न देवान् पुष्पाति
नै मनुष्यामित्यभिप्रायः । यत्र एवमतः केवलाघो भवति स केवलादी ।
आत्मवैत्र केवलं योऽन्नमसि न देवपितृमनुष्येभ्यो ददाति स केवलमघमेव
प्राप्नोति । तदुक्तमन्यत्रापि ' भुञ्जते ते त्विधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् '
(भग० ३ । १३) इति । तस्माद्ब्रह्म एव स तस्यान्नलाभ इत्युपपद्यते ।
न ह्यसत्यज्ञे प्रत्यवेयादददन्नमित्यभिप्रायः । अन्नसंयोग एव ह्यत्र वधोऽ-
भिप्रेतः ।

५

१०

केचित्स्वेनमनध्यात्मविदमप्रचेतमं मन्यन्ते । स हास्मिच्छरीरे विवक्षितः ।
केषांचिन्मते आध्या- नार्यमणम् आदित्यान्तरपूरुषं भोक्तारं पश्यति
स्मिक्तीयमृक् नापि सखायं प्राणं वायुम् । स हि भुष्यमानेऽन्ने
करणभावं पुष्पातीति सखा । केवलं त्वसाववि-
द्वानात्मानमेव भोक्तारमत्र पश्यति । अतः स केवलाघो भवति । यदि हि स
देवताः पश्येदेवता अन्नभोक्त्राः स हि तत्र भुक्तन न केवलघः स्यादिति ।

१५

' भोजार्याश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजार्यास्ते कन्या ३ शुभमनाः । भोज-
भोजेन इत्ताया दक्षि- स्पदं पुष्करिणीं च वैश्वं परिष्कृतं देवमानेवं
चित्रम् ' (ऋ० सं० १० । १०७ । १०) ॥
णायाः प्रशंसा दक्षिणा नाम प्रजापतेर्दृष्टिवा । तथा मृक्तमात्मनः
स्तुतिमं बद्धं दृष्टम् । तत्रैषा जगती । भोजाय राश्वे
अश्वम् आशुं शीघ्रं संमृजन्ति संगार्जयन्ति स्नापयन्ति भृत्याः । किंच ।

२०

१ च. विन्दते^१ ते. २ क. ख. घ झ ट. ठ. ड. नापि. ३ ट त्विधं^२ ह्य.
४ क. ख. घ. झ. ट. 'स्मिन् शरी'; ग. च. ज. 'स्मिच्छरी'; ठ. ड. 'स्मिच्छरी'.
५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'न्तरपूरुषं. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. प्राणवायुं;
च. प्राणवायुं ण. ७ ग. ज. देवता अन्नभोक्त्राः स हि नास्ति. ८ ग. 'याश्वं'
दं; घ. झ. ट. ठ. याश्वं मृजन्त्याशुं देव'. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. जगती
(क. ख. त्रिष्टुप्) । दातृप्रशंसा; भो; च. जगती ~ भो; दातृप्रशंसा. १० च.
'र्जयन्ति भृत्याः स्नापयन्ति.

२९

भोजाय उद्धहनार्थमन्यान्वरानपास्य स्वलङ्कृता शोभमाना कन्या आस्ते । स
हि तामर्हतीत्यभिप्रायः । किञ्च । भोजस्य इदं वेश्म गृहं परिष्कृतं संस्कृतं
पुष्करिणीव पुष्परैर्देवतं विमानमिव चित्रम् । चायनीयमित्यर्थः । तदेत-
त्सर्वमध्यस्य जन्मन्तरप्रतिविशिष्टदक्षिणाराहितत्कार्मणोऽन्येभ्यः कर्मभ्यः
५ सकाशात्कलातिरेकप्रमित्येवमेवा दक्षिणाप्रशंसा ।

यथैवमिह मन्त्रद्वये निन्दा च प्रशंसा च ' एवमक्षसूक्ते वृत्तिनिन्दा च
कृपिप्रशंसा च ' भवतीति विषयोपप्रदर्शनार्थमाह ।

' अक्षैर्मा दीव्यैः कृपिमिःकृपस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः । तत्र

१० गात्रं कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवि-
वृत्तिनिन्दा कृपि- तायमर्थः ' (ऋ० सं० १० । ३४ । १३) ॥

प्रशंसा च मूजवान्नामाक्षपुत्रस्तथेयमोर्षम् । अक्षैर्मादीव्यः
इत्यक्षदेवनप्रतिपेधः । तत्र हि बहवोऽनर्थाः

सन्ति । कृपिमिःकृपस्वेति कृपिधिधानम् । तस्यां बहवो गुणाः
सन्ति । वित्ते रमस्व । स्वल् एतेपार्जिते बहु एतदेवेति मन्यमानो मा

१५ वित्तलोभेन दीव्यः । निजमपि वित्तं हारयिष्यसि । कृपि पुनरेतस्मात्का-
रणत्कृपस्व । हे कितव तत्र तस्यां कृषौ गतवः सन्ति । तस्यां च
जाया । तत्पुनर्ममैतत्तायिता देवः अर्थः ईश्वरः श्रुतिस्मृत्यनुशासनद्वारेण
विविधमनेकप्रकारम् आचष्ट । उभ आप हीम श्रांतस्मृत्तं मन्त्राद्द्वारगा-
दित्यान्तरपुरुषप्रभवे एव । अत इदमुक्तं सर्वत्रैव ममैवं विचष्ट इति ।

२० ' एवम् ' अनेन प्रशारेण ' उच्चावचैरभिप्रायैः ' बहुभिः अथवा
प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यमैः मन्त्राभिव्यक्तिनिदानभूतैः ' ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो '
मन्त्रदर्शनानि ' भवन्ति ' । विद्यमानानामेव मन्त्राग्राभृत्प्रयो येन केनचि-

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' तिरेकम्' . २ क. ग. घ. झ. ट. ठ. ड.
' च ' नास्ति. ३ ग. दीव्यै. । म् ; घ. झ. ट. दीव्यः ० सविता°. ४ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. ' मारिन् । त्रिष्टुप् । अक्षै°. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
तस्यां हि व'. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तत्पुनरेतन्वम भवि' (ठ. ड. ' तत् '
नास्ति), ७ क. ख. घ. झ. ट. ' तैर्वे मन्यव वि'; घ. ' तैर्वे मे' येतन्म. ८ क.

२८ ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' मव हि म'; घ. ' मव / म' हि.

निमित्तेन निदानभूतेन हर्षशोकनिन्दाप्रशंसादिना मन्त्राणां द्रष्टारो भवन्ति
 न तु कर्तार इत्यभिप्रायः । तदुपार्पानुक्रमणं
 अनादिमन्त्राणाम्- निदानमार्पं चोभयमुपेक्षितव्यम् । परिज्ञातार्प-
 षयो द्रष्टारो न तु निदानो हि मुखमनेकविषयं मन्त्रार्थमवबोद्धुं
 कर्तारः शक्नोति । तदेतदिह लक्षणोद्देशतो भाष्यकारेण ५
 प्रदर्शितम् ॥ ३ ॥

तद्येऽनादिपृष्ठदेवता मन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा यद्देवतः स यज्ञो
 वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्त्यथान्यत्र यज्ञात्प्राजापत्या इति
 याज्ञिका नाराशंसा इति निरुक्ता अपि वा सा कामदेवता स्यात्प्रा- १०
 योदेवता वास्ति ह्याचारो बहुलं लोके देवदेवत्वमतिथिदेवत्यं पितृ-
 देवत्यं याज्ञदैवतो मन्त्र इत्यपि ह्यदेवता देवतावत्स्तूयन्ते यथा-
 श्वप्रभृतीन्योपधिपर्यन्तान्वंथाप्यष्टौ द्वन्द्वानि (निघ० ५ । ३ ।
 २९—३६) । स न मन्येतागन्तुनिवार्थान्देवतानां प्रत्यक्षदृश्य-
 मेतद्भवति माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयत एक- १५
 स्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्त्यपि च सत्त्वानां प्रकृतिर्भूम-
 भिरुपपन्नैः स्तुवन्तीत्याहुः प्रकृतिसार्वनाम्न्यैश्चेतरेतरजन्मानो भवन्ती-
 तरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मान आत्मैवैषां रथो भवत्या-
 त्माश्वीं आत्मायुधमाग्नेपत्र आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य ॥ ४ ॥

२०

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. निन्दाहर्षशोकप्रशंसा. २ च. सुवेमं ख. ३ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. शक्नोति. ४ ठ. ड. ३ (ठ. ' ३ ' नास्ति) निरु-
 क्तवृत्तौ उत्तरपटके (ड. निरुक्तोत्तरपट्कभाष्ये) प्रथमाध्याये तृतीयः खण्डः.
 ५ क. ख. छ. त. द. 'न्तानि । ४ । अथा'. ६ छ. थ. ध. ड. 'वार्था देव';
 ठ. 'वार्थादेव'; त. द. 'वार्थानां देव'. ७ ठ. ड. 'वन्ति अपि'. ८ त. 'तिर्भूम'.
 ९ क. ख. ड. थ. ध. ड. 'नाम्न्याश्चै'; त. 'नाम्न्याश्चै' म्या. १० क. ख. छ.
 त. द. 'त्नाश्व आ'. ११ क. ख. देवस्य । ५ । इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः
 पादः; छ. त. द. ५.

‘ तद्येऽनादिष्टदेवता मन्त्राः ’ । इहैतदुक्तम् । ‘ यत्काम ऋषिर्धियां
देवतायामार्थपथमिच्छेन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदैवतः स
अनादिष्टदेवतेषु मन्त्रो भवति ’ इति । तदेतत्प्रकटदेवतालक्ष-
मन्त्रेषु देवतोपपरीक्षा णेषु मन्त्रेषु मन्त्रदेवतालक्षणमुपपद्यते । ये त्वना-
दिष्टदेवतालिङ्गा मन्त्रास्तेषु देवता कथमन्वेष्येति
तदेतद्विचार्यत इत्युपयुक्तस्तच्छब्दः । येऽनादिष्टदेवतालिङ्गा मन्त्राः ‘ तेषु ’
देवताया अतः परं परीक्षा उपपत्तितो भविष्यतीति वाक्यशेषः ।

‘ यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्ति । यद्देवतः स यज्ञो
यस्मिन्यज्ञे तेऽनाविष्कृतदेवतालिङ्गा मन्त्रा विनि-
यज्ञप्रकरणाद्यज्ञा- युञ्जन्ते तद्देवता एव हि ते भवन्ति । तद्यथा ।
ङ्गप्रकरणाद्वा देवता- ‘ आग्नेयोऽग्निष्टेःमः ’ इति श्रूयते । तत्र योऽना-
निर्णयः विष्कृतदेवतालिङ्गो मन्त्रः स्यात्स आग्नेय एव
स्थात् । प्रकरणाद्धि संदिग्धदेवतेषु देवतानियम
इति न्यायः । ‘ यज्ञाङ्गं वा ’ । प्रातःसवने यो विनियुज्यते स आग्नेयो
यो माध्यन्दिने स ऐन्द्रस्तृतीयसवने यः स आदित्यः । आह । अथान्यत्र
यज्ञात् कथं मन्त्रेषु देवतापरिज्ञानमिति । अथ पुनरन्यत्र यज्ञाद्ये वर्तन्ते
येषामुत्सन्नः प्रयोगः । ‘ उत्सन्नयज्ञो वा एषः ’
यज्ञादन्यत्र प्राजा- (मैत्रा० सं० १ । ११ । ६ ॥ ४ । ३ ।
पत्या इति याज्ञिक- ३ ॥ तै० सं० ४ । ३ । ४) इत्युत्सन्नता-
मत्तम् मपि दर्शयत्येव ब्राह्मणम् । तेपृत्सन्नप्रकरणप्रयो-
गेषु वाचस्तोमप्रयोगविनियोगकल्पेषु ‘ किं ब्राह्म-
णस्य पितरं पृच्छसि किं त्वं मातरम् । श्रुतावेदास्मिन् वेद्यं स पितामहः ’
इत्यादिषु कथमन्वेष्या देवतेति । शृणु ‘ प्राजापत्याः ’ ते मन्त्राः ‘ इति

१ ग. च. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. °च्छंस्तु°. २ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड.
वर्तिष्पत इति°. ३ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. ऐन्द्रो यस्तृतीयसवने स°.

२६ ५ ग. ज. कल्पेषु कथमन्वेष्या°. ६ च. °किन्तु; ठ. ड. °किं मात°.

याञ्चिकाः' मन्यन्ते । किं कारणम् । ' अनिरुक्तो हि प्रजापतिः ' (मैत्रा० सं० ३ । ६ । ५) अनिरुक्तदेवताऽऽङ्गिणाश्च नाराशंसा इति मन्त्रा इत्येतस्मात्सामान्यात् । ' नाराशंसाः ' ते नैरुक्तमतम् इति ' नैरुक्ताः ' मन्यन्ते । नाराशंसोऽग्निर्धज्ञो वा । वक्ष्यति हि ' यज्ञ इति^३ कार्यकपोऽग्निरीति शाकपुणिः ' (निरु० ८ । ६) इति । यज्ञशब्देन च विष्णुरुच्यते । ' विष्णुर्वै यज्ञः ' (मैत्रा० सं० ४ । ३ । ७ ॥ ऐ० ब्रा० ३ । ४)

इति हि विज्ञायते । ' अग्निर्हि भृषिप्रभाग्देवतानाम् ' (मैत्रा० सं० ४ । ७ । ८) इति । अग्नोऽविष्णुतदेवताऽङ्गिणो मन्त्र आग्नेयः स्यात् । सर्वदेवताश्रयणाच्च ' अग्निर्वै सर्वा देवताः ' ' अत्र नै सर्वा वसति देवता' इति विज्ञायते । यस्मिन्नपि पक्षे नाराशंसो यज्ञस्त्वस्मिन्नपि पक्षे यज्ञप्रभवत्वादस्य जगता यज्ञस्य श्रेष्ठ्यम् । ' अपरिग्रहं च श्रेष्ठ्यामि ' इति न्यायः । केचित्तु येन नराः प्रशस्यन्ते स

नाराशंसशब्दस्य व्युत्पत्त्या अनारिष्कृतदेवता मन्त्रा मनुष्य- स्तुतिपरा इत्युक्तम् नाराशंसो मन्त्र इति हि पश्यन्तो मनुष्यस्तुत- यम् । इत्येवं मन्यन्ते । तदुक्तम् । न हि मनु- ष्याणामनारिष्कृतत्विज्ञैर्मन्त्रैः स्तुतिरूपपद्यो दुर्वो- ध्यत्वात्तत्पामलायुद्धिश्चाच्च मनुष्याणामिति ।

' अपि वा सा कामदेवता स्यात् ' । अपि वैवमन्यथा स्यात् । सा ऋद्ध स मन्त्रो योऽनारिष्कृतत्विज्ञः स कामदे- कामदेवता वा वतः स्यात् । कामतो हीच्छातस्तस्मिन्देवता कल्पयितव्येत्यभिप्रायः । किं कारणम् । गुणपद- मयो हि सः । न हि तत्र देवतामंत्रिज्ञानपदमन्यते देवताविशेषप्रख्याप- कमस्ति यतो विशेषात्कस्यांचिदेकस्यां देवतायामन्याभ्यो व्यावृत्त्यावतिष्ठेत । गुणपदानां च सर्वेषां सर्वदेवताश्रयणैर्वादेश्वर्ययोगात्सर्वसां देवतानामिति ।

१ ग. च. ज. नारा०. २ ट. ड. नाराशंसो यज्ञः. ३ ग. ज. इति ह कां; च. इति ह कां हि. ४ क. ख. उ. ड. कात्थक्यो; घ. झ. ट. कथक्यो; ग. कार्यक्यो; थ; ज. कार्यक्यो; च. कात्थक्यो. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ह. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति ह वि. ७ क. ख. ग. घ. ज. व. झ. ट. नारा०. ८ घ. झ. ट. ठ. ड. यज्ञश्रेष्ठ्यम्. ९ क. ख. घ. झ. ट. उ. ड. 'हि' नास्ति. १० ग. ज. चैव. ११ ट. ड. हीच्छा अतः. १२ ग. ज. 'ज्ञातप'; च. 'ज्ञातप' न. १३ ग. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तमद्वय .

५

१०

१५

२०

२५

३०

- ‘ प्रायोदेवता वा ’ तस्मिन्मन्त्रे स्यादिति वाक्यशेषः । प्राय इति
 प्रायोदेवता वा ह्याधिकार उच्यते । यद्देवताधिकारे ह्यध्ययनपाठा-
 नुक्रमे योऽनाविष्कृतदेवतालिङ्गो मन्त्रो भवति स
 तद्देवत एवेति बोद्धव्यम् । तद्यथा । अग्न्यधिकारे वर्तमाने आग्नेय एव
 मन्त्रो भवतीन्द्राधिकारे चैन्द्र एवेति । अथवा ।
 प्राय इति बाहुल्यमुच्यते । तद्यथा । अनृतप्रायो
 देवदत्त इत्युक्तेऽनृतबहुल इत्यवगम्यते । एव-
 मिहापि प्रायोदेवतेत्युक्ते बहुलदेवतेति स्यात् । किं कारणम् । ‘ अस्ति
 ह्याचारो बहुलं लोके ’ । अस्ति हीयं लोके बहु-
 लस्य भूयस्त्वेन प्रसिद्धिः । निर्दिष्टेभ्यो द्रव्येभ्यो
 यदन्यदवशिष्यते तत्साधारणम् । तद्यथा । कश्चिद्रूही निर्दिशतीदं मे ‘ देव
 देवस्य ’ द्रव्यमिदम् ‘ अतिथिदेवस्य ’ इदं ‘ पितृ
 देवस्य ’ इति । तत्रैवं निर्दिष्टे ततो राशेर्यदन्यद-
 वशिष्यते तद्देवपितृमनुष्याणां साधारणं भवति ।
- तथा च निर्घणकर्मणीदं देवानामिति निरुक्तमभिमृश्येदं नः सहेति शेष-
 मभिमृश्यते साधारणत्वप्रख्यापनार्थम् । एवमिहाप्यादिष्टदेवतालिङ्गान्मन्त्ररा-
 शेर्योऽन्योऽनाविष्कृतदेवतालिङ्गो मन्त्रराशिः स्यात्साधारण्यद्वद्देवतो विश्वे-
 देव एव स्यादिति । आह । कः पुनरेतस्मिन्विचारे निश्चयः । उच्यते ।
- याज्ञदेवतो मन्त्र इति निर्णयः । याज्ञदेवतो मन्त्रः ’ इति । योऽनाविष्कृतदे-
 वतालिङ्गो मन्त्रः स याज्ञो वा स्याद्देवतो वा ।
 ‘ विष्णुर्देव यज्ञः ’ इति हि विज्ञायते । विष्णुश्चै
- १ घ. ट. बोद्धव्यः; ठ. ड. बोद्धव्यः; २ घ. ट. अग्निधिका; ठ. अग्निरधि;
 ड. अग्नेराधि. ३ घ. झ. ट. ठ. ड. इत्येव ग. ४ च. बहुलास्य. ल. ५ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. ंरणं भवति । त. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इदं मे
 अति. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इदं मे पि. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 चरुनिर्व. ९ क. ख. घ. झ. ट. ड. देवताना; ट. देवताना वा. १० क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. मृशति सर्वसाधा; च. मृश्यति साधा ञति सर्व. ११ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. नादिष्टे. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स्यात्सर्वसाधारणत्वाद्; च.
 स्यात्सा त्सर्वसा. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वैश्वदेवः स्या; च. विश्व
 वै. १४ ग. ज. पुनरस्मि. १५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति नास्ति. १६ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ह. १७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. च नास्ति.

पुनरादित्य एव नैरुक्तानां युस्थाने समाम्नानात् (निघ० ५ । ६) ।

याज्ञ आदित्य- ' यच्च किञ्चित्प्रवृत्तमादित्यकर्मेव तत् ' (निरु० ७ । ११) इति दैव्याति ।
दवतः तस्मादादित्यदवतः स मन्त्र इति स्यात् ।

अथवा दैवतः स मन्त्रः । देवतास्मिन्देवतेति दैवतः । अविशिष्टं हि

दैवत आग्नेयः देवतात्वमग्नावेव सर्वदेवताभिवादात् । ' अग्निं सर्वा देवताः ' (काठ० सं० १० । १) ।

इति हि विज्ञायते । ' अग्निं देवतानां भूयिष्ठमाक् ' इति च । ' अगारि-
ग्रहं च प्रधानगामि ' इति न्यायः । तस्मादाग्नेयः स मन्त्रः स्यादिति ।
तद्यदुपोद्धात उक्तं ' नाराशंसा इति नैरुक्ताः ' तदेव कार्थक्य- १०
शाकपृष्णिमतेनावधृतं यज्ञोऽग्निर्वेति तौ हि नैरुक्ताविति ।

' यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्ति ' इत्येवमादीनामपरो

' यद्देवतः ' व्याख्यामार्गः । ' यद्देवतः स यज्ञः ' । यद्दे-
वतं प्रधानं हविः । तद्यथा । प्रकृतावैन्द्रं
इत्यादेरपरा व्याख्या तान्नाय्यं माहेन्द्रं वा (तै० सं० २ । ५ । १५
३—४) । तत्संस्कारपरा इषेत्वादयः (सर्वासु

यजुःसंहितासु) । तेऽनाविष्कृतदेवतालिङ्गा ऐन्द्रा एव भवन्ति माहेन्द्रा वा ।

यद्देवते वाधिकारे चोदकेन प्रदिश्यन्ते तद्देवता एव भवन्ति । तद्यथा ।

' कुविदङ्ग ' (ऋ० सं० १ । १३१ । २) इति प्रौजापत्यग्रहणे

विनियोगात्प्रौजापत्य एव भवति (मैत्रा० सं० १ । ११ । ४) । २०

' यज्ञाङ्गं वा ' इत्याचाराद्यभिप्रायेण । ' ऋभोऽसि शाकरः ' (मैत्रा०

सं० १ । १ । १२) इत्यनाविष्कृतदेवतालिङ्गः पूर्णस्त्रुवासादनमन्त्रः

स्त्रौवे विनियोगात् । तस्य च प्राजापत्यत्वात्प्रौजापत्यः ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' इति हि व° । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.

ह. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. नैरुक्ता इति तदे° । ४ ग. ज. कार्थक्य° । ५ ग.

ज. यद्देवतः । ६ ग. ज. प्रजा°; च. प्रौजा° प्रा. ७ ग. ज. प्रजा° । ८ ग. ज.

पूर्णः स्त्रुवासा°; च. पूर्णः स्त्रुवासा° वा. ९ च. प्रौजा° प्रा. १८

‘ अथान्यत्र यज्ञात् ’ । कान्यत्र यज्ञान्मन्त्राणां विनियोगः । उपाकर-
 ५ रणत्रक्षयज्ञजपप्रायश्चित्तेषु नैष्ठिकब्रह्मचारिणश्च ।
 ‘ अथान्यत्र यज्ञात् ’ इत्यस्य ‘ यो ह वा अधिदितार्पेयच्छन्दोदेवतब्राह्मणेन
 मन्त्रेण योजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वैच्छति
 र्गते वा पतति प्र वा मीयते यातयामान्यस्य
 छन्दांसि भवन्ति ’ (आर्पेयब्राह्मणम्) इति प्रत्यवायश्रवणात्सर्वत्रान्वेष्या
 देवतेत्यारब्धव्यमथान्यत्र यज्ञादिति ।

‘ प्राजापत्या इति याज्ञिकाः ’ । प्रजापतिस्तेषुपाकरणादिकर्मसूपास्य
 ‘ प्राजापत्या इति याज्ञिकाः ’ इति याज्ञिका मन्यन्ते स ह्यनिरुक्त इत्य-
 १० ‘ नाराशंसा इति नैरुक्ताः ’ निरुक्तासामान्यात् । ‘ नाराशंसा इति
 नैरुक्ताः ’ । सौर्या वा आग्नेया वेति ।
 ‘ आपे वा कामदेवता ’ ‘ अपि वा सा कामदेवता स्यात् ’ ।
 अनाविष्कृतदेवतात्किञ्चे मन्त्रे या विचार्यते देवता कास्मिन् देवता स्यादिति
 सा कामतः कल्प्या । इच्छात इत्यर्थः । गुणपदमयत्वात्तस्य । न मन्त्र-
 वाक्यसामर्थ्याद्देवता नियम्यते तत्र । किं तर्हि । प्रथोक्तुरिच्छासामर्थ्यात् ।
 १५ अथवा । प्रयोक्ता यत्कामस्तं मन्त्रं प्रयुङ्क्ते तस्य कामस्य या देवताधिप-
 तिर्स्तामेव तस्मिन्नभिसंदधीत । ‘ प्रायोदेवता वा ’ इति समानमेव पूर्वेषु ।

‘ अपि ह्यदेवता देवतावस्तूयन्ते ’ । ‘ यत्काम ऋषिर्यस्यां देवता-
 यामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते ’ इति मन्त्रदे-
 २० अदेवता देवता- वतालक्षणमुक्तम् । तदुपपद्येन देवतानामार्थ-
 वस्तूयन्ते पत्यसंबन्धात् । अनाविष्कृतदेवतेष्वपि संविज्ञा-
 तपदाभावात्कल्प्यते देवता कामस्याधिपतिरपि ।
 यत्र तु स्फुटमदेवता देवतावस्तूयन्ते ननु तत्रैतल्लक्षणं व्याह्रयते । तद्यथा ।
 ‘ अश्वप्रभृतीन्योपधिपर्यन्तानि ’ (निघ० ५ । ३) । एतस्मिन्वर्गं कानि-
 चित्सत्त्वानि कानिचिद् द्रव्याणि । अश्वरादीनि सत्त्वान्यश्वादीनि द्रव्याणि ।
 २५ तानि च पुनरासन्नमर्थं चेतयन्ते नातीतं नानागतमिति । आत्मनेऽपि च
 हिताहितं न प्रतिपद्यन्ते । तानि कथमभिष्टुतानि स्तोतुरभिमतस्यार्थस्य

१ क ख. ध. झ. ट. ठ. ड. यज्ञात्कर्मणो मन्त्रा°. २ च. वजति याज°.
 ३ ग. च. ज. वा पतति. ४ ग. ज. गर्तं वा पद्यति; च. गर्तं वा पतति.
 ५ ठ. ड. ‘ वा ’ नास्ति. ६ ग. च. ज. ‘ ताभेव ’ नास्ति. ७ ग. च. ज. घ.
 १० झ. ट. ठ. ड. ‘ मिच्छंस्तु°. ८ ग. ‘ न्तानि । एत°. ९ च. ‘ पथंति° ते.

पतित्वं करिष्यन्ति । न हि तानि स्तुतिनिन्दे विशेषतो विदुः ।
 अपि चाश्वादिषु चित्तिरपि काचिदस्ति । न त्वक्षादिष्वसावस्ति ।
 तस्माच्छिष्यो भेधावी ' न मन्येत ' न जानीयात्सम्यगविरुद्ध-
 मेतद्द्रक्ष्येण लक्षणमुच्यते इति । अपि च मुतरां न मन्येत ' आगन्तूनि-
 वार्थान्देवतानां ' मन्यमानः । लोके तावदेते

५

आगन्तव एतेऽ- मनुष्याणामनित्यानामश्वादयोऽर्था आगन्तवोऽ-
 र्था अश्वादयः । तस्मा- पायिनश्चानित्याः । तद्यदि देवतानामप्येवमेव
 स्तुतिरयुक्ता ततस्तासां तेषां चानित्यत्वास्तुतिरनर्थिका ।
 अपि च । ' प्रत्यक्षदृश्यमेतद्भवति ' । प्रत्यक्षत

एवैतद्दृश्यते । यथोपकरणमश्वादय उपकर्तव्या मनुष्याः । देवतानामपि
 चेन्द्राग्निसूर्यप्रभृतीनामुपकरणं हरिरोहिद्धरित्प्रभृतयोऽश्वाः । तस्मादुभये-
 षामुपकरणोपकर्तव्यतासामान्यान्मनुष्याश्चदनित्यत्वमिति युक्तम् । यत्स
 शिष्यो न मन्यते नैतत्सम्यगभिधीयत इति तस्मात्प्रतिसमाधातव्यमेतदि-
 त्युपोद्बल्योत्तरमुच्यते । ' माहाभाग्यादेवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते '

१०

नायुक्ता देवतानां यस्मात्तस्मात्सर्वमेतत्सम्यगिति । भज्यत इति
 भागः । संब्यत इत्यर्थः । तच्च पुनरैश्वर्यं
 माहाभाग्यात् महत् । ' अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः
 प्राकाम्यमेव च । ईशित्वं चै वशित्वं च यत्र

२५

कामानसायिता ' इत्येवमनेन महर्तैश्वर्येण भज्यते महदेतदैश्वर्यं भजत
 इति वा माहाभागा देवता । तद्भावो माहाभाग्यम् । तस्मान्माहाभाग्याद्धेतोरे-
 कोऽपि सन्देवतात्मा बहुधा स्तूयते प्रकृतिभेदेनाप्रकृतिभेदेन वा वर्ध-
 मानः । निगमोऽपि हि भवत्यैश्वर्यप्रख्यापको ' रूपंरूपं मववा बोभ-
 वीति ' (ऋ० सं० ३ । ५३ । ८)

२०

देवतानानात्वं निग- र्थेया । यथा च लक्ष्यं तथा लक्षणं प्रवर्तितुम-
 मेन प्रख्याप्यते हति दृष्टानुविधानाच्छन्दमः । छन्दसि हि लक्षणे

२५

१ च. वित्ति'. २ क. ख. 'वास्ति । ४ । अथा'; ग. ज. 'वस्तीत्युक्ते तस्मा°.
 ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तरमात्स शिष्यो'. ४ ग. च. ज. ड. 'र्था दे'; ठ.
 'र्थादेव'. ५ क. ख. घ. झ. ट. 'च' नास्ति. ६ ग. ज. दा; च. वा' च.
 ७ च. 'च' नास्ति. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. महदैश्वर्य'; च. महर्तैश्व' दे.
 ९ क. ख. घ. झ. ट. 'देन वा अत्र'. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वीति ।
 यथा यथा'; ग. ज. 'वीति यथा । यथा च'; च. 'वीति' । यथा च' यथा.
 ११ घ. ट. ठ. ड. 'हि' नास्ति.

नानात्वे देवतासं- यावदभिधानं देवतानानात्वविधिव्यवस्था । संवा-
वादः प्रमाणम् । हवि- दसूक्तानि च कयाशुभादीनीन्द्रमरुदादिसंवा-
र्वहनादिकर्माणि च दव्यपदेशहेतुना गमयन्ति । तदशक्यमपासितुम् ।
तथा त्रिस्थानानां यान्यसंकरवर्तीनि हविर्वहन-

- ५ रसानुप्रदानरसादानलक्षणां न्यग्रीन्द्रसूर्याणां कर्माणि लिङ्गान्यर्थदर्शनहेतूपबृ-
हितानि त्रित्वं गमयन्ति तदशक्यमपासितुम् ।
नानात्वनिरासादै- तथा चैकात्म्यम् ' इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निर्माद्भुः '
कात्म्यम् (ऋ० सं० १ । १६४ । ४६) इत्येवमादयो
गमयन्ति निगमाः । तदप्यशक्यमपासितुम् ।

- १० त्रिष्वपि चैतेषु पक्षेष्वैश्वर्यमपरिहीणं देवतायाः । तत्रैवं सत्यै-
कात्म्यं तावदाश्रित्य प्रतिसमाधानम् । माहाभाग्यादेकस्य देवतात्मनः

प्रकृतिभेदेन वाप्रकृतिभेदेन वेति । चेतनाचेतन-
अङ्गाङ्गित्वं नाना- विकरणधर्मित्वादात्मानं विकुर्वतोऽस्यान्ये देवाः
त्वस्य हेतुः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । अग्नीन्द्रसूर्याणां परस्परापे-

- १५ क्षमन्यत्वम् । अनन्यत्वमेकेन देवतात्मना महता
सह । यथा घटादीनां मृदा । न ह्यङ्गिनमङ्गानि व्यतिरिच्यन्ते भेदेनाग्रहणात् । न

एकत्वस्य च

वर्जाङ्गान्यनपेक्ष्य प्रत्यङ्गानि भवन्ति । न ह्यधिष्ठा-
नमनपेक्ष्य प्रत्यधिष्ठानं नाम भवति । तस्माद-

ङ्गीन्द्रसूर्या एकस्य देवतात्मनोऽङ्गानि जातवेदोऽथायुभगप्रभृतीनि शकुन्पशुप्रभृतयश्च

- २० कान्यङ्गानि कानि प्रत्यङ्गानि । स एष महानात्माग्नीन्द्रसूर्या-
प्रत्यङ्गानि च द्यङ्गप्रत्यङ्गभावेन व्यूढमनुभवन्नेकोऽपि सन् बहुवा
स्त्यते ।

१ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. तदपि चाशं; च. तद्-शं° पि चा. २ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. 'मग्निमित्यादयो'. ३ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. 'धानम् ।
एकस्यात्मनोऽन्धे देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । माहा°; ग. ज. 'धानम् । महा°; च.
'धानम् । ४ महा° एकस्यात्मनोऽन्धे देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।° ५ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. 'न्यत्वं त्वेके' ५ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. 'ङ्गान्यति'. ६ क.
२८ ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'न चाङ्गानि'; च. न वौङ्गानि° चा.

‘अपि च’ एवं कृत्वा ‘सत्त्वानाम्’ अश्वादीनां ‘प्रकृतिभूमभिः
 ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः’ । प्रक्रियन्तेऽस्यां सर्वे
 सत्त्वानां स्तवैः विकारा इति प्रकृतिः सत्तालक्षणो महानात्मा
 प्रकृतिरेव स्तुयते हिरण्यगर्भ इति । वक्ष्यति हि । ‘स एष महा-
 यस्मात्तानि प्रकृतेर- नात्मा सत्तालक्षणस्तत्परं तद्वत् स भूतात्मा ५
 भिन्नानि सैषा भूतप्रकृतिः’ (निरु० १४।३) इति ।
 तस्या भूमा बहुत्वम् अनेकत्वा विपारिणामः
 स्थावरजङ्गमभावेन । प्रकृतेर्भूमानि बहुत्वानि यानि सत्त्वानां तैरनन्यविष-
 यत्वं पश्यन्तः कार्यकारणयोरनन्यत्वात्कारणमहिमभिस्तान्यश्वादीन्यभिष्टु-
 वन्तीत्याहुरात्मविदः । तद्यथा । ‘द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सैधस्थमात्मान्तरिक्षम्’ १०
 (मैत्रा० सं० २ । ७ । २) इत्येवमादीनि । आत्मैव सर्वं स्थावरजङ्गमभित्येवत्या-
 श्वमेधे ‘मूलेभ्यः स्वाहा शान्वाभ्यः स्वाहा’ (मैत्रा० सं० ३ । १२ । ७)
 इत्येवमादिभिस्तेन तेन वैशेषिकेण स्थावरजङ्गमात्मना प्रकृतेरभिन्नेनावस्था-
 नेनावस्थितो महानेवात्मेऽप्यते । न ह्यदेवता यागमर्हति । यावच्चान्यदपि
 किञ्चिदेवंप्रकारभेदेवताभिमतमिष्यते गृह्ये च बलिप्रभृतिकर्मादौ सर्वत्र स १५
 एवंत्युपेक्ष्यम् ।

‘प्रकृतिसार्वनाम्नोच्च’ एतदुपपन्नं नैता अदेवता देवतावस्तुयन्ते
 किंतु महान्देवो विविधरूपाः स्तुयत इति । प्रकृ-
 तिसार्वना- तिसार्वनाम्नोदिति । नतिमात्रं नाम नमनं संज्ञी ।
 म्यादेतदुपपद्यते सर्वत्वेन नाम सर्वनाम । प्रकृतेः सर्वनाम प्रकृ- २०
 तिसर्वनाम । तद्भावः प्रकृतिसार्वनाम्न्यम् । तस्मा-
 त्प्रकृतिसार्वनाम्नोच्चैतोः । यस्मान्माहाभाग्ययुक्ता देवता प्रकृतिर्यस्माच्च
 सर्वत्वेन नता तस्माद्धेतोर्नैता अदेवता देवतावस्तुयन्ते ।

अपि चैतद्यदभिहितम् ‘आगन्तृनिवार्थान्मन्यमानां हीररोहिद्ध-

१ च ‘अपि च’ ० चै. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘कृतिः स सत्ता’ २५
 ३ ग. ज. ‘कृतिर्भू’; च. ‘कृतिभू’ ते. ४ च. कार्यकरं. ५ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. शरीरमात्मा’; च. ‘सैधस्थेमा’ शरीर. ६ ग. ज. ‘तेन’ सकृदेव;
 च. ‘स्तेन’ वै० तेन. ७ ग. ज. ‘कृतिर’; च. ‘कृतिर’ ते. ८ ग. ज. ‘त्युत्पश्यं
 तत् । प्रकृ’; ‘त्युत्पश्यंते’ । ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘नाम्यात्’.
 १० क. ख. घ. ट. ठ. ड. महानेवायमात्मा विश्वरूपः स्तु’ ११ च. ‘नमनं नै
 संज्ञा. १२ क. ख. घ. झ. ट. ह. नाम्न्यम्. १३ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट.
 ठ. ड. ‘यद्’ नास्ति.

- रितादीनीन्द्रादीनां मनुष्याश्ववदनित्यत्वमवेत्य न सम्यगभिधीयत इति
 स न मन्येत ' इत्यत्र ब्रूमः । मनुष्यधर्मवि-
 देवताधर्मो मनु- परीतां हि देवताधर्मोऽनैश्वर्यान्मनुष्याणामैश्वर्याञ्च
 ५ ध्यधर्माद्विन्नः देवतानाम् । तत्कथमिति । यतो भेदमाश्रित्य
 प्रतिसमाधीयते । ' इतरेतरजन्मानो भवन्ति ' ।
 इतरेतरप्रकृतयो देवा ऐश्वर्यात् । न मनुष्याणामियं शक्तिरस्यनैश्वर्यात् ।
 मनुष्याणां हि पिता पुत्रं जनयतीति पिता
 देवा इतरेतरज- प्रकृतिः । न पुनरिच्छन्नपि पुत्रः पितरं जन-
 न्मानो भवन्ति यति । देवतानां त्वग्नेः सूर्यो जायते । ' एष
 १० प्रातः प्रसूयति ' (भैत्रा० सं० १ । ५ । ७)
 इति ह विज्ञायते । तस्मात्सूर्यस्याग्निः प्रकृतिः । सूर्याच्चाग्निः सायं जायते ।
 तस्मादग्नेः सूर्यः प्रकृतिः । अदितेर्दक्षो दक्षाच्चादिति रिति (ऋ० सं० १० ।
 ७२ । ४) । अथाध्यात्मेऽपि ' कोष्ठयादग्नेर्नाद इन्द्रो बलादिन्द्रान्मध्यमानोऽग्निः '
 इत्येवमादि । स एष सर्थथाप्यचिन्त्यो देवताधर्मः । तासामानन्यान्मौहाभा-
 १५ देवाश्चादयो ना- ग्यस्य । तत्रैवं सत्त्वशक्त्यमध्यवसातुं यथा मनुष्या-
 गन्तवः णामागन्तवोऽश्वादयस्तथैव देवानामपीति । त-
 स्माद्दोषानुपपत्तिरनागन्तुत्वाद्देवाश्वादीनामिति ।
 अथ किमर्थमीश्वराः सन्तो देवां जायन्त इति । कर्मजन्मानः । कर्म-
 फलसिद्धये लोकस्याग्निवायुसूर्या जायन्ते । न
 २० देवतानां जन्म ह्येतेभ्य ऋते लोकस्य कर्मफलसिद्धिः स्यात् ।
 कर्मसिद्धयर्थम् विद्यमानमपि चैश्वर्यमैश्वर्यवति न प्रख्यातिमि-
 यादीशितव्यमर्थमप्रतीत्य । तस्मादैश्वर्यप्रख्यापनाय जायन्ते कर्मफलसिद्धौ
 देवता आत्मनो लोकमनुजिघृक्षन्तः । कुतः पुनर्जायन्ते ।
 २५ जायन्ते ' अस्मजन्मानः ' । योऽसौ ' एक आत्मा बहुधा
 स्तूयते ' इत्युक्त उपात्तसर्वमूर्तिः स्थितावुपरतसर्व-
 मूर्तिः प्रलये भावाख्यः सन्मात्रः सर्गकाले षोढात्मानं विभज्य जगद्भावं विमर्ति
 १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. देवानां. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सूर्योऽ-
 जायत; च. जायते' अजायत. ३ घ. प्रसुसव°; ट. प्रसूवति° स; ग. च. ज.
 ठ. ड. प्रसवति. ४ च. हि. ५ च. संजायते. ६ ठ. ड. अदितेर्दक्षो अजायत
 दक्षाद्दितिः परीति श्रुत्यन्तरात् । अथाध्या°. ७ ग. ज. अथाध्यात्मनेपि कोष्ठ्याद्°;
 घ. झ. ट. ठ. ड. ' अथ ' नास्ति. ८ क. ख. च. ' न्न्यानमहा°. ९ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. देवताना°. १० क. ख. घ. झ. ट. ड. देवता. ११ ग. ज. आत्मनः
 १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इत्युपात्तः सर्व°; ग. ज. इत्युपरतः (न. इत्युपात्तः)
 २९ सर्वमूर्तिः स्थिता° ; च. इत्युक्त-पात० उ.

तस्माज्जायन्त इत्यात्मजन्मानः । क एव तस्मान् जायत इति चेत्सत्यं

कामकारेण देव- सर्वं तस्माज्जायते । न कामकारेण । देवास्तु तमा-
तानां जन्म अकाम- त्मानं पश्यन्तो योगेन ततः कामकारतो जायन्ते ।
कारेणेतरेषाम् किमेषां जन्म । यदेवामिच्छतां संकल्पानुविधा-
यिकर्मानुरूपं यथाकालमात्मनः कार्यकारणमुत्प-

५

यते तदैषां जन्म । तदनीश्वराणां नास्ति ।
यतश्चेश्वरास्ते तस्मादात्मनस्तत्संकल्पानुविधायित्वात् ' आत्मैवैषां रथो भव-
त्यात्माश्चा आत्मायुधमात्मेष्व आत्मा सर्वं देवैस्य देवस्य ' । तत्र यदुक्तम्

रथादिसर्वमात्मैव ' अश्वादीनि सत्त्वान्यक्षरधप्रभृतीनि च द्रव्याण्य-
देवताः ' इत्येतदयुक्तम् । देवता एवैषाः । १०
रथादिरूपेण हि देवतैवात्मानं विद्मैत्य प्रकृति-

भेदेन रथादिसाध्यमर्थं साधयति । सा तद्रूपा सती रथादिस्तुत्या स्तूयते
सां तास्तुतिसमवेतमर्थमाशासितं स्तोतुस्तेनैव रूपेण साधयितुमलभिति ।

तस्मात् ' भौहाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि ' (नि०
६० ७ । ५) । तासामेव तिसृणामग्न्यादीनां भौहाभाग्यादैश्वर्ययोगादा-

१५

एकैकस्य माहा- त्मानमनेकधा विर्कुर्वतीनामेकैकस्याः प्रतिविकारं
भाग्याद्बहुनामधेयत्वम् नामधेयप्रतिलम्भात्तेनैव रूपेण धारयन्त्यात्मान-
मिति ' यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमि-
च्छन् स्तुतिं प्रयुञ्जे ' इत्यस्य लक्षणस्याव्या-

घातः । तस्मात्सम्यगेवोक्तमिति । अथवा । स्तुतिसंक्रमन्यायेन चतुर्द-

२०

तेन 'यत्कामः०' शेषध्याये ' यज्ञसंयोगाद्राजा स्तुतिं लभेत '
इति लक्षणं युक्तम् (निरु० ९ । ११) इत्यत्र पुनः प्रति-
समाधास्यामहे ॥ ४ ॥

द्वादशाध्ययस्य प्रथमः पादः ।

२५

१ क. ख. घ. झ. ट. तदेतेषां. २ क. ख. झ. ' देवस्य ' सकृदेव. ३ ग. ज. विष्कृत्य. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सा च स्तु'. ५ च. मश'. ६ ग. ज. विकुर्वन्ती'. ७ ग. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मिच्छंस्तु'. ८ घ. झ. ट. निरुक्तटीकायां द्वादशस्य प्र', ठ. इति निरुक्तवृत्ता आदिता द्वादशस्य उत्तरषट्कप्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥; ड. इति निरुक्तटीकायां द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः । इति नैरुक्तोत्तरषट्के प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

३१

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो
 वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानस्तासां माहाभाग्यादेकैकस्या
 अपि बहूनि नामधेयानि भवन्त्यपि वा कर्मपृथक्त्वाद्यथा होताध्व-
 ५ र्युर्ब्रह्मोद्गातेत्यप्येकस्य सतोऽपि वा पृथगेव स्युः पृथग्धि स्तुतयो
 भवन्ति तथाभिधानानि यथो एतत्कर्मपृथक्त्वादिति बहवोऽपि
 विभज्य कर्माणि कुर्युस्तत्र सस्थानैकत्वं संभोगैकत्वं चोपेक्षितव्यं
 यथा पृथिव्यां मनुष्याः पशवो देवा इति स्थानैकत्वं च संभोगैक-
 त्वं च दृश्यते यथा पृथिव्याः पर्जन्येन च वाय्वादित्याभ्यां च
 संभोगोऽग्निना चेतस्य लोकस्य तत्रैतन्नरराष्ट्रमिव ॥ ५ ॥

१०

‘ तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः ’ । अत्रोपोद्घातः । ‘ सैषा देवतो-
 पपरीक्षा ’ इत्यधिकारो वर्तमाने ‘ यत्काम ऋषिः ’ इत्येवमादि मन्त्रदेवता-
 लक्षणमुक्तम् । तत्पुनरदेवतात्वादश्रादीनां ‘ मा नो मित्रो वरुणो अर्थमायुः ’
 (ऋ० सं० १ । १६२ । १) इत्येवमादिषु व्याहन्यमानमपेक्ष्य ‘ स
 १५ न मन्येत ’ इत्येवमादिनाक्षिते ‘ माहाभाग्यादेवताया एक आत्मा बहुधा
 स्तूयते ’ इत्येवमादिना ‘ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ’
 (ऋ० सं० १० । ९० । २) इत्येवमादिभ्यो
 मन्त्रवाक्येभ्यः ‘ अथातो विभूतयोऽस्य पुरुषस्य ’ (ऐत० आ० २ ।
 १ । ७) इत्येवमादिभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः ‘ एष इन्द्र एष प्रजापतिः ’ (ऐत०
 २० उ० ३ । ३) इत्येवमादिभ्यश्चैकात्म्ये सामर्थ्यमुन्नीयात्मवित्पक्षेणात्मैवेदं

सर्वमित्यैकात्म्यमुक्तम् । आत्मविदां ह्यात्म-
 आत्मवित्पक्षेणै-
 कात्म्यम् न्युपजातविशिष्टभावानामात्मशरीरस्थानामात्मम-
 यमेवेदं सर्वमनुपश्यतामात्मार्थः सर्वो वेदोऽन्या
 च सर्वा वक् । न ह्यात्मनोऽन्यद्व्यंतीरिक्तम-

१ क. ख. १ (५); छ. त. द. ६. २ क. ख. घ. झ. इत्युपोद्घा°; ग. ज.
 ‘ अत्र ’ नास्ति; च. ‘ रुक्ताः । ° उपो° अत्र; ट. रुक्ताः इत्युपो° अत्रो. ३ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ऋषिर्यस्यामित्ये°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अर्थ-
 १८ मित्ये°. ५ ग. ख. महा°. ६ ग. ज. ‘ त्मन्युवनोऽन्य°.

भिधेयमस्ति सत्त्वाविशेषाद्यदभिधानमभिदध्यात् । अथ पुनरुपक्रमः

पुरुषार्थस्य प्रथमनिश्रेणीफलकरथानीयेन केवले-

पुरुषार्थस्योपक्रमो नाधियज्ञेन । तत्र चावधानेऽधिदैवता । अस्यात्म-
यज्ञेन । याज्ञिकपक्षे ज्ञानं किञ्चिद्विदुषः पृथगात्मनो देवताः पश्यतः
देवतानानात्वम् परिच्छिन्नफलाभिप्रायस्याधियज्ञं प्रयुयुञ्जमाणस्य
पूर्वजन्माविद्यावासितान्तःकरणस्याभिधानस्तुति-

भेदाभ्यां विधिमन्त्रार्थवादविद्यार्थेन यथाग्रहं पृथगिव देवताः प्रकाशन्ते ।

तदुक्तम् ' अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स

वेद ' (बृह० उ० १ । ४ । १०) इति । तदाहुः ' आत्मयाजी श्रेया

३न् देवयाजी३ इत्यात्मयाजीति ह ब्रूयात् ' (शत० ब्रा० ११ । २ । ६

१३) इति । तदेवं ब्रह्म देवतावृक्षस्य मूलमैकात्म्यमात्मविदः प्रत्यवभासते ।

नैरुक्तपक्षे त्रिवम्

यावदभिधानं तु याज्ञिकान्प्रति विधिमात्रप्रधा-

नान् । यच्चावशिष्यते तेनैरुक्तान्प्रत्यवभासते ।

अत इदमुच्यते ' तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः ' ।

तिस्र इति संख्या । एनेत्यवधारणमितरौ पक्षावपेक्ष्य । कतमास्ता इति ।

• भग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्भेदो वान्तरीक्षस्थानः सूर्यो युस्थानः ' ।

त्रिवं स्थानभेदात्

कयोपपत्त्या त्रिवं पारिजगृहः । स्थानभेदात्प्रत्य-

क्षलिङ्गादन्यार्थदर्शनाच्च । लिङ्गं हि भवति ' विश्व-

कर्मा ह्यर्जनिष्ठ देव आदिर्द्रव्यैर्वा अर्भयैर्द्वि-

तीयः । नृतीयः पिता जनितौपेधीनामयां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा

श्रुतिलिङ्गाच्च

(य० वा सं० १७ । ३२ । तै० सं०

४ । ६ । २) इति ' अजस्य

१ ग. ज. 'निश्रेयणी'; च. 'निश्रेयणी'; ट. ह. निःश्रेणी २ ग. ज. किञ्चाविदुषः ३ च. ट. प्रयुयुमाणस्य; ट. ह. प्रमुयुक्षमाणस्य. ४ क. ख. घ. झ.

ट. ह. 'विद्यारसन'; ट. 'विद्यारसन वश'. ५ क. ख. घ. झ. ट. 'याजीवित्या'; २५

च. 'इवित्या'; ट. ह. 'याजी चेत्या'; नकस्मिन्नपि पुस्तके प्लुतिचिह्नं विद्यते.

६ ग. ज. 'इति' नास्ति. ७ ग. ज. 'तिविधमात्र'. ८ क. ख. घ. झ. ट. ट.

ह. 'प्रधानात्'; ग. ज. 'प्रधानान्मध्यमोऽवशि'; च. 'प्रधानान्' तु. ९ ग. ज.

स नैरु. १० क. ख. घ. झ. ट. ट. ह. लिङ्गं त्रिधा हि; च. लिङ्गं हि'भं त्रिधा.

११ ग. ज. अभवो हि. १२ क. ख. घ. झ. ट. ट. ह. इत्यत्र । अज'; च. इति । अज' त्यत्र.

नाभावध्येकमर्पितम् (ऋ० सं० १० । ८२ । ६) इति । अन्यार्थदर्शनाच्च । ' प्रजापतिर्वै श्रीन्महिम्नोऽसृजताग्निं
अन्यार्थदर्शनाच्च वायुं सूर्यम् ' (मैत्रा० सं० ४ । २ । १२)
इति । ' प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यो

- ५ रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तारिक्षात्सूर्यं दिवः ' (छान्दोग्योप० ४ । १७ । १) इति । ' अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तारिक्षस्थानः सूर्यो युस्थानः ' । ' तिस्रः ' इति प्रकृतेः स्वरूपप्रहणात्स्थानभेदं त्रिवे हेतुमुपसंसूचयति । कुतो नियमोऽग्न्यादीनां
अग्न्यादीनां स्था- पृथिव्यादिषु । निगमेभ्यः । ' पृथिव्यासि जन्मना
१० नवैशिष्ट्ये निगमः वशा साग्निं गर्भमधत्थाः अन्तारिक्षमासि जन्मना वशा सा वायुं गर्भमधत्थाः द्यौरसि जन्मना वशा सादित्यं गर्भमधत्थाः ' (मैत्रा० सं० २ । १३ । १९) इत्ये-
वमादिभ्यो निगमेभ्यः ।

- ' वायुर्वेन्द्रो वा ' इति किमेकस्य पर्यायवचनावेतौ शब्दावुताभि-
१५ वायुर्वेन्द्रो वेति कि- धेयौ भिद्येते इति । कुतः संदेहः । उभयथा
मर्थो विकल्पः । हि प्रसिद्धिः । प्रत्यभिधानं चार्थभेदो दृष्टो गौरश्च
इति यथा । अभिधानभेदेऽपि चैकार्थता दृष्टा
हस्तः करः पाणिरिति यथा । अतो युक्तः संशय इति । याज्ञिकपक्षे
तावददोषः । अर्थभेदेऽपि तेषां यावन्त्यभिधानानि तावैत्यो देवताः । अस्य
२० पुनराचार्यस्य स्वसिद्धान्तावलम्बिनः ' तिस्र एव देवताः ' इति प्रतिज्ञा ।
ततः कुतो वाय्विन्द्रशब्दयोरर्थभेदः । भेदे हि प्रतिज्ञाहागिः स्यात् ।
अपि च भेदेऽभिप्रेते नैकवचनेन निरदेक्ष्यदन्तारिक्षस्थान इति । अभिधान-
मात्रंभेदेऽप्यभिधेयस्य चाभेदेऽन्तारिक्षमस्य स्थानमित्युर्पात्तपष्ठ्येकवचने
विशेष्योऽन्तारिक्षस्थानशब्देन विशेष्यते । इतरथा ह्यन्तारिक्षस्थानावित्यव-
२५ ईषद्वयोर्विशेष्ययोः । अपि च ' वायवा याहि दर्शत ' (ऋ० सं०

१ क. ख. ग. ज. ड. ' न्प्रावृह ' ; च. ' न्प्रावृह ' वृ. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' स्थान इति । तिस्र ' ; च. ' स्थान- तिस्र ' इति. ३ ग. ज. प्रकृतिः ; च. प्रकृतस्वरू. ४ ग. च. ज. तृत्वे. ५ ग. ज. तावन्त्यो ; च. तावत्यो° वं. ६ घ. झ. ट. ठ. ड. ' शातवतः कु° ; च. ' शा तैतः° व. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' मात्रे भिन्नेऽप्य°. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' त्युपपत्तेःपष्ठ्ये° ; च. ' त्युर्पात्तपत्तेः. ९ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ' वचनो वि°.
१० क. ख. ग. ज. न. ' त्यवक्षद्द् ' ; च. ' त्यवक्षद्द् ' इत्य.

१ । २ । १) इति वायोः प्राधान्यस्तुतिमुदाहृत्य (निरु० १० । २) तां निरुच्य तस्यां सोमपानसंबन्धमुपलक्ष्यैन्द्रत्वं च सोमस्यावेत्य 'अंशुरंशुष्टे'

पर्यायौ वाय्विन्द्रशब्दौ इत्येतस्मिन् 'आ त्वमिन्द्राय प्यायस्व । तुभ्यमिन्द्रः प्यायताम् ' (मैत्रा० सं० १ । २ । ७)

इति नान्यत्रेन्द्रशब्दान्मुस्त्याभिसंबन्धिनो मध्यमात्सोमपानं संभवतीति प्रतीत्य वायुशब्दस्येन्द्रशब्देन समानार्थतां दृढमवधार्यामृष्यमाणो वायुशब्दस्य मध्यमादर्थान्तरे वृत्तिमपर्यायशब्दवादिनमाक्षिप-

न्नाह 'कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्येत्' (निरु० १० । २) इति । उत्तरमपि च यमुदाजहार निगमं ' तस्यैषा परा भवति ' (निरु० १० ।

२) इत्युपोद्धृत्य तस्मादैन्द्रादेव सूक्तात् ' अस्यैन्द्रस्य षायोर्यथा भक्षो न विदस्येत्तथैनमेवमभिवहेयुः ' (निरु० १० । ३) इति वायुशब्द-

स्येन्द्रविशेषणत्वं प्रतीत्येन्द्रप्रधानत्वात्सूक्तस्य ' वेन्द्रं ' उपात्तस्तस्मादाचार्यस्य मध्यमपर्यायवचनावेतौ शब्दाविति । सत्यपि पर्यायवचनत्वे मुख्यतरः

संबन्धो मध्यमस्येन्द्रशब्देन न तथा वायुवरुणहृदादिभिः । तत्कुतः । तथा निगमे दर्शनात् । ' सा प्रथमा संस्कृतिः ' (मैत्रा० सं० १ । ३ । १२) इत्येतस्मिञ्छु-

क्तामन्धिनोर्हवनमन्त्रे ' यो मध्यमो वरुणो मित्रोऽग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत ' (मैत्रा० सं० १ । ३ । १२) इति वरुणादीननुक्रम्य

विशेषतश्चतुर्थ्यन्तेनेन्द्रशब्देन संप्रदानेन संबन्धाति 'तस्मै' मध्यमाय इन्द्राय इति । तस्मात्संप्रदानेन सामानाधिकरण्यान्मन्त्रान्ते मध्यमशब्देन्द्रशब्दयोर्मुख्यतरः संबन्ध इति गम्यते । यथास्यै मध्यमस्य ज्योतिषो मुख्यः संबन्ध इन्द्रशब्देन तथेतरयोरपि पार्थिवोत्तमयोरग्निसूर्यशब्दाभ्याम् । प्रसिद्धतरत्वात्संबन्धस्य । न तथेतरैर्जातव्रतःप्रभृतिभिः । सैति गौणमुख्यत्वे युक्तं

१ क. ख. घ. झ. 'शब्दस्य'; ट. 'शब्दस्य' ब्देन. २ ग. 'मन्त्रक्षदि'; च. 'मन्त्रक्षदि' क्ष्य; ज. 'मन्त्रक्षदि'. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. एतस्मा'; च. 'तस्मा' ए. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अस्येन्द्र'. ५ क. ख. घ. झ. ट. चेन्द्र'; च. वेन्द्र'. ६ ग. ज. मम प'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सत्यपि तु प'. ८ ग. ज. ममस्ये'. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्व-वारा स प्रथमो मित्रो वरुणो अग्निः । स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वास्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा । सा प्रथ'. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'अस्य' नास्ति; च. अस्यै. ११ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. सति च गौ'; च. सति ' गौ' च.

१५

२०

२५

३०

३५

३९

३२

यदग्न्यभिधानेन प्रसिद्धतरसंबन्धेन पार्थिवस्य उपोतिष उपदेशः क्रियते न जातवेदःप्रभृतिभिः । तथोत्तमस्य सूर्यशब्देन न सवितृभगप्रभृतिभिरिति ।

- कस्मात्पुनर्मध्यमस्य शब्दद्वयेनोपदेशः क्रियते पार्थिवोत्तमयोरेकैकेनेति ।
 ५ मध्यमस्य हि द्वौ कर्मात्मानौ विद्युद्वाद्याह्यौ ।
 मध्यमस्य शब्द- तयोरनित्यदर्शन एको विद्युदाह्यो नित्यदर्शनस्तु
 द्वयेनोपदेशं प्रयोज- वाद्याह्यस्त्रगिन्द्रियप्रत्यक्षः । तत्कथं नाम
 नम् त्रिष्वपि स्थानेष्वभिमानिन्यो देवताः कर्मात्मभि-
 रवैपम्येण प्रत्यक्षत उपदिष्टाः स्युरित्यतो ' वायुर्म-
 १० ध्यमस्थानः ' इति वाद्याह्येन कर्मात्मना मध्यमस्थानमुद्दिश्यामह्यत्वा-
 द्वाध्वभिवानस्य मुह्यत्वाच्चेन्द्राभिधानस्य ' इन्द्रो वा ' इत्याह । एव-
 मुभयं कृतं भविष्यति । अनुपरतक्रियाव्यापारता च मध्यमस्य वाद्याह्येन
 कर्मात्मनेतरउपोतिर्दृशिता भविष्यति मुह्येन चेन्द्रशब्देन मुह्यसंबन्धो-
 ऽपरिहापितो भविष्यतीत्युभयमुक्तं ' वायुर्वेन्द्रो
 १५ अभिधानद्वयेन वान्तरिक्षस्थानः ' इति । न तु पार्थिवोत्तमयोर्द्वौ
 हेतुद्वयसिद्धिः कर्मात्मानौ स्तो यथा मध्यमस्थानस्य । तस्मान्न
 दोषो मध्यमस्थानस्याभिधानद्वयोक्ताविति ।

आह । यदिदमभिधानबहुत्वं जातवेदो वैश्वानर इत्येवमादि त्रिविं
 सत्येतत्किंकृतमिति । उच्यते ' तासां माहाभाग्यादेकैकस्थां अपि बहूनि

- २० नामधेयानि भवन्ति ' । तासामेव तिसृणाम-
 आभिधानबहुत्वस्य ग्न्यादीनां माहाभाग्यादैश्वर्ययोगेनैकात्मानमन-
 कारणम् कथा विकुर्वतीनामेकैकस्यां प्रतिविकारं जात-
 वेदो वैश्वानरो वरुणो रुद्रोऽश्विनावुषा इत्ये-

- १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'शब्देनोपदेशः क्रियते न स'; च. 'शब्दे
 २५ उपदेशः क्रियते इत्यर्थः न स'; २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'क्षत एवोप'; च.
 'क्षत + उप' एव. ३ घ. झ. ट. ठ. ड. 'युर्मध्यस्था'. ४ च. मध्यस्था'. ५ क.
 ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'योर्द्वौ द्वौ कर्मा'; च. 'योर्द्वौ + कर्मा' द्वौ. ६ ठ.
 ड. मध्यमस्थान'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तस्माद्दोषो मध्य'. ८ क.
 ख. घ. झ. ट. मध्यमस्था'; ठ. ड. मध्यमस्थानस्या'. ९ ग. ज. तुत्वे. १० च.
 'कस्य बहू'. ११ ठ. ड. तासां माहाभाग्येति । तासामेव तिसृणा'. १२ ग. च. ज.
 ३१ 'भाग्येनेन ऐश्व'. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'योगादेका'.

षमादीनि बहूनि नामधेयानि भवन्ति प्रतिस्थानं स्वप्रकृत्यभेदादिकाभ्यवदे-
वैकृतं न जहाति सा सः देवतेति ।

‘ अपि वा कर्मपृथक्त्वात् ’ । अपि वैवं विकरणधर्मिवा-
दभिन्नप्रकृतीनां बहुनामता । अपि वा सं स्वमात्मानमधिकुर्वतीनामेवा-

एकस्य बहुनामता नैककर्मयोगात्पृथक्कर्महेतुको नामधेयलाभः स्यात् ।
कर्मपृथक्त्वात् को दृष्टान्तः । ‘ यथा होताध्वर्युर्वैशोद्रातेत्य- ५
प्येकस्य सतः ’ कुण्डपाथिनामयने । तत्र हि

यथा कुण्डपाथि सप्त दीक्षन्ते । त एव च स्वयं कर्म कुर्वते ।
नामयने तेषां पट् षोडशानां पर्यायेण कर्म कुर्वते ।
अत्र लौकिकदृ- तत्कर्म कर्तव्याणास्तदाख्या भवन्ति । यथा लोके
ष्टान्तः लौकिकाः पार्वकादयः । तदेतत्पदर्शितं भवति । १०
न किञ्चिदप्यत्र गौणमभिधानम् । संविज्ञातैपदत्वे
स्वग्यादीनां संज्ञाशब्दानां कारकादिशब्दैरेव

विशेषे यदप्रनयनाद्गुणयोगोऽप्यसति नामग्या-
दीन् जहति । कारकादिशब्दानु करणादिवियोगसमनन्तरमेव कारकादीन्
जहति । एवमेतदगौणमभिधानानामपेक्षोक्तम् ‘ अपि वा कर्मपृथ- १५
क्त्वात् ’ इति । अपि वैश्वर्थात् । उभयथापि शक्यप्रतीघातादुपपद्यत
एकैकस्या अपि बहुनामतेति ।

‘ अपि वा पृथगेव स्युः पृथग्व्य स्तुतयो भवन्ति ’ । अपि वैवं
यथोक्तमेकैकस्या माहाभागत्कर्मपृथक्त्वाद्वा बहुनामता । अपि वा पृथ- २०
क्पृथगत्यन्तमिन्ना एतौपार्त्तकन भेदेन स्युरिति

अथवा पृथक्स्तु- याज्ञिका आहुः ‘ पृथग्व्य स्तुतयो भवन्ति ’
तित्वात्पृथक्स्तुः इति । कुत एतयाज्ञिका आहुर्गति । अधियज्ञे
हि स्तुतिनियमो भवत्यभिधाननियमश्चेति । अधि-
यज्ञमिति व्याख्येयम् । पृथग्व्य स्तुतयो भवन्तीति हेतोः । यस्मात्पृथ-

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कारकलाव-रुपाचका’; ग. ज. ‘लोके लावकाः २५
पावका’; च. लोके - लावकाः’ कारक. २ च. पार्वका’ च. ३ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. ‘ज्ञानप’; च. ज्ञानप’ न. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ब्दानां
तेषां का. ५ ग. ज. जहाति; च. जहाति’ ह. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
‘णादियोग’; च. ‘णादिविनियोग’ वियो. ७ ट. ठ. ड. ‘चैश्व’ ८ घ. झ.
ट. ‘नामति, ड. बहुनामिति. ९ च. ‘ख्येय यौशिर्नि(नि) वै (चै) पृ’ १० क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘न्तीति । हीनि हेतोः’; च. ‘न्तीति । हेतोः’ हीनि. ३१

कंपृथगग्न्यादीनां स्तुतयो भवन्ति । पृथगग्नेः ' अग्निर्मळे (ऋ० सं० १ । १ । १) इत्येवमाद्याः । पृथग्जातवेदसोऽनग्निलिङ्गं सूक्तं ' प्र नूनं जातवेदसम् ' (ऋ० सं० १० । १८८ । १) इति । पृथ-
 ५ गिन्द्रस्य हरिभ्याम् । पृथग्वायोर्नियुद्धेः । पृथक्सूर्यस्य हरिद्धेः ।
 पूष्ण इत्यजाभिः । अरूणीभिर्गोभिरुपताम् स्तुतिर्व्यभिचारे च प्राय-
 श्चित्तम् । तदनुपपन्नं च पर्यायवचनत्वे । ते वयं स्तुतिनियमात्पश्यामः
 पृथक्पृथगग्निवैश्वानरप्रभृतय इति ।

‘ तथाभिधानानि ’ । यथैव हि स्तुतिभेदात्स्तुत्यभेद एवमेवाभिधानभे-
 दादभिधेयभेदोऽपि भवितुमर्हति । प्रसिद्धतरं चेदं लंके प्रथमभिधानमर्थभेद

- १० अभिधानपृथक्त्वाच्च इति । न तथैकस्यानंकाभिधानता । तस्मत्पृ-
 र्थगग्निजातवेदोऽवैश्वानरादिशब्दानामभिधेया इति
 स्थितिः । स्तुतिष्वेव ह्यभिधानभेद इति समा-
 नार्थता हेचोरिति चेन्न त्रिधावप्यभिधाननियमदर्शनात् । ‘ आग्नेयमष्टा-
 कपालं निर्वपत् ’ (मैत्रा० सं० २ । ३ । १ ॥ २ । ३ । ५ ॥
 १५ २ । ४ । ६ ॥ १ । ५ । ९) इति येनैवाभिधानेन चोचते तेनैव
 निर्वपणादरभ्य समप्यते तस्मादसमानार्थतेति ।

‘ यथो एतः ’ यपुनरेतदुक्तं ‘ कर्मपृथक्त्वात् ’ इत्यनेकान्त एषः ।

- कर्मपृथक्त्वादित्य- दृष्टो हि प्रकृतिभेदाप्रतिकर्म भेदः । सा च
 २० नेकान्तः पृथक्त्वादिव्यवस्था माहाभ्यादित्याचार्येणात्र
 पृथक्त्वेहेतुर्न प्रत्युक्त इष्ट एव हि याज्ञिकप्रक्षे
 प्रत्याभिधानमर्थभेद इति । तत्किनेकत्वं न स्येव ।

- १ च 'तृथत्पृथगग्न्या' क. २ क ख ग. च. ज. घ. 'मीलि ३ च.
 'वेदसो अ० न' अ ४ क ख घ झ ट. ठ ड. 'इति' नास्ति; च इत्येजा०.
 ५ च स्तुतिर्व्यभि. ६ क. ख. घ झ. ट. ठ. ड. 'न (घ. झ. ट. ड. नं;
 २५ ठ. ने) ते तेषाम् । ते'; च. 'नत्वे ५ । ते' तेषां. ७ ग. ज. स्तुतिभेदा स्तु०.
 ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तृथक्पृथ' ; च. तृथग्न्या० कपृथ. ९ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. 'त्यनेकान्तर एव दान्तः । दृष्टो ; च. 'त्यने (ने) कान्त एष
 ५ दृष्टो' दृष्टान्तः. १० च भेदता । सा दः. ११ ग. ज. पृथक्त्वादिति व्य०.
 १२ ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'पृथक्त्वं' नास्ति; च. 'पृथक्त्वे' कत्वे. १३ ठ.
 ३० ड. प्रयुक्तः । एष एव०.

| | | |
|---|--|-----------|
| <p>एकत्वं स्थानेन संभोगेन च</p> | <p>तत्र । अस्ति गुणतः । कथम् । ' तत्र सस्थानैकत्वं संभोगैकत्वं चोपेक्षितव्यम् ' । तत्र तस्मिन्पृथक्त्वे सति स्थानैकत्वं संभोगैकत्वं</p> | |
| <p>चोपपत्तित ईक्षितव्यम् । तत्र दृष्टान्तः । ' यथा पृथिव्यां मनुष्याः पशवो</p> | <p>देवा इति स्थानैकत्वं संभोगैकत्वं च दृश्यते ' ।</p> | <p>५</p> |
| <p>अत्र लौकिको दृष्टान्तः</p> | <p>सहस्थानतया एकत्वं स्थानैकत्वम् । पृथिवीत्युक्ते यवतां सहभावेन समानं स्थानं ते तद्ग्रहणं गृह्यन्ते । ए-मितरथोरपि स्थानयोरैकत्वम् ।</p> | |
| <p>संभोगहेतुकमेकत्वं संभोगैकत्वम् । संभोगो नामितरेतरोपकारित्वम् । समा- नकार्यतेत्यर्थः । तच्च पुनर्भिन्नस्थानानामपि भवति किमङ्ग पुनः समन-</p> | <p>स्थानानामिति । ' यथा पृथिव्याः पर्जन्येन च</p> | <p>१०</p> |
| <p>संभोगैकत्वे उदा- हरणम्</p> | <p>व,यादित्याभ्यां च संभोगः ' । कथम् । पृथि- व्योपधुत्प । स्वकार्यारम्भे पर्जन्यवायुदित्य- कृतगुणकारमेकते । तदुक्तम् ' त्रयस्तपन्ति</p> | |
| <p>पृथिवीमनृपाः ' (निरु० २ । २२) इति । ' अग्निना चेतस्य</p> | <p>लोकस्य ' । तदप्युक्तम् ' अग्निर्वा इतो वृष्टिं सर्मारयति ' ' दिवं जिन्वन्व्यग्रयः ' (ऋ० मं० १ । १६४ । ५१ ।) इति च । तदेक-</p> | <p>१५</p> |
| <p>एकत्वं नाम स- मानकार्यत्वम्</p> | <p>प्रकारमेकत्वं कार्यकत्वात्स्थानैकत्वाद्वा भाक्तं न प्रतिविध्यते । लोकेऽपि समानकार्यता भवति येषां तेषामैक्यमित्युच्यते ।</p> | <p>२०</p> |

कः पुनरत्राविरोधी भेदोभेदे दृष्टान्त इति । उभये हि प्रमाणं भेदाभेदेवा-

१ क. ख. ग. च. ज. तत्रान्ति; घ. झ. ट. ठ. ड. तत्रास्ति. २ ड.
ड. 'नैकत्वमिति तत्र सस्था'. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. संस्थाने; च. सति
स्थाने सं. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. संस्थाने; च. स्थाने स. ५ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. एवमुत्तरं; च एवमित्तरं मुत् ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. स्थानयोरैवंप्रकारमेकत्वं; च स्थानयोरैकत्वं रसंप्रकारमे. ७ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. 'कत्वं (घ. ट. त्वं) संभोगैकत्वं चो- (ठ. ड. त्वो-) पोक्षितव्यं ।
संभोग'. ८ ड. ड. चेति । कथं. ९ घ. ट. ठ. 'तोषी भेदेद'.

दिन आत्मविनैरुक्तयाज्ञिकाः । न हि ते स्वमनीषिकया भेदाभेदौ प्रकल्पयन्ति ।

किं तर्हि । मन्त्रार्थमुद्दिश्य । तस्माद्भव्यः समञ्जसो

भेदाभेदे दृष्टान्तः दृष्टान्तः । उच्यते ' तत्रतन्नरराष्ट्रमिव ' । यथा राष्ट्र-

मित्यभेदो नरा इति भेदः । एवं पृथिव्यग्निरित्यभेदो

५ जातवेदा वैश्वानर इति भेदः । एवमुत्तरयोरपि स्थानयोः । तथात्म्यभेदो

ल्लोकाश्च ल्लोकिनश्चेति भेदः । सर्वत्रैव सामान्यविशेषधर्मो द्रष्टव्यः ।

पुरुषबुद्ध्यपेक्षातश्च गुणप्रधानतोऽपेक्षा पुरुषानुरागविशेषात् । तत्रैवं

सत्यात्मविद आत्मनि त्रित्वनानात्वे गुणीकृत्य तदङ्गप्रत्यङ्गभावेन कल्पयि-

त्वैकमात्मानं पश्यन्ति । तथा नानात्वैकत्वे

१० एकत्वे त्रित्वनाना-
त्वयोगौणत्वम् । त्रित्वे
इतरयोर्द्वयोः । तथा
नानात्वे

नैरुक्ता इति त्रित्वे । तथा त्रित्वैकत्वे याज्ञिका

नानात्वे । एवमेवामविरोधः । अस्ति हि

शब्दार्थयोर्वक्तृप्रतिपत्तृवशेन तद्बुद्ध्यपेक्ष्यानव्य-

व्यतिरेकाभ्यां वर्तितुं शक्तिः । न तु स्वाभाविकम-

१५

भिधानाभिधेयसंबन्धनकृतकमप्रच्यौव्यमानावभि-

धानाभिधेयौ जर्हीतः । न ह्यग्नेरवभास्यं प्रत्यवभासनशक्तिरवभास्यस्य चाव-

भास्यमानताशक्तिर्व्यवधानमन्तरेण विहन्यते । न ह्यकृतकं स्वयमर्थधीतं

को विकल्पते वैदिकानां पदवाक्यप्रमाणानाम् । आत्मभावानुशयवशेना-

त्मविनैरुक्तयाज्ञिका वेदस्याविपर्यासिनीमध्यध्यात्माधिदैवाधिपज्ञविपर्यानिय-

२०

तामर्थाभिधानशक्तिं विपर्यासिनीमिव मन्यमानाः परस्परतो विपर्यस्त्येते ।

तदेतत्सर्वथापि भेदाभेदवर्ति देवतासतत्त्वं यथा-

वक्तृप्रतिपत्तृवशे- प्रहं वक्तृप्रतिपत्तृवशेन प्रख्यातिमुपर्यस्तुतिरूपके-

नाभेदाभेदौ णात्मनोऽर्थसतत्त्वं तथाभूतं मन्त्रैराविक्रियते ।

तदुक्तम् ' तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति '

२५

१ ड. 'मिव । ५ । यथा' । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'विशेषतः' । ३ ग.

च. ज. तृत्वे । ४ ग. च. ज. तृत्वे' । ५ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ड. 'प्रति-

वक्तृवशे' ; च. ट. 'प्रतिवक्तृवशे पत्तृ. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'प्रच्यवमा' ;

च. 'प्रच्यौव्य' च्य. ७ ग. क. ख. ज. जर्हीताम्. ८ ग. क. ख. ग. ज. घ. झ. ट.

ठ. ड. स्वयमप्यर्थलको वि' (ग. 'तको किल्यते' विक; ज. 'तको किल्यते);

च. स्वयमप्य (' प्य ' अस्पष्टं) थ वि (' वि ' अस्पष्टं) ' धी ' (आपष्टं)

ने (त). ९ ग. ज. 'दैवविषय' । १० घ. ट. 'श्यन्ति रूपके' । ११ क. ख.

झ. 'प्रतिवक्तृवशे' ; च. वक्तृप्रतिवक्तृप्रतिपत्तृव' । १२ क. ख. झ. 'मुपनयत्स्तु' ।

२८

१३ ग. च. ज. 'राविक्रिय' ।

(निरु० २ । १६) इति । दर्शितं चैतन्मन्त्रेण ' न त्वं युगुप्से ' (शत० ब्रा० ११ । १ । ६ । १०) इति ।
 परमार्थत एका- निष्ठितरूपत्वेन स्वे स्वे विषयेऽध्यात्मादौ पर-
 त्म्यम् मार्थतयैकार्थ्ये निष्ठा तदन्तःस्थाद्वाचः । तदुक्तम्
 ' यतो वाचो निवर्तन्ते ' (तै० उ० २ । ४)
 इति ॥ ५ ॥

५

अथाकारचिन्तनं देवतानां पुरुषविधां स्युरित्येकं चेतनाव-
 द्बद्धिस्तुतयो भवन्ति तथाभिधानान्यथापि पौरुषविधिकरङ्गः
 संस्तूयन्ते । ऋष्या त इन्द्र स्थविरस्य वाहू । यत्संगृह्णा मघ- १०
 वन्काशिरित्ते । अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः । आ द्वाभ्यां
 हरिभ्यामिन्द्र याहि । कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते । अथापि
 पौरुषविधिकैः कर्मभिः । अद्दीद्र पिव च प्रस्थितस्याश्रुन्कर्ण
 श्रुधी ह्वम् । अपुरुषविधौ स्युरित्यपरमपि तु यद् दृश्यते ॥ ६ ॥

१५

' अथाकारचिन्तनं देवतानाम् ' । आह । भाहाभाग्यादेवताया विक-
 रणधर्मित्वादनियम आकार । अथ नियमो नन्देश्व-
 देवताकारविचारः र्यन्याद्यातान्भाहाभाग्यादेवताया इत्येतद्व्याहृत्यते ।
 तस्मात् ' अथाकारचिन्तनं देवतानाम् ' इत्ये-
 तदनारभ्यम् । उच्यते । आरभ्यमेव । प्रकृतिमत्तामनेपक्षे विकरणं नाम २०
 देवताधर्मो नास्ति । तस्मात्प्रकृतिश्चिन्त्यते देवतायाः । अपि च यत एवेश्वरा
 देवास्तत एवोभयभागित्वात्किमाकारवत्त्वं स्वभावो देवताया अथवा निग-
 कारार्थमिति सतत्त्वपरिज्ञानाय चिन्त्यते ।

१ ग. ज. 'कात्म्यनिष्ठा. २ ठ. ड. 'तन्तं अप्राप्य मनसा संतं. ३ क. ख. १;
 ग. ६; ठ इति निरु० उत्तरपटके प्रथमाध्याये पञ्चमः खण्डः । ५ ।; ड. इति निरु- २५
 क्कटीकायां निरुक्तोत्तरपटके प्रथमाध्याये पञ्चमः खण्डः. ५ ड. 'विधाः; छ. त. 'विधा
 ५ स्युः. ५ क. ख. छ. त. द. 'तय । आश्रु'. ६ क. ख. 'ह्वम् । ७ (६) ।
 अपुः; छ. त. द. 'ह्वम् । ७ । अपु'. ७ क. ख. छ. त. द. '६' नास्ति.
 ८ ग. ज. महा'. ९ च. 'तान्महा'. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 भावित्वा'; च. 'भागित्वा' वि. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'कारवत्त्वं. ३०

अस्तु तावदियं चिन्ता । किमिदमविशेषेण पक्षत्रयमस्याश्चिन्ताया विषय
उत वा कारिमश्चिदेकस्मिन्पक्षे द्वयोर्धैतौचिन्त्यत इति । इह तावदात्मविदा-
मेक आत्मा । स प्राग्विकारापत्तेः सन्मात्र उदस्तसर्वाकृतिः सर्गस्थित्योरुपात्त-

- ५ आत्मैक्यपक्षे आ- सर्वाकृतिः । तदेवमसावनाकृतिः सर्वाकृतिर्ब्रह्मना-
कारचिन्तनं नोद्भ- स्पदभू ॥ ७ ॥ ऽस्याश्चिन्ताया आत्मविपक्षः । अथ
बति पुनर्थदासावुपात्तत्रिस्थानावस्थो नैरुक्तपक्षाभिम-
नापि त्रित्वपक्षे विपर्ययस्य विभर्ति तदापि प्रत्यक्षत्वाद्-
विपर्ययमस्याश्चिन्तायाः । प्रत्यक्षत्वात्तेषामपौरुष-
विध्यस्य तत्पक्षेऽप्याकारचिन्ता विषयाभा-
१० वादुदस्पत एव । अथ पुनर्याज्ञिकानां यावदभिधानं देवतापक्षवादि-
नामग्निवायुसूर्याभिधानानि प्रत्यक्षार्थाभिसंबन्धीनि जातत्रदोरुद्रेन्द्रपर्ज-
याश्चिन्तयन्त्यन्यप्रत्यक्षार्थाभिसंबन्धीनि । शब्दमात्रं
याज्ञिकपक्षेऽयं प्रत्यक्षम् । अभिधानानां च लोके दृष्टमाकृतिप-
१५ विचार आवश्यकः दार्थवन्त्वमनाकारार्थवत्त्वं च । रुद्रेन्द्रदीनां शब्दानां
मन्त्रगतानां लौकिकैर्भनुष्यैश्चवाद्यात्माकाशादिभिरभिधानत्वं तुल्यम् ।
तत्रैतद्भवति । अप्रत्यक्षत्वादुद्राद्यभिधानानामर्थस्य किं नु खल्वमी रुद्रदिशब्दा
मनुष्यादिशब्दवदाकारवतार्थेनार्थवन्त उत वाद्यात्माकाशादिशब्द-
२- दनाकारेणेति । एवमयमस्याश्चिन्ताया याज्ञिकपक्षो विषयः । ' अपि वा
पृथगेव स्युः ' इत्यत एव याज्ञिकपक्षादनन्तरमिदमारब्धम् ' अथाकार-
चिन्तनम् ' इति ।

किमाकारस्य चिन्त्यते । किमस्ति नास्तीति यद्यस्ति कीदृशः । इह
द्विविधा आकारिणोऽर्थोश्चेतनाश्चाचेतनाश्च । चेतनार्थं मनुष्यादयः ।

- २५ १ ग. ज. ' धैतश्चिन्त्यते; च. ' धैतश्चिन्त्यते ' चि. २ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. ' पयत्वम्'. ३ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ' मिधानसंब'; च.
' मिधानसंब'. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' च ' नास्ति. ५ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' मनुष्यादिशब्दार्थाया'; च. ' मनुष्यादिशब्दार्थाया' मनुष्यादि-
शब्दार्था. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' धानवत्त्वं; ग. ज. धानवत्त्वं. ७ ग. ज.
घ. झ. ट. ठ. ड. किं तु. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' मस्ति उत ना'; च.
' मस्ति च ना' उत ९ ग. ज. कीदृशाः; च. कीदृशाः शः. १० ग. ज.
' र्थाः । चेतना मनु'. ११ क. ख. घ. झ. ट. तत्र चेतना; च. ' नाश्च । चेत'
३३ तत्र. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' च ' नास्ति.

अचेतनाश्च पापाणादयः । तत्रैतद्भवति किममी मनुष्यादिवचेतना उत
पापाणादिवदचेतना द्रव्यमात्रं प्रत्यक्षमिवमुद्देश्य संशयं तद्व्युदा-

देवताः पुरुषविधाः साय पक्षः परिगृह्यते । ' पुरुषविधाँ स्युरित्ये-
स्युरित्येकं मतम् कम् ' इति । मन्त्रप्रत्ययमस्तित्वं देवताया
अभ्युपगतं ' यत्कामः ' इत्युपक्रम्य ' तदैवेतः

स मन्त्रो भवति ' इति । सति हि देवतास्तित्वे
तदेवतत्वं मन्त्रस्य । यदि चैवमाकारोऽपि तत्प्रत्यय एव भवितु-
मर्हति । अस्ति चेदं पौरुषविध्यं मन्त्रेषु देवतासंविज्ञानपदसंबन्धीति ।
यत उच्यते ' पुरुषविधाँ स्युरित्येकम् ' मन्त्रेषु दर्शनमिति
वाक्यशेषः । पुरुषविधाः पुरुषप्रकाराः । पुरुषविप्रहा इत्यर्थः ।

को हेतुः । ' चेतनत्वद्वि स्तुतयो भवन्ति ' ।
यस्मात् चेतना- हिशब्दो हेत्वर्थः । यस्माच्चेतनावतामिव स्तुतयो
वतामिव तेषां स्तुतिः मन्त्रा अभिधायका भवन्ति । पूर्वा वतिर्भत्वर्थे ।
उत्तरस्तुत्यर्थे । तस्मात्पुरुषाकारविप्रहा इति ।

ननु चैतन्यमपुरुषाकारविप्रहाणामपि हि गवादीनामस्ति । न । नास्ति ।
न तु ते विवेकक्षमाः । असन्नचेतनाः । लोकेऽपि हि यस्य हिताहितवि-
वेकलक्षणं विशिष्टं संविज्ञानं न भवति तमधिकृत्य ब्रुवते निश्चेतनोऽ-
यमिति । एवमेव च गवादयः सन्त्यपि चैतन्य आसन्नचेतनत्वात् । ' न विदुः
श्वस्तनं न लोकालोकौ ' (ऐ० आ० २ । ३ । २) इति हि विज्ञा-
यते । तस्माच्चेतना इवोपेक्षन्ते । पुरुषस्तु ' वेद श्वस्तनं वेद लोकालोकौ
मर्त्येनामृतत्वमीप्सति ' (ऐ० आ० २ । ३ । २) इति । तस्माद्धिता-
हितपरिज्ञानाल्पौरुषविध्यस्य च सिमात्रयिपितत्वादनपेक्ष्य सामान्यं विशिष्ट-

१ च. ट. प्रत्येक्षं. २ ग. 'पोट्टित्य' ङ; च. 'पोट्टित्य' ङ; ज. पोभृत्य. ३ क.
ख. घ. झ. ट; संशयः. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. 'विधाः. ५ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. तदेव'. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'विधाः. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. कोऽत्र हे'. च. को ' हे' व. < क. ख. घ. झ. ट. ' हि ' नास्ति. च. हि.
९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' हि ' नास्ति. १० ग. ज. 'क्षणविशिष्टंवि'.
११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' ह ' नास्ति; ग. ज. हि. १२ क. ख. घ. झ.
ठ. ठ. ड. 'विध्यस्यैव सि'; च. 'विध्यस्यै च' स्यैव.

चेतन्यः पुरुषो नियम्यते । यथैव चेतयमानां अर्थात्पुरुषाः स्तूयन्ते तथैव देवता अपि । तस्मात् ' पुरुषविधौः ' इत्युपपन्नम् ।

५ अभिधानतश्च पौरुषविध्यम् ' तथाभिधानानि ' । यथैव पौरुषविध्ये स्तुतिः कारणं भवति तथैव संवादसूक्तेषु परस्परमभिधानान्युक्तप्रत्युक्तानि संबद्धानि परस्परतः कयाशुभीयादिषु ' कुतस्त्वमिन्द्र ' (ऋ० सं १ । १६५ । ३) इत्येवमादीनि । तस्मात्पौरुषविध्यं देवतानाम् ।

१० अथाप्ययमपरो हेतुः पौरुषविध्ये देवतानाम् ' पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते ' । पौरुषविधित्वे यान्यङ्गानि तैः संस्तूयन्ते । तद्यथा ' ऋष्या त ईन्द्र स्थविरस्य बाहू ' ' यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ' ।

१५ ' उरुं नो लोकर्मनु नेपि विद्वान्स्वर्ज्ज्योतिरभयं स्वस्ति । ऋष्या त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता ' (ऋ० सं० ६ । ४७ । ८) ॥ शंयोरर्षम् । एकादशिन्यामैन्द्रस्य पशोर्विषाया याज्या (आश्व० श्रौ० ३ । ७) । उरुं लोकं विस्तीर्णं यस्त्वम् अस्मान् अनुनेपि अनुनयसि । स्वेन सुकृतेन कर्मणा गच्छतां गमनानुग्रहे वर्तसे । स्वर्ज्ज्योतिः आदित्यसमानप्रकाशं लोकम् । अभयं स्वस्ति स्वस्वयनाय । तस्य तव वयम् इन्द्र ऋषी एतौ रेपणौ शत्रूणां स्थविरस्य महर्तैः बृहन्तौ महान्तौ शरणौ आश्रयणीयौ नित्यम् उपस्थेयाम उपतिष्ठेमेयेतदाशास्महे ।

२५ १ ग. ज. °मानार्था पु° । २ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. श्रूयन्ते; ग. ज. सूयन्ते; च. स्तूयन्ते° श्रू. ३ क. ख. झ. ट. ठ. ड. 'विधाः स्थिरित्युप'; च. विधा ~ इ' स्युः. ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. 'विध्यमुपपद्यते चेतनावत्सदृशस्तुतिभिः तत्पति ताः कारणं भवन्ति; ट. पुस्तके 'विध्ये स्तुतिः कारणं भवति' अयं पाठो प्रान्ते दीयते. ५ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. 'विधत्वे; च. विधित्व° घ. ६ ठ. ड. इन्द्र इति । उरुं. ७ ग. उरुं°. ८ व. झ. ट. 'मनु० शरणा०. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °षम् । त्रिष्टुबेन्द्री । ए°; च. °षम् । ~ ए° त्रिष्टुबेन्द्री । १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °मानं प्रकाशेन लो°; च. °मानं (ने) प्रकाशे (शेन) ११ क. ख. महतः बाहू हस्तौ बृह°; च. महतः ~ बृह° बाहू हस्तौ.

‘ यैसंगृभ्या मववन्काशिरिते ’ (ऋ० सं० ३ । ३० । ५) इति । व्याख्यातः शेषः (निरु० ६ । १) । एवमस्मिन्मन्त्रद्वये वाहु-
मुष्टिसंबन्धदर्शनास्तुव्यस्येन्द्रस्य पौरुषविध्वग्म् । अन्यथा हि वितथामिधानत्वे
मन्त्रयोः । तथा च सत्यानर्थक्यं मन्त्राणां सर्वेषां शास्त्रस्य च तदर्थत्वक्षण-
भूतस्य । तन्मा भूदित्यवश्यमेष्टव्यं पौरुषविध्वं देवतानामिति ।

‘ अथापि ’ अग्रमध्यपरो हेतुः पौरुषविध्वे देवतानाम् । ‘ पौरु ऋषिधिकै-
द्रव्यसंयोगे ऽपि त्रैवसंयोगेः ’ । तदथा ‘ आ द्वाभ्यां हरिभ्या-
पुरुषविध्वे कारणम् मिन्द्र याहि ’ ‘ कन्यार्यार्जाया मुग्णं
गृहे ते ’ ।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र यात्या ननुभिर्ग पट्टमिदृशमानः । आष्टा-
भिर्दशभिः सोमोपयमयं मुनः सुम उ मा मृश्रक्तः । (ऋ० सं० २ ।

इन्द्रस्य हरिनाम- इन्द्रस्य हरिनाम- १८ । ४) ॥ हे भगवन् इन्द्र यदि तावत्तव द्वौ
भ्यामश्याभ्यां योगः हरी संनिहितौ ततस्तावेव युक्त्यां ताभ्याम्
आयाहि । अथ चत्वारस्ततस्तैः । अथ पट्टततस्तैः ।
अथाष्टौ ततस्तैः । अथ दश ततस्तैः । आयाहि
इदं सोमोपयं सोमपानकमं प्रति । किमियं च ऋगहे । अं मुर्तिः सोमः
अभिष्टुतस्त्वर्थम् । म त्वं हे सुमन्व मुधन मा अन्तरा केवचिन्मृधः संग्रामं
कार्षीः । अविद्विध्वनमागच्छेत्प्राभिप्रायः ।

‘ अथाः सोममेस्तमिन्द्र प्र याहि कन्यार्यार्जायाः मुग्णं गृहे ते ।
तस्य गृहे जाया च यत्रा रथस्य वृहतो निधानं त्रिमोचनं वाजिनो
दाक्षिणावत् ’ (ऋ० सं० ३ । ५३ । ६) ॥
विश्वामित्रस्यार्पणम् । हारियोजनस्यानुवाक्या (आश्व० श्रौ० ६ । ११) ।
हे भगवन् इन्द्र पीतवानसि सोमम् एतस्मिन्कर्मणि । म त्वं पुनः अस्तं गृहे

१ ठ. ड. ‘ उनाभये ’ इति सर्वा ऋकं पठित्वा यत्संगृ . २ च. तथा ‘
हात्या’ च. ३ ग. श्रौ द्वा०; थ. झ. ट. आ द्वाभ्या० मृश्रक्तः. ४ क. ख. थ. झ. २५
ट. ठ. ड. गृत्तमद् (क. ख. ‘मद् कापिः) । ऐन्द्रा । त्रिष्टुत् । हे’; च. ‘हे’
गृत्तमद् कापिः । ऐन्द्रा । त्रिष्टुत् . ५ क. ख. थ. झ. ट. रथे युव वा; च. ‘वव
० युक्त्वा रथे. ६ च. ज. मुनः. ७ ग. च. ज. ‘भिष्टुत्’. ८ ग. अथाः.
९ थ. झ. ट. ‘मसं० वाजिनो. १० ग. मुग्ण ० । विचा . ११ क. ख. न.
झ. ट. ठ. ड. ‘पम । त्रिष्टुत् । हा’; च. ‘पद् । हा’ त्रिष्टुत् .

प्रयाहि । यस्मात्तत्र कल्याणीर्जाया तत्र । बृहतः च रथस्य निधानं रथशाला ।
विमोचनं च वजिनो जित्वा संग्राममागतस्य । दक्षिणावत् अन्यर्दपि
यद्यद्रमणीयं तज्जस्रं तव गृहे वर्तते । तस्मात्पुनरस्तं प्रयाहि ।

५ एवमेतयोर्मन्त्रयोर्हरिगृहजायारथाभिसंवन्धात्पौरुषविध्यमिन्द्रस्य । न ह्यपौ-
रुषविध्ये सति संवन्धो जायादिभिरस्ति ।

‘अथापि’ अयमपरो हेतुः पौरुषविध्ये । कतमः । ‘पौरुषविधिकैः

कर्माण्यपि पुरुष- कर्मभिः’ संस्तूपन्ते देवताः । तद्यथा । ‘अद्वीन्द्र
विधत्वे कारणम् पिव च प्रस्थितस्य’ ‘आश्रुर्कर्णं श्रुधी
हवम्’ ।

१० इद्र हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रातं सप्त लङ्घणानां गृभाय । तुभ्यं सुतां
मघवन्तुभ्यं पक्रो ३ द्वीन्द्र पिव च प्रस्थितस्य’

इन्द्रोऽस्तुं पातुं च (ऋ० सं० १० । ११६ । ७) ॥ अग्नि-
प्रार्थ्यते युतो नाम श्वरपुत्रस्तस्यार्पम् । हे मघवन्
इन्द्र हविः आज्यादिकं तुभ्यं रातं मनसासामभिः

१५ पूर्वनिर्वपणादौ संस्कारकाले हे सम्राट् प्रतिगृहाण । अपि च । तुभ्यं
त्वदर्थमेवायं सुतः अभिपुतः सोमः । अपि च । हे मघवन् त्वदर्थमेवैष
पुरोडाशः पक्रः । स त्वमस्य सोमस्य प्रस्थितस्य अद्दि पिव च स्वमंशमिति
शेषः

२० ‘आश्रुर्कर्णं श्रुधी हवं नू चिदधिष्व मे गिरः । इन्द्र स्तोममिमं मम
कृष्वा युजश्चिदन्तरम्’ (ऋ० सं० १ । १० । ९) ॥ मधुच्छन्दस

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘दपि सुरणं यय’; च. ‘दपि + यय’ सुरणं. २ ग.
हवम् । ३ य. इद्रं. ३ ग. ‘वन्० । अग्नि; घ. झ. ट. ‘वन्० पिव’. ४ क.
ख. च. सम्राडह; ज. सम्रालह. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘र्षम् । त्रिष्टुप् ।
पेन्द्री । हे’; च. ‘र्षम् । + हे’ त्रिष्टुबेन्द्री । ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इद्रं
हवि. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘स्माभिर्निरुप्तं पूर्वं नि’; च. ‘स्माभिः पूर्वं’
निरुप्तं पूर्वं. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तदिदानीं हे; च. + हे’ तदिदानीं.
९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘म्राट् अह्वानः प्रति’; च. ‘म्राट् + प्रति’ अह-
णन्. १० ग. शेषः । २६ । आ. ११ ग. ‘त्कर्णं । मधु’; व. झ. ट.
२९ ‘त्कर्णं युज’.

आर्षम् । श्रोतारौ यस्य कर्णौ अप्रतिहतश्रवणौ सर्वत्र स भवति श्रुत्कर्णः ।
 तस्य संबोधनम् । हे श्रुत्कर्ण आभिमुख्येन
 श्रोतुं च श्रुधि शृणु त्वमाह्वानमस्माकम् । श्रुत्वा च नू-
 चित् पुराण इव दधिष्व धारयस्व एता अस्म-
 द्विरः हृदयेन । किंच । हे मघवन् इन्द्र मैम इमं स्तोमं युजः त्वद्युक्तस्य
 त्वां प्रत्याहृतस्य पुनःपुनरपि ब्रुवतः कृष्व कुरुष्व श्रोतुम् अन्तरम् । ५
 क्षणमित्यर्थः ।

एवमनयोर्मन्त्रयोरध्वीशृणुहीत्यामन्त्रणपूर्वकमदर्शनश्रवणपूर्वको विनियोगः ।
 एवं देवतानां पौ- स न संभवत्यपौरुषविध्ये । न हि गवाद्योऽध्वी-
 रूपविध्यम् शृणुहीत्युक्ताः किंचप्रतिपद्यन्ते । तस्मात्कार्य-
 करणमोनिवेशो गनुष्यन्देवतानाम् । कार्यकार- १०
 णापेक्षं च विज्ञानम् । तदेवमेतेभ्यो मन्त्रदर्श-
 नेभ्यः स्थितं पौरुषविध्यं मन्त्रे देवतानामिती ।

अपुरुषविधा स्युरित्यापरम् । दर्शनमिति वाक्यशेषः । तदुक्तम् ।
 • अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो धर्मकर्म जायते तत्रापमार्थेन
 अपुरुषविधा देव- युद्धवर्णा भवन्ति ? (निरु० २ । १६) इति । १५
 ताः स्युरित्यापरं मतम् विज्ञायते 'तादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरम्' (शत०
 ब्रा० ११ । १ । ६ । ९) इति च ' न त्वं
 युयुत्से ' (शत० ब्रा० ११ । १ । ६ । १०) इति । अपि चैतदुक्त-
 मेव (निरु० ७ । ५) ।

‘ अपि तु यद्दृश्यते ’ देवानां किंचित् ॥ ६ ॥

२१

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'आर्षम् । अनुष्टुबेन्द्री । श्रो' ; च. आर्षम् ।
 • श्रो° अनुष्टुबेन्द्री । २ ग. च. ज. मं मम° । ३ क. ख. ग. ज. ठ. अध्याशृ° ; च.
 अध्याशृ° ऋचा. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. 'वर्कादनश्र' । ५ ' अध्याशृ° ' इति
 सर्वेषु पुस्तकेषु. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कार्यकार° । ७ क. ख. 'मिति । २५
 २ (६) । अपु° ; ग. °मिति । ७ । अ३° ; घ. ट. च. ज. 'मिति' इत्य-
 स्यान्नन्तरं खण्डममाप्तिथितकं चिह्नम्. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'च' नास्ति ;
 च. चै. ९ च. 'इयते' । दे'. १० ठ. इति निरुक्तं ० सर० प्रथ० आदितः सप्त०
 षष्ठः खण्डः । ६ । ; ड. इति निरुक्तीकायामुत्तरपट्टके प्रथमाध्याये षष्ठमखण्डः
 । ६ । ; इत्येवञ्च नास्ति. ३०

- अपुरुषविधं तद्यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति यथो
 एतच्चेतनावद्बद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते यथा-
 क्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि (निघ० ५ । ३ । ४—२२)
 यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इत्यचेतनेष्वप्येतद्भव-
 ५ न्याभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिर्यथो एतत्पौरुष-
 विधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव सुखं रथं युयुजे सिन्धु-
 रश्विनमिति नदीस्तुतिर्यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरित्येतदपि
 तादृशमेव होतुश्चिन्पूर्वं हविरद्यमाशनेति ग्रावस्तुतिरेवापि बोभय-
 विधा स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा
 १० यज्ञो यजमानस्यैष चारुयानसमयः ॥ ७ ॥

सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

- ‘ अपुरुषविधं ’ । अपुरुषप्रकारं तदित्यर्थः । ‘ तद्यथाग्निर्वा-
 युरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति ’ । प्रत्यक्षत
 १५ यथान्यादयोऽपुरु- युरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति । प्रत्यक्षत
 षविधास्तथेन्द्रादयोऽपि एतान्यपुरुषप्रकाराणीति । एतेषामतोऽन्यथाभ्युप-
 गमे दृष्टहानिः स्यात् । न चैतदिष्टम् । तस्मादपु-
 रुषविधा अग्न्यादयः । तस्मान्यान्याददृष्टा इन्द्रा-
 दयोऽप्यपुरुषविधाः । न हि मनुष्यत्वे तुल्ये केचिदाकारिणः केचिदना-
 कारिण इति । तथैव देवतानामपि हि न्यायः । तस्मादपुरुषविधा इति ॥
 ‘ यथो एतच्चेतनावद्बद्धि स्तुतये भवन्तीति ’ । अचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते
 २० चेतनावस्तुति- ‘ यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि ’ । तस्माच्चे-
 भस्त्वमहेतुः पौरुषविधे तनावस्तुतिमत्त्वमहेतुः पौरुषविधे देवतानामचे-
 तनेष्वप्यक्षादिषु चेतनावस्तुतेर्दृष्टत्वादिति ।
 ‘ यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इति ’ । अयमप्यहेतुर्धर्मि-
 चोर्भिरित्वात् । ‘ अचेतनेष्वप्येतद्भवति ’ । तद्यथा ‘ ग्रावस्तुतिः ’ । ‘ एते

१ क. ख. इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः; छ. ॥८॥ प्रथमः पादः ॥ तिस्रः;
 त. ॥८॥ सप्तमाध्यायः प्रथमः पादः । तिस्रः; द. ८ इति नैरुके उत्तरार्धस्य प्रथमा-
 ध्यायस्य प्रथमः; ड. थ. घ. ‘ सप्त ० पादः ’ नास्ति. २ ठ. ड. विधिमिति ।
 अपुरुषप्रकारं. ३ क. ख. घ. झ. ट. ‘ भिचरित्वात्; च. ‘ भिचौ (च)

२९ रि- त्वात् त, ठ ड. ‘ भिचारत्वात् ४ ग. ‘ स्तुतिः । २७ । एते ’.

वन्दन्ति शतसहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितोभिरासभिः । विष्ट्री प्रावाणः सुकृत-
सुकृत्या होतुश्चिःपूर्वे हविरयमाशत ' (ऋ० सं० १० । ९४ । २) ॥

अचेतना प्रावा- अर्बुदस्यार्पम् । प्रावस्तुतिः । एते प्रावाणः अभिप-
दयोऽपि पौरुषविधि- वकर्म कुर्वाणा वदन्ति । कथम् । शतवत् शत-
कैः संस्तुयन्ते मित्र । सहस्रवत् सहस्रमिव । शब्दब्राह्मण्याभिप्रा-
यम् । अभिक्रन्दन्ति अह्वयन्ति भोगपातृन्
अर्गैः च्छतास्माभिरभिष्टुतं सोमं पातुमिति । तत्र

येयं विष्ट्री प्रावणाम् एतया सुकृत्या शोभनया क्रियया एते सुकृतः
शोभनस्य कर्षणः कर्तारो होतुश्चिःपूर्वे होतुरप्यग्नेः मनुष्यहोतृणां पृथ-
प्रथमतः हविः एतत्सोमाद्दधम् अद्यम् अदनीयम् आशत अश्नन्ति । अ-
भिपद्ये सोमसंयोगमात्रमशनमुपचर्यते प्रावणाम् । तस्मादपौरुषविव्यामिति । न
हि प्रावणां यथाभूतान्यास्यानि सन्ति धैर्ययोगेन च स्तुयन्ते । तद्दिन्द्रा-
दीनामप्यथामृतैर्बाहुमुष्टयादिभिः स्तुतिः स्यात् । तस्मादहेतुगुणं यत्
' पौरुषविधिकैः संस्तुयन्ते ' इति । तस्मादपुरुषविधाः ।

'यथो एतर्थात्पविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरिति । एतदपि तादृशमेव ' । औप-
चारिकम् । रूपकमात्रमित्यर्थः । यथैव ह्यास्यादि-
द्रव्यसंयोग औप- कल्पना दृष्टव्यभिचारित्वाद् प्रावप्रभृतिषु न संभ-
चारिकः वति । रूपकमात्रं स्तुत्यर्थम् । संकल्पतो बाह्यादि-
कार्यसिद्धिः । एवं हरिरथजायादिस्तुतयो रूप-
कमात्रमिति । अपि च । ' सुग्वं रथं युयुजे सिन्धुराश्विनमिति
नदीस्तुतिः ' । न चारयां स्तुतौ यथाभूता रथोश्चोपपत्तिरस्यसंभवात् ।

१ क. ख. व. झ. ट. 'दन्ति शतवत् ० हविः'; ग. 'दन्ति० । अर्बु० । २ क.
ख. व. झ. ट. ठ. ड. 'पम् । जगती । प्रा'; च. 'पम् । प्रा' जगती । . ३ ट.
ड. आगता० । ४ ' हरितोभिरासभिः ' इत्यस्य सायणकृतं चिचरणं ट. पुस्तके प्राप्ते
लिखितम् । तत् ' पातुमिति ' इतस्यानन्तरं क ख. ट. ठ ड. पुस्तकेषु लिख्यते ।
तद्यथा । ' पातुमिति । हरितोभिः सोमसंसर्गात् हरिद्वर्णेः आमभिः आस्यः ' तत्र० ।
५ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. विष्ट्री व्याप्तिः प्रा'; च. विष्ट्री च प्रा' व्याप्तिः.
६ ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. तत्सं'; च. यत्सं' त. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. भूतार्थत्वोपपत्तिः; च. भूता रथोश्चोप' र्थत्वो.

५

१०

१५

२०

२९

कथमसंभवः । न ह्युद्कामिकाया नद्या वह्न्या रथेऽवस्थानं संभवति ।

‘ सुखं रथं युयुजे सिन्धुराश्विनं तेन वाजं सनिपदस्मिन्नाजौ । महा-
न्हास्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरशिनः ’ (ऋ० सं०
१० । ७५ । ९) ॥ सिन्धुः श्विनाम प्रियमेधसः पुत्रः । तस्येयमार्षम् ।

५

सुखं सुखहेतुं लोकस्य रथं रहणम् उदकं युक्तवती
यथा नदीस्तुतौ सिन्धुः नदी अश्विनम् अशनेन व्यापनेन तद्व-
न्तम् उदकरथम् । तेन वाजम् अन्नं सैनिषत्
संभक्तवती उत्पादितवती अस्मिन्नाजौ आजवने संप्राप्ते । यतो यतो गच्छति
ततस्ततो ब्राह्मण्यन्नमभिनिष्पादयतीत्यर्थः । यस्मान्वायमुदकरथोऽन्नमभि-
निष्पादयति तस्मात्तस्य महन्महिमा माहाभयं पनस्यते स्तूयते स्तोत्रुभिः ।
अदब्धस्य अनुपदस्तस्यै विरशिनो विरपणशीलस्य । शब्दकारिण इत्यर्थः ।
रथमिवाश्विनमिति केचित् ।

१०

तदेवमादिष्वसंभवान्मुख्यार्थकल्पनायाः सर्वत्र रूपकप्रवृत्ताः स्तुतय
इत्युपेक्ष्यम् ।

१५

‘ यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरिति । एतदपि तादृशमेव ’ । ‘ होतु-
पौरुषविधिकानि श्विपूर्वे हविरद्यमाशतेति ’ अशनराक्षिक्रियया
कर्मण्यप्यौपचारिकाणि प्रावाणः स्तूयन्ते । न च पुनर्प्रावणां यथाभूत-
मशनमस्ति । तस्मादिदमपि रूपकमेव । ‘ एते
वदन्ति ’ इत्यत्र (पत्रं ६५३) व्याख्यातम् ।

२०

‘ अपि बोभयविधा स्युः ’ उभयहेतुप्रामाण्यात् । ‘ अपि वा पुरुष-
अथवा देवता विधानामेव सतां ’ पृथिव्यादीनां ‘ कर्मात्मान
उभयविधाः स्युः एते स्युः ’ अपुरुषविधाः क्षितिजलादयः ।
परे त्वधिष्ठातारः पुरुषविग्रहाः । एवमुभयोः प्रत्य-

२५

क्षागमयोरप्यनुग्रहः कृतो भविष्यति । ‘ यथा यज्ञो यजमानस्य ’ कर्मात्मा ।

१ ग. ‘ वति । २८ । सुखं ’. २ ग. रथं ० । सिन्धुः; घ. ट. रथं युयुजे०
विरशिनः. ३ क. ग. घ. ट. ड. ‘ र्षम् । जगती नदीस्तुतिः । सुखं; च.
‘ र्षम् । ४ सुखं ’ जगती नदीस्तुतिः । ४ ग. ज. ससनिषत्; च. ससनिषत्. ५ क.
ख. घ. झ. ट. ड. ह. ‘ स्तस्य स्वयशसः स्वायत्तकीर्तिः विरः; च. ‘ स्तस्य ४ विरः
३० स्वयशसः स्वायत्तकीर्तिः.

‘ इदमेतेनाङ्गं संश्रियते इदमेतेनाङ्गमुपधीयते
 अथवा देवताः इति (शत० ब्रा० ११ । २ । ६ । १३)
 कर्मात्मानः स्युः ‘ संस्कृतममुष्मिहोके ऽपैति ’ (मैत्रा० सं०
 ४ । १ । ८) इति विज्ञायते ।

‘ एष चाख्यानसमर्थः ’ । भारते चाख्यानसमयः । एष एव सिद्धान्त
 इत्यर्थः । पृथिवी स्त्रीरूपेण भारावर्तरेणाय
 एष महाभारता- ब्रह्माणं ययाचे (महाभा० आदि० ६४) ।
 दीनां सिद्धान्तः अग्निश्च ब्राह्मणरूपेण वःसुदेवार्जुनावुभौ ग्वाण्डवं
 ययाचे (महाभा० आदि० २२४—२२५) ।
 पुरुषरूपेण (महाभा० आदि० २३०) अग्निरूपेण (महाभा०
 आदि० २२७) च ग्वाण्डवं ददाह इत्येवमादिनां ।

तदेतच्चतुर्था भित्तये मन्त्रार्थदर्शनादेव पौरुषविध्यमपौरुषविध्यं
 कर्मार्थोभयविध्यं नित्यमौभयविध्यमेवेति । मयं चैतदुपपद्यते । माहाभाग्ये
 मन्त्रार्थार्थकथमिव देवता न स्यादमूर्ता मूर्ता
 एष देवताकार एकधा द्विधा बहुधा वेति । यथा तु वर्तमाना-
 विचारं च वारिमतानि एषश्च मन्त्रदृशस्तथा तथास्तुभूत् । सर्वथैवा-
 सर्वाण्यविरुद्धानि च दोषः फलदर्शनात्रानावस्थादर्शनवदाख्यातृणां ।
 परिदेवतानिन्दादिष्वपि वेन्द्रादीनां कर्मैतस्तद्गुण-
 मवस्थितानां सा सा स्तुतिरेव न निन्दा । उक्तं च ‘ हीना न निन्दा
 स्तुतिरेव साऽर्थो देवान्मर्त्यः सम्भ्रमिष्टुपात्कः । शक्तिर्भयऽप्यधपवस्यन्ति
 शिष्टाः स्तोतुं न पश्यन्ति गतिं यतोऽप्याम् ’ इति ॥ ७ ॥

१ घ. झ. ट. ठ. ड. इदमेतेना?; च. इदमेतेना? इदमेते. २ ग. च. ज.
 'नागमु'. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'सुचय'. ४ क. ख. घ. झ. ट. ड.
 पत्तीति च वि?; ट. परतीति च वि? उपे. ५ ड. 'समयः । ७ । भार'. ६ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वता'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मादि । त'.
 ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. कर्मार्थात्मोभय?; ग. ज. कर्मार्थाभय?; च. कर्मार्थाभ?
 र्थात्मो. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. चेति. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 कामकारतस्त?; ग. ज. कामगतस्त?; च. कामगत? कार ११ क. ख. घ. झ.
 ट. सास्यादेवा?; च. सास्योद्देवा? इया दे; ठ. ड. सास्य. १२ क. ख. ३ (७);
 य ८; इतरेष्वङ्को नास्ति.

द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात्तासां भक्तिसाहचर्यं व्याख्यास्यामोऽथैतान्यग्निभक्तीन्ययं लोकः प्रातःसवनं वसन्तो गायत्रीं त्रिवृत्स्तोमो रथन्तरं साम ये च देवगणाः समाप्नाताः प्रथमे स्थानेऽग्रायी पृथिवीर्लेति स्त्रियोऽथास्य कर्म वद्धनं च हविषामावाहनं च देवतानां यच्च किञ्चिद्वाष्टिविषयिकमग्निर्कर्मैव तदथास्य संस्तविका देवा इन्द्रः सोमो वरुणः पर्जन्य ऋतव आग्नावैर्ष्णवं हविर्नत्त्वृक्संस्तविकी दशतयीषु विद्यतेऽथाप्याग्ना-पौष्णं हविर्न तु संस्तवस्तत्रैतां विभक्तंस्तुतिमृचमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

आकारचिन्तनव्यवधानाद्देवतात्रयाधिकारस्य तद्विशेषस्य विवक्षया तद-
नुस्मृतये तद्व्यवहारेति ' तिस्रः एव देवताः इत्युक्तं पुरस्तात् ' इति । यः
पुनस्तत्र विशेषो विवक्षितः स उच्यते । ' तासां भक्तिसाहचर्यं व्याख्या-
स्यामः ' । तासामेव तिसृणाम् । भक्तिश्च साहचर्यं
च भक्तिः कृतं वा साहचर्यमिति । लोकादीर्नानामे-
वाग्न्यादिभिः भजनं भक्तिः । सहचरभावः साहच-
र्यम् । तत्किमर्थमुच्यते । असंविज्ञातं देवतापदे मन्त्रे
भक्त्या साहचर्येण वा यथा देवता गम्येतेत्येवमर्थं भक्तिसाहचर्यमुच्यते ।

१ क. ख. इति निरुक्तवृत्तां द्वादः; घ. झ. ट. इति द्वादशस्य द्विः; ठ. इति निरुक्तवृत्तौ निवृण्टुभा ० द्वादशस्य आदितः सप्तमस्थोत्तरपट्टके प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः । ७ । द्वितीयः पादः; ड. इति निवृण्टुअक्षेण सह द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः । इति निरुक्तोत्तरपट्टके प्रथमाध्याये सप्तमः खण्डः । ७ । १ क. ख. छ. त. द. ' वीलेति. ३ ठ. ड. स्त्रियः । अथा'. ४ क. ख. छ. त. ' द. ण्वं च हवि'. ५ क. ख. ट. ड. ' भक्तिस्तु'. ६ क. ख. १ (<); छ. ९; त. द. १. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अथाकार; ग. ज. आत्वंनकार; च. ५ आकार अथ. ८ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ' शेषविव'; च. शेषस्य ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. तये च स एतत्प्र; ग. ज. तये स एतत्प्र; च. तये तैत् प्रे च स एत; झ. तये च एतत्प्र. १० क. ख. घ. झ. ट. तिसृणां भक्तिसाहचर्यं भक्तिश्च; च. तिसृणां ५ भक्तिश्च भक्तिसाहचर्यं; ठ. ड. तासां भक्तिसाहचर्यं व्याख्यास्यामः । तासामेव तिसृणां भक्तिसाहचर्यं भक्तिश्च. ११ च. लोकादीर्नानां द्वी. १२ क. ख. ग. ज. ' देवता ' नास्ति.

यद्येवमुच्यतां तर्हि कानि किंभक्तीनीति । तदुच्यते । अथैतान्यग्नि-
भक्तीनि । अथेति विशेषाधिकारे । अग्निं मजन्ते अग्निना वा भज्यन्ते

इत्यग्निभक्तीनि । कतमानि । ' अयं लोकः '

पृथिव्यादीन्यग्नि- इत्येवमादीन्यग्निभक्तीभ्यवगन्तव्यानि । ' ये च
भक्तीनि देवगणाः समाभ्नाताः प्रथमे स्थाने ' तद्यथा

' आप्रियः ' (निघ० ५ । २) ' अक्षाः प्रावाणोऽ-

भीशवः ' (निघ० ५ । ३) इत्येवमादीनि ' अग्रायी पृथिवी ईळा
इति स्त्रियः ' । ईळा पृथिवी अग्रायी इति क्रमेण वक्तव्ये क्रमभेदः ।

अग्रायी तैत्समाख्यानासंनिहृष्टतरा न तथा पृथिवीति तस्मात्प्रथममुच्यते ।
ततः पृथिव्याश्रयसंबन्धादग्नेः । न तथेळां पारोक्ष्यादभिषेयस्य । आर्षी-

मध्ये ' तिस्त्रो देवीः ' इत्यत्र इळां भारत्या शुस्थानाया अनन्तरं श्रूय-
माणा ' आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळां

इळा कथं पृथि- मनुष्वत् ' (ऋ० सं० १० । ११० । ८)

वीस्थाना इति । कथं पृथिवीस्थानेति । उच्यते । अनुया-
जेषु सामर्थ्यात् । ' द्यां भारत्यादिवैरस्पृक्षत्सरस्व-

तीमं रुद्रेयज्ञमावीदिहैवेळ्यं, वमुमत्या ' (मैत्रा० सं० ४ । १३ । ८ ॥
तैत्ति० ब्रा० ३ । ६ । १३ । ७) इत्यतः सामर्थ्यमुनीय वमुताहच-

र्यात् ' इहैवेळ्यां ' इति चाग्निभक्तिरिळःयाह । रुद्रेः साहचर्यात्सरस्वती मध्य-
स्थाना । आदित्यैः साहचर्याद्भारती शुस्थानेति ।

' अथारय कर्म ' । अथास्याग्नेः कर्म सहभावि अनन्यदेवतागामि

यसंयोगादसत्यप्यग्निशब्दे आग्नेय एव मन्त्रो

अग्नेः कर्म भवति । ' वहनं च हविषाम् ' इत्येवमादि ।

' दार्ष्टिंविषयिकम् ' । दृष्ट्यनुग्रहो यस्य विष-

यस्तद्दार्ष्टिंविषयिकम् । प्रकाशादि कर्मैत्यर्थः । ' अग्निर्कर्मैव तत् ' इति
प्रकृतौ पुनर्वचनमादरार्थमध्यात्मेऽपि यावान्कश्चित्प्रकाश इति ।

१ क. ख. ग. ख. ज. घ. झ. हला. २ क. ख. घ. झ. हडा; ग. च. ज.

हडा. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तन्समानाख्यां. ४ क. ख. घ. झ. ग. ख.

ज. हला. ५ क. ख. घ. झ. इवेळया; ग. च. ज. इवेडया. ६ च. इत्र्यानुग्रं

इत्य. ७ च. प्रकृतिपुनंते. ८ ख. प्रकाशादिकर्मैत्यर्थः । अग्निर्कर्मैवेति शि. ९ इ.

‘ अथास्य संस्तविका देवाः ’ यैः सहाग्निः स्तूयते । तद्यथा
अग्नेः संस्तविका ‘ इन्द्रः सोमः ’ इत्येवमादयः । मन्त्रस्वभा-
देवाः वोपेदर्शनाय संस्तवोदाहरणम् । अग्नेः पूर्व
पाताद्देवताद्वन्द्वे मुख्यता ।

५ ‘ अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे मुतावतो यज्ञमिहोप यातम् । अम-
र्धन्ता सोमपेयाय देवाः ’ (ऋ० सं० ३ । २५ । ४) इति ॥ विश्वामि-
त्रस्येयमार्षम् । आग्रायणे विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । ६ । २ ॥
४ । ३ । २) । हे भगवन् अग्ने त्वम् इन्द्रश्च अस्य दाशुषो

१० इन्द्रेण सह स्तवः दत्तवते हवींषि यजमानस्य दुरोणे यज्ञगृहे
मुतावतः अभिषुतवतः सोमं मृधं संग्रामम्
अकुर्वाणौ अन्तरा केनचित्सह सोमपेयाय सोमपानार्थम् उपयातमि-
त्येतदाशास्महे ।

‘ अग्नीषोमाचिमं सु मे ’ शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्षतं
भवतं दाशुषे मयः ’ (ऋ० सं० १ । ९३ । १) ॥ सोमेन सह

१५ सोमेन सह संस्तवः । गोतमस्यार्षम् । पौर्णमास्येऽग्नीषोमी-
यस्थानुवाक्या (काठक सं० ८ । १०) । हे
अग्नीषोमौ युवामुच्येथे । इमं हवम् आह्वानं मे

मम सुष्टु शृणुतं वृषणौ वर्षितारौ । श्रुत्वा चागच्छतमागत्य च प्रतिहर्षतं
प्रतिप्रेषतम् । मया पूर्वं प्रेषितौ प्रतिक्रामयेथामिमानि सूक्तानि श्रोतुम् ।

२० श्रुत्वा चेमानि भवतं दाशुषे युवां हविर्दात्रे मयः । सुखावित्यर्थः ।

१ च. संस्तविकां सां. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘भावोपसद्’. ३ ग.
इन्द्रश्च । २८ । इति । वि ; घ. झ. ट. इन्द्रश्च दाशुष इति विं. ४ घ. ट. [ठ.

ड. ‘ इति ’ नास्ति. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘र्षम् । विराहनुष्टुप् । आग्रय’ ;
च. ‘र्षम् । ~ आग्रय’ विराहनुष्टुप् । ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘न्द्रश्च

२५ देवा देवो अस्य ; च. ‘न्द्रश्चो स्य ~ श्वदेवा देवो अ. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
‘वतः यज्ञं सो’. ८ ग. ‘स्महे । २९ । अग्नी’. ९ ग. ज. ‘विममिति । सो’ ; घ.

झ. ट. ‘षिमं सु मे’ दाशुषे मयः । सो. १० क. ख. घ. झ. ट. ‘र्षम् । अनुष्टुप् ।
पो’ ; च. ‘र्षम् । पो’ अनुष्टुप् । ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘मासे अग्नीषो-

मस्या’ ; च. मास्येऽग्नीषोमीय’ मेऽग्नीषोम. १२ घ. ठ. ठ. ड. ‘ह्वानं मया पूर्वं प्रे’
३० १३ ग. ‘त्यर्थः. ३० । त्वं’.

‘त्वं नो अग्रे वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽवं यासिसीप्राः । यजिष्ठो
वह्निमतः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्यस्मत् ’ (ऋ० सं० ४ । १
वरुणेन सह । ४) ॥ वरुणेन संस्तवः । वामदेवस्यार्षिभ्यै ।
अवभृथे विनियोगः (आश्व० श्रौ० ६ ।

१३) । हे भगवन् अग्रे त्वम् अस्मान् यथावत् विद्वान् ५
जानानो भक्ता ममैत इति वरुणस्य देवस्य योऽस्मान्प्रति हेळैः
क्रोधः तमनेनावभृथकर्मणा अवयासिसीप्रा अपगमय । किं च । यस्त्वं
यजिष्ठो यष्टृतमो देवानां होतृत्वे वर्तमाने वह्निमतो वोढृतमश्च हविषां सै त्वं
पुनः पुनैः शोशुचानो देदीप्यमानः तेषु तेषु कर्मसु विश्वानि सर्वाणि
द्वेषांसि द्वेष्याणि प्रकर्षेण अस्मत् अस्मत्तो मुमुग्धि मुञ्च । विनियोजयेत्यर्थः ॥ १०

‘अग्नीपर्जन्याववृत्तं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः । इळीमन्यो
जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिषि आ धत्तमस्मे’ (ऋ० सं० ६ । १२ । १६) ॥
पर्जन्येन संस्तवः । भरद्वाजस्यार्षिभ्यै । हे अग्नीपर्जन्यौ
पर्जन्येन मह युवामुच्येथे । अवतम् आगच्छतम् इमां धियम्
इदं कर्म प्रति मे मम अस्मिन् हवे अस्मिन्ना- १५
हाने सुहवौ स्वाहानौ सुष्टुतिं शोभनामिमां स्तुतिं श्रोतुम् । आगत्य च
श्रुत्वामाम् इळीम् अन्नम् अन्य एको जनयतु । गर्भमन्यः । गर्भमेको जनयतु ।
तौ युवामेवं प्रतिसंवत्सरं प्रजावतीः प्रजासंयुक्ता इपः अन्नानि आभिमु-
ख्येन स्थित्वां धत्तं दत्तम् अस्मे । अस्मभ्यमित्यर्थः ।

१ ग. च. ज. ‘णस्येति वरुणं’; व. झ. ट. ‘णस्य० ग्यस्मत् । वरुणे’ २०
२ क. ख. हेळोऽव’. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘र्षिम् । त्रिष्टुप् । अव’; च.
‘र्षिम् । √ अव’ त्रिष्टुप् । ४ क. ख. ग. च. ज. घ. झ. हेलः. ५ ग. च. ज.
‘सः’ नास्ति. ६ घ. ट. ड. ‘पुनः’ सकृदेव. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
अवयो’; च. वियो’ अव. ८ ग. ‘त्यर्थः । ३१ । अग्नी’. ९ ग. ‘वत्’ । पर्ज’;
घ. झ. ट. वत्’ इष’. १० क. ख. च. ज. इलाम’. ११ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. ‘र्षिम् । त्रिष्टुप् । हे’; च. ‘र्षिम् । √ हे’ त्रिष्टुप् । १२ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. ‘इलाम्. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. जनयत् जनयतु; च. जन-
यत् √ । गर्भ’ जनयतु. १५ ग. ‘त्यर्थः । ३२ । अग्रे’.

अग्ने देवाँ इहा बह सादयो योनिषु त्रिषु । परिं भूप पिब ऋतुना ।
(ऋ० सं० १ । १५ । ४) ॥ ऋतुभिः

ऋतुभिः सह संस्तवः । मेधातिथेराषर्म । ऋतुयाजेषु विनियोगः ।
हे भगवन् अग्ने देवान् इह अस्माकं कर्मणि

५ आवह आह्वय । आहूय देवान् सादय योनिषु त्रिषु । सवनेषु त्रिष्वेतान्यथा-
कालं यज । अमुना प्रकारेण परिभूप सर्वतो देवयोगेनालंकुरुष्वैतं यज्ञम् ।
आत्मना पिब चैतं सोमम् ऋतुना सह ।

‘ आग्नावैष्णवं च हविः ’ । हविर्ग्रहणाद्धविष एव संप्रदानार्थं या
ऋचस्ताः संस्तवेनाग्नाविष्णोः सन्ति । तद्यथा ।

१० ‘ अग्नाविष्णु सँजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरंः । युष्मैर्वाजेभिराँ गतम् ’

आग्नावैष्णवं हविः (मैत्रा० सं० ४ । १० । १ ॥ ४ । ११ ।
२ ॥ तैत्ति० ४ । ७ । १) इत्येवमाद्या ॥
वामदेवस्येयमार्षर्म । आग्नावैष्णवे हविषि

विनियोगः (मैत्रा० सं० १ । ४ । १४ ॥ २ । १ । ७ ॥ २ । ३
। ५ ॥ तैत्ति० ४ । ७ । १) । हे अग्नाविष्णु सजोषसा

१५ सजोषसो नित्यं समानर्पिती युवामुच्येये । एताः अस्मद्गिरः अस्मस्तुतयः
वर्धन्तु वर्धयन्तु युवाम् । वृद्धौ च सत्यामस्मत्संप्रदेयैः युष्मैः द्योतनवद्भिः
वाजेभिः अन्नैः अभ्युद्यतैः अस्मान्प्रति आयातम् ।

‘ न त्वृक्संस्तविकी दशतयीषु विद्यते ’ । ‘ न ’ इति प्रतिषेधः ।

‘ तु ’ शब्दोऽवधारणार्थः । ऋक् संस्तविकी

२० अग्नाविष्णोः संस्तवयुक्ता । दशतयीषु । दशमण्डलावयवप्र-
विभागेन तायत इति दशतयः ऋग्वेदः तस्य
तयीषु न विद्यते शाखाः दशतय्यः तासु तासु सर्वास्वापि शाखासु
एकापि हविषि अविनियुक्ता शस्त्रमध्यपातिनी ऋग-

१ ग. सादय० । ऋतुं; घ. झ. ट. सादय० ऋतुना. २ क. ख. घ. झ. ट.

२५ ठ. ड. षर्म । गायत्री । ऋतुं; च० षर्म । √ ऋतुं गायत्री । ३ क. ख. घ.
झ. ट. ‘ तद्यथा ’ नास्ति; ग. तद्यथा. ४ ग. ज. °जोषसेत्येवमाद्या । वां;
घ. झ. ट. सजो० वाजेभिरागतं । वामदेवः । गायत्री । आ०. ५ ठ. ड. °रा गतम् ।
वामदेवः गायत्री । आ०. ६ च. °षर्म । √ आ० गायत्री । ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. नित्यं सहजोषणौ नित्यं समा०; च. नित्यं √ समां सहजोषणौ. ८ क. ख. ठ.
ड. °प्रीती वां युवा; ग. ज. °प्रीतां युवा; घ. झ. ट. °प्रीती वा यु; च.
°प्रीती √ यु० वा. ९ ग. ज. सांस्त; च. सँस्त० सं. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ.

३२ ‘ अपि शाखासु ’ नास्ति; च. सर्वास्वापि शाखासु.

प्राविष्णोः संस्तविकी नास्ति । स्यादयन्यत्र संस्तविकी न तु दशत-
यीषु । असंस्तवेन वा दशतयीष्वपीत्युत्सर्गं दर्शयत्येवमेतन्मया निपुण-
मान्विष्यत इति ।

अथाप्ययमपर उत्सर्गः । ' अथाप्याग्नापौष्णं हविः ' एव ' न तु
संस्तवः ' । तस्मिन्स्तु हविषि कितु पृथक्पृथगे- ५
आग्नापौष्णं हवि- वाग्निः स्तूयते पूषा च । ' तत्र ' तस्मिन्संस्तवे
रेव न तु संस्तवः अग्नापूष्णोः ' एतां विभक्तंस्तुतिमृचमुदाहरन्ति ' ५
नैरुक्ताः ॥ ८ ॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः । स १०
स्वैतेभ्यः परिददत्पितृभ्योऽग्निदेवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः (ऋ० सं०
१० । १७ । ३) ॥ पूषा त्वेतः प्रच्यावयतु विद्वाननष्टपशुर्भु-
वनस्य गोपा इत्येष हि सर्वेषां भूतानां गोपायितादित्यः स त्वैतेभ्यः
परिददत्पितृभ्य इति सांशयिकस्तृतीयः पादः पूषा पुरस्तात्तस्या-
न्वादेश इत्येकमग्रिपरिष्ठात्तस्य प्रकीर्तनेत्यपरम् । अग्निदेवेभ्यः १५
सुविदत्रियेभ्यः । सुविदत्रं धनं भवति विन्दतेर्वैकोपसर्गाद्ददातेर्वा
स्याद्वशुपसर्गात् ॥ ९ ॥

पूषा त्वेत इति । देवश्रवसो यामायनस्यापिर्भू । शवस्य कर्णे प्रमी-
तानुमन्त्रणे विनियोगः (आश्व० श्रौ० ६ । १०) । प्रीतीत उच्यते । २०

१ ग. ज. सांस्त; च. सांस्त सं. २ ग. च. ज. सांस्त°. ३ ग. ज. पौष्णवं;
च. पौष्णवं ष्णं. ४ ग. ज. ट. तस्मिन्संस्त; घ. तस्मिन्संस्त°. ५ ठ. ड.
विभक्तिस्तु°. ६ क. ख. १ (८); ग. ५; ठ. ८ । इति निरु० उत्तरखण्डके प्रथ-
माध्याये अष्टमः खण्डः । ८ । ; ड. ८; इतरेष्वङ्गो नास्ति. ७ क. ख. ' दक्षते';
छ. त. ' दधाते'; द. ' हपाते' दा. ८ क. ख. २ (९); छ. १०; त. द. २.
९ ग. त्वेत ईति; ज. पूषा त्वेत इति सर्वा ऋग्दीयते. १० घ. ट. ' श्रवणे या'.
११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' र्षम् । त्रिष्टुप् । श'; ग. ज. ' र्षम् । शुनसङ्घर्णं;
च. ' र्षम् । शवस्य' त्रिष्टुप् । १२ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. स प्रमी'; च. ५
प्रमी° स.

पूषा भगवान् आदित्यः पथामधिपतिः । सः त्वाम् इतो मनुष्यलोकात्
विशिष्टेन पथा प्रच्यावयतु प्रगमयतु विद्वान्

अग्नापूष्णोर्विभ- अव्यवहितज्ञानः । सर्वत्र ज्ञानाव्यवधानादेव च
क्तस्तुरेदाहरणम् अनष्टपशुः । भुवनस्य गोपाः । भुवनस्य भूर्त-
जातस्य गोपाः रक्षिता उपर्यवस्थितः । स

५

पूषा एत्रंलक्षणः त्वां प्रगमय एतेभ्यश्चन्द्रमण्डलोपान्तवासिभ्यः पितृभ्यः
परिददातु । तदुक्तम् । ' दक्षिणायनात्पितृलोकम् ' (निरु० १४ । ८)
इति । अग्निः अपि चैतेभ्य उक्त्वेष्य देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यो ये विद्युतो
मध्ये निवसन्ति तेभ्यः परिददातु । तदुक्तम् । ' चन्द्रमसो वैद्युतम् '
१० (छान्दो० उ० ५ । १० । २) इति । स त्वमेवमुभावपि देवलोका-
पितृलोकावभ्यश्नुहीत्याशीः प्रभीतस्य । उक्तं च ' ये देवयानाः पितृ-
यानाश्च लोकाः सर्वास्ताननृणाः संचरेम ' (मान० श्रौ० २ ।
५ । ५ । २२) इति ।

१०

' स त्वैतेभ्यः इति सांशयिकस्तृतीयः पादः ' । संशयोऽस्मिन्नस्तीति

१५

स्तुतिविभागे द्वे
मते

साशयिकः तृतीयः पादोऽस्या ऋचः । कथं
कृत्वा । यथा 'पूषा पुरस्तात्' ' पूषा त्वेतश्च्याव-
यतु ' इति । ' तस्यान्वादेश इत्येकं ' सामर्थ्या-
दर्शनम् । तथा व्याख्यातमेव । त्रयः पौष्णाः पाद्वा

एक एवाग्नेयः । एवमित्यं विभक्तस्तुतिः । अथवा । द्वावुत्तरावाग्नेयौ ।

२०

तत्रार्थयोजना । पूष्णा प्रच्यावितं सन्तं सोऽग्निर्वक्ष्यमाणस्त्वामेतेभ्यः पितृभ्यो
देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः परिददातु । मा पितृभ्यः प्रेतेभ्य इत्यभिप्रायः ।
' तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति ' (छा० उ० ५ । ९ । २)
इत्यपेक्ष्य सर्वनामनश्चोत्तरेणाप्यग्निशब्देन संबन्धमविरुध्यमानं व्यपेक्ष्याक-
ल्पयत् ' अग्निरुपरिष्ठात्तस्य प्रकीर्तनेत्यपरम् ' इति ।

२५

' सुविदत्रं धनं भवति ' ' विन्दतेर्वा ' ' सु ' इत्येतेन एकेन उपस-
सुविदत्रशब्द- र्गेण उपसृष्टात् । ' ददातेर्वा ' ' सुविभ्यां ' द्वाभ्यामु-
पसर्गाभ्यां युक्तात् । तद्येपामस्ति ते सुविद-
स्य व्युत्पत्तिः त्रिधाः ॥ ९ ॥

त्रिधाः ॥ ९ ॥

१ ग. ज. भूतस्य. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तदप्युक्तं. ३ च. 'कल्पय'.

४ क. ख. २ (९); ग. १०; ठ. 'येभ्यः । इति निरुक्त० उत्तरषट्कप्रथमाध्याये नवमः खण्डः । ९ ।; ड. ९ इति निरुक्तोत्तरषट्कटीकायां प्रथमाध्याये नवमः

३३

खण्डः । ९ ।; इतरेष्वङ्को नास्ति.

अथैतानीन्द्रभक्त्यान्यन्तरिक्षलोको माध्यंदिनं सवनं ग्रीष्मस्त्रि-
ष्टुप्पञ्चदशस्तोमो बृहत्साम ये च देवगणाः समाम्नाता मध्यमे
स्थाने याश्च स्त्रियोऽथास्य कर्म रसानुप्रदानं वृत्रवधो या च
का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तदथास्य संस्तविका देवा अग्निः सोमो
वरुणः पूषा बृहस्पतिर्ब्रह्मणस्पतिः पर्वतः कुत्सो विष्णुर्वायुरथापि
मित्रो वरुणेन संस्तूयते पूषणा रुद्रेण च सोमोऽग्निना च पूषा
वातेन च पर्जन्यः ॥ १० ॥

५

‘अथैतानीन्द्रभक्तीनि’ । पूर्ववत्सर्वम् ‘अन्तरिक्षलोकः’ इत्येवमादि ।
‘ये च देवगणाः समाम्नाताः’ (निघ० ५ । ५ । ८—१५)
मरुदादयः ‘याश्च स्त्रियः’ (निघ० ५ । ५ । १६—३६)
अदित्याद्याः ।

१०

‘अथास्य कर्म रसानुप्रदानम्’ अवश्यायवर्षादि ‘वृत्रवधो’ मेघ-
वधः । ‘या च का च बलकृतिः’ अन्यापि
इन्द्रकर्म ‘इन्द्रकर्मैव तत्’ इत्यादरार्थं पुनर्वचनम् ।
अपि कीटापिपीलिकादिषु यद्वलेन क्रियते सर्वमि-
न्द्रकर्मैव तादिति ।

१५

संस्तांविका देवाः ‘अथास्य संस्तविकाः देवाः अग्निः’ इत्येव-
मार्दयः ।

‘इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूपथः । तद्वां चेति प्र
अग्निना संस्तवः वीर्यम्’ (ऋ० सं० ३ । १२ । ९) इति ॥
विश्वामित्रस्थेयमार्षम् । ऐन्द्राग्ने हविषि विनि-
योगः (मैत्रा० सं० २ । १ । १) । हे इन्द्राग्नी रोचना रोचनौ
दीपनौ हविषा च उदकेन च दिवः परिभूपथो वाजेषु अस्मान् सर्वतः ।

२०

१ छ. त. द. काचिद्वल°. २ द. °णेन च संस्तू°. ३ छ. त. द. सोमो वायुना
च पू°. ४ क. ख. ३ (१०); छ. ११; त. द. ३. ५ ग. च. ज. ‘च’
नास्ति. ६ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. ‘दयः । तद्यथा । इन्द्रा°; ग. ‘दयः । ३५।
इन्द्रा°; च. ‘दयः । ° इन्द्रा° तद्यथा । ७ ग. ज. दि इति । विश्वा°; घ. झ. ट.
दिवः । विश्वा°. ८ ठ. ड. ‘इति’ नास्ति. ९ घ. झ. ट. ठ. ड. °मित्रः ।
गायत्री । ऐ°; च. °त्रैस्त्रैः-मर्ष° । ऐ° न्नः । गायत्री ।

२५

३०

येनाच्चेष्टु स्वामित्वेन भवेमहि तथा कुरुतम् । तद्वीर्यं भवतोः प्रकृष्टम्
अहं चंति जाने येन परिभावयथो वीजेषु स्तोतृन् । अत एवमाशास्महे ।

सोमेन

सोमेन संस्तवः ' इन्द्रासोमा समघशंसम् '
इत्यत्र । व्याख्यातः (निरु० ६ । ११) ।

५

वरुणेन

वरुणेन संस्तवः ' इन्द्रावरुणा युवमध्वराय
नः ' इति । व्याख्यातः शेषैः (निरु०

५ । २) ।

' इन्द्रा नु पूषर्णो वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ' (ऋ०

सं० ६ । ५७ । १) इति ॥ पूषणा संस्तवः ।

१०

पूषणा

भर्द्वाजस्येयमार्षम् । ऐन्द्रापौष्णे हविवि विनि-
योगः (मैत्रा० सं० २ । ६ । ४ ॥ ४ ।

१२ । ६) । हे इन्द्रापूषणौ सख्याय समानख्यानाय स्वस्तये स्वस्य-
यनाय च वाजसातये च वाजस्यान्नस्य सननाय हुवेम आह्वयामहे युवां
वयम् । नित्यं यज्ञेष्विदमाशास्महे इति ।

१५

' इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते '

(ऋ० सं० ४ । ४९ । १) ॥ बृहस्पतिना

बृहस्पतिना

संस्तवः । वामदेवस्येयमार्षम् । ऐन्द्राबार्हस्पत्ये
हविवि विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । १ ।

१२ ॥ २ । २ । ३) । हे इन्द्राबृहस्पती इदं हविः यद्वयं दध्मः

१०

तन् प्रियम् इष्टम् आस्ये वाम् अस्तु । यच्चेदम् उक्थं शस्यते मदः च
प्रतिगरेण सह तच्च वां प्रियमस्त्वित्येतदाशास्महे ।

- १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यायेषु; च. वीजेषु° यागे. २ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. स्तोतृन् पुरः । अत°; च. स्तोतृन् । √ अतः° पुरः । ३ ग. शेषः । ३६ ।
इन्द्रा. ४ ग. ज. घ. झ. ट. पूषणोति । पूषणा°. ५ ठ. ड. 'इति' नास्ति. ६ घ.
२५ झ. ट. ठ. ड. भर्द्वाजः । गायत्री । ऐन्द्रा°. ७ च. °र्षम् । √ ऐन्द्रा° गायत्री ।
८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. सातये च अन्नसननाय च हु°; ग. ज. वाजसननाय
हु°. ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'इति' नास्ति; ग. इति । ३७ । १० क. ख.
घ. झ. ट. हविरिति बृह°; ठ. ड. इदं वामास्ये हविरिति बृहस्पतिना संस्तवः । इदं
वामास्ये हविः°. ११ क. ख. वामदेवस्यार्षम् । गायत्री । ऐन्द्रा°; घ. झ. ट.
ठ. ड. वामदेवः गायत्री । ऐन्द्रा°. १२ च. °र्षम् । √ ऐन्द्रा° गायत्री । १३ ग.
३१ °स्महे । ३८ । विश्वे°.

‘ विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापंश्चन प्र भिनन्ति व्रतं वाग्म् । अन्धे-
न्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगा-
बृहस्पतिना तम् ’ (ऋ० सं० २ । २४ । १२) ॥
इति ब्रह्मणस्पतिना संस्तवः । गृत्समदस्येयमा-
र्षम् । विश्वं सत्यं जगत् सत्यं यावदिदमस्ति किञ्चित् हे
मघवाना मघवानौ धनवन्तौ इन्द्राब्रह्मणस्पती युवामुन्नेथे युवोः युवयोः
सर्षमेतत्त्वभूतम् । किं व । यतः सर्षस्थेशानौ स्थः अतः आपोऽपि
न प्रमिनन्ति न हिंसन्ति व्रतं कर्म वां युवयोः । यथासंकल्पं वर्तन्ते ।
यौ युवाभेयमंतिमहानुभावौ तौ अम्माकम् आभिमुख्येन इदं हविः जिगा-
तम् आगच्छतं भोक्तुं युजावित्र सहचारिणौ वाजिनौ रथादिमुक्तौ
बुभुक्षु स्वम् अन्नम् । इत्येतदाशास्मैहे ।

‘ इन्द्रापर्वतो बृहता रथेन वामीरिष आ ब्रह्मं सुवीराः । वीतं हव्या-
न्ध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिच्छीं मदन्ता ’
पर्वतेन (ऋ० सं० ३ । १३ । १) ॥ पर्वतेन
संस्तवः । विश्वामित्रैस्यार्षम् । हे इन्द्रापर्वतौ
देवौ युवामुन्नेथे । बृहता महता रथेन महता उदकरंहणेन उदकदानेन
वामीः वननीया इषः अन्नानि आवहतम् ईरयतम् । व्रीह्यादीनि प्रेरयतम् ।
सुवीराः शोभनवीराः । ततः स्वे काले ईजानानामस्माकं वीतं भक्षयतं
हव्यानि अध्वरेषु पुरोडाशादीनि वर्धेथां च गीर्भिः स्तुतिभिः पुनः पुनः
प्रतिकर्म इच्छीं अन्नेन मदन्तौ तृप्यन्तौ । इत्येतदाशास्मैहे ।

१ ग. ज. सत्यमिति ब्रह्म°; घ. झ. ट. सत्यं मघ० वाजिना जिगात । ब्रह्म°.
२ ठ. ड. ‘ इति ’ नास्ति. ३ घ. झ. ट. ठ. ड. गृत्समदः । त्रिष्टुप् । विश्वं°.
४ च. ‘ षम् । ~ विश्वं° त्रिष्टुप् । ५ ग. ज. सत्यं वा यद्विदमस्ति° । ६ क. ख. ग.
ज. घ. झ. ट. ठ. ड. किञ्च; ७ च. किञ्चित्° च. ८ घ. झ. ट. ठ. ड.
यतः. ९ क. ख. घ. झ. वर्तते. १० ग. °स्महे । ११ इन्द्रा°. १२ ग.
°र्वता ० । पर्वतेन°; घ. झ. ट. र्वा ० मदन्ता. १३ क. ख. च. ज. रिलया.
१४ घ. झ. ट. ठ. ड. मित्रः । त्रिष्टुप् । हे°; च. मित्रस्यार्षं । ~ हे° त्रिष्टुप् ।
१५ ठ. ड. पुरोडाशा°. १६ क. ख. ग. च. ज. झ. इत्या; घ. ठ. ड.
इच्छया. १७ ग. °स्महे । ४० । इन्द्रा°.

‘ इन्द्राकुत्सा^१ वहमाना रथेना वामस्या अपि कर्णे वहन्तु ।

निः पीमद्भ्रषोर्धर्मथो निः पधैस्थान्मघोनो हृदो

कुत्सेन

वरश्चस्तर्मासि ’ (ऋ० सं० ५ । ३१ । ९) ॥

कुत्सेन संस्तवः । अवस्योरार्षम् । हे इन्द्राकुत्सौ वहमानौ उह्यमानौ रथेन

५ युवां ब्रुवे । आवहन्तु वाम् अस्याः अश्वाः अपि कर्णे नित्यं कर्मणे ।

ततश्च कर्मणा परितोषितौ अस्माभिः निः पीम् अद्भ्रषो निर्धमथः सर्वतः

अरीन् निः पधस्थात् समानस्थानादन्तरीक्षादद्भ्रषः अपः । तत ओषध्या-

द्युत्पत्त्या सुकाञ्चं कुर्वाणौ मघोनः महान्त्येतानि तर्मासि हृदो हृदयस्य छाद-

कानि अनाकालभयकृतानि वरथः वारयथ इत्येतदाशास्मैहे ।

१० ‘ इन्द्राविष्णुं दंहीर्ताः शम्बरस्य नव पुरो नवति च श्रथिष्ठम् । शतं

वर्चिनः सहस्रं च साकं हृथो अप्रत्यक्षुरस्य

विष्णुना

वीरान् ’ (ऋ० सं० ७ । ९९ । ६) ॥

विष्णुना संस्तवः । वसिष्ठस्यार्षम् । त्रैधातव्यां

विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । ४ । ४) । हे इन्द्राविष्णु युवां दंहिताः

१५ स्थिरीकृताः शम्बरस्य मेघस्य असुरस्य वा स्वभूताः पुरः श्रथिष्ठं हत-

वन्तौ स्थः । ताश्च हत्वा मेघान्तर्गतान् शतं वर्चिनः दीप्तिमतोऽनवतो वा

सहस्रं च साकम् अवस्थितान् सहभावेन एकनिश्चयान् हृथो हतवन्तौ

स्थः अगति वीरान् असुरस्य शम्बरस्य स्वभूतान् । यौ युवा-

मेतदतिदुष्करमकार्षं तावस्माकमपि शत्रून् हथ इत्येतदाशास्मैहे ।

२० १ ग. °कुत्सा० । कुत्सेन°; घ. झ. ट. °कुत्सा व० वरथ° । २ च. निः पीम°.

३ च. निः सध° । ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. र्षम् । त्रिष्टुप् । हे°; च. °र्षम् ।

° हे° त्रिष्टुप् । ५ ग. °स्महे । ४१ । इन्द्रा° । ६ ग. °हिता० । विष्णु°; घ. झ.

ट. °हिताः ० अप्रत्यक्षु° । ७ घ. झ. ट. ठ. ड. वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । त्रै°, च. वसि-

ष्ठस्यार्षम् । ° त्रै° त्रिष्टुप् । ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. शम्बरस्य नवति नव च

पुरः मेघ°; च. शम्बरस्य ° मे° नवति नव च पुरः. ९ ग. ज. वा भूताः. १० क.

ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अगति अरतीकारान् वी°; च. अगति ° वी° अपतीका-

२७ रान. ११ ग. °स्महे । ४१ । इन्द्र°.

‘ इन्द्रवायु इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्द्रवो वामुशान्ति
 हि (ऋ० सं० १ । २ । ४) ॥ वायुना
 वायुना संस्तवः । मधुच्छन्दैस आर्षम् । उपात्तद्विक-
 भात्मनो हि मध्यमस्य एकस्यापि वाश्विन्द्रभावेन
 विकरणधर्मिवाङ्घ्रित्वं विश्रतो नैरुक्तपक्षेऽपि द्विवचनसंस्तुतिरविरुद्धा ५
 यथैकस्योदकस्य द्विपात्रस्थस्य द्विवचनेनोक्तिः । ऐन्द्रवायवस्य ग्रहस्य
 पुरोनुवाक्येयम् (भैत्रा० सं० १ । ३ । ६) । हे इन्द्रवायु युवामु-
 च्येथे । इमे सुता अभिषुताः इन्द्रवः । सोमाः इत्यर्थः । सुसंस्कृताः सोमा
 यस्मात् उशन्ति कामर्थन्ते युवामात्मनैः पानाय तस्मादुपागच्छतं पातुमे-
 तान् । कथं च पुनरुपागच्छतम् । प्रयोभिः अन्नैरस्मत्संप्रदेयैरभ्युद्यतैरित्ये- १०
 तदाशास्महे ।

‘ अथापि मित्रो वरुणेन संस्तूयते ’ । ‘ अथ ’ शब्दः प्रकृतादि-
 न्द्राद्विशेषतो मित्रादीन्प्रकरोति । ‘ अपि ’
 इतराः का देवता इति संभावने । प्रकृताभ्यस्तिसृभ्यो देवताभ्यः
 काभिः संस्तूयन्ते इति संभावने । पराण्यपरेणाभिधानेन संस्तवयुक्तानीति भेदपक्षे १५
 अधिरुद्धमेव । नैरुक्तपक्षे यद्विरुद्धाभासमिष्य किञ्चि-
 दत्र तदिन्द्रवायुसंस्तवे प्रतिसमाहितम् । ‘ मित्रो वरुणेन ’ इत्येवमादिषु
 या प्रथमया निर्दिश्यते सा मुख्यस्तुतिः या तृतीयया सामुख्या । सा
 च निर्दिष्टी

१ ग. च. ज. घ. झ. ट. सुता इति वायुना । २ क. ख. हि । इति । वायु । २०
 ३ घ. झ. ट. ठ. ड. च्छन्दा गायत्री । उपा । ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 ‘त्मनोऽपि हि’; च. ‘त्मनो० हि’ पि. ५ क. ख. घ. झ. ट. ड. ‘चनोक्तिः;
 ट. च० नोक्ति’ने. ६ ग. ज. ‘यन्ति; च. ‘यन्ति यु’न्ते. ७ क. ख. ग. ज. घ.
 झ. ट. ‘मात्मपाना’; च. ‘मात्मनैः पा’ ८ क. ख. घ. झ. ट. ‘च’ नास्ति;
 च. चै. ९ क. ख. ग. ज. ट. ठ. ‘विरोध एव’; च. अविर्हृद् एव रोध. १० क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. मुख्यास्तु ; च. मुख्यैस्तु स्या ११ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. ‘यया निर्दिष्टा साऽमुख्या । आ नो’; च. ‘यया सा अमुख्या सा च नि-
 र्दिष्टा’ निर्दिष्टा सामुख्या. १२ ग. ‘ष्टा । ४३ । आ’.

‘ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यृतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुकृतू ’

मित्रो वरुणेन (ऋ० सं० ३ । ६२ । १६) इति ॥ विश्वा-
संस्तूयते मित्रैर्यार्षम् । मैत्रावरुण्याः पयस्यायाः पुरोनु-
वाक्या (मैत्रा० सं० २ । ३ । १) । हे

५ मित्रावरुणौ सुकृतू शोभनकर्माणौ युवामुच्येथे । गव्यृतिं गोयृतिं
यवसोदकोत्पत्तये रजांसि च गोयृतेर्यान्यन्यानि ब्रीह्यादिधान्योत्पत्तिक्षेत्राणि
तानि च ब्रीह्याद्युत्पत्तये मध्वा मधुरेण सस्यसंपत्करेण उदकेन अस्माकम्
उक्षतम् आँ सिञ्चतमित्येतदाज्ञास्महे ।

‘ सोमापूषणा जनर्ना रथीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः । जातौ

१० विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृष्वन्नमृतस्य
पूषा सोमेन संस्तू- नाभिम् ’ (ऋ० सं० २ । ४० । १) ॥

यते पूषणा सोमस्य संस्तवः । गृत्सैमदस्थेयमार्षम् ।

सोमापूषणस्य चरोः पुरोनुवाक्या (मैत्रा०

सं० २ । १ । ४—५ ॥ २ । २ । ४) । सोमापूषणौ चन्द्रसूर्यौ ।

१५ तावुच्येते । सोमापूषणा हे सोमापूषणौ युवां जननौ जनयितारौ रथीणां
धनानां जनयितारौ च स्वेनोपकारेण दिवो जनयितारौ पृथिव्याः जातौ
जातमात्रावेव युवां विश्वस्य सर्वस्य भुवनस्य भूतजातस्य गोपौ गोप्तारौ
बभूवथुः । देवाश्च रश्मयो युवामेव अमृतस्य उदकस्य नाभिं नहनं बन्ध-
नम् आधारं सार्वलौकिकस्य अकृष्वन् सदा कुर्वन्ति । युवामिदं नामास्माकं

२० कुरुतमित्याशिषा निराकाङ्क्षम् ।

१ म. च. ज. ‘रुणा घृतैरिति विश्वा’; घ. झ. ट. ‘वरु ० रजांसि सुकृतू ।
विश्वा’ । २ ठ. ड. ‘इति’ नारित. ३ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘मित्रो गायत्री ।
मैत्रा’; च. ‘मित्रस्यार्षम् । ‘मैत्रा’ गायत्री । ४ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘थे । घृतैः
उदकैर्गव्यु’ । ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘न्यानि स्थानानि ब्री’; च. ‘न्यानि

२५ श्रींस्थानानि. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘क्षतं सि’; च. ‘क्षतं औसि’ । ७ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘स्महे । पूषणा रुद्रेण च सोमः । सोमा’; ग. ‘स्महे । ४४।
सोमा’; च. ‘स्महे च सोमा’ पूषणा रुद्रेण च सोमः ८ ग. ‘नना० । पूषणा’; घ.
झ. ट. ‘नना०चमृ’ । ९ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘मदः । त्रिष्टुप् । सो’; च. ‘मदः ।
‘सो’ त्रिष्टुप् । १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘सोमा’; म. ज. ‘सोमापूषण’ ।
११ घ. झ. ट. ठ. ‘तारौ च घृ’ च. ‘तारौ च घृ’ च. १२ ग. ज. ‘थिव्या । जन-
यितारौ च । जातमात्रा’; च. ‘थिव्याः । जनयितारौ च । जा’ । १३ ग.

१३ ‘काङ्क्षम् । ४५ । सोमा’ ।

‘सोमारुद्रा युवमेतौन्यस्मे विश्वा तनूपु भेषजानि धत्तम् । अवं स्यतं
मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूपु बद्धं कृतमेनो अस्मत्’

सोमो रुद्रेण (ऋ० सं० ६ । ७४ । ३) ॥ रुद्रेण
संस्तवः । भरद्वाजस्येयमार्पम् । सोमारौद्रस्य

चरोः पुरोनुवाक्या (मैत्रा० सं० २ । १ । ५—६) । हे सोमारुद्रौ ५
युवामुच्येथे । एतानि सर्वाणि भेषजानि अस्मे अस्माकं तनूपु शरीरेषु
धत्तम् । किञ्च । अवस्यतं नित्यमस्मानवितुं रक्षितुमिच्छतम् । किञ्च ।
यत् अस्माकं मनोवाक्कायैः कृतम् एनः किञ्चिदस्ति तनूपु बद्धं तन्मु-
ञ्चतम् अस्मत्तः

‘अग्निना च पूषा’ । मध्यमेन च युस्थानेन च संस्तव इति १०
अग्निना च पूषा पार्थिवेन प्रतिषेधात् । ऋचं नोदाहरन्ति ।
मृग्यमुदाहरणम् । वायुना संस्तवैः । वातेन
च पर्जन्यैः ।

‘धर्तारो दिव ऋभवेः सुहस्ता वातापर्जन्या महिपस्य तन्यतोः । आप
वातेन च पर्जन्यः ओषधीः प्र तिरेन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो १५
यन्तु मे हवम्’ (ऋ० सं० १० । ६६ ।

१०) ॥ वसुर्कर्णस्यार्पम् । धर्तारो दिवः इति ऋभवः शोभनहस्ताः
वातापर्जन्यौ च आपश्च ओषधयश्च भगश्च रातिः दाता वाजिनश्च धार-
यितारो द्योतनवन्तो ये उक्ताः अर्थे उदकस्य महिपस्य महतः तन्यतोः

१ ग. ‘मेतानि’ । रुद्रे°; घ. झ. ट. ‘मेता ० कृतमेनो’ । २ घ. झ. ट. ठ. २०
ड. °द्वाजः । त्रिष्टुप सो° । ३ च. ‘र्षम् । ४ सो° त्रिष्टुप । ५ क. ख. ग. ज. घ. झ.
ट. ड. सोमारौ°; ठ. सोमारुद्र°; च. सोमारौद्र° सोमारौ° । ५ ग. ज. ‘शरीरेषु’
नास्ति. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘ञ्चतं अस्मत् अस्मत्तः. ७ क. ख. मध्यमथा-
नेन; घ. झ. ट. ठ. ड. मध्यस्थानेन; ग. ज. मरयमन व यु° । ८ क. ख. घ. झ.

ट. ठ. ड. °हरति. ९ ग. ज. ‘स्तवः । सप्त ऋषय इत्यत्र तत्र जागृते । अस्मत्तज्जावि- २५
त्येतस्मिन्पादे वाच्यदित्याविति वक्ष्यति । वातेन° । १० ग. °न्यः । ४६ । धर्ता°.

११ ग. °भव० । वसु°; घ. झ. ट. ‘भवः ० यन्तु° । १२ ग. ज. ठ. °कर्मस्या°;
घ. झ. ट. ड. ‘कर्णस्यार्पम् । त्रिष्टुप । घ°; च. ‘कर्णस्यार्पम् । ४ ध° त्रिष्टुप ।

१३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘इति’ नास्ति. १४ क. ख. घ. झ. ट.
‘अस्य’ नास्ति; च. अस्य°, १५ ग. ज. ‘उदकस्य’ नास्ति. ३०

सर्वार्थतनितुः हवम् आह्वानम् अस्माकम् आयन्तु आगच्छन्तु आगम्यं
च प्रतिरन्तु प्रतीर्णाः कुर्वन्तु एता अस्मद्भिरः । वर्धयन्त्वित्यर्थः । वाताप-
र्जन्याविलयत्र संस्तवः ॥ १० ॥

- ५ अथैतान्यादित्यभक्त्यान्यसौ लोकस्तृतीयसवनं वर्षा जगती
सप्तदशस्तोमो वैरूपं साम ये च देवगणाः समाम्नाता उत्तमे
स्थाने याश्च स्त्रियोऽथास्य कर्म रसादानं रश्मिभिश्च रसंधारणं
यैश्च किञ्चित्प्रवह्निहतादित्यकर्मैव तच्चन्द्रमसा वायुना संवत्सरे-
णोति संस्तवं एतेष्वेव स्थानव्यूहेष्वेतुच्छन्दःस्तोमपृष्ठस्य भक्ति-
१० शेषमनुकल्पयीत शरदनुष्टुबेकविंशः स्तोमो वैराजं सामेति पृथि-
व्यायतनानि हेमन्तः पङ्क्तिस्त्रिणवः स्तोमः शाकरं सामेत्यन्तरि-
क्षायतनानि शिशिरोऽतिच्छन्दास्त्रयस्त्रिंशः स्तोमो रैवतं सामेति
द्युभक्तानि ॥ ११ ॥

- १५ 'अथैतान्यादित्यभक्तानि' । पूर्ववत् 'असौ लोकः' इत्येवमादि ।
'सूर्यो द्युस्थानः' (निरु० ७ । ५) इति पूर्वमधिकृत्य 'अदित्यभ-
क्तानि' इहाब्रवीद्विशेषतः स्वपक्षोद्योतनानुस्मृतये ।

- 'ये च देवगणाः समाम्नाता उत्तमे स्थाने आदित्यादयः' (निघ०
५ । ६ । २४-२९) । 'याश्च स्त्रियः' उपाः सूर्या वृषाकपायी शरण्याः
२० (निघ० ५ । ६ । २-५) देवपत्न्यः (निघ० ५ । ६ । ३१) इति ।
'अथास्य कर्म' रसादानादि । 'यैश्च किञ्चित्प्रव-
आदित्यकर्म ह्निहतादित्यकर्मैव तत्' । 'चन्द्रमसा वायुना
संवत्सरेणेति संस्तवः' । अल्पत्वात्स्वशब्देरेव
ब्रवीति नाधिकारवचनं करोति 'अथास्य' इति ।

- २५ १ च. हवनम्. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'गत्य. ३ क. ख. = (१०);
ग. ११; ठ. ड. १० । इति निरु० (ड निरुक्तटीकायां) उत्तरषट्के प्रथमाध्या-
ये दशमः खण्डः । १० । ४ ङ. थ. घ. ट. ड. रसाधा°. ५ छ. त. द. यत्तु.
६ क. ख. त. द. °स्तवः । ४ । एते°; छ. °स्तवः । १२ । एते°. ७ छ. 'ङ्कि-
स्तुण°. ८ क. ख. ५ (११); छ. १३; त. द. ५. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. 'कीनीति । पू°. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'कृत्य अथैतान्यादि°; च.
'कृत्य - आदि° अथैतानि. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इतीहात्र°; च.
'कीनि - इहा° इति. १२ च. शरण्यु°. १३ ग. च. ज. यत्तु. १४ ग. °स्येति ।
३३ ४७ । पूर्वा°.

‘पूर्वापरं चरतो माययैतो शिशुः क्रीळन्तौ परिं यातो अध्वरम् । विश्वा-
चन्द्रमसा संस्तवः न्यन्यो भुवनाभिचष्टे ऋतूरन्यो विदधञ्जायते
पुनः’ (ऋ० सं १० । ८५ । १८) ॥

चन्द्रमसा संस्तवः । सूर्यायाश्चार्षम् । राजयक्ष्मेष्टषां वैश्वदेवस्य चरोः पुरो-
नुवाक्यैषा (मैत्रा० सं० २ । २ । ७) । पूर्वापरं चरतः सूर्याचन्द्र- ५
मसौ । पूर्वपक्षे पूर्वः सूर्योऽपरश्चन्द्रमाः । अपरपक्षे पुनरपरः सूर्यः पूर्वश्च-
न्द्रमाः । एवम् एतौ चरणम् अनुपरैतं चरन्तौ सर्वदा चरतः । तौ पुनः
मायया योगैश्वर्यकृतया कयापि प्रज्ञयेति । कस्तरचं वेद । न ह्ययोगिना-
वेवं शक्तौ चरितुमिति । अपि चैतदतिचित्रं यदपरिखिद्यमानौ आभूत-
संख्वात् शिशु इव क्रीळन्तौ अध्वरं यज्ञं निष्पादयन्तौ सर्वमिदं परियातः १०
परिगच्छतः । तत्कथमिति । विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्टे । विश्वानि भुव-
नानि भूतानि अन्यः अभिचष्टे अभिपश्यति आदित्यः । यथैतान्यभिद्वष्ट-
व्यानि उपकारकत्वेन तैथा स एव तानि पश्यति । ऋतूरन्यः चन्द्रमाः विद-
धत् अभिनिष्पादयन्स्वगत्या पुनः पुनः प्रतिमासं जायमान उदेत्यस्तमेति
च । असंस्तवेनोचरोऽर्धर्चः । यावेतदेवमत्यद्भुतं किमपि चरणं चरतस्ता- ११
वेतौ अगदमस्मद्यजमानं कुरुतमित्याशिषा निराकाङ्क्षः ।

वायुना संस्तवः । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः इत्यत्र । तत्र ‘जागृतो
अस्वप्रजां’ ईश्वरिस्मिन्पादे ‘वाथादित्यौ’ इति
वायुना संस्तवः वक्ष्यति (निरु० १२ । ३७) ।
संवत्सरेण च संस्तवः । ‘पञ्चपादं पितरम्’ २०
इति व्याख्यैतम् (निरु० ४ । २७) ।

१ ग. चरतः । चन्द्र^०; घ. झ. ट. चरतः ० जायते^० । २ क. ख. च. क्रीळन्तौ;
ज. क्रीळन्तौ । ३ घ. झ. ट. ‘धम् । जगती । राज’; च. धम् । ‘राज’ जगती ।
४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘परतो, च. परतो’ तौ । ५ घ. झ. ट. ‘वधं. ६ क.
ख. क्रीळन्तौ’; ग. च. ज. घ. झ. क्रीळन्तौ । ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘यज्ञम- २१
भिनिष्पा’ । ८ घ. झ. ट. ठ. ड. विश्वा विश्वानि’; च. ‘विश्वा’ विश्वा. ९ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘अन्यः’ नास्ति । १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अर्थ’;
च. यथे^० अर्थ’; ट. अर्थे^० य. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तथैव स तानि ।
१२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इत्येतस्मि^० । १३ क. ख. ‘स्यातः । ४ । एते’;
च. ‘स्यातं’ तः; ग. ‘स्यातं । १२ । एते’; च. ज. स्यातमित्यनन्तरं खण्ड
समाप्तिः; घ. झ. ट. ठ. ड. ‘स्यातः’.

‘ एतेष्वेव स्थानव्यूहेष्वृतुच्छन्दःस्तोमपृष्ठस्य भक्तिशेषमनुकल्पयति ’ ।

ऋतवश्च छन्दांसि च स्तोमाश्च पृष्ठानि च

अन्येषामृतुच्छन्दः ऋतुच्छन्दःस्तोमपृष्ठम् । तस्य ऋतुच्छन्दःस्तोम-

आदीनां स्थानानि पृष्ठस्य । ऋतुभक्तिशेषं छन्दोभक्तिशेषं स्तोम-

५

भक्तिशेषं पृष्ठभक्तिशेषं च । तद्यथा । ‘ शरदनु-

ष्टुवेकविंशः स्तोमः वैराजं सामेति पृथिव्यायतनानि ’ । अनग्निलिङ्गेऽपि

चेन्मन्त्र एतेषामन्यतमं स्यात्स आग्नेय इति प्रतिपत्तव्यः । एवमेवोत्तरयो-

रपि स्थानव्यूहयोः । व्यूहो नाम विस्तारः । ‘ हेमन्तः पङ्क्तिस्त्रिणवः

स्तोमः शाक्करं सामेत्यन्तरिक्षायतनानि ’ । ‘ शिशिरोऽतिच्छन्दाः त्रयस्त्रिंशः

१०

स्तोमो रैवतं सामेति शुभक्तीनि ’ । यां भजन्त इति शुभक्तीनि द्यौरपि

चादित्यं भजत इति । भक्तिग्रहणं प्रणाडिकोपप्रदर्शनार्थं यैतेषां स्तुतिः सा

स्तुतिसंक्रमणन्यायेन स्थानाधिपतेः सूर्यस्य स्तुतिरिति । सर्वत्रैवम् ।

आह । सर्वमेतन्मन्त्राश्रयमुक्तम् । त एव तावन्मन्त्राः कस्मान्मन्त्रा इति

उच्यन्ते । यत आह ॥ ११ ॥

१५

मन्त्रा मननाच्छन्दांसि छादनात्स्तेभिः स्तवनाद्यजुर्व्रजतेः
सामं संमितमृचास्यतेर्वर्चा समं मेन इति नैदाना गायत्री गायतेः
स्तुतिकर्मणस्त्रिगमना वा विपरीता गायतो मुखादुदपतदिति च
ब्राह्मणैर्मुष्णिगुत्सनाता भवति स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मण

२०

१ क. ख. ठ. तमं; ग. च. ज. ड. °तमस्या°; घ. झ. ट. तमं स्या°. २ क.

ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. °त्तव्यम्. ३ च. विस्तारः° स्त. ४ ग. ज. °ङ्क्ति-

स्तृण°. ५ क. ख. °रिक्षायतनानि । अन्तरिक्षलोकायतनानि । शिशि°; घ. झ.

ट. °रिक्षलोकायत°. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति शुभक्तीनि । भक्ति°;

च. इति ° । भक्ति° शुभक्तीनि. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °संक्रमणन्या°.

८ क. ख. °त्रैवम् । ५ (११) । सर्वमे°. ९ च. आह° । स°. १० क. ख. घ.

झ. ट. ठ. ड. °श्रयमित्युक्तं; ठ. °श्रयमित्युक्तं । ११ । इति निरुक्तवृत्तो उत्त-

रषट्के प्रथमाध्याये निघण्टुमारभ्य द्वादशे एकादशः खण्डः । ११ । मन्त्रा°. ११ ग.

१३; इतरेष्वङ्को नास्ति. १२ क. ख. छ. त. द. ‘ स्तोमः स्तवनात् ’ नास्ति.

२९

१३ क. ख. त. द. °णम् । ६ । उष्णि°; छ. °णम् । १४ । उष्णि°.

उष्णीषिणी वेत्यौपमिकमुष्णीषं स्नायतेः ककुप् ककुभिनी भवति
ककुप् च कुब्जश्च कुजतेर्वोब्जतेर्वानुष्टुवनुष्टोभनाद्गायत्रीमेघ त्रिपदां
सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टोभतीति च ब्राह्मणं बृहती परिवर्हणा-
त्पङ्क्तिः पञ्चपदा त्रिष्टुप् स्तोभन्युत्तरपदा का तु त्रिता स्यात्तीर्ण-
तमं छन्दस्त्रिवृद्भस्तस्य स्तोभनीति वा यच्चिरस्तोभत्तच्छिष्टुभस्त्रि- ५
ष्टुप्त्वमिति विज्ञायते ॥ १२ ॥

‘ मन्त्राः मननात् ’ । ऐभ्यो ह्यध्यात्माधिदैवाधियज्ञादि मन्तारो
मन्यन्ते । तदेपां मन्त्रत्वम् । ते पुनश्छन्दोमयाः ‘ नाच्छन्दोमयाः वागुच्चरति ’
इति । अथ ‘ छन्दांसि ’ कस्मात् । ‘ छादनात् ’ । ‘ यदेभिरात्मानमाच्छा- १०
दयन्देवा मृत्योर्विभ्यतस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ’ इति विज्ञायते । अथ ‘ यजुः ’
कस्मात् । ‘ यजतेः ’ धातोः । तेन हि विशेषत इत्यते सर्वत्र याज्यान्ते
वपट्कारविधानात् । अथ ‘ साम ’ कस्मात् । ‘ तद्वि संमितमृचा ’ ।
यावती ऋक्तावदेव परिमाणतः । ‘ अस्यतेर्वा ’ क्षेपणार्थस्य (धा० ४ ।
१०३) । प्रक्षिप्तमिव हि तद्वचि भवति । विज्ञायते च ‘ तस्माद्दृश्यध्वृदं १५
साम गीयते ’ (छा० उ० १ । ६-७) । अथवा ‘ स्यतेर्वा ’
इति । ‘ पो अन्तर्कर्मणि ’ (धा० ४ । ४१) । अन्यं तत्कर्म भवति
संहिता पदं सामिति । ‘ ऋचा समं मेने इति नैदानाः ’ । ऋचा एतत्
समम् इत्येवं प्रजापतिर्मेने ज्ञातवान् । अथवा । आत्मानमेव ऋचा
समं मेने ज्ञातवान् । तस्मात्साम्नः सामत्वमित्येवं नैदाना मन्यन्ते । निदान- २०
मिति ग्रन्थः । तद्विदो नैदानाः ।

‘ छन्दांसि छादनात् ’ इत्युक्तम् । तानि च पुनर्मृनिः गायत्रीप्रमु-
खानि । यतो गायत्रीं निराहं । ‘ गायत्री गायतः स्तुतिकर्मणः ’ ।
तया हि गीयन्ते स्तूयन्ते देवताः । अतः परमुष्णिगादीनि छन्दांसि
चतुरुत्तराणि । तानि तत्प्रसङ्गेनैव निराह । तत्र तावत् ‘ उष्णिगुःस्नाता ’ २५

१ क. ख. णम् । ७ । बृहं ; छ णम् । १५ । बृहं ; त. द. णम्
। ७ । बृहं । २ क. ख. छ. त. द. भतीति ३ क. ख. ८ (१२) ; छ. १६ ;
त. द. ८. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तेभ्यो ; घ. ऐभ्यो ते. ५ ग. ज.
‘ ध्यात्माधियज्ञादि ’. ६ ग. घ. झ. ट. पोऽन्त. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
ज्ञातवत् तत्साम्नः ; च. ज्ञातवान् वन्. ८ ग. राह । १४ । गाय. ९ क. ख.
‘ वताः । ६ । अतः ’.

गायत्रीतश्चतुर्भिरक्षरैरभिकैरुद्वेष्टितेव ' भवति ' । ' उष्णिग्गायत्रौ जागतश्च ' (पिङ्गलछन्दःसू० ४ । १८) इति । ' स्निह्यतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः ' । स्निग्धम् इष्टं देवतानां कान्तभेतच्छन्दः । ' उष्णीषिणी-वेत्यौपमिकम् ' । चत्वार्यक्षराण्यस्या उष्णीपमिव लक्ष्यन्ते । तेनोष्णिक् ।
 ५ अथोष्णीपं कस्मात् उष्णीपम् । ' स्नायतेः ' शौचार्थस्य (धा० २ । ४२) । शुद्धं हि तद्भवति शुक्लम् ।

' ककुप् ककुभिनी भवति ' । सैवोष्णिग्जागतेन पादेनोपहितेन मध्यतः ककुबिल्युच्यते । स तस्याः ककुबिब मध्यतो भवति । तेन ककुभिनीव ककुप् । अथ ' ककुप् ' कस्मात् । ' कुजतेर्वा ' कौटिल्यार्थस्य (धा० १ । १९९) ' उब्जतेर्वा ' न्यग्भावार्थस्य (धा० ६ । २३) । नतं हि तद्भवति । कुब्जोऽप्यनयोरेवान्यतरस्मात् । ' अनुष्टुबनुष्टोभनात् ' । किमियमनुष्टोभति । ' गायत्रीमेव त्रिपदां सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टो-भतीति च ब्राह्मणम् ' । स्वमतं चशब्देन समुच्चिनोति । गायत्री त्रिभिर-ष्टाक्षरैः पादैः समाप्यते । तस्याश्च पुनरपरश्चतुर्थः पादो भवति येन तामे-
 १० नानुष्टुबनुष्टोभति । तस्मादनुष्टुप् ।

' बृहती परिवर्हणात् ' । परिवृद्धासौ भवत्यनुष्टुभश्चतुर्भिरक्षरैः । उक्तं हि ' बृहती जागतस्त्रयश्च गायत्राः ' (पिङ्गल० सू० ५ । ६) इति । ' पङ्क्तिः पञ्चपदा ' । पञ्चभिः पादैः पङ्क्तिरित्युच्यते । अथ ' त्रिष्टुप् ' कस्मात् । ततो विगृह्योत्तरं पदं निराह ' स्तोभत्युत्तरपदा ' । स्तोभति-
 २० र्धातुरुत्तरं पदं यस्याः सेयं स्तोभत्युत्तरपदा । अर्थं पुनः पूर्व-पदे येयं त्रिता त्रित्वं श्रूयते ' त्रि ' इति एतकिमर्थमिति । ' तीर्णतमं ' विस्तृततममेतत् ' छन्दो ' गायत्र्यादिभ्यो बहुत्वात् । सेयं तीर्णतमा च स्तोभनी चेति त्रिष्टुप् । ' त्रिवृद्ब्रह्मस्तस्य स्तोभनीति वा ' ।

१ च. ज. 'नुस्तोभ'. २ क. ख. 'ष्टुप् । ७ । बृह'; ग. 'ष्टुप् । १५ । बृह'.
 २५ ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'पदा । का तु त्रिता स्यात् । अर्थ'; च. पदा ।
 - अर्थ' का तु त्रिता स्यात् । ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तमं स्तुततममिदं
 छ'; ग. ज. स्तुतन'. ५ क. ख. स्तोभति च त्रिष्टुप्; ग. ज. स्तोभती चेति';
 च. स्तोभनी चेति' तीवे; घ. ट. स्तोभनी वेति; ठ. ड. 'सेयं तोरातिमा च
 स्तोभनीति वेति त्रिष्टुप्. ६ क. ख. ग. ज. स्तोभतीति; घ. ट. स्तोभतीति; च.
 ३० स्तोभनीति' ती.

वज्रमायुधम् । तच्च पुनः प्रायः त्रिसन्धिं । 'शरो वेणुः शृङ्गं शल्यम्' इति विज्ञायते । तस्य स्तोभनी स्तुतिः । अथवा ऐन्द्रमेतच्छन्दः । वैश्वेन्द्रमक्तिः । तस्मादुपपद्यते ॥ १२ ॥

जगती गततमं छन्दो जलचरगतिर्वा जलगत्यमानोऽमृज- ५
दिति च ब्राह्मणं विराड्विराजनाद्वा विराधनाद्वा विप्रापणाद्वा
विराजनात्संपूर्णाक्षरा विराधनादूनाक्षरा विप्रापणादधिकाक्षरा
पिपीलिकमध्येत्यौपमिकं पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणो इतीमा
देवता अनुक्रान्ताः सूक्तभाजो हविर्भाज ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः
काश्चिन्निपातभाजोऽथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयतीन्द्राय १०
वृत्रघ्न इन्द्राय वृत्रतुर इन्द्रायांहोमुच इति तान्यप्येके समामनन्ति
भूयांसि तु समाम्नानाद्यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात्पाधान्यस्तुति
तत्समामनेऽथोत कर्मभिर्ऋषिर्देवताः स्तौति वृत्रहा पुरन्दर इति
तान्यप्येके समामनन्ति भूयांसि तु समाम्नानाद् व्यञ्जनमात्रं तु
तत्तस्याभिधानस्य भवति यथा ब्राह्मणाय बुभुक्षितायाँदनं देहि १५
स्नातायानुलेपनं पिपासते पानीयमिति ॥ १३ ॥

‘जगती गततमं छन्दः’ । औत्तमित्यर्थः । अतःपरमतिच्छन्दासि ।
‘जलचरगतिर्वा’ । जलोर्मिप्रकारो हि तस्याः प्रस्तारः । ‘जलगत्य-
मानोऽमृजदिति च ब्राह्मणम्’ । ‘ग्लै हर्षक्षये’ (धा० १ । ९२९) । २०
क्षीणहर्ष इव किलैता प्रजापतिः ससृजे । ददर्शेत्यर्थः । न हि छन्दासि

१ ग. च. ज. 'सन्धिः. २ ग. च. ज. स्तोभनीति स्तु'. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
वज्रं चेन्द्रमक्ति. ४ क. ख. घ. झ. ट. 'यते । यत्त्रिरस्तोभत्तत्त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वमिति
विज्ञायते [क. ख. 'यते ८ (१२)]; ठ. ड. 'यते इत्यादि (क. ख. घ. झ. ट.
वत्) ० यते । (ड. ० यते । १२) इति निरुक्त० उत० (ड. निरुक्तटीकायामुत्त- २५
रषट्के) प्रथमध्याये द्वादशः खण्डः । १२ । (ड. ' १२ ' नास्ति); च. 'यते
५ । १२ । जग' यत्त्रिरस्तोभत्तत्त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वमिति विज्ञायते; ग. १६. ५ क. ख.
त. द. 'मणः । ९ । इती; छ. 'मणः । १७ । इती. ६ क. ख. १० (१३);
छ । १८ । द्वितीयः पादः । त. १० । ७ । द्वितीयः पादः । द. । १० ।
इति निरुक्ते उक्तार्थस्य प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. अन्त्यमि'; च. औत्तमि' अन्त्य'.

क्रियन्ते नित्यत्वादेव छन्दसाम् । विराजः पुरस्ताच्चिष्टुव्निरुक्ता बाहुल्याद-
 धियज्ञे च प्रयोगभूयिष्ठत्वात् । अधुना विराजं निराह । ' विराड्विराजनाद्वा
 विराधनाद्वा विप्रापणाद्वा ' । ' विराजनात्संपूर्णाक्षरा ' । साकल्याद्वि-
 राजत इव । ' विराधनादृणाक्षरा ' । वैकल्याद्विराध्यतीव हि सा ।
 ५ ' विप्रापणादधिकाक्षरा । ' विप्रुतेव हि सा स्वरूपात् । ' पिपीलिक-
 मध्येत्यौपमिकम् ' । मध्याल्पाक्षरपादा या सा पिपीलिकमध्येव भवति
 पिपीलिकसंरूपा । ' पिपीलिका ' कस्मात् । ' पेलतेः ' गत्यर्थस्य ।

इतिकरणः प्रकरणपरिसमाप्त्यर्थः । अथवा । इतिकरणेनाभिनयेन
 दर्शयान्निव ब्रवीति । एवमनेन प्रकारेण यथापरिभाषितेन ' यत्काम
 १० ऋषिः ' इत्येवमादिना इमा देवता अनुक्रान्ताः । ' अग्निर्जात-
 बेदा वैश्वानरः ' (निव० ५ । १) इत्येवमाद्याः । समासतो निर्णान्ता

इत्यर्थः । ताः पुनः ' सूक्तभाजो हविर्भाजः ' ।
 देवताः सूक्तभाजो काश्चिद्धविर्भजन्ते न सूक्तं काश्चिसूक्तं भजन्ते न
 हविर्भाजश्च हविः काश्चिदुभयं भजन्ते । वक्ष्यति हि ।

१५ ' इतीमानि सप्तविंशतिर्देवतानामधेयान्यनुक्रा-
 न्तानि सूक्तभाञ्जि हविर्भाञ्जि तेषामेतान्यहविर्भाञ्जि ' (निरु० १० ।
 ४२) इति । ' ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः ' ।
 भूयिष्ठा ऋग्भाजः । प्रायेणेत्यर्थः । तद्यथा । आप्रीसूक्ते एकैकामृचं
 भजन्ते लक्षणभेदादिभिः (निरु० ८ । ४-

१० २१) । अर्धर्चभाजोऽपि क्वचिदुपेक्षितव्याः । तद्यथा । ' ऋचः सूर्याय
 गीयन्त उद्वेतीत्यर्धपञ्चमाः ' । ' यत्रा चक्रुः '
 काश्चिदर्धर्चभाजः इत्यस्याः पूर्वोऽर्धर्चः सौर्यः शौनकस्य । उत्तरो
 मैत्रावरुणः (निरु० ६ । ७ ।) । पादभाजोऽपि

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' भूयस्त्वात् । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.

२५ अथ पुनर्विरा०. ३ ठ. ड. एव. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. विप्रुतेव. ५ घ. झ.
 ट. ठ. ड. ' मध्ये भ ' . ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' कस्वरूपा. ७ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. ' र्थस्य (क. ख. ' र्थस्य । ९ ।) इतीमा देवता अनुक्रान्ताः ।
 इतिक०; ग. ' र्थस्य । १७ । इतिक०; च. ' र्थस्य । १७ इतिक० इतीमा देवता अनु-

२९ क्रान्ताः । ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' परि ' नास्ति. ९ च. पूर्वार्ध०.

क्वचिदुपेक्षितव्याः । तद्यथा । ' नवो नवो भवति जायमानः ' (ऋ०
पादभाजोऽपि सं० १० । ८५ । १९) इत्यस्या आदित्य-
काश्चित् दैवतो द्वितीयः पादो भवति (निरु० ११ ।
६) । भृगिष्ठप्रहणाच्च दर्शयत्यसामान्नाता अपि
सन्ति ता अप्युपेक्षितव्याः । यथालक्षणं त्रिषु स्थानेषु कल्प्याः । तद्यथा । ५
परमेष्ठिप्रहनक्षत्रसर्पलाङ्गलकुसुम्भप्रभृतीनि ।

' काश्चिन्निपातभाजः ' इति । निपातो हि द्विविधः । देवतान्तरैः
सह साधारण्येनोपस्तुतौ नैघण्टुकत्वेन च । तत्र
निपातभाजः साधारण्यं नाम । तद्यथा । ' विधाता धात्रा
काश्चित् । निपातो व्याख्यातमन्स्यैष निपातो भवति बहुदेवताया- १०
द्विविधः मृचि ' (निरु० ११ । ११) । ' सोमस्य
राज्ञो वरुणस्य ' (ऋ० १० । १६७ । ३)

इत्यस्या सोमप्रभृतिभिः सह विधाता स्तुयते साधारण्येन (निरु० ११ ।
१२) । नैघण्टुकत्वेन पुनः । तद्यथा । ' पृथिवी व्याख्याता तस्या
एष निपातो भवत्यैन्द्राग्न्यामृचि ' (निरु० १२ । ३०) ' यदि- १५
द्राग्नी परमस्यां पृथिव्याम् ' (ऋ० सं० १ । १०८ । १०) इति (निरु०
१२ । ३१) । ' पृथिव्याम् ' इति ताम्यामिन्द्राग्निभ्यां सह साधारण्येन
न पृथिवी स्तुयते । किं तर्हि । लक्षणत्वेनैन्द्राग्न्योरेवोपादीयते । एवं तावद-
यमिहाधिकारे काश्चिन्निपातभाज इति द्विप्रकारो निपात उक्तः ।

अथ पुनरयमपरो निपातप्रकारो उपेक्ष्यः । तद्यथा । अत्यन्तनैघण्टुकं देव- २०
ताभिधानमनत्यन्तनैघण्टुकं च । तत्रात्यन्तनैघ-
अपरो निपात- ण्टुकं नामात्यन्तमदृष्टव्यप्रधानस्तुति^{१२} । तद्यथा ।
प्रकारः आदित्यस्य स्वःपृथ्विप्रभृतिभिः । अथ पुनर्द-

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तव्या इति । ताश्च यथा'; च.
'तव्याः ~ । यथा' इति । ताश्च. २ क. ख. कुसुम्भकप्र'; घ. झ. ट. ठ. ड. २५
'कुसुम्भकप्र'; च. 'कुसुम्भ-प्र' क. ३ क. ख. ज 'स्तुतो न. ४ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. साधारणं; ग. ज. तत्र साधारणोपस्तुतो ण्यं तद्य. ५ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. राज इत्य. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. श्रुय. ७ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. 'पृथिव्यां इति' नास्ति; ग. ज. पृथिव्या इति. ८ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. 'ण्येन पृथिवी न स्तू'. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'त्वेन-
न्द्राग्न्यो'. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'पुनः' नास्ति. ११ ग. ज.
'कारमुपेक्ष्यः. १२ क. ख. ठ. ड. 'स्तुतिः; च. 'स्तुति' तिः. ३२

द्वस्वप्रधानस्तुति यद्देवतापदं वाक्यार्थोपजनितपारतन्त्र्यमाक्षिप्तस्वाभिधेयसा-
मर्थ्यमुपमानशब्देन स्वमर्थमन्यस्मिन्देवतापदे प्रधा-

अत्यन्तनैघण्टुकं ने वाक्यार्थसामर्थ्योपजनितप्राधान्यसामर्थ्ये निग-
देवताभिधानं मयत्यनत्यन्तनैघण्टुकं भवति । तद्यथा । ' अग्नि-

५

रित्र मन्यो ' (ऋ० सं० १० । ८४ । २) ।

इत्यग्निशब्द इत्येतेनोपमाशब्देन वाक्यार्थोपजनितसामर्थ्येनाक्षिप्तस्वाभि-
अनत्यन्तनैघण्टुकं धेयसामर्थ्यो विशेष्यमाकाङ्क्षन् संबोधनान्तं मन्यु-
शब्दं वाक्यगतैः पदैरुन्नीयमानसामर्थ्यमार्थनि वि-
शेषणापेक्षे स्वमर्थं मन्युशब्दे विनिगमयन्निपततीति ।

१० नैघण्टुकं तदिति । एवमनेकप्रकारो निपात उपेक्ष्यः ।

' अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति ' । ' अथ ' इति विशे-
षाधिकारे । ' उत ' इत्यप्यर्थे । अपरमपरमभि-

विशेषणयुक्ताभ्यो धानमपेक्ष्यापेक्ष्य । तद्यथा । अभिधानैः संयोज्य
देवताभ्यो हविश्चोदते विशेषणशब्दैस्तत्रैतदभिधानमिन्द्रादि संविज्ञानाद्-

१५

दमिन्द्रादौ देवतार्थे अम्नायविधौ प्रयोगे च
हविश्चोदयति । तद्यथा ' इन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपालं निर्वपेत् '

(मैत्रा० सं० २ । २ । ११) इति । तथा ' इन्द्रायां होमुच इति ' ।
' इन्द्रायां होमुच एकादशकपालं निर्वपेत् ' (मैत्रा० सं० २ । २ ।

१०) इति । ततः किम् । ' तान्यप्येके समामनन्ति ' । एके नैरुक्ता-

२०

केचित्तानि विशेषे-
षणपदानि निघण्टौ अग्न्यादौ देवतापदसमाम्नायै पृथक्पृथक्समाम-
समामनन्ति । अहं तु न समामने । कस्मात् ।

' भूयांसि तु समाम्नानात् ' । यानि तु

१ ठ. ड. °स्तुतिः । यद्दे°; च. °स्तुति यद्दे° र्थ. २ क. ख. 'मर्थ्यं यत् निग°;

२५

घ. झ. ट. ठ. ड. 'मर्थ्यं यन्निग°; च. 'मर्थ्यं ° नि° यत्. ३ क. ख. घ. झ.

ट. °ण्टुकं तद् भ°; च. °ण्टुकं ° भ° तन्. ४ क. ख. घ. झ. ड. विशेषमा°;

ट विशेष° ष्य. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °शब्दे निग°. ६ ठ ड. 'मुष-

प्रभृ°. ७ ग. ज. 'समाम्नानात् । ००० ततोऽग्न्यान्यपि भूयांसि' नास्ति. ८ क.

२९

ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तेष्ु; च. तुँ° तेष्ु.

गुणपदानि वृत्रहांहोमुक्प्रभृतीनि तान्यप्येके समामनन्ति । ततोऽन्यान्यपि

तानि न समा-
न्नातान्यानि यस्मात्ते-
षामियत्ता नास्ति

भूयांसि बहुतराणि सन्त्येव माहाभाग्यादेवताया
गुणानामियत्ता नास्तीति । तेषां च सर्वेषां समा-
न्नानि समान्नायस्यापारिनिष्ठैव स्यात् । तथा च
सति तेषां शास्त्रेऽर्परिसमाप्तिः । तन्ममापि मा

५

भूदित्यतो ' यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात्प्राधान्यस्तुति तत्समामने ' इति ।

यत्संविज्ञानभूतं
स्यात्प्राधान्यस्तुति च
तदेव समान्नातव्यम्

यदेतत्संविज्ञानभूतं रूढमगौणं केवलमपि निर्वि-
शेषण लब्धप्रधानस्तुतं देवतापदमन्यादे तत्स-
मामने न गौणं व्रतभृद्ब्रतपत्यादि ।

अथवा ' तान्यप्येके समामनन्ति ' इत्यत उत्तरस्य ' भूयांसि तु
समान्नात् ' इत्यस्यापरोऽर्थः । भूयांस्येव तेषां समान्नात्समाम्नातानि
स्युः । न किञ्चिदतिरिक्तं प्रयोजनं वचनात् । केवलं गुरु शास्त्रं संपद्यते ।
तन्मा भूदित्यर्थः ।

१०

' अथोत कर्मभिर्ऋषिर्देवताः स्तौति वृत्रहा पुरन्दर इति ' स वृत्रहा
कर्मनामान्यपि शतक्रतुः पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरिति । तान्य-
समामनन्ति । पूर्वेषु कर्मनामत्रेयानि समामनन्ति । को विशेषः
पूर्वेषुः समाम्नातृभ्यः । विधिदर्शनात्पूर्वं ' हवि-
श्चोदयति ' इति वचनात् । स्तुतिदर्शनादिमे ' कर्मभिर्ऋषिर्देवताः स्तौति '
इति वचनात् । ' भूयांसि तु समाम्नात् ' इति स एव दोषः ।

१५

' व्यञ्जनमात्रं तु तत्तस्याभिधानस्य भवति ' । वृत्रहा पुरन्दर इति यदेव-
मादि गुणपदं तत्तस्यैवेन्द्रादेः संविज्ञानपदस्य
यस्मात्तानि मु- व्यञ्जनमात्रं विशेषणमात्रं भवति । न पृथक्प्रधानं
स्याभिधानस्य विशेष- केवलस्यैव संबन्धास्तुत्या । यथा लोके ' ब्राह्मणाय
षणान्येव बुभुक्षितार्थोदनं देहि स्नातायानुलेपनं पिपासते
पानीयमिति ' । यो बुभुक्षितस्तस्मा ईति ।

२०

२५

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' तान्यप्येके ' नास्ति; च. तान्यप्येके. २ ग.
ज. महा°; च. महा° मा. ३ क. ख. घ. झ. ट. ' इति ' नास्ति. ४ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. शास्त्रेऽसमा°. ५ ग. ज. तेषां समाम्नातानि स्युः; च. तेषां
समा° समाम्नात्. ६ क. ख. घ. झ. ट. तान्यप्येके समामनन्ति । तान्यप्येके
कर्म°; च. ° तान्य° तान्यप्येके समामनन्ति. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°लस्य संब°; च. °लस्योसं° स्य. ८ ग. ज. °तस्मायेति.

३१

यथा बुभुक्षितशब्दो विशेषणं केवलस्य बुभुक्षि-
 तशब्दस्य विशेषणः क्वचिन्नवस्थानादेवं वृत्रहा
 तपिपासच्छब्दश्च विशेष-
 पणावान्न स्वतन्त्राएव-
 पुरन्दर इत्येवमादीनां विशेषणमप्राप्तानवस्थाना-
 द्व्यञ्जनमात्रता न स्वप्रधानता । तस्मान्नैतान्यहं
 ५ मेतानि कर्मनामानि समामने ॥ १३ ॥

इति निरुक्तभाष्यार्थनिबन्धपद्धतौ द्वादशस्य तृतीयः पादः ।

अथातोऽनुक्रमिष्यामोऽग्निः पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्या-
 स्यामोऽग्निः कस्मादग्रणीर्भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽङ्गं नयति
 १० संनममानोऽक्रोपनो भवतीति स्थौलाष्टीविर्न क्रोपयति न स्नेह-
 यति त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिरितादक्ताद्ग्रथाद्वा
 नीतात्स खल्वेतेरकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नीः
 परस्तस्थैपा भवति ॥ १४ ॥

१५ ' अथातोऽनुक्रमिष्यामः ' । सामान्यतः परीक्षितोऽन्यादिर्देवप-न्यन्तो
 देवतापदसमाम्नायः । विशेषत इदानीं प्रतिपदमनुव्याख्यास्यते । तदर्थम-
 धिकारवचनम् ' अथ ' इति । ' अतः ' इत्यानन्तर्ये । सामा-
 न्यात्पारिभाषिकाद् व्याख्यानादनन्तरमानुपूर्व्येण यथासमाम्नातं क्रमि-
 ष्यामः । कथयिष्यामो वर्णयिष्यामो व्याख्येयति वाक्यशेषः । सा
 २० च पुनर्व्याख्याभिधानाभिधेयाभिधानव्युत्पत्तिप्राधान्यस्तुत्यादाहरणतन्निर्वचन-
 विचारोपपत्त्यवधारणक्रमलक्षणा । तद्यथा ' अग्निः'
 विशेषव्याख्याया इत्यभिधानम् । अयं ' पार्थिवः ' इत्यभिधेयम् ।
 लक्षणम् ' अग्रणीर्भवति ' इत्यभिधानव्युत्पत्तिः । ' अग्नि-
 मीळे ' इति प्राधान्यस्तुत्यादाहरणम् । ' अग्नि-
 २५ उदाहरणं च मीळे अग्निं याचामि ' (निरु० ७ । १५)
 इति तन्निर्वचनम् । ' स न मन्येतायमेवाग्निः '

१ क. ख. १० (१३); ग. १८; घ. ट. ठ. ड. ज. अङ्को नास्ति. २ घ.
 झ. ट. इति द्वादशस्य^०; ठ. ^०मने इति नि० उत्तरप० प्र० त्रयोदशः खण्डः ।
 १३ । आदितो द्वादशाध्यायस्य तृतीयः पादः; ड. ^०मने । इति द्वादशस्य
 तृतीयः पादः । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपटके प्रथमाध्याये त्रयोदशः खण्डः.
 ३ क. ख. १ (१४); छ. १९; त. द. १. ४ क. ख. घ. झ. ठ. ड.
 परिख्यातो^०; ग. ज. परिभाषितो^०; च. परिक्षिप्तो^०; ट. परिख्यातो^० रीक्षि. ५ क.
 ३३ ख. ग. ज. घ. झ. ^०मीले.

(निरु० ७।१६) इति च विचारः । ' यन्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरुध्यते ' (निरु० ७।१८) इतीयमुपात्तः । ' अयमेव सांऽग्निः ' (निरु० ७।१८) इत्यवधारणम् । एवं प्रकार्या व्याख्यया प्रतिपदमनु-
क्रमिष्यामः ।

तत्रैतद्भवति कोऽयमग्निरिति । आत्मैत्यात्मविदः । ' एकं सद्विषा ५
आत्मविद्याज्ञिकनै- वद्वधा वदन्ति ' (ऋ०सं० १।१६४।४६)
रुक्तानामग्निविषये म- इति मन्त्रदर्शनात् । अविश्रितस्थानविशेषो
तानि निर्जातैतदभिधानो देवताविशेषो लोकधेदप्रसिद्धः
कमाङ्गागत याज्ञकाः । विश्रितविशिष्टस्थान-
कर्मा मध्यमोत्तमाभ्यां ज्योतिर्भ्यामन्यः पार्थिवोऽयमग्निरिति नैरुक्तसमयः । १०
त्रित्वाभ्युपगमात्संपिपादायपथेदमारम्यते । ' अग्निः पृथिवीस्थानस्तं
अग्निः किमिति प्रथमं व्याख्यास्यामः ' इति । पृथिव्येवास्य
पृथिवीस्थानः विशेषतः स्थानं नान्तरिक्षं न बौरिति
पृथिवीस्थानमन्य कर्माधिकारात्तस्य । निष्ठः-
स्मिन्निति स्थानम् । यस्मात्पृथिव्यस्य स्थानं १५
तस्मात्सैनिकपरिहोक्तानुक्रमाच्च न चास्ति कारणे प्रथमातिक्रमो न्यास्य
इति तमेव प्रथमं व्याख्यास्यामः ।

' अग्निः ' (निघ० ५।१।१) कस्मात् । देवताभिधाने देवता-
मात्मनः परोक्षीकृत्य परोक्षीकृतं तत्त्वमर्थितम् । ' परोक्षप्रिया इव हि २०
देवाः प्रत्यक्षद्विपः ' (शत० ब्रा० १४।५।६ । २ ॥ बृह० उप०
४।२।२) इति हि विज्ञायते । तन्निरवचनादागमप्रामाणिकं देवताता-
द्भावपमनुभवतीत्यवयव तान्निरवक्षया ' अग्निः
देवतापदनिर्वच- कस्मात् ' इत्युपोद्धृत्य ' अप्रणीर्भवति ' इत्येष-
नस्य फलं देवताता- मादिनाग्निशब्दं निराह । सर्वत्रैवं देवतापदे उपो-
द्भाव्यम् द्धातोपन्यासैः द्रष्टव्यौ । आत्मावत्पक्षे तु सर्वम- २५
भिधानमात्मार्थमेवति सर्वार्थम्यमात्मानं सर्वाभि-
धानव्युत्पत्तितो निरुच्य याथात्म्यतः परिज्ञाय सर्वान्मनः आत्मनः सत्वावस्थं

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इत्युपपत्तेः । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. विश्र-
क्षितस्थानविशिष्टकर्मा, च. ' विशिष्टस्थाने ' स्थानविशिष्ट. ३ क. ख. ग. ज.
झ. ट. ठ. ड. 'मर्पितम्.

विभूतिताद्भाव्यमनुभवतीति सर्वपदव्युत्पत्तिप्रयोजनम् । स्मर्यते हि ।

‘ शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति ’ इति ।

‘ अग्रणीर्भवति ’ इत्यग्रशब्दं विगृह्य वाक्यीकृत्य कृतवाक्यपदवर्ण-
निष्कर्षणसमुदायोपजनितस्याग्रशब्दस्याग्रशब्दो-

- ५ अग्रशब्दस्य व्युत्पत्तयः तासामर्थः
तु ‘ अग’कारमुपलभ्य अग्रशब्दं कर्माभिधायिनं पूर्वपदत्वेन व्यवस्थाप्य नयति च अपरमुत्तरपदं कर्तव्यात्मनि अवस्थाप्याग्रशब्दं निराह । अथ कोऽर्थ इति । सर्वेष्वर्थेष्वसावात्मानमग्रं नयति । सर्वत्र तथोपकरोति यथाग्रं संपद्यत इत्यर्थः ।

- १० अग्रशब्दः प्रधानवाची । स एव चाग्रं नयति । सेनां वाग्रे नयति सैनापत्येऽव-
स्थित इत्येके । विज्ञायते हि ‘ अग्रिन् देवानां सेनानीः ’ इति । अथवा । ‘ अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते ’ । प्रथमं यज्ञेषु प्रणीयते । न तावत्किंचिदैन्यत्क्रियते यावदयं न प्रणीयत इति । ततोऽस्मिन्व्रतमुपेत्यान्यानि कर्माणि क्रियन्त इति । अथवा । ‘ अङ्गं नयति संनममानः ’ । यत्रायं संनमयति साधनत्वेन वैदिके वा लौकिके वार्थे तत्र संनममान एवात्मानं प्रधानीकृत्य सर्वमन्य-
१५ दात्मनोऽङ्गतां नयति । गुणीकरोतीत्यर्थः । अथवा । ‘ अङ्गं नयति संनममानः ’ । तृणे काष्ठे वा यत्र संनमत्याश्रयति तदात्मनोऽङ्गतां नयति । आत्मसात्करोतीत्यर्थः

- २० अक्तोपनो भवतीति स्थौलाष्टीविः । स्थूलाष्टीवतः पुत्रः स्थौलाष्टी-
विराचार्यः । स एषं मन्यते अयमक्तोपनो यस्मा-
द्व्युत्पत्तिः स्थौलाष्टीविभूतेन द्भवति तस्मादग्रिरेति । किमिदमक्तोपन इति । यत आह ‘ न क्तोपयति ’ । एवमपि न गृह्यते क्तोपयतेरप्रसिद्धार्थत्वात् । अतः पुनर्ब्रवीति प्रसि-
द्धेनार्थेन ‘ न स्नेहयति ’ । विरूढीकरोतीत्यर्थः । स हि तस्य स्वभावः ।

- २५ १ ग. ज. कृतं वाक्यं. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °शब्दाद्गका°; च. °शब्दाद्गिका° तु. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °च परमुत्तर°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °पदस्थं कर्तव्यार्थात्मनेव व्यवस्था°; ग. ज. °पदं कृतव्यात्मनावस्था°; च. °पदं कर्तव्यार्थात्मन्य° या; ट. °पदस्थं कर्तव्यार्थात्मनेव व्यव° या (य) त्मन्य. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वाग्रं. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °चिदप्यन्य°. ७ घ. झ. ट. अत्रायं. ८ ग. ज. °नोऽङ्गं न°; च. °नोऽङ्गं न° द्भूतां. ९ क. स. ग. ज. घ. झ. ठ. ड. ड. तृणे वा काष्ठे°.

‘ त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जःयत इति शाकपूणिः ’ । त्रयाणामाख्या-
तानामभिधेयाः क्रिया अत्र लक्ष्यन्ते । ता
शाकपूणिमतेन उपादाय हेतुभ्वेनाग्निशब्द आःमानं लभते ।
तद्यथा । ‘ इतात् ’ । ‘ ईणः ’ इत्यर्थः ।
‘ अक्ताद्गधाद्वा ’ । अनक्तेर्वा दहतेर्वा । विकल्प एतयोः । ततो ५
‘ नीतात् ’ इति । ‘ णिञ् प्रापणे ’ (धा० १ । ९२६) इत्येतस्मात् ।
धातवः केवलं निर्दिष्टाः । किं कुत आदत्ते इति । यत आह ।
‘ स खलु ’ शाकपूणिः ‘ एतेः ’ धातोः ‘ अकारमादत्ते ’ । नन्वेतेर्भर्तोर-
रकार एव नास्ति । अतः किमादत्ते । सत्यं नास्ति । वर्णसामान्येन तद्वि-
कारमादाय इणोऽर्थदर्शनादग्नौ शब्दार्थसंबन्धनित्यत्वादर्थे च गुणभूतत्वा- १०
च्छब्दस्य ततस्तं व्यापादयत्यकारत्वेन । अथवा । रूपानेकत्वादिणो यथा-
वस्थितस्याकारो भवति तथा रूपमवस्थाप्य ततोऽकारमादत्ते । दर्शितं
च ‘ एतेः कारितं च यकारादि चान्तकरणम् ’ इत्यत्र (निरु० १ ।
१३) । भवति चास्य ण्यन्ते रूपम् ‘ आययति ’ इति । अंतोऽकारं
तत आदत्ते । ‘ गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा ’ कृतकुत्वजश्वयोर्विकल्पेन । १५
‘ नीः परः ’ । एष ह्रस्वः । एति च व्यनक्ति च रूपाणि । अथवा ।
एति च दहति च । नयति च हर्षीषि देवेभ्यः इति सार्धयस्तरा एत-
द्भातुवाच्याः क्रिया एष करंतीति ‘ अग्निः ’ । ‘ तस्य ’ एतल्लक्षित-
लक्ष्यप्रधानतुतिसंबन्धमभिधानमुपलक्ष्य देवतापदसमाम्नाये समाम्नातम-
ग्निरिति । तस्य ‘ अग्निर्मले ’ इत्येतत्प्रमुखा अग्निर्मल्लिङ्गलिङ्गिताः सर्वा २०
आग्नेय्य ऋच उदाहरणम् । न पुनरस्ति कारणं मुख्यातिक्रमो ग्याप्य
इति ऋग्वेदप्रथमामिमामृचमूदाजहार ‘ तस्यैषा भवति ’ इति ॥ १४ ॥

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इण् गतावित्यस्मादित्यर्थः. २ म. च. ज.
णीह् प्रा०. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ धातोः ’ नास्ति. ४ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. चैतदेते; घ. चै रैतेः चैतदे. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अत्रा-
कारः। ततः. ६ ग. ज. णीः. ७ घ. ट. एति बहति नयति; ठ. ड. एतिस्तरा
एतावद्भातुवाच्याः. ८ क. ख. घ. झ. ट इत्यग्निः सार्धयस्तर । एता. ९ क.
ख. ग. च. ज. घ. झ. मीले. १० क. ख. १ (१४); घ. १९; घ. झ. ट. ज.
अडो नास्ति.

अग्निमीळं पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् (ऋ० सं० १ । १ । ३) ॥ अग्निमीळं अग्निं याचामीळिर्मध्ये-
पणाकर्मा पूजाकर्मा वा पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च देवो
दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा
५ देवता होतारं ह्यातारं जुहोतेहोतैर्त्यौर्णवाभो रत्नधातमं रमणी-
यानां धनानां दातृतमं तस्यैषापरा भवति ॥ १५ ॥

‘अग्निमीळं’ इति । मधुच्छन्दस आर्षम् । गायत्री । आश्विने विनियो-
गः । यः अग्निः देवः पुरोहितः अस्माकं यज्ञे यश्च
अग्निशब्दस्योदा- ऋत्विक् होता यज्ञस्य रत्नधातमश्च दातृतमो
१० हरणम् रत्नानां तमहं रत्नानि याच इति समस्तार्थः ।

अथैकपदनिरुक्तम् । ‘ईडं’ धातुः ‘अध्येपणाकर्मा’ याच्ना-
कर्मह । अन्यत्र ‘पूजाकर्मा’ अपि । ‘पुरोहितो व्याख्यातः’
‘पुर एनं दधति’ (निरु० २ । १२) इति । ‘यज्ञश्च’
‘प्रख्यातं सजतिकर्म’ (निरु० ३ । १९) इति । ‘देवो दानाद्वा’ ।
१५ ददाति ह्यसावैश्वर्यात् । ‘दीपनाद्वा’ । दीपयति ह्यसौ तेजोमयत्वात् ।
‘द्योतनाद्वा’ । धात्वन्वस्वमर्थैकत्वम् । ‘द्युस्थानो भवतीति वा’
पक्षेऽर्थवचनं निर्वचनस्य । अथवा । अग्नीन्द्रावपि द्युस्थानौ । सामान्यं हि
द्यौः स्थानं देवतानाम् । तयोस्तु कर्माधिकारस्थाने विशिष्टे पृथिव्यन्तारिक्षे ।
होतारं ह्यातारं देवतानाम् । ‘और्णवाभः’ तु ‘जुहोतेः’ ‘हु’
२० दानादाहोयोः’ (धा० ३ । १) इत्यस्य मन्यते ‘होतेति’ । रत्नधातमं
रमणीयानां धनानां दातृतमम् ।

‘तस्य’ एवाग्नेः ‘एषा परा’ ऋक् ‘भवति’ । समानसंहितत्वा-
दपरेति वा । द्वितीयेत्यर्थः । सा पुनः किमर्थमिति । अमुना प्रकारेण

१ क. ख. छ. त. द. ‘मीलं. २ क. ख. छ. त. द. °मीलिः°. ३ छ.
२५ यज्ञस्य; त. यत्यस्यै श्व; द. यज्ञश्च°स्य. ४ छ त द. °होतैरित्यौ°. ५ क. ख.
२ (१५); छ. २०; त. द. २. ६ क. ख. ग. च. ज. घ. झ. °मील. ७ ग.
इति । म°. ८ ठ. ड. आश्विनशब्दं. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °हितः पाक-
यज्ञे अ°; च. °हितः √ अ° पाकयज्ञे. १० ग. च. ज. ईलिः°. ११ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. यज्ञश्च व्याख्यातः । प्र°; ग. ज. व्याख्यातयज्ञश्च; च. यज्ञश्च √ । ५°
व्याख्यातः । १२ क. ख. घ. झ. ट. देवानां. १३ घ. झ. ट. ठ. ड. दाना-
११ दनयोः.

सर्वा एतस्यामुदाहरणं तैत्कर्मयुक्ता ऋच उपेक्ष्या इत्युपप्रदर्श-
नार्थम् ॥ १५ ॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति
(ऋ० सं० १।१।२) ॥ अग्निर्यः पूर्वेर्ऋषिभिरीडितव्यो वन्दित-
व्योऽस्माभिश्च नवतरैः स देवानिहावहत्विति स न मन्येताय- ५
मेवाग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते ततो नु
मध्यमः ॥ १६ ॥

‘ अग्निः पूर्वेभिः ’ इति । पूर्वथैव समानापि विनियोगच्छन्दस्का ।
द्वितीयमुदाहरणम् तद्वृत्तमुत्तरत्रापेक्ष्य यद्वृत्तमध्याजहार भाष्यकारो १०
यत्तदोर्निर्त्यः संबन्ध इति दर्शयन् । अग्निः यः
पूर्वेभिः पूर्वेः चिरंतनैः ऋषिभिः ईडितव्यः

ईडितं पूजनमर्हति अस्माभिश्च नवतरैः ईडितव्य इति वर्तते । स किं
करोतीत्याकाङ्क्षिते निराकाङ्क्षम् । स देवानिह एतस्मिन्कर्मण्यस्माकम्
आवहतु इति लोटा निराह भाष्यकार आशिपमाकाङ्क्षितामपेक्ष्य । १५
ऋज्वेकपदनिरुक्तम् ।

संकीर्णत्वादन्यमिधानस्यातः परं विचारः । ‘ स न मन्येत ’
इत्येवमार्थनाश्लेष्य विचारः । ननु नित्ये स्वार्थाभि-
संबन्धेऽभिधानानामर्थान्तरगृह्यत्तैव नास्ति कुतः
संकर इति । अथास्त्यर्थान्तरवृत्तता जैह्वेस्वार्थ- २०
मर्थान्तरमुपसंक्रामेदनित्यतां संबन्धस्य द्योतयति ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘रणमतक’ । २ क. ख. २ (१५) ; ग. २० ;
ठ. ड. इति निरुक्तवृत्तौ (ड. निरुक्तटीकायां) उत्तरपट्टकं प्रथमध्याये पञ्चदशः
खण्डः (ठ. खण्डः । १५ ।) । ३ क. ख. थ. ‘रीडितव्यो ; छ. त. द.
‘रीडितव्यो । ४ क. ख. ३ (१६) ; छ. २१ ; त. द. ३. ५ ग. इति । प० २५
६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘नित्यसं’ । ७ क. ख. झ. ट. ड. ईडित’ ;
ग. च. ज. घ. ईडित’ । ८ क. ख. ईडितं, ग. च. ज. झ. ईडितं । ९ क. ख.
ईडित’ ; ग. च. ज. घ. झ. ईडित’ । १० थ. झ. ट. ठ. ड. करोत्वित्या’ ।
११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘काङ्क्षं क्रियते । स’ ; च. ‘काङ्क्षं । स’
क्रियते । १२ ग. ज. जहन्स्वार्थ’ ; च. जहन्स्वा’ त्स्वा । १३ थ. वर्जं सर्वेषु
पुस्तकेषु ‘कामचने’ ; च. ‘कामचने’ न ।

नैव जहत्स्वार्थमभिधानमभिधेयान्तरे वर्तते । किं तर्हि । द्वे ह्यभिधानस्य
शक्ती गौणी मुख्या च । तयोर्गौणी गुणसाम्या-
अभिधानानां गौणी चस्मात्कस्माच्चिद्गुणात्सर्वत्र वर्तते । तस्यास्तथा-
मुख्या इति द्वे शक्ती विध एव संबन्धः सर्वार्थोन्तियं समर्थप्रकरणो-
पपदपरतन्त्रः । मुख्यत्वविनियोगेन लोकवेद-
प्रसिद्धया स्व एवार्थे वर्तते । तदेवमसंकरेऽपि शब्दानां मुख्यगौणार्थ-
वर्तिनां संकर इवामेधसां प्रतिभाति ।

- ५ क कस्य शब्दस्य गौणी शक्तिः क कस्य मुख्येति तत्प्रविवेकार्थ-
मिदमुपोद्भवन्ति चोदकरूपेण ' स न मन्येत ' इति । स शिष्यो न
१० मन्धेत न जानीयात्सम्यगेतदर्भितम् ' अयमेवाग्निः ' पृथिवीस्थानः
' इति ' । कस्मात्पुनर्न मन्येत । इतो यस्मात्
उत्तरे अग्नि ज्यो- ' अध्येते उत्तरे ज्योतिषी ' मध्यमं चोत्तमं च
तिथी अग्नी इत्युच्येते ' अग्नी उच्येते ' । कथमिति । अत आह । एत-
त्तावत्पार्थिवं ज्योतिरावैहनक्रियायोगात् ' अग्नि-
१५ मीले ' इत्येतरस्यां यथा भवतोक्तं तथैवोच्यते । ' ततो नु '
वयमपि यथा ' मध्यमः ' अग्निशब्देनोच्यते । तत्कर्मयोगाच्च स एवाग्निः-
स्तथेवामृचमुदाहरिष्यामः ॥ १६ ॥

- २० अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः । समयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः
(ऋ० सं० ४ । ५८ । ८) ॥ अभिनर्भन्त समनस इव योषाः

१ ग. च. 'चित्' नास्ति. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सर्वार्थो नित्यः सम°;
ग. सर्वार्थे नि°; च. सर्वार्थो नित्यं स° र्थो नित्यः. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
मुख्यत्वे वि°; च. मुख्यो त्वे° रूपत्वे. ४ ग. ज. मःयते; च. मन्यते° न्येत.
५ ग. ज. 'रावहवनक्रिया°; च. 'रावहनहवनक्रिया°. ६ क. ख. °मीडे;
ग. च. ज. घ. झ. °मीले. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तस्यां च य°;
ग. ज. °तस्या य°; च. तस्यां च य° च. ८ क. ख. ३ (१६); ग. २१; ठ.
ड. इति निरुक्टीकायामुत्तरषट्के (ठ. निरु० उक्त०) प्रथमेऽध्याये षोडशः खण्डः
२९ (ठ. खण्डः । १६). ९ ड. थ. ध. ठ. ड. °नवन्त.

समनं समननाद्वा संमाननाद्वा कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निमि-
त्यौपमिकं घृतस्य धारा उदकस्य धाराः समिधो नसन्त नस-
तिरामोतिकर्मा वा नमतिकर्मा वा । ता जुषाणो हर्यति जात-
वेदाः । हर्यतिः प्रेप्साकर्मा विहर्यतीति । समद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदा-
रदित्यादित्यमुक्तं मन्यन्ते समुद्राद्धथेषोऽद्भ्य उदेतीति च ब्राह्म-
णमथापि ब्राह्मणं भवत्यग्निः सर्वा देवता इति तस्योत्तरा भूयसे
निर्ध्वजनाय ॥ १७ ॥

‘ अभिप्रवन्त ’ इति । वामदेवस्यार्षम् । सप्तमेऽहनि दशरात्रस्या-
मध्यमस्य ज्योति-
षोऽग्निशब्दत्वे उदाह-
रणम्
उपशस्त्रे विनियोगः (आश्व० श्रौ० ८ । १०
९) । अभिप्रवन्त आभिमुख्येन नमन्ति प्रह्वी-
भवन्ति । काः पुनस्ताः । घृतस्य उदकस्य
धाराः । कमभिप्रह्वीभवन्ति । मध्यमम् अग्निम् ।
कथमिति । समनेव योषाः । समानमनसः ।
एकास्मिन् भर्तारि यासां मनांसि वर्तन्ते ताः समनसः । ता यथा कल्याण्यः
रूपयौवनादिगुणसंपन्नाः स्मयमाना ईपद्भसन्त्यः हर्षमुपजनयन्त्यो
भर्तुस्तं प्रति पारिष्वजनायाः भिनमेयुस्तथा मध्यमस्थानमग्निं घृतस्योदकस्य
धाराः समिधः समिध्वयस्यो नसन्त । प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ताश्च पुनः स
जातवेदाः मध्यस्थानो वैद्युतोऽग्निः जुषाणः प्रीयमाणो हर्यति पुनः पुनः
प्रेप्सति अभिकामयते ।

एवमेतस्मिन्मन्त्रे युगपदविधानात्पार्थिवे घृताहुतिहवनस्योपमानोपमेय-
वैधर्म्याच्च युगपत्संभवाच्चोदकधाराणां वैद्युते तत्रोपमानोपमेयसामञ्जस्याच्च
सामर्थ्यात्प्रसिद्धिमपूरुन्ध्य ‘ घृतस्य धारा ’ शब्द
अग्निशब्दस्य मध्य- उदकधारावचनः संपद्यते । पठितं चैतदेव
मत्वे कारणम् सामर्थ्यमपेक्ष्योदकनाममु ‘ घृतं मधु ’ (निघ०

१ छ. त. द. ‘ कर्माभिर्य’ । २ छ. त. द. उदेती । ३ क. ख. ४ (१७) ;
छ. २२ ; त. द. ४. ४ ग. इति । सप्तमे । ५ च. भर्तुः - षं तं. ६ कं.
ख. ग. ज. ठ. ड. मध्यमस्था । ७ क. ख. ‘ दकस्य धारणं ; घ. झ. ट. ठ. ड.
‘ दकस्य धारा’ . ८ क. ख. घ. झ. ट. घृतधारा ; ग. ज. घृतस्य धाराः शं. २९

१ । १२) इति । एवंवेद्योऽयमग्निशब्दोऽत्र सामर्थ्यान्मध्यमं ज्योतिराह तस्मात्सुष्ठु ' स न मन्येतापमेवाग्निः पृथिवीस्थानः ' इति ।

' समनं समननाद्वा संमाननाद्वा ' इति । पूर्वम् अनितेः प्राणनार्थस्य (धा० २ । ६०) । उत्तरं मनोतेः (धा० ८ । ९) । ऋज्वन्य-

५ निर्वचनम् ।

अथ खलु यथोत्तममपि ज्योतिर्भवत्यग्निस्तथोदाहारिष्यौमः । ' समु-

उत्तमस्याग्निशब्दत्वे द्वाद्दूर्मिर्मधुमाँ उदाद्गुपांशुना सममृतत्वमानद् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य
उदाहरणम् नाभिः ' (ऋ० सं० ४ । ५८ । १) ॥

१० ' आदित्यम् उक्तं मन्यन्ते ' । पूर्वयैव समानाभिर्विनियोगा । अनुक्रमण्यां नानादेवता । इह तु सौरीति कृत्वोदाहृता भाष्यकारेण । समुद्रात् उदकसंघातात् ऊर्भिः छादकः सर्वस्य प्रकाशेन मधुमान् उदकवान् उदाहत् उदतीर्तत् उत्तरति उदेति अहन्यहनि । प्रथमं वास्य जन्माभिप्रेत्य । स पुनर्जातः सन् अमृतत्वम् अमृतभावम् अंशुना चन्द्रमसा उपसमानद्

१५ उपसंव्याप्नोति । सोऽस्यान्नं तेन न म्रियते । ' यमक्षितिमक्षितयः पिवन्ति ' इत्युक्तम् (निरु० ५ । ११) । कथममृतत्वं तेन उपसमानडिति । घृतस्य उदकस्य हयिषो वा यत् नाम नमनं गुह्यं रहस्यमविज्ञातं केनचिदपि यदत्र अस्ति विद्यते चन्द्रमसि तत्र देवानां रश्मीनां जिह्वा तदमृतं भिन्यमास्वादयन्ति देवास्तेन न म्रियन्ते । तेषाम्

२० अमृतस्य अमर्णस्य नाभिः नहनं सः । हेतुरित्यर्थः ।

१ घ. झ. ट. ठ. ड. एवं चयो'; च. एवं वेद्यो' चे'. २ ग. 'व्योमैः । समु'. ३ ग. च. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. दूर्मिरत्यादित्य'. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'योगा । नानादेवताभिवादस्त्वस्यां देवतानुक्रमण्यां शौनकेनोक्तः (ठ. ड. शौनकेनोक्तः) । इह पुनः सौरी. ५ च. 'देवता ~ । इह' वताभिवादस्त्वस्यां देवतानुक्रमण्यां शौनकेनोक्तः. ६ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'रेण सूक्तं सकलं च । समु'; च. 'रेण ~ । समु' सूक्तं सकलं च; ठ. ड. 'रेण सूक्तं सकलं च । समुद्राद्दूर्मिरिति सर्वा ऋक् पठ्यते. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. रति वा उदे'. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मरणस्त्वस्या'; च. 'मरण'स्या' त्व.

अथ कुतः सूर्योऽयं विशेषतोऽवधिष्यते । न चात्राग्निशब्दोऽस्ति यः
 अस्यामृचि अग्नि- सत्यप्यादिः यदेवत्वेऽस्य मन्त्रस्याग्नित्वमादित्यस्य
 शब्दो न वर्तते । प्रख्यापयेत् । घृतस्तोऽय एता इति विज्ञायते ।
 तेनाग्निशब्दोऽत्र सूर्य- येस्मादसमर्थमिदमुदाहरणम् । न असमर्थम् ।
 पर इति कथमुच्यते कस्मत् । सूक्तेऽग्निः लिङ्गमेकेषां शाखिनामस्ति । ५
 ' इमं स्तनम् ' इत्यत्र अपां प्रपीनमग्ने ' (य० घा० सं० १६ । ८७) इति । निवि-
 चास्मिन् सूक्ते धीयते । सा चाग्निः लिङ्गा । आदित्यश्चायमनेन मन्त्रेणोच्यत
 इति स्फुटमस्यैव मन्त्रस्य " ब्राह्मणं ' समुद्राद्भवेषोऽद्भुथ उदैति ' १०
 (कौषी० ब्रा० २५ । १) इति " । न च पार्थिवः समुद्राद्भवेति
 विरोधात्तस्योदकेन । तस्मादादित्योऽत्राग्निरभिप्रेत इति नासमर्थमुदाहरणम् ।
 " अथापि ब्राह्मणं भवति ' अग्निः सर्वा देवताः ' (ऐ० ब्रा०
 ६ । ३ ॥ मैत्रा० सं० १ । ४ । १३ इत्यादि बहुकृन्वः ॥ शब० ब्रा०
 १ । ६ । २ । २० ॥ तै० सं० ६ । २ । २) इति " । अथ खल्वयमपरः
 संकरोऽग्निशब्दस्य । ब्राह्मणं हि भवति ' अग्निः सर्वा देवताः ' इति । १५
 अस्य च ब्राह्मणस्य ' उत्तरा ' ऋक् ' भृगसे ' बहतराय
 ' निवेचनाय ' ॥ १७ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णा गरुत्मान् ।
 एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः (ऋ० सं० २०

१ क. ख. घ. झ. ठ. ड. सूर्योऽयमिति वि०. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. न चेतास्मिन्नापि मन्त्रेऽग्निशब्दोऽस्ति. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति च वि०; च. इति. वि० च. ४ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. तस्मा; च. येस्मां त. ५ ग. ज. प्रतीतमग्ने; च. प्रपीनमग्ने त. ६ ग. ज. उदैति. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति च । न; च. इति. ८ च. ' अत्र ' नास्ति. ९ क. ख. घ. झ. ट. ' हि ' नास्ति. १० क. ख. घ. झ. ट. तस्य. ११ क. ख. ४ (१७); ग. २९ (५३); ठ. ड. १७ इति निरुक्ताटीकायामु (ठ. निरुक्त० उ) त्रषट्के प्रथमेध्याये सप्तदशः खण्डः (उ खण्डः । १७); घ. ट. ग. अह्ना नाग्नि.

१।१६४।४६) ॥ इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा
मेधाविनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तं दिव्यो
दिविजो गरुत्मान् गरुणवान् गुर्वात्मा महात्मेति वा यस्तु सूक्तं
भजते यस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्निपातमेवैते उत्तरे
५ ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजते ॥ १८ ॥

इन्द्रं मित्रमिति अस्यवामीय एषा । इन्द्रं मित्रं वरुणम् इत्येतैरभिधानैः

अग्निः इन्द्रादि- अग्निमाहुः सतस्वविदः । अथो अपि च योऽयमा-
भिर्नामभिरप्यभिधीयते दिव्यो दिवि जायते सुपर्णः सुपत्नः गरुत्मान्
गरुणवान् । स्तुतिभिस्तद्वान् रसानां वा गरिता

१०

आदित्यः । अयमपि स एवाग्निरित्याहुः । किं
बहुता । इममेवाग्निम् एकं महान्तमात्मानम् अनन्यत्वेन पश्यन्तो विप्रा
सेधाविनः अत्माविदो बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमित्येवम् ।
अन्यैश्चाभिधानैः । ' एतस्यैव सा विसृष्टिः । एष उ ह्येव सर्वे देवाः '
(बृह० उ० १ । ४ । ६) इति च विज्ञायते । तस्माद्युक्तं यत् ' न मन्ये-
त्तायमेवाग्निरिति ' ।

१५

अत्र प्रतिसमाधानम् । सत्यमेतत्सर्व एतेऽग्निशब्देन स्तूयन्ते । न तु
प्रधानतः । किं तर्हि । गुणतः स्तूयन्ते । यतो ब्रवीति । ' यस्तु सूक्तं
भजते यस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव सोऽग्निः ' । तुशब्दः पूर्वपक्षव्याव-
र्तकः परमतव्युदासार्थः । यः सूक्तं भजते प्रधानतः । स्तुत्यत्वेनेत्यर्थः ।

२०

पार्थिवोऽग्निःसू- यस्मै च हविर्निरुप्यते चोदनासामर्थ्यात्
क्तभागवतिर्भाक्च । ' आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् ' (भैत्रा० सं०
इतरयोर्धोतिपौराग्नि- २ । २ इत्यादि) इति ' अयमेव सोऽग्निः '
शब्दो गौणः पार्थिवः । अग्निशब्दस्य विशेषतोऽत्र लोकेऽवेद-
प्रसिद्धेः । ' अग्निमानय अग्निं प्रणय ' इत्येतमेव

२५

हि लोकः प्रतिपद्यते न मध्यमं नाप्युत्तमम् ।
न च प्रसिद्धिबाधो न्याय्यः । शास्त्रचोदिता अपि खदिरपलाशादयो

१ छ. त. द. महान्तं चात्मा. २ क ख. ५ (१८) । छ. २३। तृतीयः
पादः ; त. ५।५। तृतीयः पादः ; इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ; द. °भजते ।
इति नेरुके उत्तरार्धस्य प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः. ३ क. ख. व. झ. ट. ठ.
ड. थेऽं दिव्यो दिवि' . ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. °मिति एवमाद्यैश्चाभि°.
५ ग. ज. विशिष्टिः. ६ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. लोके वेदे च प्रसि'. ७ ग.
३२ न. °दितापि ख'; च. °दितापि' अ.

लोकप्रसिद्धित एव प्रतीयन्ते । तस्माच्चान्निशब्देन पार्थिवस्य ज्योतिषो मुख्यः संबन्धः । गौण इतरयोर्भध्यमोत्तमयोः । यथान्निशब्देन न तथा मध्यमोत्तमाभ्यां विद्युःसूर्यशब्दाभ्यां लोकप्रसिद्ध्या मुख्यः संबन्धः । एवं चेत्सुष्टुक्तं ' यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरूप्यतेऽयमेव सोऽग्निः ' इति । एतदेव चात्र विचारप्रयोजनमाग्नेषु सूक्तेषु हविःसंप्रदानेषु स्तुत्यत्वेन भोक्तृत्वेन चापासीतेति । अथ पुनर्योऽयं मध्यमोत्तमयोर्ज्योतिषोरग्निप्रवादः स कथमिति । ' निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भेजेते ' । निपातो नाम अप्राधान्यं भक्तिरित्येवं ॥ १८ ॥

द्वादशस्य चतुर्थः पादः ॥

जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद जातानि वनं विदुर्जाते जाते विश्वत इति वा जातचित्तो वा जातधनो जातविद्यो वा जातप्रज्ञानो यत्तज्जातः पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वामिति ब्राह्मणम् (मैत्रा० सं० १ । ८ । २) तस्मात्सर्वानृतून् पशवोऽग्निमभिसर्पन्तीति (मैत्रा० सं० १ । ८ । २) च तस्यैषा भवति ॥ १९ ॥

' जातवेदाः ' (निघ० ५ । १ । २) इति वक्तव्यम् । स

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' च ' नास्ति. २ ग. ज. ' न ' नास्ति. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. विचारे प्र°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. चेतमेवोपासी ; ग. चोदयार्मातेति. ५ ठ. भजेते । इत्येवाग्निशब्दस्य निर्वचनम् ॥ १८ ॥ निपा°. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' स्तित्यर्थः. ७ क. ख. ५(१८); ग. २३; इतरेष्वङ्गो नास्ति. ८ क. ख. इति निरुक्तवृत्तौ द्वादशाध्यायस्य [सप्तमाध्यायस्य] चतुर्थः पादः; ठ. इति निरुक्तं उत्तरं प्रथमं अष्टादशः खण्डः । १८; ९. इति जम्बूमार्गाश्रमनिवासिन आचार्यभगवद्दुर्गस्य कुतो ऋज्वर्थायां निरुक्तटीकायां निघण्टपञ्चाध्यायेन सह द्वादशाध्यायोत्तरषट्कं प्रथमाध्याये चतुर्थः पादः । इत्यष्टादश-खण्डः समाप्तः । इत्यग्निशब्दस्य निर्वचनम् । ३. ग्रयं नमोऽस्तु. ९. ' धनो वा ज. त° (सायणभ ध्ये निरुक्तम्). १०. ' प्रज्ञो वा य° (तथैव) ११. ' मिति हि त्रा° (तथैव). १२ क. ख. १ (१९); छ. २४; त. द. १.

पुनरेप माहाभाष्यात्कर्मपृथक्त्वादग्निरेव । अथवा । पृथगभिधानस्तुत्यन्त-
रसंबन्धोदवतन्तरम् । ' जातवेदाः कस्मात् ' ।

जातवेदाः स हि ' जातानि वेद ' । न हि तदस्ति
जातमस्मिँल्लोके यदसौ न वेद । सर्वज्ञ इत्यर्थः ।

५ ' जातानि वा एनं विदुः ' । स एव धातुः । कारकान्यत्वं केवलम् ।

' जाते जाते विद्यत इति वा ' । विदेः सत्तार्थस्याधिकरणे कारके । न
तदस्ति जातं यत्रासौ नास्ति । ' जातवित्तो वा जातधनः ' । जात-

शब्दः पूर्वपदं वित्तशब्द उत्तरपदम् । जातमस्य वित्तमिति जातवेदाः ।

' जातविद्यो वा जातप्रज्ञानः ' । जातशब्द एव पूर्वपदं विदेर्ज्ञानार्थस्यो-

१० चरपदम् । निसर्गत एवास्य जातं प्रज्ञानमित्यर्थः । ' ब्राह्मणम् ' अपि

भवति जनेर्षदेश्च जातवेदा इति । ' यत्तजानः पशूनविन्दतेति ' ।

यत् असौ तत् तदा जातमात्र एव निसर्गतः पशूनकिन्दत अलभते

' तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वामिति ' विज्ञायते । यतश्चैतदेवं ' तस्मात् '

अद्यवेऽपि स्वाम्ययमस्माकमिति मन्यमानाः ' पशवः सर्वानृतून् '

१५ प्रति अपि ग्रीष्मे ' अग्निमभिसर्पन्ति ' । ' तस्य ' जातवेदसः प्राधान्य-

स्तुत्युदाहरणम् ' एषा ' ऋग् ' भवति ' ॥ १९ ॥

मं नूनं जातवेदसमभ्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे
(ऋ० सं० १० । १८८ । १) ॥ प्रहिणुत जातवेदसं कर्मभिः

१ क. ख. ष. झ. ट. ठ. ड. ण्डत्वम्. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अपि
२० च भ०. ३ क. ख. घ. झ. ट. अलभत; च. अलभते त. ४ क. ख. १

(१९); क. २४।२५; ठ. ड. १९ । इति निरुक्तं कायामुत्तरषट्के
(ड. इति निरुक्तं उक्तं) प्रथमेध्याये (ठ. प्र०) षकेनविंशः रुष्टः;

इतरेषुको नास्ति. ५ क. ख. छ. त. द. जातवेदसे सुनवाम सोममराती-

२० यतो नि दहाति वेदः. स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्याग्निः

(ऋ० मं० १ । ९ । १) ॥ जातवेदस इति जातवेदसं वैवजातवेदसेऽर्वाय

सुनवाम सोममिति प्रसवथाभिषदाय सोमं राजानमश्नुमरातीयतो यज्ञार्थमनिस्त्रो

निदहाति (त. निर्दहेति) दहा) निश्चयेन दहति भस्मीकरोति रोमो दददित्यर्थः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वाणि दुर्गानि (छ. दुर्गानि णि; त. दुर्गानि)

स्थानानि नावेव सिन्धुं नावा सिन्धुं नावा नदीं जलदुर्गा महाकुलां (त. माहा-

१० कुलां कू) तारयति दुरित.त्यग्निरिति दुरितानि तारयति तस्येषापरा भवति ॥
क. ख. त. द. २; छ. २५ ॥ प नून०.

समश्रुवानमपि वोपमार्थे स्यादश्वमिव जातवेदसमितीदं नो बर्हि-
 रासीदत्त्विति तदेतदेकमेव जातवेदसं गायत्रं तृचं दशतयीषु
 विद्यते यत्तु किञ्चिदाग्नेयं तज्जातवेदसानां स्थाने युज्यते स न
 मन्येतायमेवाग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी जातवेदसी उच्येते
 ततो नु मध्यमः । अभि प्रवन्त समनेव योषा इति तत्पुरस्ताद्वाद्या-
 रूयातम् (निरु० ७ । १७) अथासावादित्य उदु त्व्यं जातवे-
 दसमिति तदुपरिष्ठाद्वाद्यारूयास्यामो यस्तु सूक्तं भजते यस्मै
 हविर्निरूप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्जातवेदा निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी
 एतेन नामधेयेन भजते ॥ २० ॥

५

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

१०

प्र नूनं जातवेदसमिति । इयेनस्याग्निपुत्रस्यापेम् । हे स्तोतारो यूय-
 मुच्यध्वे । प्रहिणुत प्रेरयत स्तुतिभिरेतं जातवे-
 जानवेदःशब्द- दसम् अश्वं कर्मभिः सर्वमेतज्जगत् अश्रुवानं
 स्योदाहरणम् व्यापयन्तं वाजिनं वेजनवन्तं चलनवन्तम-
 चिर्भिः । अथवा । अश्वमिव इति वा लुतोपमं
 रूदेर्बलीयस्त्वात् । वाजिनं वेजनवन्तं चलनस्वभावं शीघ्रम् । किमिति
 प्रहिणुतेति । इतः । इदं नो बर्हिरासदे । इदम् अस्मकर्म बर्हिपोप-
 लक्षितं बर्हिः कथं नामास्मदभिमतार्थसिद्धयर्थमाभिमुख्येन सीदेदित्येवमर्थं
 प्रहिणुर्न ।

१५

२०

इदानीमुत्सर्गं दर्शयति प्रयोजनार्थम् । ' तदेतदेकमेव जातवेदसैम् ' ।

जातवेदसं गायत्रं इति । तदिति दशतयीस्थस्यानुस्मृतये परोक्ष-
 तृचमेकमेव निर्देशः । एतदिति प्रत्यक्षेण प्र नूनमित्येतया
 संनिधीकृत्योपदिशति । गायत्रमिति छन्दोनिर्देशो

१ छ. त. द 'देकमिव. २ छ. त. द. 'वेदसा उ'. ३ क. ख. ३ (२०); २५
 ९ छ. २६ । चतुर्थः पादः; त ३।७ । चतुर्थः पादः; द. : इति नेरुक्ते उत्तरार्धस्य
 प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ४ ग. 'मिति ' इयेन'. ५ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. 'षम् । गायत्री । हे; च. 'षम् । 'हे' गायत्री । ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. चञ्चलमर्चिभिः; च. चलनवन्तं नं अ. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' वा '
 नारित ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'णुतति. ९ ग. ज. 'देकमिव; च. 'दे-
 कर्मिव' मे. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वेदस्यं गायत्रं तृचमित्यादि, च. 'वेद-
 सैम्' स्व.

३२

विवक्षितप्रयोजनार्थः । तृचमिति सूक्तस्य संख्यानिर्देशः । दशतयीषु सर्वास्वपीति निर्धारणे । विद्यते अस्ति । ततः किं यद्येतदेकं जातवेदसं गायत्रं तृचं दशतयीषु विद्यते । शृणु । बहुभिरेतैर्गायत्रच्छन्दोयुक्तैर्जातवेद-सैर्मन्त्रैराधियज्ञे प्रयोजनमस्ति । न चैते बहवः सन्ति सर्वास्वपि दशतयी-

- ५ यत्र गायत्रच्छन्दो-
युक्तानां जातवेद-
सानां मन्त्राणां प्रयो-
जनं तत्राग्नेयास्तच्छ-
न्दोयुक्ता मन्त्रा विनि-
युज्यन्ते
- १० यत्तु किञ्चिदाग्नेयं मन्त्रजातं गायत्रं च्छन्दस्य-
जातवेदोलिङ्गमपि 'तज्जातवेदसानां' मन्त्राणां
'स्थाने' विनि'युज्यते' शस्त्रेण । तेन
किं स्थितं भवति । अग्निरेव जातवेदा इति
कर्मपृथक्त्वान्माहाभ्याद्वेति । इतरथा हि प्रयो-
गवैकल्यं स्यात् । न चान्यदेवतमन्यस्य स्थाने
प्रयुज्यते । यथा चायमनर्थान्तरमग्निर्जातवेदैस-
एतस्माद्विधिलिङ्गात्तथा वैश्वानरप्रभृतयोऽपीत्युपेक्ष्यम् ।

- १५ 'स न मन्येत' इति पूर्ववद्विचारः । कैवलम् 'अभि प्रवन्त'
मध्यमोऽपि जात-
वेदा इत्यभिधीयते
- इत्यत्राग्निपदविश्वारेऽग्निशब्दो विशेष्य आसी-
ज्जातवेदःशब्दोऽस्य गुणपदमिति । इह तु जात-
वेदःशब्दविचारे पुनः 'अभि प्रवन्त' इत्य-
स्मिन्नेवोपात्ते मन्त्रे गुणपदमग्निशब्दो जातवेदः-
शब्दस्येत्याद्यदुपेक्ष्यम् ।

- २० यथा तु पूर्वस्मिन् 'समुद्रादूर्भिः' इत्यादित्यस्याग्नित्वोपपत्तावुदाहरणं
तथेह 'अथासात्रादित्य उदु त्यं जातवेदसमिति'
तथोत्तमोऽपि जातवेदस्त्वोपपत्तौ । तदेतत्प्रतिपदमुदाहरणम्
'उपरिष्टाद् व्याख्यास्यामः' (निरु० १२ । १५)।

- १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मित्येतत्सूक्तं'. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
रणे सप्तमी । विं; च. 'रणे ५ विं' सप्तमी. ३ घ. झ. ट. 'वेदस्यं; च. वेदसां.
४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वेदधर्म'. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. गायत्र
एव च्छन्दः. ६ ग. च. ज. 'क्त्वा-महा'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वेदा
१८ एं; ठ. 'वेदा इत्यस्मां. ८ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. तु.

‘जातवेदसं सूर्यमुद्ब्रह्मन्ति’ इति तु विशेषणविशेष्यसामानाधिकरण्यैकवाक्य-
प्रसिद्ध्याश्च निगमसिद्धमस्मिन्मन्त्रे जातवेदाः सूर्य इति । तस्मात्सुसूक्तं
यत् ‘स न मन्येतायमेवाग्निः’ जातवेदा इति ।

‘यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरूप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्जातवेदाः’
तथापि जातवेदा इति पूर्ववत्प्रसिद्धिरेव विशेषहेतुः । यद्यपि मन्त्र- ५
दर्शनमविशिष्टं त्रयाणामपि उद्योतिषां जातवेदस्त्वे
अयमेव पार्थिवोऽग्निः तथापि पार्थिवोऽग्निरितरयोः प्रसिद्ध्या विशेष-
यते । जातवेदस्त्वं हि प्रसिद्धमस्मिन्नग्नौ नै तथा
वैद्युते नापि सूर्य इति । ‘निपातमेवैते उत्तरे उद्योतिषी’ जातवेदा इति ‘एतेनै
नामधेयेन भजेते’ इति व्याख्यातम् ॥ २० ॥ १०

द्वादशस्य पञ्चमः पादः ।

वैश्वानरः कस्माद्विश्वान्नरान्नयति विश्व एनं नरा नयन्तीति
वापि वा विश्वानर एव स्यात्प्रत्युतः सर्वाणि भूतानि तस्य
वैश्वानरस्तस्यैषा भवति ॥ २१ ॥ १५

‘वैश्वानरः’ (निघ० ५ । १ । ३) इति वक्तव्यम् । तदर्थमुपो-
द्ब्रह्मन्ति ‘वैश्वानरः कस्माद्’ इति । ‘विश्वान्नरान्’ इतो लोकादमुं लोकं
नयति’ यथा पञ्चाग्निविद्यायामुच्यते (छा०
वैश्वानरः ३० ५ । ४ । ९) । अपि वा सति तस्मिन् २०
न्सर्वाः प्रवृत्तयः फलवत्यो नराणां भवन्तीति
हेतुकर्तृत्वेन सर्वासु प्रवृत्तिष्वयमेव नरान्नयति प्रवर्तयतीति वैश्वानरः ।
अथवा । ‘विश्वे एनं नरा नयन्तीति वा’ कर्मकारकम् । स नीयमान-

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘च’ नास्ति. ३ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अनेन. ४ क. ख. ३ (२०); ग. २६; इतरेष्वङ्गो २५
नास्ति. ५ व. झ. टः इति द्वादः; ठ. °व्याख्यातम् । इति नि० उ० प्र० विंशतितमः
खण्डः । २० । पञ्चमः पादः; ह. व्याख्यानम् । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपटुके
प्रथमाध्याये पञ्चमः पादः । समाप्तं विंशतिः खण्डम्. ६ च. पादः समाप्तः । २० ।
७ क. ख. १ (२१); छ. २७; त. द. १. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°ति । हेतुकर्तृत्वेन सर्वासु प्रवृत्तिषु अयमेव नरान् नयति । यथा°.

स्तासु क्रियास्वङ्गभाषं नरैः कर्म संपद्यते । 'अपि वा विश्वानर एव' कश्चित् 'स्यात्' । स पुनः कस्मात् । 'प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि' । विश्वानि ह्यसौ भूतानि प्रत्यृतः । प्रविष्ट इत्यर्थः । 'तस्य' अपत्यं विश्वानरस्य 'वैश्वानरः । तस्य' वैश्वानरस्य 'एषा' प्राधान्यस्तुतिः 'भवति' ॥ २१ ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभित्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण (ऋ० सं०
१।९८।१) ॥ इतो जातः सर्वमिदमभिविपश्यति वैश्वानरः
१० संयतते सूर्येण राजा यः सर्वेषां भूतानामभिश्रयणीयस्तस्य वयं
वैश्वानरस्य कल्याण्यां मतौ स्यामेति तत्को वैश्वानरो मध्यम
इत्याचार्या वर्षकर्मणा ह्येनं स्तौति ॥ २२ ॥

वैश्वानरस्य सुमताविति कुत्सस्वर्षाम् । पृष्ट्याभिल्लवयोश्चतुर्धपष्ट्रियो-
१५ वैश्वानरशब्दस्यो- रहोराग्निमारुतस्य प्रतिपत् (आश्व० श्रौ० ८।८) ।
दाहरणम् इतः पृथिवीलोकादोषधिवनस्पतिभ्यो यो जातो
विश्वमिदं विचष्टे सर्वमिदमभिविपश्यति तथा
दृष्ट्युपकारकत्वेन दर्शयति वा प्रकाशकत्वेन ।
यश्च संयतते सूर्येण संगच्छते स्वेन भासा । राजा च यः सर्वेषां
२० भूतानाम् आश्रयणीयः । तस्य वयम् एवंगुणयुक्तस्य वैश्वानरस्य
नित्यं कल्याण्यां मतौ उपकारप्रवृत्तायामात्मनो यथाभिमतार्थसाधि-
कायां स्थाम इत्येतदाशास्महे । लोकेऽपि हि स्तूयत एव पूर्वं पश्चात्प्रार्थयत

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'स्तासु तासु क्रि' । २ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. 'स्तुतिर्ऋग्वे' । ३ क. ख. १ (२१) ; ग. २७ ; ड. 'वति । इति
निरुक्तं उ० प्रथ० एकविंशतिः रुण्डः ; ड. 'वति । इत्येकविंशतिः रुण्डः ;
घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ४ क. ख. २ (२२) ; छ २८ ; त. द. २.
५ ग. विति । 'कु' । ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'र्थपञ्चमयो' । ७ च.
'तिभ्यां यो' । ८ घ. झ. ट. ठ. ड. 'श्यति यच्चाभिदृष्ट्यमुपकार' । ९ ग. ज.
२३ 'कारत्वेन ; च. 'कारत्वेन' क. १० ग. अभिश्र' ।

इत्याचार्यः पर्यन्मन्त्रेऽप्ययमेव न्याय इत्युपदर्शनार्थं पदानां क्रमं विभेद ।
 कल्याण्यां मत्तौ स्यामेल्याशिषो समापयांचक्रे । अनेकतिङ्घि चैतस्मिन्मन्त्रे
 प्रतितिङ्घि वाक्यभेदे प्राप्ते यत्तदोरध्याहारेण ' राजा यः सर्वेषां भूताना-
 मभिभ्रयणीयस्तस्य वयं वैश्वानरस्य कल्याण्यां
 अत्र यत्तदोरध्या- मत्तौ स्याम ' इत्येकवाक्यतया सामर्थ्यमुद्भाव- ५
 हारेण भिन्नवाक्या- यांचकारैकोऽत्रार्थपतिर्वैश्वानरो यतः कल्याणी
 न्येकीकृतानि आशास्यते मतिस्तमभिसंतिष्ठते स्तुतिरिति ।
 अयमेकवाक्यतान्यायः प्रायशो मन्त्रेषु । क्वचित्पुनः
 प्रत्याख्यातमर्थमपेक्ष्यैकस्मिन्नपि मन्त्रे वाक्यभेदो भवत्येव । तद्यथा ।
 ' ऋचां त्वः पोषम् ' इत्यत्र प्रतिपादं वाक्य- १०
 क्वचिदर्थवशेनै- समाप्तिः (निरु० १ । ८) । अनेकेषामपि च म-
 कस्य वाक्यस्यानेक- न्त्राणामाकाङ्क्षितार्थिनां परस्परमेकवाक्यता भवति ।
 चाक्यानि तदपि चोपप्रदर्शयिष्यति ' येना पावक चक्षसा'
 इत्यत्र (निरु० १२ । २२-२५) ।
 ' तत्को वैश्वानरः ' इत्यतःप्रभृति विचारः । तदिति वाक्योपादाने । १५
 कोऽयं वैश्वानरः । कुतः मंशयः । आगम-
 को वैश्वानरः विप्रतिपत्तेः । वैश्वानरविद्यायां (छा० उ०
 ५ । ११-२४) तावदात्मेत्यात्मविदः । ईन्द्र
 आदिभ्यवाग्वाकाशोदकपृथिव्यादयश्च पृथक् पृथक्
 आवैश्वानरत्वेन विज्ञायन्ते । अपि च ' मध्यमो ' २०
 मध्यम इति नैरुक्ताः वैश्वानरः ' इति ' नैरुक्ताः केचित् ' आचार्याः '
 मन्यन्ते । कस्मात् । ' वर्षकर्मणा ह्येनं स्तौति '
 इति मन्त्रदृक् । हिंशब्दो हेत्वर्थः । वर्षकर्मणोर्न वैश्वानरं यस्मान्मन्त्रदृक्
 स्तौति । कथमिति । यत आह ॥ २२ ॥

१ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. मन्त्रेष्वयम्'. २ क. ख. घ. ङ. ट. 'षा च २५
 स'. ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'स्तमेभिः शब्दरभिर्घाति संतिष्ठ'. ४ ग. च.
 ज. घ. ट. ठ. ड. प्रतिपद्. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. विश्वा'. ६ क.
 ख. घ. ट. ठ. ड. इन्द्रादित्य'. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'थमेव वैश्वानर'.
 ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'इति' नास्ति. ९ क. ख. २(१२); ग. २८;
 ठ. 'इति नि० उ० ५० द्वाविंशतिः खण्डः । २२ ।; ड. 'आह । निरुक्ती-
 कायामुत्तरपदके प्रथमाध्याये द्वाविंशतिः खण्डः; घ. ङ. ट. ज. यद्वा नास्ति. ३१
 ८८

- प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
 वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत्
 (ऋ० सं० १ । ५९ । ६) ॥ प्रब्रवीमि तन्महित्वं माहाभाग्यं
 वृषभस्य वर्षितुरपां यं पूरवः पूरयितव्या मनुष्या वृत्रहणं मेघहनं
 सचन्ते सेवन्ते वर्षकामा दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मिन्नसा
 उपदासयति कर्माणि तमग्निर्वैश्वानरो घ्नन्नवाधूनोदपः काष्ठा अभि-
 नच्छम्बरं मेघमथासावादित्य इति पूर्वं याज्ञिके एषां लोकानां
 रोहेण सवनानां रोह आम्नातो रोहात्प्रत्यवरोहश्चिकीर्षितस्त-
 मनुकृतिं होताग्निमारुते शस्त्रे वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रति-
 पद्यते (ऐ० ब्रा० १२ । ३) सोऽपि न स्तोत्रिय-
 माद्रियेताग्नेयो हि भवति तत आगच्छति मध्यस्थाना देवता
 रुद्रं च मरुतश्च ततोऽग्निमिहस्थानमत्रैव स्तोत्रियं शंसत्यथैवापि
 वैश्वानरीयो द्वादशकपालो भवत्येतस्य हि द्वादशविधं कर्मा-
 थापि ब्राह्मणं भवत्यसौ वा आदित्योऽग्निर्वैश्वानर इत्यथापि
 निवित्सौर्यवैश्वानरी भवत्या यो द्यां भात्या पृथिवीमित्येप हि
 द्यावापृथिव्यावाभासयत्यथापि छान्दोमिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं
 भवति दिवि पृष्ठो अरोचतेत्येप हि दिवि पृष्ठो अरोचतेत्यथापि
 हविष्पान्तीयं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं भवत्येवमग्निर्वैश्वानर इति
 शाकपूणिर्विश्वानरोवेते उत्तरे ज्योतिषी वैश्वानरोऽयं यत्ताभ्यां
 जायते कथं न्वयमेताभ्यां जायत इति यत्र वैद्युतः शरणमभिहन्ति
 यावदनुपात्तो भवति मध्यमधर्मैव तावद्भवत्युदकेन्धनः शरीरो-
 पशमन उपादीयमान एवायं संपद्यत उदकोपशमनः शरीरदीर्घि-
 रथादित्यादुदीचि प्रथमसमावृत्त आदित्ये कंसं वा मणिं वा परि-
 मृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयमसंस्पर्शयन्धारयति तत्प्रदीप्यते
 सोऽयमेव संपद्यतेऽथाप्याह । वैश्वानरो यतते सूर्येणेति । न च

- १ ङ ध. ठ. ड. तन्महत्त्वं; थ. तन्महित्वं ह. २ क. ख. त. द. °काः
 । ३ । ए°; छ. °काः । २९ । एषां°. ३ क. ख. त. द. °सति । ४ । अथा°; छ.
 °सति । ३० । अथा°. ४ छ °वति । ३१ । अय°; त. द. °वति । ५ ।
 अय°. ५ ङ. थ. ध. ठ. ड. °नरावित्प्येते. ६ छ. °प्तिः । ३२ । अथा°; तः
 ३० द. °प्तिः । ६ । अथा°. ७ क. ख. छ. त. द. °ते तथा°.

पुनरात्मनात्मा संयततेऽन्येनैवान्यः संयतत इत इममादधात्यमु-
तोऽमुष्य रश्मयः प्रादुर्भवन्तीतोऽस्याचिपस्तयोर्भासोः संसङ्गं
दृष्ट्वैवमवक्ष्येदथ यान्येतान्यौत्तमैकानि सूक्तानि भागानि वा
सावित्राणि वा पौष्णानि वा वैष्णवानि वा तेषु वैश्वानरीयाः
प्रवादा अभविष्यन्नादित्यकर्मणा चैनमस्तोष्यन्नित्युदेपीत्यस्तमे- ५
पीति विपर्येषीत्याग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु वैश्वानरीयाः प्रवादा
भवन्त्यग्निकर्मणा चैनं स्तौतीति दृहसीति वहसीति पचसीति
यथो एतद्वर्षकर्मणा ह्येनं स्तौतीन्यस्मिन्नप्येतदुपपद्यते । समान-
मेतद्दुदकमुच्चत्यत्र चाहभिः । भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं
जिन्वन्त्यग्रयः (ऋ० सं० १ । १६४ । ५१) इति ॥ सा १०
निगद्व्याख्याता ॥ २३ ॥

प्र नृ महित्वमिति । नोधन आर्षम् । प्रवर्षीमि अहं महित्वं मीहः-
भाग्यं स्तुत्यन्वम् । कस्य । वृषमस्य वर्षीपुराणम् ।
मध्यमस्य वैश्वा- यम् अन्येऽपि पूरवः पूरयितव्या मनुष्याः कामैः १५
नरत्वे उदाहरणम् वृत्रहणं मेवहनं मचन्ते मेवन्ते वर्षकामाः स्तुति-
भिः । तन्माहाभाग्यं प्रवर्षीमि । यद्मौ वर्षिता
वैश्वानरोऽग्निः दस्युं दामायितारमुपक्षयितारं रमानाम् । शुष्यन्ति हि तद-
नुद्भे मस्यानि । कर्मणां वोपदामयितारमनावृद्धिदोषेण । तं दस्युं शम्बरं
मेघम् उदकपूर्णं जघ्नवान् हतवान् आर्भन्तं भृशं व्यदारयत् विदार्य २०
च अधूनोत् वर्षमात्रेनाकम्पयत् अक्षारयत् काष्ठा अत्रा यस्तस्याहं वर्ष-

१ ङ. थ. ध. ठ. ड नत्मानं मं. २ छ. 'वक्षत् । - ३ । अथ'; त. द.
'वक्षत् । ७ । अथ . ३ ङ. थ. ध. ठ. ड. 'त्तमिका'. ४ क. ख. ङ. थ. ध.
ठ. ड. वा सावित्राणि वा पौ'. ५ क. ख. ङ. थ. ध. ठ. ड. वा वैश्वेदेयानि वा
तेषु'. ६ ङ. थ. ध. 'तीति वहसीति पचमीति दृहसीति यथो'. ७ छ. 'ते
। ३४ । सं'; त. द. 'ते । ८ । सं'. ८ छ. ३५ । पञ्चमः पादः ।; त. २५
९ । इति पञ्चमः पादः ।; द. ९ । इति नेरुके उत्तरार्धस्य प्रथमाध्यायस्य
पञ्चमः पादः. ९ ग. मिति^६ । नो'. १० क. ख. घ. ट. ठ. ड 'र्षम् । त्रिष्टुप् ।
वैश्वानरोऽग्निदेवता । प्र'. ११ ठ. ड. महत्वं. १२ च. मीहा मा. १३ क. ख. घ.
ट. ठ. ड. स्तुत्या । क'. १४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. उदकवन्तमुदकपूर्णं.
१५ क. ख. घ. ट. हतवानवाभिनत भु'; ग. ज. हतवान भृशं नभिनत् व्यदार'. ३०

प्राप्त्यर्थं प्रागेचं गौहाभाग्यम् । स वर्षत्वस्माकमित्यभिप्रायः ।

एवमेतस्मिन्मन्त्रे वैश्वानरस्य वर्षकर्मणैकवाक्यसंबन्धान्नान्यो मध्यमा-
द्वैश्वानर इत्याचार्या मन्यन्ते । स्थितं तावदेवम् ।

‘असावादित्य इति पूर्वे याज्ञिकाः’ । असाकिति कर्मात्मनैनमैपदिशन्

५

वैश्वानर आदित्य
इति पूर्वे याज्ञिकाः

व्रवीति । मा भूद्रौणः कस्मिंश्चिदप्रत्ययः । पूर्वं इति
विधिमन्त्रार्थवादेभ्यो यज्ञसतत्त्वमुचीयैनं यज्ञं
प्रयोगतः प्रथमं ये चक्रुस्ते पूर्वं याज्ञिकाः । साक्षा-
ऋतधर्माण इत्यर्थः । त एनमेवमाहुः ‘असावादित्य इति’ । कथा पुनरुप-
पत्त्या त एवमाहु रिति । विध्यनुकरणप्रसिद्धयो । कथमिति । यतस्तन्मतमाहं ।

१०

‘एषां लोकानां रोहेण सवनानां रोह आम्नातः’ । य एव हि

यस्मात् दिवि प्रत्य-
वरोहे वैश्वानरीयं सूक्तं
शस्यते

१५

हृश्विकीर्षितः
प्रत्यवरोहक्रमः । पठि-

तव्यानि शस्त्राणि च

२०

सोऽग्निष्टोमसाम्नि यज्ञायज्ञिये यच्छस्त्रमाग्निमारुतं तत्सवनलोकप्रत्यवरोहा-

लोकानामारोहणकर्मः पृथिन्यन्तरिक्षं द्यौरिति स

एव सवनानामपि क्रमः प्रातःसवनं माध्यंदिनं

तृतीयसवनमिति । ततः किम् । कस्मि-

श्विकर्मणि रोहप्रातिलोभ्येन ‘रोहाप्रत्यवरो-

हृश्विकीर्षितः’ कर्तुमीप्सितः । तदुपव्याचक्ष्महे । स एष होता

प्रातःसवनं पृथिवीलोकभक्तिं^{१०} शंसित्वै^{११} ततो माध्यंदिनन्तरिक्षलोक-

भक्तिं^{१२} शंसति संसृतत्वात् । प्रतिभक्तिं संसृतवच्च

प्रत्यवरोहक्रमः । पठि- शंसन् पृथिवीलोकादन्तरिक्षलोकमारूढो भवति ।

तव्यानि शस्त्राणि च स द्यूलोकमारोहन् द्यूलोकभक्तिं तृतीयसवनं

शंसति । तदपि च^{१३} शंसन् द्यूलोकमारूढो भवति ।

सोऽग्निष्टोमसाम्नि यज्ञायज्ञिये यच्छस्त्रमाग्निमारुतं तत्सवनलोकप्रत्यवरोहा-

२५

१ ग. च. ज. महा. २ क. ख. व. ट. ठ. ड. ‘वाक्यतासंब’. ३ क. ख.

घ. ट. ठ. ड. ‘नैनमुपदि’. ४ घ. ट. ठ. ड. ‘श्वित्पूर्वः प्रत्यय इति विधि’.

५ क. ख. ‘सिद्ध्या । ३ । कथं. ६ ग. ‘माह । २९ । एषां’. ७ क. ख.

३५

घ. ट. ठ. ड. ‘हणानुक्रमः. ८ घ. ठ. ड. ‘दिनं सवनं तृती’; ट. ‘दिनं सवनं

तृती’. ९ क. ख. व. ट. ठ. ड. एव. १० क. ख. व. ट. ठ. ‘भक्ति. ११ क.

ख. घ. ट. शंसति संसृतत्वात् ततो’. १२ क. ख. ग. ज. घ. ट. ‘भक्ति. १३ क.

ख. घ. ट. ठ. ड. ‘त्वात् । ततस्तृतीयसवनं द्यूलोकभक्तिं शंसति संसृतत्वात् । प्राति’.

१४ ग. ज. ‘भक्ति. १५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘सन् स पृथि’. १६ क. ख. घ. ट.

ठ. ड. ‘वति । अन्तरिक्षलोकात् द्यूलोकम् । स च द्यु’. १७ क. ख. घ. ट. ठ.

३१

ड. ‘च’ नास्ति.

नुकृतिं चिकीर्षिञ्छस्त्रं ' वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते ' प्रारभते । तद्यथा
 ' वैश्वानराय पृथुपाजसे ' (ऋ० सं० ३ । १ । ३) इति प्रतिपत्
 (ऐ० ब्रा० २० । २) । ' सोऽपि न स्तोत्रियमाद्रियेत ' ' यज्ञायज्ञा वो
 अग्नये ' (ऋ० सं० ६ । ४८) इति । अयं तावत्स्तोत्रियत्वेन प्रथममाप-
 द्यत एव हि स्तोत्रैश्छाणां धर्म इति । कस्मात्पुनः स्तोत्रियं नाद्रियते ।
 ' आग्नेयो हि भवति ' । प्रत्यवरोहे कर्तव्ये स च पुनराग्नेयो यैः स्तोत्रियः ।

५

यथा स्तोत्रं तथा
 शास्त्रमित्यस्योत्सर्गस्था-
 न्रापवादो वैश्वानरीय-
 शास्त्रपठने

अग्निश्च पृथिवीस्थानः । तद्यदीर्घमाद्रियेत न प्रत्य-
 वरोहानुकृतिप्रारम्भः कृतः स्यात् । अन्धेषु तु
 शास्त्रेषु युक्तं यदूर्ध्वमारुरुक्षमाणः स्तोत्रियेण
 प्रतिपद्यते इह पुनरवरुरुक्षमाणो द्युस्थाना-
 धिदेवताशंसनक्रमेण वैश्वानरीयेण सूक्तेन

१०

प्रतिपद्यत इति । तेन ज्ञायत आदित्यो वैश्वानर इति ।

अपि च । सुतरां प्रत्यवरोहणमेतदिति गम्यते येन ' तत आगच्छति

ततो मध्यस्थान-
 देवताशंसनम्

मध्यस्थाना देवता रुद्रं च मरुतश्च ' । ' ततः '
 वैश्वानरीयाःसुक्तात्प्रत्यवरोहानुकरणाभिप्रायेण श-
 स्तात्प्रत्यवरुह्य ' मध्यस्थाना देवता आगच्छति '
 मध्यमैस्थानेऽभिर्शंसितुम् । कतमाः । ' रुद्रं च

१५

मरुतश्च ' । तद्यथा ' आ ते पितर्मरुतां मुम्रभेत् ' (ऋ० सं० २ ।
 ३३) इति (ऐ० ब्रा० १३ । १०) । ततो मध्यस्थानात्पृथि-

पृथिवीलोकं प्रत्य-
 वरुह्य यज्ञायज्ञिथं शस्त्रं
 पठ्यते । तस्माद्वैश्वानर
 आदित्यः

वीस्थानं प्रत्यवरुह्य ' अत्रैव तं स्तोत्रियं शंसति '
 ' यज्ञायज्ञा वो अग्नये ' (ऐ० ब्रा० १३ ।
 ११) इति । तदेवमेतस्माद्द्व्यध्यनुकरणात्प्रश्याम-
 आदित्यो वैश्वानर इति ।

२०

१ ग. ज. स्तोत्रियं. २ ग. च. ज. 'ततोत्रियं'. ३ ग. ज. स्तोत्रे शास्त्रां.
 ४ घ. ट. ठ. ड. नन्द्रियेत. ५ क. ख. घ. ट. 'योऽयं स्तो'. ६ क. ख. घ. ट. २५
 तद्यदि तमाद्रिं. ७ क. ख. अन्धेषु शास्त्रेषु च युक्तं; घ. ट. ठ. ड. 'च'.
 ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'वताः शंसमानः क्रमे'; च. 'वता शंसना' कं तु.
 ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. कथं पुनः (क. ख. अपि च सुतरां) प्रत्यवरोहानु-
 करणमेतदिति. १० क. ख. ग. च. ज. मध्यमस्था. ११ क. ख. घ. ट. ठ.
 ड. मध्यस्था. १२ क. ख. ग. ज. घ. ट. ठ. ड. ततोऽपि मध्य. १३ क. ख.
 द्रति । ४ । अथापि? ग. इति । ३० । अथापि? ३१

‘ अथापि वैश्वानरीयो द्वादशकपालो भवति ’ । देवतागुणसामान्येन
 वैश्वानरीयपुरो- ह्यधियज्ञे गुणविधयः कल्पन्ते । वैश्वानरीयश्च
 डाशस्य द्वादशकपाल- सर्वत्र द्वादशकपालः । ‘ एतस्य ’ च ‘ द्वाद-
 ५ त्वाच्च शविधं ’ द्वादशमासैर्विभागाधिकारलक्षणं ‘ कर्म ’ ।
 तेनैतस्मादपि देवतागुणकपालविध्यनुकरणोदा-
 दित्यो वैश्वानर इति । अथापि स्फुटमेव ब्राह्मणं भवति ‘ असौ वा
 आदित्योऽग्निर्वैश्वानरः ’ (मैत्रा० ब्रा० २ । १ । २) इति । तच्च नः
 परं प्रमाणम् । तस्मात्सूर्यो वैश्वानर इति ।

‘ अथापि निविदसौर्यवैश्वानरी भवति ’ इति । निविदित्याकृतिविशिष्टो
 १० निविदः सौर्यवै- मन्त्रः शस्त्रमध्यपातो । स तथा भवति यथा
 श्वानरीयत्वात् सूर्यो वैश्वानर इति । न पार्थिवो न मध्यम
 इति । कथमिति । भवति हि तत्रैतत्पदम् ‘ आ
 यो यां भार्या पृथिवीम् ’ इति । न च पुनरा-
 दित्यादन्यो भासयते यात्रापृथिव्यौ । यत उच्यते ‘ एष हि यात्रापृथिव्यावा-
 १५ भासयति । ’

‘ अथापि छान्दोमिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं भवति ’ । कतमत् ।
 ‘ दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् । क्षमया
 छान्दोमिकसूक्त- वृथान अजसा चर्ना हितो ज्योतिषा बाधते
 स्यापि तथात्वात् तमः ’ (आश्व० श्रौ० ८ । १०) इति ॥

२० न च पुनरादित्यादन्यो दिवि पृष्टो रोचते । यत्
 उच्यते ‘ एष हि दिवि पृष्टो रोचते ’ । दिवि स्पृष्टः सुलोके स्पृष्टः ।
 अवस्थित इत्यर्थः । अरोचत रोचते दीप्यते । कोऽसाविति । अग्निर्वैश्वान-
 नरः । बृहन् । महानित्यर्थः । स रोचमानः किं करोति । ज्योतिषा
 स्वेन बाधते तमः । नाशयत इत्यर्थः ।

२५ १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ मासप्रविभा ’ । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 ‘ रणात्प्रश्याम आदि ’ । ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ इति ’ नास्ति । ४ ग. ज
 भात्यामिति पृथि ; च भार्यां पृ त्या । ५ ग. ‘ दन्यो वा भास ’ ; ज ‘ दन्योवभास ’ ;
 च. ‘ दन्योभवास ’ वभा. ६ च. छान्दोमि । ७ ग. च. ज घ. झ. ट. ‘ रोचतेति ।
 न ’ ; ठ. ड. ‘ रोचतेति । ‘ दिवि पृष्टो ’ इति सर्वा ऋक्पठ्यते. ८ घ. ट. ठ. ड. य
 ३० उच्य । ९ ग. ज. अरोचते.

‘ अथापि हविष्पान्तीयं सूक्तं सौर्वैश्वानरं भवति ’ । कथमिति ।
भवति तत्र मन्त्रः सूयां वैश्वानर इति समथेः ।
तथा हविष्पान्ती- तद्यथा । ‘ विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वा-
यस्यापि नरं केतुमहामकृष्वन् (ऋ० सं० १० । ८८ ।

१२) इति । वैश्वानरं केतुं कर्तारमहामकृष्वन्निति । नैव तावदादित्या-
दन्यस्याह्नां कर्तृत्वमुपपद्यते पार्थिवे मध्यमे वा । आदित्य एव ह्युदयास्तम-
याभ्यामहानि करोति । तेन वयमेतैर्हेतुभिः पश्यामः सूर्यो वैश्वानर इति ।

‘ अयमेवाग्निर्वैश्वानर इति शाकपूणिः ’ । न मध्यमो न सूर्यः । किं
पार्थिवोऽग्निर्वैश्वानरः तर्हि । अयमेव पार्थिवोऽग्निः । केन हेतुना ।
यस्माद्विश्वानरौ तद्भिनोत्पत्तिमामर्थ्यात् । कथमिति । ‘ विश्वान-
उत्तरे ज्योतिषा र्णवेते उत्तरे ज्योतिषी ’ । तदुक्तम् ‘ अपि
त्ताभ्यां चाय जायते वा विश्वानर एव कश्चित्स्यात्तस्याप्य वैश्वानरः ’
(निरु० ७ । २१) इति । तदि-

दमुपपद्यते ‘ वैश्वानरोऽयं यत्ताभ्यां जायते ’ । तस्मात्तौ द्वि-
तेन व्यपदेशेन पार्थिवोऽग्निर्वैश्वानर इति ।

‘ कथं न्वयमेतभ्यां जायते ’ । यत् उच्यते । ‘ यत्र वैद्युतः ’ अग्निः
‘ शरणमभिहन्ति ’ । आश्रयमात्मनो दारु
मध्यमात्पार्थिवान्न- अन्यद्वा अभिहन्ति निहन्ति अभिगच्छति । प्राप्नो-
र्जन्म तीत्यर्थः । किं तत्र । तत्पदीष्यते । स च पुनः

‘ यावदनुपात्तो भवति ’ मनुष्यैर्नुपस्पृष्टो भव-
त्यपरिगृहीतो वा । किं तावत् । ‘ मध्यमधर्मैव तावद्भवति ’ । कः पुन-
मध्यमस्य धर्मः । यदसौ ‘ उदकेन्धनः शरीरोपश-
मनः ’ । उदकेनेर्ष्यते दीप्यते रसस्वभावकेन ।
शरीरेण काष्ठेनान्येन वा प्रतिहतमूर्तिस्वभावकेन
पार्थिवधातुबहुलेनोपशाम्यति । स मध्यमस्य

धर्मः । तदतस्त्थानजात्यां दकृतं स्वाभाव्यमहेतुकं ज्योतिषो न भवाते

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. भवति हि तत्र । २ ग. ज. समर्थ. ३ क.
ख. इति । ५ । अय ? ग. इति । ३१ । अय ? ४ ठ. ड. °नरावित्यप्येते°.
५ च. वर्ज सर्वेषु ‘ तद्धितेन ’. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °ध्वैरस्पृष्टो°. ७ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °नेन्धते.

प्रथमस्य धर्मः । स च पुनः ' उपादीयमानं ण्वायं ' पार्थिवोऽग्निः ' संपद्यते ' । कथम् । उपाचो हि मनुष्यैः स्वजातिधर्मं हित्वा पार्थिवधर्मं पार्थिवस्य च प्रतिपद्यते । कथमिति । ' उदकोपशमनः शरीरदीप्तिः ' । विपर्यस्तधर्मा मध्यमेन संपद्यते । एवं तावन्मध्यमादयं विश्वानराञ्जायते । तेनायं तदपत्यमिति भवति हि तद्वितार्थोपपत्त्या वैश्वानर इति । अथ पुनरादित्यात्कथं जायते । आह ।

' अथादित्यात् । उदीचि प्रथमसमावृत्त आदित्ये ' इत्येवमादि ।

' अथ ' शब्द आनन्तर्ये प्रकृतार्थादर्थान्तरमधिकरोति । उदीचीं दिशं प्रति

१०

आदित्यात्पार्थि-
वाग्नेर्जन्म

प्रथमसमावृत्त आदित्यः । ' तस्मिन्नुदीचि प्रथमसमावृत्ते ' । उदगयनादावित्यर्थः । कथमिति ।

' कसे वा मणिं वा परिमृश्य ' यमादित्यमणि-

मित्याचक्षते । ' प्रतिस्वरे ' प्रत्युपतापे । ' यत्र

शुष्कगोमयमसंस्पर्शयन् धारयति तत्प्रदीप्यते ' । यैः शुष्कगोमयेऽग्निर्जा-

१५

र्यते एवमयमादित्यादपि कंसाद्वा मणोर्वा जायते । असावपि च विश्वानर इत्याचक्षते । तदपत्यापेक्षयाप्यस्य वैश्वानरत्वमुपपद्यते ।

' अथाप्याह ' तद्वितविग्रहव्यपदेशात्तावदेवमुपपद्यते । अन्य आदित्यात्तावद्वैश्वानरः । ' अथापि ' अयमपरो व्यपदेश एकवाक्ये विभक्त्यन्तरकृत्तः

२०

मन्त्रादपि सूर्यवै-
श्वानरयोर्भेदः

सूर्यवैश्वानरयोर्भेदं गमयति । तद्यथा । ' वैश्वानरो यतते सूर्येण ' (ऋ० सं० १।९८ । १) इति मन्त्रदृगाह । प्रथमान्तस्य वैश्वानरशब्दस्य तृतीया-

न्तेन सूर्यशब्देन विभक्तिभेदाद्विशेषणविशेष्यभा-

वेन सामानाधिकरण्यं नास्ति । एतदेवासामानाधिकरण्यमपेक्ष्यानेकत्वं

- १ क. ख. 'नरः । ६ । अथ°; घ. झ. ट. ' इति ' नास्ति; ग. ज. २५ ' वैश्वानर इति ' नास्ति. २ ग. आह । ३२ । अथा°. ३ व. झ. ट. ठ. ड. प्रकृतार्थादार्था°. ४ च. उदीचीप° चि. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °प्यते सोऽयमेव संपद्यते यः°; च. °प्यते ° यः° सोऽयमेव संपद्यते. ६ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. °यते । स एवमादित्या°; च. यते । एवायं स. ७ क. ख. घ. झ. २९ ट. ठ. ड. वैष्वा°. < क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इत्युच्यते.

वैश्वानरसुर्यशब्दयोर्ब्रवीति । ' न च पुनरात्मनात्मा संयतते ' । किं तर्हि ।
 ' अन्येनैवान्यः संयतते ' संगच्छते यथा देवदत्तो यज्ञदत्तेन । तत्कथ-
 मयं संयतते सूर्येणेति । यत आह । ' इत इममादधाति ' । इतो लोका-
 दोषधीभ्यः शरीदिभ्यो वनस्पतिभ्यो वा मथित्वा प्रत्यक्षत एवममादधाति ।
 अभ्यादधातीन्धनैः । ' अमुतो ' मण्डलात् कर्मात्मनः ' अमुर्थ्यै ' ५
 च आदि-मण्डलाधिष्ठातुः स्वभूता ' रश्मयः प्रादुर्भवन्ति ' ।

अयं तयोर्भासोः ' इतः ' तेजःपिण्डात् ' अस्य ' तदधिष्ठातुः
 संगमः ' अर्चिषः ' प्रादुर्भवन्तीति वर्तते । ' तयो-
 र्भासोः संसङ्गं दृष्ट्वत्रमवक्ष्येत् ' मन्त्रदृक् ' वैश्वा-
 नरो यतते सूर्येण ' इति । १०

अथ यान्येतान्यौत्तर्मकानि सूक्तानि । ' अथ ' इत्यधिकारान्तरे । यदि
 सूर्यो वैश्वानरोऽभविष्यन्ननु ' यान्येतान्यौत्तर्मकानि सूक्तानि ' उत्तमस्था-

उत्तमस्थानस्थानां नदेवताविशेषस्तुन्यर्थानि । तद्यथा । ' भागानि
 भगादीनां सूक्तेषु वा सावित्राणि वा पौष्णानि वा वैष्णवानि
 भगादयो वैश्वानर वेति । ' गुणपदत्वमैभ्युपेत्य वैश्वानरशब्दस्य १५
 इति नोच्यन्ते ब्रवीति । ' तेषु ' सूक्तेषु ' वैश्वानरीयाः प्रवादाः '
 भगादीनां विशेषणत्वेन ' अभविष्यन् ' हे भग
 वैश्वानर हे सवितर्वैश्वानर इत्येवमादयः ।

' आदित्यकर्मणा चैनमस्तोष्यन् ' । एवं वैश्वानरीयेषु सूक्तेषु वैश्वानर-
 वैश्वानरसूक्तेषु मस्तोष्यन्मन्त्रदृशः । कथमिति । ' इत्युदेपीत्यस्त- २०
 वैश्वानर उदयादिभि- मेपीति विपर्येपीति ' । इतिकरण एवंशब्दार्थे ।
 रादित्यकर्मभिर्न एवमुदेपि त्वं वैश्वानर एवमस्तमेपि एवं विपर्ये-
 संबध्यते पीति । न च पुनरेतदुभयमन्यस्ति । न हि वैश्वा-
 नरीयाः प्रवादा आत्तर्मकेषु सूक्तेषु सन्ति ।
 नाप्यादित्यकर्मणा वैश्वानरं स्तुयेत मन्त्रदृशः । २५

तस्मान्नैप सूर्यो वैश्वानर इति ।

१ ठ. ड. 'नात्मानं सं'. २ ग. ज. वनस्पतिभ्यो वा शरीदिभ्यो वा मथि°. ३ क. ख. घ. झ. ट. 'मुष्य च आदि'; च. 'मुष्य- आदि' च. ४ क. ख. ग. च. ज. 'वक्षत्. ५ क. ख. इति । ७. ग । ३४। अथ'. ६ घ. झ. ट. ठ. ड. 'त्तमिकानि'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'ष्यत् ततो ननु'; च. 'ष्यत् ननु' ततो. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'त्तमिका'. ९ ठ. ड. वा सौर्याणि वा पौष्णा'. १० ठ. ड. वा वैश्वदेव्यानि वा तेषु'. ११ ग. घ. ज. 'पद्मभ्यु'. १२ क. ख. घ. झ. ट. ड. इ. स्तुवन्ति; च. स्तुवन्ति न्ति.

- किंच । अयमपरो विशेषहेतुरग्निवैश्वानर इति । ' आग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु
 अग्निस्सूक्तेष्वेव वै- वैश्वानरीयाः प्रवादाः भवन्ति ' अग्निविशेषणत्वे-
 श्वानरीयप्रवादाः न । ' वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ' (ऋ०
 सं० ६ । ७ । १) इत्येवमादयः । ' अग्नि-
 ५ कर्मणा चैनं ' वैश्वानरं प्रायेण ' स्तौति ' । ' इति दहसीति
 वैश्वानरोऽग्निर्म- वहसीति पचसीति ' । एवं वैश्वानर वहसि
 भिरेव संबध्यते हवीषि पचसि पक्तव्यानि दहसि दग्धव्यानि ।
 तस्मादाग्नेरेव वैश्वानर इति स्थितम् ।
- तदेते षट् हेतवः तद्धितेन विग्रहव्यपदेशात् (१) एकवाक्ये विभ-
 १० क्त्यन्तरव्यपदेशात् (२) औत्तमिकेषु सूक्तेषु अप्रवादान् (३) आदित्य-
 कर्मणा चौसंस्तवात् (४) अग्नेषु सूक्तेषु प्रवादात् (५) अग्निर्मकर्मणा च
 संस्तवात् (६) इति ।

- तत्पुनरेतदग्निवैश्वानरत्वं स्थितमप्यस्थितामेव परपक्षहेतुष्वानेराकृतेषु ।
 यतस्तौन्निराकरणाय प्रस्तौति । ' यथो एतत् ' इति । यत्पुनरेतदुक्तं
 १५ वर्षकर्मणा यस्मात्स्तौति तस्मान्मध्यम इति (६९६ । १२) ।
 ' अस्मिन्नपि ' पार्थिवेऽग्नौ ' एतदुपपद्यते ' वर्षकर्म । कथमिति । यत आह ।
 ' समानमेतत् ' इति । समानम् एव इदम् उदकम् उदकत्वेनाविशि-
 २० अग्नावपि वर्षकर्मो- ष्टम् । उच्चैत्यत्र चाहभिः । उत् एति च ऊर्ध्वं
 पपद्यते चैति अहोभिर्निमित्तभूतैः । पुनश्च अवाक् एति ।
 दक्षिणोत्तरायणयोर्व्यावृत्तिभिः प्रतिसंवत्सरमहा-
 न्यभिप्रेतानि । तदेतदेकमेवोदकम् । पर्यायेण
 दक्षिणायनोत्तरायणयोः जगद्यात्रासिद्धये तदुदेति चावेति च वर्षर्भवेन ।
 कथमिति । यत आह । अवाक् तावदेति । भूमिं पर्जन्याः प्रार्थयितारो

- १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति वहसीति पचसीति दहसीति. २ झ. आंत
 २५ मके°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' च ' नास्ति. ४ ग. ज. ' दग्धिवै ' ; च.
 ' दग्धिवै ' भे. ५ ग. च. ज. ठ. ड. यतस्त्वं नि°. ६ ग. आह । ३४ । समा°. ७ ग.
 इति । ' १७ । समा°. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. एकमेव. ९ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. पुनश्चाहोभिरेवावाढेति ; च. पुनश्चा वा° होभिरे. १० क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. उत्तरायणदक्षिणायनयोः ; च. दक्षिणायनोत्तरायणयोः. उत्तरा-
 यणदक्षिणायणयोः. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वर्षकर्मभावेन. १२ क. ख. घ.
 ३५ झ. ट. ठ. ड. अवाह.

रसानां माध्यमिका देवगणा वर्षममुतो मुञ्चन्तो भूमिं जिन्वन्ति तर्पयन्ति
 ओषध्युत्पत्तये । एवं तावदवाङ् । अथ पुनरूर्ध्वं कथमिति । यत आह ।
 दिवं जिन्वन्त्यग्नय इति । यथैत्रामुतो वर्षणेमां पर्जन्या जिन्वन्ति तथै-
 वाङ्गतिप्रभवेन वर्षेण दिवं जिन्वन्त्यग्नयः । आहुतयो ह्यग्नौ प्रक्षिप्तास्तेन
 दग्वास्ता अर्चिभिः कृत्वोदकभावमापाद्य परमं सूक्ष्मं देवोपभोगार्थं वां
 प्रति वर्षभावेनोत्थीयन्ते तल्लोकनिवासिनां तृप्तये । ततस्त इह पुनर्वर्षं प्रति
 कल्पयन्ति । तदुक्तम् ' अमुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति
 होवाच ' (छ० उ० १ । ८ । ७) इति ।

५

एवं च सुतरामयमपि वर्षयानाहुतिमुदत्वत्सर्वस्य वर्षस्य । स्मर्यते
 च ' अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्भगादित्यमुप-
 तिष्ठते ' (मनुस्मृ० ३ । ७६) इति । तत्र
 वर्षकर्म मध्यमस्य
 न वैशेषिकं लक्षणम्
 यदभूद्र्षिकर्मभावान्मध्यम इति तदेतदवैशेषिकम् ।
 मध्यमस्य वैश्वानरस्ये न लक्षणम् ।

१०

अपि चायमपरो मन्त्रो यस्मिन्नग्निरादित्यो वर्षकर्मणा स्तुयते । तस्मा-
 त्सुतरामनैकान्तो वर्षकर्मभिष्टयो मध्यमस्येति । यत आह ' कृष्णं निपा-
 नम् ' इति । २३ ।

१५

द्वादशोऽध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः ॥

कृष्णं निपानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । १०

१०

१ क ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वाङ्गति । अ°; च. 'वाङ्- । अ° एति.
 २ क ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कथमेति । अत आह°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. इति) नास्ति ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स्वार्चिभिः कृतो (क. ख.
 कृत्वो) दक°; च. अर्चिभिः°. ५ ग. ज. परमसूक्ष्मं. ६ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. 'भावेन नीय°'. ७ च. वर्जमितरेषु ' प्रकल्प'. ८ क ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. 'मपि च वर्ष°'. ९ ठ. ड. 'स्येति । इति निरु० उक्तं प्र० त्रयोविंशः खण्डः ।
 २३ । इति द्वादशस्य षष्ठः पादः । यत°; ड. 'स्येति । इति द्वादशस्य षष्ठः पादः ।
 इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के त्रयोविंशतिः खण्डः । यत°. १० क ख. ९ (२३);
 ग. ३६; इतरेष्वहो नास्ति. ११ क. ख. इति निरुक्तवृत्तौ द्वाद°; घ. झ. ट.
 द्वादशस्य.

२५

३०

- त आर्धवृत्रन्तसदनादृतस्यादिदृघृतेन पृथिवी व्युद्यते (ऋ. सं. १।१६४।४७) ॥ कृष्णं निरयणं रात्रिरादित्यस्य हरयः सुपर्णा हरणा आदित्यरश्मयस्ते यदापुतोऽर्वाञ्चः पर्यावर्तन्ते सहस्थानादुदकस्यादित्यादथ घृतेनोदकेन पृथिवी व्युद्यते घृत-
 ५ मित्युदकनाम जियर्तेः सिञ्चतिकर्मणोऽथापि ब्राह्मणं भवत्य-
 मिर्वा इतो वृष्टिः समीरयति धामच्छादिवि भूत्वा वर्षति मरुतः सृष्टां वृष्टिं नयन्ति यदासावादित्योऽग्निं रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षतीति यथो एतद्रोहात्प्रत्यवरोहश्चिकीर्षित इत्याम्नायवचना-
 १० देतद्भवति यथो एतद्वैश्वानरीयो द्वादशकपालो भवतीत्यनिर्वचनं कपालानि भवन्त्यस्ति हि सौर्य एककपालः पञ्चकपालश्च यथो एतद्ब्राह्मणं भवतीति बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि भवन्ति पृथिवी वैश्वानरः संवत्सरो वैश्वानरो ब्राह्मणो वैश्वानर इति यथो एतन्निवित्सौर्यवैश्वानरी भवतीत्यस्यैव सा भवति यो त्रिद्भ्यो मानुषीभ्यो दीदेदित्येष हि त्रिद्भ्यो मानुषीभ्यो दीर्ष्यते यथो एत-
 १५ च्छान्दोमिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं भवतीत्यस्यैव तद्भवति जमद-
 ग्निभिराहुत इति जमदग््नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा तैरभिर्हुती भवति यथो एतद्द्विविष्ण्वन्तीयं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं भवतीत्यस्यैव तद्भवति ॥ २४ ॥

- २३ ' कृष्णं नियानम् ' इति^१ दीर्घतमस आर्षमै^२ । वृष्टिकामस्य कारी-
 अस्यामपि ऋचि र्यामप्रथे धामच्छदेऽष्टाकपालं तस्य पुरोनुवाक्या
 अग्नेर्वर्षकर्मणा संबन्धः^३ (मैत्रा० सं २।४।७ ॥ ४।१२।५) ।
 मैत्रायणीयके अग्निरयमादित्यीकृत्य स्तूयत इति
 प्रकरणादभ्यवसीयते । कृष्णं निरयणं निर्गतिः ।

- २५ १ ङ. थ. ध. ठ. ड. °च्छादिव खलु वं भूत्वा° । २ ङ. थ. ध. ठ. ड. यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मि° । ३ द. 'दित्योवाङ् मिं र° । ४ छ. त. द. °वतन्तेऽ° । ५ छ. °तत् । ६ । वैश्वा° ; त. द. °तत् । १ । वैश्वा° । ६ छ. त. द. दीदयति. ७ छ. त. द. °राहूतः. ८ छ. त. द. °भिर्हुतो° । ९ क. ख. २ (२४); छ. ३७; त. द. २. १० ग. इति । दीर्घ° । ११ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. °र्षम् । त्रिष्टुप् । वृ° ; च °र्षम् । वृ° त्रिष्टुप् । १२ क. ख. घ. ट. ठ. ड. °क्या । तस्यां मै° ; ग. ज. मैत्रावरुणीयके; च. °क्या । °मै° तस्यां. १३ क. ख. १२ घ. ङ. ट. ठ. ड. कृष्णं । किं पुनरतत्कृष्णं नि° ; च. कृष्णं नि° किं पुनरतत्कृष्णं.

निर्गच्छतीत्येतदिति नियानं वैर्त्म पन्थाः । तच्च पुनरेतत् रात्रिः आदि-
 त्यस्य । द्वे ह्यस्थायने शुक्लं चोत्तरं कृष्णं च दक्षिणम् । सा हि देवी
 रात्रिरभिप्रेता । ततो ब्रवीति रात्रिरादित्यस्य ज्योतिषः । स एष भगवा-
 नादित्यो जगदनुग्रहाय गर्भमुदकमात्मन्याधिःसुरुत्तरायणं प्रति पद्यते । तदैते
 हरयो रसहरणाः सुपर्णाः तस्य रश्मयः सर्वस्मादस्माल्लोकात् अपो ५
 वसानाः आत्मन्याच्छादयन्तः आददानाः दिवं द्योतनवन्तमेतमादित्यं
 प्रति उत्पतन्ति तदुदकं निधित्समानास्तस्मिन्गर्भत्वेन । स एष आदित्य
 उत्तरायणं मासैः पङ्क्तिभिराहितोदकगर्भः संपद्यते । स एष परिपिक्तोदक-
 गर्भो दक्षिणवर्त्म प्रति पद्यमानो नभस्यान्मासात्प्रभृति प्रसूयते । तदिद-
 मुच्यते त आववृत्रन्त्सैदनादृतस्य इति । ते रश्मयो यदा अमृतः १०
 अमुष्मादादित्यात् ऋतस्य उदकस्य सदानात् सहस्थानात् आववृत्रन् यदा
 पर्यावर्तन्ते अथ तदा वृत्तिसमनन्तरमेव घृतेन उदकेन पृथिवी व्युद्यते
 विविधमुद्यते । घृतमित्युदकनाम पृथिवी व्युद्यते इति सामर्थ्यात् ।
 तत्पुनः जिघर्तेः सिञ्चतिकर्मणः ।

एवमेतस्मिन्मन्त्रे मन्त्ररूपादादित्यः प्रकरणादग्निः । उभयथाप्यन्यो १५
 मध्यमाद्वर्षकर्मणः कर्ता । ' अथापि ब्राह्मणम् ' एतस्मिन्प्रकरणे यस्मिन्नयं
 मन्त्रो विनियुज्यते ' अग्निर्वा इतो वृष्टिं सभिरयति ' इत्येवमादि । अग्नि-
 रितो लोकाद्वृष्टिं समन्तत ईरयति धूमभूता आप औपधिवनस्पतिभ्यो
 निर्वर्त्यमाना आहुतिभूताश्चामुं लोकमाग्निशान्ति ।
 अग्नेर्वर्षकर्मसंबन्धे ' अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः ' २०
 ब्राह्मणमपि (शत० ब्रा० ५ । ३ । ५ । १७) इति ह
 विज्ञायते । ताः पुनरग्निः स्थानाभिसंपत्तिप्रनादिक-
 कया धामच्छद् आदित्यो भूत्वा धाम्नां छादयिता रश्मिभिर्मध्यस्थैर्मध्य-
 मस्थानमापादयति । एवं तेन ' सृष्टां वृष्टिं ' मध्यमैस्थानात् ' मरुतो '

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °च्छतेतदि ; ग. ज. °च्छतीत्येनदि° . २ ग. २५
 ज. वात्मा. ३ घ. झ. ट. ठ. ड. 'नवत् तमेतमादि° . ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. दक्षिणं वर्त्म. ५ ग. च. ज. 'वृत्रन्सद° . ६ च. औष° . २ क. ख. ठ. ड.
 विनिवर्त्य° ; घ. झ. ट. विनिवर्त्यमाना° ; ग. च. ज. निवर्त्य° . ८ च. ज. हि.
 ९ ग. च. ज. °भिसंपत्तिप्रना° . १० घ. झ. ठ. ड. °प्रनालिकया ; ट. °प्रनालि-
 कया. ११ क. ख. घ. झ. ट. मध्यस्था° . ३०

वायवो भेषोदराणि विदार्थं तेभ्यो विश्विपन्तो वृष्टिमिमं लोकं ' नयन्ति ' ।

वर्षकर्म सर्वेषां
समानम्

प्रापयन्तीत्यर्थः । अपरमपि ब्राह्मणं भवति
' यदासावादेत्योऽग्नि रश्मिभिः ' इत्येवमादि ।
तेदेवमेतद्धर्षकर्म समानं सर्वेषामित्यहेतुर्मध्यमस्य

वैश्वानरत्वे भवति ।

१० आम्नायवचनात्प-
त्यवरोहे यः कोऽपि
मघ्नः प्रयुज्येत

' यथो एतत् ' । यत्पुनरेतदुक्तं याज्ञि-
कपक्षे ' रोहाःप्रत्यवरोहश्चिकीर्षित इति ' ^३
अकारणमेतत्सूर्यस्य वैश्वानरत्वे । कस्मात् । य-
स्मात् ' आम्नायवचनादेतत् ' एवं ' भवति ' ।
रोहाःप्रत्यवरोह इत्यर्थवादमात्रमेव ।

१५ यदपि चोक्तं ' वैश्वानरीयो द्वादशकपालो भवति ' इत्येतदप्यकारणं
यस्माद्वैश्वानरीयः
पुरोडाश एककपालः
पञ्चकपालश्च तस्मा-
द्द्वादशकपालत्वं न
सौर्यत्वे कारणम्

सूर्यस्य वैश्वानरत्वे । कस्मात् । व्यभिचारात् ।
व्यभिचार्येतदिति । यत आह । ' अस्ति हि सौर्य
एककपालः पञ्चकपालश्च ' । यदि हि देवतागुणा-
भिप्रायमभविष्यद् द्वादशविधमस्य कर्म तस्माद्
द्वादशकपाल इति नन्वेवं सति सौर्योऽपि द्वादश-
कपाल एवाभविष्यदभिधानमात्रं भिद्यते न
कर्मेति । न च भवति सौर्यो द्वादशकपाल इति ।

तस्मादहेतुः कपालानि ।

१० यदप्युक्तं ' ब्राह्मणं सौर्यवैश्वानरप्रवादं भवतीति ' एतदप्यकारणम् ।
१० ब्राह्मणप्रवादो न
प्रमाणं यस्माद्ब्राह्मणेऽ-
न्येऽपि प्रवादा वर्तन्ते

कस्मात् । ' बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि
भवन्ति ' । यस्माद्बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि
भवन्ति । भक्तिर्नाम गुणकल्पना । येन केनचि-
द्गुणेन ब्राह्मणं सर्वं सर्वथा ब्रवीति । तत्र तत्त्वमन्वे-

ष्यमेव भवति । तद्यथा । ' पृथिवी वैश्वानरः ' इत्येवमादि किमपि
ब्राह्मणेन बहु वैश्वानरशब्देनोच्यते भवत्या ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अथापर°. २ व. झ. ट. ठ. ड. यत्पुनस्तदु°.

३ क. ख. ग. ज. ' यस्मात् ' नास्ति. ४ ग. °कम् । ३६ । वैश्वा°. ५ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड यथो एतत् । यद्°; च. ° ' यद् यथो एतत्. ६ क. ख.

१९ घ. झ. ट. ठ. ड. ' हि ' नास्ति.

‘ यथो एतन्निविस्सौर्यवैश्वानरी भवतीत्यस्यैव ’ अग्नेः ‘ सा भवति ’ ।
 कथमिति । तस्या हि पदं भवति ‘ यो विड्भ्यो
 निविदपि अग्नेरेव मानुषीभ्यो दीदेदिति ’ । ‘ एष हि विड्भ्यो
 मवति मानुषीभ्यो दीप्यते ’ । ‘ अग्निर्वैश्वानरः सोमस्य
 मत्सत् । विश्वेषां देवानां समित् । अजस्रं दैव्यं
 अयोतिः । यो विड्भ्यो मानुषीभ्यो दीदेत् । द्युषु पूर्वासु दिद्युतानः ।
 अजर उपसामनीके । आ यो द्यां भाल्या पृथिवीम् । उर्वन्तरिक्षम् ।
 अयोतिषा यज्ञाय शर्म यंसत् । अग्निर्वैश्वानर इह श्रवदिह सोमस्य मत्सत् ।
 प्रेमां देवो देवहूतिमवतु देव्या धिया । प्रेदं ब्रह्म प्रेदं क्षत्रम् । प्रेमं
 सुन्वन्तं यजमानमवतु चित्रश्चित्राभिरूतिभिः श्रवद्ब्रह्माण्यावसागमत् ’ । १०
 इतीयं निविदाग्निमारुते संस्यते । ‘ निविःपुरोरुचः प्रेषा विश्वामित्रस्य
 सर्वशः ’ इति^१ विश्वामित्रस्यापमम् । अग्निर्वैश्वानरः सोमस्य मत्सत् तृप्यतु ।
 तृप्तश्च प्रेमां देवो देवहूतिमवतु । प्रकर्षेण इमाम् अग्निर्वैश्वानरो देवो
 देवहूतिं देवानामस्माकमह्वानम् अधतु रक्षतु । यो विश्वेषां देवानां
 समित् समिन्धनः स इदं करोतु । यश्च अजस्रं नित्यं अयोतिः । यश्च १५
 विड्भ्यो मानुषीभ्यो दीदेत् दीप्यते । यश्च द्युषु पूर्वासु पूर्वेष्वह-सु
 दिद्युतानो दीप्यमान एवासीत् । यश्चासी अजरो जरावियुक्तः उपसा-
 मनीके अग्निहोत्रेषु योतते । यश्च आभासयति द्यां सूर्यात्मना आभा-
 सयति च पृथिवीम् अग्न्यात्मना उरु वा अन्तरिक्षं मध्यमात्मना । एवं
 त्रिभिर्ज्योतिर्भिः । यश्च अयोतिषा यज्ञियाय शर्म यच्छति सुखं ददाति । २०

१ क. ख. घ. झ. ट. तस्यांके पदं; ठ. ड. तस्यां हि. २ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. ‘दिति । ततः किम् । ए ; च °दिति - । ए° ततः किम् । ३ ग.
 मत्सत् । इतीयं निवि°; च. आग्निर्वैश्वानरः सोमस्य मत्सत् । इतीयं निवि° (अग्निर्वै
 इति सर्वा निवि° च. पुस्तके पत्रस्थेपरितनभागे पठ्यते). ४ ट. उर्व° ओ. ५ ग.
 ज. °स्यते । अग्निर्वैश्वानर इत्यादि श्रवद्ब्रह्माण्यावसागमदित्यन्तं । निवि°; च.
 °स्यते । अग्निर्वैश्वानर इत्यादि श्रवद्ब्रह्माण्यावसागमदित्यन्तं । निवि°. ६ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. इति सर्वा वि°. ७ ग. ज. ‘देत् दीप्यते. ८ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. होत्रादिषु; च. ‘होत्रेषु’ वादि. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. च
 अन्न°. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यज्ञाय; च. यज्ञियाय° ज्ञा.

सः अग्निवैश्वानर इह श्रवत् शृणोतु अस्माकं स्तुतीः । ईह कर्मणि
सोमस्य मस्तत् तृप्यतु । किंच । प्रावत्विमां देवो देवहृति देव्या धिया ।
देवानां या दात्री धीः प्रज्ञा तया अवतु रक्षतु । प्रेदं ब्रह्म प्रेदं क्षत्रम् ।
ईदं ब्रह्म प्रावतु । इदं क्षत्रं प्रावतु । प्रेमं सुन्वन्तम् अभिपुण्वन्तं यजमानम् ।
५ चित्रः चायनीयः पूज्यो वैश्वानरः चित्राभिरूतिभिः शोभनाभिर्गतिभिः
प्रीतिभिर्वा शृणोत्विमानि ब्रह्माणि अस्माकं नित्यं चास्मान् प्रत्यागच्छतु
अवसा पालनाभिप्रायेण मनसा कर्मस्वित्येतादाशास्महे ।

‘ यथो एतत् ’ । यत्पुनरेतदुक्तं ‘ छान्दोमिकं ’ छन्दोमयज्ञेषु दाश-

रात्रिकेषु यत् ‘ सूक्तं ’ तत् ‘ सौर्यवैश्वानरम् ’

इति ‘ तद् अस्थैव ’ अग्नेः ‘ भवति ’ । कथ-

मिति । तत्र ह्येतद्विशिष्टं पार्थिवान्नेर्वाचकं लिङ्गं

भवति । ‘ जमदग्निभिराहुतः ’ (आश्व० श्रौ०

८ । ९) इति । जमदग्नयो ह्येनमाहुतिभिर्जुह्वति नादित्यमविधाना-

दसंभवाच्च । तस्मादत्रापि यद्वैश्वानरलिङ्गं तदप्येतस्य पार्थिवस्याग्नेर्व्यञ्जकं

भवति । ‘ वृषा पावक दीदिहि ’ । वृषा वर्षिता हे वैश्वानर पावक द्युमत्

दीप्तिमत् यस्त्वं जमदग्निभिराहुतः अभिहुतः स त्वमस्माकं कर्मसु नित्यं

दीदिहि दीप्यस्व । इत्येतादाशास्महे । ‘ जमदग्नयः ’ नित्यं ‘ प्रजमिता-

ग्नयः ’ प्रभूताग्नयः ‘ प्रञ्जलिताग्नयो वा ’ ।

‘ यथो एतत् ’ । यदप्युक्तं ‘ हविष्पान्तीयं सूक्तं सौर्यवैश्वानरं

भवतीति तत् ’ अपि ‘ अस्थैव भवति ’ ।

कथमिति । यतस्तस्य सूक्तस्य या प्रथमा

ऋक् सा यथाग्नेयी भवति न सौरी तथा

निराह । इदमाग्नेयं सूक्तं न सौर्यमित्युपप्रदर्श-

नार्थम् ॥ २४ ॥

- २५ १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इह च कं. २ घ. झ. ट. ठ. ड. °त्विमं.
३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ब्रह्म प्रावत्विदम् । क्षत्रं प्रावत्विदम्. ४ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. °मानं प्रावतु । चि°; च. °मानं ° । चि° प्रावतु. ५ घ. झ. ट. ठ.
ड. °नरः तस्य चि°. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °स्मान् प्रत्यागमत् प्रत्या-
गच्छतु. ७ ठ. ड. दीदिह्यग्ने वैश्वानरं बृहत् । वृषा°. ८ ग. ज. नित्यप्रज°. ९ क.
ख. २ (२४); ग. ३७; ठ. °नार्थम् । इति निरु० उक्त० प्र० चतुर्विंशतिः
खण्डः । २४ १; ड. २४ । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के प्रथमाध्याये चतुर्विंशतिः
३२ खण्डः ; इतरेष्वङ्को नास्ति.

हविष्पान्तमजरं स्वविदिं दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ । तस्य
 भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वयया पप्रथन्त (ऋ० सं०
 १० । ८८ । १) ॥ हविर्यत्पानीयमजरं सूर्यविदि दिविस्पृश-
 मिहुतं जुष्टमग्नौ तस्य भरणाय च भावनाय च धारणाय
 चैतेभ्युः सर्वेभ्यः कर्मभ्य इममग्निमन्त्रेनापप्रथन्तेत्याप्याह ५
 ॥ २५ ॥

हविष्पान्तमिति । सूक्तोपनमृन्वत आङ्गिरसस्यापं वामदेवस्य वा ।
 तत्सूक्तस्य प्रथमा व्युत्स्य इधराजस्य पक्षमेऽहन्याग्निमारुतस्य
 ऋक् आग्नेयीः पत्र प्रानपत् । (ए० ब्रा० २२ । ४ ॥ आश्व० १०
 श्रौ० ८ । ८) हविः । कनमत् । यत् १०
 एतत् पान्तं पानार्हं पानयोग्यं च श्वानां पुरो-
 ङाशादि निर्देग्धसृष्टभायमग्निना क्रियते । अजरम् । जरा विपरिणामः ।
 यतः परं विपरिणामो नास्ति कश्चित्तन् । प्रविनेकमापादितमग्निना । यदे-
 तत्स्वविदि । स्वः आदित्यः तं वाचं यथासौ वेदितव्य इति तदर्थं वा १५
 वेत्ति हविः । स्वविदयमग्निर्न सूर्यः । भाष्यकारोऽपि व्यपदेशेन निराह
 'सूर्यविदि' इति । दिविस्पृशि व्यासौ स्पृशत्यहन्यहनि हविरुपनय-
 न्नादित्यम् । आहुतम् अभिहुतं विसृष्टम् । जुष्टं प्रियं देवानाम् । तस्य
 हविषः भर्मणे भरणाय संभरणाय बहुलीकरणाय । अपि नाम अयमग्नि-
 रेतद्बहु कुर्यादित्येवमर्थम् । भावनाय च । विभूतियुक्तमुपजायेतेत्येवमर्थ- २०
 मेवं । तत्कथं नाम देवतातृप्तिमर्थं कुर्यादिति । धर्मणे धारणाय अत्रि-
 च्छेदनाय । कथं नामैतद्देवताभ्यो नित्यं प्रापयेदिति । एतेभ्यः कर्मभ्यः
 अर्थाय इमम् एव अग्निं पृथिवीस्थानं साधयतः स्वधया अन्नेन हविषा

१ ङ. थ. ध. ठ. ड. 'र्मभ्यां दग् इम'. २ ङ. थ. ध. ठ. ड. 'इति'
 नास्ति. ३ क. ख. ३ (२५); छ. ३८; त द् ३. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. २५
 'वानां चरुपुरोडाशादिभिर्निर्देग्ध'; च. 'वानां पुरो' चरु. ५ घ. झ. ट. ठ. ड.
 'तत्' नास्ति. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स स्ववि'; च. स स्ववि'.
 ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'ग्निरित्येतद्'. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 विभूतियुक्त'. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मर्थमपि एतत्कथं'. १० क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. साधयतः स्व'; च स्थानं साधयतः स्व'. २०
 ९०

आज्येन पुरोडासेन च । यदुक्तं निगमे ' घृतं चापां पुरुषं चौपधीनाम् ' (ऋ० सं० १० । ५१ । ८) इति तदेतत् । अपप्रथन्तै । अवर्धयन्तेत्यर्थः ।

एवमेतस्मिन्सुक्ते प्रथमे मन्त्रे यदेतदप्रिलिङ्गमस्पृष्टं वैश्वानरशब्देन तदसंशयमग्निवाचि । तत्पुनरंतत्सुक्तं हविष्पान्तीयं प्रागेवाग्नेयं करोति

५ यस्मात्प्रथमा ऋक् प्राथम्यात् । प्रथमं लोके हि यो स्तूयते स स्थेनाभिधानेनाव्यभिचारिणोपक्रम्यते स्तोतुम् । आग्नेयी तस्मात्सर्वं ततोऽन्यैर्भाक्तैः स्तूयते त्वं राजा त्वमिन्द्र इत्येवमादिभिः । तथैवं कृत्यास्मिन्सुक्ते यो वैश्वानरशब्द उत्तरत्र (ऋ० सं० १० । ८८ ।

१२-१४) सोऽस्यैवाग्नेः पृथिवीस्थानस्य व्यञ्जनमात्रं भवति ।

१० यथा चायमेवः, पृथिवीस्थानोऽग्निवैश्वानरो न मध्यमस्तथेम-
मपरं मन्त्रं स्वपक्षोद्धिर्भः षयिषया अन्यस्मात् सूक्ताद्धिर्भ्योतिर्लक्षणमा-
नीय मध्यभोत्तमयोर्ज्योतिषोरन्यत्वव्यपदेशवतो वैश्वानरस्य निर्णिनीषन्प्रक-
रोति ' अथाप्याह ' इति ॥ २५ ॥

१५ अ० अ० अ० अपामुपस्थे महिषा अगृह्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः
(ऋ० सं० ६ । ८ । ४) ॥ अपामुपस्थ उपस्थाने महत्यन्तरि-
सलोक आसीना महान्त इति वागृह्यत माध्यमिका देवगणा
विज्ञ इव राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियमृगमन्तमिति वार्चनीयमिति
२० बाहरद्यं दूतो देवानां विवस्वत आदित्याद्विवस्वान्विवासन-

१ ष. झ. ट. पुरोडासेन. २ क. ख. घ. झ. ठ. ड. 'थन्त देवाः । अव' ;
द. 'यन्त'. अव' देवाः. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'लोके यो हि भूयत'.
४ च. स्तूय' भू. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तथैवं; च. तथैवं' वं. ६ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स तस्येव'. ७ च. स्तथेम परं'. ८ घ. झ. ट. ठ. ड.
'द्विभे ज्यो'. ९ क. ख. ३ (२५); ग. ३८; ठ. इति । इति निरु० उक्त०
३० पञ्चविंशतिः खण्डः । २५ १; ड. इति । इति निरुक्तीकायामुत्तरषट्के प्रथ-
माध्याये पञ्चविंशतिः खण्डः. १० छ. त. द. माध्यमका'. ११ छ. घ. घ. ठ.
२८ ड. 'मिति वा पुननीयमिति वा'.

वान् प्रेरितवतः परागताद्वास्याग्नेर्वैश्वानरस्य मातरिश्वानपाहर्तार-
माह मातरिश्वा वायुर्मातर्यन्तरिक्षे श्वसिति मातर्याश्वनितीति वा-
यंनमेताभ्यां सर्वाणि स्थानान्यभ्यापादं स्तौति ॥ २६ ॥

अपामुपस्थे इति^३ । भरद्वाजस्यार्षभू । प्रातरनुवाकाश्विनयोः शस्यते । ५
पार्थिवोऽग्निरेव वै-
श्वानर इत्यर्थे ऋक्
अपामुपस्थे उपस्थाने । यत्रोपगम्य तिष्ठन्त्यापः
सोऽपामुपस्थः अन्तरिक्षलोकः । तस्मिन्नेपामु-
पस्थे महति विस्तीर्णे सैन्ना महिषाः माध्यमिका
देवगणाः । यथा वा । महिषाः त एव महान्तः ।
किमकुर्वन् । अगृभ्णत अगृह्णन् । गृहीत्वा च विश इव मनुष्या इव १०
राजानं परिवार्य उपतस्थुः । ऋग्मियम् ऋग्भिः स्तुतिभिः तद्वन्तम् ।
अर्चनीयम् अर्चनादं वा । कर्मिति । यम् आभरत् आहरत् दूतो देवानां
मातरिश्वा वायुः अग्निं वैश्वानरम् । कुतः । परावतः प्रकर्षेण ईरीतवतः
प्रेरिततरात् परागताद्वा दूरतरात् विवस्वतः आदित्यात् विवैसक्रियथां
तद्वतस्तं पर्यगृह्णन् अन्तरिक्षलोके गृहीत्वा चोपतस्थुर्विश इव राजा- १५
नम् । मातरिश्वा वायुः ' मातर्यन्तरिक्षे ' अप्रतिबध्यमानशक्तिः ' श्वसिति '
गच्छति । अथवा । ' मातरि आशु अनिति ' गच्छति ।
एवमेतस्मिन्मन्त्रे यत आह्वियते येन आह्वियते यश्चाह्वियते सर्वे ते
एतस्मिन् मन्त्रे पृथग् वैश्वपदिष्टाः । तत्र विवस्वत आह्वियते २०
विवस्वान् वैश्वान-
रात् पृथक्
मातरिश्वना वैश्वानर इति । तस्मादेतयोर्विवस्व-
न्मातरिश्वनोः संनिधानव्यपदेशे सति साक्षाद्वै-
श्वानरशब्देन पार्थिव उक्त इति व्यवतिष्ठते
पार्थिवो वैश्वानर इति ।

१ ड. ध. घ. ठ. ड. 'वापि वास्याग्ने' । २ क. ख. ३ (२६) ; छ. ३९ ;
त. द. ४. ३ ग. इति । भर°. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. 'वैश्वानरोऽग्निर्ज- २५
गती । पा°. ५ घ. झ. ट. ठ. ड. 'अपां' नास्ति. ६ ग. ज. सति. ८ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. ग. ज. अथवा°. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कतमामिति.
९ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. विवासानक्रियया तमसां तद्व° ; च. विवैसक्रि°
वसन. १० च. 'क्रियया + त° तमसां. ११ क. ख. घ. झ. ट. 'रिक्ष लो°.
१२ क. ख. घ. झ. ट. 'वायुः । स हि मत°'. १३ ग. ज. 'पृथक् उपदिष्टाः ;
च. 'पृथुं व्य° थक. १४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अत्र. ३१

अथ पुनर्यदेङ्गीकृत्य सूर्यादिसंबन्धि विशेषलिङ्गं हविष्यान्तीयस्य सौर्य-
वैश्वानरत्वमुक्तं ' विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमहामकृष्वन् '
इति नान्यः सूर्यादह्नां कर्ता तस्मात्सूर्योऽत्र वैश्वानर इति । अत्र ब्रूमः ।
पार्थिव एवायमग्निः सूक्ते (ऋ० सं० १० । ८८) प्रथमायामृचि प्रकृ-
त्यैव सर्वास्त्रक्षु एतस्मिन्सूक्ते प्रकृतिभृन्ना स्तूयते
महत् आत्मनो मोहाभाग्यात् । अपि तर्हि सत्त्वा-
न्यश्वप्रभृतीनि प्रकृतिभूमभिः स्तूयन्ते किमङ्ग
पुनर्देवतास्तासामपि च विशेषतोऽग्निर्यस्य सर्व-
देवतात्माभिवादः साक्षात् ' अग्निः सर्वा देवताः '

- १० (ऐ० ब्रा० ६ । ३॥ मैत्रा० सं० १ । ४ । १३ इत्यादिवहुकृत्वः ।
शत० ब्रा० १ । ६ । २ । २०॥ तै० सं० ६ । २ । २) ' इन्द्रं
मित्रं वरुणमग्निम् ' (ऋ० सं० १ । १६४ । ४६) इति । तदेतदे-
तस्मिन्नेव सूक्ते स्फुटतरमुपदिश्यते यथा पार्थिव एवायमग्निस्तेन तेन देवता-
विशेषेण देवतात्मना तत्स्थानमापन्नः स्तूयत इति । तदर्थमिदमाह ।
१५ ' अथैनमेताभ्यां सर्वाणि स्थानान्यभ्यापादं स्तोति ' । एताभ्यां ये एते
वक्ष्यमाणे । सर्वाणि स्थानानि पृथिव्यन्तरिक्षगुलक्षणाणि । अभ्यापाद्य
अभ्यापादं स्तोति मन्त्रदृक् ॥ २६ ॥

- मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुच्यन् ।
२ मायामु तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्वरति प्रजनन् (ऋ० सं०
१० । ८८ । ६) ॥ मूर्धा मूर्तमस्मिन्धीयते मूर्धा यः सर्वेषां भूतानां
भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुच्यन्स एव प्रज्ञां त्वेतां

१ घ. झ. ट. ठ. ड. 'यदा अग्नीकृत्य'. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
'प्रकृत्योत्तरासु ऋक्षु'; च. 'सैर्वासु' उत्तरा. ३ च. महा. ४ च. ज. इति च
तद. ५ क. ख. झ. 'णान्यभ्यापाद्य । अभ्यापाद्य इत्यभ्यापादं'; घ. ट. ठ. ड.
'णान्यभ्यापद्य । अभ्यापाद्य इत्यभ्यापादं'; च. 'णानि० अभ्यापा० अभ्यापाद्य.
६ म. ३०; क. ख. ४ (२६); ठ. 'दृक्'. इति निरु० उ० प्रथ० षड्विंशतिः
सण्डः । २६ ।; ड. 'दृक्' इति निरुक्तव्याख्यायामुत्तरषट्के प्रथमाध्याये षड्विंशतिः
६९ सण्डः; इनरेष्यङ्को नारित. ७ छ. त. द. 'द्यत्स'.

मन्यन्ते यज्ञियानां देवानां यज्ञसंपादिनामपो यत्कर्म चरति प्रजा-
नन्त्सर्वाणि स्थानान्यनुसंचरते त्वरमाणस्तस्योत्तरा भूयसे
निर्वचनाय ॥ २७ ॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमिति । मूर्धा मूर्तमस्मिन् सर्वं सत्त्वजातमुपनि-
बद्धं धीयते । यथा हि शिरसो वियोगे तद्वतोऽवश्यंभावि मरणमेवमग्नि-
वियोगेऽप्यवश्यं म्रियन्ते भूतानि इत्यतः प्रधानम्
अग्निरेव सूर्यो भ-
वति

मूर्धा भुवो भूलोकस्य भवति । विशेष-
तस्तु नक्तं रात्रौ तत्कृतत्वादा लोकस्य भूतानां
पानपक्तेस्तत्कृतत्वात् । तत्किमयमन्योऽग्निरन्यः
सूर्य इति । नेत्युच्यते । ततः सूर्यो जायते प्रातरुच्यन् । रात्रावग्नित्वेन
लोकस्योपकारं कृत्वा ततः अनन्तरमेव प्रभातायां रात्र्यामान्दिकैरुपकारैरु-
पकारिष्यन् लोकस्य सूर्यो भूत्वा जायते प्रातरुच्यन् मूर्धाग्निः । तस्येयं
माया । क एनां जानाति । मायां त्वेतां यज्ञियानां देवानां यज्ञसंपादिनां
सतत्त्वविदो मन्दन्ते । यत्किमिति । अपा यत्कर्म स्वाधिकारप्रयुक्तमादि-
त्यात्मनाग्न्यात्मना च कर्तव्यं प्रजानन् प्रकर्षेण जानन् सर्वाणि स्थानान्य-
नुसंचरते तूर्णः त्वरमाणः । कर्मकालमपरिहापयन्नियमिप्रायः ।

‘ तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ’ । यथा चैतदेवं तथेयमपरा
ऋग्भूयस्तरमेतमेवार्थं वक्ति । किं पूर्वया नोक्तं यदनया भूयस्तरं निरु-
च्यत इति । स्थानद्वयमभिसंपन्नः पूर्वया स्तुतः । मूर्धा भुवो भवत्यग्नि-
नक्तं ततः सूर्यात्मना पानरसाद्युदेति । अथ पुनरुत्तरया स्थानत्रयमभिसंपन्नः
स्फुटतरं स्तूयत इत्येतद्द्वयस्त्वम् ॥ २७ ॥

१ छ. त. द. °जानन्त्स°. २ छ. थ. ध. ठ. ड. चरति. ३ क. ख. ५ (२७);
छ. ४०; त. द. ५. ४ ग. °मिति ६१ । मू°; घ. झ. ट. ठ. ड. °भवति (ठ.
भवति इति) । मू°. ५ ग. ज °मस्मिं धीयते सर्वं°. ६ घ. झ. ठ. ड. °वश्यं-
भावी विनाश इत्य°; ट. °वश्यं भावी विनाश इत्य° म्रियन्ते भूतानि. ७ ग. ज.
‘मूर्धा भूलोकस्य°; घ. झ. ट. ठ. ड. भूलोक°. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
एवायमग्निः; च. एवाग्निः °यम. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °युक्तमात्माधि-
कारप्रयुक्तमादि°. १० घ. झ. ट. ठ. ड. चरति. ११ क. ख. ५ (२७); ग.
४०; ठ. °यस्त्वम् । इति निरुक्त० उ० प्र० सप्तविंशतिः खण्डः । २७ ।; ड.
°यस्त्वम् । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपटके प्रथमाध्याये सप्तविंशतिः खण्डः.

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसि-
 प्राम् । तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स औषधीः पचति विश्व-
 रूपाः (१० । ८८ । १०) ॥ स्तोमेन यं हि दिवि देवासो अ-
 ग्निमजनयञ्छक्तिभिः कर्मभिर्द्यावापृथिव्योरौपूरणं तमकुर्वन्नेधा-
 भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिर्ग्यदस्थ दिवि तृतीयं
 तदसावादित्य इति ब्राह्मणं तदग्नीकृत्य स्तोत्यथैनमेतयादित्यी-
 कृत्य स्तोति ॥ २८ ॥

- स्तोमेन हि दिवीति । स्तुतिभिः शक्तिभिः कर्मभिः अग्निहोत्रादिभिः
 १० अग्निः त्रिष्वपि दिवि सुलोके एतम् अग्निमादित्यात्मना रोदस्योः
 यावापृथिव्योः आपूरणं देवाः अजीजनन्
 लोकेषु वर्तते अजनयन्यजमानाः । ते हि हविषो दातारः ।
 'शश्वद्वा एष नोदियाद्यदेतामग्नावाहुतिं न जुहु-
 यादिति आहुतिभिर्येन जनयन्ति' इति । तमकृण्वन् तमेवामि कृतवन्तः ।
 १५ त्रेधा भुवे कम् । कामित्यनर्थको निपातः । त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्त-
 रिक्षे दिवीति च । स एवमवस्थितो जगत्यात्रासिद्धये सर्वा-
 वस्थैः सर्वावस्था औषधीः पचति सर्वरूपैः । प्रकृतस्यैव शाक-
 पूणेः पुनर्ग्रहणं स्वपक्षानुस्मृतये । संकरो ह्यस्मिन् मूक्ते आत्मविज्ञैरु-

- १ ठ. ड. °नञ्छक्ति° . १ क. ख. छ त द. हि यं. ३ क. ख. छ. त. द.
 २० देवा अ°. ४ क. ख. छ. त. द. 'शक्तिभिः' नास्ति; ठ. ड. °यञ्छक्ति°.
 ५ क. ख. छ. त. द. 'व्याः पू'. ६ क. ख. छ. थ. घ. ट. ड. इति हि ब्रा°;
 छ. इति च ब्रा° च. ७ क. ख. ६ (२८); छ. ४१; त. द. ६. ८ क. ख. घ.
 झ. ट ठ. ड. 'दिवि' नास्ति; ग. 'वीति' । स्तो°. ९ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. स्तोमेन स्तु°; च. °स्तु° स्तोमेन. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 १५ हविषां; च. हविषो° षां. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. शश्वत् श्रद्धया एष°;
 च. शश्वद्वा° त् श्रद्धया. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °यद्येता°; च. °यदे-
 ता° धे. १३ ग. ज. ना जुहु°. १४ घ. झ. ट. ठ. ड. तमू अकृ°. १५ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'इति' नास्ति. १६ च. °वस्थैः स° स्थः; ज. °व-
 स्थाः स°. १७ च. औष°. १८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °रूपा इति; च.
 २० °रूपाः ° । ष° इति.

क्याञ्चिकानामिति । ब्राह्मणमपि चैतमेवार्थं ब्रवीत्ययमेवाग्निरादित्यो भव-
तीति । ' यदस्य दिवि तृतीयं तदसावादित्य इति
ब्राह्मणम् ' । अस्य इति व्यपदेशार्थवश्याग्नेः
प्राधान्यं दर्शयति । उभाभ्यां पक्षाभ्यां व्याकृत्य
स्वपक्षसाधनमुक्त्वा देवतासतत्त्वमालम्ब्योच्यते ।

एकमेवेदं ज्योतिर्ज्योतिष्ठाभिधेयात् । तत्पुनरेतज्जगद्यत्रासिद्धये त्रिधा विभक्तं
पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च । विभक्त्याभिधानं संपद्यतेऽग्निर्विद्युदादित्य
इति । तत्रैवं सति ज्योतिषो दिवि तृतीयमादित्याख्यमस्मिन् सूक्ते सर्वा-
स्वक्षु ' हविष्णान्तम् ' इत्येवमाद्यास्वप्नीकृत्य मन्त्रदृक् स्तोति । ' अथैन-
मेतया ' पुनः आदित्यीकृत्य स्तोति ॥ २८ ॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् । यदा
चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्यापश्यन्भुवनानि विश्वा (ऋ० सं०
१० । ८८ । ११) ॥ यदेनमदधुर्यज्ञियाः सर्वे दिवि देवाः
सूर्यमादितेयमदितेः पुत्रं यदा चरिष्णू मिथुनौ प्रादुरभूतां सर्वदा
सहचारिणावुषाश्चादित्यश्च मिथुनौ कस्मान्मिनोतिः श्रयतिकर्मा
यु इति नामकरस्थकारो वा नयतिः परो वनिर्वा समाश्रिता-
वन्त्योन्यं नयतो वनुतो वा । मनुष्यमिथुनावप्येतस्मादेव मेथन्ता-
वन्त्योन्यं वनुत इति वार्थेनमेतयाग्रीकृत्य स्तोति ॥ २९ ॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियास इति । यदेनं सूर्यम् आदितेयम् अदितेः
अग्निरत्र आदित्य पुत्रं दिवि अदधुः सुलोकं स्थापितवन्तो देवाः
यज्ञियासः यज्ञसंपादिनो यजमाना याज्ञन
कर्मणा । सर्वस्यास्यापूर्वकृतत्वाज्जगद्विरचनाप्र-
पञ्चस्य । रश्मयो वा देवाः सौर्या यदेनमुन्नीतवन्तः । यदा चैतौ चरिष्णू

१ ठ. ड. इति हि आ०. २ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. ' लम्ब्य निरुच्यते;
च. ' लम्ब्य उ० निरु. ३ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. ' विभक्ताभिः'; च. विभ-
क्त्याभिः' का. ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. पूर्वास्वृ०. ५ क. ख. ६ (२८);
ग. ४१; ' स्तोति । इति निरुक्तं उ० (ड. निरुक्तभाष्योत्तरखण्डे) प्रथमाध्याये
अष्टाविंशतिः खण्डः । २८ । (ड. ' २८ ' नास्ति). ६ छ. त. द. सूर्यमादितेः०.
७ थ. द. घ. णः स्थ०. ८ क. ख. ५ (२९); छ. ५२; त. द. ५. ३ ट.
ड. देदेनेमिति.

सर्वदा सहचरगशलौ मिथुनौ प्रादुरभूताम् उपाश्वादित्यश्च आत् अथ तदा प्रापश्यन् प्रंकर्पेणौपश्यन् भुवनानि भूतानि विश्वां सर्वाणि ।

‘ मिथुनौ कस्मात् ’ । मिनोतिः तावदत्र ‘ श्रयतिकर्मा ’ । मिथुनशब्दे

- ५ मिथुनशब्दव्यु-
त्पत्तिः पूर्वपदं ‘ मि ’ इति । ‘ थु इति नामकरणः ’ प्रत्ययः । ‘ थकारो वा ’ नामकरणो विकल्पेन । ‘ नैयतिः परः ’ उत्तरपदे ‘ वनिर्वा ’ विकल्पेन । यदा तावत् ‘ थु ’ इति नामकरणो नयतिश्च परस्तदा धातोः पूर्वत्वात्प्रत्ययस्य परत्वात् ‘ मि नि थुः ’ इति प्राप्ते ऋद्वेर्बलीयस्वान्मध्यान्तविपर्ययेण मिथुनावित्युक्तम् ।
- १० अथ पुनर्यदा थकारो नामकरणस्तदा वनिरुत्तरः । तदा थकारस्य संप्रसारणम् । संप्रसारणपरपूर्वत्वं मध्यान्तविपर्ययः । थकारे च यः स्वरस्तस्य लोपः । थकारोऽन्तस्य उकारमुपसंक्रमेत । एवं मिथुनाविति सिध्यति । अथ कोऽर्थः । ‘ समाश्रितौ अन्धोन्यं ’ प्रति आत्मानं ‘ नयतः ’ कालं वा । समाश्रितौ भवतः परस्परं संभक्तौ ।
- १५ ‘ मनुष्यमिथुनावप्येतस्मादेव ’ । अथवा । मेथतेर्मनुष्यमिथुनौ स्याताम् । तौ हि कर्मार्थं ‘ मेथन्तौ ’ इव परस्परेण कालं नयतः ।

‘ अथ ’ पुनः ‘ एनम् ’ आदित्यम् ‘ एतया ’ उत्तरयर्चा एतस्मिन्नेव सूक्ते होतृत्वेन ‘ स्तौति ’ । होतृत्वं ह्यग्नेः कर्मन सूर्यस्य । तस्मादिदमग्निवैश्वानरीयं सूक्तम् ॥ २९ ॥

२०

१ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ षेण पश्यन् . २ घ. झ. ट. ठ. ड. विश्वानि. ३ ग. ज. ‘ मि इति ’ नास्ति. ४ ग. ज. नियतिपरो वनिर्वा यदा°; च. नियतिः परो वनिर्वा । पर उत्तर°. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °यस्य च प.° ६ क. ख. घ. ठ. ड. मिनथुः; झ. मिनथुनीरि°; ट. न्मिनथु° नी. ७ ग. ज. वकारसंप्र°; च. वकारस्यै. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. थकारश्च उ°; च. थकारोऽन्तस्यै उ° रश्च. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °एतम्; च. ‘ एनम्° त. १० क. ख. ७ (२९); ग. ४२; ठ. °सूक्तम् । इति निरु० उ० प्र० एकोनविंशत्तमः खण्डः । २९ ॥ ड. °सूक्तम् । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के प्रथमाध्यायं २९ विंशत्खण्डः; च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.

यत्रा वदेते अवरः परंश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
 आ शक्रुत्संधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वेचत्
 (ऋ० सं० १० । ८८ । १७) ॥ यत्र विवदेते दैव्यौ होता-
 रावर्यं चाग्निरसौ च मध्यमः कतरो नौ यज्ञे भूयो वेदेत्याशक्नु-
 वन्ति तत्सहमदनं समानख्याना ऋत्विजस्तेषां यज्ञं समश्रुवा-
 नानां को न इदं विवक्ष्यतीति तस्योत्तरा भूयसे निर्वच-
 नाय ॥ ३० ॥

‘ यत्रा वदेते ’ इति । यत्र यस्मिन् कर्मणि विवदेते । वेरुपसर्गस्याप-
 कृष्य यत्र क्रियापदेन सामर्थ्यं तत्रानयनम् । को पुनस्तौ विवदेते । १०
 अवरः परश्च दैव्यौ होतारौ । अयं चाग्निः पार्थिवः असौ च मध्यमो

वायुः । कथं विवदेते । यज्ञन्योः यज्ञनेत्रोः ।
 अत्र सूर्यो होतेति उभावप्यावां यज्ञस्य नेतारौ । तत्कतर
 स्तूयते । होतृत्वं चाग्नेः । आवयोः यज्ञे भूयो बहु वेद इति । तत्र य एते
 तस्मात्सूर्योऽग्निरेव समानख्याना ऋत्विजो यज्ञे विनियुक्ताः समश्रु- १५
 वन्ते यज्ञम् । त एनं सधमादं सहमदनं संर्हर्षम् उपश्रुत्यानयाः आशेकुः
 न शक्नुवन्ति । अशक्नुवन्तश्च किं ब्रूयुः । को न इदं विवक्ष्यति ।
 कतर एनयोर्ज्ञे भूयो वेदेति । उभावप्येतौ यज्ञे भूयोविदावित्यभिप्रायः ।

यथाग्निप्रधानमेतत्सक्तं होतृकर्मणोऽग्निर्बद्धत्वाद्विशेषलिङ्गेन न सूर्यप्रधानं
 ‘ तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ’ बहुतराय निरुच्य वचनाय । पूर्वस्याः २०
 को विशेषः । अस्यां हि विभज्य वायोः केत्रलोऽग्निरेव स्तूयते । पूर्वस्या-
 मुभावपि भूयोविदावित्युक्तम् ॥ ३० ॥

१ ङ. थ. ध. ठ. ड. समानाख्यानां. २ क. ख. ८ (३०); छ.
 ४३; त द. ८. ३ ग. इति । यत्र. ४ ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ तत्रानयनं’ २५
 नास्ति. ५ ठ. ड. समानाख्याना. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ युक्ताः नक्षन्त
 समः; च. ‘ युक्ताः च स’ नक्षन्त. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. एवं; च. एनं
 पं. ८ घ. झ. ट. ठ. ड. संवर्षः; च. संकषं. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. अथाशक्नुः; च. न्ति । च शक्नुः अथा. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 ‘ क्ष्यतीति. ११ ग. ज. संबन्धत्वा; च. संबन्धत्वा. १२ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. तथेयनपरा ऋक् भू. १३ क. ख. ८ (३०); ग. ५३; ठ. ‘ त्युक्तम् ।
 इति नि० उ० प्रथ- त्रिंशत्तमः खण्डः । ३० ; ड. त्युक्तम् । इति निरुक्तटी-
 चायामुत्तरषट्के प्रथमाध्याये त्रिंशत्खण्डः; च. वर्णितरेषुको नास्ति.

- यावन्मात्रमुपसो न प्रतीकं सुपर्ण्योः वसते मातरिश्वः । ताव-
 द्धात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो नि पीदन् (ऋ० स०
 १० । ८८ । १९) ॥ यावन्मात्रमुपसः प्रत्यक्तं भवति प्रतिदर्शन-
 मिति वास्त्युपमानस्य संप्रत्यर्थे प्रयोग इहेव निधेहीति यथा
 ५ सुपर्ण्यः सुपतना एता रात्रयो वसते मातरिश्वञ्ज्योतिर्वर्णस्य
 तावदुपधाति यज्ञमागच्छन् ब्राह्मणो होतास्याग्नेहोतुरवरो निर्षी-
 दन् होतृजपस्त्वर्नाग्निर्वैश्वानरीयो भवति देव सवितरेतं त्वा वृण-
 तेऽग्निं होत्राय सह पित्रा वैश्वानरेणेतीममेवाग्निं सवितारमाह
 १० सर्वस्य प्रसवितारं मध्यमं वोत्तमं वा पितरं यस्तु सूक्तं भजेते
 यस्मै हविर्निरूप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्वैश्वानरो निपातमेवैते उत्तरे
 ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते भजेते ॥ ३१ ॥

- ‘ यावन्मात्रमुपसैः ’ । अत्र नकारः संप्रत्यर्थे एवोपमानासंभवात् ।
 लोकेऽपि च ‘ अस्त्युपमानस्य संप्रत्यर्थे प्रयोगः इहेव निधेहीति यथा ’ ।
 १५ इह संप्रति निधेहीत्यर्थः । मातरिश्वना कश्चिःपृष्ठो दैव्यस्य होतुः अग्नेः
 ज्ञाने होताग्निर्ब्राह्मणहोतुर्वरीयान् यद्विज्ञानं तत्किमयं ब्राह्मणो मनुष्यहोता यज्ञमुपा-
 यन् विभर्तीति । स तं प्रत्याह । हे मातरिश्वन् यावन्मात्रम् उपसः प्रत्यक्तं प्रत्यखितं प्रतिगतं
 प्रकाशस्य एताः सुपर्ण्यः रात्रयः सुपतना रात्रय
 २० आत्मन्यनुप्रविष्टं छादयन्ति । अभिभूय तमो वर्तते स्वयमेव । अथवा ।
 वसतिर्दर्शनार्थः । यावन्मात्रमुपसो रात्रिषु दृश्यते तावदिति । एवमपि
 स्वल्पम् । एतावन्मात्रमयं स्वल्पविज्ञान उपायन् यज्ञं ब्राह्मणो होतृत्वे वृतो

- १ छ त. द इहेव. २ क. ख. छ. द. स्त्वमग्निं. = क ख. ९ (३१) ।
 इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः पादः; छ. ४४: त. द. ९; ठ. ३१ । इति नेरुक्तो-
 २५ त्तरषट्के प्रथमाध्यायः; ड. ३१ । इति निरुक्तोत्तरषट्के प्रथमाध्यायः समाप्तः.
 ४ क. ख. घ. झ. ट. ‘ एसो न प्रतीकं ’ । अत्र; ठ. ड. यावन्मात्रमिति.
 ५ ग. ज. इहेव; च. इहेव° हे, घ. ट. ठ. ड. इह वे नि°. ६ ग. ज. इहेव नि°;
 च. इहेव नि° ह संप्रति. ७ ठ ड. ‘ एताः ’ नास्ति. ८ क. ख. ग. ज. घ. झ.
 ट. वर्तन्ते. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. दृश्यन्ते; ग. ज. दृश्यते । एवम°.
 ३० १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स्वल्पमेव । ए°; च स्वल्पमेवता° व । ५.

होतृप्रदने निपीदन् दधाति धारयति । दैव्यस्याग्नेः परस्य भूयोविदः अवरो-
ऽन्योऽल्पविदिति अनुकरोत्यल्पमिति । मानुषो ह्यग्न्यनुग्रहादेवायमल्पवि-
ज्ञानोऽपि होता होत्रं करोतीति पार्थिवोऽग्निर्विशेषतोऽभिष्टुयते ।

तदेतदेवं कृत्वा सूक्तमग्निप्रधानकर्मत्वाद्वैश्वानरीयम् । येऽत्र वैश्वानरश-
ब्दास्तेऽग्निं भजन्ति विशेषणत्वेन । ' होतृजपस्वनाग्निर्वैश्वानरीयो भवति ' ।

एवमपि तु सत्ययम् अर्नाग्निर्वैश्वानरो होतृजपः ' देव सवितरेतं त्वा वृणेत-

किंतु होतृजपो ना-
ग्निर्वैश्वानरीयो यस्मा-
त्तत्र वैश्वानरोऽग्नेः
पितेत्युच्यते

ऽग्निं होत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण' (आश्व०
श्रौ० १।३) इति । एतमेव जपं वर्णयन्ति ।
' इममेवाग्निं सवितारमाह ' पार्थिवं ' सर्वस्य प्रस-
वितरं' यज्ञद्वारेण । ' मध्यमं तोत्तमं वा पितरम्'
अस्य वैश्वानरमाह । ' सह' तेन ' वैश्वानरेण पित्रा' ।

एवं द्वौ पितापुत्राविति व्यपदेशात्पार्थिवाद्व्यो वैश्वानरः । स च पुनर्मध्य-
मौ वोत्तमो वेत्येवमेवमयमनग्निर्वैश्वानरो होतृजपः ।

अत्रापि ' यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हार्विर्निरूप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्वैश्वा-
नरः' । किं कारणम् । अनग्निर्वैश्वानरः सति होतृजपस्यायमेव पार्थि-
वोऽग्निर्वैश्वानर इत्यत्राग्निप्रते याज्ञिकपक्षे । आचार्यपक्षे चायमेवैको मन्त्रो

सूक्तभाक् हविर्भा-
क् च वैश्वानरः अयमेव
पार्थिवाग्निः

व्यपदेशहेतुरेवैश्वानरत्वं ब्रवीति । संप्रति मन्त्रे-
णाग्नेर्व्यपदेशवतो वैश्वानरत्ववाचिना ' आ दूतो
आग्निमभराद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः'
(ऋ. सं. ६।८।४) इत्यनेन शाकपृणिपक्षे-
णैव्यभिचारिणा समीभवति । तद्धितव्यपदेशा-

दयस्तु पार्थिवस्य वैश्वानरत्वसाधका विशेषहेतवः षडव्यभिचारिणोऽस्ति-

- १ ग. ज. 'रोऽज्ञोऽल्प' ; च. 'रोऽज्ञोऽल्प' न्यो. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
७° स्ते पार्थिवाग्निं भजन्ते वे'. ३ क. ख. ग. घ. झ. ट. ठ. ड. °नग्निर्वैश्वा° ;
ट. °स्त्वनोऽग्ने' स्त्वयमग्निरिति त्रियरु एव पाठः. ४ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. २५
°नग्निर्वैश्वा° ; च. 'नग्निर्वैश्वा' वे. ५ क. ख. एवमेतं, ग. ज. एतद्वं. ६ ग. ज. यस्य.
७ ग. ज. ठ. ड. °ध्यमवो° ; च. °ध्यमवो° मो ८ च. नग्निर्वैश्वा° वे. ९ क. ख.
घ. झ. ट. ड. °नरत्वेऽपि सति हो° ; ट. °नरत्वेऽपि सति हो° रो. १० ग. ठ.
ड. °नग्निर्वैश्वा°. ११ ग. ज. वाय°. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °रग्नेर्वैश्वा°. २०
१३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °श्वता अग्नेर्वैश्वा° ; च. °श्वतो वैश्वा° ता अग्ने-
र्वै. १५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °क्षेण स्वताव्यभि° ; च. °क्षेणोऽव्य° ण स्वता. ३१

रिच्यन्ते । एतस्माद्विशेषहेतुवाहुल्यादयमेव पार्थिवैः सूक्तभाग्यविर्भाक् च ।
 ' निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषा ' वैश्वानर इति ' एतेन नामधेयेन भजेते
 भजते ' इति । द्विरम्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः ।
 इतरयोज्योति गो- तदेवमेलस्मिन्वैश्वानरपदविचारप्रसङ्गेन हवि-
 ५ वैश्वानर इत्यभिधानं ष्णान्तीयं सूक्तमुपक्षिप्य सूर्यो वैश्वानरोऽग्निवैश्वान-
 गौणम् नर इत्येकमेवेदं ज्योतिस्त्रिधा वर्तते इति मन्त्र-
 स्वभावोपप्रदर्शनार्थमुपवर्णितम् । ईदृशेषु शब्दा-
 र्थन्यायसंकेतेषु मन्त्रार्थघटनेषु दुरवबोधेषु मतिमतां मतयो न प्रतिहन्यन्ते ।
 वयं त्वेतावदत्रावबुद्धयामह इति ॥ ३१ ॥

१०

इति ऋज्वर्थायां निरुक्तवृत्तौ

जम्बूमार्गाश्रमवासिन आचार्यभगवद्दुर्गास्य कृतौ
 द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ।

१५

× अर्थातोदैवतमिन्द्रोदिवःपरोक्षकृतास्तद्येतिस्रोऽथाकारचिन्त-
 नमपुरुषविधंतत्तिस्रर्षवदेवताइत्युक्तंपूपात्वार्यतानीन्द्रंभक्त्यान्यर्थता-
 न्यादित्यभक्त्यानिमन्त्रांमननाज्जगतीगततममथातोऽनुक्रमिष्यामो-
 ऽग्निमीळेऽग्निःपूर्वाभिरभिर्ष्वन्तेन्द्रमित्रंजातवेदीःकस्मात्प्रनूनंजातवेद-
 संवैश्वानरःकस्माद्वैश्वानरस्यप्रनूभहित्वंक्लृष्णानियानंहविष्षान्तमपा-
 र्मुपस्थेपूर्वाभुवस्तोमेनेहियदेदेनंयत्रावदेतेयावन्मैत्रमेकत्रिंशत् ॥

२०

इति निरुक्ते उत्तरपट्टे प्रथमोऽध्यायः ।

२५

१ क. ख. घ. झ. ट. ड. ड. पार्थिवाऽग्निवैश्वानरः सू; च पार्थिवः= सू
 अग्निवैश्वानरः. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'सङ्गे ह'. ३ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. मन्त्रस्य भा. ४ क. ख. ९ (३१); ग. ४४; च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.
 ५ ग. इति द्वादशाध्यायस्य सप्तमः पादः । इति ऋ; च. ज. द्वादशोऽध्यायः
 समाप्तः । इति ऋ; ठ. ड. इति श्री जम्बू'. ६ ठ. ड 'कृतौ ऋज्वर्थायां निरुक्तटी-
 कायां निवण्ट (ठ. निवण्ट) पञ्चाध्यायेन सह द्वादशोऽध्याये आदितः सप्तमे उत्त-
 रषट्कस्य प्रथमाध्याये एकत्रिंशत्तमः खण्डः । ३१ । (ड. 'द्वादशाध्यायोत्तरषट्के
 प्रथमाध्यायः समाप्तः). ७ ग. 'ध्यायः । खण्ड ४४ ! पाद ७ । मंत्र ६५ । श्लोक-
 संख्या १५००. × छ. त. द. अथात इत्यादि न वर्तते. ८ छ निरुक्ते सप्तमोऽ
 ध्यायः; त इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः; द इति सप्तमोऽध्यायः संपूर्णः; ठ. इति
 निरुक्ते उत्तरषट्के प्रथमोऽध्यायः समाप्तः.

३२

अथाष्टमाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

द्रविणोदाः कस्माद्धनं द्रविणमुच्यते यदेनर्दाभिद्रवन्ति बलं
वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रवन्ति तस्य दाता द्रविणोदास्तस्यैषा
भवति ॥ १ ॥

‘ द्रविणोदाः ’ (निघ० ५ । २ । १) इत्येतद्देवतापदं निर्वाच्यम् ।

द्रविणं धनं बलं तदर्थमुपोद्घातः ‘ द्रविणोदाः कस्मात् ’ इति ।
वा तस्य दाता तत्र पूर्वपदमेव तावत्प्रथमं विगृह्य निराह । ‘ धनं १०
द्रविणमुच्यते ’ इति । तत्कस्मात् । ‘ यदेनद-
भिद्रवन्ति ’ । कर्मकारकम् । यस्मादेतदाभिमुख्येन तदर्थिनोऽवश्यं
द्रवन्ति । ‘ बलं वा द्रविणम् ’ । करणकारके । ‘ यदेनेनाभिद्रवन्ति ’ ।
यस्मादनेन संयुक्ताः सन्तः परानभिद्रवन्ति । ‘ तस्य ’ धनस्य बलस्य
वा ‘ दाता ’ यो भवति स द्रविणोदाः । ‘ तस्य ’ प्राधान्यस्तुतियुक्ता १५
‘ एषा ’ ऋक् ‘ भवति ’ यां दृष्ट्वा देवतापदसमान्नाये समान्नातः ॥ १ ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्राहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमी-
ळिते (ऋ० सं० १ । १५ । ७) ॥ द्रविणोदा यस्त्वं द्रविणस इति
द्रविणसादिन इति वा द्रविणसानिन इति वा द्रविणसस्तस्मा- २०
त्पिबत्विति वा । यज्ञेषु देवमीळिते । याचन्ति स्तुवन्ति वर्धयन्ति
पूजयन्तीति वा तत्को द्रविणोदा इन्द्र इति क्रौष्टिकिः स बलधन-
योर्दातृतमस्तस्य च सर्वा बलकृतिरोजसो जातमुतमन्य एनमिति
चाहाथाप्यग्निं द्रविणोदसमाहैष पुनरेतस्माज्जायते । यो अश्मनो-
रन्तरग्निं जजानेत्यपि निगमो भवत्यथाप्यृतुयाजेषु द्राविणोदसाः २५
प्रवादा भवन्ति तेषां पुनः पात्रस्येन्द्रपानमिति भवत्यथाप्येनं
सोमपानेन स्तौत्यथाप्याह द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदस इत्य-

१ क. ख. छ. ‘ देनमभि ’; त. ‘ देनमीभि ’ द. २ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड.
‘ भाये एष स ’; च. ‘ भाये ’ स एष. ३ ठ. ड १ । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के
द्वितीयाध्याये प्रथमः खण्डः. ४ क. ख. छ. त. द. ‘ भीलते. ५ क. ख. छत.
द. इति । २ ‘ अय ’.

- यमेवाग्निर्द्रविणोदा इति शाकपूणिराग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु द्राविणो-
दसाः प्रवादा भवन्ति । देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदामित्यपि
निगमो भवति यथो एतत्स बलधनयोर्दातृत्तम इति सर्वासु देव-
तास्वैश्वर्यं विद्यते यथो एतदोजसो जातमुत्तमन्य एनमिति चाह-
५ त्ययमप्यग्निरोजसा बलेन मथ्यमानो जायते तस्मादेनमाह सह-
सस्पुत्रं सहसः मूनुं सहसो यहुं यथो एतदग्निं द्राविणोदसमाह-
त्यृत्विजोऽत्र द्रविणोदस उच्यन्ते हविषो दातारस्ते चैनं जन-
यन्ति । ऋषीणां पुत्रां अधिराज एष इत्यपि निगमो भवति
यथो एतत्तेषां पुनः पात्रस्येन्द्रपानमिति भवतीति भक्तिमात्रं
१० तद्भवति यथा वायव्यानीति सर्वेषां सोमपात्राणां यथो एतत्सो-
मपानेनैनं स्तोतीत्यास्मिन्नप्येतद्गुणपद्यते । सोमं पिव मन्दसानो
गणश्रिभिरिति यथो एतद् द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदस इत्यस्यैव
तद्भवति ॥ २ ॥

- १५ ' द्रविणोदा द्रविणसः ' इति । भेदातिथेरापेक्षम् । ' द्रविणोदाः ' इत्येतस्य प्रथमैकवचनान्तस्य कर्तृत्वेन श्रुतस्य
' द्रविणोदाः ' क्रियापदेन बहुवचनान्तेन ' ईळते ' इत्यनेन
इत्यस्य ' ईळते ' वचनभेदादसामर्थ्यमपेक्ष्य स्तोतृत्वे चासंभवं
इत्यनेनान्वयाभावात् द्रविणोदसो देवतात्वात्स्तुत्यत्वेन सामर्थ्यमुन्नीय
२० 'यः' शब्दोऽध्याहार्यः द्रविणोदसो यद्दत्तमध्याहृत्य द्रविणोदस्यर्थपता-
वमिसंबन्धात्स्तुतेरकवाक्यतायां सामर्थ्यमुन्नीनी-
ष्वस्तुर्ये द्रविणोदसि द्रविणोदःशब्दं कर्मत्वेन नमयांचकार ' द्रविणो-
दा यो ' देवस्तं द्रविणोदसमिति । इदानीं ' द्रविणसः ' इत्यस्य
' प्रावहस्तास ' इत्यनेन ऋत्विग्विषयेणासंदिग्धेन प्रथमाबहुवचनेन
२५ ' द्रविणसः ' इ- स्तुतिकर्तृत्वेन विशेषणविशेष्यभावेन सामाना-
त्यस्य 'प्रावहस्तासः' धिकरण्यं सामर्थ्यमुन्नीय तथार्थोपपत्तिसामर्थ्या-
इत्यनेनान्वयः देवताकथयामिसंबन्धाति । यं द्रविणोदसं
देवम् अध्वरे यज्ञे अग्निष्टोमादौ यज्ञेषु यजतिषु
हविःसंप्रदानेषु सवनेषु वा यागस्थानेषु द्रविणस
ऋत्विजः । ते हि द्रविणं लप्स्यामह इति सीदन्ति कर्मणि । अथवा ।

१ क. ख. छ. थ. ध. ठ. ड. रित्वाप नि. मो भवति यथो. २ क. ख.
छ. त. द. ३. ३ ग. इति मे. ४ क. ख. ग. ज. झ. ईळते; च. इडत. ५ च.
द्रविणसो. ६ ग. ज. ' द्रविणोदा यो देवसां ' न स्ति. ७ ग. ज. 'हस्तासः'.
३४ ८ ग. ज. यज्ञियेष्टु सवनेषु द्रविणस ऋ.

‘ द्रविणसानिनो ’ धनस्य गवादेर्हविषो वा देवतार्थस्य संभक्तारः ।
 प्रावहस्तासः इत्यभिपवाभिप्रायम् । यमेते द्रविणसो प्रावहस्तास ऋत्वि-
 जोऽध्वरेषु यज्ञेषु द्रविणोदसं देवम् ईळते ‘ याचन्ति स्तुवन्ति वर्धयन्ति
 पूजयन्तीति वा ’ स द्रविणोदा देवोऽस्मभ्यं द्रविणानि ददात्वित्येतदाशास्महे ।
 आशिपमध्याह्नस्य समाप्यते यमीडते स इति यत्तदोः परस्परापेक्षत्वात् । अथवा । ५
 एवमन्यथा निराकाङ्क्षतया परिसमाप्यते ‘ द्रविणसस्तस्माद्विबल्विति ।

अथवा ‘द्रविणः’ द्रविणोदा इत्यतः प्रथमैकवचनाद्विपरिणतादेव
 द्रविणस इत्यस्य पञ्चम्येकवचनत्वेन सोमाभिधा-
 नात्रं तस्मात्पिबतु इत्य-
 न्वयः नञ्चे सामर्थ्यमुचीय पिबत्वित्याख्यातमध्याह्न्यात्रैव
 समापयांचकार भाष्यकार एवमप्यास्ति सामर्थ्य- १०
 मित्युपप्रदर्शनार्थम् । तत्कथमिति । यं देवं
 द्रविणोदसमध्वरेषु यज्ञेषु यजतिषु प्रावहस्ता ऋत्विज ईळते स देवः
 द्रविणोदाः द्रविणसोऽस्मात्सोमाद् द्रविणैसंभक्तुरादाय स्वमंशं पिबत्वित्येत-
 दाशास्महे ।

‘ तत्को द्रविणोदाः ’ इत्येवमादिविचारः । तत्र तावत् ‘ इन्द्र १५
 को द्रविणोदाः इति क्रोष्टिकः ’ एवमाचार्यो मन्यते । केन
 हेतुना । ‘ स बलधनयोः ’ अतिशयेन दाति । ‘ तस्य च सर्वा
 इन्द्रो यस्मात्स बल- बलं कृतिः ’ । अभिधानविग्रहे हि बलं द्रविण-
 स्य दाता द्रविणं च बलं मित्युक्तम् । बलकृतिश्चेन्द्रस्य सर्वा । तस्मादिन्द्रः ।
 ‘ ओजसो जातमुत मन्य एनमिति चाह ’ २०
 मन्त्रदृक् । अधिपत्विकृत एवास्य बलेनाभिसंबन्धः । तस्म शुकं यत्तस्य
 दाता स्यात् । कथामांत । यतो मन्त्र एव निर्दग्ध्यंत ।

‘ अश्वोदियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् । मन्योरियाय
 हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेदे १ (ऋ० सं० १० । ७३ ।
 १०) ॥ यद्वदन्ति यदा वदन्ति अशनवतो मेवात् अयम् इन्द्रः आग- २५
 च्छतीति तत्र संनिधानमस्य प्रतीय । तत्ता-
 इन्द्रो बलाज्जात- वदहं न तथा मन्ये । कथं तर्हि ओजसो
 स्तेनास्य बलेन संबन्धः जातं बलराशेः कुतश्चिदतिमहतो जातम्
 अहम् एनं मन्ये यथायमतिबलवान् लक्ष्यते । अपि वा । मन्योः

१ क. ख. ईडते; ग. च. व. झ. ईलते. २ घ. झ. ट. ‘हस्तास ऋ’; च.
 ‘हस्ताऋ’ स. ३ ग. ज. द्रविणं सं. ४ ग. वेदे । य. ५ व. झ. ट. ठ. ड.
 तथा न.

क्रोधान् दीप्तैर्वा अयम् इयाय यतो हर्म्येषु उदकाहरणाधिकारयुक्तेषु मेघ-
वधकर्मसु तस्थौ तिष्ठति । अथवा किं जानीमः कुतोऽप्ययमैश्वर्याज्जात
इति । यतो ब्रूमः । यतः अयम् इन्द्रः प्रजज्ञे इन्द्र एव अस्य स्वजन्मन-
स्तत्त्वं वेद । न कोऽप्यन्यो ज्ञास्यतीत्यभिप्रायः ।

- ५ ' अथापि ' अयमपरो हेतुरिन्द्रस्य द्रविणोदस्ये । ' अग्निं द्राविणोद-
समाह ' मन्त्रदृक् । स मन्त्रो मृगयः । केचित्तु ' द्रविणोदाः पिबतु
द्राविणोदसः ' (ऋ० सं० २ । ३७ । ४)
अग्निर्द्राविणोदस इत्येतमेव मन्यन्ते । यस्यापन्यं द्राविणोदसोऽग्निः
उच्यते इन्द्राच्चाग्निर्जा- सँ द्रविणोदा इति । कस्य च पुनरयमं-
तस्तस्मादिन्द्रो द्रवि- पत्यमिति । अत आह । ' एष पुनः ' अग्निः
१० णोदाः ' एतस्माज्जायते ' इन्द्रात् । कुत एतत् ।
ऐन्द्रे हि निगमे श्रूयते ' यो अश्मनोरन्तरग्निं
जजान ' इति ।

- १५ ' यो हत्वाहिर्मरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा बलस्ये । यो
अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समस्तु स जनास इन्द्रः ' (ऋ० सं०
इन्द्रोऽग्निं जनया- २ । १२ । ३) ॥ तृतीयेऽहनि दशरात्रस्य
मास निष्केवल्ये विनियोगः (आश्व० श्रौ० ७ ।
७) । गृत्समदो ब्रवीति ऐन्द्रं रूपमास्थि-
तोऽसुरैर्हन्यमानः । किं मां ह्य नाहमिन्द्र
२० इति । कस्तर्हीन्द्रः । यो हत्वा अहिं मेघम् आरिणात्सप्त सिन्धून् स्यन्दना
आकाशनदीः ' एला च इला च ' इत्येवमाद्याः यश्च । गाः अपः उदाजत्

१ घ. झ. ठ. ड. हर्म्येषु तस्थौ तिष्ठति उद°; ट. हर्म्येषु तस्थौ तिष्ठति
उद°. २ घ. झ. ठ. ड. °र्मसु । अथ°; ट. °र्मसु । अथ° तस्थौ तिष्ठति.
३ ग. ज. °इति ब्रूमः । यतो°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °ज्ञे इति । इ°;
च. °ज्ञे° । एव° इति इन्द्र. ५ ग. ज. °वेद कोऽन्यो ज्ञा°; च. °वेद न कोऽन्यो
ज्ञा°प्य. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स एव द्र°. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°रयमाग्निप°. ८ ग. °त्वाहिं तृ°; घ. झ. ट. °त्वाहिमरि इन्द्रः । तृ. ९ ग.
°नदीरम्भा च दुला च°; ट. ठ. ड. °नदीः एला च इला च°; च. ट. अथा बहुला
२९ पाठान्तरं. १० ग. ज. उदाजत्; च. उदाजपत्.

उदगमयत् अपधा अपधानेन उद्घाटनेन वैलस्य मेघस्य शिराणां
छिद्राणाम् । यश्च अश्मनोः अशनवत्योः षावापृथिव्योः अन्तः मध्ये
अग्निं जजान जनयति । यश्च समस्तु संग्रामेषु शत्रूणां संवृक् संछेत्ता ।
हे असुरजनाः स इन्द्रो नाहमिन्द्र इति ।

‘ अथापि ’ अयमपरो हेतुरिन्द्रस्य द्रविणोदस्त्रे । कतम इति । ५

‘ ऋतुयाजेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति ’ । ऋतवो धैर्मन्त्रैरिज्यन्ते
ते भवन्त्यृतुयाजाः । तेषु ऋतुयाजेषु द्राविणोदसा द्रविणोदःशब्दयुक्ताः
प्रवादा भवन्ति । तद्यथा ‘ अपाद्भोत्राद्दृत पोत्रा-

ऋतुयाजेषु द्रवि-
णोदाः सोमं पिबति
पात्रं चेन्द्रपानमिति
प्रेषे उच्यते तस्मा-
दिन्द्रो द्रविणोदाः

दमत्तोत नेष्ट्रादञ्जुपत प्रथो हितम् । तुरीयं पात्र-
ममृक्तममर्थं द्रविणोदाः पिबंतु द्रविणोदसः ’ १०

(ऋ० सं० २ । ३७ । ५) ॥ तथो । ‘ होता
यक्षदेवं द्रविणोर्दामपाद्भोत्रादपात्त्रोदापानेष्टु-
रीयं पात्रममृक्तममर्थमिन्द्रपानं देवो द्रविणोदा

द्रविणोदसः स्वयमायुयाः स्वयमभिगृयस्वयमभिगृत्वा होत्रय ऋतुभिः सोम-
स्य पिबत्वच्छायाक यज ’ (प्रैषः ५१) इति । ‘ होता यक्षदेवं द्रवि- १५
णोदाम् ’ इत्यच्छावाकस्य संप्रैषः । भैत्रावरुणो ब्रवीति अध्वर्युणा
‘ ऋतुभिः प्रेष्य ’ इति प्रेषितः । होता यक्षत् यजतु । कथमिति । देवं
द्रविणोदसम् । स च पुनर्द्रविणोर्दा देवः पूर्वम् अपात् पीतवान् सोमम् ।
अपाद्भोत्रात् संप्रदानात् । अपाच्च पोत्रास्संप्रदानात् । अपाच्च

१ क. ख. ग. च. ज. झ. ट. बलस्य. २ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. २०
ड. °भवन्ति । ततः किम् । तेषामृतुयाजानां यत्पात्रं येन ते ह्यन्ते तस्येन्द्रपान-
मिति समाख्या भवति । तद्यथा°; च. °भवन्ति । ° तद्यथा° ततः किम् । तेषां
समाख्या भवति. ३ ग. °द्भोत्रात् । होता°; घ. झ. ट. °द्भोत्रादुत° दसः; च.
°द्भोत्रात् । अगद्भोत्रा° . ४ क. ख. च. द्रवि°. ५ ग. ज. तथा । होता यक्ष-
त्यादि यजेत्यन्तं न विद्यते; च. पुस्तके पञ्चस्यःपस्तनभोग पञ्चने. ६ क. ख.
द्रविणोदसमपा°; झ द्रविणोदसमपा°. ७ क. घ. °णोदा द्रविणसः स्वय°; घ. झ.
ट. °णोदाद् द्रावि°. ८ च. द्रविणा देव° दा. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ ड.
‘ अपात् ’ नास्ति; च. अपात्

नेष्ट्रत्संप्रदानात् । अथ पुनरिदं तुरीयं चतुर्थं संप्रदानम् अमृक्तम् अशु-
द्धम् । अपूर्णमित्यर्थः । अमर्थं यत्पीत्वा न भ्रियते । अथवा । अमनुष्ययो-
ग्यम् । अमृक्तं चानुपमृदितमन्थया देवतया अपरिभुक्तम् । इन्द्रपानम् इन्द्रस्य
पातुं योग्यम् । तदेतत् द्रविणोदाः देवः इन्द्रः अस्माभिः प्रत्नमादेरेण
५ स्वयमायुयात् स्वयमाभिर्ऋयात् स्वयमभिगूर्वात् स्वयमभ्युद्यच्छत् । तैतः
पिबतु ऋतुना कालेन सह सोमस्य अभिगूर्तया अभिमतया होत्रया
स्तुत्या प्रदीयमानं स्वमंशम् । हे अष्टछावाक त्वमप्येतदेवं ज्ञात्वा यज ।

एवमेतस्मिन्निन्द्रस्य द्रविणोदःप्रभादवति प्रैपे पात्रस्य इन्द्रपानम् इति
समाख्या । तस्मादिन्द्रस्तेन पिबतीति गम्यते । एवं चेत्प्राप्तमिन्द्रो द्रविणोदा
१० इति ।

अथापि अयमपरो हेतुरिन्द्रस्य द्रविणोदस्त्वे । यस्मात् ' एनं सोमपानेन
इन्द्र एव सोमपानेन स्तौति ' ऋतुयाजेष्वेव । ' होत्रात्सोमं द्रविणोदः
स्तुयते यस्मात् इन्द्रा- पिब ऋत्भिः ' (ऋ० सं० २ । ३७ । १) इति ।
१५ यैव सोमः संस्कृतये न ह्यन्य इन्द्रात्सोमपानेन स्तुयते तदर्थत्वात्सोम-
संस्कारस्य । भवति हि सोमाप्यायने तत्संस्कारप्र-
धानो मन्त्रः । तद्यथा । अंशुरंशुष्टे देव सोमा-
प्यायतामिन्द्रापैकधनविदे (मैत्रा० सं० १ । २ । ७ ॥ ३ । ८ । २)

- १ घ. झ. ट. ठ. ड. °नात् । उतापि षोत्रात्संप्रदानायदमत्त इष्टवान् । उतापि
नेष्ट्रत्संप्रदानाद्दशुषत प्रीतवान् । एषनेनदशुषतामीयत प्रयोऽन्नं हितं । आत्मनो हितं
२० पथ्यमन्नम् । अथ° (च. पुस्तके इदं सर्वं पत्रस्योपरितनमागे लिख्यते । °प्रयो
हितमात्मनो हितं पथ्यं । अथ° एवं च पाठो वर्तते ।; ट. पुस्तके इदं सर्वं - -
ईदृशैश्चिह्नैरपमृज्यते. २ घ. झ. ट. ड. 'शुद्धं देवेभ्यः अदत्तं दशापवित्रेणामृष्टं
वा । अपू°; च. 'शुद्धं अपू° देवेभ्यः अदत्तं दशापवित्रेणामृष्टं वा. ३ ग. ज.
' इन्द्रपानं ' नास्ति. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मामिश्रीयात्; ग. ज.
२५ °मासिष्यात्; च. °मामिष्यात्° श्रीया. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ततः स्वयं
पि°; च. ततः° पि° स्वयं. ६ ग. च. ज. स्मिन्पैषे इन्द्र°. ७ ग. ज. 'देवं;
च. 'देवं' नं. ८ ग. ज. °वेव । सोममिन्द्रो देवः पिबतु ऋतुभिरिति; च; होत्रात्सोम-
मिन्द्रो देवः (मं द्रविणोदाः) पिबतुं ऋ. ट. होत्रात्सोमं इन्द्रो देवः (द्रविणोदाः);
घ. ट. ड. होत्रात्सोममिन्द्रो देवः पिबतु ऋतु°. ९ ग. ज. श्रूयते. १० क. ख. घ.
३० झ. ट. ठ. ड. °यने च तत्सं°; च °यने° तत्सं° च.

इति । तस्माद्यत्र यत्र सोमपानस्तुतिस्तत्र तत्रेन्द्र इति स्पष्टो न्यायः ।
प्रसिद्धतरं ह्येतत् । यदर्थमिव हविः संस्क्रियते तस्मा एव प्रदीयते ।

‘ अथाप्याह द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः इति ’ । यस्य द्रवि-
णोदसोऽग्निरपत्यं स द्रविणोदाः इन्द्रः पिबत्विति । अपाद्भोत्रात् ईति

यस्मात् अग्निः
द्राविणोदसः तस्मात्
इन्द्रः द्रविणोदाः

तस्थैवाच्छावाकप्रैपस्थैवा याज्या । अमत्त हृष्ट-
वान् । उत अपि । अजुयत अप्रीयत । प्रयः
अन्नम् आत्मने हितं पथ्यम् । शेषस्तेनैव
व्याख्यातः । समाप्ता पूर्वपक्षहेतवः क्राष्टुक्यभि-
मैताः ।

५

किमस्तु एतैर्हेतुभिरिन्द्रो द्रविणोदा इति । नेत्युच्यते । ‘ अयमेवाग्नि-
द्रविणोदाः इति शाकपूणिः ’ मन्यते । अयमेव
यस्य पृथिवीस्थाने समाम्नानम् । अपि च यदि
मध्यमोऽभविष्यत्ततो यान्येतानि माध्यमिकान्यै-

१०

न्द्राणि वा पार्जन्यानि वा बार्हस्पत्यानि वा तेषु द्राविणोदसाः प्रवादा अभ-
विष्यन्मध्यमस्य कर्मणा चैनं रसानुप्रदानादिनास्तोष्यन् । न चैतदुभयमस्ति ।
किं तर्हि । ‘ आग्नेयेष्वेव हि सूक्तेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति ’ । ‘ हि ’

१५

यस्मात् आग्नेये-
ष्वेव सूक्तेषु द्रविणो-
दःशब्दः प्रयुज्यते

शब्दो हेत्वर्थः । यस्मादाग्नेयेष्वेव सूक्तेषु द्रावि-
णोदसाः प्रवादा विशेषणत्वेनाग्निरंशु भवन्ति ।
अग्निकर्मणा चैनं सूक्तेषु स्तौति नन्द्रेण कर्मणा ।
तस्मादयमेवाग्निर्द्रविणोदाः । कथमिति । यत्

२०

उपप्रदर्शयति । ‘ देवाँ अग्निं धारय-द्रविणोदामित्यपि निगमो भवति ’ । अप्ययम-
प्यन्ये बहव इत्यपिशब्दः । ‘ स प्रल्लैया सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बल्ल-
धत्त विश्वा । अपश्च मित्रं धिपर्णा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणो-

१ ग. इति । तस्थै°; ड. ड. सर्वा ऋक् पठ्यते. २ च. तस्थैवाश्चैक°
च्छावा. ३ क. ख. °मताः । ४ । किम°. ५ ग. °च्यते । ६ ।
अय°. ५ च. पुस्तके ‘ देवाः००० शब्दः ’ पत्रस्याधस्तनभागे लिख्यते. ६ ग.
अ. ‘ अपि ’ नास्ति. ७ ग. प्रत्यथेति । कुत्स°; घ. झ. ट. ज. प्रत्यथेति ।
कुत्स°; च. प्रत्यथेति । सहसा° ८ क. ख. बहधत्त; च. मलधत्त.

२२

- दाम्' (ऋ० सं० १ । १६ । १) ॥ कुःसस्थेयमार्थम् । पितृयज्ञे
 अस्यामृचि अग्नि- श्विष्टकृत्पुरोनुवाक्या (भैत्रां० सं० ४ ।
 द्रविणोदाः १० । ६) । योऽग्निः अपां मित्रं तदुत्पत्तिभो-
 गात् । धिषणायाश्च वाचः साधन् साधयिता
- ५ तदधिदेवतायोगात् । यं च देवाः अग्निं धारयन् धृतवन्तः पूर्वं । द्रविणोदां
 द्रविणानां हविषां देवेभ्यो दातारं वोढारम् । सोऽग्निः प्रत्नथा । ' था '
 इत्युपमाने (निरु० ३ । १६) । पुराण इव । सहसा बलेन जायमानो
 जन्यमानः सद्यो जातमात्रः सन् काव्यानि पितृदेवतानि हर्षेणै बळवत्त ।
 ' बैट् ' इति सत्यस्य नाम । यथा अवितथेन न्यायेन धारयितव्यानि
- १० दौतव्यानि वा पितृभ्यस्तथैव सद्यो जातोऽपि धारयति ददाति वा विश्वा
 विश्वानि सर्वाणि । एवमेतस्मिन्नाधिकारे यं धर्तुं धृतवन्तो देवाः सोऽस्मा-
 कभिर्दं नाम करोस्वित्याशिषैकवाक्यता । अयमेवाग्निर्द्रविणोदा इति
 स्थितः पक्षः । स पुनरयं परपक्षहेतुष्वनिराकृतेषु अनवस्थित एव । यत-
 स्तन्निराकरणाय ' यथो एतत् ' इत्येवमाद्युच्यते ।
- १५ यत्पुनरेतदुक्तं ' स बलधनयोर्दातृतमः ' इति अकारणमेतदिन्द्रस्य
 ऐश्वर्यात् सर्वा एव द्रविणं दस्त्वे । कस्मात् । यस्मात् ' सर्वासु
 देवतास्यैश्वर्यं विद्यते ' । ता ऐश्वर्यात् सर्वा एव बलधनयोर्दात्र्यो भवन्ति । तस्मादवैशेषिकमेत-
 दिन्द्रस्य कारणं द्रविणोदस्त्वे ।
- २० ' यथो एतदोजसो जातमिति ' । यदप्युक्तं बलकृतिमधिकृत्य ' ओजसो
 जातमुत जातम् उत मन्ये मन्य एनमिति ' तदप्यवैशेषिकमिन्द्रस्य । कस्मात् ।
 अग्निरपि ओजसा यस्मात् ' अयमप्याग्निरोजसा बलेन मध्यमानो जायते
 मध्यमानो जायते तस्मादेनम् ' अग्निम् ' आह ' मन्त्रदृक् ।
 किमाह । ' सहसस्पुत्रं सहसः सृजुं सहसो
- २५ यद्गुम् ' । द्रुन्नः सर्पिरासुतिरित्येवमादयः शेषाः ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. धिषणा धिष°; च. धिषणा ~ या° धिषणा. २ क.
 ख. बलधत्त; ग. ज. घ. झ. बलधत्त. ३ ग. ज. बल्. ४ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. सत्यनाम. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. दापयितव्यानि, च. दात्त° पयि.
 ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °यति वा द°; च. °यति~द° वा. ७ घ. झ. ट.
 ठ. ड. यं धारयन् धृ°; च. धैत्° धारयन्. ८ क. ख. एवमयो°; ग. ज. एवमग्नि-
 ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °जातमन्य एनमिति चाहेति । यद्°.

‘ द्रुन्नः सर्पिरासुतिः प्रन्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ’

अग्निः सहसः पुत्र इत्युच्यते (ऋ० सं० २ । ७ । ६) ॥ गृत्समदस्यार्षम् । अग्नौ विनियोगः समिदाधाने (मैत्रा० सं० २ । ७ । ७ ॥ ३ । १ । ९) । द्रु अन्नः द्रुन्नः द्रुमान्नः । सर्पिर्ग-

सुतिः च सर्पिः आसवो यस्य । सर्पिर्वोदकमासूते य आहुतिद्वारेण । प्रत्नश्च पुराणो होता वरेण्यो वरणीयः सहसश्च बलस्य यः पुत्रः अद्भुतो महान् चित्रो वा । स ईदमस्माकं करोत्वित्याशीर्गितमाख्यातमध्याहृत्य समाप्यते । ५

‘ त्वं ह यद्यविष्टय सहसः सूनवाहुत । ऋतावां यज्ञियो भुवः ’

सहसः सूनुः (ऋ० सं० ८ । ७५ । ३) ॥ विरू-
पस्यापर्म् । सामिधेनीष्वग्नेयेऽन्नाद्यकामकर्मणि धाय्या । हे यविष्टय युवतम सहसो बलस्य सूनो पुत्र यत् यस्मात् आहुत अभिहुत ऋतावा उदकवान् यज्ञवान् वा यज्ञियः यज्ञसंपादी भुवो भवासि तस्मात्त्वां वयमपि जुहुमः । स त्वमस्माकमप्येवं भवेत्येतदाशास्महे । १०

‘ अग्ने वाजस्य गोभर्तः ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो

सहसो यहुः महि श्रवः ’ (ऋ० सं० १ । ७९ । ४) ॥ १५
उष्णिक् । गोतमस्यार्षम् । इष्टकोऽधानेऽग्नेौ विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । १३ । ८) । हे भगवन्नग्ने सहसो यहो बलस्य पुत्र जातवेदः यदेतद् वाजः अन्नं गोमत् गोभिस्तद्वत् तस्य त्वैर्म्

१ ग. 'रासुतिरिति । गृत्स°; च. ज. घ. झ. ट. 'रासुतिरिति' । गृत्स° . २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'र्षम् । गायत्री । आग्नेयी । अग्नौ°; च. 'र्षम्~ अग्ने° । गायत्री । आग्नेयी । ३ क. ख. घ. झ. ट. ड. 'च' नास्ति. च. च. ४ ट. बलस्य. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यः अद्भु° . ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इदं नामास्माकं; च. ईदमस्मा इदं नामा. ७ ग. 'विष्टयेति' । वोरस्यार्षम्; च. ज. 'विष्टयेति । वोरस्यार्षम्; घ. झ. ट. 'विष्टयेति । विरू° . ८ क. ख. घ. झ. ट. 'र्षम् । आग्नेयी । गायत्री । सा°; च. 'र्षम्~ । सा° आग्नेयी । गायत्री । ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'नीष्वग्नेयेऽना° . १० क. ख. घ. झ. ट. ड. याज्या°; ट याज्या° । हे° धाय्या. ११ च. ज. घ. झ. ट. 'मत इति । उष्णि°; ग. 'मत इति । उष्णि° . १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'र्षम्~ । आग्नेयी । इष्ट°; च. 'र्षम् । ' इष्ट° आग्नेयी । १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'अपि' न सति. १४ च. 'इत् नैस्यै त्वैस्यै' त्वं त; ट. ठ. ड. 'नैस्यै त्वैस्यै' चंत. ३०

अस्य ईशानः ईश्वरः । यतो ब्रूमः । अस्मे अस्मासु धेहि स्थापय । अन-
पायि कुरुष्वैतत् महि श्रवः महदेतत् श्रवो गवादि इत्येतदाशास्महे ।

‘ यथो एतत् ’ यत्पुनरेतदुक्तम् ‘अग्निं द्राविणोदसमाहेति’ । नेदमने-
नाभिप्रायेण इन्द्रात् अयं द्राविणोदसो जायत इति । किं तर्हि । ‘ऋत्विजोऽत्र’
५ एनस्मिन् द्राविणोदसैवेऽग्नेः ‘ उच्यन्ते ’ । ते पुनः कस्मात् । ‘ हवि णो
दातारः ’ । देवानां हि हविर्द्राविणम् । तदेते ददत इति द्राविणोदस
एते । ततः किम् । ‘ ते चैनं जनयन्ति ’ ।
यस्माद्ऋत्विजो ह-
विषां दातारस्तस्मात्ते
द्राविणोदसः । तेषां
१० पुत्रोऽग्निः
अस्यामचि अग्निः
ऋषीणां पुत्र इत्युच्यते
‘ निगमोऽपि ’ हि ‘ भवति ’ ऋत्विजामयमग्निः
पुत्र इति । तद्यथा । ‘ ऋषीणां पुत्रो अधिराज
एष इति ’ । ‘ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टं ऋषीणां
पुत्रो अधिराज एषः । तस्मै विधेम हविषा
धेयं मा देवानां यूयुपाम भागधेयम् ’ (मैत्रा०
सं० १ । २ । ७) ॥ अनेन निर्मथ्योऽग्निर-
भिहूयते (मान० श्रौ० १ । ७ । १ । ४७) ।

१५ यः एषः अधिराजः अधिकदीप्तिः अग्नौ आहवनीये निर्मथ्यः प्रविष्टः
चरति ज्वलन् ऋषीणाम् ऋत्विजां पुत्रः तैर्मथितस्तस्मै विधेम तं परिच-
रामहे वयम् अनेन आज्येन हविषा । किमिति । मा देवानां यूयुपाम
भागधेयम् इति । प्राप्तभेतदभिहोमाख्यं भागधेयं ‘ सुत्रेणाभिजुहोति ’
(मान० श्रौ० १ । ७ । १ । ४७) इति शास्त्रतोऽर्थः । तस्य
२० मा यूयुपाम मा लोतुपाभेयतो विधेम । अथवा । अस्मै अग्नये दधः ।
विधतिर्दानकर्मापि भवति ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ इति ’ नास्ति. २ ग. ज. ‘ दसात् अग्नेः’;
च. ‘ दसात् अग्नेः ’ सत्वेऽ. ३ ग. ‘ राज इति; च. ‘ राज इति ’ एष; ज. ‘ राज
इति. ४ ग. च. ज. घ. झ. ट. ‘ विष्ट इति । अने ’ (च. पुस्तके सर्वा ऋक्
पत्रस्योपरितनभागं ट. पुस्तके अथस्तनभागे लिख्यते). ५ च. ट. ठ. ड. वृतेन.
६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ नीये अग्निर्निर्म ’; ग. ज. ‘ नीयनिर्म ’; च.
नीये ~ नि० अग्निः. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ तोऽस्याग्न्याख्यस्य देवस्थ
मा ’; च. ‘ तोऽस्याग्नस्तस्य-ग्न्याख्यस्य देवस्थ. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.

६९ ‘ मये हविर्दधः; च. ‘ मये दधः; ‘ हविः.

यत्पुनरेतदुक्तम् ' ऋतुयाजेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति ' ' तेषां
 पुनः पात्रस्येन्द्रपानमिति समाख्या भवति ' ५
 पात्रस्येन्द्रपानमिति समाख्या गौणी इति । एतदप्यकारणम् । कस्मात् । यस्मात्
 ' भक्तिमात्रं भवति तत् ' । गुणतः संवादः ।
 दुर्बला हि समाख्या यतः असामर्थ्यात्कुतश्चित् गुणानुवादः ' यथा
 वायव्यानीति सर्वेषां सोमपात्राणां ' नानादेवतानामपि सताम् (तै० सं०
 ६ । ४ । ७ ॥ भैत्रा० सं० १ । ५ । ८) ।

' यथो एतःसोमपानेनैनं स्तौतीति ' । इदमप्यकारणम् । कस्मात् ।
 यस्मात् ' अस्मिन्नप्येतद्रूपपद्यते ' सोमपानम् । कथमिति । ' सोमं पिब
 मन्दसानो गणश्रिभिरिति ' । ' अग्नें मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्भिः सोमं १०
 अग्नावपि सोम- पिब मन्दसानो गणश्रिभिः । पावकेभिर्वैश्वमि-
 पानमुपपद्यते न्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजृः '
 (ऋ० सं० ५ । ६० । ८) ॥ हे भगवन्नग्ने

वैश्वानर त्वंभिः मरुद्भिः मितरोचिभिः अर्चिभिः शुभयद्भिः भवन्तम्
 ऋक्भिः रसहर्तृभिः गणशो भवन्तमाश्रयद्भिः पावकेभिः पावयितृभिः विश्व- १५
 भिन्वेभिः सर्वमिदमागच्छद्भिः यद्गधुम् आयुभिः अयनशीलैः प्रदिवा चिरं-
 तनैः केतुना प्रज्ञया कर्मणा वा सजृः संयुक्तो मन्दसानः मोदमानः सोमं
 पिबेत्येतादाशास्महे । अर्चिषोऽत्र मरुतैः । अन्यथा ह्यनुदाहरणमेवैव मन्त्रो-
 ऽग्नेः सोमपाने स्यादितरैर्मरुद्भिः संबन्धात् । ऋत्विजो वा मरुतः ।

' यथो एतद् द्राविणोदाः पिबतु द्राविणोदस इति । अस्यैव तद्भवति ' । २०
 यत्पुनरेतदुक्तमृतुयाजेषु ' द्राविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ' इति अस्य एव
 अग्नेः तद्भवति अग्नेरपि सोमभागित्वाद्दतु-
 ऋतुयाजेषु अग्नि- याजेषु । भवति हि तेषु ' वनस्पते०० द्राविणोदः
 रपि सोमभाक् पिब ऋतुभिः ' (ऋ० सं २ । ३७ ।

३) इति । वनस्पतिशब्दसामानाधिकरण्यात्सोमपानार्थे संबोधने द्रवि- २५

१ ग. ज. सवादो. २ ग. °यद्भिः । हे भग°; च. ज. घ. झ. ट. °यद्भिः ।
 हे भग°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. गणश्रिभिः गणशः°; च. °र्त्विभिः गणश्रि-
 श्रिभिः. ४ ग. ज. °गच्छन्ति य°; ठ. ड. ' सर्वमिदमागच्छद्भिः ' नास्ति.
 ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °रुतः । ऋत्विजो वा मरुतः । अन्य°; च.
 °रुतो ऋत्विजो वा मरुतः न्य°. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' ऋत्विजो वा
 मरुतः ' नास्ति; च. °न्धात् । ऋत्विजो वा मरुतः । यथा°.

णोदसो विशेषणविशेष्यभावसामर्थ्यान्नान्यो वनस्पतेर्द्रविणोदाः । वनस्प-
तिश्च पुनरसंशयमग्निः । ' वहाँ देवत्रा दिधिषो हवींषि ' (भैत्रा० सं०
४ । १३ । ७ ॥ काठकसं० १८ । २१) इति हविर्वहनकर्मसं-
योगास्विष्टकृद्विकारश्रुतेश्च वनस्पतेः । तस्माद्भिर्द्रविणोदा नेन्द्रः ।

५ यत्पुनरेतदुक्तमिन्द्रार्थं सोमः संस्क्रियते तस्मादिन्द्र एव केवलः पाता
नान्य इति । नैतदेवम् । सोमो ह्यन्यस्यै देवतायै मीयतेऽन्यस्यै संस्क्रि-

यद्यपि सोम इन्द्रार्थं यतेऽन्याभ्यश्च गृह्यते हूयते च । तद्यथा ।
संस्क्रियते तथापि सोऽ- ' अमि त्यं देवम् ' इति सावित्र्या मीयते
न्याभ्यो देवताभ्यो गृह्यते (भैत्रा० सं० १ । २ । ९ ॥ ३ । ७ । ४ ॥
मान० श्रौ० २ । १ । ४ । ३) ।
१० हूयते च ' अंशुरंशुष्टे ' इतीन्द्राय संस्क्रियते (भैत्रा० सं०

१ । २ । ७ ॥ मान० श्रौ० २ । २ । १ । १२) । पुनरपि चै
मीयते ' इन्द्रायाभिमातिप्रे ' इत्येवर्मादिना (भैत्रा० सं० १ । ३ ।
३ ॥ ४ । ५ । ४ ॥ मान० श्रौ० २ । ३ । ३ । ४) । नाना-

१५ देवताभ्यो गृह्यते च मित्रावरुणाद्याभ्यः (भैत्रा० सं० १ । ३ । ४-
३६) । तथा च हूयते । (भैत्रा० सं० १ । ३ । ४—३६) ।
तदेवं विधिवशाद्विचित्रा सोमतन्त्रगतिः । तत्रैवं सत्यशक्यं वक्तुं यत्र
यत्र सोमस्तत्र तत्रेन्द्रः पातेति । संभुङ्क्ते चाग्निरिन्द्रेण सह प्रत्यक्षमैन्द्राग्ने

एन्द्राग्ने ग्रहे अग्नि- ग्रहे ' इन्द्राग्नी आगतम् ' (भैत्रा० सं०
२० रपि इन्द्रेण सह सोमं १ । ३ । १७) । इत्यत्र भवति चाग्न्य-
संभुङ्क्ते र्थमपि पृथग्ग्रहणं यजुषा सोमस्य ' अग्नये
त्वा रायस्पोर्षदाय ' (भैत्रा० सं० १ । ३ ।
३ ॥ ४ । ५ । ४ ।) इति । तस्माद्ग्निरपि सोमस्य पाता स्याद्यथे-
ह ऋतुयाजेषु ॥ २ ॥

२५ १ क. ख. घ. ठ. ड. वहाँ ह. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
एवास्य के; च. एव के अस्य. ३ ग. ज. सावित्र्यामिमीते; च. सावित्र्या निर्भयते;
घ. झ. ट. ठ. ड. सावित्र्या अत्यष्ट्या मीयते. ४ ग. ज. रपि वाप्यार्थते; च.
पुनरप्यायते पि च मी; घ. झ. चाप्यायते । इन्द्रा; ट. चाप्यायते च मी. ५ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. मादिभिः; ग. ज. मादिना देवताभ्यां; च. मादिना
भिः. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'स्पोषाय त्वा'; च. 'स्पोषदायैति' षाय त्वा.
इ. ७ क. ख. ३ (२); ग. ३; ठ. ड. २ (ठ. २ नास्ति) । इति निरुक्त-
३९ टीकाय मुत्तरपदके द्वितीयाध्याये द्वितीयः खण्डः; च. वर्गमितरंभङ्को नास्ति.

मेघन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिपण्यन्वीळ्यस्वा वनस्पते ।
 आयूर्या धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पित्र ऋतुभिः
 (ऋ० सं० २।३।७।३) ॥ मेघन्तु ते वह्नयो वेढारो यैर्यस्यरि-
 ष्यन् हृदीभवायूय धृष्णो अभिगूर्य त्वं नेष्ट्रीयाद्धियाद्धिष्यो
 धिषण्यो धिषणाभवो धिषणा वाग् धिषेर्द्धात्यर्थे धीसादिनीति
 वा धीसानिनीति वा वनस्पत इत्येनमाहैप हि वनानां पता वा
 पालयिता वा वनं वनोतेः पिबर्तुभिः कालैः ॥ ३ ॥

‘ मेघन्तु ते वह्नयः ’ इति । गृत्समदस्यार्पम् । ‘ त्रिमिदा स्नेहने ’
 (घा० ४ । १३) । तस्य लोटि मेघन्तु इति । हे भगवन् वनस्पते

अत्र वनस्पतिः द्रविणोदः स्निह्यन्तु एते पुष्यन्तु ते तव वह्नयः
 द्रविणोदाः । स ऋतुभिः वेदारः अश्वाः येभिः ईयसे यैर्नित्यं गच्छसि
 सोमं पानुमाहूयते अरिपण्यन् अहिंस्यमानः केनचिदपि । स त्वमेभि-
 रश्वैरागम्ये अस्मच्चञ्जं वीळ्यस्व दृढमात्मानं कुरुष्व
 सोममस्मत्प्रचं पातुम् । कथं चैनं पित्र । आयूय औमिश्रय अङ्गुल्या । स
 हि पानपानां स्वभावो यदङ्गुल्या मन्थनम् । हे धृष्णो शत्रूणां धर्षयितः
 अभिगूर्य अभ्युद्यम्य ततो नेष्ट्रीयात् धिषण्यात् सोमं नेष्ट्रा वपट्कृतं पिब
 ऋतुभिः कालैः सेहेत्येतद्ग्रहमे ।

१ क. ख. छ. त. द. वीलयं. २ छ. त. द. वांलहारो. ३ छ. त. द. वृल्ली-
 भव. ४ थ. घ. ठ. ड. पिपर्तुभिः. ५ छ. ४ । प्रथमः पाद्ः; त. ४ । इति प्रथमः २०
 पाद्ः; द. ४ । इति नैरुके उत्तरार्धस्य प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पाद्ः. ६ ग. °ह्य
 इति । गृ°. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °र्षम् । जगती । ऋतव्या । त्रि°;
 च. °र्षम् । ~ त्रि° जगती । ऋतव्या । . ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इति भवति
 हे°. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °गत्य°; च. गम्ये° त्य. १० क. ख. ग. च.
 ज. घ. झ. वीलयस्व. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. आमिश्रय मिश्रीकृत्याङ्गुल्या;
 च. °यूर्वामिश्रीगुल्या° य आमिश्रय मिश्रीकृत्यां. १२ ज. पिपर्तुभिः.

‘ धिष्ण्यो धिष्ण्यः’ । ‘ धिष्णा वाक्’ । तदर्थमसौ साद्यते । तस्य पश्चा-
 दुपविष्टो होता संसति । धिष्णा कस्मात् ।
 धिष्ण्यशब्दस्य धिष्ण्यः धातोः ‘ दधात्यर्थे ’ वर्तमानस्य । सा हि
 व्युत्पत्तिः वागर्थं धारयति शब्दार्थयोः संबन्धनित्यत्वात् ।

५ अथवा । ‘ धीसादिनीति वा धीसानिनीति वा ’ । धीः प्रज्ञा कर्म वा । सा एत-
 स्यां सीदति सनोति वा । संभजते इयं वा । तयोः सीदति सनोति वा
 तन्निमित्तत्वात् । एवं धीशब्दात्पूर्वपदं सदेः सनोतेर्वोत्तरपदं धिष्णाश-
 ब्दस्य विकल्पेन । ‘ वनस्पत इधेनमाह ’ द्रविणोदसम् । तस्मादग्निरित्यभि-
 धनस्पतिरग्निः । प्रायः । अथ कथमग्निर्वनस्पतिः । ‘ एष हि

१० तस्मात् द्रविणोदा
 अप्यग्निरेव

कथमग्निर्वनस्पतिः

वनानां पाता वा पालयिता वा ’ । ‘ हि ’ शब्दो
 हेत्वर्थः । यस्मादेष वनानां वृक्षाणामन्तर्गतोऽपि
 समर्थोऽपि दग्धुं न तानि दहति तस्मात्सं तेषां
 पाता रक्षिता पालयिता वेति । केवलं धात्व-
 न्यत्वं स एवार्थः । अथ ‘ वनं ’ कस्मात् ।

१५ ‘ वनोतेः ’ संभजनार्थस्य । तद्धि दार्वादिप्रयोजनार्थं सेव्यते । पिब
 ऋतुभिः कालैः मंजति वाक्यशेषः ।

एवमयमग्निर्द्रविणोदाः सूक्तभागध्विर्भाक्च । निपातमेवैतन्मध्यमं

एव पार्थिवोऽग्निर्द्रवि-

णोदाः सक्तभाक्

ज्योतिरेतेन नामधेयेन भजेतेति ।

२० हविर्भाक्च

एष देवतापदविचारन्यायः सर्वत्र देवतापदविचारार्थं यथासंभवमुपा-
 देयः अज्ञाकृद्भ्ये शिष्यस्येति ॥ ३ ॥

त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१ च. ‘ धी ’ नास्ति. २ क. ख घ. झ. ट. ठ. ड. वृक्षादीनामन्त°. ३ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °तस्माद्वयं ते’; च. तस्मात्सं दयं. ४ ठ. ड. विपत्तुभिः.
 ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ज्योतिरुत्तमं च ज्योतिरेते’; च. ज्योतिरे’ रुत्तमं च
 ज्योति. ६ च. भजेतेति° त इति. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. रार्थोय°. ८ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. प्रज्ञाविवृ’; च. प्रज्ञावृ°वि. ९ क. ख. ४ (३); ग. ४;
 च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. १० ग. इति त्रयां°; ठ. ड. °स्येति । इति त्रयोदशा
 ध्यायस्य प्रथमः पादः । इति उत्तरषट्के द्विती (ड. इति द्विती) याध्यायस्य तृतीयः

अथात आप्रिय आप्रियः कस्मादाप्नोतेः प्रीणातेर्वाग्नीभिराग्नी-
णातीति च ब्राह्मणं तासामिध्मः प्रथमागामी भवतीध्मः सभि-
न्धनात्तस्यैषा भवति ॥ ४ ॥

‘अथात आप्रियः’ । आप्रियः इध्मादीनि (निरु० ५ । २) र्भक्तव्यानि । ५
तानि पुनरमूनि प्रैपिके आप्रिःमूक्ते (प्रयाजप्रैपाः १-१३) पाठक्रम-
आप्रिय इध्मादीनि । नियमाद्विवक्षितक्रमाणीति देवतापदसामान्याऽपि
तानि विवक्षित- गृह्यमाणत्वात्पाठक्रमप्रयोजनस्य विवक्षितक्रमा-
क्रमाणि ण्येव । तत्रैतद्भवति । इमान्यप्यग्निजातवेदोवैश्वान-
रप्रभृतीनि किं विवक्षितक्रमाणि उत युगप- १०
दभिधानासंभवादर्थत एषां क्रम इति । तत्र विवक्षितक्रमाणीति केचित् ।
कथमिति । इह तावत्स्थानानि भूर्भुवःस्वरिति पाठानुपूर्व्यं नियतानीति
अग्निजातवेदोवैश्वान- तस्थानिनामप्यग्न्यादीनां स एव क्रमो गृह्यते । स
रप्रभृतीन्यपि पदानि गृह्यमाणो न न्याय्य उक्त्वष्टमिति । अपि च । सति
विवक्षितक्रमाणि क्रमप्रयोजनेऽग्निः पृथिवीस्थानो यस्मादतस्तं १५
प्रथमं व्याख्यास्याम इति वचनमुपगच्छते । उत्तरत्र
च ‘ तासामिध्मः प्रथमागामी भवति ’ ‘ तेषामध्वः प्रथमागामी ’ (निरु०
९ । १) ‘ तेषां रथः प्रथमागामी भवति ’ (निरु० ९ । ११) इति तत्र
तत्र प्रथमागामीति वचनं यथाप्रधानमभिधानं पूर्वं समान्नातमित्यस्य
न्यायस्योपपत्त्यनार्थमिति लक्ष्यते । इतरथा ह्यविवक्षितक्रमेण प्रथमागामिवच- २०
नमकृत्स्नैव यकिञ्चित्पदमुपादध्यात् । तदेतत्पृथिवीस्थाने सर्वत्र क्रमप्रयो-
जनमुच्यते । पार्थिवस्य उद्योतिषो यथा अग्निशब्देन प्रसिद्धतमः संबन्धो न

१ क. ख. १ (४); छ. ५; त. द. १. २ ठ. ड. आप्रिय इति. ३ च.
आप्रिये' प्रीष्टु; ट आप्रिय°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. निर्वक्त°. ५ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. इति हेतुवच°. ६ क. भ. घ. झ. ट. ठ. ड. भवतीति तेषां°.
७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °गामी भवति तेषां. ८ घ. ट. ठ. ड. 'तत्र'
सङ्गदेव. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °गामी भवतीति वच°. १० ग. ज. °दशत्त-
देव तत्पृ°.

तथा जातवेदःशब्देन यथा जातवेदःशब्देन न तथा वैश्वानरशब्देन यथा

वैश्वानरशब्देन न तथा द्रविणोदःशब्देन । तान्ये-
पृथिवीस्थाने सर्व- तानि गुणधिप्रकर्षात्प्रसिद्धिविप्रकर्षाच्चौघिशब्दा-
त्र विवक्षित एव क्रमः द्विप्रकृष्यन्ते । इध्मादीनां तु व्यवधानेनाभ्यभि-

- ५ धानत्वमित्यतितरां विप्रकर्षः । अश्वप्रभृतयस्तु स्थानमात्रमग्रेर्भजन्त इति
इध्मप्रभृतिभ्योऽपि विप्रकृष्यन्ते । तेषामपि चोदितप्राणवृत्तयोऽश्वः शकु-
निर्भण्डूका इति प्रथमम् (निरु० ५ । ३ । १-३) । अनुदितप्राण-
वृत्तयस्त्वक्षादयस्ते पश्चादाद्वन्द्वेभ्यः (निरु० ५ । ३ । ४-२८) ।
इत्येवं सर्वत्र क्रमप्रयोजनमुपेक्ष्यम् ।

- १० इतरयोः स्थानयो- शाकप्राणस्तु पृथिवीनामभ्य एवोपक्रम्य स्वय-
रपि क्रमो विवक्षित मेव सर्वत्र क्रमप्रयोजनमाह । तदुक्तं वार्ति-
इति शाकप्राणिः ककारेण * क्रमप्रयोजनं नाम्नां शाकपण्युपलक्षि-
तम् । प्रकल्पयेदन्वदपि न प्रज्ञामवसादयेत् * ॥

- प्रकृतमिदानीमुपवर्णते । इध्मादीनां गुणाभिधौनसामान्यं किञ्चिदस्ति
१५ यतस्तेनाधिकारवचनम् ' अयात आप्रियः ' इति । ' अथ ' इति विशे-
षाधिकारे । ' अतः ' इत्यानन्तर्ये । आप्रियो वक्ष्यन्त इति वाक्यशेषः ।
इह कारणादभिधेयेऽभिधाननियमो नैरुक्तानाम् । तदर्थमुपोद्धृत्य ' आ-
प्रीशब्दव्युत्पत्तिः प्रियः कस्मादाप्नोतेः प्रीणोतेर्वा ' इति निराह ।
आप्रिय ऋचस्तत्संबन्धोद्भवता अपि । तथाहि दर्श-
२० यति ' आप्रीभिराप्रीणाति ' (ऐ० ब्रा० ६ । ४) । ' इतीमा आप्रीदे-

वताः ' (निरु० ८ । २१) इति । ऋचस्ताव-
आप्रीशब्देन ऋचो दामुवन्ति प्रीणन्ति वा देवता इत्याप्रियः । अथ
देवताश्चाभिधीयन्ते पुनर्देवता आप्यन्ते आप्रीयन्ते वा इत्याप्रियः ।

' तासाभिध्मः प्रथमागामी भवति ' । प्रथममागन्तुमस्याप्रीदेवतापद-
समाम्नाये शीलमिति प्रथमागामी । कस्मात् । तत्पूर्वत्वादिज्याया अनित्य-

- १ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड यथा च वे. २ च. ट. °र्षाच्चौघि° द्वा. ३ क.
ख. झ. °द्वितयमाणवृ°; ट. °द्विप्रमाण° प्रा. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. °घानं सा°.
५ क. ख. घ. झ. ट. इति च. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. तत्पूर्वकत्वादि°; च.
११ तत्पूर्वत्वादिघांशः° ज्या.

त्वाच्च तनूनपान्नराशंसयोरन्यतरस्य । ' तस्य ' इध्मस्य समित्कलापस्य
' एषा ' प्राधान्यस्तुतिः ' भवति ' ॥ ४ ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वात्स्वं दूतः कविरसि प्रचेताः (ऋ० ५
सं० १० । ११० । १) ॥ समिद्धोऽद्य मनुष्यस्य मनुष्यस्य गृहे
देवो देवान्यजसि जातवेद आ च वह मित्रमहश्चिकित्वात्श्चेतना-
वांस्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः प्रवृद्धचेता यज्ञेध्म इति कार्त्थैक्योऽ-
ग्निरिति शाकण्णिस्तनूनपादाज्यं भवति नपादित्यनन्तरायाः
प्रजाया नामधेयं निर्णततमा भवति गौरत्र तनूरुच्यते तता १०
अस्यां भोगास्तस्याः पयो जायते पयस आज्यं जायतेऽग्निरिति
शाकण्णिरापोऽत्र तन्व उच्यन्ते तता अन्तरिक्षे ताभ्य ओष-
धिवनस्पतयो जायन्त ओषधिवनस्पतिभ्य एष जायते तस्यैषा
भवति ॥ ५ ॥

१५

' समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे ' इति । जमदग्नेरार्षम् । सृक्तमेवाहीग्नेयं
यास्कः । हे इध्म यस्त्वं समिद्धः संदीप्तः अद्य एतस्मिन् विशिष्टे यजनीयेऽ-
हनि मनुषो मनुष्यस्य मनुष्यस्य समानेऽहनि प्रवृत्तयागीनां दुरोणे यज्ञ-
इध्मोऽग्निवद्दर्प्यते गृहे देवो दाता हविषां हेतुकर्तृत्वेन देवो दीप्तो
वा घाननो वा देवान् दानादिगुणयुक्तान् एतान् २०
हेतुकर्तृत्वेन यागाङ्गभाद्रमुपगच्छन् यजभि हे जातवेदः । जातवेदस

१ क. ख. १ (४); ग. ५; ठ. ड. ' वति । इति निरुक्तश्रीकायः मुत्तरषट्के द्वितीया-
ध्याये चतुर्थः खण्डः । ४ । (ट. ' ४ ' नास्ति); च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. २ क.
ख. छ. त. द. ' द्वो अद्य. ३ छ. द. कार्त्थैक्यो ' ; त. कार्त्थैक्यो ' थ. ४ छ.
त. द. ' आज्यं भवति ' नास्ति. ५ क. ख. २ (५) छ. ६; त. द. २. ६ ग. २५
इति ' । जम. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' र्षम् । त्रैष्टुभम् । सू. ' च. र्षम् ।
सू. त्रैष्टुभं. ८ ग. ज. ' आहग्नेयं यास्कः ' नास्ति; च. मेव ' हे ' बोहाग्रयं यास्कः.
९ ग. ज. ' मनुष्यस्य ' सक्तुदेव; च. मनुष्यस्य √ समा° मनुष्यस्य. १० क.
ख. ब. झ. ट. ठ. ड. ' गानां त्रैवर्णिकानां दु. ' ; च. ' गानां √ दु. ' त्रैवर्णिकानां.
११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यागोऽङ्ग. ' ; च. यागाङ्ग. ' गेऽ.

३०

आधार इति तदभिधानेन संबोध्यते । दृष्टा हि मन्त्रस्थेषु क्रोशत्सु तदभिधान-
 प्राप्तिः । अथवा । जातवेदा अपि त्वदृतेऽनभिष्यक्तस्वशक्तिः । त्वदाधारत्वौ-
 दशक्त एवायं यष्टुम् । तस्माज्जातवेदास्वदाधारो यजति यत्तत्त्वमेव यज-
 सीत्युच्यते । अस्माकमप्येतस्मिन्नहनि हे मित्रमहः मित्राणां पूजयितः
 ५ नित्यमभ्यर्षेक्षमाण उपकारप्रवृत्तो यजमानानां चिकित्वात् जानानः आ-
 च वह आहूय च देवानाहूय चैतान्यज तथास्मिन्कर्माणि ज्वलन्नङ्गभाव-
 मुपेहि यथैतस्मिन्कर्माणि हविः प्रतिजिघृक्षन्तोऽङ्गभावमीयुर्देवाः । अपि च ।
 नैतदतिचित्रं यदेवमस्माकमस्मिन्कर्माणि वर्तेथाः । किं कारणम् । यतो
 ब्रूमः । त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः । अग्न्यावेशादग्निवदपेक्षयोच्यसे । त्वमेव
 १० दूतः सर्वयजमानानां त्वैर्पूर्वकत्वाद्देवतायागस्य कविः क्रान्तदर्शनः क्रान्त-
 प्रकाशः सर्वत्र प्रचेताः प्रकृष्टप्रज्ञानः । यस्मात्त्वमृत्विग्पर्जमानानां
 सौफल्ये हेतुस्तस्य तत्र युक्तमस्माकमाहूय देवान्यष्टुमित्यतो ब्रूमहे आहूय
 चास्माकं देवान्यज च ।

‘ यज्ञध्म इति कार्थक्यः ’ । कार्थक्यस्य पुत्रः कार्थक्य आचार्यः ।

१५ इध्मो यज्ञेध्म इति स मन्यते । योऽयमिध्म आधीयते प्रतिप्रणवमिध्मो
 कार्थक्यः यज्ञे स एनायमिति । नन्वेतस्मिन्मन्त्रे न तस्य
 लिङ्गमस्ति । सत्यं नास्ति साक्षात् । प्रैषे तु

‘ समिद्धयः प्रेष्या ’ (मान० श्रौ० १ । ८ । ३ । १७) इति
 श्रूयते । युक्तं च यदर्थमेव प्रेष्यते स एवेज्यते । तस्मात्समिधामेवेध्मभा-

२० १ ग. ज. ‘ व्यक्तस्य शक्तिः; च° व्यक्तस्यै शक्तिः° स्व. २ ग. ज. ‘ रत्वात् शक्ति
 अशक्त°. ३ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. नित्यमभ्युपेक्षमाण उप’; च. नित्यमभ्युपे-
 क्षमाणोपकार° भ्यु. ४ ग. ज. ‘ वृत्ते जयमा’; च. जयमा° यज. ५ च. पुस्तके तत्पू-
 र्वेत्यादि यजमानानामित्यन्तं पत्रस्योपरितनभागे लिख्यते. ६ ग. ज. मृगयज°. ७ क.
 ख. घ. झ. ठ. ड. सायुज्ये; ट. सायुज्ये° फलं. ८ च. यज्ञे इध्म°. ९ ग. घ. ट.
 काठक्यः; च. कार्थक्यः° थ; ज. कार्थक्यः; छ. काठक्यः. १० ग. च. ज.
 कथकस्य; घ. झ. ट. कठकस्य. ११ ग. ज. काथक्यः; कार्थक्यः° त्थ; घ. झ.
 २७ ट. काठक्यः. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ इध्मः ’ नास्ति.

वमुपगतानां संदीप्तानां संमुदायापेक्षामिदं व्यवहितमभिधानमाप्रीगतं
 'समिद्धो अद्य' इति । समिध एव चेमा इज्यन्त इति स्फुटमैष्टिकं^३ ह्यत्रे ।
 'समिधो यज' इति (मान० श्रौ० १ । ३ । २ । २) प्रेषितो
 होता 'समिधः समिधो अग्न अज्यस्य व्यन्तु' (आश्व० श्रौ० १ । ५)
 इति वषट्करोति । तस्माद्युक्तं यत्कौत्थक्यो मन्यते यज्ञेध्व इति ।

५

अथ पुनरन्यः कथं मन्यते । यत आह 'अग्निरिति शाकपूणिः' । स
 पुनः कयोपपत्त्याग्निं मन्यते । आरादुपका-
 रित्वात्प्रैपस्य संनिपत्योपकारित्वाच्च यजतावाप्रियां
 यदाप्रारूपं तद्वलवत् । किंच पुनराप्रियो रूपम् ।
 अग्न्यर्थता । कथमिति । शृणु । 'समिद्धो

इधोऽग्निरिति
 शाकपूणिः
 यस्मात् आप्रियो-
 ऽन्यर्थाः
 देवान्यजसि जातवेदा मित्रमहश्चिकिंवांन्
 त्वं दृतः काधिरसि प्रचेताः' इति सर्वाण्ये-
 तानि अभिधानानि कर्माणि चागौगान्यग्निपक्षे गौणान्ध्वपक्षे । 'गौण-
 मुख्ययोश्च मुख्ये संप्रत्ययः' इति न्यायः । तस्मादप्रच्युतस्वरूपाया
 आप्रियो यजतावुपकारिताहुल्यादाग्नेयत्वाच्च प्रयाजनामाग्निरेवायमनयाप्रिया
 इज्यत इति शाकपूणिर्मन्यते ।

१०

१५

यास्कस्यापि चैतदेव मतम् । 'आग्नेर्या इति तु स्थितिः' इत्यधिक-
 शाकपूणिमतं या रणान्ते हि वक्ष्यति (निरु० ८ । २२) ।
 स्कस्य संमतम् एवं तर्ह्यग्निरेत्येतदेव समाप्नातव्यमासीन्नेध्व
 इति । नैवम् । कस्मात् । समिद्धो अध्येत्येतद-
 स्यामाप्रियामग्नेर्लिङ्गमस्ति न त्वग्निशब्दः । अतोऽस्यासामान्नानम् । पौनरु-
 क्यदोषाच्च । तदिध्वशब्देऽपि समानमिति चेत्तदपि ह्याप्रियां नास्तीति ।
 न । प्रैपिके सामान्नानाक्रियाविशेषितत्वाच्च । अग्नितस्तेनेध्माभिधानेनेज्यत
 इति इध्वशब्दः समाप्नातो नाग्निशब्द इति । सर्वत्र शाकपूणोरेवमाप्रीष्व-
 ण्यर्थान्यभिधानानि ।

२०

१ क. १०. घ. झ. ट. ठ. ड. °तानामग्निना सं; च. तानां √ सं° अग्निना. २५
 २ ग. ज. °दायोपक्षयमि°. ३ ग. ज. °भृष्टिहौत्रे°. ४ ग. च. ज. °त्काथक्यो;
 घ. झ. ट. °त्कच्छभयो°. ५ ग. च. ज. °किंवां त्व°. ६ ग. ज. झ. यस्क°. ७ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °देवाभितम्. ८ च. आग्नेया √ तु° इति. ९ ग. ज. ठ.
 ड. °म्नातं; च. म्नातं पौन° नं. १० च. ट. तदिध्व°. ११ च. ट. तदपि°.
 १२ ग. ज. °म्नानात् । विशिषित°. १३ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड.
 °त्वाच्च आहूय (ग. च. आहूय) चास्माकं देवान्यज चेति । स एषोऽग्निः स-
 मिक्कलापमिध्ममात्मन्वेनाभिसंपन्नस्तदाख्यतामुपगतस्तना°; च. आग्नेतः° 'आहूय०
 मुपगतः' अयं पाठः पत्रस्थः परितनभागे लिख्यते.

३३

शाकपूणिपक्षे मन्त्रयोजना । हे भगवन्नग्ने समिद्धः यस्त्वं संदीप्तः
अथ अस्मिन्नहनि मनुषो मनुष्यस्य दुरोणे यज्ञगृहे देवो दाता दीपनः
शाकपूणिपक्षे
५ मन्त्रार्थः
घातनो वा देवान् दान् दीप्तान् वा यजसि
जातभेदः हविषा यजमानानां जातप्रज्ञानः स
त्वमस्माकमपि हे मित्रमहं मित्राणामुपकारप्रवृत्त
चिकित्वान् जानानः स्वमधिकारमाह्वय देव न्यजंति । क्रिमित्येवं ब्रूमहे ।
यस्मात्त्वमेव दृतः सर्वयजमानानां भवसि कविः क्रान्तदर्शनः प्रचेताः
प्रवृद्धप्रज्ञान इति ।

१० 'तनूनपात्' (निरु० ५ । २ । ३) इति निर्वक्तव्यम् । तत्पुन-
रेतत् 'आज्यम्' इति काथक्यः । 'अग्निरिति शाकपूणिः' । यथा ताव-
दाज्यं तथा निरुच्यते । 'नपादिति अननन्तरायाः
तनूनपात् आज्य-
मिति काथक्यः
प्रजायाः' एतत् 'नामधेयम्' । या पितुरन-
न्तरा पुत्राख्या सा । अननन्तरा पौत्राख्येत्यर्थः ।

१५ किं कारणम् । सा हि 'निर्णततमः भवति' । पुत्रस्तावत्पितुर्नोचैर्नतो
भवति । ततोऽपि नीचैर्नततमः पौत्रः । तत्रैतस्मिन्पक्षे यः 'तनू'शब्दः
पूर्वपदं तनूनपाच्छब्दस्य तेन 'गौरुच्यते' । कस्मात् । 'तता अस्यां
भोगाः' क्षीरद्वयादयः । ततः किम् । 'तस्याः पयो जायते' । तस्याः
पुत्रः । 'पयस आज्यं जायते' । तस्मात्तस्याः पौत्रः । एवं तन्वाख्याया
नपात् आज्यम् । तस्मात्तनूनपात् ।

२० अग्निपक्षे 'आपोऽत्र' अस्मिन्नग्नेस्तनूनपात्त्वे 'तन्व उच्यन्ते' । ताः
अग्निरिति शाकपूणिः कस्मात् । 'तता अन्तरीक्षे' । ततः किम् ।
'ताभ्य ओपधिव्रनस्पतयो जायन्ते । ओपधि-
वनस्पतिभ्य एष जायते' । तस्माद्यमपां पौत्रः । 'तस्य' तनूनपातः
आज्यस्य अग्नेर्वा प्राधान्यस्तुतिः 'एषा भवति' ॥ ५ ॥

२५ १ च. 'हनि' मनुष्यस्य मनुषां. २ ग. ज. 'वा' नपस्ति; च. 'तनो' देवां
वा ३ क. ख. व. झ. ट. 'ज्ञानस'. ४ ग. च. ज. 'महमि'. ५ ग. च. ज.
काथक्यो; घ. झ. ट. काळक्यो. ६ क. ख. सा भवति । अननन्तः; ग. ज.
'ख्या तस्यानन्तरा पौ'; व. झ. ट. ठ. ड. सा भवति । अनन्तरा. ७ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. 'ति । कथम् । पुत्र'; च. 'ति । 'पुत्र' कथम् । ८ क. ख. घ.
झ. ट. ठ. ड. सा कस्मात्; च. 'च्यते । 'क. सा. ९ क. ख. व. झ. ट. ठ.
ड. पुत्रः पयः; च. पुत्रः । पयसः पयः. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
गोस्तन्वा'; च. 'एवं' तन्वा' गोः. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. एषोऽग्निर्जा';
च. एष' जा' अग्निः. १२ क. ख. २ (५); ग. ६; ठ. ड. 'वति । इति निरुक्ती-

३४ क्रियासुत्तरपटके द्वितीयाध्याये पञ्चमः खण्डः.

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
 मन्मानि धीभिरुत यज्ञमन्धन्देवत्रा च कृणुष्वध्वरंनः (ऋ० सं०
 १०। ११०। २) ॥ तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्यज्ञस्य यानान्म-
 धुना समञ्जन्त्स्वदय फल्याणजिह्व मर्ननानि च नो धीभिर्यज्ञं च
 समर्धय देवान्नो यज्ञं गमय नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यो नरा ५
 अस्मिन्नासीनाः शंसन्त्यग्निरिति शाकपूणिर्नरैः प्रशस्यो भवति
 तस्यैषा भवति ॥ ६ ॥

‘तनूनपात्पथ ऋतस्य’ इति । हे तनूनपात् आज्य त्वमुच्यते ।
 एतान् पथो मार्गान् सर्वान् ऋतस्य यज्ञस्य यानान् । हवीषि यज्ञे यान्ति १०
 अस्यामृचि तनून- उत्सर्पन्ति । मध्वा मधुरेण स्वादेन समञ्जन् संघ्न-
 पात्संबोधयेते क्षयन् स्वदय स्वादुतामापादय हे सुजिह्व
 जिह्वया हित । एवं कुर्वन् मन्मानि यानि
 वैयं मन्यामहेऽर्धवस्तूनि ध्रुवाण्येतानि नै स्युरिति तानि तानि धीभिः
 श्वैः कर्मभिः अभिघारणाळंकरणोपस्तरणादिभिः ऋध्वन् संसाधयन् १५
 स्वगुणैरुपकुर्वन् समर्धय । संपादयेन्नपि चैतं यज्ञं समर्धय संपादय । या
 काचिदापद्रुःपद्यते यज्ञस्य तां प्रायश्चित्तेनाङ्गभावमुपगच्छन् गमय देवत्रा
 देवान् प्रति । स्विष्टमध्वरमस्माकं च कुरुष्वेत्यर्थः । एतदाशास्महे त्वत्तः ।

१ छ. मन्मानि. २ छ. नारा०. ३ छ. द. काच्छक्यो; त. काच्छक्यो
 थ. ४ क. ख. ३ (६); छ. ७; त. द. ३. ५ ग. ‘स्येति । हे’ २०
 ६ ग. झ. यासि०; घ. ठ. ड. न. यानि०; ट. यानि० यानि. ७ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. तानि मध्वा; च. ‘न्ति । मध्वा० तानि. ८ क. ख.
 संस्र; ग. न. घ. झ. ट. ठ. ड. सप्रस्र०. ९ च. ट. जिह्वैयां व्हायां; ठ. ड.
 जिह्वायं. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. एतदेवं; च. ए० वं तद्दे. ११ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. मन्मानि मनन नि या०; च. मन्मानि यया० मननानि. १२ क.
 ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यानि च वयं; च. यानि य वं च. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 नः; च. नै स्युं नः. १४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तानि स्वाभिः धीभिः; च. तानि
 तानि. १५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘समर्धय संपादय । अपि०. १६ क. ख.
 घ. झ. ट. ड. चैवं कुर्वन्तं यः; च. चै० तं वं कुर्वन्ने.
 १४

‘ अग्निरिति शाकपूणिः ’ । हे भगवन्नमे तन्नपात् त्वम् एतान्

शाकपूणिमते
मन्त्रार्थः

पथः ऋतस्य यज्ञस्य यानान् हवींषि मध्वा
मधुरेण पाककृतेन रसेन समञ्जन् समभिवञ्ज-
यन् स्वदय मृष्टीशुरु हे सुजिह्व स्वर्चिः अथवा हे

५ सुवाक् । एतान्येवं कुर्यन्नस्मदभिमतान्यर्थवस्तूनि नः संसाधयन् यज्ञम् ऋन्धन्
समर्भयन् स्वसामर्थ्याच्च देवत्रा देवप्रविष्टं कुर्वित्येतदाशास्महे वयं त्वत्त इति ।

‘ नराशंसः (४) यज्ञ इति कात्थक्यः ’ । कस्मात् । ‘ नराः अस्मि-

१० नराशंसो यज्ञ इति
कात्थक्यः

न्नासीनाः शसन्ति ’ । नरशब्दः पूर्वपदम् ।
आसेर्निष्ठान्तस्य मध्यम् । शंसतेरुत्तरपदम् । अथ
कात्थक्यः । नराः मनुष्याः अस्मिन्नासीना उप-

विष्टाः शंसन्ति इति नराशंसः । ‘ अग्निरिति शाकपूणिः ’ । स कस्मात् ।

अग्निरिति शाकपूणिः

‘ नरैः प्रस्यः ’ स्तुत्यो ‘ भवति ’ । ‘ तस्य ’
नराशंसस्य ‘ एषा भवति ’ प्राधान्यस्तुतिः ॥ ६ ॥

१५ नराशंसस्य महिमानमेपामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये
सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या
(ऋ० सं० ७ । २ । २) ॥ नराशंसस्य महिमानमेपामुपस्तुमो
यज्ञियस्य यज्ञैर्मे सुकर्मणः शुचयो धियं धारयितारः स्वदयन्तु
देवा उभयानि हवींषि सोमं चेताराणि चेति वा तान्त्राणि
२० चावापिकानि चेति वेळं ईद्रेः स्तुतिकर्मण इन्धतेर्वा तस्थैषा
भवति ॥ ७ ॥

१ ग. ज. प्रतिष्ठं. २ ग. च. ज. काथक्यः; व. झ. ट. कात्थक्यः. ३ क. स्व.
३ (३); ग. ७; ठ. ड. ‘स्तुतिः’ इति निरुक्तटीकायामुत्तरपदके द्वितीयाध्याये
(ठ. द्वि०) षष्ठः खण्डः; च. वर्जितेष्वङ्गो नास्ति. ४ क. स्व. छ. त. द. वेळ इ°.

२६ ५ क. स्व. ४ (५); छ. ८; त. द. ४.

‘ नराशंसस्य महिमानभेषाम् ’ इति । वर्तमान एव कर्मणि ब्रवीति ।

यज्ञः इति मते योऽयमेवामभिमतफलदाता नराणां नराशंसो
मन्त्रधोजना यज्ञो द्रव्यदेवत त्यागः स्वकः प्रयोगस्तस्याधिष्ठाता ।
तद्भवन्मौ देवताविशेषे जगदुत्पत्त्यनुग्रहवर्जजम् ।

नराशंसस्य वयम् उपस्तुमः उपगम्य चेतसा महिमानं महाभाग्यं

विभृतिं स्तुमः अभिर्कीर्तयामः यजतस्य यज्ञियस्य यजनस्थे संपादयितुः

प्रथोक्तुरभिमतफलसंपादयितुः यज्ञैः कर्मभिः युक्ता उपस्तुमः । तदेवमेत-

स्मिन्नुपस्थितमहिम्नि नराशंसे यज्ञे किमप्यस्वित्याशास्महे । ये सुकृतयः

सुकृतकर्माणो जगदनुग्रहप्रवृत्ताः शुचयः निर्णिकृतरपापाः धियंधाः

स्वाधिकारयुक्तानां कर्मणाम् अनुविधारयितारः प्रज्ञानां वा । एवमादिगुर्णा

उभयानि हर्षाणि देवाः स्वदन्ति आश्वाद्यन्तुं एतानि हर्षाणि

सोमं चेतराणि च । उभयानि । यदि सौमिकः पशुस्ततः ‘ सामं

अथवा तान्त्राणि अ- चेतराणि ’ च पशुपुरोडाशधानापभृतीनि ।

वापिकानि च अथ पृथक्सोमात् ‘ तान्त्राणि प्रयाजाज्यभाग-

स्विष्टकृतप्रभृतीनि ‘ आवापिकानि च ’ प्रवान-

हर्षाणि । इत्येतदाशास्महे ।

‘ अग्निरिति शाकपूणिः ’ । योऽयमेवामभिमतोपकारकारी नराणां

अग्निरिति मते प्रशस्यो नराशंसोऽग्नस्तस्य वयम् उपस्तुमः

महिमानं यजतस्य यज्ञसंपादयितुः यज्ञैः कर्मभिः

दैनैर्वा युक्ताः । तस्मिन्नुपस्तुतमहिम्नि नराशंसेऽग्नौ हुतानि ये सुकृ-

तयो देवाः शुचयो धियंधाः ते एतानि उभयानि हर्षाभ्यास्वाद्यन्त्वि-

त्येतदाशास्महे ।

१ ग. इति^३ । वर्त^० । २ ग. ज. चेतस्य; ठ. चेतसा चेतस्य. ३ ग. च. ज.

झ. महा^०. ४ ग. ज. विभृतीः; च. विभृतिः स्तु^० ति. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ.

ड. यजनसंपा^०; च. यजनस्थ^०. ६ च. ट. तदेव^० अत ए. ७ ग. ज. ‘मुपस्तुतः; २५

च. ट. ‘मृपास्थत^० स्तु. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘गुणयुक्तादे^०; च. ‘गुणो^०

णयुक्ता. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. देवास्ते स्व^०; ग. ज. स्वदन्त्वास्वा^०; च.

देवाः स्व^० ते. १० च. दयन्ति. ११ क. ख. ग. च. ज. झ. ‘ च ’ नास्ति.

१२ ग. ज. नारा^०; च. नारा^० न. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. उपस्तोषाम

उपस्तुमः; च उप^०स्तुमः स्तोषाम उप. १४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. संयुक्ताः;

च. युक्ताः सं. १५ ग. ज. ‘स्तुते म’.

‘ईळः’ (५) अग्निः । स पुनरयम् ‘ईष्टः स्तुतिकर्मणः’ (धा० २ ।
 इळशब्दस्य व्युत्पत्तिः ९) । स्तुयते ह्यसौ । ‘इन्धतेर्वा’ दीपना-
 र्थस्य (धा० ७ । ११) । तत्क्रियायुक्तो
 ह्यसौ । ‘तस्यैषा’ प्राधान्यस्तुतिः ‘भवति’ ॥ ७ ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा यां ह्यग्रे वसुभिः सजोषाः । त्वं
 देवानामसि यद्द होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् (ऋ० सं०
 १० । ११० । ३) ॥ आहूयमान ईळितव्यो वन्दितव्यश्चायाह्यग्रे
 वसुभिः सहजोषणस्त्वं देवानामसि यद्द होता यद्द इति महतो
 १० नामधेयं यातश्च हूतश्च भवति । स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ।
 इषितः प्रेषित इति वाधीष्ट इति वा यजीयान्यष्टररो वर्हिः परि-
 बर्हणात्तस्यैषा भवति ॥ ८ ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चेति । हे भगवन्नग्रे यस्त्वम् ईड्यो वन्द्यश्च
 सर्वलोकस्य । ईड्यो दीपनाहो हविर्भिराज्या
 १५ इळः दिभिः । वन्द्यः स्तुत्यः । स त्वम् आजुह्वानः
 आहूयमानः एतस्मिन्कर्मण्यस्माभिः वसुभिः सहजोषणः समानप्रतिभूत्वा
 आयाहि । कस्मात्पुनरेवं ब्रूमे । इतः यस्मात् हे यद्द महन् त्वमसि होता
 देवानाम् आह्वाता । सः त्वमस्माभिः इषितः प्रेषितः अधीष्टे वा
 २० अधीषितो होतृत्वे स्थित्वा अस्माकम् एतान् देवान् यक्षि यर्ज । किमिदं
 ब्रूमे । यस्मात् यजीयान् असि । यजीयान् यष्टररो मनुष्यहोतुरिति ।
 इह ‘इडः’ इत्येकवचमग्रेरव्यवधानेन । तथैतस्मिन्मन्त्रे एकस्य
 श्रुतत्वात् । ऐष्टिके पुनर्हन्त्रि ‘इडो अग्न
 २५ ‘इडः’ इत्ये- आज्यस्य व्यन्तु’ (आश्व० श्रौ० १ । ५)
 कचनमग्रयमिप्रायम् इति बहुवचनयुक्तादाख्याताद् ‘व्यन्तु’ इत्येतस्मात्

१ क. ख. ग. च. ज. घ. झ. इलोऽग्निः. २ क. ख. (७); ग. ८; ठ.
 ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के द्वितीयाध्याये सप्तमः खण्डः (ड.
 षट्के २ ध्या ७ खण्डः); च. वर्जमितरेण्यङ्गो नास्ति. ३ क. ख. छ. त. व.
 ईळित°. ४ क. ख. ५ (८); छ. ९; त. व. ५ ग. °श्चेति । हे’; ठ. ड.
 आजुह्वान इति. ६ ग. ज. दीपनादाज्यहविरादिभिः । व°; ठ. ड. दीपनादेर्द-
 विभि°. ७ क. ख. घ. ट. एनान्. ८ क. ख. घ. झ. ठ. °यज इत्येवं ब्रूमे ।
 ३२ किं; च. °यज च । किं इत्येवं ब्रूमे.

‘ इळः ’ इत्येतस्यापि बहुवचनत्वमेव ‘ इडो व्यन्तु ’ इति । तच्च पुनरन्नाभिधानम् । अन्नं च पुनरोषधय एव । ऐष्टिके होत्रे तु ताश्च पृथिवीस्थानाः इत्यग्निं भजन्ते । तदात्मनायमाग्निरिज्यत इति । तत्र बहुवचनं प्रति समाधानमोपध्यात्मनाग्नेर्व्यवधानात् । उक्तं च ‘ योऽयमृत्वासे पृथिव्यामग्निरन्तरौपधिवनस्पतिष्वप्सु तमुन्नियथुः सर्वगणं सर्वनामानम् ’ (निरु० ६ । ३६) इति तस्माद्बुपपद्यत इति ।

‘ बर्हिः ’ (६) इति वैक्तव्यम् । तत्पुनरेतत्प्रसिद्धमेव कुशमयं यज्ञाङ्गम् । तत्कस्माद्बर्हिरेत्युच्यते । ‘ परिबर्हणात् ’ परिच्छेदनात् । लूनं हि तद्भवति परिवृद्धं वा । ‘ तस्यैषा ’ बर्हिषः बर्हिःशब्दस्य व्युत्पत्तिः प्राधान्यस्तुतिः ‘ भवति ’ ॥ ८ ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्ने अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् (ऋ० सं० १० । ११० । ४) ॥ प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वसनायास्याः प्रवृज्यतेऽग्नेऽह्नां बर्हिः पूर्वाह्ने तद्विप्रथते वितरं त्रितीर्णतरमिति वा विस्तीर्णतरमिति वा वरीयो वरतरमु-रुतरं वा देवेभ्यश्चादितये च स्योनं स्योनमिति सुखनाम स्यतेरवस्यन्त्येतत्सेवितव्यं भवतीति वा द्वारो जवतेर्वा द्रवतेर्वा वारयतेर्वा तासाभेपा भवति ॥ ९ ॥

प्राचीनं बर्हिरेति । प्राच्यां दिशि यदश्चितं गतं जातं प्रागग्रं वा यस्तीर्यते तद्भवति प्राचीनम् । किं पुनस्तत् । बर्हिः । प्रवृज्यते प्रच्छिद्यते लूयते । अथवा । प्रवृज्यते प्रस्तीर्यते । किं पुनरेव स्वमनीषिकया । नेत्युच्यते । प्रदिशा

१ क. ख. ग. च. ज. घ. झ. इल इ°. २ च. ज. ठ. ड. °न्तरोष°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. निर्वक्तव्यं. ४ क. ख. ५ (८); ग. ९; ठ. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपत्रके द्वितीयाध्याये अष्टमः खण्डः (२. °उत्तरपत्रके दि. ७ खण्डः); च. वर्जनितेरव्यङ्गो नास्ति. ५ क. ख. छ. त. °ज्यते अंग्र अह्नां; ठ. द. °ज्येऽग्ने अह्नां. ६ क. ख. छ. त. द. विकीर्ण°. ७ क. ख. ६ (५); छ. १०; त. द. ६. ८ ग. °तिने । प्रा°. ९ क. ख. घ. झ. ट. °रेवमेव स्व°; च °रेव °स्व° भव.

- विधिवाक्येन । ' प्रागुदग्वा बर्हिश्छिनत्ति ' । तत्सामर्थ्यात् । अथवा ।
 प्रदिशा मन्त्रेण ' देवस्य त्वा ' (मैत्रा० सं० १ । १ । २) इत्यनेन ।
 स्तरणपक्षेऽपि ' प्राचीनं बर्हिः स्तृणाति ' इति विधिवाक्यम् । ' ऊर्ण-
 म्रदा वि प्रथस्व ' (ऋ० सं० ५ । ५ । ४) इति मन्त्रः । किमर्थं पुन-
 ५ स्तःप्रवृज्यते । पृथिव्याः वस्तोरस्याः । पृथिवी वेदिः । तस्याः वस्तोः वस-
 नाय आच्छादनाय । कदा पुनस्तत्प्रवृज्यते । अग्रे अह्नां पूर्वाह्ने । तदा हि
 प्रशस्यते दर्भस्तरणं लवनं वा । तत्प्रवृक्तं प्रस्तीर्यमाणं वा यथाकालं
 विविधं प्रथते चितरं विस्तीर्णादपि विस्तीर्णतरं वरीयो वरतरम् अन्येभ्यो
 यज्ञाङ्गैः श्रेष्ठतरं तदाधारत्वाद्धविषाम् । उरुतरं बहुतरं वा । किमर्थं
 १० पुनस्तत्प्रवृज्यते विप्रथते वा । देवेभ्यश्च अदितये च कथं नाम स्योऽनं
 सुखं स्यादिति । बर्हिषा हि सगुणीकृतात्कर्मणो देवानां हविर्दानुणां
 यजमानानामभीप्सितेन फलेन वा योगो भवति तत्सुखम् । अदितये पृथिव्यै
 बर्हिषा वा सगुणीकृतात्कर्मण आहुतिद्वारेण वृष्टिर्भवति, तत ओषधिप्ररोह-
 स्तःसुखम् ।
- १५ नात्र ब्रवीत्यग्निरिति । तेन यज्ञाङ्गमेव । अभिमतमेतद्विदमन्वस्याचार्यस्यै ।
 तद्द्वारेणैव व्यवधानेनाग्निः स्तूयते पृथिव्यापतन-
 बर्हिरिति यज्ञाङ्ग- त्वात्तस्य । अपरे पुनरग्निवदपि योजयन्ति मन्त्रा-
 मेव नाग्निः र्थदशः । तत्पक्षे बर्हिरित्यन्यभिधानम् । प्राग्-
 ङ्च्यते प्रणीयत इति प्राचीनम् । बर्हिः प्रवृद्धमाहवनीयाख्य उयोतिः प्रवृ-
 ज्यते प्रणीयते । तत्पुनः प्रदिशा वचनेन
 २० केपांचिन्मते बर्हि- ज्यते प्रणीयते । तत्पुनः प्रदिशा वचनेन
 रित्यग्निः । तदायं म- ' प्राञ्चमुद्धरन्ति ' इति । पृथिव्या वस्तोर्वस-
 ञ्चार्यः नाय । अग्निनैव हि वेदिरनग्निका भवति । अग्रे
 अह्नां पूर्वाह्ने । तत् विविधं प्रथते सामिधेनीप्रक्षे-
 पात् । आज्यभागाधारादिषु च विस्तीर्णतरं विक्षिप्ततरं प्रथते । वरीयो
- २५ १ ग. ज. बर्हिं छिन्नः; च. बर्हिं छिन्नपि तैत्साँ' चीति सां. २ क. ख. घ.
 ट ठ. ड. प्रस्तरणमन्त्रेण; च. 'दिशा ५ मं' प्रस्तर. ३ म. ज. ' पृथिवी वेदिः '
 नास्ति. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कदा च पुं. ५ क. ख. ग. ज. घ. ट.
 ठ. ड. प्रथते विस्तीर्यते देवां छाद्यमानायां प्रवृज्यमानं वा प्रस्तीर्यमाणं विप्रथते ।
 चितरं ; च. विथं ५ प्रं वि ६ ठ. विस्तीर्णः; ड. वितीर्णः. ७ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. ' वा ' नास्ति; च. वाँ. ८ क. ख. हि; च. ट वाँ ५ सँ हि. ९ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. ' र्थस्य च तं'; च. ' र्थस्य ५ तं' च. १० क. ख. ग. ज. ठ.
 णगुच्यते; घ. झ. ट. ड. प्रगच्यते. ११ ग. ज. अग्निनैव बर्हिर्वेदि'; व. झ. ट.
 ३३ ठ. ' हि ' नास्ति.

वरतरमन्येभ्यो ज्योतिर्भ्यः । उरुतरं वा महत्तरं देवेभ्यो यजमानेभ्य इत-
रेभ्यो वा अदितये पृथिव्यै कथं नाम स्योनं स्यादिति ।

स्योनमिति मुखनाम । 'स्यतेः' धातेरवपूर्वात् । तदेव हि 'अवस्यन्ति'
निवसन्ति प्राणिनः । 'सेवितव्यं भवतीति वा' । तद्धि सर्वस्य सेवनाहं
भवति । 'द्वारः' (७) इति निर्धक्तव्यम् । ताः पुनरेताः 'जवतेर्वा' ।

द्वारः इत्यस्य व्यु- जवन्ति हि ताभिः । 'द्रवतेर्वा' । धात्वन्य-
त्पत्तिः त्वमर्थकत्वम् । 'वारयतेर्वा' । वारणार्था हि
द्वारादेव निवार्यन्ते । 'तासांभेषा' प्राधान्यस्तुतिः

'भवति' ॥ ९ ॥

व्यचस्वतीरुर्विधा विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुभ्रमानाः ।
देवीद्वारो बृहतीविश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः (ऋ० सं०

१० । ११० । ५) व्यञ्जनवत्य उरुत्वेन विश्रयन्तां पतिभ्य
इव जाया ऊरू भैथुने धर्मे शुशोभिषमाणा वरतममङ्गमूरू देव्यो
द्वारो बृहत्या महत्या विश्वमिन्वा विश्वमाभिरेति यज्ञे गृहद्वार
इति कात्थक्योऽग्निरिति शाकपूणिरुपासानक्तोपाश्च नक्ता चोपा
व्याख्याता नक्तेति रात्रिनामानक्ति भूतान्यवश्यायेनापि वा
नक्ताव्यक्तवर्णा तयोरेषा भवति ॥ १० ॥

व्यचस्वतीरिति । या एता विविधेनाञ्चनेन गमनेन युज्यन्ते व्यच-
स्वतीः ताः । किं कुर्वन्तु । उर्विधा उरुत्वेन
यज्ञे गृहद्वार इति महत्त्वेन विश्रयन्तां विप्रियन्ताम् । कथम् ।
कात्थक्यः पतिभ्यो न जनयः । पतिभ्य इव जाया
ऊरू भैथुने धर्मे विवृण्वन्ति शोभयितुमिच्छमानाः प्रहर्षात् । एवं

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'वा' नास्ति. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°तरं वा दे°. च. °तरं ° दे° वा. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °तथे च १°; च.
तथे ° १° च. ४ क. ख. अवस्यन्ति व्यवस्यन्ति निव°; च. निवसन्ति° व्यवस्य.
५ क. °व्यम् । यज्ञे गृहद्वार इति कात्थक्यः । ताः; च. °व्यम् । ताः° यज्ञे गृहद्वार
इति काच्छक्यः. ६ क. ख. ६ (९); ग. १०; ठ. ड. °वति । इति निरुक्तटीका-
यामुत्तरपटके द्वितीयाध्याये नवमः सूत्रः. ७ छ. त. द. काच्छक्यो°. ८ क.
ख. ७ (१०); छ. ११; त. द. ७. ९ ग. 'रिति' । या°. १० च. उरुत्वेन°
विश्र° महत्त्वेन; झ. 'महत्त्वेन' नास्ति. ११ ग. विप्रिय°; ज. विप्रय°; झ. विप्रय;
ठ. °श्रयन्तां विविधमाश्रिता भवन्तु । कथं°; ड. विप्रयन्तां विविधमाश्रिता भवन्तु ।
कथं°. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. जायाः । तथा पतिभ्यो ज्याया ऊरू°; च.
जाया° ऊ° यथा पतिभ्यो जाया.

विश्रयन्ताम् । इदानीमुत्तरोऽर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । या यूयं व्यञ्जनवत्य एवं
विश्रयन्ते तौ वो ब्रवीमि हे देव्यो दानक्रियाहेतुभूता द्वारो बृहत्या महत्यो
विश्वमिन्वाः विश्वं सर्वम् आभिः एति यज्ञे उपकरणमिति विश्वमिन्वाः ।
यूयमुच्यन्ते । एतेभ्यो देवेभ्यो हावेदोतुभ्यः ऋत्विग्भ्यो यजमानभ्य इत-
रेभ्यो वा सुप्रायणाः सुप्रगमनाः भवतेत्येतदाशास्महे ।

५

‘ अग्निरिति शाकपृणिः ’ । तत्पक्षे योजना । अग्न्यर्चिषो द्वारो
जवनाद् द्रवणाद्वा । हविर्वा । ताभिर्जवति
अग्निरिति शाक-
पृणिः द्रवति वारयन्ति वा रक्षःप्रभृतीनीति द्वारः ।
व्यचस्वतीः या एता विविधेनाञ्जनेन तद्वत्यः ।

१०

अग्न्यर्चिषस्ता उरुत्वेन विश्रयन्ताम् । कथम् । पतिभ्य इव जाया ऊर्कमै-
धुने धर्मं शोभयितुमिच्छमानाः । या यूयं विविधेनाञ्जनेन तद्वत्यः याश्चैवं
विश्रयन्ते तौ वो ब्रवीमि । हे देव्यो बृहत्या विश्वमिन्वाः सर्वं हविर्याभि-
र्जवति ता यूयमस्य हविषः सुप्रायणाः सुप्रगमनाः भवतेति ।

१५

‘ उषासानक्ता ’ (८) इत्येतत्पदम् । अस्य विग्रहः ‘ उषाश्च नक्ता च ’ ।
‘ उषा व्याख्याता ’ ‘ उच्छतीति सत्याः ’
उषःशब्दस्य व्यु-
त्पत्तिः (निरु० २ । १८) इति । ‘ नक्तेति ’ रात्रि-
नम । तत्कारणात् । ‘ अनक्ति ’ क्लेदयति
भूतानि अवश्यायेन । अवश्यमेता आयन्तीत्यवश्यायाः प्रुष्याः । अनक्ते-

२०

नक्तशब्दस्य च
रकारलोपे नक्ता । ‘ अपि वा नक्ता अव्यक्त-
वर्णा ’ । नकारः प्रतिषेधः । न अक्ता न व्यक्ता
अनक्ता । यथा अहः सर्वमभिव्यक्तरूपं भवति न तथा रात्रिः । ‘ तयो-
रेया ’ प्राधान्यस्तुतिः ‘ भवति ’ ॥ १० ॥

२५

१ क. ख. ग. ज. झ. °ध्वे ततो ब°; घ. ‘ यध्वः । ता°; ट. °यध्वे (ध्वः) ततो
(ता वो); च. °ध्वे ततो ब° ता वो; ठ. ड. यध्वं ततो ब°. २ ग. ज. °यज्ञशर-
णमिति; च. °यज्ञ उपकरणमिति. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. देवभ्य एतेभ्यो
ह°. ४ ग. ज. आर्चिषो. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. द्रवति वा वार°; च.
द्रवति ° वार° वा. ६ क. ख. ग. घ. झ. ट. ठ. ड. ऊरु मै°. ७ क. ख. घ.
ठ. ड. ततो ब°; च. ट. ततो ब° ता वो. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ एतत् ’
नास्ति. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °येनिति. १० च. नकारः प्रः. ११ ग.
ज. झ. °धेन । अक्ता°; च. °धेनेन । अ° । न अ. १२ क. ख. ७ (१०); ग.
११; ठ. ड. °वति । इति निरुक्तीकाया (ठ. निरु०) मुत्तरपदके द्वितीयाध्याये
२२ दशमः रूपडः; च. वर्जमितरेण्यङ्गो नास्ति.

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उपासानक्ता सदतां नियोनी ।
 दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने
 (ऋ० सं० १० । ११० । ६) ॥ सेष्मीयमाणे इति वा सुष्वा-
 पयन्त्याविति वा सीदतामिति वा न्यासीदतामिति वा यज्ञिये
 उपक्रान्ते दिव्ये योषणे बृहत्यौ महत्यौ सुरुक्मे सुरोचने अधिद-
 धाने शुक्रपेशसं श्रियं शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः पेश इति
 रूपनाम पिशतेर्विपिशितं भवति । दैव्या होतारा दैव्यौ होतारा-
 वयं चाग्निरसौ च मध्यमस्तयोरेषा भवति ॥ ११ ॥

‘आसुष्वयन्ती’ इति । आसुष्वयन्ती सेष्मीयमाणे परस्परं स्मयमाने ।

१०

उपासानक्ता

अथवा ‘सुष्वापयन्त्यौ’ सुष्टु जनान् स्वापयन्त्यौ ।
 यजते हेतुकर्तृत्वेन । यजते यज्ञिये यज्ञसंपादादिभ्यौ ।

उपाके प्रेशस्ये उपगर्भ्य इतरेतरं क्रान्ते । दिव्ये दिविजे । योषणे
 संमिश्रे परस्परतः । बृहती महत्यौ । सुरुक्मे सुरोचने दीप्ते । ये एते एव-
 मादिगुणयुक्ते उपासानक्ते अधिश्रियं श्रियम् अधिदधाने उपरि स्थापयन्त्यौ
 शुक्ररूपां श्रियम् आसीदताम् एतस्मिन् नियोनी । आकार उत्कृष्ट्यः ।
 उपसर्गस्य हि क्रियापदेन सामर्थ्यम् । न्यासीदताम् इति नियमेनासीदता-
 मिति ‘निः’ उत्तरपदस्थोऽप्यपकृष्यते तेनैव क्रियापदेन । निशब्दस्थो-
 र्त्तरपादपूरणः ।

१५

१ क. ख. ८ (११); छ. १२; त. द. ८. २ ग. इति । आ.
 ३ घ. ट. सेष्मीय°. ४ ग. ज. °यन्त्यौ बृहत्यां महत्यौ यजते°. ५ च. प्रेशस्ये.
 ६ च. °गर्भ्ये इ° म्य. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °विजे वीतने यो°; च. °विजे°
 यो° वीतने. ८ घ. झ. ट. ठ. ड. सुष्टु रोचने. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 सुदीप्ते; च. °चने दीप्ते° सु. १० ग. ज. झ. ट. ड. °श्रियम्° नास्ति; च. ट.
 °श्रियं° अधि°; श्रियं. ११ ग. ज. टाप°. १२ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 °स्मिन्त्वे योनी°; च. °स्मिन्नियोजनी° न्त्वे योनी. १३ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. उत्कृष्यते; च. उत्कृष्यते° ष्यते. १४ क. ख. घ. झ. ट. °त्तरपदो वा
 पाद°; च. °त्तर° पाद° पदो वा.

२०

न ब्रवीत्यग्निरिति येन द्वित्वानुपपत्तिरिति केचित् । अपरे पुनर्वर्णयन्ति ।
 उषा अग्नेर्दासिः । नक्ता आहुतिः । दीप्तिर्निवासयति तमः । आहुतिर्नक्ता-
 उषासानक्ता अग्नि- ज्येन । ते एते दीप्याहुती सुष्ठु स्मयमाने इव
 ५ रिति केचित् यज्ञिये यज्ञसंपादयिष्यौ उपाके उक्रान्ते परस्प-
 रतः दिव्ये द्योतने परस्परश्रयार्तुं योषणे भित्री-
 भूते बृहत्या महत्या सुरुक्मे रोचने अधिदधाने शुक्रपेशसम् एतस्मिन्यज-
 माने श्रियम् आसीदताम् एतस्मिन्नग्नौ न्यासीदतां नियमेनाधिकं वेत्येतदा-
 शास्महे ।

‘पेश इति रूपनाम पिशतेः’ धातोः । तद्धि ‘त्रिपिशितं भवति’ ।
 १० विकसितं भवति यावदाश्रयभावित्वात् । विनिहितमिति केचिदन्याश्रि-
 तत्वात् ।

‘दैव्या होतारः’ (५) इति वक्तव्यम् । ‘दैव्यौ होतारौ’ इति
 दैव्यौ होतारौ अयम- शब्दसमाधिः । ‘अयं चाग्निरसौ च मध्यमः’
 १५ अग्निरसौ च मध्यमः इत्यभिधेयवचनम् । तयोरेषा प्राधान्यस्तुतिः
 ‘भवति’ ॥ ११ ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा भिमाना यज्ञं मनुषो यजन्धै ।
 प्रचोदयन्ता बिदथेषु कारु प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता (ऋ०
 सं० १०।११०।७) ॥ दैव्यौ होतारौ प्रथमौ सुवाचौ निर्मिमानौ यज्ञं
 २० मनुष्यस्य मनुष्यस्य यजनाय प्रचोदयमानौ यज्ञेषु कर्तारौ पूर्वस्यां
 दिशि यष्टव्यमिति प्रदिशन्तौ तिस्रो देवीस्तिस्रो देव्यस्तासामेषा
 भवति ॥ १२ ॥

१ घ. झ. ट. ठ. ड. पुनर्वर्णयन्त्यपरे. २ क. ख. आहुतिरनक्त्याज्येन; घ.
 २५ आहुति अग्निं नक्त्याज्येन अग्निं ते एते°; च. आहुति नैकाज्येनै रनक्त्याज्येन
 अग्निं; २. आहुति नैक्याज्येनै रनक्त्याज्येन अग्निं; ठ. ड. आहुति अग्निमनक्त्या-
 ज्येन. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इव यजते य°; च. इव य° यजते. ४ च.
 °अथा योषणं मि° णौ. ५ घ. झ. ट. शुक्रपेशसं; च. शुक्रपेश यं स.
 ६ क. ख. ८ (११); ग. १२; ठ. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरष-
 टके द्वितीयाध्याये एकादशः खण्डः (ड. २ ध्याये १२ खण्डः); च. वर्जमितरेष्वङ्गो
 ११ नास्ति. ७ क. ख. ९ (१२); छ. १३; त. द. ९.

दैव्या होतारति । यावेतौ दैव्यौ होतारौ । देवेषु भवौ दैव्यौ । देवावेव वा

दैव्यौ होतारौ दैव्याविति स्वार्थे एव तद्धितः । मनुष्यहो-
तारौ होतृभैत्रावरुणावपेक्ष्य । दैव्यौ होताराविति

विशेषणम् । कौ पुनस्तौ । होतारौ आह्वतारौ देवानाम् । वाध्वग्री ।

किलक्षणौ । प्रथमौ मुख्यौ मनुष्यहोतारावपेक्ष्य सुवाचौ पशस्तद्वाचौ

सुस्तुती मिमाना यज्ञं यज्ञमिर्मातारौ नित्यं मनुषो मनुष्यस्य यजध्वे

यजनाय प्रचोदयन्तौ प्रचोदयमानौ विदधेषु यज्ञेषु कारू कर्तारौ

ऋषिजौ । नानग्निंको यज्ञोऽस्तीत्यग्निर्निर्मिमीते । न चासावनुपध्मातो

वायुना ज्वलतीति वायुर्निर्मिमीते । विज्ञायते हि ' तस्मादेष नानुपध्मातो

ज्वलति ' (शत० ब्रा० ११।८।३।७) इति । स एष भैत्रावरुणो वायु-

रग्नेर्होतृवदधियज्ञे वर्तमानस्य नित्यं चोदयिता तन्मूलत्वाच्च यज्ञकर्मणः ।

तावेव देवानामाह्वतारानुच्येते । यावेतावेवं प्रचोदयन्तौ विदधेषु यज्ञेषु

कारू कर्तारौ मनुष्यहोतुरनुग्रहस्य नित्यं स्वाधिकारकर्मानुग्रहसंनिधानात्

यत्प्राचां दिशि ज्योतिराहवनीयाख्यं प्रणीयते प्रदिशा मन्त्रेण

' प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि ' इति । अनेन विधिवाक्यप्रदेशेन वा ' प्राञ्चमुद्ध-

रन्ति ' (भैत्रा० सं० १।६।५) इति । एतत्प्रणीय नित्यं यष्टव्यमित्ये-

वमर्थं प्रदिशन्तौ आज्ञापयन्ताविव यौ नित्यमवियोगेन स्वभावतो यज्ञो-

पकारे वर्तमानौ तौ मामप्येवं वर्ततामित्येवमाख्यातमध्याहृत्य समाप्यते

निराख्यातत्वान्मन्त्रस्य ।

' तिस्रो देवीः ' (१०) इति पदम् । ताः पुनरेताः ' तिस्रः एव २०

१ च. दैव्यौ हो० व्या; ज. दैव्यौ हो. २ ग. 'ताराविति' । या०; च. ज.

'ताराविति । या०. ३ च. दैव्यौ. ४ क. ख. च. झ. दैव्यां. ५ ग. ज. 'होता-

रावपेक्ष्य दैव्यौ होतारौ होतृभैत्रावरुणौ विशेषणम्; च. 'होतारावपेक्ष्य दैव्यौ

होतारौ (इति) होतृभैत्रावरुणौ विशेषणम्. ६ ठ. ड. सुस्तुती. ७ क. ख. घ. ङ.

ट. ठ. ड. 'यन्ता. ८ ग. ज. 'धानात् आदृती; घ. 'धानायिदेतत्वा'; च.

'धावृद्वैधात् । य०; ट. 'धाना + य० दानाती; ठ. ड. 'धाना । य०. ९ क. ख.

घ. ट. ठ. ड. यदेतत्वा'; च. य + त्वा० देत. १० ग. ज. प्रहीति; च. प्रही० प्रे.

११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'शेनभेन वा'; च. 'शेनं वा' नानेन.

देव्यः । प्रथमेया ताः निराह । तिस्र इति देवीशब्दस्य विशेषणम् ।
 'तोसामेषा भवति' प्राधान्यस्तुतिः ॥ १२ ॥

- आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळां मनुष्यदिह चेतयन्ती ।
 ५ तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपंसः सदन्तु (ऋ० सं०-
 १०।११०।८) ॥ ऐतु नो यज्ञं भारती क्षिप्रं भरत आदित्यस्तस्य
 भा इडां च मनुष्यवदिह चेतयमाना तिस्रो देव्यो बर्हिरेदं सुखं
 सरस्वती च सुकर्माण आसीदन्तु त्वष्टा तूर्णमश्रुत इति नैरुक्ता-
 स्त्विषेर्वा स्याद्दीप्तिकर्मणस्त्वक्षनेर्वा स्यात्करोतिकर्मणस्तस्यैषा
 १० भवति ॥ १३ ॥

- 'आ नो यज्ञं भारती' इति । आभिमुख्येनास्माकं यज्ञमागच्छतु । का
 पुनरसाविति । भारती । भरत आदित्यः सर्वभूतान्युदकेन विभर्तीति ।
 १५ तिस्रो देव्यः तस्य स्वमृता भाः दीप्तिः । कथमैतु । तूयं
 क्षिप्रम् । इळां च पृथिवीस्थाना । 'इहैवेळांया
 वमुमत्या' (मैत्रा० सं० ४।१३।८) इत्यनुयाजेषु उन्नीतसामर्थ्यात्पार्थिव-
 र्थम् । तूयं मनुष्यवत् इह कर्मणि चेतयन्ती । यथा मनुष्येण मनुष्य
 आहृतो भोक्तृमविलम्बमान आगच्छेत्क्षिप्रमेवमागच्छतु सा ममेह कर्मणि

- १ च. मयै नोतिं या ता निराह । तिस्र इ. २ ग. ज. 'तिस्र इति' नास्ति.
 २० ३ च. देविशं (वी) ४ च. शब्दस्य - । तासां विशेषणम्. ५ क. ख. ९
 (१२); ग. १३; ठ. इति निरु० उ० द्विती० द्वादशः खण्डः; ड. इति निरुक्त-
 भाष्ये १३ खण्डः; च. वर्जमितरेष्वङ्के नास्ति. ६ क. ख. छ. त. द. इला. ७ छ.
 'र्मणस्तैक्ष' स्त्व; त. द. 'र्मणस्तक्ष'. < क. ख. १० (१३); छ. १४; त.
 द. १०. ९ ग. 'इति'। आ; ठ. ड. 'यज्ञमिति।आभि'. १० क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड 'इति' नास्ति; 'भर्तीति' ति. ११ क. ख. ग. घ. ज. ङ. इला.
 १२ क. ख. ग. च. ज. घ. झ. 'वेळांया. १३ क. ख. घ. झ. ट. उ. 'वत्यात्;
 १७ च. वत्समं' तात्.

हविर्भोक्तव्यमित्येवमथं जानाना । सरस्वती च मध्यमस्थानैव चेतयन्ती
भागच्छतु । ता एतास्तिस्त्रोऽपि देव्यः स्वपसः सुकर्माणः अस्मिन्कर्मणि
इदं बर्हिः स्योनं प्राप्य एतस्मिन् औसीदन्त्वित्येतदाशास्महे ।

‘ त्वष्टा ’ (११) इति वक्तव्यम् । अत्र तृणशब्दात्क्षिप्रवाचिनः पूर्वप-
त्वष्टाशब्दस्य श्रोतेरुत्तरपदम् । क्षिप्रं व्याप्नोति यदनेन ५
व्याप्तव्यं भवति । ‘ त्विषेर्वा ’ धातोर्द्विद्ध्यर्थस्य ।
व्युत्पत्तिः वृद्ध एव नित्यमसौ देवतात्वात् । ‘ वृक्षतेर्वा
स्यात् ’ क्रियासामान्यमात्रवाचिन उत्सृष्टतनुकरणस्वार्थस्य । ‘ तस्यैषा ’
प्राधान्यस्तुतिः ‘ भवति ’ ॥ १३ ॥

१०

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतारिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यज्ञि विद्वान्
(ऋ० सं० १० । ११० । ९) ॥ य इमे द्यावापृथिव्यौ जन-
यिष्यौ रूपैरकरोद्भूतानि च सर्वाणि तमद्य होतारिषितो यजीयान्दे-
वं त्वष्टारमिह यज विद्वान्माध्यमिकस्त्वष्टेत्याहुर्मध्यमे च स्थाने १५
समान्नातोऽग्निरिति शाकपूणिस्तस्यैषा परा भवति ॥ १४ ॥

‘ य इमे द्यावापृथिवी ’ इति । यः त्वष्टा इमे द्यावापृथिव्यौ
त्वष्टा सर्वेषां भूतानां जनयिष्यौ रूपैः नानाविधैः अक-
रोत् भूतानि च सर्वाणि । अथवा । रूपैरिति २०
कर्तृवानया तृतीयया लक्ष्यते । तत्तद्भूतमास्थाय यैः त्वष्टा द्यावापृथिव्यावक-

१ ग. ज. °भोक्तव्य°; च. °भोक्तव्य° क. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
मध्यस्था° ३ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. °स्थानेव° वमेव.
४ ग. ज. ठ. ड. ‘इदं’ नास्ति, च. °मणि °बर्हि° इदं. ५ ग. ज. सीद°; च.
°स्मिन्कर्मणि° आ. ६ घ. ट. ड. तक्षते°; झ. तत्वक्षते°; ट. तक्ष° त्व. ७ क. २५
ख. १० (१३); ग. ११; ठ. ड. इतिनिरुक्तटीकायामुत्तरपदके द्वितीयाध्याये त्रयो-
दशः खण्डः (ड. २ ध्याये १३ खण्डः). ८ छ. त द. °न्माध्यमक°. ९ क. ख.
११ (१४); छ. १५; त. द. ११. १० ग. ज. ‘इमे’ नास्ति; च. °त्वष्टा °वा°
इमे. ११ क. ख. घ. ठ. ड. °नानाविधैरनेकप्रकारैरक°; ग. ज. °नानाविधैरक°;
च. °नानाविधैरक° रनेकप्रकारै. १२ ग. ज. ‘ यः ’ नास्ति; च. °स्थाय-
त्वष्टा° यः.

३१

रोद्धूतानि च सर्वाणि । किं तस्य त्वष्टुः । तं देवम् इह अथ एतास्मिन्नहानं
कर्माणि च हे होतः यक्षि यज विद्वान् जानानो मयेदमवश्यं कर्तव्यमिति ।

- माध्यमिकस्वष्टेति विचारः । तत्र तावत् ' माध्यमिकस्वष्टेत्याहुः '
 ५ कस्वष्टा आचार्याः । केचिन्नैरुक्ता एवं मन्यन्ते । माध्य-
मिकः इति संज्ञाप्रसिद्धिः । को हेतुः । ' मध्यमे
च स्थाने समाभ्नातः ' (निघ० ५ । ४ । २१) इति । किंच ।
माध्यमिक इति एतस्मिन्नेव मन्त्रे व्यपदेशात् । कथम् । य इमे
नैरुक्ताः यावापृविष्यौ भूतानि च सर्वाण्यकरोत्तं देवं
त्वष्टारं यजेति । त्वष्टुरन्यो यष्टा । स एव पुनः
१० संबोध्यते हे होतरिति मनुष्यहोत्रा । न चान्यः पार्थिवादग्नेर्होतास्ति ।
तस्माद्यो यष्टा स पार्थिवो य इज्यते स मध्यमस्वष्टेति । सर्वशिल्पवता-
माचार्यो देववर्धकिर्दाक्षायणीपुत्रो द्वादशनामादि-
त्यानामन्यतम इत्यै- त्यानामन्यतम इत्यै-
१५ तिहासिकाः अयमेव ' अग्निरिति शाकपूणिः ' । कथम् ।
यत्तावत् ' मध्यमे च स्थाने समाभ्नातः ' इत्यकौ-
रणम् । ' अयमप्यग्निर्मध्यमे स्थाने समाभ्नात ' इति (निघ० ५ । ४ । २३)
अग्निरिति शाक- यःपुनरेतत् ' व्यपदेशात् ' इति तदपि
पूणिः समानभिन्द्रेणापि त्वष्टृव्यपदेश इति ' त्वष्टा दध-
दिन्द्राय शुष्मम् ' (मैत्रा० सं० ३ । ११ ।
२० १) इति । अपि च । व्यपदेशःदन्यत्वमित्यशक्यमध्यवसातुम् । अनन्य-
त्वेऽपि हि व्यपदेशो भवति । तद्यथा । ' अग्निमग्न आवह ' (तै०
ब्रा० ३ । ५ । ४) इति । हे भर्गवन्नग्ने अग्निमावहेति व्यपदेशे
सत्यनन्यत्वम् । न हि पार्थिवादन्यः सुक्तभाग्वत्रिर्भाग्वाग्निरस्ति योऽनेन
प्रसिद्धहोतृत्वाभिधानेनाहूयेतेज्येत धौ । ' स्वं महिमानमावह ' (तै० ब्रा०
२५ १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वा; च. चै० वा. २ ग. ज. मध्यमक०; च.
माध्यमक०. ३ ग. च. ज. माध्यमक०. ४ ग. ज. 'दित्यानां मन्य इत्यै०; च.
'दित्यानां मन्य इ० तम. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'कारणमेतत्; च.
'कारणम्' मेतत्. ६ ग. ज. प्रथमे. ७ च. त्वष्टा दर्शति० धदिन्द्राय शुष्ममि.
८ ग. ज. शुष्ममिन्द्रायेति. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अग्ने भगवन्. १० च.
योदिन्द्रायोश्चुष्मनेन०. ११ ग. ज. 'नाहूयेतेज्यते च; घ. 'नाहूयेत इज्यते; झ.
'नाहूयेत इज्यते; ट. 'नाहूयेत इज्यते' ज्ये. १२ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ.
३९ ड. च; घ. धौ० च.

३ । ५ । ४) इति स्विष्टकृति विशेषलिङ्गात्स्वमेवात्मनात्मानं विधिवशा-
दाह्वानेन संस्मृत्य द्वैधं त्रैधमनेकधा वा यजति । अन्यद्वाभिनिर्वर्तयति । तद्व-
दिहापि कर्मात्मनः परो योऽस्य तैक्षणगुणयोग्यात्मा यदधिष्ठितः कर्मात्मा
सर्वरूपाणि पाकेन विकरोति तमधिकृत्योच्यते ' त्वष्टा रूपाणि विकरोति '
इति । तदयमुच्यते मनुष्यहोत्रा ' यज त्वम् ' इति । एवं तावद्वयप- ५
देशः शक्यप्रतिसमाधानः । यत्पुनरुक्तं देवशिल्पीति तत्तद्गुणसामान्यादे-
वासावपि कौशलातिशयमपेक्ष्योच्यते इत्यदोषः । यथा चाग्निरेव नान्यस्तथा
विशिष्टतरलिङ्गा ' अपरा ' ऋक् ' भवति ' ॥ १४ ॥

आविष्टयो वर्धते चारुरासु जिह्वानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे । १०
उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते (ऋ०
सं० १ । ९५ । ५) ॥ आविरावेदनात्तत्तयो वर्धते चारुरासु
चारु चरतेजिह्वं जिहीतेरूर्ध्व उच्छ्रितो भवति स्वयंशा आत्म-
यशा उपस्थ उपस्थाने उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं
प्रतिजोषयेते । द्यावापृथिव्याविति वाहोरान्ने इति वारणी इति वा १५
प्रत्यक्ते सिंहं सहनं प्रत्यासेवेते ॥ १५ ॥

' आविष्टयो वर्धते ' इति । ' आविः ' प्रकाशः । स कस्मात् ।
तस्यैव त्वष्टुरन्या ' आवेदनात् ' । सर्वस्य प्रकाशनात् । तस्मात्
ऋक् ल्यप् । तस्य तनिता आविष्टयः । किंलक्षणः । २०
चारुः चरणशीलः अनवस्थितः । किं करोति ।
वर्धते । क । आसु क्रियासु प्रजासु वा प्रसवाय । कस्य । जिह्वानां कुटि-
लचेतसामपि मनुष्याणामप्येधम्येणोर्ध्वमेव ज्वलति । कुटिलानामपीन्धना-

१ ग. ज. ' त्वमेवात्मात्मनात्मानं; घ. झ. ट. ठ. ड. ' त्वमेवायमात्मनां; २५
च. ' त्वमेवात्मात्मा ' यमा. २ क. ख. संस्कृत्य; ग. ज. संस्कृत्य; च. ट. संस्मृत्य'
स्क. ३ ग. तल्लक्षणं; च. ट. तैक्षणगुणं लक्षणक्रिया. ४ क. ख. ११ (१४);
ग. १५; ठ. ' वति । इति नि० उ० ष० द्वि० १४; ड. ' वति इति निरुक्तटी-
कायामुत्तरपटके २ ध्याये १४ खण्डः; च. वर्जमितरेष्वर्हको नास्ति. ५ छ. त. द.
' प्रतीची सिंहं प्रतिजोषयेते ' नास्ति. ६ क. ख. १२ (११); छ. १६ द्वितीयः
पादः; त. १२ अष्टमोऽध्यायद्वितीयः पादः; द. १२ । इति नेरुक्तस्य उत्तरार्धस्य
द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः. ७ ग. इति । आ०. ट क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
तस्यः; च. त्व्यं तस्यः २६

नामैकुटिल ऊर्ध्वमेवेति केचित् । एवमेव वर्धते । स्वयशाः आत्मयशाः
परमाश्रित्य यशस्वी । उपस्थे उपस्थाने यत्रासावुपनतस्तिष्ठति आविष्टयः ।

उभे के

योऽथमेवमादिगुणयुक्तस्त्वष्टा तस्य त्वष्टुः अग्नेः
जायमानादेव अपि बिभ्यतुः । के पुनस्ते ।

५

द्यावापृथिव्यौ

‘ द्यावापृथिव्याविति ’ । यथायमतिमहान्वर्धते
अवश्यमयमावां धक्ष्यतीति । ‘ अहोरात्रे इति वा ’ ।

अहोरात्रे

सकृदुपज्वलिते महत्यग्नावनुपशाभ्यत्यहोरात्रयो-
रथर्वत्त्वाभावः । तस्मात्ते अपि बिभ्यतुरपि

नामायमेवमतिप्रष्टद्ध आवाभैत्यन्तमुच्छ्रित्वा^१दिति । ‘ अरणी इति वा ’ ।

१०

अरणी वा

अवश्यमयमावां जातो यदा तदा धक्ष्यतीत्यतोऽ-
रणी अपि बिभ्यतुः । एवं बिभ्यत्यौ किं कुरुतः ।

नान्या गतिरस्तीति प्रतीची नाम तं प्रत्यञ्चते अभिमुखे सिंहं सहनम्
अभिभवन्नं प्रतिजोषयेते प्रत्यासेवेते उपकारत्वेन कथं नामायमावां न
भस्मसात्कुर्यादिति । एवमयमेवाग्निरिह त्वष्टेति ॥ १५ ॥

१५

त्रैयोदशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

तृतीयः पादः ॥

वनस्पतिर्व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ १६ ॥

२०

‘ वनस्पतिः ’ (१२) अवसरप्राप्तः । स पुनरयमभिधेयतोऽभि-
धानतश्च ‘ व्याख्यातः ’ ‘ एष हि वनानां पाता वा पालयिता वा ’
(निरु० ८ । ३) इति । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १६ ॥

२५

१ च. °नामाकुटि° । २ च. स्वयशाः √ पर° आत्मयशाः । ३ क. ख.
आवामन्यतरमु°; ग. ज. घ. ठ. ड. आवामन्यतममु°; च. ट. आवामन्यं (त्यं)-
तममु° । ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °च्छ्रित्वादिति । ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
जातो यतो यदा; च. जातो √ यदा° यतो । ६ घ. ट. प्राची । नभेनं प्रत्य°; ग. ज.
प्रतीची तमेनं प्रत्य°; ठ. ड. प्राचीनमेनं प्रत्य° । ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°कारकत्वेन. ८ क. ख. १२ (१५); ग. १६; च. वर्जमङ्गो नास्ति. ९ ठ. ड.
इति त्रयो°. १० ठ. २ पादः । इति नि० ८० उ० द्वि० १५ खण्डः; ड. इति
१५ खण्डः. ११ क. ख. १ (१६); छ. १७; त. द. १. १२ क. ख. १
(१६); ग. १७; ठ. °वति । इति निरु० उ० द्वि० १५ अध्याये षोडशः खण्डः ।

३२

१६।; ड °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपट्टकं द्वितीयाध्याये षोडशः खण्डः.

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि । वन-
स्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन । (ऋ०
सं० १०।११०।१०) ॥ उपावसृजात्मनात्मानं समञ्जन्देवाना-
मक्षमृतामृतौ हवींषि काले काले वनस्पतिः शमिता देवो अग्निरि-
त्येते त्रयः स्वदयन्तु हव्यं मधुना च घृतेन च । तत्को
वनस्पतिर्युष इति कात्थैवयोऽग्निरिति शाकपूणिस्तस्यैषापरा
भवति ॥ १७ ॥

‘ उपावसृज त्मन्या समञ्जन्ति ’ । उपास्त्रिर्ष्य अवसृज एतत्पश्चात्पूर्व
वनस्पतिः पाथः । अनाश्रितविशेषः किमयमग्निर्वा यपो १०
वोच्यते उत वान्य एव काश्चिदिति । उत्तरेर्धर्चे
वनस्पतिशब्दः प्रथमासंबन्धात्परोक्ष इह पुनरुपावसृजेति मध्यमपुरुषयो-
गात्प्रत्यक्षः कोऽप्यभिधीयत इति सुतरामनाश्रितविशेष इति विचारास्पद-
मित्यतः परं विचारयिष्यति ‘ तत्को वनस्पतिः ’ इति । त्मन्या समञ्जन्
आत्मना आत्मानम् अस्य पशोः समञ्जन् समभिव्यञ्जयन् विशिष्टेन संस्का- १५
रेण स्वाधिकारसंबन्धिना देवानाम् एतत् पाथः अन्नम् एतत् अमुनैव
प्रकारेण ऋतुथा ऋतामृतौ काले काले षण्मासादौ हवींषि चैतान्यन्यान्य-
प्याग्यप्रभृतानि उपावसृज देवेभ्यो देहीति । किञ्च । वनस्पतिः शमिता
देवो अग्निरित्येते त्रयः । त्रिप्रहणोद्भवशब्दोऽग्निविशेषणमिति दर्शयति ।
वनस्पतिश्च शमिता चाप्रत्यक्षदेवते असंदिग्धश्च देवोऽग्निरित्येते त्रयः २०
स्वदयन्तु स्वादुतामापादयन्तु । मधुना च उदकेन । प्रोक्षणाद्यभिप्रायम् ।
घृतेन च एतदस्माभिः संस्कृतं पाथ इत्येतदाशास्महे ।

१ छ. त. उपव°. २ छ. त. द. °त्मना मन्या स°. ३ छ. त. द. काश्च-
दयो°. ४ क. ख. २ (१७); छ. १८; त. द. २. ५ ग. °ञ्जिति°. ७ उ°;
ठ. ड. उपावसृजेति. ६ ग. ज. घ. ट. ठ. ड. °श्लिषयावसृ°; च. °श्लिषया-
वसृ° ष्या. ७ क. ख. ग. घ. झ. ट. ठ. ड. °वेत्युच्यते. ८ ग. ज. °मेतद्वा-
गिनामुनै°; च. °मेतमैमुनै° द. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °देवते एष अ°;
च. °देवते / अ° एव. १० ग. ज. °घृतेन तदस्मा°; च. °घृतेन तद° चै. २८
१६

‘तस्को वनस्पतिः’ इत्येवमादिनिचारः । तत्र तावत् ‘यूपः इति
कार्थक्यः’ । कस्मात् । यस्माद्यथेतस्यामना-
को वनस्पतिः । विष्कृतोऽग्नेर्विशेष आंपिया तथापीयम्
यूप इति काथक्यः ‘अपरा’ यूपान्जनीया ऋक् या संनिपत्य यूपान-

५ ऋजने यूपमभिधानेन संस्करोति (आश्व० श्रौ० ३।१) । तद्यथा ॥ १७ ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देव्यन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वंस्तिष्ठा द्रविणंह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे (मैत्रा०
सं० ३।८।१) ॥ अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवान्कामयमाना
१० वनस्पते मधुना दैव्येन च घृतेन च यदूर्ध्वः स्थास्यसि द्रविणानि
च नो दास्यसि यद्वा ते कृतः क्षयो मातुरस्या उपस्थे उपस्थानेऽ-
ग्निरिति शाकपूणिस्तस्यैषा परा भवति ॥ १८ ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वर इति । विश्वामित्रस्वार्पम् । ‘देव्येभ्यो वनस्पते’
१५ वनस्पतिः (मैत्रा० सं० ४।१३।७) इति च । हे
यूप अञ्जन्ति त्वां प्रक्षयन्ति त्वाम् ऋत्विग्यज-
मानाः । क । एतस्मिन् अध्वरे यज्ञे । किमिच्छन्तः । देवान् यष्टुं कामय-
मानाः । केन अञ्जन्ति हे वनस्पते यूप । मधुना दैव्येन । संस्कृतेन
घृतेनेत्यर्थः । देवानां यन्मधु । विज्ञायते हि ‘देवानां मधु यद्धृतम्’
२० (मैत्रा० सं० ३।९।३) इति । किमित्यञ्जन्ति । यदूर्ध्वंस्तिष्ठाः ।
यस्मादक्तस्त्वमूर्ध्वः स्थास्यसि । अञ्जनादनन्तरमुच्छ्रियन्ति त्वाम् ।
यस्माच्च ते क्षयः मातुः अस्याः पृथिव्याः उपस्थे उपरि । क्षयो निवासः

१ ग. च. ज. काथक्यः; घ. ट. काञ्चक्यः २ क. ख. घ. ट. ट. ड.
‘यस्मात्’ नास्ति; च. यस्मात् ३ क. ख. घ. ठ. ड. ‘तस्यामापि-
२५ यामना’; च. तस्यामना मापिग. ४ क. ख. घ. ट. ट. ड. ‘आंपियां’
नास्ति; आंपियां. ५ क. ख. २ (१७); ग. १८; ठ. यथा । इति निरु० उ०
द्वि० सप्तदशः रूपद्वयः; ड. इति निरुक्तीकायामुत्तरषट्के २ ध्याये सप्तदशः खण्डः.
६ क. ख. छ. त. द. ‘च’ नास्ति. ७ छ. त. द. धास्यसि. ८ क. ख.
३ (१८); छ. १९; त. ट. ३. ९ ग. इति २० । वि०; ठ. ड. त्वांत. १० क. ख.
३० घ. ट. ठ. ड. ‘पम् । पुरे रूक् देवे’; च. ‘पम् । देवे पुरे रूक् ।

स्थैर्यार्थमवष्टः तस्मादवश्यमूर्ध्वः स्थास्यसि । तथा स्थित्वा पशुधारणसमर्पः
प्रधानक्रियापूर्वाङ्गं भावयित्वा तद्द्वारेण तत्फलानि द्रविणानि च अन्-
श्यमस्मभ्यं दास्यसीत्यतः समञ्जन्ति । एवमस्मिन् समञ्जने येषु वनस्प-
तिशब्दः प्रयुक्तः । तस्माद्येषु वनस्पतिरिति ।

‘ अग्निरिति शाकपूणिः ’ । कस्मात् । इहापि ‘ उभावसृज ’ इत्य-

अग्निरिति शाक-
पूणिः
स्यानाविष्कृतवनस्पतिशब्दार्थत्वाद्भवतु यूपपरः ।
परास्य हविर्वहनदिल्लिलिङ्गिता पुरोरुयजतौ
संनिपत्याग्नेर्धनस्पतिशब्दनाभिधायिका ऋग्भ-
वति । तद्यथा ॥ १८ ॥

५

१०

देवेभ्यो वनस्पते हवींषि हिरण्यपर्णं प्रदिवस्ते अर्थम् । प्रद-
क्षिणिद्रशनया नियुयं ऋतस्य वसि पथिभीरजिष्टैः (भैशा०
सं० ४ । १३ । ७) ॥ देवेभ्यो वनस्पते हवींषि हिरण्यपर्णं
ऋतपर्णापि धोपमार्थे स्याद्विरण्यवर्णपर्णेति प्रदिवस्ते अर्थं परा-
णस्ते सोऽर्थो यं ते प्रब्रूमो यज्ञस्य वह पथिभीरजिष्टैर्ऋजुतमै-
रजस्वलतमैः प्रपिष्टतमैरिति वा तस्यैपापरा भवति ॥ १९ ॥

१५

देवेभ्यो वनस्पते इति । हे वनस्पते अग्ने हिरण्योपमपर्णञ्ज-
लित देवेभ्यो हवींषि वक्षि वह । कथमिति ।
अस्यामृचि वन-
स्पतिरग्निः
प्रदक्षिणित् प्रदक्षिणं देवानां यो हविर्वहनधर्म-
स्तेन पितृधर्मविपरीतेन । कथं वह । रशनया
नियुय निवध्य मुनिपुणम् । यथा न किञ्चिदप्यत्र ददिरनवेक्षितं प्रभ्रश्ये-

२०

१ ग. ज. मरः २ ग. ज. पूर्वाङ्गभावयित्वात् नदा; च. 'पूर्वाङ्गभावयित्वात्
दा'. ३ ग. ज. 'र्थत्वात्परो यूप'. ४ क. ख. ३ (१८); ग. १९; ठ. 'वथा ।
इति निरु० द्वि० १८ खण्डः; ड. 'यथा । इति निरु० कटीकायामुत्तरपटके २ ध्याये
१९ खण्डः; च. 'वर्जमिरेष्वडो नास्ति. ५ ड. घ. ध. ठ. ड. तमैस्तपि'. ६ क.
ख. ४ (१९). छ. ५०; त. द. ५. ७ ग. इति । हे'; घ ट. ठ. ड.
इति । वसिष्ठस्यार्पणं । हे'. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'क्षितं धूम्रभेतेन प्र'; च.
'क्षितं - प' धूम्रभेतेन. ९ ग. ज. ठ. ड. 'भ्रश्येत तथा; च. 'भ्रश्येत'; ड.
भ्रश्येत' संये.

२५

३०

- तथा । अपि च । ऋतस्य यज्ञस्य पथिभी रजिष्ठैः । य एव प्रसिद्धाः
पन्थानो यज्ञस्य हविर्वहनाय देवान्प्रति । ऋजुभ्योऽपि ऋजुतमैः । येः
कालो नातिर्हीयेत । रजस्वलतमैर्वा अत्यर्थमुदकवद्भिः । ते हि पथि-
कानां सुखाः । प्रपिष्टतमैरिति सुरूपतमैः प्रहततमस्कैर्यैः असंमोहः
५ स्याद्दृच्छतस्तैः वह । न च पुनरविदिते कर्मणि त्वां नियुज्महे । यतो
ब्रूमः । प्रदिवस्ते अर्थम् । चिरंतनमेव ते अर्थं हविर्वहनाधिकारलक्षणं
विषयः । ' अयं यो होता ' इत्येवमादिमन्त्रेभ्यः ' देवा दविरे हव्यवा-
हम् ' (ऋ० सं० १०-५२-३) इति । अतो ब्रूमहे वहेति ।
एवमेतस्मिन्मन्त्रे हविर्वहनयोगाद्वनस्पतिशब्दस्याग्निरभिधेयः ।

- १० अथ ' एषा ' । वनस्पतेरग्नेः ' एषापरा भवति ' । सा पुनः किम-
र्थमिति । प्रायोवृत्त्युपदर्शनार्थं बहुषु मन्त्रेष्वग्निर्वनस्पतिरिति ॥ १९ ॥

- वनस्पते रशनया नियूयं पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् ।
वह देवत्रा दिधिषो हवींषि म चं दातारममृतेषु वोचः (मैत्रा०
१५ सं० ४ । १३ । ७) ॥ वनस्पते रशनया नियूय सुरूपतमया
वयुनानि विद्वान्प्रज्ञानानि प्रजानन्वह देवान्यग्ने दातुर्हवींषि
प्रब्रूहि च दातारममृतेषु देवेषु स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति
वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा
तासामेषा भवति ॥ २० ॥

२०

वनस्पते रशनया नियुयैर्ति । वनस्पतेरेव ऋयाज्या (मैत्रा० सं०

१ च. सुषाः° खाः. २ क. ख. घ. ट. ठ. ड. विनियु°; च. ~ नियु° वि.
३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. °वहनसंयो°; च. °वहनयो° सं. ४ क. ख. घ. ठ.
ठ. ड. ऋग्भवति. ५ क. ख. ४ (१९); ग. २०; ठ. °रिति । इति निरुक्त-
टीकायामुत्तरषट्के २ °ध्याये १९ खण्डः; च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. ६ क. ख. छ.
त. द. वहा. ७ क. ख. ५ (२०); छ. २१; त. द. ५. ८ ग. 'येति ।

२७ व°; ठ. ड. °रशनयोः.

४ । १३ । ७) । हे वनस्पते रशनया पिष्टतमया सुरूपतमया अत्यर्थं दृढया
 हविर्वहनात् वन- एवमादिगुणयुक्तया रशनया नियूय अप्रभंस-
 स्पतिरग्निः नाय निबन्ध्य वयुनानि स्वाधिकारयुक्तानि प्रज्ञा-
 नानि अस्मदुपकाराय विद्वान् जानानो वह
 एतानि अस्मत्प्रैत्तानि हवींषि अस्य दिधिषोः दातुः यजमानस्य अभिमत- ५
 फलप्राप्तये देवत्रा देवान् प्रति । प्रदातारम् अमृतेषु वोचः प्रवोचः ।
 कथयस्वैनं दातारम् अमृतेषु देवेषु अमुना यजमानेनैतानि हवींषि प्रत्तानि ।
 एवमग्निर्वनस्पतिः ।

यत्पुनरेतदुक्तं यूपोजनीयायां 'यूपे वनस्पतिशब्दः' (निरु०
 ८ । १७) इति । अत्र ब्रूमः । अग्निरेवासौ यूपान्तर्गतो यूपामना १०
 यूपोजनीयायामृचि वर्तमानो यूपोजनीयायां वनस्पतिशब्देनोच्यते ।
 अपि वनस्पतिरग्निरेव तदुक्तम् 'एष हि वनानां पाता पालयिता वा'
 (निरु० ८ । ३) इति । यस्मादन्तर्गतो
 वनानां वनानि न दहति तस्मादेष वनस्पतिः । उक्तं च 'योऽयमृ- १५
 बीसे पृथिव्यामग्निरन्तरोषाधिवनस्पतिष्वप्सु तमुन्निन्यथुः सर्वगणं सर्वना-
 मानम्' (निरु० ६ । ३६) इति । सोऽयमग्निरेवानेन वनस्पतिशब्देन
 यूपामिधानेन वनस्पतिरभिधेय इत्यदोषः ।

अपरे पुनः 'अञ्जन्ति त्वाम्' इत्यधियज्ञात्पृथक्त्वेनाधिदैवतैर्मुत्पाद्य
 शःकपूणिमतेनाग्निपरत्वमेव वर्णयन्ति । यदाध्यधियज्ञेऽस्य यज्ञाङ्गाभिवाद-
 स्तथापि नाधिदैवतमग्निमभिधातुमस्याः परिहीयते सौमर्थ्यं मन्त्रार्थं इति । २०
 तस्या ऋचोऽग्नि- तत्कथम् । अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः । हे
 परत्वेनार्थयोजना भगवन्नग्ने अञ्जन्ति त्वाम् आँघाराद्याभिराहु-
 तिभिः अध्वरे यज्ञे देवयन्तः देवान्कामयमानाः
 यस्मात्त्वमूर्ध्वः स्थास्यसि ज्वलिष्यसि । यच्च ते क्षयो मातुः वेद्याः उपस्थे
 उपस्थाने उपरि उत्तरवेद्याः क्षयो निवासः कृतस्तत्रोपज्वलितः द्रविणानि २५
 धनानि यज्ञसिद्धौ यज्ञफलान्यस्माकमवश्यं दास्यसीत्यतस्त्वामाहुतिभि-
 रञ्जन्ति ।

१ घ. ट. ड. ड. प्रदत्तानि; ष. °त्यवृत्तानि; ग. ज. त्यवृत्तानि°. २ ग. ज.
 °दैवमुत्ता°. ३ ग. ज. °यते मित्रसामर्थ्यमिति. ४ ङ. °मावाराया इत्यस्यानन्तर-
 भाषायसमाप्तिं यावत् पत्राणि गलितानि.

कास्थिकः पक्षेऽपि 'देवेभ्यो वनस्पते' 'वनस्पते रशनया नियूय'

'देवेभ्यो वनस्पते'
'वनस्पते रशनया नि-
यूय' इत्यनयोर्ऋचोः
यूपार्थे योजना

इत्यनयोरर्थभोजना । हे वनस्पते वानस्पत्य यूप
त्वमुच्यसे हिरण्यपर्णा ऋतपर्णा वह एतानि
हवींषि । अनुत्थिते त्वयि नैतानि उद्यन्त इति
स्वमेवैषां बोद्धेति प्रतीमहे । कथं च पुनर्वह ।
प्रदक्षिणित् । यथैतानि बोद्धव्यान्व्यविपर्यस्यन्ते तेन

विधिना रशनया एतया प्रिवृता नियूय परिधीय त्वमात्मानम् । ऋतस्य यज्ञस्य
ये पन्थानः रक्षिष्याः । प्रदिशः चिरंतन एत्रायमर्थस्त्वया हवींषि बोद्ध-
व्यानीति । विज्ञायते च 'यूपेन वा आहुतयः स्वर्गं लोकं यन्ति'

१० (नैत्रा० सं० ४ । ८ । ८) इति । वनस्पते रशनया नियूय । हे
वानस्पत्य यूप रशनया पिष्टतमया सुरूपतमया प्रिवृता नियूय परिधीय
त्वमात्मानं वह एतानि हवींषि स्वाधिकारप्रयुक्तानि प्रज्ञेयानि प्रजानन्
देवत्रा च देवान्प्रति दिधिषोः हविर्दातुः अर्थसिद्धये । प्रब्रूहि च एनं दातारम्
अमृतेषु देवेष्विति ।

१५ 'स्वाहाकृतयः' (१३) वैकल्याः । काः पुनस्ताः स्वाहाकृतयः ।
या यागार्थमाहृद्योत्तमे प्रयाजे स्वाहाकारेण संस्क्रियन्ते ताः
स्वाहाकृतयः । ननु 'सद्यो जातः' (ऋ० सं० १० । ११० ।
११) इत्यग्नेयो मन्त्रः । सत्यमाग्नेयैः शौनकस्य । तथापि
स्वाहाकृतयः समाम्नाताः । किं कारणम् । 'सद्यो जातः'

२० १ ग. च. ज. काथस्य'. २ ग. ज. हतपर्णा. ३ ग. ज. समुच्छ्रिते. ४ क. ख.
ग. ज. 'पर्यस्यन्तेन; च. 'पर्यस्यन्ते' स्थिते. ५ ग. ज. तृवृता; च. द्विवृता
त्रि. ६ क. ख. घ. ट. ठ. वनस्पते वानस्पत्य; च. वनस्पत्ये यूपे ते वानस्पत्य.
७ क. ख. घ. ट. ठ. प्रज्ञानानि. ग. घ. यज्ञेयानि; च. प्रज्ञेयानि° ज्ञाना. ८ क.
ख. घ. ट. ठ. 'च' नास्ति; च. चै. ९ क. ख. घ. ट. ठ. निर्वक्तं. च. वक्तं
१० निर्व. १० क. ख. घ. ट. ठ. इ. 'ग्नेयो मन्त्रः शौ'; च. 'ग्नेयः' 'शौ' मन्त्रः;

यद्यपि 'सद्यो जातः'
इति मन्त्र आग्नेयः इत्यनुद्वय्याग्नेः स्तुतिमन्त्रं 'स्वाहाकृतं हवि-
त्तथापि 'स्वाहाकृतं रदन्तु देवाः' इति संप्रदानम् । तत्र
हविरदन्तु देवाः' इति देवताः संप्रदानमिति स्वाहाकृतयः समा-
मन्त्रान्ते श्रवणात् स्याता नाग्निरीति ।
स्वाहाकृतयः समा-
स्याता नाग्निः

५

अथ स्वाहाकृतयः कस्मात् । स्वाहा स्वाहेत्यनुकर्तनेनासामुक्तमस्य
प्रयाजस्य प्रैपसंस्कारः क्रियत इति स्वाहाकृतयः । अथ 'स्वाहा'
इत्येतत् कस्मात् । सुप्रु 'आह इति वा' । यदेव संप्रदानदेवतायै 'किञ्चि-
दाउपस्य' इत्यनेन मन्त्रेणाह 'तुभ्यमिदम्' इति तदेव 'सु आह'
शोभनमाह । एवमस्य 'सुः' पूर्वपदम् 'आह' इत्युत्तरपदम् ।
'स्वाहा' शब्दस्य अथवा । इदमन्यद्ब्राह्मणानुगतं निर्वचनम् ।
व्युत्पत्तयः 'स्वा वागाहेति' । विज्ञायते हि । 'तं स्वा
वागभ्यवदञ्जुहोतीति तस्वाहाकारस्य जन्म' • १५
(मैत्रा० सं० १ । ८ । १) इति । अत्र च स्वशब्दः पूर्वपदमुत्तरपदं
तथैव । अथ 'वा स्वं प्राहेति' । कां विशेषः पूर्वस्मात् । पूर्वपदस्य कार-
कान्यत्वम् । स्वा वागाहेति कर्तारि स्वं प्राहेति कर्मणि । प्रपूर्वं चोत्तरपदं
प्रकर्षयित्वा । 'स्वाहुतं हविर्जुहोति इति' । यदननेव हविर्जुहोतीति
तदेव सुप्रुपाद्य यथाभिधानमग्नौ जुहोति । हविःप्रधानांऽत्र निर्देशः । २०
'तासामेषा भवति' स्वाहाकृतीनाम् ॥ २० ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः । अस्य
होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः (ऋ० सं०
१० । ११० । ११) ॥ सद्यो जायमानो निरमिमीत यज्ञमग्निर्देवा-
नामभवत्पुरोगाम्यस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाच्यास्ये स्वाहाकृतं

२५

१ क. ख. घ. च. ट. ठ. स्तुतिमन्त्रं. २ व. ट. ठ. देवाः सं० १ ग. ज.
वागवदञ्जु. ४ क. ख. घ. ट. ठ. 'पदेऽस्य का'. ५ क. ख. घ. ट. ठ. जुहो-
तीति हवि'. ६ क. ख. ५ (२०); ग. २१; उ. 'तीनाम् । इति निरुक्तं उ०
दि० २० खण्डः; च.वर्जितमिनेऽङ्को नास्ति.

३०

हविरदन्तु देवा ईतीमा आप्रीदेवता अनुक्रान्ता अथ किंदेवताः
प्रयाजानुयाजा आप्रेया इत्येके ॥ २१ ॥

- ‘सद्यो जातः’ इति । योऽयमग्निः सद्यो जातो जायमानः अनन्तरमेव
व्यमिमीत यज्ञं निर्वर्तयति यज्ञम् । यश्च जातमात्र एव अग्निः देवानाम् अभ-
वत् पुरोगाः पुरोगामी अप्रतोगामी प्राधान्येन ।
स्वाहाकृतयः तस्य होतुः देवानामाहातुः प्रदिशि प्राच्यां
दिशि ऋतस्य गतस्य प्रणीतस्योत्तरवेदिकत्वेन वाचि आस्ये । वाचीत्यास्य-
मेवापेक्ष्य । स्वाहाकृतं स्वाहाकरवता मन्त्रेण प्रक्षिप्तं हविः एतदाग्न्यम्
अदन्तु पिबन्तु देवाः स्वाहाकृतयः इति ।

- इतिकरणोऽधिकारसमाप्प्यर्थः प्रदर्शनार्थो वा । एता एवैकादश
आप्रीदेवता अनुक्रान्ता इष्माद्याः । ननु द्वादश
एवमेता एकादश आप्रीदेवताः यासामनुकीर्तनम् । सत्यम् । अनुक्रान्ता द्वा-
दश । तार्स्तु एकादश वनस्पत्यन्तां यासामिह
विचारः । न तु स्वाहाकृतिषु विचारोऽस्ति । तत्तद्देवतासंस्कारपरित्वादुत्त-
मस्य प्रयाजस्य यजतौ एकादशग्रहणादेकादशप्रयाजविषय एवोत्तरो
विचार इत्याचार्याभिप्रायो गम्यते । ततः किम् । यद्यनुक्रान्तास्तान्
प्रति विचारो वर्तिष्यते । ननु विचारितमेव ‘यज्ञेध्म इति कार्त्थिक्योऽ-
ग्निरिति शाकपूणिः’ (निरु० ८ । ५) इत्येवमादि । सत्यम् । विचा-
रितमेतत् । स तु प्रत्येकमाप्रीदेवतापदेषु विचारः । अयं तु सामान्यप्रक-
रणगत औसामेव विचारोऽनिश्चितानां निश्चयावधारणार्थः । निश्चितेन हि

- १ ङ. थ. ध. ट. ‘देवा यजन्तीतीमा’ । २ क. ख. ६ (२१) ; छ. २२
त. द. ६. ३ ग. इति । यो. ४ क. ख. घ. ट. ठ. तस्यास्य हो; च. तस्य
~ हो अस्य. ५ ग. ज. तस्योत्तर. ६ घ. ट. ठ. द्वादशानामासामनु; च.
२५ द्वादशार्थीसामानु नामा. ७ ग. ज. सत्यमनुक्रान्तानां ता एकादश च. सत्यं तु
अनुक्रान्तानां द्वादश यासामनुकीर्तनं ता; ८ च. ता ~ ए स्तु. ९ ग.
ज. वनस्पत्यः । न तु. १० ग. ज. पदत्वा. ११ ग. ज. यजते । ए; च.
यजते । ए तौ. १२ ग. ज. क्रान्ताः प्रति; च. क्रान्तास्तान्. १३ ग. च. ज.
काथक्यो. १४ क. ख. घ. ट. ठ. सामान्यः प्र; च. सामान्यप्र. न्यः. १५ क.
३० ख. घ. ट. ठ. गतश्चासा; च. गत औसा श्वा.

व्यवस्थितेन विधिना भवितव्यम् । अधियज्ञे यजतौ देवताध्यानाङ्गमवश्र-
वणात्तदेतद्विषयमनिश्चितम् ।

‘ अथ ’ इति । विचाराधिकारवाचिना अथशब्देन विचारमधिकृत्यो-
पोद्धान्ति ‘ अथ किं देवताः प्रयाजाः ’ इति ।
किं देवताः का प्रयाजेषु देवतेति । प्रयाजा इति आश्रुता- ५
प्रयाजाः दिर्यजमानोपस्थानान्तः क्रियाकलाप उच्यते ।
प्रयाजेषु ह्यमानेष्विति प्रसिद्धत्वात् । कुतः संशयः । नानादेवता एव
प्रयाजप्रवादाः । आधीणा वषट्कारेण संबन्धात् सर्वस्य चान्यस्य समञ्जसो
विशेषभावः । एवं सति विप्रतिपत्तिराचार्ययोः कार्थक्यशाकपूण्योः ।
तस्माद् व्यवस्थाप्यत इति । १०

कथं नानादेवताः प्रवादा इति । तत्र तावत् ‘ आग्नेया इत्येके ’ ।
आग्नेया इत्येके कुतः । ‘ आग्नेया वै प्रयाजा आग्नेया अनुयाजाः ’
इति च ब्राह्मणम् । तत्र ये एतस्मिन्नर्थे सौची-
केनाग्निना विश्वैश्च देवैः परस्परसंवादे दृष्टे ऋचौ । स हि किल सौचीकोऽ-
ग्निर्विश्वैर्देवैः सह समूदे । ते तमुचुरंहि नो हवीषि वहंति । स तानुवाच १५
यज्ञे भागो मेऽस्त्विति । ते तं प्रत्युचुर्वृणीष्येति । सोऽनयर्चा वधे ॥ २१ ॥

प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः (ऋ० सं०
१० । ५१ । ८) ॥ तत्र प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्ज- १०
स्वन्तो हविषः सन्तु भागाः । तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्व-
स्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋ० सं० १० । ५१ । ९)
आग्नेया वै प्रयाजा आग्नेया अनुयाजा इति च ब्राह्मणं छन्दो-
देवता इत्यपरं छन्दांसि वै प्रयाजाश्छन्दांस्यनुयाजा इति च

१ ग. ज. यजने. २ ग. ज. प्रयाजवादाः. ३ क. स्व. ग. ज. घ. ट. ठ. विशे-
षभावः. ४ ग. च. ज. काथक्य; घ. ट. काच्छक्य. ५ क. स्व. घ. ट. ठ.
‘ वताः प्रयाजप्रवादाः. ६ घ. झ. ट. च. ‘ स्परं सं’. ७ च. विश्वेदे; ठ. विश्वैश्च
केवे. ८ क. स्व. ६ (२१); ग. २२; ठ. इति निरुक्तटीकायामुत्तरवषट्के
द्वितीयाध्याये एकविंशतिः खण्डः; च. वर्जमितरेष्वहो नास्ति. ९ ठ. २.

- ब्राह्मणमृतदेवता इत्यपरमृतवो वै प्रयाजाः पशवोऽनुयाजा इति च ब्राह्मणं प्राणदेवता इत्यपरं प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजाः (शत० ब्रा० ११ । २ । ६ । २७ ॥ कौषी० ब्रा० ७ । १) इति च ब्राह्मणमात्मदेवता इत्यपरमात्मा वै प्रयाजाः
- ५ प्रयाजा अनुयाजाः (तैत्ति० सं० ६ । १ । ५) इति च ब्राह्मणमाग्नेया इति तु स्थितिर्भक्तिमात्रमितरत्किमर्थं पुनरिदमुच्यते यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद्दृष्ट्वादिष्यन्निति ह विज्ञायते (ऐ० ब्रा० ११ । ८) । तान्येतान्येकादशाग्नीसूक्तानि तेषां त्रासिष्ठमात्रेयं बाध्यश्वं गार्त्समदमिति नौराशंसवन्ति मैधातिथं दीर्घतमसं प्रैषिकमित्युभयवन्त्यतोऽन्यानि तनूनपात्वेन्ति तनूनपात्त्वन्ति ॥ २२ ॥

- प्रयाजानुयाजा आग्ने- प्रयाजान् मे अनुयाजांश्चेति । हे विश्वेदेवाः
या इत्यर्थे ऋत्नौ प्रयाजान् मम केवलान् अनन्यदेवतासंपृक्तान् ।
१५ अग्निः प्रयाजानु- अथवा । निग्वशेषान् । ऊर्जस्वन्तः रसवन्तं
याजादि देवान्ययाचे सर्वस्य हविषः अवधार्य दत्त भागं
यज्ञे । घृतं चापां पिबेयमहं प्रथममाज्य-
भागे । पुरुषं चौपधीनाम् औषधिमयानां च हविषां मम पुरुषं पुरोडाशम् ।
एवं नित्यं भागः स्यात् । ममाग्नेः हे देवाः दीर्घमायुरस्तु । यथा मम पूर्वे
२० भातरो हविर्वहन्तो वषट्कारप्रवृक्णा ममूर्नाहं तथा मृषीयेत्यभिप्रायः ।
तत्र पूर्वेऽग्नयः प्राग्घन्यं देवेभ्यो वहन्तः तान् वषट्कारः प्रावृक्तेति ।
एषमुक्तास्तेऽनयोत्तरयर्चानुजज्ञिरे तस्य तं भागम् । तत्र प्रयाजा अनु-

१ ङ. थ. घ. ठ. 'याजा ऋतवोऽनुयाजा' इति च ब्राह्मणं पशुदेवता इत्यपरं पशवो वै प्रयाजाः पशवोऽनु' । २ ङ. थ. घ. ठ. प्राणा वा अनु' । ३ ङ. थ. घ. आत्मा वा अनु. ४ त. 'नरा' ना; घ. 'नरा'. ५ क. ख. ७ (२२); त. द. ७. ६ ग. 'श्चेति' । हे'. ७ च. 'औष'. ८ क. ख. च. झ. ट. ठ. नित्यं मम भागः. ९ क. ख. त्रयः; च. ट. तत्रै त्रयः. १० ग. ज. प्राकृतश्चेति; च. प्रावृ-
क्तेति' श्वते; ट. प्रावृक्तेति' श्वदि. ११ ठ. प्रयाजा' इति । यथा'.

याजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः । यथा त्वयोक्तम् ।

ते याचितं सर्व- अपि च किं बहुना । तवान्ने यज्ञोऽयमस्तु
मग्नये ददुः सर्वः । त्वदधीन एवायं यज्ञः सर्वोऽस्तु ।
किञ्च । तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः । प्रदि-

शोऽन्तर्भूता दिक्षेव । दिग्निवासीनि भूतानि भोग्यत्वेन कल्पन्तामित्यर्थः । ५
एवं तावदाग्नेयाः ।

अथ नानादेवताः प्रवादा इति यदुक्तं तदनुप्रदर्शयते । ' छन्दोदे-
नानादेवता इत्यपरे षताः ' इत्येवमादि । तत्कोऽत्र निश्चयः ।
' आग्नेया इति तु स्थितिः ' । तुशब्दोऽन्य-

प्रवादनिरूप्यर्थः । केन विशेषहेतुनाग्नेयत्वमवधिष्यते । ब्राह्मणं मन्त्रशोभ- १०
यमाग्नेयत्वे । ब्राह्मणान्येव केशलान्यन्यदेवतात्वे ।

आग्नेया इति तु एतस्माद्विशेषहेतोरवादीधरौम आग्नेया इति ।
स्थितिः

अथ किमन्यदनृतमत्रेति । ' भक्तिमात्रमितरत् ' छन्दोदेवता
इत्येवमादि । तदुक्तम् । ' बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि भवन्ति ' १५

यां देवतामुद्दिश्य (निरु० ७ । २४) । ' किमर्थं पुनरिदमुच्यते ' ।
हविर्गृहीतं तां मनसा किं विचारणं प्रयोजनमिति । ' यस्यै देवतायै
ध्यायेदिति ब्राह्मणानु- हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद्वषट्कारिष्यन्निति
शासनादयं देवतावि- ह विज्ञायते ' । नानभिसांहितं हविर्देवतामुपे-
चारः यात् । एवमर्थः सर्वत्र विचारः । तथाहि
दर्शितं ' यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरूप्यते ' २०

(निरु० ७ । ११) इति । मनसेति किमर्थम् । केन वाऽन्येन ध्यायेदिति ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ° दिङ्निवा°; ग. दिग् दिशिवासीनि; ज. दिग् दिवासीनि. २ ग. ज. 'मवधृयते; च. 'मद्वैभ्रयते' वभि; घ. झ. ठ. °यत्वं मन्यते; ट. 'यत्वेमन्दते' त्वमव भ्रिय. ३ ग. च. ज. झ. ठ. ब्राह्मणमन्त्र°. ४ क. ख. °रवधारधामः; घ. झ. ट. °रवधराम आ°; च. °रवा दीधराम° व. ५ घ. झ. ट. ठ. °नृतमेव भवति; च. 'नृतमवति' व भव ६ क. ख. घ. झ. ठ. ट. भवन्तीति. ७ क. ख. ग. ज. विचारणे. ८ ग. नामाभिहितं; ज. न मभिहितं; च. नाभि- सं° न. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. हविर्देवतायै देवतामु°; च. हविर्देव° व तावै दे. २८

- शृणु । सर्वेन्द्रियविषयप्रत्याह्वतेन मनसा यथाश्रुतगृहीतभावितानां देवतानां
 ब्राह्मणवाक्ये मन- नानात्वैकत्वत्रिवेष्वत्मनो हृदये विज्ञानमयीमा-
 सापदस्य प्रयोजनम् लिख्य प्रतिकृतिं लक्ष्यीकृत्यानन्यमनास्तत्कालम-
 धीत्य याग्यां षषट्कुरिष्यंस्तदनुचिन्तनसंस्कार-
 ५ संतानैकरसेन मनसा हविष्यभिसंधाय देवतां ध्यायेदित्यस्य विशेषस्य
 द्योतनार्थं प्राप्तस्यापि मनसो ग्रहणं मनसा ध्यायेदिति । ब्राह्मणं चैतदर्थ-
 मेवोक्तमाचार्येण । अत्र हि विशेषतः पुरुषार्थोऽत्रबद्ध इति । अतोऽन्यथा
 हि देवताचिन्तनैशून्यं कर्मेतस्मिन्प्रधानकाले विकलमित्यफलमेव स्यात् ।
 एष एव ध्यानकालो यजमानस्याहुतिप्रक्षेपकालः । न तधान्येषामभ्वयु-
 १० प्रभृतीनामाहुतिप्रक्षेपन्यापृतानाम् । लक्षणं हि होतेति ।

- ‘ इतीमान्येकादशाप्रसूक्तानि ’ अनुक्रान्तानि । दशाधा दशतथीषु ।
 आभीसूक्तान्येकादश तेषामेकादशं प्रैषिकमिति । इतीमानि । उपप्रद-
 र्शनार्थं इतिकरणः । एष एव तेष्वपि निर्वचन-
 विचारावधारणकल्पः । यस्तु तद्गतः कश्चिद्विशेषः स उच्यते । ‘ तेषां
 १५ तेषु कानिचिन्ना- वासिष्ठमात्रेयम् ’ इत्येवमादि । वसिष्ठेन दृष्टं
 राशंसवन्ति वासिष्ठम् । अत्रिणा दृष्टम् आत्रेयम् । वाधयश्चेन
 दृष्टं वाधयश्चम् । गृत्समदेन दृष्टं गार्त्समदम् ।
 कः पुनरसौ विशेषः । ‘ इति ’ एतानि ‘ नाराशंसवन्ति ’ । अथ पुनः
 ‘ मैधातिथं दैर्घतमसं प्रैषिकमिति ’ । मैधातिथिना दृष्टं मैधातिथम् ।
 २० कानिचिदुभयवन्ति दीर्घतमसा दृष्टं दैर्घतमसम् । प्रैष इति ग्रन्थः ।
 शेषाणि तनूनपात्वन्ति तेषु यत्तत्प्रैषिकमिति तदिहोपवर्णितम् । एतानि
 ‘ उभयवन्ति ’ । ‘ अतोऽन्यानि ’ यानि चत्वारि
 अवशिष्यन्ते तानि ‘ तनूनपात्वन्ति ’ । अत्र नाराशंसयाजिनो वसिष्ठा-

- १ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. द्योतनायार्थप्राप्तं च. द्योतनार्थं या.
 २ च. ह. ३ ग. च. ज. चिन्तशून्यं. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. एव च ध्या°;
 ग. एष च ध्या°; च. एव च ध्या° च. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. °काले; च.
 °काले: ले. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. °मानीति. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 २० °नार्थमिति. ८ ग. ज. स: नास्ति.

दयः । तेभ्योऽप्ये तनूनपाद्याजिनः । तान्येतान्यमुना विभागेनावस्थितानि एकादश एकनिर्वचनावधारणानि ।

अतोऽन्यानि दाशतयोदाप्रीसूक्तवर्गात् सौत्रामण्यां त्रीणि (मैत्रा० सं० ३ । ११ । १ ॥ ३ । ११ । ३ ॥ ३ । ११ । ११) अन्व-
श्वमेधयोरेकैकम् (मैत्रा० सं० २ । १२ । ६ ॥ ३ । १६ । २) ।
तत्र यानि सौत्रामण्यां तान्यनाग्नेयानीति न परिसंख्यातानि प्रैषिकेऽनुक-

अन्वेषामाप्रीसू- मणात्तेषाम् । आग्निश्वमेधिके तु कर्मान्त-
क्तानां यास्केन निर्दे- रेऽपि विनियुज्येते न केवलमाप्रीषु । इष्टकोपधा-
शो न वृतः । तस्य ने “ आग्निमुत्तमायां चितौ ‘ समास्त्वाम्
कारणानि ऋतवो वर्धयन्तु ’ (मैत्रा० सं० २ । १२ । ५) इति ” “ द्वादशाप्रीरप्येषु ’ इति । ईस्त-

ग्रहणमाश्वमेधिकं यजमानस्य ‘ समिद्धो अञ्जकृदरं मतीनाम् ’ (मैत्रा० सं० ३ । १६ । २) इति ‘ आप्रीभिर्हस्तं गृह्णाति ’ इति । अत
आप्रीकार्ये प्रयोगव्यभिचारादाप्रीसूक्तवर्गमध्यपठिते अपि न परिसंख्याते
आचार्येण । सौत्रामण्यां तु प्रथमस्य पशोर्या द्वितीया आप्री तस्यामेक-

स्यामेव च नराशंसतनूनपातौ ‘ नराशंसः प्रति शैरोऽभिमानस्तनूनपा-
प्रति यज्ञस्य धाम (मैत्रा० सं० ३ । ११ । १) इति । तत्र
नराशंसयाजिर्ना वसिष्ठप्रभृतीनां यागे निपातवत्तनूनपात्पदमनर्थकं पादपूर-

णमात्रेणोपकारं मन्त्रे करोति । तथा तनूनपाद्याजिनां नराशंसपदम् । एष
एवान्यत्राप्येवंविधे देवतापदे प्रयोगादन्यथाभाविनि देवतापदानिपातकल्पः ।
तद्यथा । अश्वहविष्यश्वप्रतिग्रहप्रायश्चित्ते (मैत्रा० सं० २ । ३ । ३ ॥
काठ० सं० १२ । ६) ‘ यदद्य सूर्य ’ इति सौर्यावरुणानां
याज्यानुवाक्ये (मैत्रा० सं० ४ । १२ । ११ ॥ ऋ० सं० ७ । ६० । १) ।
तयोर्भिन्नार्थम्णोर्यानि लिङ्गानि तानि निपातवद्भवन्ति । यथा

१ ग. ज. तेभ्योऽप्यजनेन तान्ये°; च. तेभ्योऽप्यन्ये. २ ग. °तद्यादा. ३ च.
°रप्येथेष्वि°. ४ ग. ज. अस्त°. ५ ध. झ. ठ. शंसोमिमा°; ट. शंसोमिमा° शरो.
६ ग. ज. °याजिनां नराशंसपदम् । एष एवान्यवत्तनूनपा°. ७ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. °पदानां निपा°; च. °पदानि° दानां. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सौर्य-
मित्रावरुणानां; ग. ज. °सौर्यावरुणानां; च. सौर्यावरुणानां° र्भिन्ना.

- ‘प्र चित्रमकं गृणते तुराय’ (ऋ० सं० १ । ६६ । ९) इति । अत्र संबोधनान्तमध्यमिपदं नैपातिकं केवलमारुते हविषि (आश्व० श्रौ० ३।७) । चातुर्मास्येषु वैश्वदेवप्रयोगे पुनस्तदेवार्थवत् (आश्व० श्रौ० २ । १६) । ‘आग्निमारुतीं पृश्निमालभेत वृष्टिकामः’ (मैत्रा० सं० २ । ५ । ७)
- ५ इत्यत्र षडृचप्रयोगे । एष एव देवतापदविचारः ।

- यस्मिन् पक्षे सर्वे आग्नेयाः प्रयाजाः ‘ प्रयाजान्भे अनुयाजांश्च केवलान् ’ (ऋ० सं० १० । ५१ । ८) इति सर्वे प्रयाजा आग्नेया इति पक्षे मन्त्रदर्शनात्तस्मिन्पक्षे ‘ तिस्रो देवीः ’ इत्यत्र भारती युस्थाना मध्यस्थाना सरस्वती पृथिवी-
१० ‘तिस्रो देवीः’ इत्यस्य आग्नेयत्वेन विवरणं स्थाना इडा इति च तदेवतात्रयं दुःप्रतिसमाधानम् । स्थानान्तरापत्तिस्तुत्या चाग्निरेवेता कथमपि क्रियेत देवता इति प्रतिसमाधानम् । सौत्रामण्यां तूष्मे षशी ‘ समिद्धो अग्निः समिधो’ इत्येता आप्रियः (मैत्रा० सं० ३ । ११ । ११) । तासु तनूनपादेकः ‘ तनूनपाच्छुचिब्रतः ’ इति (काठ० सं० ३८ । १०) । नास्त्येव नराशंसः । तत्र नरा-
१५ सौत्रामण्यां प्रति- शंसयाजिनां सौत्रामणीप्रयोगे कथं प्रयोगः । किं समाधानं प्रायोऽश- तनूनपादेर्न प्रयुज्यतामुतान्यतः कुतश्चिदापीसू- क्यम् क्तादाह्विपतां नराशंस इति न्यायादिदो मेधाविनः समनुगंस्यन्ते विशेषमिति ॥ २२ ॥

२०

इति निरुक्तवृत्तौ त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ।

- १ घ. झ. ट. ठ. षडृचः प्र०. २ क. ख. घ. झ. इडा इति; ट. ठ. इडा इति. ३ म. ज. ‘तत्’ नास्ति. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. समिधा सुसमिद्धो
२५ वरेण्य इत्ये. ५ क. ख. घ. झ. ट. ‘पादेकः’; च. ‘पादेकः’ वै. ६ क. ख. घ. झ. ट. ‘नपाच्छुचिब्रत इत्येतदेव प्र’; च. ‘नपाद्देव’ शुचिब्रत इत्येत. ७ क. ख. ७ (२२); ग. २३ । त्रयोदशे तृतीयः पादः । इति; श्रीमद्भू- गार्गाश्रमवासिन आचार्यभगवद्दुर्गाकृतौ ऋज्वर्यायां निरु’ ठ. ‘मिति । इति जम्भुमार्गाश्रमवासिन आचार्यभगवद्दुर्गास्य कृतौ ऋज्वर्यायां निरुक्तटीकायां निद- ष्टाध्यायपञ्चकेन सह नैरुक्तत्रयोदशाध्यायः । इति निरु. उत्तरपदके द्विं २२ खण्डः समाप्तमगमत्; घ. ट. ज. झ. अद्भो नास्ति. ८ घ. झ. ट. ‘इति श्रीनि- ३२ रुक्त’ ९ ग. ‘समाप्तः’ नास्ति.

* द्रविणोदाः कस्माद्द्रविणोदाद्रविणसोमेद्यन्तुतेऽर्थात् आप्रियः
सोमिद्धो अद्यतनूनपात्तराशंसस्याजुर्हानः प्रोचीनव्यचंस्वतरासुर्ध्व-
यन्तीदैर्व्याहोतारानोयैङ्गयइमे आविष्टयोवनस्पतिरुपावसृजाऽर्ज-
न्तिदेवेभ्योवनस्पतेवनस्पतेरशनयासद्योजौतःप्रयाजैन्मेद्वाविंशतिः ॥

इति निरुक्त उत्तरपट्टे द्वितीयोऽध्यायः ॥

१

* छ. त. दं. खण्डशृङ्खला नास्ति.

१ क. चं. वैरुके; छ. इति निरुक्ते अष्टमोऽध्यायः; त. द. इत्यष्टमोऽध्यायः
समाप्तः; न. अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः । इत्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः; ङ. ' इति •
ध्वजः ' नास्ति.

१०

अथ नवमाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

ॐ । अथ यानि पृथिव्यायतनानि सत्त्वानि स्तुतिं लभन्ते
तान्यतोऽनुक्रमिष्यामस्तेषामश्वः प्रथमागामी भवत्यश्वो व्याख्या-
१ तस्तस्यैषा भवति ॥ १ ॥

अथ यानि पृथिव्यायतनानि सत्त्वानीत्येषमादि । 'अथ' इति
पृथिव्यायतनानां विशेषाधिकारे । प्रकृतार्थादनन्तरमधिकरोति ।
१० सत्त्वानामनुक्रमणम् 'पृथिव्यायतनानि' पृथिव्याश्रयाणि 'सत्त्वानि'
द्रव्याणि च तेषामप्यत्र विवक्षितत्वात् । 'स्तुतिं
लभन्ते इति, समान्नातानि । 'तान्यतः' परम् 'अनुक्रमिष्यामः' ।
व्याख्येयति शेषः । पूर्वस्मादाप्रीगणाद्विलक्षणोऽयमश्वदिगण इति पृथग-
धिकारवचनम् । पृथिव्यायतनत्वाविशेषात्सर्पलाङ्गलकुसुम्भकप्रभृतीनामप्य-
श्रैवान्तर्भावः । तान्यपि हि स्तुतिं लभन्ते लक्षणं वेदमिति । तेषां युगप-
१५ दभिधानासंभवात्क्रमोऽर्थादङ्गीकृतो भवति । सति च क्रमेण न मुख्यातिक्रमो
न्याय्य इत्यतो ब्रवीति । 'तेषामश्वः प्रथमागामी भवति इति । स पुनः किमर्थः
तेषामश्वः प्रथमः प्रथमागामी । पुरुषानन्तरं जन्मेति हि विज्ञायते ।
'तस्या आहुत्याः पुरुषोऽजायत द्वितीयामजु-
होत्ततोऽश्वोऽजायत' (मैत्रा० सं० १ । ८ । १) । विशिष्टे चाश्वमे-
२० धलक्षणे कर्मणि विशिष्टोऽस्याङ्गभाव इति । स च पुनरयं 'व्याख्यातः' ।

१ क. ठ. ड. हरिः ओष; छ. जुं; थ. ॐ ३ म्; घ. हरिः ॐ म्. १ ग.
ज. यानि पृथि. ३ ग. ज. 'ज्ञातान्यतः प'. ४ च. ज. व्याख्याये. ५ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कुशुम्भ; ग. ज. कुशुम्भ. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
वेद. ७ ग. ज. क्रमेण मुं; ख. क्रमेण मुं न. ८ ग. ज. न्याय्य ते तस्या आहु-
त्याः. ९ क. ख. किमर्थ. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'नन्तरं जन्मे'.
११ क. ख. घ. झ. उ. ठ. ड. 'स्यात एव प्राक्.

‘ अश्रुते अध्वानं महाशनो भवतीति वा ’ (निरु० २।२७) इत्यत्र ।
 ‘ तस्यैषा ’ प्राधान्यस्तुतिरश्वस्तोमीय एव ॥ १ ॥

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः । शेषो रोमण्वन्तौ
 भेदौ वारिन्मण्डूकं इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव (ऋ० सं० ९ । ५
 ११२ । ४) ॥ अश्वो वोळ्हा सुखं वोळ्हा रथं वोळ्हा सुख-
 भिति कल्याणनाम कल्याणं पुण्यं सुहितं भवति सुहितं गम्भ-
 तीति वा हसैता वा पाता वा पालयिता वा शेषमृच्छतीति वारि
 वारयति मा नो व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ २ ॥

१०

मा नो मित्रो वरुणो अर्थमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मरुतः परि
 ख्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि
 (ऋ० सं० १।१६२।१) ॥ यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः सरणस्य
 प्रवक्ष्यामो यज्ञे विदथे वीर्याणि मा नस्त्वं मित्रश्च वरुणाथार्यमा
 चायुश्च वायुरयन इन्द्रश्चोरुक्षयण ऋभूणां रानेति वा मरुतश्च
 परिरुयञ्छकुनिः शक्रोत्युन्नेतुमात्मानं शक्रोति नदितुमिति वा
 शक्रोति तक्तितुमिति वा सर्वतः शंक्रोऽस्त्विति वा शक्रोतेर्वा
 तस्यैषा भवति ॥ ३ ॥

१५

मा नो मित्र इति । दीर्घतमस आर्षिम् । अश्व एवाहूयतेऽनेन सूक्तेन । १०
 यद्वाजिन इति । यत् यानि वाजिनः अस्या-
 अश्वः श्वस्य देवजातस्य देवैर्जनितस्य धेसुभिरादित्यात् ।
 ‘ शूरादश्वं वसवो निरतष्ट ’ (ऋ० सं० १।१६३।२) इति । अग्नेर्वा

१ ग. २; च. ‘ एर्व । मा नो°; ठ. ड. °वति । इति उत्तरपटके तृतीये अध्याये
 प्रथमः खण्डः । अश्वो वोळ्हेति महाराष्ट्रपाठः । मा नो°; ड. एष । इति उत्तरपटके १५
 ३ ध्याये १ खण्डः । अश्वो वोळ्हेति महाराष्ट्रवैदिकपाठः । २ । इति उत्तरपटके
 तृतीयेऽध्याये २ खण्डः समाप्तः । मा नो° . २ क. ख. छ. त. द. बोल्हा. ३ छ. त.
 द. ‘ रथं वोळ्हा ’ नास्ति. ४ छ. त. द. सुहितं भवति मा नो व्याख्या°; ठ. ड.
 सहितं. ५ ठ. ड. ‘ २ ’ नास्ति. ६ छ. त. द. ‘ विदथे ’ नास्ति. ७ त. वीर्यु°
 चा; ध. वायु°. ८ ग. इति । दी°. ९ ग. ज. °नितस्य च सुभिरादि°. १० ग.
 शूरा° म्; च. ज. शूरा°.

१०

- प्रजापतिना । 'द्वितीयामजुहोत्ततोऽधोऽजायत' (मैत्रा० सं० १।८।१) इति । सतेः सरणस्य प्रवक्ष्यामः प्रकर्षेण वक्ष्यामः । विदये एतस्मिन्ने वीर्याणि गुणान् । किं तेषाम् । मा नः मास्माकं तान्युच्यमानानि मित्रो वरुणः अर्थमा वायुः इन्द्रो मरुतः परिख्यन् मां चक्षीरन् । किं तर्हि । अनु-
 ५ मयन्ताम् । 'आयुः' अत्र 'वायुः अयनो' वकारलोपेन । स कस्मात् । अयनात् । एति ह्यसौ विश्वम् । इन्द्र ऋभुक्षाः । सैहि उरुक्षणः । उरा-
 वन्तरिक्षे क्षियति निवसति । अथवा । क्षियतिरैश्वर्यार्थः । कस्येष्टे । 'ऋभूणां' देवानां 'राजैति' च तेषामीष्टे । एवमृभुशब्दात्पूर्वपदं क्षिय-
 तैरैश्वर्यकर्मण उत्तरपदम् ।
 १० 'शकुनिः' (निघ० ५।३।२) कस्मात् । स हि 'शक्नोत्युनेतुमात्मानम्' । षर्भं नेतुं लघुत्वात् । शक्नेः पूर्वपदं नयतेरूपपूर्वस्योत्तरपदम् । अथवा ।
 शकुनः कस्मात् नदतस्तकतेर्वा शब्दार्थगत्यर्थयोर्वोत्तरपदं विक-
 ल्येन । अथ 'वा' । 'सर्वतः शंकरः' अयम-
 स्माकम् 'अस्त्विति' सर्वेण नित्यमाशासितव्यो भवति । एवं सति
 १५ 'शम्' इति सुखनाम पूर्वपदं करोतेरुत्तरपदम् । 'शक्नोतेः' एव वैक-
 स्मात् । किमसौ शक्नोति । यदस्य योग्यं शक्तितुम् । 'तस्यैषा' प्राधान्य-
 स्तुतिः 'भवति' ॥ ३ ॥

- कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयति वाचमीरितेव नावं । सुमङ्ग-
 २० लश्च शकुने भवसि मा त्वा काचिदभिभा विश्रया विदत् (ऋ०
 सं० २।४२।१) ॥ न्यक्रन्दीज्जन्म प्रब्रुवाणो यथास्य शब्दस्तथा
 नामेरयति वाचमीरयितेव नावं सुमङ्गलश्च शकुने भव कल्याण-
 मङ्गलो मङ्गलं गिरतेर्गुणात्यर्थे गिरत्यनर्थानिति वाङ्मलमङ्ग-
 वन्मज्जयति पापफामिति नैरुक्ता मां गच्छत्विति वा मा च त्वा
 २५ काचिदभिभूतिः सर्वतो विदद्गुत्समदमर्थमभ्युत्थितं कपिञ्जलोऽ-
 भिववाञ्चे तदभिवादिन्येषर्भवति ॥ ४ ॥

१ ग. ज. मा च परिचक्षीरन्. २ ग. ज. °भुक्षा स्म ह्यु°. च. °भुक्षा स्म ह्यु रु°
 स ३ ग. ज. र्थि।क°. ४ ग. ज. °यतिरै°. ५ ठ. °वति । इति निरुक्तमुत्तरपदञ्च
 द्वि० मृनीयः खण्डः; ङ. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपदके तृतीयाध्याये तृतीयः

कानिकदञ्जनुषं प्रब्रवाण इति । गृत्समदस्यार्पम् । शकुनिरुतश्रवणे जपे
विनियोगः (आश्व० गृ० ३ । १० । ९) । कानिकदत् न्यकन्दीत् ।
पुनःपुनः भृशं वा क्रन्दसीति मध्यमपुरुषेण नुतिरुतस्मर्धर्चमपेक्ष्य ।
जनुषं प्रब्रवाणः आत्मनोऽभिजातिं कथयन्नित् इत्यति वाचम् इयर्षि

शकुनेः

वाचम् । कथमीरयसि । नाविक इव पुनःपुनः
नात्रं पारगमनाय । यस्त्वमेवमीरयसि स त्वं

सुमङ्गलश्च हे शकुने प्रशस्तमङ्गलः अस्माकं भव । वयमपि च तुभ्यमि-
त्याशास्महे । मा त्वा काचिदभिभा अभिभूतिः परोपद्रवः विरुष्या सर्वप्रकारा

प्रायः शकुनिषु
शब्दमूल्यानि नामधे-
यानि

सर्वतो विदत् विदत्विति । ' यथास्य शब्द-
स्तथा नाम ' इति । तदिदं शकुनिषु
बहुलमित्यत्रोक्तम् (निरु० ३ । १८) ।

' मङ्गलं ' कस्मात् । ' गिरतेः ' धातोः ' गृणात्यर्थे ' वर्तमानस्य ।
स्तुत्यं हि तद्भवति । ' गिरत्यनर्थानिति वा ' ।
मङ्गलं कस्मात्
अस्यैव वा गिलनार्थस्य । किमिदं गिलति ।

उत्पद्यमानमेवेदमनर्थान् गिलेति भक्षयति । वा ' अङ्गलम् ' एतन्मका-
रोपजनेन मङ्गलम् । कोऽर्थः । ' मङ्गवत् ' । अङ्गैरवयवैर्दधिमध्वश्रुता-
दिभिस्तद्भवत् । रो मन्वर्थे । व्यत्ययश्च रलोः । अथवा । मज्जयतेर्मङ्गलम् ।
किं ' मज्जयति । पापकामिति नैरुक्ताः । उत्पद्यमानमेवेतन्मङ्गलिनः पुरुषस्य
मज्जयति नाशयति यदस्य किञ्चित्पातकं भवति । एवं मज्जयतेर्मङ्गलमिति
नैरुक्ता विदुः । ' मां गच्छत्विति वा ' । गर्भेर्वा । सर्व एतन्मन्यते
मामेतद्गच्छत्विति । ' गृत्समदमर्थमभ्युत्थितम् ' इति स्तुतिलाभकारणम् ।

गृत्समदं कपिञ्ज-
लोऽभ्युत्थितमर्थं स्वरु-
तेन दर्शयामास

स किल कंचिदर्थं सिसाधधिपुरभ्युत्तस्यौ । तम-
भ्युत्थितं ' कपिञ्जलः ' शकुनः ' अभिव-
वाशे ' तस्तिद्धिमावेदयेत् । यथा चैतदेवं
' तदभिवादिन्येपरमं वति ' ॥ ४ ॥

१ ग. इति गृ० २ ग. च. ' पुः ' सकृद्भव. इ क. ग. घ. झ. ट. ठ. ड. कथम् ।
ईरयितेव । नां ; च. कथमीरयसि० तेष. ४ च. अस्यैव. ५ च. लियेति० गिल.
६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' यति वा । अथवा । अङ्ग ' ; । च. ' यति वा ' अङ्गलं
अथवा. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अङ्गवत्. ८ ग. ज. ' रलोः ' नास्ति.
० ग. ज. ल्याथ. १० ग. ज. ' यति । म ' ; च. ' यति म ' तेम. ११ ठ. ड.
मा. १२ क. ख. ' दयत् ; च. ' दयत् ' न. १३ ठ. ड. ' वति । इति निरुक्त-
टीकायामुत्तरपटके तृतीयोऽध्याये चतुर्थः खण्डः (उ. निरु० उत० त्रि० चतु०).

५
१०
१५
२०
२५

भद्रं वद दक्षिणतो भद्रमुत्तरतो वद । भद्रं पुरस्तोत्रो वद भद्रं
पश्चात्कपिञ्जल (खैलिके सूक्ते ३ । १) ॥ इति सा निगदव्या-
ख्याता गृत्समदो गृत्सो मदनो गृत्स इति मेधाविनाम गृणातेः
स्तुतिकर्मणो मण्डूका मञ्जूका मज्जनान्मदतेर्वा मोदतिकर्मणो
मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणो मण्डयतेरिति वैयाकरणा मण्ड एपामोक
इति वा मण्डो मदेर्वा मुदेर्वा तेषामेषा भवति ॥ ५ ॥

भद्रं वद दक्षिणत इति । इह शकृनिः किल कस्यांचिद्विशि साधुर्म-
वति । कस्यांचिदसधुः । स एष ब्रवीति । दक्षि-
कपिञ्जलः णतः उत्तरतः पश्चात् पुरस्ताच्च सर्वत एव

१० त्वमस्माकं कपिञ्जल भद्रं वदेति । ' गृत्समदो गृत्सो मदनः ' । गृत्सश्चासौ
मदनश्च गृत्समदनः । गृत्सो मेधावी मदनो हर्षाद्धैः ।

' मण्डूकाः ' (३) इत्येतत्पदं वक्तव्यम् । य एते ' मण्डूकाः ' एते

मण्डूकाः कस्मात् ' मञ्जूकाः ' । कस्मात् । ' मज्जनात् ' ।
नियमग्रा ह्येत उदके । ' मन्दतेर्वा ' स्यात्

१५ ' मोदतिकर्मणः ' । नियममुदिता हि ते । ' मन्दतेर्वा ' स्यात् तृप्ति-
कर्मणः ' । नियतृप्ता हि ते प्रचुरोदकत्वात् । ' मण्डयतेरिति वैया-
करणाः ' । ते हि भक्तिभिर्नानाचित्राभिर्विधात्रा मण्डिता भवन्ति ।
' मण्ड एप.मोक इति वा ' । मण्डे उदके एपामोको निवास इति
वा मण्डूकाः । ' तेषामेषा भवति ' ॥ ५ ॥

२०

संवत्सरं शिशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्य-
जिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः (ऋ० सं० ७। १०३ । १) ॥

२१

संवत्सरं शिशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणो ब्रुवाणा अपि वोपमार्थे
स्याद्ब्राह्मणा इव व्रतचारिण इति वाचं पर्जन्यप्रीतां प्रावादिषु-
र्भण्डूका वसिष्ठो वर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव तं मण्डूका अन्वमोदन्त स
मण्डूकाननुभोदमानान्दृष्ट्वा तुष्टाव तदभिवादिन्येपर्गर्भवति ॥६॥

१ ड. थ. घ. पश्चात्कपिञ्जल. २ क. ख. ड. थ. घ. उ. ड. गृत्समदना.

३ ग. इति; घ. झ. ट. इति । इति सा निगदव्याख्याता । इह; च. इति । ५

६ इति सा निगदव्याख्याता; उ. ड. णता वदेति. ४. ट. हर्षाद्धैः. ५ ग. अ.
मोदनकं. ६ ठ. ड. वति । इति विक्रमटीकाय मन्तरके तृतीयेऽध्याये (ठ.

३२

मिहक. उत. मृ. ध्या०) पञ्चमः खण्डः.

संवत्सरं शशयाना इति । वसिष्ठस्यार्पणम् । संवत्सरं शिक्षानाः
 मण्डूकाः निर्वाचः संवत्सरं सुप्ता इव स्थित्वा ब्राह्मणाः
 ब्रूयाणाः सार्थाः सन्तो वक्तुं व्रतचारिणः
 कृतवाकसेयमाः ततः प्राण्डूकाः प्राण्डूकानि वृष्टाः पर्जन्येन तपितां वाचं
 प्रमण्डूका अधादिषुः प्राणादिपुर्मण्डूकाः । अथवा । न युक्तो रूढिपरि- ५
 बाधो ब्राह्मणशब्दस्येति लुप्तोपमः प्रकल्प्यते ' ब्राह्मणा इव व्रतचारिणः ' इति । यथा ब्राह्मणा उपाकृत्य प्राण्डूपि पवित्रपाणयो मन्वलिनो नियत-
 कालीस्तां वैदिकीं वाचं वदन्त्वेवं प्राणादिपुर्गति ।

' वसिष्ठो वर्षकामः ' इति स्तुतित्वाभनिमित्तम् । म किल्ल वर्षन्तं
 वसिष्ठो वर्षकामो पर्जन्यं तुष्टाव । तं मण्डूका अन्वमोदन्त १०
 मण्डूकास्तुष्टाव स्तुहि स्तुहीति । ' म ' तान् अनुमोदमानान्
 वाच्यमानान् दृष्ट्वा लब्धं वर्षनिमित्तमिति

परितुष्टस्तानेव ' तुष्टव ' । यथा चैतदेवं ' तदभिवादिन्येवर्गभवति ॥६॥
 उप प्रवद मण्डूकि वर्ष मा वद तादरि । मध्ये हृदस्थं प्रवस्व
 विगृह्य चतुरः पदः (खैलिकं सूक्तं १६) ॥ इति सा निगद- १५
 व्याख्याताक्षा अश्रुवत एनानिति वान्यश्रुवत एभिरिति वा ।
 तेषामेषा भवति ॥ ७ ॥

उप प्रवद मण्डूकि मण्डूकानां मातः । अथवा । मण्डूकपते मण्डूकि ।
 वसिष्ठो मण्डूकी- माम् उप गम्य प्रकर्षेण वद । वयं च प्रवद । २०
 मुत्तेजयति वर्षम् आभिमुह्येन वद । तादरि तरणशीलं ।
 अथवा । तावद्दुरि । यावच्छरीरं तावदेवादरं
 तस्याः । ततो वृष्टे देवे अण्डुने उदकनैतस्मिन्नेकजलीभूते मध्ये हृदस्थ
 उदकस्य बहूनः प्रवस्व उपरि विगृह्य प्रसार्थ एतांश्चतुरः पदः । पौदानि-
 व्यर्थः । पौदस्य पदादेशः क्रियते । २५

१ ग इति । व° । २ ग. च. ज. प्रकल्पते. ३ ग. ज. 'कालाभा वै'; च.
 'कालीभा वै' लाः तां. ४ ठ. ड. 'वति' इति निरुक्तभाष्ये उत्तरपदस्य तृतीया-
 ध्याये (ह. भाष्ये ३ ध्याये) षष्ठः खण्डः. ५ क. ख. त. प्रवद; द. उपलपवद.
 ६ क. ख. घ. झ. ट. ड. प्रवद; घ. ज. झ. ट. सर्वा ऋण्यटयोः. ७ ग.
 मण्डूकि ० मण्डूकानां मां; च. मण्डूकि ० मण्डू हे मण्डूकि; ट. ड. मण्डूकीति.
 ८ ग. च. ज. एतश्च. ९ क. ख. पदा; च. पदा पा. १० क. ख. इ. ट.
 ड. ह पादशब्दस्य; च. पादशब्द.

- ‘ अक्षाः ’ इत्येवमादीनि लब्धवस्तुतिःवाःपृथिव्यायतनवत्त्वसामान्यादिह
 अक्षशब्दस्य व्यु- वर्गे समाग्नातानि । तेषां च यथासामान्नातमेव
 त्यतिः ‘ अक्षाः ’ (४) प्रथमं निर्वक्तव्याः । ते कस्मात् ।
 ‘ अश्रुवत एनानिति वा । दीव्यन्तः कितवा
 ५ एतानक्षान्पाणिभिः अश्रुवते व्यापयन्ति । त एते अश्रोतेः कर्मणि
 कारके । अथवा । ‘ अश्रुवते ’ । अभिपुत्रस्य तस्यैवाश्रोतेः करणे कारके ।
 तैर्हि कितवाः प्रतिकितवं धनमभ्यश्रुवते । ‘ तेषामेषा भवति ’ स्तुतिः ॥७॥

- प्रावेपा मां वृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्तमानाः ।
 १० सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्महामच्छान्
 (ऋ० सं० १० । ३४ । १) ॥ प्रवेपिणो मा महतो विभीद-
 कस्य फलानि मादयन्ति प्रवातेजाः प्रवणेजा इरिणे वर्तमाना
 इरिणं निरुणमृणातेरपार्णं भवत्यपरता अस्मादोषधय इति वा ।
 सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः । मौजवतो मूजवति जातो मूजवान्
 १५ पर्वतो मञ्जवान् मुञ्जो िमुच्यत इषीकयेषीकेषतेर्गतिकर्मण इयम-
 पीतरेपीकैतस्मादेव विभीदको विभेदनाज्जागृविर्जागरणान्महामच-
 च्छदत्प्रशंसत्येनान्प्रथमया निन्दत्युत्तराभिर्ऋषेरक्षपरिद्यूनस्यैत-
 दार्पं वेदयन्ते ग्रावाणो हन्तेर्वा गृणातेर्वा गृह्णातेर्वा तेषामेषा
 भवति ॥ ८ ॥

१०

प्रावेपा मेति । अश्रुपुत्रस्य मौजवत अपमम् । प्रावेपाः प्रवेपिणः
 अक्षाः प्रकर्षणे वेपनशीलस्य वृक्षस्य जाता महतो मां मा-
 दयन्ति हर्षयन्ति वा तर्पयन्ति वा । प्रवातेजाः
 प्रचुरवाते स्थाने काले जाताः प्रावृट्काले । पक्षानां वा प्रचुरवाते काले
 पतनाभिप्रायं जन्म । विभीदक एक एव वा विशेष्यते । यः प्रवणे उद-
 कबहुले देशे जातस्तस्य फलानि अक्षाः । इरिणे वर्तमानाः । निर्ग-

१ ग. च. ज. अभ्यश्रु°. २ ठ. ड. °स्तुतिः । इति निरुक्टीकायामुत्तरषट्के
 तृतीयाध्याये (ठ. निरुक्० उक्त० तृ०५०) सप्तमः ६०६ः. ३ छ त. प्रवतेजा.
 ४ छ. त. द. द्युतस्यै°. ५ ग. °मेति°. ६ ग. अ. °नां वाते काले°. ७ म.

२९ च. ज. ट. विभी°.

तीर्णे आस्फुरकस्थाने वर्तमानाः । न हि तत्र पुत्रपौत्रानुगमृणं भवति ।
 'अपार्णं' वा । उपसर्गस्यान्वत्यमेव केवलम् । अथवा । अपार्णम् अपगतो-
 दकम् । 'अपरता ओषधय इति वा' । अपेत्य तस्मादन्यत्र ओषधय इति ।
 कथं मादयन्ति । सोमस्येव । यथा सोमस्य मौजवतस्य भक्षो यजमानं
 मादयति हर्षयति तर्पयति तथा । विभीदको विभेत्ता कोष्ठस्य जागृविः
 जागरणकर्ता । यो जैयति स हर्षेण जागर्ति योऽपि जीयते स दुःखेन
 जागर्ति । स एष विभीदक एवंप्रकारो मह्यम् अर्चच्छदत् । स्वेन फलश-
 ब्देन सर्वार्थेषु पुनःपुनः भृशं वा मनश्छादयित्वा देवने एधैकस्मिन्मम
 मनः उत्साहयति ।

५

मौजवतः सोमः । स कस्मात् । 'मूजवति जातः' । अथ 'मूज-
 वान्' कः । 'पर्वतः' । स कस्मात् ।
 कथं सोमः मौज- 'मुञ्जवार्' । मुञ्जैस्तद्वान् । अथ 'मुञ्जः'
 वतः कस्मात् । स हि 'विमुच्यते इषीकया' ।
 अथ 'इषीका' कस्मात् । 'इषीगेतिकर्मणः' । सा हि निर्गता
 भवति मुञ्जात् । 'इयमपीतरेपीकैस्म देव' । या हृल्लेपा अन्या वा ।
 सापि हि निर्गता भवति ।

१०

१५

'प्रावाणः' कस्मात् । 'हन्तेर्वा' । तदर्थोपपत्तेः । वर्णव्यापत्युप-
 प्रावाणः कस्मात् जनाभ्याम् । 'गृणातेर्वा' स्तुत्यर्थस्य । स्तुयन्ते
 हि ते । 'गृह्णातेर्वा' । गृह्णन्ते हि ते । 'तेषा-
 मेषा' स्तुतिः 'भवति' ॥ ८ ॥

२०

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम प्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
 यदद्भ्यः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः
 (ऋ० सं० १०।९४।१) ॥ प्रवदन्त्वेते प्रवदाम वयं प्रावभ्यो वाचं

१ ग. ज. निर्गत आस्फु° । २ व. झ. ट. ठ. ड. आस्फार°; च. आस्फूर°
 स्फा. ३ ग. च. ज. विभी°. ४ ग. च. ज. विभे°. ५ ग. यजति महर्षेण; च.
 यजति मी (स) हर्षेण; ज. यजति स हर्षेण. ६ च. अविच्छ°. ७ ठ. ड.
 षति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपदके तृतीयोऽध्याये (५. निरु० टी० उच्च० तृ०
 पृष्ठा०) अष्टमः खण्डः; क. ख. च. वर्र्णविभेदश्चो नास्ति.

२९

वदत वदद्भ्यां यदद्रयः पर्वता आँदरणीयाः सह सोममाशवः
 लिप्रकारिणः श्लोकः शृणोतेर्घोषो घुष्यतेः सोमिनो यूयं स्थेति
 वा सोमिनो गृहंष्विति वा येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो
 मन्त्रस्तस्यैषा भवति ॥ ९ ॥

७

प्रैते वदन्तिवति । अर्बुदस्येयमर्पम् । यस्मात्ते अद्रयः आँदरणीया आद-
 रणार्हाः पर्वन्तः साकमाशवः सहभृताः सोम-
 प्रावाणः

मश्रीथ अभिषुणुथ । तं चाभिषुण्वन्त इन्द्रः य श्लोकं

श्रवणीयं ह्यथ घोषं शब्दं भरथ धारयथ निर्वर्तयथ । ये ते यूयम् अमुना
 प्रकारेण यस्मात् सोमिनो भवथ । अथवा । सोमिनः सोमेन तद्वतो यज-
 मानस्य गृहेषु एवं कुरुष्वे तस्माद्युष्मानधिकृत्य ब्रवीमि प्रैते वदन्तु युष्म-
 दर्थं स्तुतीरुद्रतारः । प्रवदामि वयं होतारः । अध्वर्युनपि च ब्रूमहे ।
 एभ्यो प्रावभ्यो वाचं वदद्भ्यो वदत वाचं या वक्तव्या एतान्प्रतीति ।

‘ नाराशंसः ’ (६) इति समाह्नातः । कः पुनरेष नाराशंसः ।

१५ ‘ येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः ’ । किमत्र मन्त्रः स्तूयते । न
 इत्युच्यते । लक्षणं मन्त्रः । नराः स्तूयन्ते ।

नाराशंसो मन्त्रः ।
 तथापि न मन्त्रः एवं तर्हि नराणामिव समाह्वानं प्राप्तमार्सुत् । न ।
 स्तूयते किंतु नराः । तेषां सामान्यस्तुत्यभावाद्वाज्ञां च स्तुत्युपपत्तेः ।
 तेषामपि च सामान्या स्तुतिर्नास्ति । अस्ति
 जान एव स्तूयन्ते त्वैकैकस्येन केषांचित् । यतो भावयव्यं लक्षणी-
 कृत्य नाराशंसो मन्त्र उदाह्रियते । ‘ तस्य ’

नाराशंसस्य मन्त्रस्योदाहरणम् । ‘ तस्य ’ वा भावयव्यस्य प्राधान्यस्तुतिः
 ‘ एषा ’ ऋग् ‘ भवति ’ ॥ ९ ॥

१५ १ क. ख. ड. थ. घ. ठ. ड. अदर°. २ ग. °न्तिवति । अ°. ३ क. ख.
 ग. ज. अर्द°; च. अँद° आ. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. पर्वताः पर्ववन्तः;
 च. °र्हाः ° पर्व° पर्वताः. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तं तं; च. °णुथ । ° तं°
 ते. ६ क. ख. घ. झ. ठ. ठ. ड. °दाम च व° ° क. ख. ग. ज. ठ. ड. नरा°. ७
 ग. अ. °भ्रातं; च. °भ्रान्तं प्रा° नं. ९ क. ख. ग. च. ज. त्वैक° १० ग. अ.
 नरा°; च. नैरा° ना. ११ ठ. ड. °वति । इति निरुक्तीकायामुत्तरादके तृतीयेऽ-
 ध्याये (३. निरुक्. ०३० तृतीयाध्या.) नामः; रु. ७६ः.

अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्थं ।
 यो मे महस्त्रमभिधीत सवानतूर्तो राजा श्रवं इच्छ्यामः (ऋ०
 सं० १।१२६।१) अमन्दान्स्तोमानवालिशाननल्पान्वा बालो
 बलवर्तो भर्तृव्यो भवत्यम्बास्या अलं भवतीति वाग्वासुं बलं
 भवतीति वा बलो वा प्रतिषेधव्यवहितः प्रभरे मनीषया मनस
 ईषया स्तुत्या प्रज्ञया वा सिन्धावधि निवसतो भाव्यव्यस्य राज्ञो
 यो मे सहस्रं निरमिमीत सवानतूर्तो राजातूर्ण इति वात्वरमाण
 इति वा प्रशंसामिच्छमानः ॥ १० ॥

इति नवमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

१०

अमन्दान्स्तोमानिति । दानपरितुष्टः कर्क्षीवान् ब्रवीति । अमन्दान्
 राज्ञो भाव्यस्य अवालिशान अनल्पान्वा अवालिशयेत्यान् प्रभरे
 स्तुतिः उच्चारये मनीषा स्तुत्या प्रज्ञया वा । कस्य भाव-
 व्यस्य । भावेन वासावाज्जेनेव सर्वार्थान् यवतीति
 मिश्रति अनुतिष्ठतीति भाव्यव्यः । क निवसतः । सिन्धावधि क्षियतः निव-
 सतः । यः किमकरोत् । यो मे सहस्रं बहून् सवान् यज्ञान् निरमिमीत निर्मि-
 तवान् । बहूनां यज्ञानां गामोपकरणं दत्तवान् । अतूर्णः अतूर्णः अच-
 पलः अःवरमाणः । क्रमं ग यो निरमिमीत सहस्रं मम सवान् प्रशंसामि-
 च्छमानः अमन्दान् स्तोमान् तस्मै भाव्यव्याय राज्ञे प्रभरेऽहमिति ॥ १० ॥

१५

चतुर्दशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१०

१ छ. त. द. बलभर्ता. २ ड. थ. घ. छ. त. द. राजातूर्णं. ३ ड. थ. घ.
 छ. त. द. वा त्वं. ४ ड. थ. घ. 'इति पाद' नास्ति; छ. प्रथमः पादः; त.
 नवमेध्याये प्रथमं; द. इति नैरुक्ते उत्तरार्धस्य प्रथमः पादः. ५ ग. 'निति । द्वां.
 ६ ग. 'तुष्टवः क ; च. तुष्टीनेः कं छः; ज. तुष्टावः. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. 'भरे प्रहरे उं. च. 'भरे च उं' प्रहरे. ८ च. न्यव इति य. ९ क. ख. घ.
 ट. ठ ड. 'सवान् भवः प्रशंसं; च. सवान् प्रं भवः १० ठ ड. 'वति । इति
 चतुर्दशाध्यायस्य प्रथमः पादः । इति निरुक्तश्रीकायामुत्तरतटके तृतीयोऽध्याये
 दशमः खण्डः; क. ख. च वर्जमिनेरुक्त्वो नास्ति.

१५

१९

द्वितीयः पादः ।

यज्ञसंयोगाद्राजा स्तुतिं लभेत राजसंयोगाद्युद्धोपकरणानि
तेषां रथः प्रथमागामी भवति रथां रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरनेर्वा
स्याद्विपरीतस्य रममाणोऽस्मिस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वा रसतेर्वा
तस्यैषा भवति ॥ ११ ॥

- १० ' यज्ञसंयोगाद्राजा स्तुतिं लभेत ' इत्येवमादि । तैत्तृष्यपूर्वप्रकृतस्यैव
भावयव्यस्य स्तुतिलाभनिमित्तमेव मन्त्रगतमन्य-
राजा यज्ञसंबन्धा- भावयव्यस्य स्तुतिलाभनिमित्तमेव मन्त्रगतमन्य-
स्तुतिं लभते ते । यस्मात्सहस्रं सवानिरमिमीत तस्मात्प्रभर इति
काचिन्मन्यन्ते । अपरे पुनर्युद्धोपकरणानामुत्तरेषां
सामान्यमेतत्स्तुतिलाभनिमित्तमिति वर्णयन्ति । तत्कथमिति । अश्वमेध
हि ' जीमूतस्येव भवति प्रतीकम् ' (ऋ० सं० । ६ । ७५ । १)
इत्यनेन सर्वयुद्धोपकरणोपेतं रथमधिरूढः सन्नद्धकवचो राजा स्तुयंत
(मैत्रा० सं० ३ । १६ । ३) । स कस्मादित्युपोद्धृत्योच्यते ।
१५ ' यज्ञसंयोगाद्राजा स्तुतिं लभेत ' । स तावद्यज्ञसंयोगास्तुतिं लभते ।

- अथ पुनर्युद्धोपकरणानि किमिति स्तुतिं लभन्त इति । ' राजसं-
योगाद्युद्धोपकरणानि ' । युद्धोपकरणानि इति युद्धोपकरणानि । युद्धे
योपकुर्वन्तीति युद्धोपकरणानि । स एष हि
युद्धोपकरणानि व्यापी स्तुतिसंक्रमन्याय आचार्योपप्रदर्शितः ।
२० राजसंबन्धास्तुयन्ते तद्यथा । युद्धोपकरणानि राजसंयोगास्तुतिं
लभन्ते । तस्य तान्यङ्गानीति तत्संबन्धास्तुयन्ते । राजापि यज्ञसंयोगाद्य-
ज्ञोऽपि देवतासंबन्धाद्व्यता अथात्मसंबन्धात् । साऽयमत्रमात्मैवाङ्गप्रत्यङ्ग-
भावेनावस्थितः सर्वावस्थितः स्तुयत इत्यात्मस्तुतिरेवेयं सर्वा । तद्गु-
क्तम् । ' स्थाने स्थाने स्तुतिः सर्वा स्थानाधिपतिभागिनी । आत्मप्रतिष्ठा
२५ बोद्धव्या तथोपकरणस्तुतिः ' ॥ इति । एष स्तुतिसंक्रमन्यायः सर्वत्रो-
पसंधेयः ॥

- १ छ. त. द. ' रसतेर्वा ' न स्ति. २ क. ख. १ (११), त. द. १.
३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तदेवत्पू. च. तत्पू. देव. ४ ग. च. ज. लभते.
५ ग. ज. ' त्वेवात्मैः ' ; च. ' मेवात्मैः ' वमा. ६ ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ' वस्थः
२० स्तु. ; च. ' वस्थैः ' १ थः.

‘तेषां रथः (७) प्रथमागामी भवति । स कस्मात् । तदाधारत्वादितरेषां युद्धोपकरणानाम् । ‘रथः’ कस्मात् । ‘रंहतेर्गतिकर्मणः’ । तस्य हि तदर्थेवोत्पत्तिः । ‘स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य’ । स्थिरः सन् रथ इत्युक्तः । तत्र हि स्थिरमुपतिष्ठितो योद्धा भवति न तथाश्वादेषु । ‘तस्यैषा भवति’ स्तुतिः ॥ ११ ॥

५

वनस्पते वीडङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः संनद्धो असि वीळ्यस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि (ऋ० सं० ६ । ४७ । २६) ॥ वनस्पते दृढाङ्गो हि भवास्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः कल्याणवीरो गोभिः संनद्धो असि वीळ्यस्वेति संस्तम्भस्वास्थाता ते जयतु जेतव्यानि दन्दुभिरिति शब्दानुकरणं द्रुमो भिन्न इति वा दन्दुभ्यतेर्वा स्याच्छब्दकर्मणस्तस्यैषा भवति ॥ १२ ॥

१०

वनस्पते वीड्वङ्ग इति । गर्गश्यापम् । हे वनस्पते वानस्पत्य रथत्वमुच्यते । वीड्वङ्गो दृढाङ्गो भव । ततश्च अस्मत्सखा अस्मिन्नित्रं प्रतरणः प्रतारणः संग्रामाणां

१५

पारं नेता सुवीरः कल्याणवीरः अविक्लवानवखण्डिताधिष्ठाता भव । किंच । कृतप्रतीकारैस्त्वमस्माभिः गोभिः असि संनद्धः समन्ततो नद्धो बद्धो गव्येन चर्मणा श्लेष्मणा च । स त्वं कृतप्रतीकारमात्मानं मत्वा तेन हेतुना सुतरामात्मानं वीळ्यस्व संस्तम्नुहि । संस्तव्ये च त्वय्यवस्थितः आस्थाता ते अधिष्ठाता तव योद्धा यानि तेन जेतव्यानि अत्मनोऽर्भक्षितानि तानि सर्वाणि जयतु ।

२०

१ च. °वोपपत्तिः २ क. ख. २ (११); उ. ड° स्तुतिः । इति नि (इ. ने) हकटीमायामुत्तरषट्के तृतीयाध्याये (ठ. नि० उ० तृ० ध्या०) एकादशः खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ३ क. ख. छ. त. द. धीलय°. ४ छ. त. द. दृढाङ्गो. ५ छ. त. द. स्याद्वधकर्मण°. ६ क. ख. २ (१२); त. द. २. ७ ग. इति । ग°. ८ ग. ज. अस्मिन्नित्रं. ९ ग. ज. अविक्लवा°; ख. अविक्लवा° कृ. १० ग. ज. °कारत्वम्°. ११ ग. च. ज. शब्धः. १२ च. नद्धो ° ग° बद्धो.

२६

‘दुन्दुभिः’ (८) इत्यस्य योऽभिधेयस्तस्य ‘शब्दानुकरणम्’ आत्मनो
नामधेयप्रतिलम्भनिमित्तम् । यथेवासावमिहन्य-
दुन्दुभिः कस्मान् मानः शब्दं करोति दुन्दुभिर्गिरिति तदेव तस्य नाम ।

‘द्रुमो भिज इति वा’ । द्रुमशब्दात्पूर्वपदं भिदेरुत्तरपदम् । तत्संभवो ह्यसौ
द्रुमकदेशो निष्कृषितधर्मणा पिनद्धः । ‘तस्यैषा भवति’ ॥ १२ ॥

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्टिं जगत् ।
स दुन्दुभे सज्जुरिन्द्रेण देवैर्दूरादधीथो अप सेध शत्रून् (ऋ० सं०
६ । ४७ । २९) ॥ उप श्वासय पृथिवीं च दिवं च बहुधा ते घोषं
१० मन्यतां विष्टितं स्थावरं जङ्गमं च यत्स दुन्दुभे सहजोषण इन्द्रेण
च देवैश्च दूराद्दूरतरमप सेध शत्रूनिपुधिरिपूर्णां निधानं तस्यैषा
भवति ॥ १३ ॥

उपश्वासय पृथिवीमिति । अत आरभ्य सर्वा एता युद्धोपकरणा ऋचः ।
११ दुन्दुभिः भौरहाजस्यार्धम् । हे दुन्दुभे उपश्वासय उप-
शब्दय आपुरय शब्देन एतां चै पृथिवीं
कृत्वा । उत द्याम् । अथै चैकस्यापि सतस्तत्र पुरुत्रा बहुत्वे वर्तमानस्य
मनुतां मन्यतां घोषं यच्चैदं विष्टितं जङ्गमं यच्चैदं स्थावरं च । यस्यैवं
तत्र सामर्थ्यं द्यावापृथिव्यात्रापूरयितुं स त्वं दुन्दुभे सज्जुः सहजोषणः सह-
२० प्रीतिः इन्द्रेण चान्यैः च देवैः दूराद् दूरतरम् अपसेध अपकालय अपुन-
रागमनायास्मच्छत्रनित्येतदाशास्महे ।

१ क. ख. २ (१२); ठ. ड. ‘वति । इति निरुक्तीकायाभूत्तरण्टके तृतीयेऽ-
ध्याये (ठ. निरु० उ० तृ०) द्वादशः खण्डः (ठ. खण्डः । १२ ।); घ. झ.
ट. ज. अङ्गो नास्ति. २ क. ख. ३ (१३); त. व. ३. ३ म. ‘मिति । अ°.
५ घ. झ. ट. ठ. ड भर°. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘च’ नास्ति.
६ क. ख. विष्टितं स्थावरं यच्चैदं जङ्गमं च; ट. विष्टितं यैजङ्गमं; ठ. ड. विष्टितं
जङ्गमं. ७ च. वान्य°. ८ थ. झ. ट. ड. अगमय; च. ‘अपकालय’ नास्ति;
९८ ट. ‘तेषु अपगमैषाणु’ काल. ९ क. ख. घ. झ. ट. ड. ड. ‘स्महे त्वत्तः । इ°.

इषुधिः कस्मात्

'इषुधिः' (९) इषूणां निधानं तूणः ।
तस्मिन्निषवो निर्धयन्ते । 'तस्यैषा भवति' ॥ १३ ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः (ऋ०
सं० ६ । ७५ । ५) ॥ बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्र इतीषुनभि-
प्रेत्य प्रस्मयत इवापात्रियमाणः शब्दानुकरणं वा सङ्काः सचतेः
संपूर्वाद्वा किरतेः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूत इति व्याख्यातं
हस्तग्नो हस्ते हन्यते तस्यैषा भवति ॥ १४ ॥

१०

बह्वीनां पितेति । योऽयमिषुधिः बह्वीनां बहूनामिषूणां पाता रक्षिता
इषुधिः तदर्थत्वात् । यस्य चेपुधेः बह्वः इषुकलापः
पुत्रः पुरुणो बहूनः पापत् प्राता । तदर्थं

हसौ रक्षयत इत्येवं व्युत्पाद्यम् । यश्च यं चिश्चाकृणोति । प्रस्मयत इव औपा-
त्रियमाणः । प्रकर्षेण स्मयत इव उदघाटयमानश्चित्रपुङ्गत्वात् । अथवा । हस-
तीव शोभया पुङ्गदीप्या । अस्मिन्पक्षे चिश्चिस्तिरपठितोऽपि धातुः
फल्यत इति । ' विकरपक्षेषु तदर्था-यधातूपादानम् ' इत्याचार्यपारि-
भाषा । अथ ' वा शब्दानुकरणम् ' । चिश्चिदित्येवं शब्दं करोति ।
कदा । समना संग्राममवगत्य प्राप्य । स एव इषुधिः सङ्काः संकटान्
संपृक्तान् वा संग्रामान् पृतनाश्च सर्वाः याः स्पर्धमनैरिषव एव केवलमभि-
र्ह्येक्ष्य क्षिप्यन्ते पताकार्यं तानेवंविधान्संग्रामान् पृष्ठे रथस्य मनुष्यस्य
वा निबद्धो जयति प्रसूतः क्षितो धनुष्मतेत्येतदाशास्महे ।

१५

१०

१ क. ख. ३ (१३); ठ. °वति इति निरु० उ० तृ० ष्याः १३ खण्डः; ड.
°वति इति निरुक्तटीकायां १३ खण्डः । त्रयोदशः खण्डः. २ क. ख. ड. थ. घ.
ठ. ड बहूनां. ३ छ. द. इवावधीय°; त. इवावधीय° । धि. ४ कं. ख. ४ (१४);
त. द. ४. ५ ग. °तेति । यो°. ६ ग. ज. अप. धि०; च. आपधिय°. ७ घ.
झ. ठ. ड. अस्मिन्नर्थे चि°; ग. ज. अस्मिन्नर्थे ऽर्थे चि°. ८ ग. ज. सङ्काः सङ्कयन्
संपृक्तान् संग्रामान् दृत्°. ९ च. °लक्ष्यः. १० क. ख. घ. झ. ड. निनद्धो.

१८

‘ हस्तघ्नः ’ (१०) कलापीपट्टको गोधेति च यमाहुः । स कस्मात् ।
 हस्तघ्नः कस्मात् ‘ हस्ते ’ ङावस्थितोऽसौ ज्याया ‘ हन्यते ’ ।
 ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १४ ॥

अहिरिव भोगैः पर्षेति बाहुं ज्याया हेति परिबाधमानः ।
 हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि प. तु विश्वतः
 (ऋ० सं० ६ । ७५ । १४) ॥ अहिरिव भोगैः परिवेष्ट-
 यति बाहुं ज्याया वधात्परित्रायमाणो हस्तघ्नः सर्वाणि प्रज्ञा-
 नानि प्रजानन् पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वाभीशवो व्याख्या-
 तास्तेषामेषा भवति ॥ १५ ॥

अहिरिव भोगैरिति । योऽयम् अहिरिव भोगैः सर्प इव कुटिलभावैः
 हस्तघ्नः सर्पग्राहकस्य बाहुं सर्पेणैव पर्षेति परिवेष्टयति
 बाहुं धनुष्मतः पुरुषस्य । ज्याया हेति परिबाध-

१५ धमानः । ज्याया वधात् सर्वतस्त्रायमाणस्तदर्थत्वात्तस्य । सोऽयमेवंधर्मा
 हस्तघ्नः पुमानिव पुरुमना इव कश्चिदाप्तः प्रज्ञाबहुलः पुमांसम् एतं धनु-
 ष्मन्तं परिपातु विश्वतः सर्वप्रकारं सर्वतः पात्विल्येतदाशास्महे । स्त्रियम-
 पेक्ष्यामनस्कां पुरुषे बहुतरं मनः । ‘ पुंसतेर्वा ’ पौरुषार्थस्य पौंस्यमिति
 यस्य बलनाम भवति ।

१० ‘ अभीशवः ’ (११) इति वक्तव्यम् । ते पुनरमी ‘ व्याख्याताः ’ अभि-
 धानतोऽभिधेयतश्च ‘ अभीशवोऽभ्यश्रुवते ’ (निरु० ३ । ९) इति ।
 ‘ तेषामेषा भवति ’ ॥ १५ ॥

१ च. कलापीपट्टकः; झ. कलापापट्टकः. २ क. ख. ४ (१४); ठ. ड.
 ० वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के ३ ध्याये १४ खण्डः. ३ क. ख. ५ ।
 १५; त. द. ५. ४ ग. ० रिति । यो. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. वधत्
 ज्यायातात् बाहुं सर्प. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. प्रज्ञानव. ७ च. पुरुमांस. ८
 क. ख. घ. झ. ट. ठ. पुरु. ९ क. ख. ५ (१५); ठ. ड. ० वति ।
 १३ इति निरुक्तभाष्ये (ठ. भाष्ये ३०) ३ ध्याये पञ्चदशः (ठ. १५).

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुपारथिः ।
 अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनुं यच्छन्ति रश्मयः
 (ऋ० सं० ६ । ७२ । ६) ॥ रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुर-
 स्तात्सतो यत्र यत्र कामयते सुपारथिः कल्याणसारथिरभीशूनां
 महिमानं पूजयामि मनः पश्चात्सन्तोऽनुयच्छन्ति रश्मयो धनुर्ध-
 न्वतेर्गतिकर्मणो वधकर्मणो वा धन्वन्त्यस्मादिष्वस्तस्यैषा
 भवति ॥ १६ ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिन इति । यदेतत् रथे तिष्ठन् वर्तमानः सुपारथिः
 अर्भाशवः कल्याणः सुशिक्षितोऽपि सारथिः नेता रथस्य १०
 वाजिनः पुरस्तात् अग्रतः सतो रथयुक्तान्
 रथस्य नीडे पश्चात्सन्नपविष्टः । क । यत्र यत्र कामयते । यत्र यत्रेच्छति
 योद्धा तत्र तत्र नयति । तदेतत्किं सारथ्यमर्भाभाग्यम् । न इत्युच्यते । निर-
 भीशुः को हि सारथिः किं कुर्यात्सुशिक्षितोऽपि । एवम् अभीशूनाम् एतं
 महिमानं मोहाभाग्यं पनायत पूजयामि । यन्मनोऽश्वानामतिप्रवृद्धजवानाम् १५
 मपि तेष्वश्वेषूपनिबद्धाः रश्मयः गृह्णाताः सारथिना पश्चात्सन्तो मनोऽ-
 नुयच्छन्ति । उपरमयन्तीत्यर्थः । संबोध्याभावात्पनायतेत्यस्य पूजयामीति
 पुरुषवचनव्यत्ययः ।

‘धनुः’ (१२) धन्वतेः गत्यर्थस्य । नद्धलेन हापयो गच्छन्ति ।
 ‘वधकर्मणो वा’ । शत्रुवधार्थं तदुच्यते । २०
 धनुःकस्मान्
 ‘तस्यैषा भवति’ ॥ १६ ॥

१ छ. त. द. पूनयत. २ क. ख. ६ (१६) ; न. द. ६. ३ ग.
 ‘यतीति । यं ; ठ. ड. यतीति. ४ ग. सुखारं षा ; च. ज. सुखारं.
 ५ च. शिक्षितो ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘विष्टितिष्ठन् । कं. २५
 ७ च. ‘धर्महां. ८ घ. झ. ट. ठ. ड. निरभीशुको हिं. ९ च. मया.
 १० क. ख. येस्वं ; ट. तेस्वं ये. ११ ग. ज. घ. ‘रश्मयः’ नास्ति. १२ क. ख.
 घ. झ. ट. ठ. ड. ‘षाय हि तं. १३ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘वृषयते. १४ क.
 ख. ६ (१६) ; ठ. ड. ‘वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपटके तृतीयाध्याये षोडशः
 (ठ. निरुक्तभा० उ० ५० नृः ३ अध्याये षोडशं) खण्डः ; घ. झ. ट. ज. अज्ञो नास्ति. ३०

धन्वना गा धन्वनाजि जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
 धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम (ऋ०
 सं० ६ । ७५ । २) ॥ इति सा निगदव्याख्याता समदः समदो वाचेः
 संमदो वा मदतेर्वा जयतेर्वा जिनातेर्वा प्रजावयतीषु णिति वा
 ५ तस्या एषा भवति ॥ १७ ॥

धन्वना गा इति । ताः गाः तावत् धन्वना धनुषा वयमभिरभ्यो
 जयेम । अपि च । अजिम् । इतरेरस्य स्पर्शया यत्र लक्षणेधायैव केवल-
 मिषवः क्षिप्यन्ते वैतकेण्येण प्रतीपार्थं वा तम् आजिम् आजवनं धनु-
 पैव वयं जयेम । या अपि तीव्रा दारुणाः समदः

१०

धनुः

संग्रामाः अनेकशस्त्रसंपातसंघटाः अनेकवीरपुरु-

षाकीर्णाः ता अपि वयं जयेम धनुषैव । अपि च । किं बहुना । समासत एव
 ब्रूमः । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति । यत्र यत्र शत्रुरस्मान् जेतुकामः
 स्यात्ततस्ततोऽपगतकाममस्मत्तो धनुः करोतु । अपगतकामे च तस्मि-

१५

च्छत्रौ वयं धनुषैवैताः सर्वाः दिशः प्रदिशश्च जयेमेत्येतदाशास्महे ।

‘समदः समदो वा संमदो वा’ । संपूर्णस्य अस्तेः भक्षार्थस्य । भक्षत

समदः कस्मात् इव हि तत्र परस्परतः । मदतेर्वा हर्षणार्थस्य
 द्वितीयम् । ‘संमदो वा’ इति । संदृष्टास्तत्र हि

परस्परेतो युष्यन्ति ।

२०

‘व्या’ (१३) इति वक्तव्यम् । सा पुनरियं ‘जयतेर्वा जिनातेर्वा’ ।

अथा कस्मात् धात्वन्वयत्वमर्थैकत्वम् । तद्वलेन हि जीयते । स
 पुनरेष धनुर्गुणः । तस्यै एषा भवति ॥ १७ ॥

- १ क. ख. ७ (१७); त. द. ७. २ ग. इति । ता. ३ च. वयमपरिभ्यां.
 १५ ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. इतरेतरस्पर्शया. ५ ग. च. ज. वैतकेण; घ. ट.
 वैतकेण. ६ ट. प्रतीपार्थं पनाकार्थं. ७ च. °अजेवनं; ट. ड. °आजवनं.
 ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. भक्षणार्थस्य. ९ ग. च. परस्यतो; ज. परस्यतो.
 १० च. °न्यत्वसमर्थे. ११ ग. च. ज. तस्यैषा. १२ क. ख. ७ (१७);
 ट. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपटके तृतीयोऽध्याय (३. °रुक्मा० उ०
 २० वृ० व्या०) समदशः रूपदः; घ. झ. ट. ज. अङ्गं नास्ति.

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिपस्वजाना ।
योषेव शिङ्के वितताधि धन्वन् ज्या इयं समने पारयन्ती (ऋ०
सं० ६ । ७५ । ३) ॥ वक्ष्यन्तीवागच्छति कर्णं प्रियमिव सखा-
यमिषुं परिष्वजमाना योषेव शिङ्के शब्दं करोति वितताधि
धनुषि ज्येयं समने संग्रामे पारयन्ती पारं नयन्तीपुरिपतेर्गति-
कर्मणो वैधकर्मणो वा तस्यैषा भवति ॥ १८ ॥

वक्ष्यन्तीवेति । येयं योषिदिव काचित्कस्मैचिदिष्टाय पुरुषाय किञ्चि-
द्रहस्यं वक्ष्यन्तीव कथयिष्यन्तीव ज्या धनुष्मता
ज्या पुरुषेण इष्टं चिक्षिप्सता सव्येन दक्षिणेन वा १०
पाणिना कृष्णमाणा सव्यं दक्षिणं वा कर्णं प्रत्यागनीगन्ति आगच्छति । कथ-
मिति । प्रियं सखायं परिपस्वजाना । प्रियम् इष्टं काचित्काचित् सखायं
समानस्यानर्नम् उपजातप्रोक्तिं स्त्री पुरुषमिवेपुं परिष्वजमाना । संप्रत्यर्थ
एव सस्वजानेत्यभ्यासोऽर्थविशेषभावात् । यथा हि सा कर्णं प्रत्याकृष्यते
धनुष्मता तथा मध्यमात्मनो निनीय इषुं परिष्वजत इव । किमेतावदेव । १५
नेत्युच्यते । या चेयं योषेव शिङ्के योषिदिव विदग्धा काचित्काभिना
पुरुषेणात्मानं प्रत्याकृष्यमाणोपजायमानपरितोषा कामिनः पुरुषस्य हर्ष-
मुत्पादयन्ती शिङ्के मुकुमारमव्यक्तशब्दं करोति । वितताधिधन्वन् धनुषि
अध्यारोपिता सेयमस्माकमेवमादिगुणयुक्ता ज्या समने संग्रामे पारयन्ती
अस्तु । पारम् अन्तं नयन्ती अस्तु शत्रूणांभित्येतदाशास्महे । २०

‘ इषुः ’ (१४) इत्येतत् ईषिभेर्गतिकर्मणः । तदर्थमेवासावुन्पाद्यते ।
वधाथेःय वा । तदर्थमेव ह्यसां गच्छातं ।
इषुः कस्मात्
‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १८ ॥

१ छ. त. द. ‘शिङ्के’ नास्ति. २ क. ख. छ. त. द. ‘न्तीषुषि’; त. ‘न्तीषु-
रीष’ रि. ३ क. ख. छ. त. द. ‘वधकर्मणो वा’ नास्ति. ४ क. ख. ८ (१८);
त. द. ८. ५ ग. ‘वेति।थे’ ६ ग. च. ज. वक्ष्यती कथं. ७ ग. ज. ‘कंचित्’
नास्ति. ८ ग. च. ज. ‘स्यातम्’. ९ ग. च. ज. विदग्धा; घ. झ. ट. विदाधा.
१० क. ख. ग. च. ज. ईषते. ११ क. ख. ८ (१८); ट. ‘वति । इति उ०
वृ० १८ खण्डः; छ. ‘वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के ३ ध्याये १८ खण्डः;
घ. झ. ट. ज. अङ्गो नास्ति.

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
 यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् (ऋ०
 सं० ६ । ७५ । ११) ॥ सुपर्णं वस्त इति वाजानभिमेत्य मृगम-
 योऽस्या दन्तो मृगयतेर्वा गोभिः संनद्धा पतति प्रसूतेति व्या-
 ५ ख्यातं (निरु० २ । ५) यत्र नराः संद्रवन्ति च विद्रवन्ति च
 तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यच्छन्तु शरणं संग्रामेष्वश्वजनीं कशे-
 त्याहुः कशा प्रकाशयति भयमश्वाय कृष्यतेर्वाणूभावाद्वाक्
 पुनः प्रकाशयत्यर्थान् खशया क्रोशतेर्वाश्वकशाया एषा भ-
 वति ॥ १९ ॥

१०

सुपर्णं वस्त इति । ये एते सुपर्णं वस्ते वसते गौर्ध्रं वाजा इषवः ।

इष्टुः येषां चैतेषां मृगमयो दन्तो यदि मार्गाणि
 फलानि । अमार्गेषु तु व्यथनस्वभावान्मार्गयन्तीश्च

किं नु तद्यद्वेद्व्यं स्याद्यर्दहं विध्ययमिति । ये चेभे गोभिः संनद्धाः गन्धेन
 १५ स्नाव्ना श्लेषमणा च समन्ततो नद्धाः पतन्ति गच्छन्ति धनुष्मता प्रसूताः
 क्षिताः त एवमादिगुणयुक्ता इषवो यत्र यस्मिन् संग्रामे नराः मनुष्याः
 संद्रवन्ति गच्छन्ति च विद्रवन्ति च पुनर्विगच्छन्ति तत्र अस्मभ्यं शर्म
 शरणं सुखं जयनिमित्तं यंसन् यच्छन्तु ददवित्येतदाशास्महे ।

‘ अश्वजनी ’ (१९) इत्येतत्पदम् । तां पुनरेतां ‘ कशेत्याहुः ’ ।

२०

कशा कस्मात्

अश्वजनीत्येतन्न निर्वक्तव्यं प्रत्यक्षवृत्तित्वादस्य ।

अथ ‘ कशा ’ कस्मात् । सा हि ‘ प्रकाश-
 यति ’ प्रख्यायति ‘ भयमश्वाय ’ । ‘ कृष्यतेर्वाणूभावात् ’ । अप-
 कृष्टा हि सा भवति चर्मणोऽण्णी । ‘ वाक् ’ अपि कशेत्युच्यते । सा
 ‘ पुनः प्रकाशयत्यर्थान् ’ इति । अथवा । ‘ खशया ’ । वाक् खे मुख-

१ छ. द कशाया; त. कशया^१ ख. २ क. ख. ९ (१९ः) त द. ९. ३ ग.
 इति । यं. ४ ग. ज. च. वसतेर्गौर्ध्रं वा^२. ५ क. ख. घ. ङ. ट. ठ ड. व्यथन^३.

७७ ६ घ. झ. ट. ठ. ड. वद्वेद्व्यमिति. ७ क. ख. घ. झ. ट. उ. ङ. संगच्छन्ति.

काशे शेते इति । ' क्रोशतेर्वा ' शब्दार्थस्य । या त्वश्वकशा तस्या
' एषा भवति ' स्तुतये ॥ १९ ॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनां उप जिघ्नते । अश्वजनि प्रचेत-
सोऽश्वान्समत्सु चोदय (ऋ० सं० ६ । ७५ । १३) ॥ ५
आघ्नांत सानून्येषां सरणानि सक्थीनि सक्थिः सचतेरासक्तोऽ-
स्मिन्कायो जघनानि चोपघ्नति जघनं जङ्घन्यतेरश्वजनि प्रचे-
तसः प्रवृद्धचेतसोऽश्वान् समत्सु समरणेषु संग्रामेषु
चोदयोलूखलमुरुकरं वोर्करं वोर्ध्वस्वं वोरु मे कुर्वित्यब्रवीत्तदुलू-
खलमभवदुरुकरं वैतसदुलूखलमित्याचक्षते परोक्षेणेति च ब्राह्मणं १०
तस्यैषा भवति ॥ २० ॥

आजङ्घन्ति सान्वेषामिति । आजङ्घन्ति इति शतारं संबोधनम् ।

अश्वजनिः हे अश्वजनि आर्जङ्घन्ति सानूनि एषां
सरणानि समुच्छ्रितानि सक्थीनि कटिप्रदेशान् १५

जघनान् उपजिघ्नते । जघनानि स्फिग्देशाः । तांश्च हे अश्वजनि उप-
जिघ्नति । इदमपि शतर्येव । स्थानां कटिप्रदेशमश्वान्यभिहन्ति पृष्ठघानां
स्फिग्देशान् । हे अश्वजनि या त्वमेवमभिहंसि सा त्वमेतान् अश्वान्
प्रवृद्धचेतसः प्रकृष्टचेतसो गमनं प्रति समुत्सुकान् समत्सु समरणेषु
संग्रामेषु तथा चोदय यथा जयेयमित्येतदाशास्महे । २०

' सानूनि सक्थीनि ' । तानि पुनः ' सरणानि ' । तद्वलेन हि

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' स्तुतये ' नास्ति. २ क. ख. ९ (१९);
ट. षति । इति निरु० भा० उ० तृ० एको० १९ खण्डः; ड. षति । इति
निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के तृतीयाध्याये एकानविंशतिः खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को
नास्ति. ३ क. ख. ड. त. ड. आघ्नन्ति; ठ. आजङ्घन्ति. ४ क. ख. छ. त. १५
द. वोर्ध्वस्वं वोर्करं. ५ क. ख. चतत्तदुलू; ड. थ. ध. ठ. ड. चैतदु. ६ क. ख.
१० (२०); त. द. १०. ७ ग. िमात । आ; ठ. ड. आजङ्घन्तीति.
८ ठ. ड. आघ्नन्ति. ९ ग. ज. देशात् । जघनानि स्फि; च. देशान् जघनतेः
जघनानि स्फि. १० ग. च. ज. जिघ्नन्ति. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
स्थानां हि क. १२ च. भिहं प्रति १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. प्रचेतसः. ३०

सन्ति सर्तारः । ' सक्थिः ' कस्मात् । ' सचतेः ' । किमस्मिन्सक्तम् ।
' आसक्तोऽस्मिन् कायः ' कृत्स्नं शरीरम् । ' जघनं ' कस्मात् । तद्धि
भृशं हन्यते कशया ।

- ५ ' उलूखलम् ' (१६) इत्येतत्पदम् । तत्कस्मात् । तद्धि ' उरुकरं
उलूखलं कस्मात् वा ' । उरुकरं बहूनां करोति । उरुशब्दात्पूर्व-
पदं करोतेरुत्तरपदम् । ' ऊर्करं वा ' । ऊर्क-
शब्दात्पूर्वपदम् । ऊर्ज एव हि करणार्थं तदुपपद्यते । ' ऊर्ध्वखं वा ' ।
ऊर्ध्वशब्दात्पूर्वपदं खशब्दादुत्तरपदम् । ऊर्ध्वमेव हि तस्य स्वतं भवति ।
अथवा । ' उरु मे कुर्वित्यब्रवीत्तदुलूखलमभवत् ' (शत० ब्रा० ७ । ५ ।
१ । २२) । तत्क्रियमाणमुरु मे खं कुर्वित्यब्रवीदिव तथागुणयुक्त-
त्वात्तस्य । तदुलूखलमभवत् । ब्राह्मणमपि च भवति । ' उरुकरं वै तदु-
लूखलमित्याचक्षतेऽपरोक्षेण ' (शत० ब्रा० ७ । ५ । १ । २२) ।
उरुं करोतीत्युरुकरमेतत्प्रत्यक्षमव्यवहितगुणाभिधानम् । तत्पुनरेतद्रलोर्ध्व-
त्येन व्यवहितगुणमुच्यते उलूखलमिति । ' तस्यैष ' स्तुतिः
१५ ' भवति ' ॥ २० ॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह शुभतर्तभं वद
जयतामिव दुन्दुभिः (ऋ० सं० १ । २८ । ५) ॥ इति सा
निगदव्याख्याता ॥ २१ ॥

२०

इति नवमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह इति । शुनःशेषस्यार्थम् । ' आयजी वाजसा-

- १ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' करत्वादुरुकरं ' ; ग. च. ज. उरुकं वा. २ ग.
च. ज. उरुकरं व०. ३ झ. °पदम् । ऊर्ज एव०. ४ क. ख. पदम् । करोतेरेवो-
२५ त्तरपदम् । ऊ. घ. झ. ट. ठ. ड. °पदं करोतेर्वोत्तरपदम् । ऊ. ५ च. उरुकं०.
६ ग. ज. ' उरु करोतीति ' नास्ति. ७ क. ख. १० (२०); ठ. ' वति । इति
निरु० भा० उ० तू० ध्या० विंशः २० खण्डः; (ड. °वति । इति निरुक्त-
टीकायास्तत्तरपदके ३ ध्याये विंशः स्रष्टः; घ. झ. ट. ज. अड्डो नास्ति. ८ क.
ख. ११ (२१); त. द. ११. ९ ड. थ. ध. ' इति०० पादः ' नास्ति; छ. त.
द्वितीयः पादः; व. इति नैरुके उत्तरार्थस्य नक०. १० म. इति । शु०; ठ. ड.
३१ °चिद्धि त्वमिति.

समा' (ऋ० सं० १।२८।७ । निरु० ९।३६) इति च । सोमा-
 भिषत्रे विनिधोगः (ए० ब्रा० ३३ । ५) । अभिमन्त्र्य चोपधीय-
 तेऽग्निचयने । हे उलूखलक युज्यसे । यद्यपि त्वमन्नसंस्कारार्थं गृहे गृहे
 उलूखलम् युज्यसे तथापि त्वम् इह एव अस्मद्गृहे द्युम-
 त्तमं दीप्तिमन्तं गम्भीरम् अन्नैर्बहुभिः संस्क्रि- ५
 यमाणैः शब्दं वद । कथम् । जयतामिव दुन्दुभिः । ये हि जयन्ति
 तोषामेतदेव जयस्य पूर्वरूपं भवति गम्भीरस्वनो दुन्दुभिः । ये पुनर्जायन्ते
 तोषांरुक्षस्वर इति ॥ २१ ॥

चतुर्दशस्य द्वितीयैः पादः ।

तृतीयः पादः ।

वृषभः प्रजां वर्षतीति वातिवृहति रेत इति वा तद्वृषकर्मा
 वर्षणाद्वृषभस्तस्यैषा भवति ॥ २२ ॥

' वृषभः ' (१७) कस्मात् । स हि ' प्रजां वर्षति ' । प्रजो- १५
 वृषभः कस्मात् त्पत्तिकारणं रेतः सिञ्चति योनौ । ' अतिवृ-
 हति रेत इति वा ' । रेतः सेक्तुमतिशयेनासा-
 चात्मानमुद्यच्छति । ' तद्वृषकर्मा वर्षणाद्वृषभः ' । तेर्नाश्ववृषकर्माणा
 रेतोवर्षलक्षणेन नृगौरप्यतिशयेन यो युक्तोऽसावपि वृषणात् रेतोवर्षणा-
 ङ्घेतोः भकारमुजनीकृत्वा वृषभ इत्युच्यते । ' तस्य ' गोवृषभस्य २०
 ' एषा ' स्तुतिः ' भवति ' ॥ २२ ॥

१ ग. च. ज. ' गृहे ' सकृद्देव. २ क. ख. ११ (२१); ठ. ' इति । इति
 निरुक्तं उ० तृ० एकविंशतिः खण्डः; ड. इति । इति निरु० २१ खण्डः; घ.
 झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ३ ठ. ' शस्यपादः; ड. ' शस्य पादः २. ४ क. २५
 ख. १ (२२); त. द. १. ५ ग. च. ज. ह. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 तेनास्य वृष'. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' णेन गौर'; च. ' क्षणे नृगौर';
 ग. ज. रेतोवर्षणेन गो'. ८ घ. झ. ट.. वर्षणा'. ९ क. ख. १ (२२); ठ.
 ' वति । इति नि० उ० तृ० २२ खण्डः; ड. ' वति । इति निरुक्तटीकाया०
 २२ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्यं आज्ञेः । तेन
 सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधाने जिगाय (ऋ० सं०
 १० । १०२ । ५) ॥ न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनमिति व्याख्या-
 तममेहयन्वृषभं मध्यं आज्ञेराजयनस्याजवनस्येति वा तेन तं
 ५ सूभर्वं राजानं भवतिरत्तिकर्मा तद्वा सूभर्वं सहस्रं गवां मुद्गलः
 प्रधाने जिगाय प्रधान इति संग्रामनाम प्रकीर्णान्यस्मिन्धनानि
 भवन्ति द्रुघणो द्रुममयो धनस्तत्रेतिहासमाचक्षते मुद्गलो भार्ग्यश्च
 ऋषिर्दृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा संग्रामे व्यवहृत्याभि जिगाय तद-
 भिवादिन्येपमर्भवति ॥ २३ ॥

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनमिमिति । एवं तावत् व्याख्यातं प्रतिपदम् ।
 एकवाक्यतया तु मन्त्रस्य व्याख्येयमिति । मन्त्रदृग्भवीति । यत् ब्रूव्यं
 केनाज्ञेयीस्त्रमेतं राजानमिति तत्र मे शृणुत ।
 वृषभः यमंतम् आज्ञेः शरपथस्य मध्ये वर्तमानं वृषभं
 १५ न्यक्रन्दयन् उपयन्ति न्यक्रन्दयन्तः एनं हे जनाः युक्त्वा रयन्त युक्त्वा
 रयन्तेति उपयन्ति उपगच्छन्ति परिवृण्वन्ति । अमेहयन्तश्च तं मुहूर्तं
 स्थायितां यावदेयं संकृन्मंत्रं करोति ततो लघु सुखं भविष्यतीति । स हि
 गोभिनामाजिसृतां स्वभावः । तेन अमुना वृषभेण सूभर्वं सुभगं शोभ-
 नभोगं राजानं वा । तद्वा सुभगं सुयवसेदशसमृद्धं शतवत् शतैस्तद्वत् संख्या-
 २० सहस्रं गवां दशशतानि । यद्वा । असंख्यं बहु । किमिति । मुद्गलोऽहं
 प्रधाने धनं प्रति स्पर्धया विजिगीषोरावयोः प्रवृत्तयोर्वाहिकायां जिगाय
 जितवानिति ।

१ छ. त. द. ' आज्ञेः ' नास्ति. २ क. ख. २ (२३); त. द. २. ३ ग.
 'मिति । ए°; ठ. ड. 'न्दयमिति. ४ क. ख. यद्वृषभकेणाज्ञेयी°; घ. यद्वृषभे
 २५ के°; झ. ट. यद् ब्रूव्ये के°; ठ. ड. यद्वृषभे के°. ५ घ. झ. ट. भये श्रु°. ६ ग.
 च. ज. सर°. ७ घ. झ. ट. जानाः. ८ च. युक्त्वा र°; क. ख. फुत्कारवन्तं
 कारयतीति उप°. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अमेहयन्मेहयन्तश्च. १० घ.
 झ. ट. ठ. ड. शकृ°. ११ ग. च. ज. मावि°. १२ ग. च. ज. सुतमं. १३ क.
 ख. घ. झ. ट. ' वा ' नास्ति. १४ च. कमि°. १५ क. ख. घ. झ. ट. ड.
 ३० प्रधानं संग्रामे धनं; ग. च. ज. प्रधाने.

द्रुघणः कस्मात् 'द्रुघणः' (१८) इत्येतदम् । स पुनरेपः
 'द्रुमयो घनः' द्रुप्रकृतिः । तत्प्रकृतिवचने मयट्
 (पाणि० ५ । ४ । २१) । द्रुशब्दात् पूर्वपदं घनशब्दादुत्तरपदम् । मुद्र-
 रोऽभिधेयः । ' तत्रेतिहासमाचक्षते ' इति स्तुतिलाभनिमित्तमुभयोरप्येक-
 तत्रेतिहासः मेव वृषभद्रुघणयोः । 'मुद्रलो भौर्म्यश्च ऋषिः' इत्ये-
 वमादि । स किल द्वितीयस्य गोरभावाद्वाज्ञा सह
 प्रतिस्पर्धमानः ऐश्वर्यादन्वादिश्य 'द्रुघणं' वृषभेण सह युक्तं वा राज्ञा
 सहाजि ससर्प । स च तं 'जिगाय' जितवान् । यथा चतदेवं तस्यार्थस्य
 'अभिवादिन्देपरभवति' ॥ २३ ॥

५

१०

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
 येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्रलः पृतनाज्येषु (ऋ० सं०
 १० । १०२ । ९) ॥ इमं तं पश्य वृषभस्य सहयुञ्जं काष्ठाया मध्ये
 द्रुघः शयानं येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्रलः पृतनाज्येषु
 पृतनाज्यमिति संग्रामनाम पृतनानामजनाद्वा जयनाद्वा मुद्रलो
 मुद्रवान् मुद्रगिलो वा मदनं गिलतीति वा मदंगिलो वा मुद्र-
 गिलो वा भाम्यश्वो भूम्यश्वस्य पुत्रो भूम्यश्वो भूमयोऽस्याश्वा
 अश्वभरणाद्वा पितुरित्यन्ननाम पातेर्वा पिबतेर्वा प्यायतेर्वा
 तस्यैषा भवति ॥ २४ ॥

१५

इमं तं पश्य वृषभस्येति । जिगायामाजावर्षसिताजिसमगणमाउन्त एवाप

१ ग. ष. ज. 'कृतिः; झ. द्रुमप्रकृतिः. २ ग. 'लो भौर्म्यश्वः; च. 'लो भौर्म्यश्व.
 ज. 'लोर्म्यश्व ऋ'. ३ ग. ष. ज. 'मादिः. ४ ग. ज. ऐश्वर्यं दत्वा-
 दिश्य द्रु'; च. ऐश्वर्यं दित्वादिश्य द्रु'. ५ ग. च. ज. युक्ता. ६ क. ख. २ (२३);
 ड. 'वति । इति नि० उ० २३ खण्डः; ड. 'वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तर-
 षट् ३ ध्याये २३ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्गो नास्ति. ७ छ. द. सटयुञ्जं;
 त. सहयुञ्जं यु. ८ छ. त. द. 'वा' नास्ति; ९ क. ख. ३ (२४); त. द. ३.
 १० ग. 'स्येति । जि'; ड. ड. पश्येति. ११ ग. च. ज. ड. ड. 'मायन्त'; ट.
 'मायन्त' ग.

विद्धमुद्गरो मुद्गलः केनचिपृष्ठः केन सह युक्त्वा वृषभेणं राजानमजै-
 धीरिति । स तमुपदिशन्नेव द्रुघणमाज्यन्ते
 द्रुघणः तस्मिन्नपविद्धमसावज्ञामिव कुत्सयन् राजानमन-
 यर्चा तस्मै प्रत्याचक्षे । इमं तं पश्य येनाजैपमिति । वृषभस्य सहयुजम् ।
 क वर्तमानम् । काष्ठायाः आज्यन्तस्य मध्ये द्रुघणं शयानम् अपविद्धम् ।
 येन जिगाय शतवत्सहस्रम् इति व्याख्यातम् ।

‘ पृतनाज्यमिति संग्रामनाम ’ । तत्कस्मात् । ‘ पृतनानामजनाद्वा ’ ।

पृतनाज्य कस्मात् पृतनाः मनुष्याः । ते यस्मिन्नजन्ति गच्छन्ति ।
 पृतनाशब्दात्पूर्वपदमजतेरुत्तरपदम् । ‘ जय-

१० नाद्वा ’ । तत्रोत्तरपदे विकल्पयन्ति । ते हि तत्र जयन्ति । ‘ मुद्गलो मुद्ग-
 वान् ’ । लो मत्वर्थे । अथ ‘ वा भुद्गगिलो ’ मुद्गभोजनप्रायः । मुद्ग-

मुद्गलश्च शब्दः पूर्वपदं गिलशब्द उत्तरपदम् । ‘ मदनं
 गिलतीति वा ’ । मदनः कामः । तमसौ

१५ गिलति वशीकरोति । जितेन्द्रिय इत्यर्थः । मदनशब्दः पूर्वपदं गिलति-
 शब्द उत्तरपदम् । ‘ मद्गिलो वा ’ । मुद्गगिलो वा । मद् उद्रेकः ।
 तमसौ गिलति । उपशान्त इत्यर्थः । ‘ मुद्गगिलो वा ’ । हर्मसौ गिलति ।

भार्म्यश्चश्च निवृत्त इत्यर्थः । ‘ भार्म्यश्चो भृम्यश्चस्य पुत्रः ’ ।
 ‘ भृम्यश्चः ’ पुनः ‘ भृमयोऽस्याश्वाः ’ । अन-

वस्थायिनः । ‘ अश्वभरणाद्वा ’ । बिभर्त्ति वा असावश्वान् ।

२० ‘ पितुः ’ (१९) इत्येद्वक्तव्यम् । तत्पुनरेतत् ‘ अन्ननाम ’ । तत्क-

पितुः कस्मात् स्मात् । ‘ पातेर्वा ’ रक्षणार्थस्य । ‘ पितृतेर्वा ’

पानार्थस्य । ‘ तस्मैषा भवति ’ ॥ (२४) ॥

पितुं नु स्तोत्रं महो धर्माणं तत्रिषीम् । यस्य त्रितो व्योजंसा

२५ वृत्रं विष्वक्मर्दयत् (ऋ० सं० १ । १८७ । १) ॥ तं पितुं स्तौभि महतो

१ ग. च. ज. ट. ड. ‘ माद्यन्ते. २ च. मुद्गलो मुद्गभोजनं. ३ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. शब्दात्. ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. शब्दादुत्तं; च. लिंग-
 श. ५ क. ख. ३ (२४); ट. ड. ‘ वति । इति निरुक्तटीकाया (ठ. ‘ रुक्त-
 भाष्ये) मुत्तरषट्के तृतीयेऽध्याये चतुर्विंशतिः खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को
 ३० नास्ति.

धारयितारं बलस्य तविषीति बलनाम तवतेर्वृद्धिकर्मणो यस्य
त्रित औजसा बलेन त्रितास्त्रिस्थान इन्द्रो वृत्रं विपर्वाणं व्यर्द-
यति नद्यो व्याख्यातास्तासामेपा भवति ॥ २५ ॥

त्रितुं नु स्तोपमिति । अगस्यस्वर्षम् । यस्य पितोः भोजसा ५
बलेन बलाधिपतिरपीन्द्रः त्रिस्थानः त्रिषु स्थानेष्वप्रतिहतप्रभावः वृत्रं
मेघं विपर्ष्वै विगतपर्वाणं विगतसन्धिबन्धनं
पितुम् कृत्वा व्यर्दयत् विविधमर्दयति अपुनरावृत्तये
तं पितुम् अहंभे अन्नं तविषीसंज्ञकस्य महती बलस्य धर्माणं धारयितारं
स्तौमि । को हि नाम तन्न स्तूर्याद्यस्मादृते त्रिलोकाधिपतिरपीन्द्रः किंचिद- १०
प्यशक्तः कर्तुमित्यभिप्रायः । 'तविषी (निघ० २।९।१०) इति बल-
नाम' 'तु वृद्धौ' इत्यस्य । तद्धि सर्ववस्तुभ्यो ज्यायः ।
'नद्यः' (२०) अवसरप्राप्ताः । ताः पुनरेताः 'व्याख्याताः' 'नदना
भवन्ति शब्दवत्यः' (निरु० २।२४) इति । 'तासामेपा भवति' ॥ २५ ॥

१५

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुण्या ।
असिक्रथा मरुदृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुपोमया (ऋ०
सं० १०।७५।५) ॥ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि परुणि
स्तोममासेवध्वमासिकन्या च सह मरुदृधे वितस्तया चार्जीकीय २०
आशृणुहि सुपोमया चेति समस्तार्थोऽर्थैकपदनिरुक्तं गङ्गा गमनाद्य
मुना प्रयुवती गच्छतीति वा प्रावियुतं गच्छतीति वा सरस्वती सर
इत्युदकनाम सतेस्तद्वती शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविण्याशु तुन्नेव
द्रवतीति बेरावती परुणीत्याहुः पूर्ववती कुटिलगामिन्यसिकन्य-

१ क. ख. ङ. थ. घ. ठ. ड. तवतेर्वा वृद्धि°. २ छ. त. द. व्योज°. ३ क.
ख. ४ (२५), त. द. ४ च. विपर्ष्वै वि°. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. २५
असिमहं. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. महो महतो. ७ क. ख. घ. झ. ट. ड.
न तत्. ८ ग. च. ज. स्त्रया°. ९ घ. झ. ठ. ड. 'वस्तुभ्यो; ट. वस्तुभ्यो' स्तु.
१० क. ख. ४ (२५); ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तटीकाया—(ठ-
'रुक्तभाष्ये) मुत्तरपटके तृतीयेऽध्याये पञ्चविंशतिः खण्डः; घ. झ. ट. ज. अहो
नास्ति. ११ क. ख. ङ. थ. घ. ठ. ड. 'वती भास्वती कुटि°.

३०

शुक्लासिता सितमिति वर्णनाम तत्प्रतिपेधोऽसितं मरुद्बुधाः सर्वा
 नद्यो मरुत एना वर्धयन्ति वितस्ता त्रिदग्धा विष्टद्धा महाकूलाजी-
 कीयां विपाळित्याहुर्ऋजीरुप्रभवा वर्जुगामिनी वा विपाड्विपाट-
 नाद्वा विपाशनाद्वा विप्रापणाद्वा पाशा अस्यां व्यप्राश्यन्त वसि-
 ५ ष्टस्य । मुमूर्षतस्तस्माद्विपाळुच्यते पूर्वमासीदुरुञ्जिरा सुषोमा
 सिन्धुर्यदेनामभिप्रसुवन्ति नद्यः सिन्धुः स्यन्दनादापआप्नो-
 तेस्तासामेषा भवति ॥ २६ ॥

इमं मे गङ्गे यमुने इति । हे मरुद्बुधे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि
 १० नद्यः ययम् इमं मे मम स्तोमम् आप्तेवध्वं परुष्ण्या सह ।
 मरुद्बुधे आर्जीकीये त्वमपि असिक्न्या वित-
 स्तया सुषोमया च सह आशृणुहि आभिमुरुयेन स्थित्वा शृणुहीति सम-
 स्तार्थः । एवं सर्वत्र पूर्वं समस्तार्थो वक्तव्य इत्युपप्रदर्शनार्थम् ।

‘ अथैकपदनिरुक्तम् ’ । ‘ गङ्गा गमनात् ’ । सा हि विशिष्टं स्थानं
 १५ गच्छति । गमयति वा प्राणिनो विशिष्टं स्थान-
 मिति गङ्गा । ‘ यमुना प्रयुवती गच्छति ’ ।
 व्युत्पत्तिः प्रकर्षेण मिश्रयन्त्यन्याभिर्नदीभिः स्वान्युदकानि
 गच्छति । ‘ प्रवियुतं गच्छतीति वा ’ । स्तिमितमिव तरङ्गैर्गच्छति ।
 ‘ सरस्वती सर इत्युदकनाम ’ । तत्कस्मात् । ‘ सतेः ’ ‘ सृ गतौ ’
 २० (धा० पा० १-९६० ॥ ३-१७) इत्यस्य । तेन सरसा विशिष्टेन
 ‘ तद्वती ’ । विज्ञायते हि राजसूये सारस्वतीनामपामभिपेकार्थवादः । ‘ वरु-
 णस्य वा अभिपिच्यमानस्येन्द्रियं वीर्यमाक्रामत्तत्रैवाभवद्गुस्तृतीयमभव-
 च्छ्रायन्तीयं तृतीयं सरस्वती तृतीयं प्राविशत् ’ (मैत्रा० सं० ४ । ३ ।
 ९) इति । ‘ शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविणी ’ । शु इति क्षिप्रनाम ।
 २५ अथ ‘ वा आशु ’ क्षिप्रमसौ ‘ तुन्नेव ’ विद्वेव केनचित् ‘ द्रवति ’ ।
 आकारलोपः पूर्वपदे । ‘ इरावती परुष्णीत्याहुः ’ । येयमिरावतीति लोकं
 प्रासिद्धा तामिमामेतस्मिन्मन्त्रे मन्त्रार्थविदः परुष्णीत्याहुः । सा कस्मात् ।

१ छ. त. द. °पालित्या°. २ छ. ध. ठ. ड. °ऋजूक°; थ. °ऋजूक°. ३ छ.
 त. द. °पालुच्य°. ४ क. ख. ५ (२६) त. द. ५. ५ ग. इति°. हे°; ठ. ड.
 ३० °यमुने सरस्वतीनि. ६ ग. च. ज. सुतु°. ७ च. सुषोम°.

‘ पर्ववती ’ । किमुक्तं भवति । ‘ कुटिलगामिनी ’ इति । तदस्याः पर्ववत्त्वं यानि कुटिलानि तानि पर्वणीव तस्यास्तैस्तद्वतीति । ‘ असिक्ती ’ कस्मात् । सा हि ‘ अशुक्ला असिता ’ । कथम् । ‘ सितमिते वर्णनाम ’ । स च पुनः शुक्ल इति प्रसिद्धो लोके । ‘ सितसितौ यद् वृषौ ’ इति बलदेववामुदेवावधिकृत्योक्तम् । तस्य शुक्लस्य ‘ प्रतिपेधोऽसितम् ’ । ५
 कृष्णामित्यर्थः । तस्मात्कृष्णोदका असिक्ती । ‘ मरुद्वृथाः सर्वा नद्यः । मरुतः एना वर्धयन्ति ’ वर्षेण । तस्मात्प्रत्येकं नद्याभिधानमनुपपत्त्यै विशेषणत्वेन हे मरुद्वृथे गङ्गे हे मरुद्वृथे यमुने इति । ‘ वितस्ता अविदग्धा ’ । ‘ वैदेहको नःमाग्निः । स किल नदीरन्या निर्देदाह न ताम् ’ इति सामिधेनीब्राह्मणे विज्ञायते । अथवा । ‘ त्रिवृद्धा महाकृत्वा ’ १०
 विस्तीर्णा । ‘ आर्जीवाथां लोकं विपाळ्याहुः ’ । सा कस्मात् । ‘ ऋजीकप्रभवा ’ । ऋजीको नाम पर्वतस्तस्मात्प्रभवतीति तद्धितेन । अथ ‘ वा । ऋजुगामिनी ’ सत्यार्जीकीया । ‘ विपाट् विपाटनाद्वा ’ । विपाटयत्यसौ भूमिमतिवेगवत्त्वाद्गच्छतीति । ‘ विपाशनाद्वा ’ । किमस्यां व्यपाश्यन्त । ‘ पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुर्मूर्पतः ’ । वसिष्ठः किल मम- ११
 ज्ञःस्यां मुर्मूर्पुः पु- मरणशोकार्तेः पाशैरात्मानं बद्ध्वा । तस्य किल ते पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त । व्यमुन्यन्तोदकन । ततः प्रभृति सा विपाडभवत् । ‘ पर्वमासीदुरुञ्जिरा ’ नाम सा । उरुञ्जलयर्थः । ‘ विपापणाद्वा ’ उदकानां विपाट् । ‘ सुगेर्भा सिन्धुः ’ । सा कस्मात् । ‘ यदेनामभिप्र- सुवन्ति ’ अभिगच्छन्त्यन्याः प्रभृता ‘ नद्यः ’ । ‘ सिन्धुः ’ कस्मात् । २०
 ‘ स्थन्दनात् ’ । सा ह्यविच्छेदेन विशेषतः स्थन्दत इति ।

‘ आपः ’ (२१) इत्येतत्पदम् । ताः पुनरेताः ‘ आम्रोतेः ’ । सर्वमा- भिरामिति । ‘ तासामेवा भवति ’ ॥ २६ ॥

१ ग. च. ज. ट. ड. ‘पयुने’ २ क. ख. ग. च. ज. महाकृत्वा. ३ क. ख. ‘पाहित्वा’; म. च. ज. व. झ. ट. ‘पालित्या’ ४ ग. च. ज. ऋजूको; ठ. ड. ‘ऋजुको’ ५ ग. च. ज. वेगत्वा’ ६ ग. च. ज. मुर्मूर्प’ ७ ग. च. ज. ‘पाश्यन्त’ ८ म. च. ज. सुगेर्भा ९ क. ख. ५ (०६), ठ. ड. ‘वति । इति निरुक्तटीकागमनुरादिके तृतीयेऽध्याये षड्विंशतिः खण्डः; ५. झ. ट. ज. अङ्कौ नास्ति.

आपो हि ष्टा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय
चक्षसे (ऋ० सं० १० । ९ । १) ॥ आपो हि स्थ सुखभु-
वस्ता नोऽन्नाय धत्त महते च नो रणाय रमणीयाय च दर्श-
नायौषधय ओषद्भयन्तीति वौपत्येना धयन्तीति वा दोषं धय-
न्तीति वा तासामेषा भवति ॥ २७ ॥

आपो हि ष्टेति । सिन्धुद्वीपस्यार्षम् । हे आपः आपयिष्यः स्थ मयो-
भुवः मधोभावयिष्यश्च सुखभावयिष्यः याः ताः
आपः यूयम् अस्मान् ऊर्जे अन्नाय यथा वयमलं स्याम

१० भोजनाय च दधातन धारयत अनुगृहीध्वम् । किंच । महे रणाय महते च
नो रणाय रमणीयाय चक्षसे दर्शनाय । श्रुतिस्मृत्युदितसम्यग्दर्शना भू वा
अन्नप्रयोगे यथा वर्तेमहि तथा जुग्ध्वं यूयमित्येतदाशास्महे ।

‘ ओषधयः ’ (२२) इत्येतत्पदम् । ताः पुनरेताः ‘ ओषद् धयन्ति ’ ।

१५ ओषधयः कस्मात् यत्किञ्चिदोषच्छरीरे दहद् रोगजातं भवति
क्षयादि तदेता अन्ताः सत्यो धयन्ति पिबन्ति

नाशयन्ति । तदेवमोषतेः पूर्वपदं धयतेरुत्तरपदं कर्तारं कारके । ‘ ओष-
त्येना धयन्तीति वा ’ । ‘ ओषति कस्मिंश्चिदुदरादावङ्गे एना धयन्ति
पिबन्ति प्राणिनो दाहोपशमनाय तावेव धातू कर्माणि कारके । ‘ दोषं
धयन्तीति वा ’ । यः कश्चिदुपजायते दोषो वातादिकृतः शरीरे तमेता

२० धयन्ति । इति दोषशब्दात्पूर्वपदं धयतेरेवोत्तरपदं कर्तयेव कारके ।

‘ तासाम् ’ ओषधीनाम् ‘ एषा ’ ‘ भवति ’ ॥ २७ ॥

१ छ. त. द. ओषं धय° । २ छ. वौष° वौ; त. वौष° । ३ क. ख. ६ (२७);
त. द. ६. ४ ग. ‘ ष्टेति ’ । सि° । ५ ग. ज. ‘ यिष्यं सुखं ’; च. ‘ यिष्यंश्च सु° ।
२५ ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यूयं नोऽस्मा° । ७ घ. झ. ट. ठ. ड. च तथा द° ।
८ क. ख. ग. च. ज. ‘ गृहीध्वम् ’ ९ ग. च. ज. ओषधयन्ति १० ग. ज.
आत्ताः ११ ग. च. ज. उप° । १२ ग. च. ज. ‘ णिनो नो दाह उपनाम (च.
‘ नान) य । तावे° । १३ ग. च. ज. कर्मकारे° । १४ क. ख. (२७); ठ. ड.
‘ वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपदके (ठ. निरु० भाष्ये उ०) तृतीयेऽध्याये
३० सप्तविंशतिः स्रग्दः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रु-
णामहं शतं धामानि सप्त च (ऋ० सं० १० । ९७ । १) ॥
या ओषधयः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रीणि युगानि पुरा मन्ये नु
तद्बभ्रूणामहं बभ्रुवर्णानां हरणानां भरणानामिति वा । शतं
धामानि सप्त च । धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि ५
जन्मानीति जन्मान्यत्राभिप्रेतानि सप्त शतं पुरुषस्य मर्मणां
तेष्वेना दधतीति वा रात्रिर्व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ २८ ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता इति । ओषधिसुक्ते प्रथमैव । अग्निचयने
क्षेत्रमनेन मन्त्रेण ग्राम्यारण्याभिरोषधीभिरुपते
ओषधयः (मैत्रा० सं० २ । ७ । १३) । या एता १०
ओषधयः पूर्वाः प्रथमजाताः । कुतः । देवेभ्यः । न तावदेवा उत्पद्यन्ते ।
अथैता एव पूर्वमुत्पद्यन्ते । कियति कले । त्रियुगं पुरा । कलिद्वापत्रे-
ताभ्यः पूर्वम् आदिकल्पे आद्ये कृतयुगे । देवानामपि ह्यन्नमनपेक्ष्य
जीवनहेतु स्थितिर्नास्तीति^१ पूर्वमन्नमुत्पद्यते पश्चाद्देवा इति । किं तासा-
मिति । मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च । तासाम् अहं १५
बभ्रूणां बभ्रुवर्णानाम् । ओषधयः स्वभावतः सर्वा एव पच्यमाना बभ्रु-
वर्णाः कपिल्यः संपद्यन्ते । मनै जाने । शतं धामानि सप्त च । सप्ता-
धिकं शतमहं तासां यथावज्जने । अथवा । बभ्रूणामिति वर्णध्यापस्या
'हरणानाम्' इति । ता हि क्षुदादि हरन्ति । 'भरणानामिति वा' ।
भर्त्सन्ताः सर्वस्य भूतग्रामस्य वा । 'स्थानानि नामानि जन्मानि २०
धामानि त्रयाणि भवन्ति' । इह तु 'जन्मान्यभिप्रेतानि' । सप्तशतमोष-
धिजातय एतस्मिन्मन्त्रे अभिप्रेताः । अथवा ।
धामशब्दस्यार्थाः 'सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणां तेष्वेना दधतीति
वा' । अस्मिन् पक्षे धामानि स्थानानि ।

१ छ. त. द. 'भरणानां हरणामिति' । सादृणमाप्ये निरुक्तपाठस्तथैव.
२ छ. थ. ध. ठ. ड. इति. ३ छ. त. स्थानान्यं जन्मा. ४ क. ख.
७ (२८); त. द. ७. ५ ग. इति^१. ओ; ठ. ड. ओषधीरिति. ६ ग. च.
ज. 'स्थिति नास्ती'. ७ क. ख. घ. ङ. ट. ठ. ड. धामानि त्रयाणि भवन्ति स्था-
नानि नामानि जन्मानि.

‘ रात्रिः ’ (२३) इत्येतत्पदम् । तत्पुनरभिधानतोऽभिधेयतश्च व्याख्यातं ‘ रातेर्दानकर्मणः ’ (निरु० २ । १८) इति । तस्या एषो ‘ भवति ’ ॥ २८ ॥

१ आ रात्रिं पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदांसि
बृहती वितिष्ठस आ त्वेपं वर्तते तमः (खैलिकं सूक्तं २५) ॥
आपूपुरस्त्वं रात्रिं पार्थिवं रजः स्थानैर्मध्यमस्य दिवः सदांसि
बृहती महती वितिष्ठस आ वर्तते त्वेपं तमो रजोऽरण्यान्यरण्यस्यं
पत्न्यरण्यमपार्णं ग्रामाद्वर्मणं भवतीति वा तस्या एषा भवति
१० ॥ २९ ॥

आ रात्रिं पार्थिवं रज इति । कुशिकस्यापि गव्या वा । हे रात्रि या
त्वम् आपूपुरः पार्थिवं रजः । पृथिवीलोकमापूरयसि । किं केवलमेतदेव ।
१५ रात्रिः नेत्युच्यते । पितुर्वामभिः । मध्यमस्य स्थानैः सह ।
सहान्तरिक्षेण । तदपि ह्यार्पयते तमसा । किमेता-
वदेव । नेत्युच्यते । किं तर्हि । दिवो ब्रुलोकस्यापि यानि सदांसि सदनानि ।
येषु ब्रुलोकवासिनः सदनेषु मीरिगन्त तान्यपि । बृहती महती
यस्मात्त्वं तस्मद्दरेऽपि वर्तमाना वितिष्ठते । त्रिष्टम्भ तिष्ठसि । न केवलं
विष्टम्भैव तिष्ठसि । किं तर्हि । और्पय ब्रुलोकमपि तत्पूरणातिशिष्टं तमः
२० त्वेपं महत्पुनरिममेव लोकं प्रत्यावर्तते यस्यास्तव सा त्वमस्माकं सर्वदा
शिवा भवेत्येतदाशास्महे ।

१ क. ख. घ. झ. ट. एषा स्तुतिर्भवति. २ क. ख. ७ (२८); त.
भवति । इति निरुक्तभा० उत्तरषट्के तृ० ध्याये अष्टाविंशतिः खण्डः; ड. ० वति ।
इति निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के ३ ध्याये २८ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गोनास्ति.
३ ड. घ. पितुरः प्रायु धा०; थ. पितुरप्राय० यु; ड. पितुप्रयु धा०. ४ क. ख. ८
(२९); त. द. ८. ५ ग. इति० । कु०. ६ च. ० च्यते. ७ । किं तर्हि० पितुर्था०
नेत्युच्यते. ७ क. ख. घ. झ. ट. ० र्थ्यते; ठ. ड. पूरयते. ८ क. ख. घ. झ. ट.
२८ ट. ड. स्थानेषु सिद्ध्यति. ९ ग. च. ज. आयुं.

‘अरण्यानी’ (२४) इत्येतत्पदम् । सा पुनः ‘अरण्यस्य पत्नी’
 अरण्यानीपदस्यार्थः पालयित्री देवता । अथ अरण्यं कस्मात् ।
 तद्धि ग्रामादपार्णमपगतं भवति । ‘ऋ गतौ’
 अरण्यं कस्मात् (धा० १-९६१ ॥ ३-१६) इत्यस्य ।
 ‘अरमणं भवतीति वा’ । रनेः प्रतिषेधपूर्वस्य । ५
 न ह्यरण्ये रतिर्भवति । ‘तस्या एषा भवति’ ॥ २९ ॥

अरण्यान्यरण्यान्यसा या प्रव नश्यसि । कथा ग्रामं न
 पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती ३ ॥ (ऋ० सं० १० । १४६ ।
 १) ॥ अरण्यान्येत्येनामादन्वयते यासावरण्यानि वनानि परा- १०
 चीव नश्यसि कथं ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीर्विन्दतीचेतीवः
 परिभयार्थं वा श्रद्धा श्रद्धानात्तस्या एषा भवति ॥ ३० ॥

अरण्यान्यरण्यानीति । देवमनेरार्थम् । संवृद्धाधिकवचनं पूर्वम् । द्वितीया-
 बहु वचनमुत्तरम् । उत्पन्नदिर्भोहो मन्त्रदृगरण्ये भीतोऽरण्याधिदेवतामर- १५
 ण्यानीं ब्रवीति । अहं तावदेतस्मिन्नरण्ये निरमणं भीतः । त्वं कथं
 न विभेषीति भीषयमाण इव । हे अरण्यानि कथं त्वम् अरण्या-
 न्येव वनानि प्रति केवलं प्रेव पराच्येव पराङ्मुखैव अनार्वतमाना
 नश्यसि । असौ असाविति दृश्यमानेव । यतो ब्रथीमि । कथं किमिति
 ग्रामं न पृच्छसि । न त्वा भीर्माभिव विन्दति । अथ ‘वा ईर्वैः परिभयार्थं’ । २०

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कस्मात् । अरण्यमपार्णं ग्रामात् । तद्धि°
 २ क. ख. ८ (२९); त. °वति । इति नि० भा० उ० तृ० २९ खण्डः,
 ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपट्ठे ३ ध्याये २९ खण्डः; घ. झ. ट. ज.
 अङ्को नास्ति. ३ क. ख. ९ (३०); त. द. ९. ४ ग. ‘नीति°’ । देः क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ड. °नीति ऐ (ठ. ड. ए) रंमदम्य दे° . ५ च. पूर्व अरण्यमपार्णं ग्रामात् ।
 द्वि°. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘द्विदमोहो. ७ ग. ज. भीतोऽरधिदे°; च.
 ‘रण्योधिदे°. ८ ग. च. ज. वतानि. ९ ग. ज. प्रेव. १० ग. च. ज. नस्यासि.
 ११ घ. झ. ट. ठ. ड. कथां ग्रामं न पृच्छसि । कथं . १२ ग. च. ज. इव प° . २८

न त्वमीषदपि विभेपीति परिरीषदर्थः । तद्यथा । परिमधुरं पर्याप्तमिति ।

‘ श्रद्धा ’ (२५) इत्येतत्पदम् । अत्र ‘ श्रत् ’ इति सत्यनाम

श्रद्धा कस्मात्

पूर्वपदम् । तत्सत्यमस्यां धीयत इति श्रद्धा ।

धर्मार्थकामभोक्ष्वविपर्ययेणैवमेतदिति या बुद्धिरु-

- ५ त्यते तदधिदेवता भावाख्या श्रद्धेत्युच्यते । सा पुनराग्नेयं सर्वं प्रकाश-
मित्यग्निरेव । ‘ तस्या एषा भवति ’ ॥ ३० ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः । श्रद्धां भगस्य
मूर्धनि वचसा वेदयामसि (ऋ० सं० १० । १५१ । १) ॥

- १० श्रद्धयाग्निः साधु समिध्यते श्रद्धया हविः साधु हूयते श्रद्धां
भगस्य भागधेयस्य मूर्धनि प्रधानाङ्गे वचनेनावेदयामः पृथिवी
व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ३१ ॥

- श्रद्धयाग्निः समिध्यत इति । श्रद्धायाः कामार्थिन्या आर्षम् । य एव
१५ श्रद्धा अग्निः श्रद्धया उपेतः श्रद्धयैवास्तिक्यबुद्धिमालम्ब्य
समिध्यते कर्मणि स एव साधु शोभनं समि-
ध्यते । इतरो हि समिद्धोऽप्यसमिद्ध एवाश्रद्धासमिद्धाग्निकर्मणः फलाभा-
वात् । एवमेव श्रद्धया हूयते हविः । यदेव श्रद्धया हूयते हविस्तदेव
साधु हूयतेऽन्यस्याफलत्वात् । उक्तं च । ‘ नाश्रद्धानाय हविर्जुषन्ति देवाः ’
२० इति । एवं चेत् श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि । भगस्य भाग-
धेयस्य धर्मस्य मूर्धनि । मूर्धा शिरः । प्रधानमिदमङ्गं धर्मस्य या श्रद्धा ।
तदभावे धर्माभावात् । अपि च । वचसा एव वर्चनेनैव मन्त्रगतेन

- १ ग. पर्यन्तमिति । ३० । अ० ; च. ज. पर्यन्तमिति. २ ग. च. ज. ‘मस्या-
न्धीयतं. ३ क. ख. ९ (३०); ठ. ‘वति । इति निरु० भा० उ० तृती०
३० खण्डः; ड. ‘वति । इति निरुक्तभाष्ये तृतीयेऽध्याये ३० खण्डः; घ. झ.
ट. ज. अङ्को नास्ति. ४ क. ख. १० (३१); त. द. १०. ५ ग. इति । अ०.
६ घ. झ. ट. ठ. ड. कामायिन्या. ७ ग. च. ज. श्रद्धैवा०. ८ च. ‘ध्यते स एव
२८ साध्वं शोभनं न इतं. ९ ग. च. ज. ‘वचनेनैव ’ नास्ति.

‘अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः’ इत्यनेनैतदुद्वाच्य शिरः प्रकाशमावेदयामः आघोपयामो नाश्रद्धानस्य धर्म इति ।

‘पृथिवी (२६) व्याख्याता’ । ‘अथ वै दर्शनेन पृथः’ इत्यत्र (निरु० १ । १४) । ‘तस्या एषा भवति’ ॥ ३१ ॥

५

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म
सप्रथः (ऋ० सं० १ । २२ । १५) ॥ सुखा नः पृथिवि
भवानृक्षरा निवेशन्यृक्षरः कण्टक ऋच्छतेः कण्टकः कन्तपो वा
कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद्गतिकर्मण उद्गततमो भवति यच्छ नः
शर्म यच्छन्तु शरणं सर्वतः पृथ्वया व्याख्याता तस्या एषा १०
भवति ॥ ३२ ॥

स्योना पृथिवि भवेति । मेघातिथ्यरार्पम् । हिरण्यनाशप्रायश्चित्तेष्टयां

पृथिवी भौमस्यैककालस्य पुरोऽनुवाक्या (मैत्रा० सं०
२ । २ । ७) । हे पृथिवि स्योना १५

सुखा स्वमस्माकं भव । कथम् । अनृक्षरा निष्कण्टका निवेशनी निवास-
योग्या । निविष्टानां चास्माकं यच्छ देहि शर्म मुखं सर्वतः पृथु सर्वतो
विस्तीर्णमिति ।

‘ऋक्षरः कण्टक ऋच्छतेः’ । कमहं तापयामीत्येवमर्थमुद्गतः
कण्टकः । कण्टतेर्वा । स हि ‘उद्गततमो भवति’ वृक्षात् । २०

१ ग. इति । ३१ । पृ० । २ क. ख. १० (३१) ; ठ. षति । इति निरु०
उ० वृ० ३१ खण्डः ; ड. वति निरुक्तभाष्ये ३१ खण्डः ; ग. ज. घ. झ. ट. अङ्को
नास्ति. ३ छ. त. द. ंतरो. ४ क. ख. १२ (३२) ; त. द. ११. ५ ग.
‘वैति । मे०. ६ ग. च. ज. ंस्येक०. ७ ग. च. ज. यावापृथिवि. ८ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. अनृक्षरा निवेशनी । अनृ०. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
ऋच्छतेः । कण्टकः कंतपो वा कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद्गतिकर्मण उद्गततमो भवति ।
कर्म ; ग. च. ज. ऋक्षतेः.

२७

‘अध्वा’ (२७) व्याख्याता । ‘अध्वा यदेनया विद्धोऽपनीयते
व्याधिर्वा भयं वा’ इत्यत्र (निरु० ६ । १२) । ‘तस्या एषा
भवति’ ॥ ३२ ॥

- ५ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यध्वे परेहि । अभि-
प्रेहि निर्देह हृत्सु शोकरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् (ऋ० सं०
१० । १०३ । १२) ॥ अमीषां चित्तानि प्रज्ञानानि प्रति-
लोभयमाना गृहाणाङ्गान्यध्वे परेह्यभिप्रेहि निर्देहैषां हृदयानि
शोकरन्धेनामित्रास्तमसा संसेव्यन्तामग्नायग्नेः पत्नी तस्या
१० एषा भवति ॥ ३३ ॥

अमीषां चित्तमिति । अप्रतिरथस्यार्थम् । हे अध्वे अमीषाम् अस्म-
च्छ्रवणां चित्तानि मनांसि प्रतिलोभयन्ती प्रत्येकं
अध्वा लोभयन्ती गृहाण अङ्गानि । सर्वगात्राण्या-

- १५ विश । त्वयैते आविष्टसर्वगात्राः साध्वसिन उत्पन्नवेपथवः संमूढा अप्र-
तिपक्षाः सन्तु । परेहि परागच्छ एतान् । अपि च । यावच्च प्रत्यव-
स्थितास्तावदेकैकं क्षिप्रम् अभिप्रेहि । अभिप्रगम्य च निर्देह एषां हृद-
यानि शोकैः । त्वयैते निर्दग्धहृदया अस्मदमित्रा अन्धेन तमसा संसेव्य-
न्तामित्येतदाशास्महे ।

- २० ‘अग्नयायी’ (२८) अग्नेः पत्नी । ‘तस्या एषा भवति’ ॥ ३३ ॥

१ ग. च. ज. यदेतया. २ च. °पधीय°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °त्यत्र
व्याख्याता । त°. ४ क. ख. ११ (३२) ; ठ. °वति । इति निरु० भाष्ये उ०
तृ० द्वाविंशः खण्डः ; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ३२ खण्डः ; घ. झ. ट. ज.
अङ्को नास्तिः. ५ छ. त. द. °प्रज्ञानानि’ नास्ति. ६ क. ख. १२ (३३) ;
त. द. १२. ७ ग. °मिति । अ°. ८ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °यन्ती प्रत्येकं
लोभयमाना गृ°. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सचन्तां संसे. १० क. ख. १२
(३३) ; ठ. °वति । इति निरुक्तभा० उ० तृतीये० ३३ खण्डः ; ड. °वति ।

- २९ इति निरुक्तभाष्ये ३३ खण्डः ; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नार्यां सोमंपीतये
(ऋ० सं० १ । २२ । १२) ॥ इति सा निगद्व्याख्या-
ख्याता ॥ ३४ ॥

इति नवमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

५

इहेन्द्राणीमुपह्वय इति । इह कर्मणि अग्नार्याम् उपह्वये सोमपा-
नाय आत्मनश्च स्वस्तये । इन्द्राणीम् । अपि च ।
अग्नार्यां वरुणानीम् । असाधारण्येन । इन्द्राणीं च वरु-
णानीं च अग्नार्यां च इह कर्मण्युपह्वये सोमपानाय स्वस्तये चेत्येवं सति
' तस्या एषा भवति ' इति भाष्यवचनं नोपपद्यते । सोमपानसंबन्धा-
न्मध्यमेति चेन्नैतत् । अग्रिरपि हि सोमपान-
संबन्धे उक्तः ' सोमं पिव मन्दसानो गण-
श्रिभिरिति ' तस्मात् ' उपपद्यते ' इति
अस्यामृचि इन्द्रा-
णीवरुणान्यौ स्तूयेते ।
तेन ' तस्या एषा
भवति ' इति वचनं
नोपपद्यते (निरु० ८ । २६) ॥ ३४ ॥

१०

१५

चतुर्दशस्य तृतीयः पादः ।

चतुर्थः पादः ।

अथातोऽष्टौ द्वंद्वान्युलूखलमुसले उलूखलं व्याख्यातं मुसलं
मूहः सरं तयोरेषा भवति ॥ ३५ ॥

२०

१ क. ख. १३ (३४); त. द. १३. २ ड. थ. य. ' इति० पादः ' नास्ति; छ. तृतीयः पादः; त. नवमस्य तृ; द. इति नेरुक्ते उत्तरार्धस्य नव.
३ क. ख. घ. झ. ट. इति । इति सा निगद्व्याख्याता । इति; ग. इति । इह;
ठ. ड. इन्द्राणीमिति । इति सा निगद्व्याख्याता । इह. ४ क. ख. घ. झ. ट.
उ. ड. भाष्यकारवचन. ५ क. ख. १३ (३४); ग. च. वर्जमितेरष्वङ्गो नास्ति.
६ उ. ड. इति चतुर्दशाध्यायस्य तृ. ७ ठ. पादः । इति निरुक्तभाष्ये उ० तृ०
चतुस्त्रिंशः खण्डः; ड. पादः । इति नेरुक्तभाष्ये ३५ ख. छ. ८ क. ख. १(३५);
त. द. १.

२९

आयजी वाजसातमा ता ह्यु १ च्वा विजर्भृतः । हरीं इवा-
न्धांसि बप्सता (ऋ० सं० १।२८।७) ॥ आयष्टव्ये अन्नानां
संभक्ततमे ते ह्युच्चैर्विहिते हरी इवान्नानि भुञ्जाने हविर्धाने
हविषां निधाने तयोरेषा भवति ॥ ३६ ॥

आयजी वाजसातमोर्ति । आभिमुख्येन मर्यादया वा यष्टव्ये पूज्ये
वाजसातमे अन्नानां संभक्ततमे उच्चा विजर्भृतः
उल्लुखलमुसष्टे उच्चैर्विहिते । उल्लुखलमुच्छ्रीयते । अवहन-
नाय मुंसलमुच्यते । एतदुच्चैर्विहरणम् । ते एते नित्यमस्माकं गृहे हरी-
अश्वानिव नित्यमविच्छेदेन अन्नानि बप्सतां भुञ्जाने मंस्कारकत्वेन स्याता-
मित्येतदाशास्महे ॥

१०

‘ हविर्धाने (३३) हविषां निधाने ’ । सोमस्तयोर्निधीयन्ते । तयो-
रेषा भवति ॥ ३६ ॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपी-
तये (ऋ० सं० २।४१।२१) ॥ आसीदन्तु वामुपस्थमुप-
स्थानभद्रोग्रध्वये इति वा यज्ञिया देवा यज्ञसंपादिन इहाद्य
‘ सोमपानाय द्याव्यापथिव्या व्याख्याते तयोरेषा भवति ॥ ३७ ॥

१५

१ छ. द ह्यु १ च्वा. २ क. ख. २ (३६); त. द. २. ३ ग. ‘ मिति । १०
आ. ४ ग. ‘ धम्यमाने; ज. ‘ धम्यने. ५ घ. झ. ट. बप्सतो. ६ ग. च. ज.
भुञ्जाने. ७ घ. झ. ट. ठ. ड. सोमस्त. ८ घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ धियते. ९ घ.
झ ट. ‘ वति । तयोरेषा स्तुतिर्भवति; ट. ड. स्तुतिर्भवति. १० क. ख. २ (३६);
ठ. ‘ वति । इति निरु० उ० तृ० ३६ खण्डः; ड. ‘ वति । इति निरुक्तभाष्ये ३६
खण्डः; घ. झ. ठ. ड. अङ्गो नास्ति. ११ क. ख. छ. त. द. ‘ पस्थ उप. १२
छ त. द. ‘ स्थानं यज्ञि. १२ क. ख. ३ (३७); त. द. ३. २६

२६

आ वामुपस्थमद्बुहेति । गृत्समदस्यार्धम् । द्यावा नः पृथिवी इति
हविर्धाने च । हविर्धानप्रवर्तने विनियोगः (मैत्रा० सं०
३ । ८ । ७) । हे हविर्धाने अद्बुहा अद्बो-

५ ग्धव्ये युवामुच्येथे । यत्र युवामुपगम्य स्थिते तत् वाम् उपस्थानं यज्ञियाः
यज्ञसंपादनो देवा इह एतस्मिन्कर्मणि अद्य उपगम्य सीदन्तु निर्षादन्तु
सोमपानाथेत्येतदाशास्महे ।

‘ द्यावापृथिव्यौ (३१) व्याख्याते ’ । द्यौश्च पृथिवी चेत्येते
पदे व्याख्याते (निरु० १ । १४) । ‘ तयोरेषा भवति ’ ॥ ३७ ॥

१० द्यावां नः पृथिवी इमं सिध्नमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु
यच्छताम् (ऋ० सं० २ । ४१ । २०) ॥ द्यावापृथिव्यौ न
इमं साधनमद्य दिविस्पृशं यज्ञं देवेषु नियच्छतां विपाट्छुतुद्रथौ
व्याख्याते तयोरेषा भवति ॥ ३८ ॥

१५ द्यावा नः पृथिवी इममिति । द्यावापृथिव्यौ अस्माकं सिध्नं
साधनम् इमं यज्ञं थोऽयमस्मान्साधयति अद्य
द्यावापृथिव्यौ एतस्मिन्नहनि वर्तमानं दिविस्पृशं द्यां यः

स्पृशति आपूरयति तमेवंगुण्यज्ञं देवेषु नियच्छतां देवेभ्यो दत्तमित्ये-
तदाशास्महे ।

२० ‘ विपाट्छुतुद्रथौ (३२) व्याख्याते ’ । ‘ विपाट् विपाटनाद्वा ’
इत्यत्र विपाट् (निरु० ९ । २६) व्याख्याता । ‘ शुतुद्री शुद्राविणी ’
इत्यत्र शुतुद्री (निरु० ९ । २६) । ‘ तद्यद् द्विवदुपरिष्ठात्तद्व्याख्या-
स्यामः ’ इत्येतत् (निरु० २ । २४) ॥ ३८ ॥

१ ग. हेति । गृत् । २ ग. ज. °धानि. ३ ग. च. ज. °र्तते. ४ क. ख. घ.
२५ झ. ट. ठ. ड. ‘रेषा स्तुतिर्भवति. ५ क. ख. ३(३७); ठ. °वति। इति निरुक्तभा०
उ० तृ० ३७ खण्डः; ड. °वति इति निरुक्तभा० ३७ खण्डः; घ. झ. ट. ज.
अङ्को नास्ति. ६ क. ख. ४ (३८); त. द. ४. ७ ग. °मिति । द्या०. ८ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °गुणं य०. ९ घ. झ. ट. च. ज. °पाट् शुतु०. १० क.
ख. ४ (३८); ठ. °तत् । इति नि० भा० उ० तृ० ३८ खण्डः; ड. तत् । इति
३० निरुक्तभा० ३८ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने । गावेव
शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते (ऋ० सं०
३ । ३३ । १) ॥ पर्वतानामुपस्थादुपस्थानादुशत्यौ कामय-
माने अश्वे इव विमुक्ते इति वा विषण्णे इति वा हासमाने हासतिः
स्पर्धायां हर्षमाणे वा गावाविव शुभ्रे शोभने मातरौ संरिहाणे ५
विपाट्छुतुद्री पयसा प्रजवेते आर्त्नी अर्त्न्यौ वारण्यौ वारि-
ण्यौ वा तयोरेषा भवति ॥ ३९ ॥

प्र पर्वतानामिति । विश्वाभिन्नो ब्रवीति । ये चैते विपाट्छुतुद्री पयसा
विपाट्छुतुद्री उदकेन पूर्णे प्रजवेते प्रकृष्टेन जवेन गच्छतः १०
पर्वतानाम् उपस्थात् निर्झरान्मेघानां वा उशती
उशत्यौ कामयमाने परस्परं समागमं समुद्रं वा । कथं प्रजवेते । अश्वे इव
विषिते विमुक्ते मन्दुरातः । सार्दिभ्यो वा । विषण्णे इति वा । विभागे वैकस्मि-
न्युक्ते । कस्मिंश्चिद्युक्ते युगादौ वा । हासमाने स्पर्धमाने परस्परेण वा हर्षमाणे
हृष्यमाणे । विपाट्छुतुद्री विमुक्ते गावाविव शुभ्रे शोभने कल्याण्यौ मातरौ १५
संरिहाणे वत्समेकं प्रलेदुमिच्छन्त्यौ य एवमेते प्रजवेते ते अस्माकं
गाधे भवत इत्येतदाशास्महे ।

‘ आर्त्नी ’ (३३) धनुःप्रान्ते । ते कस्मात् । ‘ अर्त्न्यौ वा ’ ।
आर्त्नी कस्मात् ऋतेर्धातोर्गत्यर्थस्य । गमयतस्ते इपून । ‘ र्त्न्यौ
वा ’ । र्त्न्याहौ । ‘ रिषण्यौ वा ’ । हन्त्र्यौ । ‘ तयो २०
रेषा भवति ’ ॥ ३९ ॥

१ छ. त. द. संमातरौ रिहाणे. २ क. ख. ५ (३९); त. द. ५. ३ ग.
'मिति । वि० ४ च. वैते. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °स्थात् उपस्थानात् नि०.
६ घ. झ. ट. ठ. ड. निर्भरा०. ७ च. ज. उशत्यौ. ८ ग. च. ज. साहिभ्यो; ट.
सार्दिभ्यो० हि न्यौ. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °भागेनेक०. १० ग. च. ज.
विराड्विमुक्ते. ११ ग. ज. चरण्यौ; च. वाचरण्यौ. १२ ग. ज. चरणार्थो; च.
रणार्थो. १३ क. ख. ५ (३९); ट. °वति । इति निरु० भा० उ० वृ० ३९
खण्डः; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ३९ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्गो नास्ति. २९

ते आचरन्ती समनेव योपां मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे । अप
 शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नीं इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् (ऋ०
 सं० ६ । ७५ । ४) ॥ ते आचरन्त्यौ समनसाविव योपे
 मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थ उपस्थानेऽपविध्यतां शत्रून्संविदाने
 ५ आर्त्न्याविमे विघ्नत्यावमित्राञ्छुनासीरौ शुनो वायुः शु एत्यन्त-
 रिक्षे सीर आदित्यः सरणात्तयोरेषा भवति ॥ ४० ॥

ते आचरन्ती समनेवेति । आर्त्न्योरेवानुमन्त्रणमश्वमेधेऽनेन क्रियते
 १० आर्त्नीं (मैत्रा० सं० ३ । १६ । ३) । समनेव
 योपा । समनसाविव एकभर्तृके योपिते यथैकं
 भर्तारं प्रत्याचरन्त्यौ भवतः परिष्वक्तुम् एवमाक्रेष्टारं प्रति ये नित्यमाचरन्त्यौ
 भवतः आनमन्त्यौ । मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे । मातेव पुत्रं उपस्थे
 रक्षणार्थं ये विभृतामाक्रेष्टारम् । अमुना प्रकारेण ये विस्फुरन्त्यौ नित्यम-
 मित्रान् भवतः । ययोरेष स्वभावस्ते आर्त्नीं नित्यमस्माकमुना प्रकारेण
 १५ संविदाने संवादमिव कुर्वाणे परस्परतः । आकर्षणाभिप्रायमेतत् । आकृ-
 ष्यमाणयोस्तयोः संवाद इव परस्परतो भवति । शत्रून्पविध्यतामित्येत-
 दाशास्महे ।

‘ शुनासीरौ ’ (३४) इत्यत्र शुनो वायुः । स हि क्षिप्रमेत्यप्र-
 २० शुनासीरौ कस्मात् तिवध्यमानोऽन्तरिक्षे । ‘ सीर आदित्यः सर-
 णात् ’ । स हि नित्यं सरति गच्छति ।
 ‘ तयोरेषा भवति ’ ॥ ४० ॥

१ छ. त. द. °स्थानेऽप शत्रून्विध्यतां संवि° । २ क. ख. ६ (४०); त. द. ६.
 ३ ग. °वेति। आ°; ठ. ड. °चरन्तीति. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. °माक्रेष्टार° । ५ च.
 °येनमाच° । ६ ग. ज. विष्फुर°; च. विस्फर° । ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 शुनासीरो शुनो वायुः शु एत्यन्तरिक्षे । शुना° । ८ क. ख. ६ (४०); ठ. °वति ।
 इति नि० उ० तृ० ४०; ड. °वति । इति नि० उ० तृ० ४० ड. °वति । इति
 निरुक्तटीकायामुत्तरषट्के तृतीयेऽध्याये एकचत्वारिंशः ४१ खण्डः; घ. झ. ट. ज.
 २९ अङ्को नास्ति.

शुनासीराविमां वाचं जुपेथां यद्विवि चक्रथुः पयः । तेनेमा-
मुपं सिञ्चतम् (ऋ० सं० ४ । ५७ । ५) ॥ इति सा निग-
दव्याख्याता देवी जोष्ट्री देव्यौ जोषयिञ्च्यौ यावापृथिव्याधिति
वाहोरात्रे इति वा सस्यं च समा चेति कार्थक्यस्तवारेण संप्रैषो
भवति ॥ ४१ ॥

५

शुनासीराविमि^३ । वामदेवस्यार्पम् । शुनासीर^३ विनिधोगः (आश्व०
श्रौ० २ । २०) । हे शुनासीरौ युवां वाच-
मिमां भम स्तुतिलक्षणां जुपेथां सेनेथाम् । कैथं
पुनरासेवितेयं युवाभ्यां स्यात् । यद्विवि चक्रथुः पयः । यत् दिवि
द्युलोके चक्रथुः संभरथो युवां पयः उदकं तेन इमां पृथिवीम् उपसि-
ञ्चतम् । एवमनेनास्मद्वागासेविता युवाभ्यां भविष्यतीति ।

१०

‘ देवी जोष्ट्री (३५) देव्यौ जोषयिञ्च्यौ । सर्षस्य तर्पयिञ्च्यौ ।
के पुनस्ते इति । ‘ यावापृथिव्यौ अहोरात्रे वा ।
के देवी जोष्ट्री सस्यं च समा चेति कार्थक्यः ’ । सस्यं ब्रीह्यादि
समेति संवत्सरः । ‘ तयोरेप संप्रैषो भवति ’ ॥ ४१ ॥

१५

देवी जोष्ट्री वसुधित्वा ययो रन्याघा द्वेषांसि वसुधेदान्वाव-
क्षदसु वार्याणि यजमानाय वसुधेने वसुधेचरस्य वीणां वज्रं

१ छ. द. काष्ठक्य^०; त. कार्थक्य^० थ. २ क. ख. ७ (४१); त. द. ७. २०
३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °विति। इति सा निगदव्याख्याता। वा^०; ग. °विति^३।
वा^०. ४ ग. च. ज. °मां म स्तु^०. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कथं च पु^०.
६ घ. झ. ट. देवी जोष्ट्रित्य दि भवतीत्यन्तं निरुक्तमूलापरणं ततो देवी
जोष्ट्रित्यादि; ठ. ड. देवी जोष्ट्री देव्यौ जोषयिञ्च्यौ इति । देवी^०. ७ घ. झ. ट.
ठ. ड. जोष्ट्रिति देव्यौ^०. ८ ग. घ. झ. ट. काष्ठक्यः; च. कार्थक्यः^० कार्थ; ज.
कार्थक्यः. ९ क. ख. ८ (४१); ट. °वति । इति निरु० भाष्ये उ० तू० ४१
खण्डः; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ४१ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.
१० छ. त. द. जोष्ट्री. ११ ड. थ. घ. ट. ड. युय^०. १२ छ. त. द. °वैश्व^०. २८
१०३

(भैत्रा० सं० ४ । १३ । ८ ॥ तै० ब्रा० ३ । ६ । १३) ॥
 देवी जोष्टी देव्यौ जोषयिञ्च्यौ वसुधिती वसुधान्यौ ययोरन्या-
 घानि द्वेषांस्यवयावयत्यावहत्यन्या वसूनि वरणीयानि यजमानाय
 वसुवननाय च वसुधानाय च वीतां पिवेतां कामयेतां वा
 यजेति संप्रैपो देवी ऊर्जाहुती देव्या ऊर्जाह्वान्यौ द्यावापृथिव्या-
 विति वाहोरात्रे इति वा सस्यं च समा चेति कात्थक्यस्तयोरेष
 संप्रैपो भवति ॥ ४२ ॥

- १० देवी जोष्टी देव्यौ जोषयिञ्च्यौ वसूनां निधानभूते ययोः देव्योः
 अन्या एका अघानि द्वेषांसि प्रीति यान्यप्रियाण्य-
 स्माकं तानि यूयवत् अवयावयांत अवांमश्रयांत
 नाशयत्यस्मत्तः । अन्या पुनः आवक्षत् आवर्हति वसु वार्याणि वरणी-
 यानि यजमानाय यानि वसूनि वसुवने वसुधेयस्य वसुवननाय च संभ-
 जनाय वैभक्ततिशिष्टस्य विधानाय चेति । ते देव्यौ जोषयिञ्च्यौ
 अस्य पृदाज्यस्य स्वमंशं वीतां पिवेतां कामयेतां वा । यजेति संप्रैपः ॥ ४२ ॥

देवी ऊर्जाहुती इपमूर्जेमन्यावक्षत्सग्धि सपीतिमन्या नत्रेन
 पूर्वं दयमानोः स्याम पुंराणेन नवं तामूर्जेमूर्जाहुती ऊर्जयमाने

- १ छ. त. द. 'वसुधिती' नास्ति. २ क. ख. त. थ. द. वननीयानि; छ. वरणी^०
 २० ननी. ३ क. ख. ९ (४२); त. द. ९.४ ग. इति^० । दे^०. ५ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. वसुधिती वसू^०. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. हन्ति. ७ ग. ज.
 या अपि^०; च. या अन्यपि^०. ८ ग. न्ययूयवन्; च. यूयवन्; न्ययूयवान्.
 ९ ग. ज. अवसाव^०. १० ग. ज. 'हति आवहति वसु^०'; च. आवहति आव-
 हति. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यजमानाय वरणीयानि. १२ ग. च. ज.
 'वसुवने' नास्ति. १३ ग. च. ज. अभु^०. १४ क. ख. निधा^०; च. विधा^० नि.
 १५ ग. ज. 'यिञ्च्यौ वस्य; च. 'यिञ्च्योवस्य^० त. १६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 संप्रैष इत्यनन्तरं निरुक्तमूलात् देवी ऊर्जाहुतीत्यादि भवतीत्यन्तमवतःरणम्. १७ क.
 ख. ९ (४२); ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. १८ ड. थ. घ. 'माना स्याम^०.
 २९ १९ छ. त. पराणेन नवं ताम्; ध. पुराणेन नवं.

अधातां वसुवने वसुधेयस्य दीतां यज (मैत्रा० सं० ४ । १३ ।
 ८ ॥ तै० ब्रा० ३ । ६ । १३) ॥ देवी ऊर्जाहुती देव्या
 ऊर्जाह्वान्यावन्नं च रसं चोवहत्यावहत्यन्या सहसर्गिधि च सहपी-
 तं चान्या नवेन पूर्वं दयमानाः स्याम पुराणेन नवं तामूर्जमूर्जाहुती
 ऊर्जयमाने अधातां वसुवननाय च वसुधानाय च वीतां पिबेतां
 कामयेतां वा यजेति संप्रैषो यजेति संप्रैषः ॥ ४३ ॥

देवी ऊर्जाहुती देव्या ऊर्जाह्वान्यौ ऊर्जस्थं अन्नस्य निष्पादयिष्यौ ।
 देवी ऊर्जाहुती यावापृथिव्यावूर्जाह्वान्यावुच्येते । इपमूर्जमन्या
 एकावक्षत् । इपं च अन्नादि रसं च तद्दुपसेचनं १०
 क्षीरादि । किंच । एका उपनीतमितस्यान्नस्य सगुणस्य सर्गिधं संपीतमन्या
 सहभोजनं बन्धुभिरिति आवक्षत् । आभिमुख्येन यथा बन्धुभिः सह
 भुञ्जीमहि तथा करोतु । तथा र्थं बह्वन्नमस्तु यथा नवेन पूर्वम् पुराणं देय-
 माना रक्षन्तः स्याम । पुराणेन नवं पुराणेन च नवम् । तामेवं रक्षणम् ऊर्जम्
 ऊर्जाहुती ऊर्जयमाने बलवतीमूर्जतां च कुर्वाणे अधातां दत्तां वसुवने १५
 वसुवननाय च वसुधेयस्य वसुधानाय च । वीतां पिबेतां कामयेतां वा ।
 ' यजेति संप्रैषो यजेति संप्रैषः ' ॥ ४३ ॥

१ ड. अधातां; छ. त. अधीतां, ध. अधातां; २ छ. त. द. ' आवहति सङ्घ-
 देव. ३ छ. त. द. सहसर्गिधि. ४ छ. त. द. सहसपीति. ५ ड. थ. ध. 'माना २०
 स्याम. ६ क. ख. १० (४३); त. द. १०. ७ घ. झ. ट. मैत्रावरुणो
 प्रकीर्ति । हे होतस्त्वमेते देवी°; ठ. ड. देवी ऊर्जाहुतीति । मैत्रा०
 देवी°. ८ ग. 'वहान्या । ऊ'. ९ घ. झ. ट. ठ. ड. ऊर्जाऽन्नस्य. १० ग.
 च. ज. निष्पाद°. ११ ग. च. ज. ' तद् ' नास्ति. १२ ग. च. ज. ' रादिकं
 च । एका°. १३ ग. च. ज. ठ ड. नागमि°. १४ ग. च. ज. सपीतीति (च. सपी- २५
 तीति) मन्या°. १५ ग. च. ज. सहभोज्यं सहभुञ्जी°. १६ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. च तत्त्व°. १७ ग. च. ज. पूर्व्य. १८ च. ज. देय°. १९ ग. च. ज. दक्ष°.
 २० क. ख. झ. नवं धान्यं दयमानाः स्याम । ता°; घ. ट. नवं धन्यं दयमा
 रक्षन्तः नः स्याम । ता°; ठ. ड. नवं धान्यं दयमानाः रक्षतः । नः स्याम ता°.
 २१ ग. च. ज. ' ऊर्जाहुती ' नास्ति. २२ ग. च. ज. ' मूर्जिक्वां च°. २३ क.
 ख. १० (४३); ठ. ड. ४३ (ठ. ' ४३ ' नास्ति) । इति निरुक्तटीकायामु-
 चरषट्के तृतीयोऽध्याये चत्वारिंशः खण्डः ४३; ग. घ. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ३२

जम्बुमार्गाश्रमनिवासिनो भगवद्दुर्गाचार्यस्य कृतौ ऋज्वर्यायां
निरुक्तवृत्तौ चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ।

* अथयान्यश्वो + बोह्लामानोमित्रः कनिक्रदद्भद्रवदसर्वत्स-
रमुपं = प्लवदप्रावपाप्रैतेवदन्त्वभेन्दान्यर्द्धसंयोगाद्वर्नस्पतउपश्वसयब-
५ ह्नीनामहिरिचभोगैरथेतिष्ठन्धन्वैनागावर्द्धन्तीवसुपर्णवस्तआजह्वंति
यच्चिद्धित्वंषुषेभोन्यक्रन्दं यन्निमंतपितुन्विमम औपोहियाओषधारा-
रौड्यरथ्यानिश्रद्धयास्योनामीपामिहेन्द्राणीमथातोष्ट्रावायजीआवा-
मुपस्थंद्यावैनःप्रषवतानतिओचरन्तीशुनीसीरौदेवीजोष्ट्रीदेवीऊर्जा-
हुतीत्रिचत्वारिंशत् ↓ ॥

१० इति निरुक्ते (उत्तरपट्के) तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



१ ग. ठ. ड. इति जम्बू°. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °मार्गाश्रमवासि°;
ग. ज. मार्गनिवा°. ३ ठ. ड. °रुक्टीकायां निवण्टाध्यायपञ्चकेन सह नैरुक्चतु.
४ ग. °ध्यायः । खण्डः ॥ पादः ॥ ४ । मन्त्र ३८ सं ४२५; घ. झ. ट. °समाप्तः°
नास्ति; ठ. समाप्तिमगमत्. * ठ. ड. अथ खण्डानुक्रमणी । अथ° (ड. °ऋम-
णिका). + घ. बोह्ला. = क. ख. ठ. ड. °पयव°. ↓ छ. त. द. खण्डशृङ्खला नास्ति.
५ ड. इति नैरुक्ते°; छ. इति निरुक्ते नवमोऽध्यायः; त. नवमोऽध्यायः समाप्तः;
१८ द. इति नैरुक्ते उत्तरार्धस्यनवमाध्यायस्य चतुर्थः पादः । इति नवमोऽध्यायः०

अथ दशमाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

ॐ ॥ अथातो मध्यस्थाना देवतास्तासां वायुः प्रथमागामी
भवति वायुर्वातेर्वेवेर्ना स्वाङ्गतिकर्मण एतेरिति स्थौलाष्टीविरन-
र्थको वकारस्तस्यैषा भवति ॥ १ ॥

व्याख्यातानि पृथिवीस्थानदेवतापदानि । अधुना समाम्नायानुक्रमेणैव
मध्यमस्थानदेवतापदानि यक्तव्यानि । तदर्थमिदमारभ्यते । 'अथातो
मध्यस्थाना देवताः' इति । 'अथ'शब्दो विशेषाधिकारार्थः । १०
'अतः'शब्द आनन्तर्यार्थः । मध्यं स्थानमेतासामिति मध्यस्थाना देवता
वाय्वाद्याः । वक्ष्यन्ते इति वाक्यशेषः । देवता इति बहुवचनं भेदपक्षे ।
एकैव नैरुक्तानां देवता त्रित्वाभ्युपगमात् (निरु० ७ । ५) । एतस्यैव
मध्यमस्य पर्यायवचनान्येतानि वाय्वादीनि रोदस्यन्तानि गुणविशेषतो १५
भवन्ति यथैबोत्तमस्य ज्योतिषो दृश्यन्ते सधितृभगप्रभृतीनि । 'तासां
वायुः (निष्० ५ । ४ । १) प्रथमागामी भवति' । नन्विन्द्र इति
मध्यमस्य मुख्यमभिधानम् । तत्प्रथमं समाम्नातव्यमासीत् । न ।

वायुः किमिति मध्यमस्य वर्षकर्मोपलक्षणत्वाद्दर्पकर्मणि च वायो-
रधिकारः प्रथमः स्यात् । कथमिति । वाय्वात्म- २०
प्रथमः नैव हि मध्यम ऊर्जान्मासात्परतः सार्वादिक्किमुदक-
मुसंहरन्नोषधिवनस्पतिजल्यशयेभ्य उदकमन्तरिक्षलोकस्य गर्भमुपाचिनोति ।
स मासाष्टकेन संयुतोदकगर्भो विपक्वः प्रावृषं प्राप्य प्रसवाय प्रकल्पते ।
तदुक्तम् । 'वान्ति पर्णघुषो वातास्ततः पर्णमुच्चोऽपरे । ततः पर्णरुहो वान्ति
ततो देवः प्रवर्षति' ॥ इति । तदेवं वर्षकर्मप्रारम्भे वाय्वात्मनैव मध्यमो २५

१ ङ. ठ. ड. हरिः ओम्; थ. ओ ३ म्; ध. हरिः ॐ म्; छ. नुं. २ ग.
ज. नुं नमः । व्यां; च. श्रीगणाधिपतये नमः । व्यां; घ. ट. श्रीः । व्यां; झ.
ट. ड. श्रीगणेशायनमः । व्यां. १ ग. च. ज. ठ. ड. मध्यस्था'. ४ ग. च.
ज. ठ. ड. मध्यमस्था'. ५ ग. च. ज. तृत्वा'. ६ क. ख. घं. झ. ट. ठ. ड.
'मस्य स्थानस्य मु', ७ च. 'मुपहन्नो'. ८ च. 'रिक्षजलो'.

व्याप्रियत इति युक्तं वाय्वभिधानमिह प्रथमं समाम्नातमिति । इतश्च युक्तं यदुच्यते ' तासां वायुः प्रथमागामी भवति ' इति । स एष संभृतोदकगर्भो वायुर्विष्वक्त्रन्मेघजालेन नभो मध्यमो वरुणः संपद्यते । ततो रुद्रद्रुद्रः । तत इरां दददिन्द्रः । ततो रसान् प्रार्जयन्पर्जन्यः । एवमादिर्मध्यमस्य जगदनु-
 ५ प्रहाय वर्षप्रदानसिद्धये गुणोपजनक्रमः । अनयैव गुणोपजनक्रमानुपूर्व्यां वायुर्वरुणो रुद्र इन्द्रः पर्जन्य इत्येवमाद्या समाम्नाये देवतानामानुपूर्व्यां । तदेतत्स्फुटं सुस्थाने गुणान्तरोपजनानुपूर्व्यं अयोतिर्मण्डलस्य सवितृ-
 प्रभृतिषु ।

' वायुः ' कस्मात् । ' वातेः ' । ' वा गतिगन्धनयोः ' (धा० २ । ४०)

१० इत्यस्य । सततमसौ वाति गच्छति । ' वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः ' । अनेकार्थो वेतिः । तस्य वा गतिकर्मणो गत्यर्थस्य । ' एतेरिति स्थौलाष्टीविः ' ।
 वायुः कस्मात् अस्मिन् पक्षे ' अनर्थको वकारः ' । उपजनमा-
 त्रम् । एत्यसौ इति वायुः । ' तस्यैषा भवति ' ॥ १ ॥

१५ वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी ह्यंम् (ऋ० सं० १ । २ । १) ॥ वायवायाहि दर्शनीयेभे सोमा अरंकृता अलंकृतास्तेषां पिव शृणु नो ह्वानमिति कमन्यं मध्यमा-
 देवमवर्क्ष्यत्तस्यैपापरा भवति ॥ २ ॥

२० वायवायाहि दर्शतेति । मधुच्छन्दस आर्षम् । आध्वर्यवे वायव्यापस्थाने
 वायुः विनियोगः । बाह्वृच्ये प्रउर्गं शस्यते (ऐ० ब्रा०
 ३ । १ ॥ आश्व० श्रौ० ५ । १०) । हे वायो दर्शत दर्शनीय दर्शनाहं त्वदर्थम् इमे सोमा अस्माभिः अलंकृताः । पर्याताः
 अरंकृताः । पातुं संस्कृताः । स त्वमस्माकमिदम् आह्वानं श्रुधि शृणु । श्रुत्वा च

२५ तत आयाहि । एष च एतेषां सोमानां यः स्योऽशस्तत्र तं पाहि पिवेये-
 तदाशास्महे ।

१ ग. ज. वरुद°; च. वरुद्रः; ट. ड. रुदतीति रुद्रः. २ च. 'तस्यैषा भवति' नास्ति. ३ ट. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपदके चतुर्थाध्याये प्रथमः खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ४ छ. त. द. 'वक्षत्'.
 ३० ५ ट. ड. याहीति. ६ ग. °तेति । म°. ७ क. ख. घ. झ. ट. °गे शस्त्रे श.

वायोः सर्वस्थानतामपेक्ष्य विचारमागूर्थं ततोऽवधारयति । सर्वस्थान-
त्वेऽपि सति 'कमन्यम्' इन्द्रात् 'मध्यमादेवमवक्ष्येत्' मन्त्रदृक् ।
सोमा अरंक्तास्तेषां विवेति प्रसिद्धं हीन्द्रस्य मध्यमस्य सोमपानं तदर्थ-
त्वात्सोमसंस्कारस्याप्रसाध्यमन्यस्य । तस्मादिन्द्र एव वायुः । 'तस्य'
इन्द्रस्य वायोरेन्द्रे एव सूक्ते यस्यामिन्द्रस्य विशेषणत्वेन वायुशब्दस्तथा
'एपापरा' ऋक् 'भवति' ॥ २ ॥

५

आसस्त्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिक्षु वायोःमृतं विदस्येत् (ऋ० सं०
६ । ३७ । ३) ॥ आससृवांसोऽभिव्रलायमानमिन्द्रं कल्याण-
चक्रे रथे योगाय रथ्या अश्वा रथस्य वोढार ऋज्यन्त ऋजुगा-
मिनोऽन्नमभिवहेयुर्नवं च पुराणं च श्रव इत्यन्ननाम श्रूयत इति
सतो वायोश्चास्य भक्षो यथा न विदस्येदितिन्द्रप्रधानेत्येके नैप्र-
ण्टुं वायुकर्मोभयप्रधानेत्यपरं वरुणो वृणोतीति सतस्तस्यैषा
भवति ॥ ३ ॥

१०

१५

आसस्त्राणास इति । भरद्वाजस्यार्षम् । महाव्रते महदुक्थे शस्यते
वायुरिन्द्र एव । उत्तरे पक्षे (ऐ० आ० ५ । २ । २) ।
तस्य रथ्या अश्वाः सुचक्रे कल्याणचक्रं रथे योगा-
र्थम् इन्द्रं शवसानम् अच्छ इन्द्रमभिव्रलायमान-
मधिकत्रलमात्मानं मन्यमानम् आसस्त्राणा आससृवांसः नित्यमासर्पन्ति ।
एतान्युक्त्वा रथेऽस्माकमायाहि सोमपानाय यज्ञमिति । किमस्माकं तं कुर्व-
न्विति । अमि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुः । ऋजुगामिनो भूत्वा श्रवः अन्नं
सोमाख्यमेतदस्मद्यज्ञे यत् नू चित् नवं पुराणं च तत्पानायैनमिन्द्रमभिव-
हेयुः । नु क्षिप्रम् । यथा अस्य इन्द्रस्य वायोरेदम् अमृतम् एष सोम-
भक्षो न विदस्येत् । अविदस्तेऽनुपक्षीणे एतस्मिन्सोमभक्षेऽभिवहेयुरित्ये-
तदाशास्महे ।

२०

२५

१ ग. च. ज. 'वक्षत्'. २ ग. च. ज. मध्यमध्यमस्य. ३ ठ. ड. 'वति' । इति
चतुर्थाध्याये २ ऋण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ४ छ. त. द. बोलहार°.
५ ग. इति^३. भ°. ६ च. भार°. ७ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'न्ति' ।
ये तान्यु°.

३१

‘ श्रव इति ’ एतत् ‘ अननाम ’ । तद्धि सर्वत्र ‘ श्रूयते ’ ।
 ‘ नू चित् ’ इति नवपुराणाभिधायकौ निपातौ (निरु० ४ । १७) ।
 नवं यः सोमो गृहीत्वा तत्कालमेव हृत्यते । पुराणं पुनर्यः प्रातःसवने
 गृहीत्वा माध्यंदिने सवने हृत्यते तृतीयसवने वा । तथा । अतिग्राह्याः
 ५ (मैत्रा० सं० ४ । ७ । ३) । ध्रुवः (मैत्रा० सं० ४ । ६ । ६) ।

एवमेतस्मिन्मन्त्रे ऐन्द्रसूक्तमध्यपातित्वादिन्द्रप्रधाने यद्वाय्वभिधानं तत्
 ‘ नैघण्टुकम् ’ इन्द्रस्यैव विशेषणार्थं व्यञ्जन-
 मात्रम् । ‘ इत्येके ’ । ‘ अपरे ’ पुनः ‘ उभ-
 नैघण्टुक इन्द्रः प्रधा-
 नमित्येकं मतम् । उभौ
 प्रधाने इत्यपरम् ।
 १० प्रधाने इत्यपरम् ।
 ‘ नैघण्टुकम् ’ इन्द्रस्यैव विशेषणार्थं व्यञ्जन-
 मात्रम् । ‘ इत्येके ’ । ‘ अपरे ’ पुनः ‘ उभ-
 यप्रधाना ’ इत्यमृक् ‘ इति ’ मन्यन्ते भेदपक्ष-
 वादिनः । तत्पुनरयुक्तं निष्केवल्ये विनि-
 यागात् ।

‘ वरुणः ’ (२) कस्मात् । ‘ वृणोतीति सतः ’ । स हि
 वियदृणोति मेघजालेन । ‘ तस्यैषा
 वरुणः कस्मात्
 भवति ’ ॥ ३ ॥

१५

नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र संसर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
 तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनक्ति भूमिं (ऋ० सं०
 ५ । ८५ । ३) ॥ नीचीनद्वारं वरुणः कवन्धं मेघं कवनमुदकं
 भवति तदस्मिन्धीयत उदकमपि कवन्धमुच्यते वन्धिरनिभृतत्वे
 २० कमनिभृतं च प्रसृजति द्वाषाष्टिव्यौ चान्तरिक्षं च महत्त्वेन तेन
 सर्वस्य भुवनस्य राजा यवमिव वृष्टिर्व्युनक्ति भूमिं तस्यैषापरा
 भवति ॥ ४ ॥

२५

नीचीनवारमिति । अत्रार्षम् । न्यक् अन्यते द्वारं यस्य स भवति
 नीचीनद्वारः अधोद्वारः । तं नीचद्वारम्
 वरुणः अधोद्वारं वृत्त्वा कवन्धं मेघं वरुणो मध्यमः
 अत एव मेघसंबन्धात् कवनम् उदकं प्रससर्ज प्रसृजति महत्त्वेन ।

१ ठ ड. ० वति । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थाध्याये तृतीयः (ठ. ३) खण्डः;
 घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. २ क. ख. ड. थ. ध. कवन्धं. ३ क. ख. ड.
 कवन्धं. ४ ग. ‘ मिति ’ । अ०; ड. ‘ चीनवार ’. ५ क. ख. व. झ. ट. नीचीन-

३१ दारं. ६ क. ख. झ. ट. कवन्धं.

न ह्यमहानेतच्छक्नुयात्कर्तुम् । रोदसी अन्तरीक्षम् । यावापृथिव्यौ च अन्त
रिक्षं च महत्त्वेन सर्वमापरदिष्यन्निव । ततोऽतिप्रभूतोदकेन त्रिमृष्टेन
विश्वस्य भुवनस्य भूतजातस्योदकस्य वा राजा ईश्वरः यवं न यवमिव
कश्चित्सत्कर्षी स्वल्पं वृष्ट्या व्युनक्ति विविधमुनात्ति क्लेदयति भूमिं
कृत्स्नां यः सोऽस्माकमिदं नाम करोतु ।

५

अथैवमन्यथा योज्यम् । प्रसृजति यावापृथिव्यौ चान्तरीक्षं च
प्रकर्षेण सृजत्युत्पादयति । महत्त्वेन यस्माच्चो-
क्तचोऽन्योऽर्थः उत्पादयति स तस्माद्भुवनस्य राजा विश्वस्य भुवनस्य
भूतजातस्य । तेन हेतुना तदनुग्रहाय नीचीनद्वारमधोबिलं मेघं कृत्वा
यवमिव वृष्टिर्भुनक्ति भूमिमिति समानं पूर्वेण ।

१०

‘ कवन्धैः ’ इति मेघ उच्यते । कस्मात्सैः । ‘ कवनमुदकं ’ कवतेर्गे-
त्यर्थस्य । ‘ तदस्मिन्धीयते ’ इति कवन्धो
कवन्धः मेघः । ‘ उदकमपि कवन्धमुच्यते ’ । तत्क-
स्मात् । अत्रोत्तरं पदं प्रथमं निराह । ‘ बन्धिः ’ धातुः ‘ अनिभृतत्वे ’ ।
निभृतस्तावदचपलः । तद्विपरीतार्थवाची बन्धिः । कं च तच्चपलं चेति
कवन्धम् । सुखं चानवस्थायि चेत्यर्थः ।

१५

‘ तस्य ’ वरुणस्य मध्यमत्वे ‘ एषापरा भवति ’ । सा पुनः
किमर्थम् । वर्षकर्म वरुणाभिधानं च सूर्येऽपि दृष्टम् । उन्तरस्यां तु
शब्दत एव मध्यमो वरुण इति विशेषहेतुनोपपादयति ॥ ४ ॥

२०

तमू पु संमना गिरा पितृणां च मनमभिः । नाभाकस्य प्रश-
स्तिभिः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके
समे (ऋ० सं० ८ । ४१ । २) ॥ तं स्वभिष्टौमि समान्या
गिरा गीत्या स्तुत्या पितृणां च मननीयैः स्तोमैर्नाभाकस्य प्रश-

१ ग. च. ज. ‘ महनैतं ’. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ भूतोदकेन. ३ क. २५
ख. ग. च. अथ चैव ’; ज. अथ त्वैव. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तस्मात् एव
भुवं. ५ क. ख. घ. ट. कवन्धं. ६ क. ख. घ. झ. ट. कस्मात् । कं; च. कस्मात्स
नः । कं. ७ क. ख. च. घ. झ. ट. कवन्धो. ८ ग. च. ज. कवन्ध उच्यं. ९ घ.
च. ज. झ. बन्धि. १० घ. च. बन्धिः. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ऋग्म-
वति. १२ च. ‘ स्या उद् शं. १३ ठ. ड. वति । इति निरुक्तभाष्ये ४ खण्डः;
घ. झ. ट. ज. अङ्गो नास्ति. १४ छ. त. द. समान्या.

३१

स्तिभिर्कृपिर्नाभाको वभूष यः स्यन्दमानानामासामपामुपोदये
सप्तस्वगार्षेनमाह वाग्भिः स मध्यम इति निरुच्यतेऽथैष एव
भवति । नभन्तामन्यके संभे । मा भूवन्नन्यके सर्वे ये नो
द्रिष्ट्विनि दुर्धियः पापधियः पापसंकल्पा रुद्रो रौतीति सतो
५ रोरुयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्व-
मिति काठकं यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकं तस्यैषा
भवति ॥ ५ ॥

तम् पु समनेती । नाभाकस्यार्पम् । ' सु ' इत्यतस्योपसगस्य
१० स एव वरुणः संवन्धि क्रियापदं नास्तीति 'तं स्वभिष्टौभि' इत्य-
भिपूर्वे क्रियापदमध्याह्रियते । सुष्टु तर्माभिष्टौभि ।
केन । समना । तत्समानया तद्योग्यया गिरास्तुत्या । पितृणां च मन्मभिः ।
ये च पितृणां मननीया मननार्हा बहुगानाः स्तोमास्तथाहमभिष्टौभि ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिः । याश्च मम नाभाकस्य प्रशस्तयः मृतयो योग्या-
१५ स्तं वरुणं प्रति ताभिरभिष्टौभि । किलक्षणो यो वरुणः । यः सिन्धुनामु-
पोदये स्यन्दमानानाम् अपाम् उपोदये उपोद्घने अन्तरिक्षलोके वर्षस्य
सप्तस्वसा संपद्यते मध्यमाभिर्गवाग्भिः सप्तभिः वाग्भिः । ' स मध्यमः ' इति
वरुणो निरुच्यते शब्दत एतस्मिन्मन्त्रे । तदनुग्रहादस्माकं नभन्तामन्यके
२० संभे । मा भूवन्नन्यके सर्वे । अन्ये एव अन्यके । शत्रवः । ते मा भूवन्न-
स्माकमिति ।

' रुद्रः ' (३) कस्मात् । ' रौतीति सतः ' । स हि स्तनयिन्नुशब्दं
रुद्रः कस्मात् करोति । ' रोरुयमाणो द्रवतीति वा ' । शब्दं
कुर्वाणो मेघोदरस्थो द्रवतीति । ' रोदयतेर्वा ' ।
शत्रून्सौ रोदयति दुःखयति । ब्राह्मणमपि च भवति । ' यदरुदत्तद्रुद्रस्य
२५ रुद्रत्वमिति काठकम् । कठानां प्रवचनम् । ऐतिहासिकैरेतत्समनेति । ' स किल
पितरं प्रजापतिमिषुणा विध्यन्तमनुशोचन्नरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम् ' । ' यद-
रोदीदिति हारिद्रविकम् ' । स एवार्थः । केवलं तु शाखान्तरमन्यत् ।
एवं शाखान्तरेऽपि देवताभिधाननिर्वाचनान्तराण्युपेक्ष्याणीत्युपप्रदर्शना-
र्थम् । हारिद्रवो नम भैत्रायणीयानां शाखाभेदः । तस्यैषा भवति ॥ ५ ॥

१ ग. नेति । ना०. २ ग. च. ज. ' स्तः स्वाह०. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ.
ड. चैतस्मिन्नर्थे भ०. ४ ठ. ड. षति । इति निरुक्तभाष्ये ५ खण्डः; घ. झ. ट.
३२ ज. अद्धो नास्ति.

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेष्वे देवाय स्वधात्रे ।
 अपाह्लाया सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः
 (ऋ. सं० ७ । ४६ । १) ॥ इमा रुद्राय दृढधन्वने गिरः क्षिप्रेष्वे
 देवायान्नवनेऽपाह्लयान्यैः सहमानाय विधात्रे तिग्मायुधाय भरत
 शृणोतु नस्तिग्मं तेजतेरुत्साह कर्मण आयुधमायोधनात्तस्यैपापरा
 भवति ॥ ६ ॥

इमा रुद्रयेति । वसिष्ठस्यार्षम् । उत्तरा च । शूलगवे विनियोगः

(आश्व० गृ० ४ । १० । २१) । हे स्तोतारो

रुद्रः

युधमुच्यध्वे । इमा गिरः स्तुतीः भरत रुद्राय ।

१०

क्षिप्रक्षणाय । स्थिरधन्वने दृढधनुषे क्षिप्रेष्वे शत्रिष्वे देवाय दानादिगुण-
 युक्ताय स्वधात्रे स्वधन्वने अन्नवते अपाह्लाया अनभिभूताय केनचित्
 सहमानाय नित्यमभिभवते शत्रून् वेधसे विधात्रे तिग्मायुधाय तीक्ष्णा-
 युधाय । स चेमा गिर उच्यमानाः शृणोतु अस्माकमित्येतादाशास्महे ।

‘सहमानाय’ इति बलकृतेर्मध्यमः । ‘तस्यैपापरा भवति’ । सा

१५

रुद्रो मध्यमो बलकृतेः पुनः किमर्थम् । ‘विधात्रे’ इत्युक्तं पूर्वस्यामृचि ।

तत्रैतद्भवति किमसौ विधत्त इति । यतः परया
 निर्ब्रवीति रक्षःपिशाचानिति ॥ ६ ॥

या ते दिशुद्वसृष्टा दिवस्परि क्षमया चरति परि सा वृणक्तु

२०

नः । सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोक्रेषु तनयेषु रीरिपः

(ऋ. सं० ७ । ४६ । ३) ॥ या ते दिशुद्वसृष्टा दिवस्परि दिवोऽ-

धि दिशुद्वसृष्टेर्वा च्युतेर्वा व्यापतेर्वा क्षमया चरति क्षया पृथिवी तस्यां

१ छ. त. द. अपाह्लाया. २ छ. त. द. दृढध्व. ३ क. ख. °पाहायाभेःसह;

छ. त. द. °पाह्लायाभेः सह; थ. °पाह्लायाभ्यः. ४ ग. °येति । व. ५ ग.

च. ज. घ. अपाह्लाया. ६ ठ. ड. °निनि । इति निरुक्तम् ष्य षष्ठः खण्डः; य. क.

द. ग. °वेदो नास्ति. ७ छ. त. द. °शो-नेर्वा °नामि.

२७

चरति तथा चरति विक्षमापयन्ती चरतीति वा परिवृणक्तु नः
सा सहस्रं ते स्वाप्तवचन भेषज्यानि मा नस्त्वं पुत्रेषु च पौत्रेषु च
रीरिपस्तोकं तुद्यतेस्तनयं तनोतेरग्निरपि रुद्र उच्यते तस्यैषा
भवति ॥ ७ ॥

या ते दिद्युदवसृष्टेति । हे भगवन् रुद्र या ते तव दिद्युत् आयुधं ज्वरा-

तस्यैव रुद्रस्य तीसारादिरोगाख्यं येन प्राणिनो हंसि दिवस्प-
रि शुलोकादधि त्वया अवसृष्टा चरति । सर्वैव हि

देवता युस्थानेति गम्यते दिवस्परीति लिङ्गात् । कर्माधिकारस्थानानि तु

१० विशिष्टानीति तिसृणां त्रीणि कर्माधिकारस्थानानि नियतानि भवन्ति ।

अत एवोक्तमन्यधिकारं ' युस्थानो भवति ' (निरु० ७ । १५)

इति । कथं या चरति दिद्युत् । क्षमया पृथिव्या ब्रीह्यादिभावमुपगतया ।

तस्यां वा ब्रीह्यादिभावमुपगतायां पृथिव्यामनुप्रविश्य चरत्यन्नपानसमुद्भूता

तत्प्रभवत्वात्सर्वरोगाणाम् । तदुक्तम् । ' नमोऽस्तु रुद्रभ्यो ये के च

१५ पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ' (य० वा० सं० १६ । ६६) इति । तस्याः

किं दिद्युतः । सा ज्ञती प्राणिनः अस्मान् परिवृणक्तु परिवर्जयतु नः ।

किमन्यदस्तु त्वतोऽस्माकम् । सहस्रं ते स्वपित्रात भेषजा । हे स्वपित्रात

स्वाप्तवचन कस्यचिदपनतिकमणीयाद्वा यानि तव सहस्रं भेषजानि

यैर्बहुभिः बहुप्रकारम् भेषजं करोषि भक्तानां तान्यस्मान् प्रति सन्तु ।

२० किंच । मा नः अस्माकं तोकेषु पुत्रेषु तनयेषु पौत्रेषु च रीरिपः ।

हिंसां मा प्रयुङ्क्ष्वेत्येतदाशास्महे ।

' दिद्युत् द्यतेर्वा ' अन्नतण्डनार्थस्य । ' द्यतेर्वा ' दीस्यर्थस्य ।

दिद्युत् कामात् ' दिक्षमापयन्ती चरतीति वा ' । हिंसन्ती

चरतीति वा । ' तोकम् ' इति पुत्रः । स हि

२५ तोकं च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च

तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च

तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च

तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च तनयश्च

प्रापि समानार्थानामेकात्राक्ये विशेष उपेक्ष्य इति दर्शयति ।

१ ठ. ड. दिद्युदिति. २ ग. 'सृष्टिः' । हे. ३ ग. च. ज. हिंसि. ४ क. ख.

घ. झ. ट. ठ. ड. 'वा' नास्ति. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मन्नं वातो

३२ वर्षमिषं. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. हिंसां नो मां.

‘ अग्निरपि रुद्र उच्यते ’ इति । विचारानुस्मृतये संकरोपप्रदर्शनम् ।
तस्यैषा भवति ’ अग्नेः रुद्रस्य ॥ ७ ॥

जराबोध तद्विविद्धि विशेषिशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय
दृशीकम् (ऋ० सं० १ । २७ । १०) ॥ जरा स्तुतिर्जरतेः ५
स्तुतिकर्मणस्तां बोध तथा बोधयितरिति वा तद्विविद्धि तत्कुरु मनु-
ष्यस्य मनुष्यस्य यजनाय स्तोमं रुद्राय दर्शनीयमिन्द्र इरां वृणा-
तीति बेरां ददानीति बेरां दधातीति बेरां दारयत इति बेरां धारयत
इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमत इति वेन्वे भूतानीति वा तद्यदेनं
प्राणैः समन्वतं तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायत इदं करणादित्या- १०
ग्रायण इदं दर्शनादित्योपमन्यव इन्दतेष्वैश्वर्यकर्मण इच्छूणां
दारयिता वा द्रावयिता वाद्रयिता च यज्वनां तस्यैषा
भवति ॥ ८ ॥

जराबोधति । शूनःशेषस्यापिम् । अर्थं न त्वा वारयन्तम् (ऋ० सं० १५
१ । २७) इतिस्मिन् सुक्ते । प्रातरनुवाके विनियोगः (आश्व० श्रौ०
४ । १३) । येयं मया तव जरा स्तुतिः उच्यते भगवन्ने रुद्र तां त्वं
रुद्राभिधानोऽग्निः बोध युध्यस्व । अथवा । हे जराबोधयितः । स
हि जरया स्तुत्या होतृत्वे वर्तमानोऽभिमतमर्थं
यजमानानां संपादयन् देवान् बोधयति । तद्विविद्धि तत्कुरु विशेषिशे २०
मनुष्याय यज्ञियाय यज्ञसंपादिने जनाय यत्रया यज्ञे कतेव्यम् । ततस्तुभ्यं
रुद्राय देवानां स्तोत्रे स मनुष्यः दृशीकं दर्शनीयं श्रवणीं श्रवणाहं
व्यपगतदोषं स्तोत्रमुच्चारयिष्यति ।

१ उ. ड. 'द्रस्य। इति निरुक्तभाष्ये चतुर्धाध्याये (ड. 'चतुर्धाध्याये' नास्ति)
७ रुण्डः; घ. झ. ठ. ज. अङ्गा नास्ति. २ झ. त. ड. 'वत इति'. ३ क. ख.
ड. थ. ध. ठ. ड. 'मैत्रेयंतादि'. ४ ग. 'धैरि' । ५ च 'ह' नास्ति. २६

‘इन्द्रः’ (४) कस्मात् । ‘इरां ददातीति वा’ । इराम् अन्नं व्रीह्यादि

इन्द्रः कस्मात् ।

दृगानि विदारयति । इराशब्दात्पूर्वपदं दृगातो-

रुत्तरपदम् । वर्षकृदितमङ्कुरं व्रीजम् भिनत्ति ।

तदिन्द्रकारितम् । सोऽयम् इरादारिः सर्वाइन्द्रः इति परोक्षेणोच्यते यथा

५ ‘अग्रगीः सनाग्निः’ (निरु० ७ । १४) इति । विज्ञायते हि । ‘परोक्षप्रिया इव

हि देवाः प्रत्यक्षद्विपः’ (मन० ब्रा० १४ । ५ । ९ । २) इति । सर्वत्रैवं देव-

ताभिधेयेषु । आभिधानत एव हि देवतात्मनस्तत्त्वमन्तैर्णीय व्यवधायाम्मानम-

इन्द्रशब्दव्युत्पत्तौ

योऽयमतितरां प्रदान-

१० स्तस्य प्रयोजनम्

विदुषां परोक्षीकृत्य नित्यं वर्तते । तां तु विद्वांस-

स्तदभिधानव्युत्पत्तिद्वारेण विदुष्य दैवेन चक्षुषा

मनसोपजातदिव्यदृष्टयो दृष्ट्वा ताद्भाव्यं प्रतिपद्यन्त

इति तदभिधानव्युत्पत्तौ क्लृप्ताः पुरुषार्थ आदितः ।

इन्द्रश्च भूयिष्ठभाक्प्राणोद्भवतानामभयोरध्यात्मार्थिर्देवतयोरिति तदभिधान-

माचार्योऽतितरं निरयोचत् । ‘इरां ददातीति वा’ । तदेव पूर्वपदं ददाते-

रुत्तरपदम् । यो वर्षद्वारेणासाधिरामन्नं ददाति सोऽयम् इरादः इरादाता

१५ इन्द्रः । ‘इरां दधातीति वा’ । तदेव पूर्वपदं दधातेर्दानार्थस्य धारणा-

र्थस्य योत्तरपदम् । सोऽयम् इरथः इराधारयिता इन्द्रः । ‘इरां

दारयतीति वा’ । तदेव पूर्वपदं दारयतेरुत्तरपदम् । सोऽयम्

इरादारयिता इन्द्रः । ‘इन्द्रे ददातीति वा’ । इन्द्रशब्दा-

त्पूर्वपदं द्रव्योरुत्तरपदम् । इन्द्रुः सोमः । तं पालुषसौ द्रवति ।

२० द्रवतिर्गर्त्यर्थः । सोमपानार्थमसौ द्रवति । सोऽयम् इन्द्रुद्रवः

इन्द्रः । ‘इन्द्रो रगत इति वा’ । व्रीडित्ययं सोम इतीन्द्रः । ‘इन्धे

भूतानीति वा’ । ‘अइन्धा दीति’ (प.० ७ । ११) इत्यस्य ।

भूतानि त्वन्नावजोत्पत्त्यर्थेऽवस्थेऽध्यात्मस्थो वीम्यवहारयन् विमजमानश्च

दीपयति द्युतिमन्ति करोति । सोऽयम् इन्धः इन्द्रः । ‘तत्’ इदमपरमि-

१ क. ख. घ. ट. ड. ‘तमिन्द्र’; च. तमीन्द्र’; ठ. तमिन्द्र’ दि.

२ सर्वेषु पुस्तकेषु ‘धानेभ्यनिधानत’.

३ ग. च. ज. ‘मत्पूर्णी’; ठ. ड. ‘मग-

णीय. ४ ग. च. ज. ‘वतिमन्य’.

५ क. ख. घ. ङ. ट. ट. ड. ‘वतीति सो’.

६ ग. ज. इत्यर्थः; च.—‘अइन्धा’.

७ ग. च. ज. इन्धी. ८ ग. च. ज. ‘वा’

न्द्रस्येन्द्रत्वं ब्राह्मण उच्यते । 'यदेनं' मध्यतोऽवस्थितं शरीरस्य प्राणभा-
 वेन त्रिष्टम्भेतरान् प्राणान् वागदीनतरप्राणश्रुतिमौहाभाग्यसंप्रदानेन
 'यदहं वैसिष्टोऽस्मि त्वं तद्वैसिष्टोऽस्मि' (छान्दो० उप० ५ । १ । १३)
 इत्येवमादिना प्राणाधिदेवताः 'सैनन्धर्ते' समदीपयन् संतानार्थं 'तदि-
 न्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते' । इन्धे भूतानीति कर्तेरि प्राणरेन समै-
 न्धतेति कर्मणि । 'इदं करणादित्याग्रायणः' । इदंशब्दात्पूर्वपदं करोतेरुत्तरप-
 दम् । इदमसौ सर्वमारादिति । सोऽयम् इदंकरः सनिन्द्रः । 'इदं दर्श-
 नादित्यौपमन्यवः' । इदं पूर्वपदं दृशिर्नृत्तरपदम् । इदमसावद्राक्षीत्सर्वमिति ।
 सोऽयम् इदंदर्शा इन्द्रः । 'इन्द्रोऽर्षेऽवर्षवर्षणः' । इन्द्रः पूर्वपदं द्रवते-
 द्रावयतेर्बोत्तरपदम् । किमसौ द्रवति दारयति वति । 'शत्रूणां दारयिता द्राव-
 यिता वा' । किमुक्तं भवति । ईश्वरश्चासौ द्रावयिता च शत्रूणाम् ।
 अथवा । ईश्वरश्चासौ दारयिता च शत्रूणामितीन्द्रः । अथवा । ईश्वरश्चासौ
 आदरयिता च यज्वनाम् । आदरकर्ता यज्वनामुपरि । 'तस्यैषा
 भवति' ॥ ८ ॥

५

१०

१५

अर्द्धरुत्तममृजो वि खानि त्वमर्णवान्वद्भ्रानाँ अरम्णाः ।
 महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अर्ध दानवं इन्
 (ऋ० सं० ५ । ३२ । १) ॥ अट्टणा उत्समुत्स उत्स-
 दनाद्वात्स्यन्दनाद्वात्सैर्वा व्यसृजोऽस्य खानि त्वमर्णवानर्णस्वत
 एतान्माध्यमिकान्संस्त्यायान्वावध्यमानानरम्णा रम्णातिः संय-
 मनकर्मा त्रिसर्जनकर्मा वा महान्तमिन्द्र पर्वतं भेषं यद्वद्यवृणोर्व्यसृ-
 जोऽस्य धारा अर्धेऽन्नेन दानवं दानकर्माणं तस्यैषापरा भवति ॥ ९ ॥

२०

१ ग. च. ज. महा०. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'दह. विशिष्टो'; च.
 यदिहं च वैसिष्टो. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड तद्विशिष्टो. ४ क. ख. घ. झ. ट.
 ठ. ड. 'मैन्धन् तं. ५ ट. 'न्धन्निति. ६ च. इदं; ट. इन्द्रतेः. ७ घ. झ. ट.
 द्रवतेर्बोत्तं. ८ ग. च. ज. चाति. ९ च. 'ईश्वरश्च शत्रूणाम् । अथवा धारति.
 १० ग. च. ज. 'श्चासौवाद्'. ११ ठ. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थाध्याये
 अष्टमः खण्डः; ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये ८ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को
 नास्ति. १२ क. ख. ड. थ. घ. ठ. ड. उत्तरणाद्वात्सदनां. १३ छ. त. द.
 'द्वैभ्यनाद्वा व्यसृ. १४ छ. त. द. माध्यमकां. १५ छ. त. द. अवाहं.

२५

३१

अदर्द्ररूत्समिति । गातोरात्रेयस्यार्थम् । उत्सो मेघः । स कस्मात् ।
 ' उत्सदनात् ' । उत्पूर्वस्य सदेः । ऊर्ध्वमसौ सन्न इत्युत्सः । उत्पूर्वस्य
 वा स्पन्दतेः । उपर्यसावस्थितः स्पन्दतीत्युत्सः ।
 इन्द्रः
 ' उनत्तेर्वा ' । ' उन्दी क्लेदने ' (धा ७ । २०)

- ५ इत्यस्य । क्लेदयत्यसौ । तम् उत्सं मेघं हे भगवन्निन्द्र त्वम् अदर्द्रः । दारितवानसि
 त्वम् । दारयित्वा च जर्जरीकृत्य तस्योत्सस्य असृजः वि ग्वानि । बिडानि विवृ-
 तानि त्वमकरोरुदकनिर्गमनद्वाराणि । स त्वममुना प्रकारेण अर्गवान् अर्णस्वतः
 अर्णसा उदकेन तद्वतः एतान् माध्यमिकान् संख्यायान् मेघसंघातान्
 उदकभोरणातिगुरुणा बाध्यमानान् यथाकालम् अरम्णाः विसृष्टवानसि ।
 १० रम्णातिः धातुः ' संयमनकर्मा ' अन्यत्र । तद्यथा । ' सविता यन्त्रैः
 पृथिवीमरम्णात् ' (ऋ० सं० १० । १४९ । १) इत्यत्र । इह
 पुनर्भेदविदारणसंबन्धात् ' विसर्जनकर्मा ' । किंच । महान्तम् इन्द्र
 योऽप्यतिमहान् पर्वतो मेघः केनचिदप्यन्येनाशकथो विवृतद्वारः कर्तुं
 तमपि वि यद्वः यत् व्यवृणोः विवृतमपावृतोदकनिर्गमनद्वारमकरोः ।
 १५ विवृत्य चै सृजो वि धाराः । व्यसृजो धाराः त्वमुदकधाराः पुनः पुनः अवहन्य
 अवघ्नन् दानवम् उदकदातारं मेघम् । य एतदकार्पास्त्वं स इदं नामा-
 स्माकं कुरुष्वेति ।

- ' तस्यैपापरा भवति ' । सा पुनः किमर्थम् । उक्तं हि । ' अथास्य
 कर्म रसानुप्रदानं वृत्रवधो या च काचिद्वलकृतिः ' (निरु० ७ । १०)
 २० इति । तदेतदिह रसानुप्रदानं वृत्रवधश्च दर्शितः । बलकृत्युपप्रदर्शनार्थम्-
 परोदाहियते ॥ ९ ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्कृतुना
 पर्यभूषत् । यस्य शुष्माद्रोदंसीं अभ्यसतां नृग्नस्यं मन्ना स

१ ग. 'मिति । गा° । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. °नाद्वा. ३ ग. बौलानि°
 व; च. बलानि; ज. बालानि. ४ ग. ज. माध्यमका°. ५ ग. च. ज. °त्यव-
 सृजो°. ६ क. ख. घ. झ. ट. दर्शितम्. ७ ठ. ड. °यते । इति निरुक्तभाष्ये
 चतुर्थाध्याये (ङ. ४ ध्याये) नवमः खण्डः (ठ. ९ खण्डः); घ. झ. ट. ज.

जनास इन्द्रः (ऋ० सं० २ । १२ । १ ॥) यो जायमान एव
प्रथमो मनस्वी देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभवत्पर्यगृह्णात्पर्य-
रक्षदत्यक्रामदिति वा यस्य बलाद् द्यावापृथिव्यावप्यविभीतां
नृम्णस्य महा बलस्य महत्त्वेन स जनास इन्द्र इत्यृषेर्दृष्टार्थस्य
प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता
जन्मः परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानां तस्यैषा
भवति ॥ १० ॥

५

यो जात एव प्रथमो मनस्वानिति । गृत्समदस्वार्पम् । इन्द्राय
मनस्वते पुरोडाँशस्य याज्या (भै० सं० १० । २ । १२) गृत्समदि-
न्द्रवरप्रदानदैन्द्रं रूपं विभ्रतमिन्द्रोऽयमिति मन्यमाना जिघांसवोऽसुराः
किल मरुद्गणैर्विनाकृतोऽयमिदानीमेकः शक्यो हन्तुमिति परिवारे । स
किल भीतोऽनेन सूक्तेनेन्द्रं तुष्टाय । आत्मानं च ब्राह्मणं परेभ्यः प्रतिवेदयां-
चकार ।

१०

यो जात एव जातमात्र एव प्रथमो मुख्यः सर्वभूतानां प्रीति मुख्यतां
स एव संपेदे । मनस्वी मेधावी । अन्ये हि कालेन
मुख्याः संपद्यन्ते मेधाविनश्च । देवो देवान्
क्रतुना पर्यभूषत् । सत्यपि देवत्वाविशेषे इतरान् देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभूषत्
पर्यगृह्णात् परिगृहीतवान् स्वामित्वेन । पर्यरक्षद्वा मुख्यत्वात् । अत्यक्रामद्वा
प्रभावेन । यस्य शुष्मात् बलात् रोदसी अभ्यसेताम् अविभीतां नृम्णस्य
महा बलस्य सेनालक्षणस्य महत्त्वेन । अतिमहदसह्यमैर्य बलमव-
श्यमयमावां सादधिष्यतीत्येवमतिमहत्याघेते द्यावापृथिव्यावप्यविभीतां यस्य

१५

१०

१ छ. त. द. जात एव°. २ ठ. ड. एवेति. ३ ग. 'निति' । गृ°. ४ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. °डाशस्तस्य. ५ ग. च. ज. किमलं. ६ ग. च. ज. विभीतो°.
७ ग. च. ज. 'नेन्द्रं च तु°. ८ च. प्रथमु° ति. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
मनस्वी च भे°. १० च. देव°. ११ क. ख. घ. झ. ट. यस्य च छ°. १२ क.
ख. घ. झ. ट. ठ. ड. शारीराद्वलात्. १३ ग. च. ज. 'सेनालक्षणस्य' नास्ति.
१४ ग. ज. 'मस्यावश्यमयमावां'; च. 'मस्या — — मयमावां'.

शुष्मात् हे असुरजनाः स इन्द्रो नाहमिन्द्रो ब्राह्मणोऽहं तत्पसादादेवावाप्त-
तद्रूप इति । 'ऋपेर्दृष्टार्थस्य' अनुभूतेन्द्रमैत्रस्येन्द्रवयस्यस्य गृत्समदस्येन्द्रं
प्रति 'प्रीतिः' तुष्टिः 'भवत्याख्यानसंबद्धा' । अतश्च दर्शयति मन्त्राणा-
मैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसाद्यपि तेषां विषय इति । अथवा ।
५ 'दृष्टार्थस्य' इति देवतायं सतरवतो दृष्टवतो भावितान्तःकैरणस्य
तत्रोपजातप्रीतेः अतिहर्षात् 'आख्यानयुक्ता' अन्येभ्यः । कथनसं-
युक्तेत्यर्थः ।

'पर्जन्यः' (५) तृपेराद्यन्तविपरीतस्य । 'तृप तृप्तौ'

(धा० पा० ६ । २७) इत्यस्य धातोः ।

पर्जन्यः कस्मात्

स कथं भवति । आद्यन्तविपर्ययेण । यतस्त-

१०

माद्यन्तविपर्ययं स्वयमेव दर्शयति । 'तर्पयिता' स एव भवति । किमैक-
देशिकः । नैत्युच्यते । 'जन्यः' सर्वजनपदतर्पयिता । अथवैधमन्यथा
स्यात् । 'परो जेता वा' । परः प्रकृष्टो जेता पर्जन्यः । परशब्दात्पूर्व-
पदं जयतेरुत्तरपदम् । 'परो जनयिता वा' । प्रकृष्टो जनयिता ।

१५

तदेव पूर्वपदं जनयतेरुत्तरपदम् । 'प्रार्जयिता वा' । कस्य । 'रसा-
नाम्' । प्रपूर्वस्यार्जयतेः पर्जन्यः । स हि रसान् प्रकटीकरोति । 'तस्यैवा
भवति' ॥ १० ॥

१०

त्रि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं त्रिभाय भुवनं महा-
वधान् । उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति
दुष्कृतः (ऋ० सं० ५ । ८३ । २) ॥ विहन्ति वृक्षान् विहन्ति

१५

च रक्षांसि सर्वाणि चास्माद्भूतानि बिभ्यति महावधान्महान्
ह्यस्य वधोऽप्यनवराधो भीतः पलायते वर्षकर्षवतो यत्पर्जन्यः
स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः पापकृतो बृहस्पतिर्वृहतः पाता वा पाल-
यिता वा तस्यैवा भवति ॥ ११ ॥

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'बन्धात्'; ग. च. ज. 'बंधा. २ ग. च. ज.
भवि'. ३ ग. च. ज. कार°. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'ख्यानसंयु'. ५ ठ.
ड. 'वति । इति निरुक्तोत्तरपट्टकटीकायां (क. नैरु०) चतुर्थध्याये दशमः खण्डः ;

३०

घ. झ. ट. न. अङ्गो नास्ति.

वि वृक्षान्दृष्टीति । अत्रेरापम् । कारीर्या दिगुस्थाने विनियोगः
 पर्जन्यः (आश्व० श्रौ० २ । १३) । वि वृक्षान्
 हन्ति विहन्ति वृक्षान् पर्जन्यः अशनपातैः ।

कदा । यदा तस्करादीननाकालप्रभवान् पापकृतो वर्षेणौषधीरभिनिष्पाद्यन्
 स्तनयन् हन्ति उपशमयति सुभिक्षं कुर्वस्तदा । विहन्ति च रक्षांसि । विविधं
 हन्ति क्रूरकर्मणः । विश्वं विभाय सर्वाणि चास्माद्भूतानि विभ्यति महाव-
 धात् पर्जन्यात् । कथम् । उतानागा ईपते । एवं नाम महावधादस्मात्स-
 र्वाणि भूतानि विभ्यन्ति येनानागा अपि अनपराधोऽपि सन् सर्वे एव
 अस्माद्दर्पकर्मवतः स्तनयित्नुशब्दैरशनिं मुखत ईपते पलायते मामयं
 हन्तीति मन्यमानः । योऽपमेवमतिमहानुभावो भगवान् पर्जन्यः स वर्ष-
 त्वस्माकमिति ।

‘ बृहस्पतिः ’ (६) कस्मात् । ‘ बृहतः पाता वा पालयिता वा ’ ।
 बृहस्पतिः कस्मात् बृहतो महतोऽस्य जगत उदकस्य वा पाता र-
 क्षिता । पालयितापि रक्षितैव । धात्वन्यत्वमर्थक-
 त्वम् । ‘ तस्य एषा भवति ’ ॥ ११ ॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
 निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेण विकृत्य (ऋ० सं०
 १० । ६८ । ८) ॥ अशनवता भेदेनापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्म-
 त्स्यमिव दीन उदके निवसन्तं निर्जहार तच्चमसमिव वृक्षाच्चमसः
 कस्माच्चमन्त्यस्मिन्निति वृहस्पतिर्विरवेण शब्देन विकृत्य ब्रह्मण-
 स्पतिर्ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति ॥ १२ ॥

अश्नापिनद्धमिति । अयास्यस्याङ्गिरसस्यार्यम् । अशनवता व्यापनवता
 भेदेनापिनद्धम् आत्मनो मध्यमतिनीय नद्धं धद्धं
 बृहस्पतिः विवृतं व्यवहितमदृश्यमन्यैः वृहस्पतिः मधु उदकं
 पर्यपश्यत् सर्वतोऽपश्यत् । कथम् । मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।

१ ग. °न्तीति । अ०. २ ग. च. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ पर्यपश्यं. ३ ग.
 च. ज. घ. झ. ट. ठ. °शनिसुं; ड. °शनिसुं. ४ ठ. ड. वति । इति निरुक्तोत्तर-
 पट्टभाष्ये (ड. निरुक्तीकायामुत्तरपट्टे) अतुंऽऽद्यने एकादशः खण्डः; घ. झ.
 ट. ज. अङ्गा नास्ति. ५ ग. ‘ मिते । अ०. ६ च. निवद्धं. ७ र. ख. ग. ज.
 घ. झ. ठ. ड. विवृतं, ट. विवृते ।

५
 १०
 १५
 २०
 २५
 २२

मत्स्यमिव दीने उदके उपक्षीयमाणे उदके क्षीणप्राये क्षियन्तं निवसन्तम् ।
 यथा मत्स्यबन्धोऽल्पे उदके जिवृक्षुर्भूत्स्यं पारिपश्येच्छवयो ग्रहीतुमयमित्येवं
 पर्यपश्यत् । निष्टज्जभार चमसं न वृक्षात् । तच्च मधु दृष्ट्वा निर्जभार
 निर्हृतवान् । कथम् । चमसं न वृक्षात् । यथा कश्चित्कुशलः शिल्पी वृक्षम-
 ध्यात् चमसं यज्ञपात्रं निर्हरेन्निष्पादयेदेवं निर्जहार बृहस्पतिः । अत एवोदक-
 निर्हरणान्मध्यमः । कथमसौ निर्जहार । विरवेणा विकृत्य भौषणेन अतिमहता
 रवेण शब्देन संक्षोभ्य भेषं स्रस्तसर्वाङ्गसंधिवन्धनं कृत्वा विकृतं तत एव
 विह्वलीभूतं विकृत्य समन्ततो त्रिशकलीकृत्य एवं निर्जहार मधु यो बृह-
 स्पतिः सोऽस्माकमपीदं करोत्विति ।

१० ' चमसैः ' चमेर्भक्षणार्थस्य । तत्र हि सोमश्चम्यते ।

' ब्रह्मणस्पतिः ' (७) कस्मात् । ' ब्रह्मणः पाता वा पाळयिता वा' ।

ब्रह्मणस्पतिः क-
 स्मात्
 ब्रह्म अन्नमृगादि वा । तस्योभयस्याप्यसौ वर्षेणौष-
 धीरभिनिष्पादयन्पाता संपद्यते । वर्षाभावे ह्येतदु-
 भयमुत्कीदति । ' तस्यैवा भवति ' ॥ १२ ॥

१५

अश्मस्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
 तमेव विश्वे षपिरे स्वर्हृशो बहु साकं सिंसिचुरुत्समुद्रिणम्
 (ऋ० सं० २ । २४ । ४) ॥ अशनवन्तमास्यन्दनवन्तमवा-
 नितं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसा दलेनाभ्यतृणत्तमेव सर्वे
 पिबन्ति रूम्भयः सूर्यदृशो बह्वेन सह सिञ्चन्त्युत्समुद्रिणमुदक-
 वन्तम् ॥ १३ ॥

२०

इति दशमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

अश्मस्यमवतमिति । गृत्समदस्यार्थम् । अश्मशब्दात् 'अशनवन्तम्'

ब्रह्मणस्पतिः इति आस्यशब्दात् 'आस्यन्दनवन्तम्' इति

भाष्यकारश्चकार तथा सामर्थ्यमपेक्ष्य । किमुक्तं

२५ भवति । उदकव्यापनक्रियया तद्वन्तम् अस्यन्दनक्रियया चोदकप्रक्षरण-

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'माणध्याये शि' । २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 'मसः कस्मात् । चमे' । ३ ठ. 'वति । इति निरुक्तटीकाय मुतरपटके चतुर्थेऽध्याये
 इदंशः खण्डः; ड. 'वति । इति १२ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्कं नास्ति । ४ छ.
 प्रथमः पादः; त. इति दशमाध्यायस्य प्रथमः; ५ इति निरुक्त उतगर्थस्य दशमा' । ६ ग.
 'मिति । गृ'

३०

क्रियया तद्वन्तम् । अश्मास्यमवतं मेघं मधुवारम् उदकं धारयितारं यत्
आजसा बलेन अभ्यनृणत् अभ्यहन् ब्रह्मगस्थातः तम् अवतम् अवाति-
तम् अवागैतितं भूमिमुदकभावेन गतं पुनरादानकालमुदकस्य प्राप्य
समेव विश्वे पपिरे पिबन्ति । तदुदकमाददते । के पुनस्ते । स्वर्दशः
सूर्यस्य रश्मयः । स्वरीत्र ये दृश्यन्ते । ते सूर्यसमानदर्शनाः । स्वर्भावेन वा
सूर्यभावेन ये मण्डलीभूता दृश्यन्ते । ते पिबन्ति । पुनश्च प्राप्य तदुत्सर्ग-
कलं बहु साकं बहु तदुदकं सहभूता मण्डलात् अवाञ्च आहृत्य
एनम् अन्तरीक्षे उत्सं मेघम् उद्विणम् उदकवन्तं कुर्वन्तः सिञ्चन्ति तं च
पुनरेवं मेघं यो ब्रह्मणस्पतिर्लोकानुग्रहाय प्रतिसंवत्सरं तृणोदि सोऽस्माक-
मिदं नाम करोत्विति ॥ १३ ॥

पञ्चदशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः ॥

क्षेत्रस्य पतिः क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणस्तस्य पाता वा पाल-
यिता वा तस्यैषा भवति ॥ १४ ॥

‘क्षेत्रस्य पतिः’ (८) कस्मात् । ‘क्षेत्रं’ तावत् ‘क्षियतेर्निवा-
क्षेत्रं कस्मात् सकर्मणः’ । तदपाश्रयेण हि प्राप्ते क्षियन्ति
कुटुम्बिनः । ‘तस्य पाता वा पालयिता वा’
पतिः कस्मात् मध्यमः । तत्कर्म्मोपपत्तौ हि क्षेत्रस्य क्षेत्रत्वसा-
फलम् । यदा हि मध्यमेन दृष्टं भवत्यथ

क्षेत्रं सफलं भवति । विगृहीतमेव समाप्नातम् । निगमे तथा दृष्ट्यात् ।
‘तस्यैषा भवति’ ॥ १४ ॥

१ ठ. ड. उदकधारं. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अभ्यहनत्. ३ क. ख. २५
घ. झ. ट. ठ. ड. ‘वाङ्मतिं. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. साकं सह. ५ ग.
च. ज. ‘अवाञ्च. ६ ठ. इति निरु० टी० १३ खण्डः; ड. इति निरुक्तटीकाया-
मन्तरपटके चतुर्थऽध्याये त्रयोदशः खण्डः । इति निदण्डपञ्चमाध्यायेन सह निरुक्त-
पञ्चदशाध्याये प्रथ० . ७ क. ख. १ (१४); त. द. १. ८ क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. ‘यन्ति निवसन्ति कु’. ९ क. ख. (१४), ठ. ‘वति । इति निरुक्तटी-
कायामन्तरपटके चतुर्थऽध्याये १३ खण्डः; ड. ‘वति । इति निरुक्तपाठ्ये १४ खण्डः;
घ. ज. ट. ज. अङ्गा नास्ति.

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि । गामश्वं
पोषयित्वा स नो मृळतीदृशे (ऋ० सं० ४ । ५७ । १) ॥
क्षेत्रस्य पतिना वयं सुहितेनैव जयामो गामश्वं पुष्टं पोषयितुं
चाहरेति । स नो मृळतीदृशे । बलेन वा धनेन वा मृळतिर्दान-
५ कर्मा तस्यैपापरा भवति ॥ १५ ॥

क्षेत्रस्य पतिना वयमिति । वामदेवस्यार्पम् । क्षेत्रस्य पतये चरोः

क्षेत्रस्य पतिः पुरोनुवाक्या (भैत्रा० सं० २ । १ । १) ।
क्षेत्रस्य पतिना सुष्टु हितेन केनचिदात्तेन मित्रेण

१० संयुक्ताः सन्तो वयं जयम गवाश्वादीनि धनानि पुष्टानि बलयन्ति
पोषयितृणि पोषणाय समर्थानि । उपनामितद्रव्याणां चास्माकं क्षेत्रस्य
पतिना तत्प्रसादादेव तानि भोक्तुं शक्तिरस्तु । कथमिति । ' आ '
इत्यस्योपसर्गस्य संबन्धि क्रियापदमध्याजहार भाष्यकारः । आहरेति ।
कोऽर्थः । उपजातशक्तयो वयमेवमाज्ञापयन्तः परिचारकानिदमहरेतेति
१५ सर्वद्रव्याणि यथाश्रुचीमहि तथा क्षेत्रस्य पतिरस्मान् मृडेतु । ' मृळति-
र्दानकर्मा ' । ईदृशे धनलाभाय भोगाय चास्मान् ददातु धारयतु ।
नित्यं स्थिरान् करोत्वित्येतदाशास्महे ।

' तस्यैपापरा भवति ' । सा पुनः किमर्थम् । यस्य चरोः ण्या
पुरोनुवाक्या तत्र ब्राह्मणं भवति । ' इयं वै क्षेत्रं पृथिव्यस्यामर्दनौयां
२० प्रतितिष्ठति ' इति । यतः परया वर्षल्लिङ्गयोपपादयति मध्यस्थानः क्षेत्रस्य
पतिरिति । भक्तिपात्रं ब्राह्मणमिति ॥ १५ ॥

१ छ. त. द. मृळती. २ छ. त. द. मृळतिरुपद्रवाकर्मा पूजाकर्मा
वा तस्यै. ३ क. ख. २ (१५); त. द. २. ४ ग. 'मिति'. ५ वा.
५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'त्रेणैव सं'. ६ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट.
ठ. ड. जयामः. ७ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. त्वत्. ८ ग. च. ज. यथा
स्तुती. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. मृडयतु. १० क. ख. घ. झ. मृळति; ग.
च. ज. त. ड. मृडति. ११ घ. झ. ट. ठ. ड. 'दीवानां. १२ क. ख.
१२ (१०); त. ड. 'मिति । इति भाष्ये १५ १. ५७; घ. झ. ट. ज. अङ्गी
२९ नाति.

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्भि धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
 मधुश्रुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु (ऋ० सं०
 ४ । ५७ । २) ॥ क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्भि धेनुरिव
 पयोऽस्मासु धुक्ष्वेति मधुश्रुतं घृतमिवोदकं सुपूतमृतस्य नः पातारो
 वा पालयितारो वा मृळयन्तु मृळयतिरूपदयाकर्मा पूजाकर्मा वा ५
 तद्यत्समान्यामृचि समानाभिव्याहारं भवति तज्जामि भवतीत्येकं
 मधुमन्तं मधुश्रुतमिति यथा यदेव समाने पादे समानाभिव्याहारं
 भवति तज्जामि भवतीत्यपरं द्विरण्यरूपः स द्विरण्यसंहिति यथा
 यथाकथाच विशेषोऽजामि भवतीत्यपरं मण्डूका इवोदकान्मण्डूका
 उदकादिवेति यथा । वास्तोष्पतिर्वास्तुर्वसतेर्निवासकर्मणस्तस्य १०
 पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति ॥ १६ ॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमिति । आर्षं यदेव पूर्वस्याः । विनियोगो
 महाव्रते । अदित्यै चतुरूपश्चतुःस्तनप्रहः । तस्य तृतीयमनयर्चा गृह्यते ।
 हे क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्भि मधुरस्वादमू. उदर्कसंघातं धेनुर्यया पयो. १५

क्षेत्रस्य पतिः दोग्धि एवमस्मासु धुक्ष्व प्रक्ष्व । किंच । मधुश्रुतं
 घृतमिव सुपूतम् । मध्विर्धं यन्मुहुर्मुहुः श्रुतमिति ।
 घृतमिव सुपूतम् उदकमकलुषम् । तस्य दानेन ऋतस्य नः पतयो मृळ-
 यन्तु । ऋतस्य उदकस्य पतयः पातारो माध्यमिका देवाः क्षेत्रस्य-
 पतिप्रमुखाः मृळयन्तु । नित्यमस्मान् रक्षन्तु पूजयन्तु वा । २०

अत एव मन्त्रात्प्रसक्तमतः परं सर्वमन्त्रेषु जाभ्यजामिता पदानां
 जाभ्यजामिता- चिन्त्यते । जाभीति पुनरुक्तसंज्ञा । सा पुनरिधं
 विचारः निगमत एव । विज्ञायते हि । ' जामि वा
 एतद्यज्ञे क्रियते यन्मरुत्वतीयो प्रहो गृह्यते मरु-

१ क. ख. छ. त. द. मृळय°. २ क. ख. छ. त. द. मृळय°. ३ क. ख.
 मृळय°; छ. त. द. मृळति°. ४ क. ख. ३ (१६); त. द. ३. ५ ग. 'मिति' ।
 आ°. ६ ग. च. ज. ठ. ड. 'तीयर्चा गृ°'. ७ घ. झ. ट. ठ. ड. स्वाट्म्". ८ ग.
 च. 'दकं सं'. ९ च. मधुश्च्युतं. १० ग. च. ज. मध्वेव. ११ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. 'श्रुतं. १२ ग. घ. ज. झ. मृळय°.

त्वतीयं शस्यते' (मैत्रा० सं० ४ । ६ । ८) इति । तदेतत्पुनरुक्तं

द्विविधं जामि

द्विविधम् । समानशब्दार्थमसमानशब्दार्थं च । तत्र समानशब्दार्थं नाम यदेकमेव पदमेकार्थ-

समानशब्दार्थं जामि

मेकास्मिन्नेव वाक्याधिकारे पुनरुच्यते । तद्यथा । ' मन्म रेजंति रक्षाहा मन्म रेजंति ' (ऋ०

सं० १ । १२९ । ६) । तदधिकृत्यान्यथाप्रतिसमाधानाशक्तौ वक्ष्यति

' अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते' (निरु० १० । ४२) इति । यत्पुनर-

असमानशब्दं स-
मानार्थं च

समानार्थं पदमभ्यस्यते तदपुनरुक्तमेव । यद-
समानशब्दं समानार्थं च तदसुम्बप्रतिसमाधान-
मिति तदर्थमिहोपोद्धन्ति ' तद्यत्समान्यामृचि ' इति । ' तत् इति ' वाक्योपादाने । ' यत्समान्यामृचि ' । एकस्यामृचि । ' समा-

एकस्यामपि ऋचि
वर्तमाना पुनरुक्तिर्जा-
मिदोपाहैत्येकं मतम्

नाभिव्याहारं' पदं भवति । समानमर्थमभि-
व्याहरति । पदान्तरेण यः कश्चित्पूर्वोऽर्थचैऽभिहि-
तोऽर्थस्तमेभोचरेऽर्थचैऽभिदधजामि भवति । त-
द्यथा ' मधुमन्तं मधुश्रुतमिति ' । यो हि मधु-

श्च्युत् अवश्यमसौ मधुमान् । ' एकं ' तावदाचार्यमतम् ।

' यदेव समाने पादे समानाभिव्याहारं भवति तज्जामि भवतीत्यपरम्' ।

समानपादे एव वर्त-
माना दोषाहैत्यपरम्

नानार्थवर्गगतयोः समानार्थयोरपि पदयोरसमान-
पदान्तरव्यवधानात्प्रकृतार्थानुस्मृतये पुनरनुकीर्त-
नमजाम्येव । किंतु यदेव समाने पादे एकस्मिन्

पदान्तरेण व्यवहितं पदं समानार्थं पुनरुच्यते अविच्छिन्नप्रसक्तानुस्मृति
तदेव जाभीत्यपरम् । ' हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक् (ऋ० सं० २ ।

३५ । १०) इति यथा ' । यो हिरण्यरूपः सोऽवश्यं हिरण्यसंदृक् ।

तर्किं पौनरुक्त्ये न तद्योज्यं पदं तत्संयोगाद्वा तदसाधु मन्त्रवाक्यम् ।

स्वल्पेऽपि विशेषे
अजामि भवतीति मतं
यास्कसंमतम्

नेत्युच्यते ' यथाकथाच विशेषोऽजामि भवतीत्य-
परम्' । यथाकर्थांचित् यः कश्चित् स्वल्पोऽपि
हि तत्र विशेषो वक्तव्यः । दृष्टानुविधानाच्छ-
न्दसोऽर्थानुविधाने यतेतै । एवं येन केनचिस्वल्पे-

नापि विशेषेण तदजामि भवतीत्यपरम् । अपरे पुनः कृतवाक्यार्थपरिस-

१ ग. च. ज. मधुश्च्युत्^०. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. मधुश्चुत्^०. ३ च.

पादा^०; ज. पदं^० पादान्तरेण व्यवहितमिति वा. ४ क. ख. घ. झ. ट. यतेतेवम् ।

१२ येन^०; ग. ज. यतेन^०; च. यतेन^० येन^०; ठ. यतेतेन येन^०; ड. यतेय येन^०.

मास्यतिरिक्तं षट् पुनरभ्यस्यमानं निपातवत्पादपूरणत्वेनार्थवदिति प्रति-
समादधते । तदेतदवगतं भवति । इदमेव स्वभीष्टमाचार्यस्य ' यथाकथाच्च
विशेषः ' इति । तदर्थमुदाहरति । ' मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदका-
दिव (ऋ० सं० १० । १६६ । ५) इति यथा ' । एवमादिषु यैथा

पुनरुक्तौ कश्चि-
द्विशेषो वर्तते एव

समानशब्देष्वसमानशब्देषु च पुनरुक्तेषु यः
कश्चिद्विशेषो वक्तव्यः । स कथमिति । मन्त्रमेव
तं व्याचक्ष्महे यत्रैव पादः । ' योगक्षेमं व आदाया-

हं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रीमम् । अभस्पदान्म उद्ददत मण्डूका
इवोदकान्मण्डूका उदकादिव' (ऋ० सं० १० । १६६ । ५) इति ॥

ऋषभस्यार्पम् । कामतो देवता कैल्या । विद्विष ठप्पन्ते । योगक्षेमं व आदार्ये ।
योगो नाम लिखितस्योर्थस्य प्राप्तिः । क्षेमे माम तत्परिपाळनम् । हे विद्विषः

एतदुभयं भवद्भ्यः आदाय सदधीनसर्वयोगक्षेमान् युष्मान् कृत्वा सर्वार्थेषु
अहं भूयासमुत्तमः उत्कृष्टो युष्माकम् । आ वो मूर्धानमक्रीमम् । उपरि
युष्मानधितिष्ठेयम् । ते यूयमाक्रान्तमूर्धानो मया मम अभस्पदात् पाद-

योरधो वर्तमानाः मन्मुखप्रेक्षा अस्वाधीनसर्वार्थवृत्तयो भूत्वा नित्यं मां वदत ।
कथम् । मण्डूका इवोदकात् । यथा मण्डूका उदकादृते नित्यमस्वाधी-

नवागवृत्तयो निर्वचनाः संपद्यन्ते एवं महते यूयं भूयार्स्त । मण्डूका उद-
कादिव । यथा चोदकादृते मण्डूकाः सर्वात्मिनैव
न भवन्त्येवं महते यूयं मा भूत । एवमत्रैकत्र
विद्विषां निर्वाक्ये मण्डूका उपमानम् । अन्यत्रोद-

काभावे यैथा मण्डूका न भवन्त्येवं मदभावे भूपमिः युदकमुपमानम् । एव
पूर्वत्रापि तथा विशेषः । पूर्वयोरेपि मन्त्रयोर्भवति कश्चिन्मधु-

मानं तु मध्वविरतं मुहुर्मुहुश्चोततीति । तैया हिर-
ण्यरूपः स हिरण्यसंज्ञगित्यत्रभवति कश्चिद्विरण्यरूपो न तु हिरण्य-

१ सर्वेषु पुस्तकेषु ' यथा समानं ' । २ क. ख. ग. घ. ज. घ. झ. ट. आ-
दायेति । ऋष; ठ. ड. 'येति । ऋषभिक्षे । ' योगक्षेमं व ' । ३ क. ख. ग. च.
ज. घ. झ. ट. ठ. ड. कल्याः । ४ क. ख. सर्वा ऋषपठ्यते । ५ क. ख. घ. झ. ट.
ठ. ड. 'पितार्थ' । ६ ग. च. ज. सन्धु । ७ ग. च. ज. झ. ट. ग. ज. 'यास्थ.
९ ग. च. ज. निर्वक्ये; घ. झ. ट. निर्वाक्ये; ठ. ड. निर्वक्ये. १० क. ख. घ. झ.
ट. ठ. ड. मण्डूका यथा. ११ क. ख. घ. झ. ट. विशेषः पूर्व. १२ क. ख. च.
झ. ट. ड. ड. भवति । कश्चि. १३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यथा.

भिव दृश्यमानः प्रिय इति विशेषः ।

‘वास्तोष्पतिः’ (९) वक्तव्यः । स पुनरेष रुद्रात्मना मध्यमो वास्तो-

को वास्तोष्पतिः षपतिः । विज्ञायते हि वास्तोष्पतीये यायावर्थ-
प्रतिपत्तौ गृहगमनमधिकृत्य ‘ न हीनमन्वाहरेयु

५ रुद्राय हि तद्धीयते यद्धीनमन्वाहरेयु रुद्रं भूतमन्वाहरेयुः’ (भैत्रा० सं० १
५। १३) इति । स एष गृहाधिदेवता रुद्रो वास्तोष्पतिः । स पुनः
‘ अमीवहा ’ इति ब्रह्मकृतिलिङ्गान्मध्यमः । तस्य पूर्वपदं विगृह्य निराह ।

‘ वास्तुर्वसतोर्निवासकर्मणः’ । ‘ वास्तु ’ इति गृह-
वास्तुः कस्मात् मुच्यते । उष्यते हि तस्मिन् । ‘ तस्य पाता ’

१० रक्षिता । तदधिदेवताभावेन रुद्रात्मना च तत्कृतेनोपकारेण रक्षिता मध्यमः ।
इतरथा ह्युत्सीदियुर्गृहाः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १६ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव

एधि नः (ऋ० सं० ७। ५५। १) ॥ अयमनहा वास्तोष्पते

१५ सर्वाणि रूपाण्याविशन्सखा नः सुसुखो भव शेव इति सुख-
नाम शिष्यतेर्वकारो नामकरणोऽन्तस्थान्तरोपलिङ्गी विभाषित-
गुणः शिवमित्यप्यस्य भवति यद्यद्रूपं कामयते तच्चदेवता भवति ।
रूपं रूपं मघवा बोभवीतीत्यपि निगमो भवति । वाचस्पतिर्वाचः
पाता वां पालयिता वा तस्यैषा भवति ॥ १७ ॥

२०

अमीवहा वास्तोष्पत इति । वसिष्ठस्यार्पम् । गृहकारिकास्थालीपाके

वास्तोष्पतिः (मान० गृ० १। ६। १९) यायावर्थप्रति-
पत्तौ च वास्तोष्पतीयहोमे (मान० श्रौ० १

६। ३) विनिधोगः । हे भगवन् वास्तोष्पते त्वमस्माकम् अमीवहा भव ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. स च पु०. २ ठ. ड. उपपद्यते ३ च. ‘ च ’
नास्ति. ४ ठ. ड. °वा स्तुतिर्भवति. ५ क. ख. ३ (१६); ठ. °वति । इति निरु-
क्तटीकायामुत्तरपटके भाष्ये चतुर्थोऽध्याये षोडशः खण्डः; ड. °वति । इति भाष्यं
१६ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ६ क. ख. ४ (१); त. क. ४.

२१ ७ ग. इति । व०.

अभीर्वा रोगस्तस्य हन्ता । कथम् । सर्वाणि रूपाणि आविशन् । यस्या-
रमदुःखहेतोयः प्रतिपक्षः सर्पादिर्नकुलादिस्तस्य तस्य रूपमाविशन् तं तम-
स्माकमर्मावानं जहि । अमुना प्रकारेण ह्यनस्मदुपद्रवान् सखा मित्रंसुशेवः
मुष्टु सुखो भव । 'शेव इति सुखनाम' । तत्कस्मात् । 'शिष्यतेः । वकारो
नामकरणः' । शिषिर्धातुः वकारः प्रत्ययः शिष इत्यस्य । स पुनः ५
'अन्तस्थान्तरोपलिङ्गी' । अन्ते तिष्ठति धातोर्यो वर्णः सोऽन्तस्थः । न संज्ञा
यथा अन्तस्था यरलत्राः । कश्च पुनरसौ । षकारः । तस्यान्तरमवकाशस्थानम्
उपलिङ्गयति उपगच्छति यः स भवत्यन्तस्थान्तरोपलिङ्गी । कश्च पुनरसौ ।
वकारः । स षकारस्य स्थानमुपगच्छति । ततो गुणे कृते शेष इति
भवति । स च पुनरेष धातुः 'विभाषितगुणः' इति 'शिवमिस्यथस्य १०
भवति' अगुणपक्षे ।

'सर्वाणि रूपाण्याविशन्' इत्यतः प्रसक्तमुच्यते । शक्नोति पुनर्वा-
स्तोष्यतिः सर्वाणि रूपाण्यावेष्टुमित्युच्यते । 'यद्यद्रूपं कामयते तत्तदेवता
भवति' । अस्थेतदैश्वर्यं देवतायाः । यद्यादिच्छति रूपं तत्तत्करोति । निग-
ऐश्वर्यादेवता इष्टं मोऽपि हि भवत्यैश्वर्यप्रख्यापकः । 'रूपंरूपं १५
रूपं स्वीकरोति यथा- मघवा बोभवीति मायाः कृष्णानस्तन्वं १ परि
स्यामृचि इन्द्रः स्वाम् । त्रिर्यदिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैर्नृ-

तुपा ऋतावा' (ऋ० सं० ३ । ५३ । ८) इति ॥ विश्वामित्रस्या-
र्षम् । यावन्ति कानिचिद्रूपाणि मघवा इन्द्रो भवितुमिच्छति तानि सर्वा-
ण्यप्रतिबन्धेन बोभवीतीति पुनः पुनर्भवतीति । कथम् । मायाः कृष्णानः । २०
इदं भवामीदं भवामीत्येवं तन्वं परि स्वां स्वां तनुं तत्तदाकृत्यानेकविधां विकु-
र्वाणः । त्रिर्यदिवः परि मुहूर्तमागात् । दिवः परि दिवः अधि युलोक्तात्
मुहूर्तकालं प्रति यस्त्रिरागात् आगच्छति । स्वैर्मन्त्रैः ह्यमानो वा स्तूयमानो
वा युगवद्यजमानानां यज्ञेषु । अनृतुपाः अनियतसोमपानकालः सर्वदा
यागोपपत्तेः । ऋतावा ऋतवान् यज्ञवान् । येनासाधेवमात्मानं विकरोत्येवं
च दिवो मुहूर्तं त्रिरागच्छति तेनासाधचिन्त्यप्रभावत्वाच्छक्नोति तत्तद्रूप-

१ ग. च. ज. 'भीवरां'. २ क. ख. ठ. ड. शिषिधातु°. ३ ठ. ड. यणोऽ-
न्तस्था°. ४ ग. च. ज. 'न्तरेपिलि°. ५ ग. च. ज. षष्ठा°. ६ ग. 'रूपं°. ७ ग.
च. ज. घ. झ. ट. 'वीतीति । विश्वा°. ८ ग. च. ज. 'तनुं तदा°.

मावेष्टुम् । एवं च सुष्टु यदेतदुच्यते सर्वाणि रूपाण्यविशन्नमीकहा भवा-
स्माकं त्वमिति ।

‘ वाचस्पतिः ’ (१०) वक्तव्यः । स पुनरेव ‘ वाचः पाता
वाचस्पतिः कस्मात् वा पालयिता वा ’ प्राण्यग्नेन्द्रः । ‘ तस्यैष
भवति ’ ॥ १७ ॥

पुनरोहि वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते निरामय
मथ्येव तन्वं १ मम ॥ इति सा निगद्ब्याख्यातापानैपाचनूनप्रा
व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ १८ ॥

१०

पुनरोहि वाचस्पत इति । अपगतप्राणमिवात्मानं मन्यमानः पापकृ-
त्पापसंबन्धात्कुतश्चिकृतनिर्णेजनः सन् प्राणं
वाचस्पतिः ऋषीति । हे प्राण पुनरोहि त्वं मां प्रति इति । किं

पुनरोहि । भेत्युच्यते । देवेन मनसा सह । सर्वेन्द्रियवृत्तिदीपकेन मनसा
सह । एष च हे वसोष्पते हे धनस्य अन्नस्य च पते निरामय नियमेन
रमय । मथ्येव एतं तन्वं मम । मा यासौर्मत्त इति प्राणात्पृथग्भूतमात्मानं
पश्यन् स्तोता ऋषीति ।

‘ अपानैपात् (११) तनूनप्रा व्याख्यातः ’ शब्दनिर्वचनतः
(निरु० ८ । ५) । अभिधेयस्तु मथ्यमः । अद्भ्य आदित्यस्ततो
मथ्यमः । एवमपां पौत्रः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १८ ॥

यो अनिध्वो दीर्घदस्सं १ तर्थं विप्रांस ईळति अध्व
रेषु । अपानैषान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृथे वीर्यीय
(ऋ० सं० १० । ३० । ४) ॥ योजनिध्वो दीर्घदीप्यतेऽभ्य-

२५ १ क. ख. ४ (१७); ठ. ड; ०वति । इति निरुक्तभाष्ये १७ खण्डः; घ.
झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. २ क. ख. थ. ‘ तप्राचपा ’. ३ क. ख. ५ (१८);
त. द. ५. ४ ग. इति । अ. ५ क. ख. ग. च. ज. अपानप. ६ क. ख.
घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ यतस्तु ’. ७ क. ख. ५ (१८); ठ. ड. ०वति । इति निरु-
क्तभाष्ये ४ ध्याये १८ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ८ क. ख. छ. त.
३० द. ईळते. ९ क. ख. थ. अपाचपा. १० छ. त. द. ‘ दीर्घत् ’ नास्ति.

न्तरमप्सु यं मेधाविनः स्तुवन्ति यज्ञेषु सोऽपांनंपान्मधुमतीरपो
देह्यभिषवाय याभिरिन्द्रो वर्धते वीर्याय वीरकर्मणे यमो यच्छतीति
सतस्तस्यैषा भवति ॥ १९ ॥

यो अनिधो दीदयदिति^१ । कत्रपस्यार्षम् । सर्वं एव प्रत्यक्षकृतत्वेन
अपांनपात् गम्यते । हे अपांनपात् यस्त्वम् अनिधो अनि-
धनोऽपि दीथ्यसे अभ्यन्तरप्रदेशं प्रति अप्सु
वर्तमानः यं च त्वाम् अध्वरेषु यज्ञेषु विप्रा मेधाविन ईळ्यते स्तुवते स
त्वमपांनपात् मधुमतीः मधुरसाः मधुरस्वादाः अपो देहि अभिषवाय ।
याभिः त्वमेव इन्द्रः ईश्वरः सोमपानद्वारेण वर्धेयाः वीर्याय वीरकर्मणे १०
इत्येतत्प्रार्थयामहे ।

‘ यमो ’ (१२) वक्तव्यः । स पुनरेव ‘ यच्छति ’ उपरमयति
जीवितात्सर्वं भूतप्राणमिति यमः । अत एव
यमः कस्मात् बलवानिति मध्यमः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १९ ॥

१५

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य (ऋ० सं०
१० । १४ । १) ॥ परेयिवांसं पर्यागतवन्तं प्रवत उद्वतो
निवत इत्यवतिर्गतिकर्मा बहुभ्यः पन्थानंमनुपस्पाशयमानं वैव-
स्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्येति दुवस्यती २०
राक्षीतिकर्माग्निरपि यम उच्यते तमेता ऋचोऽनुप्रवदन्ति ॥ २० ॥

१ क. ख. थ. द. सोऽपाञ्जपा^०. २ क. ख. ६ (१९); त. द. ६. ३ म.
“दिति” क^०. ४ क. ख. ग. घ. ज. व. झ. ईलने. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
स्तुवन्ति. ६ क. ख. ६ (१९); ठ. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायां ४ ध्याये
१९ खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति. ७ ड. छ. त. द. पन्थामनु^०. ८ छ.
त. द. ‘ रामोति ’. ९ क. ख. ७ (२०); त. द. ७.

२७

परेयिवांसमिति । यमस्यार्पम् । याम्भे पशौ वपायां विनियोगः

(भैत्रा० सं० २ । ५ । ११) । परेयिवांसं

यमः

पर्यागतवन्तं सर्वतः प्राप्तवन्तम् । कान् पुनः ।

प्रवत उद्धतो निवतश्च भूतसंघातान् । ' प्रवतः ' इति मन्त्रे ' उद्धतो

५ निवतः ' इति भाष्यकारोऽध्याजहार तथा सामर्थ्यात् । प्रवतो मनुष्या

उद्धतो देवा निवतस्तिर्यङ्चः तथा गत्युपपत्तेः । तमेतमेवं महीः महतीः

भूतजातीः परेयिवांसं बहुभ्यः पुण्यकृद्भ्यः पापकृद्भ्यश्च पन्थानम् अनुप-

१० स्पाशयमानम् । अमुना मार्गेणायं प्राणी जीवनादुत्सर्पति तमेव तस्य

स्वाशयित्वा बद्धा तस्कर इव तत्रैव सर्पज्वरादिरूपो भूत्वा जीवित्वादुपर्य-

स्यामीत्येवमनुपस्पाशयमानं तमेतमेवैकर्मणं वैवस्वतं विवस्वतः पुत्रं संग-

मनं जनानां सममेव चक्षुः कृत्वा योऽस्माद्योक्तादमुं लोकं यथाकृतकर्मफ-

लोपभोगवशेन जनान् गमयति तमेतमेवं यमं राजानम् ईश्वरं सर्वप्राग-

भृतां हे यजमान हविषा अनेन पशुलक्षणेन दुवस्य । राधुनीत्यर्थः ।

पारिचरस्वेत्यर्थः ।

१५ ' अवतिर्गतिकर्मा ' इत्येतदत्र निर्वचनं कथं संबध्यत इति विज्ञात-

व्यम् । अथवा । प्रवत इत्यवतिरेवायमादिलुप्तः प्रपूर्वं इति भाष्यकारा-

भिप्रायः ।

तत्प्रसंगाद्वा शब्दसारूप्याद्वा निराह । ' अग्निरपि यम उच्यते ' इति

विचारोपप्रदर्शनाय । ' तमेता ऋचोऽनुप्रवदन्ति ' इति प्रतिज्ञातार्थोप-

२० पादनाय । यथाग्निरपि यमशब्देनोच्यते तथेता ऋचोऽनुप्रवदन्ति ॥ २० ॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न द्विशुत्त्वेषप्रतीका । यमो ह जातो

यमो जनित्रं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् (ऋ० सं० १ ।

६६ । ४) ॥ तं वश्वराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्मम्

२५ (ऋ० सं० १ । ६६ । ५) ॥ इति द्विपदाः सेनेव सृष्टा भयं

१ ग. °मिति । हविर्द्धान्यार्थम्; च. ज. °मिति. हविर्द्धानस्यार्थम्. २ ग. च. ज. ' बहुभ्यः पुण्यकृद्भ्यः पापकृद्भ्यश्च ' नास्ति. ३ च. °पस्याशं. ४ घ. झ. ट. ठ. ड. °पयास्थां; च. °पयस्थां. ५ घ. झ. ट. ठ. ड. °नांनामयति. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तमेवं. ७ क. ख. ७ (२०); ट. ड. °दन्ति. इति नेरुक्तभाष्ये चतुर्थेऽध्याये (ड. ४ ध्याये) २० खण्डः; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति.

वा बलं वा दधात्यस्तुरिव दिशुत्त्वेपप्रतीका भयप्रतीका बलप्र-
तीका यशःप्रतीका महाप्रतीका दीप्तप्रतीका वा । यमो ह जात
इन्द्रेण सह संगतः । यमाविहेह मातरेत्यपि निगमो भवति ।
यम इव जातो यमो जनिष्यमाणो जारः कर्नीनां जरयिता
कन्यानां पतिर्जनीनां णलयिता जायानां तत्प्रधाना हि यज्ञसं- ५
योगेन भवन्ति । तृतीयो अग्निष्ठे पतिरित्यपि निगमो भवति । तं
वश्वराथा चरन्त्दा पश्चाद्हुत्या वसत्या च निवसन्त्यौपधाद्हुत्यास्तं
यथा माव आमुवन्ति तथाप्नुयामेद्धं समिद्धं भोगैर्भिन्नः प्रमीते-
स्त्रायते संमिन्वानो द्रवतीति वा मेदयैतेर्वा तस्यैषा भवति ॥ २१ ॥

१०

सेनेव सृष्टेत्येवमाद्यौः । पराशरस्यार्षम् । एता द्विपदा विराजः ।
अग्निरत्र यमः प्रातरनुवाकाश्विनयोर्विनियोगः । सेनेव सृष्ट्या
निश्चिता । अथवा । सेनापतिना त्रिमृष्टा प्रेरिता ।
अमं दधाति भयं वा बलं वा दधाति । भयं परेभ्यो बलं स्वैभ्यः । अथवा ।
अतर्किता भयं ददाति अतर्किता बलं ददाति प्रणेतुः । अस्तुर्न दिशुत् । १५
अस्तुरिव क्षेप्तुर्यथा दिशुत् आयुधम् । महाप्रतीका । महती या दृश्यते । प्रतीकं
दर्शनम् । भयप्रतीका दर्शनादेव भयानका । दीप्तप्रतीका वा दीप्तदर्शना ।
भयं वा बलं वा ददाति । स्वैभ्यः परेभ्यश्चेति वर्तते । का पुनरसाविति ।
अग्नेरर्चिः । रक्षोभ्यो भयं ददाति स्वैभ्यो बलम् । यमो ह जातो यमो
जनिष्वम् । यस्येदमेवंलक्षणमर्चिः स एव यमः अग्निः सर्वमिदं जातं २०
जनिष्यमाणं च ।

कथमेतद्द्रव्यते पार्थिवोऽग्निर्यमशब्देनोच्यते न मध्यमे नोत्तमो वेति ।
तावपि हि यमाबुच्येते । यतो निगमान्तरेण त्रिभज्य दर्शयति । ‘ यमा-
विहेह मातरेत्यपि निगमो भवति ’ । यत्रैव पादस्तस्मिन्मन्त्रे शक्यते यम-
शब्देनाग्निरुच्यत इति विभावयितुं व्यपदेशः । तद्यथा । ‘ बलिष्ठया

१ छ. त. द. ‘ बलप्रतीका यशःप्रतीका ’ नास्ति. २ ड. ध. ठ. ड. पश्चाद्हु°;
ध. पश्चाद्हु° श्वा. ३ ड. थ. ध. ठ. ड. समृद्धं. ४ क. ख. ८ (२१); त. द.
८. ५ ग. °माद्यौः । प°. ६ ग. ज. अक्षिता; च. अक्षता; ट. प्रैति° आं-
क्षिता. ७ ध. ट. ठ. ड. व्दात्तु. ८ ग. बलित्थं; च. ज. घ. झ. बलित्थं. २९

महिमा वौमिन्द्राग्नी पतिष्ठ आ । समानो वां जनिता भ्रातरौ युवं यमा-

अस्यामृचि इन्द्राग्नी विहेहमातरौ ' (ऋ० सं० ६ । ५९ ।
द्वावपि यमौ २) ॥ भरद्वाजस्यार्पम् । ' वळ् ' इति सत्य-
नाम (निघ० ३ । १० । १) । हे इन्द्राग्नी

५ इत्या सत्यम् अमुना प्रकारेण । यः सूक्ते माहाभाग्यप्रकारोऽधिकृतस्त-
मित्येत्यभिनयेनोपदिशन् ब्रवीति । महिमा माहाभाग्यं वां युवयोः आ
पतिष्ठः सर्वतोऽतिशयेन स्तुत्यः । यौ युवामेवमतिमहानुभावौ तथोः
समानो वां जनिता जनयिता सूर्यः । तौ युवामेवं कृत्वा एकपितृकौ एक-
जन्मानौ यमौ भ्रातरौ । इहेहमातरौ । इह च पृथिवी-

१० लोके इह चान्तरिक्षलोकेऽवस्थितौ मातौरी सर्वस्य लोकस्य निर्मातारौ ।
एवमिह मन्त्रे पितृत्वेन सूर्यो व्यपदिष्टः । इन्द्राग्नी यमाविति यमशब्दो
मध्यमस्थानपृथिवीस्थानयोः । अत्रापि द्वयोर्यमयोरिह चेह च निर्मातारा-
विति प्रथमेन ' इह ' शब्देन अग्निर्मम इति लक्ष्यते । तस्मादिहापि
' यमो ह जातो यमो जनित्वम् ' इति युक्तं यदग्निरेवोच्यते । जारः

१५ कनीनां पतिर्जनीनाम् । स एवाग्निः जारो जरयिता कन्याभावस्य ।
यदा ह्यग्निसंनिधाबृद्धा भवन्त्यथ तासां कन्याभावो जीर्णो भवति । पतिर्ज-
नीनां पालयिता जायानाम् । कथम् । तत्प्रधानाः संपचन्तेऽग्नौ व्रतोपग-
मनादाव्रतविमोकादाग्निपारतन्व्यात् ।

यथा वै तासां यथाधिकृतो यमो ह जातो यमो जनित्वमित्यग्निरेव यमो
२० ह जातः पतित्वेन कन्याभावस्य जरयिता तथायमपरो निगमः स्फुटतरः ।

' तृतीयो अग्निष्टे पतिरित्यपि निगमो भवति ' । ' सोमः प्रथमो त्रिविदे

कन्यानामग्निस्तु- गन्धर्वो त्रिविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पति-

रीयः पतिः स्तुरीर्यस्ते ममुष्यजाः ' (ऋ० सं० १० । ४५ ।

४०) ॥ सूर्याया आर्पम् । विवाहे विनियोगः ।
हे कन्ये त्वमुच्यसे । सोमः त्वां प्रथमो त्रिविदे विज्ञयान् प्राप्तवान् सोम्ये

१ ग. च. ज. घ. झ. ट. वामिति । भरद्वा०. २ क. ख. घ. झ. ट. ०र्धम् ।
बृहती । व०. ३ क. ख. ' वळ् ' इति; ग. च. ज. घ. झ. ट. बळ्. ४ सर्वेषु
पुस्तकेषु ' महा ' . ५ ग. ज. ठ. ड. मातरौ. ६ ग. ज. ' पायना ' ; ट. ' पंगमना ' .
७. ९. ५. ७ च. ज. घ. झ. ट. ' विद इति । सूर्या ' ; ग. ' विद इति । सू०.

प्रथमकौमारके । गन्धर्वो विविद उतरः । उपजायमानचारुताङ्ग-
 प्रांवेभागस्वरैरौष्ठ्रामोपद्वनङ्गाङ्गसमाहितहृद्यां गन्धर्वो विश्ववमुः त्वां
 विविदे विन्नवान् । अथ पुनरिदानीं वैवाहिके उपगतायाः कर्मणि तृतीयः
 अग्निष्टे पतिः । तृतीयस्तवायमग्निः । अत उद्वहनात्परं तुरीयः चतुर्थः
 तवायं मनुष्यजाः पतिरित्येवमेतेनापि मन्त्रेण समवैति जास्वं पतित्वं
 चाम्नः । एवं चेत् यमो ह जातो यमो जनित्वम् इति यदधिकृतं
 सोऽग्निरेवेति सिद्धम् ।

५

अग्निर्मह्यमथो इमामिति च केचिदधीयते निगममुपचयहेत्वर्थम् ।
 स निरुच्यते । ' सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो
 तस्मिन्नेवार्थे ददद्गन्धर्वे । रयि च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो
 अन्या ऋक् इमाम् ' (ऋ० सं० १० । ८५ । ४१)

१०

इति ॥ स एव विनियोगः (मान० गृ० १ । १० । १०) । आर्षं च ।
 सोम एतां प्रथमं कौमारादभ्युह्य गन्धर्वाय ददत् अदात् । अथ गन्धर्वोऽ-
 प्येनामभ्युह्य स्वयौवनाधिकारात् अग्नये ददत् । अथाग्निरप्येनामस्मिन्
 विवाहे संस्कृत्य रयि धनं च पुत्रांश्च मह्यमदाद् इति । अथो अपि च
 धनेन च पुत्रैश्च सह मह्यमदात् मह्यं ददाविति ।

१५

तमग्निं यमम् । ' वः ' इत्यनर्थकः । अथवा । यजमना ऋत्वि-
 ग्मिरुच्यन्ते । चराथा चरन्त्या जंगमया पश्चाद्दृष्ट्या वसत्या च निवसन्त्या
 अंपत्राहु या । जंगमेन स्थाचरेण च हविषा ; अस्तं न गावो नक्षन्ते । अस्तं
 यथा गृहं गावः अवश्यं नक्षन्ते आप्नुन्ति स्वेनोपकारेण सायंवासाय
 तथेममग्निमुभयलक्षणेन हविषा त्रयमाप्नुयाम इहं समिद्धं भोगैः सर्वभो-
 गानामर्श्वरं प्रदातारमिति ।

२०

' मित्रः ' (१३) कस्मात् । स हि ' प्रनातेह्रायते ' । प्रमीतिः
 प्रमरणं ततः सर्वलोकं त्रायते वर्षद्वारेण ।
 मित्रः कस्मात् ' समिन्वानो द्रवतीति वा ' । समन्ततो मिन्वानः
 उदकेन द्रवत्यन्तरिक्षलेके । ' मेदयतेर्वा ' स्नेहनार्थस्य (धा० पा०

१ घ. ट. ठ. ड. स्वरे सो०. २ ग. ' वीयति ' । स एव० ; च. ज. व. झ. ठ.
 ० वायति । स एव०. ३ ड. पश्चाद्दृष्ट्या.

२८

१० । ८) । सर्वं ह्यसावुदकेन स्नेहयति । ' तस्यैषा भवति ' ॥ २१ ॥

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिपाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत (ऋ० सं०
५ ३ । ५९ । १) ॥ मित्रो जनान्यातयति प्रब्रुवाणः शब्दं कुर्वन्
मित्र एव धारयति पृथिवीं च दिवं मित्रः कृष्टीरनिमिपन्नभिविप-
श्यतीति कृष्टय इति मनुष्यनाम कर्मवन्तो भवन्ति विकृष्टदेहा
वा मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोतेति व्याख्यातं जुहोतिर्दानकर्मा कः
कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा तस्यैषा भवति ॥ २२ ॥

१०

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाण इति । विश्वामित्रस्यार्पम् । अववृष्टहोमे
मित्रः प्रायश्चित्तम् । अग्निहोत्रे पूर्वस्थामाहुतौ विनि-
योगः (मान० श्रौ० ३ । २ । ८) । मित्रो
जनान्यातयति ब्रुवाणः । आयातयति कृष्यादिषु प्रवर्तयति तत्कर्मपूर्वक-
१५ त्वाकृष्यादिकर्मणाम् । न ह्यवृष्टे कृष्यादीन्यायात्यन्ते । आयातनमारम्भः ।
तद्यथा । भोजनमायातितमनेनेति । कथमायातयति । प्रब्रुवाणः स्तनयित्नुं
कुर्वन् । एवं प्रवर्तयन् कर्ममु ओपधीरूप्याद्यन्यज्ञद्वारेण स एव
मित्रो दाधार धारयति पृथिवीं पृथिवीलोकनिवासिनः सर्वान् । उत
चां धारयति । अमुना प्रकारेण अनुगृह्णन् स मित्रः कृष्टीः मनुष्यान् अनि-
२० मिपन्नभिविपश्यति उपकारद्वारेण । यो हि यस्मा उपकरोति स तेन
सम्यक् दृष्टो भवति । योऽयमेवमुपकारप्रवृत्तः कृस्नाय लोकस्य तस्मै मित्राय
हव्यं घृतवत् घृतोन्मिश्रं जुहोत जुहुत हे मनुष्याः ।

१ क. ख. थ. च. झ. ट. ठ. ड. झं. नि. २ क. थ. ८ (१७) ; ठ.
' वनि । इति निरुक्तटीकाभाष्ये ४ ध्याये २१ खण्डः ; ड ' वति । इति निरुक्त-
भाष्ये २१ खण्डः ; घ. झ. ट. ज. अङ्को नास्ति ३ ड. थ. ध. ट. ड. ' ति
ब्रुवां. ४ क. ख. ९ (२२) त. द. ९. ५ ग. इति । वि ; ठ. ड.
यातयतीति । वि. ६ ग. च. ज. ' योगः । आयातयति '. ७ क. ख. थ. झ. ट.

२८ ठ. ड. अनिमिश्रभिक्षे अनिमिपं. ८ ग. च. ज. झ. ' जुहुत ' नास्ति.

‘ कृष्टयः ’ इति मनुष्यनाम । तत्कस्मात् । नित्यं हि ते कर्मवन्तो
 कृष्टयः कस्मात् भवन्त्यारम्भशाल्यवृत्तौ । ‘ विकृष्टदेहाः वा ? ।
 मंसृष्टदेहा अन्ये पशवो गवादयः । ते हि न
 कामकारतोऽङ्गानि प्रसारयितुं शक्नुवन्ति । स तेषां संकल्पः । मनुष्यास्तु
 कामतः प्रसारदन्त्यङ्गानि । स तेषां विकर्षो देहस्य ।

५

‘ कः ’ (१४) इति वक्तव्यम् । स पुनरेव महानात्मा मर्वात्मा प्राण-
 बुद्धिसतत्त्वः । उदाहरिष्यति च ‘ अथैतं महान्तमात्मानम् ’ अधिकृत्य
 (निरु० १४ । १) ‘ क ईषते तुष्यते ’ (निरु० १४ । २६) इति ।
 स कथं मध्यमो भवति । भवति हि तस्यै सुक्ते ‘ आगो ह यद् बृहतीर्वि-
 श्वमायन्गमं दधोनाः ’ (ऋ० सं० । १० । १२१ । ७) इति ।

१०

कः कथं मध्यमः विज्ञायते च ‘ प्रजापतिर्न कः ’ (तै० ब्रा०
 २ । २ । ९) इति । प्रजापतिश्च मध्यमः ।
 तथा च गन्त्रवर्णो भवति राज्ञोऽभिषेकमविक्रुः प्राश्वने ‘ प्रजापतिश्चरति
 गर्भे अन्तः ’ इति सप्तानां प्रथमा । तयोपरिष्ठादभिषेकस्य जुहुयात्
 इति । तस्माद्भवति मध्यमः । स कस्मात्कः । ‘ कमगो वा ’ ।

१५

कः कस्मात् कामिनां कामेष्वर्थेषु साधनम् । ‘ क्रमणो वा ’ ।
 क्रमणसाधनम् । स्वयमेव वा क्रामति ।
 ‘ सुखो वा ’ । कामेव वा कः । सुख इत्यर्थः । ‘ तस्यैवा भवति ॥२२॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत् । सं
 दाधार पृथिवीं द्याप्सुमेवा कर्म देवार्यं हविषा विभेम (ऋ०
 सं० १० । १२१ । १) ॥ हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भो हिरण्य-

२०

१ घ. झ. ट. ठ. ड शीलकृत्वात् . २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. धेने.
 ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ नामस्यधि ’. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
 तस्मिन्; ग. ज. भगति तस्य. ५ ट. ड. द्याना जनयन्तीरनिम् इति ? (ड. ‘ यनी-
 र्थेकम् इति). ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ‘ परिष्ठा ; च. ‘ परिष्ठा० वि. ७ क.
 ख. ९ (२२); ठ. ड. ‘ वति । इति निरुक्तभाष्ये उतरषटके चतुर्थेऽध्याये
 द्वाविंशः (ट. ‘ धाये २२) खण्डः; प. छ. ट. ज अट्टो ना.सि.

६८

मयो गर्भोऽस्येति वा गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरस्यनर्थानिति वा
यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति
समभवदग्रे भूतस्य जातः पतिरेको बभूव स धारयति पृथिवीं च
दिवं च कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातं विधतिर्दान-
कर्मा सरस्वान् व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ २३ ॥

- द्विष्टगर्भः सम्भवतीताग्रे इति । द्विष्टगर्भस्यैवाग्रेम् । सर्वात्मक-
व्याक्तदार्ढ्येऽपि मन्त्रस्य प्रथमपुरुषयोगोऽविप्रतिपिद्धः । अथवा । परस्य
ब्रह्मणो वा द्विष्टगर्भावस्था प्रतिकल्पमाविर्भाव-
१० कः तिरोगर्भवर्भिणी बुद्धिपूर्विका नित्या तस्यां च
नित्यो मन्त्रोऽविवक्षिताभिधानाभिधातृक आश्रयमात्रेणाभिधातारमुदादाय
प्रवर्तमानोऽनुवक्तव्यविवक्षितः पुरुषयोगः । कृतकत्वे हि नियमत
एवोत्तमपुरुषयोगो मन्त्रस्याभिव्यक्तः । भूतस्य अस्य उत्पन्नस्य स्थावरजं-
गमस्य जगतो द्विष्टगर्भेः एव अग्रे सम्प्रवर्तते सम्भवत् उदपद्यत ।
२५ तमुत्पन्नमन्त्रिर्द सर्वभुम्पेद् । स च पुनरग्रे जातः संस्तस्य एव द्रुतस्य
एकः अमपन्नः अद्वितीयः पतिः पाता रक्षितः ईश्वरः स्वतन्त्र
आसीत् । कश्चमिति । स दधर । यतः पतिः अतः स एव दाधार स एव
धारयत्यत्रत्वेऽपि । किमिति । पृथिवीमुत द्याम् । पृथिवीम् अन्तरिक्षम्
अपि च यां तुशेकम् । अपि च इमां भूमिम् अन्तरमनुप्रविष्टो
१० बह्विध वर्षाद्युपकरणे । योऽयमेवंमात्रैः अतिमहानुभावः कः तस्मादस्मै
कस्मै काय देवाय हविषा विधेम हविर्दद्यः । अथवा । अनन चकलक्षणेना-
अलक्षणेन वा हविषा तं यथ परिचरेम । ' विधतिर्दानकर्मा ' इति ।
तस्माद्द्विःशब्दरतिरेव आयायी । शनकृष्णलस्य पुरानुवाक्या (मैत्रा०
५० २ । २ । २) । अथ ग्थ प्राजापत्ये पञ्चावनेन मन्त्रेण (मैत्रा०
२५ सं० ३ । १२ । १६) ॥

अथ द्विष्टगर्भः कस्मात् । स हि ' द्विष्टगर्भयो ' विज्ञानमयो
' गर्भः ' सर्वभूतानां तत्कृतवदनाः प्रक शस्य । द्विष्टगर्भयश्चसौ

१ क ख १० (२३) ; त द. १०. २ ग. इति । हिं. ३ फ. ए. घ.
च. झ. ट. भाव अ० ; ग. ज. विभव अ०. ४ च. उ. ड. ङ. ष. नस्य०. ५ ग.

३० ग. ' यथोः ; घ. ' पञ्चावनेन. द. ग. घ. ज. ' हि ' नास्ति.

गर्भश्चेति समनाधिकरणः । ' हिरण्यमथो गर्भोऽस्थिति वा ' ।
शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिभवेनेतमपेक्ष्य परमात्मानं च विज्ञानप्रकाशमात्रसतत्त्वं
सर्वविशेषहारिवाहिरण्यमपेक्ष्य तत्प्रकृतित्वं च क्षेत्रज्ञस्यापेक्ष्य सोऽस्य
हिरण्यो हिरण्यप्रकृतिर्गर्भ इति हिरण्यगर्भः । अथ ' गर्भः ' कस्मात् ।
' गर्भः ' धातोः गृणात्यर्थे वर्तमानस्य । स्तुत्यो हि गर्भः । ' गिरत्यन- ५
थानिति वा ' । सर्वाननर्थानस्तौ गिरति नाशयति । अथ पुनरयं स्त्रीगर्भः

स्त्रीगर्भस्य मीमांसा कस्मादिति । यत आह । ' यदा हि स्त्री गुणान्
गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति ' ।
छयवयवः स्त्रीरुक्तम् । तद्यदासौ पुरुषान्छुक्रावस्थान् गुणान् गृह्णाति
आत्मानं संपृणक्ति अस्थिन्नायुमज्जनः । गुणाश्चास्या रक्तावस्थाः त्वब्जां- १०
सशोणितानि पौरुषेण शुक्रण गृह्यन्ते । तथैवमितरेतरकोशग्रहणव्यति-
पङ्के रक्तशुक्रयोः स्त्रीगर्भो भवति । अथवा । यदा हि स्त्री गुणान्
गृह्णाति पुरुषस्य प्रेम्णा गुणाश्चास्याः प्रेम्णा पुरुषेण गृह्यन्ते तदितरंतरा-
नुरागत् प्रमोदः । प्रमुदितयोः संपर्काद्गर्भग्रहणं च । तदेवं गर्भग्रहणहे- १५
तुकोऽथमिति ग्रहेर्गर्भः ।

' सरस्वान् (१५) व्याख्यातः ' (निरु० २ । २४) सर-
स्वया । केवलं लिङ्गकृतो विशेषः । ' तस्मैवा भवति ' ॥ २३ ॥

ये ते सरस्व ऊर्ध्वयो मधुमन्तो घृतश्रुतः । तेभिर्नोऽविता भव
(ऋ० सं० ७ । ९६ । ५) ॥ इति सा निगद्व्याख्याता । २४ ॥ २०

दशमाध्यायस्य द्वितीयः पाठः ॥

ये ते सरस्व ऊर्ध्वयो मधुमन्तो घृतश्रुतः । तेभिर्नोऽविता भव
हर यत् हविषि विनिर्भोगः (आश्व० श्रौ० ३ । ८) । हे

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. '१२मर्भमयो'. २ ग. ज. गृहर्वातेर्गृहान्व'. २५
३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सर्वस्य स्तुत्यो. ४ क. ख. १० (२०); ठ. 'वति ।
इति निरुक्तटीकावतुर्थोऽथ ये २३ खण्डः; ड. 'वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरखण्डे
२० (१) खण्डः; घ. झ. ट. ज. ऊर्ध्वो नाम्नि. ५ क. ख. ११ (२०); त.
द. ११ ६ ड. थ. ध. ' दश० प. ३ ' नाम्नि; छ त. ' दशमाध्यायस्य '
नाम्नि; द इति निर्भोऽवधारणस्य दशमा'. ७ ग. इति । व.

भगवन् सरस्वन् ये ते तत्र ऊर्मयो यैरूर्ध्वोऽपि नमो मेवैश्छादयसि मधु-
मन्त उदकवन्तो घृतश्रुता घृतवन्तः उदकप्रक्षराः तेभिः तैः त्वमस्माकम्
अविता तर्पयिता भवेत्येतदाशास्महे ॥ २४ ॥

पञ्चदशस्य द्वितीयः पादः ।

५

तृतीयः पादः ।

विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता तस्यैषा भवति ॥ २५ ॥

- १० ' विश्वकर्मा ' (१६) वक्तव्यः । स कस्मात् । ' सर्वस्य कर्ता ' ।
विश्वकर्मा कस्मात् यावदिदं पिचिद्धृतं कारिष्यमाणं क्रियमाणं च
तस्य सर्वस्य कर्ता । वाय्वात्मकदात्सर्वचेष्टानां
मध्यमः । स कथं सर्वं करोति । पार्थिवाग्नेौ धातू तेजसा परिपच्यमानौ
वायुर्व्यूहेन विचरन् सर्वभावानुप्रवेशी सर्वमवमलयद्भुनमचिन्त्यमकृतात्मभि-
र्जगत्करोतीति मध्यमः । विश्वकर्णाद्विश्वकर्मा ।
१५ स कथं मध्यमः विज्ञायते हि वैश्वकर्माणं हविरधिकृत्य साक-
भेषु । ' अथैष वैश्वकर्माणो दिव्यानि मे कर्माणि कृतान्यासन्निति विश्व-
कर्मा हि सोऽभवत् ' (मैत्रा० सं० १ । १० । १६) इति ।
भवति चोदकसंबद्ध मयमलिङ्गं विश्वकर्माणमधिकृत्य वैश्वकर्माण सूक्ते
' तमिद्ग्नं प्रथमं दध्र आपः ' (ऋ० सं० १० । ८२ । ६) इति ।
२० विपुत्रति च वैश्वकर्माणं ग्रहमधिकृत्य विज्ञायते हि ' इन्द्रो वै वृत्रम-
हन्त्स इमं लोकमभ्यजयदमुं पुं लोकं नाभ्यजयत्तं विश्वकर्मा भूत्वाभ्य-

१ ग. च. ज. ' ये ' नास्ति. २ ग. च. ज. ' तैः ' नास्ति. ३ ग. च. २४;
क. ख. ७ (२४); ठ. 'स्महे । इति पञ्चम. अध्याये द्विपादः । इति निरुक्तभाष्ये ४
ध्याये २४ खण्डः; ड. 'स्महे । इति पञ्चदशाध्याये २ पादः । इति निरुक्तभाष्ये
२४ खण्डः ४ क. ख. १ (२५); त. द. १. ग. च. ज. ' च ' नास्ति.
६ क. ख. घ. झ. ट. सन्निदमं. ७ क. ख. घ. झ. ट. ' ति समर्थं. ८ ग.
च. ज. विश्व. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' बद्धमस्य म'. १० ठ. ड. ' आपो
यद्' तस्पुरिति' इति सर्वा कल्पयन्ते. ११ ग. ज. ' कर्मा ग्र'; घ. झ. ट. ठ.

१२ ड. ' कर्माणं. १२ क. घ. ठ. ड. तु.

जयत्' (भैत्रा० सं० ४ । ८ । १०) इति । तस्यैव ग्रहस्य पुरोरुच-
मधिकृत्य विज्ञायते ' यद्यैन्द्रो वैश्वकर्मणो विद्यात्तत्रैव गृह्णीयात् ' इति ।
स एष एवमादिभ्यो लक्षणेभ्यः सर्वस्थानानुभावित्वेऽपि सति विशेषतो
मध्यम इति मध्यमस्थाने समाप्नातः । ' तस्मैषा भवति ' ॥ २५ ॥

५

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मंदन्ति यत्रां सप्तऋषीन्पर एकमाहुः (ऋ०
सं० १० । ८२ । २) ॥ विश्वकर्मा विभूतमना व्याप्ता धाता च
विधाता च परमश्च संद्रष्टा भूतानां तेषामिष्टानि वा
कान्तानि वा क्रान्तानि वा गतानि वा मतानि वा १०
नतानि वाद्भिः सह संमोदन्ते यत्रैतानि सप्तऋषीणानि
ज्योतीषि तेभ्यः पर आदित्यस्तान्येतस्मिन्नेकं भवन्तीत्यधिदै-
वतमथाध्यात्मं विश्वकर्मा विभूतमना व्याप्ता धाता च विधाता
च परमश्च संदर्शयितेन्द्रियाणामेषामिष्टानि वा कान्तानि वा
क्रान्तानि वा गतानि वा मतानि वा नतानि वात्नेन सह संमो- १५
दन्ते यत्रैतानि सप्तऋषीणानीन्द्रियाण्येभ्यः पर आत्मा तान्येत-
स्मिन्नेकं भवन्तीत्यात्मगतिमाचष्टे तत्रैतिहासमाचक्षते विश्वकर्मा
भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवांचकार स आत्मानमप्य-
न्वतो जुहवांचकार तदभिवादिन्येपरर्भवति । य इमा विश्वा
भुवनानि जुह्वदिति तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ॥ २६ ॥ २०

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया इति । भौवनस्य विश्वकर्मणः प्रजापते-
रार्षम् । अग्नौ वैश्वकर्मणाभ्यां सूक्ताभ्यां षोडश-
विश्वकर्मा गृहीतं ह्युते तत्र विनियोगः (भैत्रा० सं० ३ ।

१ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'यते हि. २ क. ख. १ (२५); द. ड.
'वति । इति निरुक्तभाष्ये ४ ध्याये २५ खण्डः. ३ द. सप्तऋषीणानि. ४ द. 'तीष्ये-
तेभ्यः. ५ छ. त. द. तान्यस्मि'. ६ क. ख. २(२६); त. द. २. ७ ग. इति' १ ।
भौ'; ठ. ड. विमना इति । भौ'.

२८

३।७॥ २।१०।२) । विश्वकर्मा विमनाः विभूतमनाः विभूतप्र-
 ज्ञानः । सर्वत्राप्रतिहतमस्य प्रज्ञानम् । किं प्रज्ञान-
 मन्त्रस्याधिदैवतं व्याख्यानम् । केवलम् । नेत्युच्यते । आद्विहायाः । अप्य-
 सावात्मना विहायाः । अत्मानापि सर्वप्रकारं

- ५ महान् । महत्त्वाच्च व्याप्तौ एवं सर्वप्रकारं सर्वस्य जगतः । यत एव च महान्
 भवत एव धाता उत्पादयिता सर्वभूतानाम् । उत्पाद्य च विधाता जीवनस्य ।
 जीवतां च साध्वसाधुषु कर्मसु प्रवर्तमानानां परमोत्तमं संतुष्टं परमः प्रकृष्टः
 अव्यवधानेन संद्रेष्टा सम्यक् प्रविभागेन द्रष्टा । साध्वसाधुप्रविभागदृष्टानां
 तेषां च भूतानां यानि इष्टानि प्रियाणि तस्य विश्वकर्मणो देवीं संपदमभि-
 १० संपन्नानि । कार्मर्थो वा इषिः । यान्यभीषितानि तस्य विश्वकर्मणः ।
 मतानि वा अभिमतानि वा । तस्य विश्वकर्मणः नतानि
 वा प्रहीभूतानि तं विश्वकर्माणं प्रति । तत्परिज्ञानश्चोपासना-
 भावनाप्रक्षपितदुरितानि तेन सहैकीभूतानि विश्वकर्मणा आधिदैविकमा-
 त्मानमभिसंपन्नानि । समिषा मदन्ति । इषा उदकेन अग्निः परियुताभिः
 १५ सुसूक्ष्माभिः सह तेन कर्मणा समानम् अविशेषेण मादन्ते । क्व । यत्र
 सप्तऋषीन्पर एकमाहुः । यत्रैतानि सर्वैऋषीणानि रसानामाकर्षणानि
 द्रष्टृणि वा रश्मीन् ज्योतींषि एकं भवन्ति अविभागमुपगच्छन्ति । मण्डले
 ह्येतेषामविभागः । किं तत्रैव । नेत्युच्यते । यत्र पर एकमाहुः । क्व च पुनः
 पर एकमाहुः । मण्डलाधिष्ठातारं योऽसौ यज्ञदानतपसां भोक्ता 'हिर-
 २० ण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आ प्रणखात्सर्व एव सुवर्णः' (छा० उ० १।६
 ६) इति विज्ञायते । एकमेव यमाहुर्देवतासत्त्वविदः । 'इत्यधिदैवतम्' ।
 देवतामधिकृत्य मन्त्रस्य व्याख्यानमधिदैवतम् ।

‘अथाध्यात्मम्’ । आत्मानमाधिकृत्य विश्वकर्मणो व्याख्यानमध्यात्मम् ।

कः पुनरयमात्मा । विज्ञानसत्त्वमात्रं सविशेषविज्ञानप्रसवनीजं यदेकदेशाः

१ ग. च. ज. ज्ञानं. २ ग. ज. व्याप्नोति. ३ क. ख. घ. झ. ट. 'च' नास्ति;
 च. 'एव-म'. ४ ग. ज. संद्रेष्टा. ५ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यानि यानि°. ६
 क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. कान्त्यर्थो. ७ क. ख. घ. ट. सप्तर्षीणा°. ८ ग.
 २० ज. °णानि य वा; च, द्रष्टृणि. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. सर्ववि°.

प्रच्युता इव सन्तस्ततः कथमप्यविद्यान्वयधानादन्यत्वमिव विभ्रतः प्रतिश-
 रीरं शास्त्रेण ताद्गन्धं चावच्छिष्यते । सोऽव-
 अश्मन एकत्रेऽपि रीरं शास्त्रेण ताद्गन्धं चावच्छिष्यते । सोऽव-
 तस्याधिदैवाध्यामे मात्मा प्रतिशरीरं क्षेत्रज्ञत्वेन स्वविशेषविज्ञानज्ञ-
 इति द्वे रूपे क्षयाधिकमनुभवन् हिरण्यगर्भावस्थामधिदैवमि-
 स्तदाधिदैवतमनोपेक्ष्य प्रतिशरीरं^१ यद्विश्वकर्मभाषमनुभवन् मन्त्रेण व्याख्या-
 यते तदध्यात्ममस्य ।

विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता परमात्मा प्रतिशरीरं क्षेत्रज्ञत्वेन वर्तमानस्त-
 मन्त्रस्याध्यात्मं कृतत्वाहायोः क्रियापरिस्पन्दस्य । न केवलं
 व्याख्यानम् सर्वक्रियाशक्तिमात्रं किं तर्हि । विषयाश्च १०
 विभूतमनाः सर्वप्रज्ञातः सर्वतोमुखाभिः विशेष-
 विज्ञानशक्तिभिः । आद्रिहायाः । स्वपि च विहायाः महात् । विज्ञायते
 हि 'स वा एष महानात्मा ज्ञानदो बसुदायः' (बृह० उ० ४ ।
 ४ । २४) इति । न केवलं महान् । किं तर्हि । भाता स्वष्टा स्वशक्तिवि-
 श्लेषस्य । विधाता च तद्योग्यानां विषयाणाम् । विक्षितविहितानां च ११
 तेषां परमः प्रकृष्टः इन्द्रियाणां संदर्शयिता सत्कृतत्वाद्विषयविपर्ययसंबन्ध-
 स्येन्द्रियाणां च तदधिष्ठितानां प्रतिविषयमलोकसामर्थ्योपजनात् । तस्य
 विश्वकर्मणः परमात्मनः तेषां स्वशक्तिविशेषैः क्षेत्रज्ञविभूतानां यानि
 इष्टानि पूर्ववत्परमात्मज्ञानश्रद्धाफलसनाभाषनाप्रश्रुतितदुत्तरानि तानि इषा
 अत्रेव सह मोदते तृप्तान्ति । क । यत्रा सत्सर्षीन्त्युप्रेमानि सत्सर्षी- २०
 णानि इन्द्रियाणि द्रष्टृणि इन्द्रियाणि श्रोत्राणि एकमाहुः । क । बुद्धौ ।
 तस्यामपि ह्येतेषामेकत्वमस्ति^२ । किं तत्रैव । नेत्युच्यते । पर एकमाहुः ।
 न यतः परतरमस्ति तस्मिन्परे विश्वकर्मणि यदन्नं शक्तिनात्रं यदुपवि-
 ष्ठमात्परमात्मा नित्यतृप्तस्तेनात्मेन परमात्मनि तद्विज्ञानोपासनात्ताद्गन्धमु-

- १ क. ख. ग. ज. घ. झ. ट. ठ. ड. 'विशेषेण विज्ञा°; च. 'विशेषविज्ञा° ११
 वेण. २ क. ख. घ. घ. झ. ट. ठ. ड. 'विश्वकर्मणु° १ क. ख. घ. झ. ट. ड.
 ड. 'रीरं क्षेत्रज्ञत्वेन य° ४ ग. च. ज. विभूतप्रज्ञातः स° ५ क. ख. घ. झ.
 ट. ठ. ड. उत्कृष्टः ६ ग. च. ज. 'क्षेत्रज्ञेन' ७ ग. च. ज. 'तस्मिन्' नास्ति.
 ८ ग. ज. सत्सर्षीण्यनि; च. सत्सर्षीण्यनि° रि; ट. सत्सर्षीण्यि° रि; घ. झ.
 सत्सर्षीण्यनि. ९ ग. च. ज. द्रष्टृणि; ठ. ड. द्रष्टानि. १० क. ख. घ. झ. ट. ठ.
 ड. 'परतरे चि° ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'परतरे चि° ११

पगतास्तेन सहभृता भेदन्ते निरशनापिपासा नित्यतृप्ता अतीतशोकमो-
हजरामृत्युष आःप्रविद इत्येवमाहुः सतस्वदृशो ब्राह्मणाः । यथा चानुपक्षी-
णाश्वभाशक्ति नित्यतृप्तं सर्वभावपरं तत्परं ब्रह्म यदात्मविदः प्रतिपद्यन्ते तथा
पुराणसूक्तेऽपि परमेष्ठिन आर्षं मन्त्रो दर्शयति । ' स्वधया तदेकं तस्मा-
द्भान्यन्न परः किं चनासं ' (ऋ० सं० १० । १२९ । २ ॥ निरु०
७ । ३) इति । एवं सर्वत्र संभवो यावद्विषयो मन्त्राणां योग्य
इत्युपप्रदर्शनायोभयथा मन्त्रो वर्णितः ।

' इत्यात्मगतिमाचष्टे ' । अमुना प्रकारेण वर्णयमान । एष मन्त्र आत्म-
गतिमाचष्टे प्रख्यापयति । यथा चैयम.त्मगतिवाचिका ऋक् ' तत्र ' १०

विश्वकर्मण आत्म. एतस्मिन्नर्थे ' इतिहासमाचक्षते ' आत्मविद
यागे इतिहासः इतिवृत्तं परकृत्यर्थवादरूपेण । यः कश्चिदाध्या-
त्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्या-

यते दिष्ट्यैदितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते । स पुनरयमिति-
हासः सर्वप्रकारो नित्यमविवक्षितस्वार्थस्तदर्थप्रतिपत्तृगामुपदेशपरत्वात् ।

१ ' विश्वकर्मा हं भौवनः ' । यथोदितमिदं वैदिकं कर्म संबन्धदर्शनेन यः
सर्वं करोति सर्वात्मकत्वात्सर्वस्य वैश्वकर्मणीमवस्थामात्मन्युत्थीय स यज-
मानो विश्वकर्मा भुवनानां भूतानामात्मनि होता भूतेषु चात्मानम् ।
तथाहि विज्ञायते ' हन्ताहं भूतेष्व्वात्मानं जुह्वानि भूतानि चात्मानि ' १
(शत० ब्रा० १३ । ७ । १ । १) इति । तथा च

२० विदुषो दर्शनकृतां सर्वमेधसंपत्सर्वकर्मसु । विज्ञायते ह्यग्निहोत्रम-

विदुषः सर्वकर्मसु धिक्कृत्य ' स यत्सायं जुहोत्यग्निमेव तदनेन
सर्वमेधः सम्यग्ज्ञानेन सर्वेणादित्ये जुहोत्यग्निमेवं सर्वमनु सर्वं
संपद्यते तद्यथानेन सकृत्सर्वं तेनेष्ट्वा लोकं जयेत
तावदु ह प्रातराहुत्या लोकं जयते यस्यैते आहुती

२५ नै बद्धं यावज्जीवमाप्नोति स हि बहूनि च नै बद्धान्येतयोर्देवतयोरन्यतरा-
मनु ' इति । नै बद्धमित्यनन्तमुच्यते । तदेवं यस्मिन् कस्मि-

१ ग. च. ज. संभावो. २ ट. ड. 'भौतिकमेवार्थ आख्यापयते'. ३ ग. च. ज.
दिग्गुदि'. ४ क. ख. घ. अ. ट. ठ. ड. 'कारो हि नि'. ५ ट. ड. 'ह'
नास्ति. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'कृतः. ७ ग. च. ज. नवर्द्धया जीवं
नाप्नोति'. ८ ग. च. ज. 'च निबद्धा'. ९ ग. च. ज. न विबद्ध'.

श्विन्मेधे कर्मणि अग्निहोत्रादौ सर्वः सर्वेण सर्वस्मिन् सर्वस्यै सर्वाथै
हुत्वात्मानं सर्वमेधे भवतीति समासार्थः । स एष सर्वस्य त्रिदुषः सर्वः सर्व-
हुद्यज्ञः सर्वभावाय संपद्यते दर्शनतः । यो हीतरः सर्वमेधो निरूढमंज्ञोऽ-
हीनस्तद्यथा श्रीण्याश्वमेधिकानि पञ्च पौरुषमेधिकानि वाजपेयास्तोर्यामौ चेति

निरूढसंज्ञात्सर्वमे-
धादयं सर्वमेधो भिन्नः

तत्र ' स आत्मानमप्यन्ततो जुह्वांचकार ' इत्ये-
तदात्महोमस्यैविधानान्नोपपद्यते । दर्शनतस्तु
सर्वमुपपद्यते । ' सर्वभूतानि विशेषान् सामान्या-

त्मनि जुहाव पश्यन् सामान्यं चात्मानं विशेषे जुहाव पश्यन् सर्वकर्मसु
स्वयमेव । अयमात्मयाजीत्युच्यते । यमधिकृत्य पृष्ठं ' तदाहुः । अ.म-
याजी श्रेया ३ न् देवयाजी ३ (शत० ब्रा० ११ । २ । २ । १३) इति ' ।

यथा चैतदेवमधिदैवविद आत्मवित् श्रेयान्यमधिकृत्य ' विश्वकर्मा विमना
आद्विहायाः ' इतीयमृगात्मगत्या निरुक्ता तस्यैवार्थस्येतिहासोक्तस्याभिवा-
दिनी अभिमुख्येन वादिनी ' एषा ऋग्भवति ' । यथै । ' य इमा

त्रिदुषः सर्वमेध-
संपदस्यमप्यृचि दृश्यते

विश्वा भुवनानि जुह्वटपिहीता न्यसीदतिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छद्वरौ
आ विवेश ' (ऋ० सं० १० । ८१ । १) ॥

अनेकेषां समानप्रयोगदर्शनाधिकारवतां यो नाम कश्चित् । किमिति । एवं
न्यसीदत् एवं कर्मण्यङ्गभार्थमुपजगाम । कथम् । ऋषित्वेन होता द्रव्यगुण-
कर्मदेवतायाथार्थद्रष्टृत्वेन । विश्वा भुवनानि जुह्वत् सर्वभूतान्यमुना सर्व-

मेधसंपदर्शनप्रक्रमेण जुह्वत् हावयन् । तस्य किमिति । स आशिषा ।
आशीः प्रार्थना कामः प्रयोगदर्शनहेतुः सर्वमिदमहं स्यामिति । येन प्रेथे-
माणः सर्वकर्मसु सर्वमेधं सर्वप्राप्तये प्रायुङ्क्त द्रविणमिच्छमानः प्रयोगज-
नितापूर्वफलं सर्वभावमिच्छन् । तत्किं नीप । नेत्युच्यते । आप । कथमिति ।

१ ग. ज. श्विन्सर्वे क°; च. श्वित्सेधे. २ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'मेवं
भ°. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'इति । स एतदा°. ४ क. ख. घ. च. झ.
ट. ठ. ड. 'मस्य वि°. ५ ग. ज. 'द्यते । भूता°. ६ ग. यथा°य°. ७ क. ख.
च. ज. व. झ. ट. 'जुह्वदिति । अने°; ग. जुह्वदिति । अने°. ८ ग. च. ज.
'भ.व्यमु°. ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. अहावयत्; ग. ज. हावयत्; झ. 'हावयन्'
नास्ति. १० ग. च. ज. 'तिक्रमप.

प्रथमच्छत् । प्रथमोऽप्रजेत्वात् । प्रजापतिभावेन मुख्यस्यै छादयिता यतः
संश्लेषे तथा सन् अवरान् पश्चादुत्पन्नानस्मदादीन् विशेषान् आविवेश
व्याप्तवान् व्याप । यस्यैवं प्रयोगफलयोर्वृत्तिः स नः पिता जनिता
सोऽस्माकं पिता पाता रक्षिता चेत्येवं विजानीमः । अतस्ताद्भाव्यमश्रु-
वीमहीति ।

५

यथा चैतदेवं नान्यथेति तथेयम् ' उत्तरा ऋग्भृते ' बहुतराय
' निर्वचनात् ' ॥ २६ ॥

१०

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमृत घाम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवां सूरिरस्तु (ऋ० सं०
१० । ८१ । ६) ॥ विश्वकर्मन्हविषा कर्षयमानः स्वयं यजस्व
पृथिवीं च दिवं च मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनाः सप्तना इहास्माकं
मघवा सूरिरस्तु प्रज्ञाता तार्क्ष्यस्त्वष्ट्रा व्याख्यातस्तीर्णोऽन्तरिक्षे
क्षियति तूर्णमर्थं शतवश्रोतेषां तस्यैषा भवति ॥ २७ ॥

१५

विश्वकर्मन्हविषा वावृधान इति । प्रयोगावस्थां फलावस्थां च विश्व-
विश्वकर्मदेवता कर्मणः प्रतीत्योच्यते । हे विश्वकर्मन् प्रयोगाव-
स्थित त्वमुच्यसे । अनेन हविषा सर्वमेघदर्शन-
भन्या ऋक् स्थित त्वमुच्यसे । संषदादियुक्तेन त्वं वर्षमानो विश्वकर्मत्वमापद्य-
मानस्तत्फलविपक्षिणमकाले स्वयं यजस्व स्वयं संगच्छस्व व्याग्रहे
पृथिवीं च दिवं च । सर्वव्यापी भव । अपि च । तथैवं तस्मिन् दर्शनकृते
महेश्चिं मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनासः । मोहमुपगच्छन्तु अभितः सवेतस्ते
जना ये त्वदुपासनापराङ्मुखीस्तव सपत्न्याः समानं पतित्वमिच्छन्ति ।

२०

१ म. च. ज. मुख्यच्छाद्. २ क. ख. घ. झ. ट. न. ड. पाता जनयिता २.
३. क. ख. २ (२६) ; ठ. ड. नाय । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थाध्याये षड्विंश-
तिः (ठ. २६) सषडः ; इतरेष्वङ्को नास्ति. ४ छ. त. द. जनासः. ५ क. ख.
छ. त. द. तीर्णो अन्त°. ६ क. ख. ३ (२७) ; त. द. ३. ७ ठ. ड. हविषेति ।
प्रश्ने. ८ म. इति । प्र°. ९ क. ख. घ. झ. ट. तत्रैतस्मिन्. १० म. च. ज.
३३ ' पासाप'. ११ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. ' त्वाः सन्तस्तव

अथ पुनः इह त्वदर्शनोपासनाकर्म्मणि वर्तमानानां भवै मघवा सर्वधने-
शानः । सूरिः मेधावी सर्वत्राप्रतिहतप्रज्ञानः प्रज्ञाता विशेषतोऽस्माकम-
स्त्वित्येतदाशास्महे ।

त्वष्टा विश्वकर्मत्यधिभूतप्रधानाः पुराणविदः । तथापि कलाकौ-
शलादिसर्वज्ञानहेतुको नामप्रतिलम्भ इत्यविप्रतिपिद्धम् । एवं सर्वासु
देवतासु ।

‘ ताक्षर्यः ’ (१७) इति वक्तव्यम् । स पुनरेष ‘ त्वष्टा व्याख्यातः ’ ।

ताक्षर्यः कस्मात् तद्यथा । ‘ तूर्णमश्नुते ’ इत्येवमादि (निरु०
८ । १३) । अथवा ‘ तीर्णे अन्तरिक्षे ’

सर्वतो गते ‘ क्षियति ’ निवसति । अथवा । ‘ तूर्णम् ’ उदकाख्यं
‘ रक्षत्यश्नुते वा ’ । अर्थविकल्पेन तूर्णशब्दात्पूर्वपदं रक्षतेरश्नुतेर्धोत्तरपदम् ।

‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ २७ ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् । अरिष्ट-
नेभिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये ताक्षर्यमिहा हुवेम (ऋ० सं० १० ।
१७८ । १) ॥ तं भृशमन्नवन्तं जूतिर्गतिः प्रीतिर्वा देवजूतं देव-
गंतं देवप्रीतं वा सहस्वन्तं तारयितारं रथानामरिष्टनेभिं पृतनाजि-
तमाशुं स्वस्तये ताक्षर्यमिह ह्वयेमेति कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत्त-
स्यैषापरा भवति ॥ २८ ॥

त्यमू षु वाजिनमिति । अरिष्टनेभेराभन् । विपुवति निष्केवल्ये
ताक्षर्यः शस्यते । ‘ सद्यश्चित् ’ (ऋ० सं० १० ।
१७८ । ३) इति च । यस्ताक्षर्यो वाजी वेज-
नवान् भवदाता वा परेभ्यो बलवान् वा तं देवजूतं देवैर्गतं परत्वेन
ज्ञातं वा परोऽयमस्माकमिति । देवप्रीतं देवैर्वा समानप्रीतम् । सहावानं सहो

१ ग. च. ज. भवा. २ क. ख. ३ (२७); ठ. ड. ऽति । इति निरुक्तभाष्ये
उत्तरषट्के चतुर्थाध्याये (ठ. ४ ध्याये) २७ खण्डः; ग. च. वर्जमित्तरेष्वङ्गा
नास्ति. ३ छ. द. ‘ वक्षत् ’. ४ क. ख. ४ (२८); त. द. ४. ५ ग. ऽमिति ।
अ. ६ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. ‘ वा ’ नास्ति.

बलं तेन तद्वन्तम् । एतदेव मध्यमलिङ्गम् । तरुतारं तारयितारं स्थानां
 राहितृणां भूतानाम् । गतिमतां गमयितारमित्यर्थो बलहेतुकत्वाद्गमनस्य ।
 तमेवमादिगुणयुक्तम् अरिछनेभिं केनचिदप्यप्रतिहतवज्रप्रहरणम् ।
 नेमिरिति वज्रनाम । पृतनानां जेतारम् । आशुं शीघ्रं स्वस्तये आत्मनः
 १५ स्थस्ययनाय सुष्ठु वयमेतस्मिन्कर्मण्याह्वयामहे ।

‘ तस्यैवा परा भवति ’ । सा पुनः किमथम् । बलकृतिरुपप्रदर्शिता ।
 वर्षकर्मोपप्रदर्श्यतेऽनया । सत्यामपि हि बलकृतौ पक्षिराजे गरुमनि
 संदेहोऽसावपि बलवांश्च ताक्ष्यनामा च । वर्षकर्म त्वसमानं तेनास्य । अत-
 श्चोक्तमेतदेव विचारास्पदमपेक्ष्य ‘ कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत् ’ इति ॥ २८ ॥

१०

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततानं ।
 सहस्रसाः शतसा अस्य रहिर्न स्मां वरन्ते युवतिं न शंर्याम्
 (ऋ० सं० १० । १७८ । ३) ॥ सद्योऽपि यः शवसा बलेन
 तनोत्यपः सूर्य इव ज्योतिषा पञ्च मनुष्यजातानि सहस्रसानिनी
 १५ शतसानिन्यस्यं सा गतिर्न स्मैनां वारयन्ति प्रयुवतीभिर्व शरमयी-
 मिषुं मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वैधकर्मणो वा भन्य-
 न्त्यस्मादिषवस्तस्यैषा भवति ॥ २९ ॥

२०

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीरिति । सद्योऽपि यस्ताक्ष्यो बलेन तनोत्यपो
 वर्षभावेन । ‘ सद्यः ’ शब्दो लक्षणार्थोऽद्य ईवः
 २० ताक्ष्य एव परश्वः परुपरारि चेति । ‘ चित् ’ इत्यप्यर्थे ।
 न कदाचिदप्यन्यः सर्वदा ताक्ष्य एवेति । कं प्रत्यपस्तनोति । पञ्च कृष्टीः

१ ग. च. ज. °वक्षत्. २ क. ख. ४ (२८); ठ. इति । इति निरु-
 क्तभाष्ये ३ ध्याये २८ खण्डः; ड. °इति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरवद्वे चतुर्था-
 ध्याये २८ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ३ छ. त. द. ‘वधकर्मणो’
 नास्ति. ४ क. ख. मन्युं त्वस्मा°; छ. त. द. ठ. ड. मन्युंत्वस्मा°. ५ क. ख.
 ५ (२१); त. द. ५. ६ ठ. ड. °श्चिद्य इति. ७ ग. °रिति । स°. ८ ग. ज.
 १८ श्वः वयः श्वः पत्तरा°; च. श्वः वयपरुत्प°. ९ क. ख. च. ठ. ड. किं.

पञ्च मनुष्यजातानि प्रति ब्राह्मणप्रमुखान्निपादपञ्चनान्बर्णान्प्रति । तदनुग्रहपूर्-
 र्भक्त्वात्सर्वलोकानुग्रहस्य कृष्टिप्रहणेन तद्विवक्षा । कथम् । सूर्य इव
 ज्योतिषा । यथा सूर्यो ज्योतिः प्रकाशं लोकानुग्रहाय तनोति तथा ताक्षर्यो
 अपस्तनोति । यथा हविषा विधेमेति नम्यते तत्र कस्मै देवायेति संप्र-
 दानश्रुतेः संप्रदानवैधुर्याय (निरु० १० । २३) एवमिहाप्युपमानो-
 पभेयकारकसंबन्धवैधुर्याय ज्योतिरिति नम्यते । कस्मात्पुनरयमपस्तता-
 नेति । इतो यस्मत् सहस्रसाः शतसा अस्य रांहीः । बहूश्च बहुतरांश्च
 प्रकारान्मेघविदारणाय भजते अस्य ताक्षर्यस्य रांहीः गातः । अपि च ।
 एवमसह्यास्य गतिः न स्मा वरन्ते नैव एताम् अस्य वारयन्ति न प्रति-
 बद्धं शक्नुवन्ति केचनातिवेगवत्त्वात् । कथम् । युवति न शर्याम् । अति-
 बलवता धनुष्मता मुक्तां शरमयीमिषुम् । अन्येन धान्येन वैकाशप्रदेशेन
 प्रतिमिश्रयन्तीमात्मानम् । य एवमादिगुणयुक्तस्ताक्षर्यः स इदं नामास्माकं
 करोत्विति ।

‘ मनुयुः (१८) मन्यतेः ’ क्रोधार्थस्य दीप्यर्थस्य वा ।

मनुयुः कस्मात् उभयमप्युपपद्यते बलवत्त्वान्मध्यमस्य । तस्यैषा
 भवति ॥ २९ ॥

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासोऽधृषिता मरुत्वः ।
 तिग्मेष्व आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः (ऋ०
 सं० १० । ८४ । १) ॥ त्वया मन्यो सरथमारुह रुजन्तो
 हर्षमाणासोऽधृषिता मरुत्वस्तिग्मेष्व आयुधानि संशिशयमाना
 अभिप्रयन्तु नरो अग्निरूपा अग्निकर्माणः संनद्धाः क्वचिचन इति वा
 दधिक्रा व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ ३० ॥

१ च. °चिलेदेपञ्च° । २ ग. ज. चाम्पे. ३ ग. ज. वाका°. ४ ब. झ. ट. ठ.
 ड. प्रमिश्र°. ५ क. ख. ५ (२९); ठ. ड. °वति । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपट्टके
 अधुर्धाध्याये (ठ. ४ ध्याये) २९ खण्डः; ग. अ. वनेमितरेष्वङ्को नास्ति. ६ क.
 ख. ६ (२०); ग. ६. ६.

त्वया मन्व्यो सरथमारुजन्त इति । तपसः पुत्रो मन्व्युर्नाम तस्यार्थम् ।

मन्वुः

इथेनाजिरादिषु निष्केवल्ये विनियोगः (आश्व०
श्रौ० ९ । ८) । हे भगवन् मन्व्यो त्वया सरथ-

मेकमेव त्वया सह रथं समारुह्य रुजन्तः परान् रुजन्तः अभिभवन्तः हर्ष-
माणासः तवाश्रयाद्विकला हृष्यन्तः अधृषिताः अनाधृषिताः परैः अपि
च हे मरुत्वः तिग्मेपव एते अस्मद्योधा आयुधा आयुधानि संशिश्यमानाः
तीक्ष्णानामिष्णामायुधानां च योऽर्थस्तमनुतिष्ठन्तः । अभन्दन्त इषुभि-
श्छिन्दन्त आसुधैः । अमुना प्रकारेणैते नरा अस्मन्मनुष्या योधा अग्नि-
रूपा अग्निकर्माणः अग्रय इवैते सेनामभिभवन्तो यन्त्रिति ।

१०

‘ दधिक्राः ’ (१९) इति वक्तव्यम् । स ‘ व्याख्यातः ’
(निरु० २ । २७) । ‘ दधत्क्रामति ’ इत्येवमादि सः मध्यमे योज्यम् ।
‘ तस्मैषा भवति ॥ ३० ॥

आ दधि॒क्राः शव॑सा पञ्च कृ॒ष्टीः सूर्य॑ इव ज्योति॒पाप॑स्ततान ।

१५

सहस्र॑साः शत॑सा वाज्य॑र्वा पृण॑क्तु मध्वा॒ समि॑मा वचांसि (ऋ०
सं० ४ । ३८ । १०) ॥ आतनोति दधिक्राः शवसा बले-
नापः सूर्य इव ज्योतिषा पञ्च मनुष्यजातानि सहस्रसाः शतसा
वाजी वजनवानर्षेणवान्संपृणक्तु नो मधुनोदकेन वचनानीमा-
नीति मधु धृतमतेर्विपरीतस्य सविता सर्वस्य प्रसविता तस्यैषा

१०

भवति ॥ ३१ ॥

आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीरिति । वामदेवस्यार्थम् । आतनोति

दधिक्राः सर्वतस्तनोति । कोऽसाविति । दधिक्राः । केन ।

शवसा बलेन । किमातनोति । अपः । क्व ।

२५

पञ्च कृष्टीः पञ्च मनुष्यजातानि प्राति । कथम् । सूर्य इव ज्योतिषा ।

१ ठ. ड. मन्व्यो इति. २ ग. इति । त°. ३ ग. ज. भजन्तः हर्षः; च. ठ.

ड. रुजन्तः हर्षः. ४ ग. च. ज. तवाश्रयाः. ५ क. ख. ६ (३०) : ठ. वति ।

इति निरुक्तटीकायामुत्तरपत्रके ४ ध्याये ३० रूण्डः; ड. वति । इति निरुक्त-

भाष्ये ३० खण्डः. ६ क. ख. ७ (३१) ; त द. १. ५ ठ. ड. दधिक्रा इति

३०

८ ग. रिति. वा.;

सहस्रसाः शतसाः बहूनां बहुतराणां चोदकानां संभक्ता वाजी घेजनवान्
 अर्था ईरणवान् उदकेरणक्रियायोगी । य एवमादिगुणयुक्तो दधिक्राः
 सोऽस्माकम् इमानि स्तुतिवाक्यानि स्तुतिलक्षणानि वचांसि संपृणक्तु मध्वा
 मधुना उदकेन । ' मधु धमतेः ' आद्यन्त'विपरीतस्य ' । उदकं
 स्तुत्यनन्तरमेव ददावित्यर्थः । बलकृतिर्वर्षकर्म चोभयमप्यस्ति तस्मान्मध्यमः ।
 ' सविता (२०) व्याख्यातः ' ' इममेवाग्निं सवितारमाह '
 (निरु० ७ । ३१) इत्यत्र । स पुनरिह वर्षकर्मयोगान्मध्यमः । तस्यैषा
 भवति ॥ ३१ ॥

५

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता ग्रामदंहत् ।
 अर्श्यामिवाधुक्षद्भुनिमन्तरिक्षमतूर्ते यदं सविता समुद्रम् (ऋ० स०
 १० । १४९ । १) ॥ सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णयदतारम्भणेऽ-
 न्तरिक्षे सविता ग्रामदंहदध्वमिवाधुक्षद्भुनिमन्तरिक्षे मेनं बद्धमतूर्ते
 बद्धमतूर्ण इति वा स्वरमाण इति वा सविता समुदितारमिति
 कमन्यं मध्यमादेवमदक्ष्यदादित्योऽपि सवितोच्चये तथा च हैर-
 ण्यस्तूपे स्तुतोऽर्चन्दिहण्यस्तूप ऋषिरिदं सूक्तं प्रोवाच तदभिवा-
 दिन्येपगर्भयति ॥ ३२ ॥

१०

१५

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादिति । अर्चनामा हैरण्यस्तूप ऋषिरुतरा-
 याश्च । सविता मध्यमः सर्वत्रलेशानः । किमिति ।
 सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात् । यावदिति चिद्यन्त्यते तत्सर्वं
 चलेनैव । यन्त्रिता चेदं पृथिवी निश्चला । न चान्य इन्द्रा-
 इलवान्यन्त्रायितास्ति । तस्मादिन्द्रः एवेमां संयच्छन् स्थिरामकरोत् ।
 ' रम्णातिः संयमनकर्मा ' (निरु० १० । ९) इत्युक्तम् । अथवा ।
 वैर्वेणोपकारेण पृथिवीलोकनिवासिनो आरयति । तदस्याः संयमनम् । किमे-
 तावदेव । नेत्युच्यते । अस्कम्भने सविता ग्रामदंहत् । एवमप्येतस्मिन्

२०

२५

१ क. ख. ७ (३१) ; ठ. ड. °वाति । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थाध्या० (ठ. ४
 ध्याये) ३१ खण्डः ; च. ज. बर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. २ छ. त. °नालम्भनेऽन्त° ;
 द. °नालम्भनेऽन्त°. ३ छ. त. द. °बक्षदा°. ४ क. ख. ८ (३२) ; त. द.
 ८. ५ ठ. ड. यन्त्रैरिति. ६ ग. °दिमि । अ°. ७ ग. च. ज. आङ्गिरस ऋ°.
 ८ ग. च. ज. °व्ययते. ९ घ. ट. कर्षे° ; ठ. ड. कर्षगोप°.

३१

अस्कम्भने अनारम्भणे अमूर्तेऽन्तारिक्षे यत्र पर्णमपि नालमवस्थानाय तत्रै-
वमप्यतिगुर्वी सौवर्णीं चां सविता एव अदंहन स्थिरामकरोत् आभूतसंल्लवार्त् ।
को हि नाम मध्यमात्सवितुरन्य एतदनिद्वुष्करं कुर्यात् । अपि च ।
अश्वमिवाधुक्षत् । यथाश्वबन्धोऽश्वं धनुयादुपावृत्तमनायासेन रजस्तस्माद-
पनेष्यन्नेवं धुनिं समुद्रम् उदकबन्धितारं मेघम् अधुक्षत् सविता अर्धुनोत्
अकम्पयत् उदकप्रक्षरणाय । क बद्धम् । अतूर्ते एतस्मिन्नन्तारिक्षे अहिं-
सिते । अवरमाणे वा सर्वगतत्वात् । आकाशे गमनायायोग्ये वा ।
वाय्वात्मनैव विष्टभ्य निश्चेष्टं बद्धमिवाधुक्षयः सविता सोऽस्माकमिदं नाम
करोत्विति । समुदिता समुद्रो मेघः ।

१३ 'कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्येत्' मेघमधूनोदिति । कुतः संशयः ।

अथ सविता म- अन्योऽपि यस्मान्मध्यमात्सवितोच्यते । यत आह ।
ध्यम एव 'आदित्योऽपि सवितोच्यते' इति । यथा
चैतदेवं 'तथा' एतास्मिन्नेव 'हैरण्यस्तूपे'
सूक्ते स्तैवः हैरण्यस्तूपमिदं सूक्तमिति । कुत एतत् । अत आह ।

१५ इदं हैरण्यस्तूपे 'अर्चन् हैरण्यस्तूप ऋषिरीदं सूक्तं प्रोवाच'
सूक्ते स्पष्टम् इति । अर्चन्नास्माद्द्विरण्यस्तूपस्तद्रूप तद्वन्नो वा ।
स यथैतत्सूक्तं प्रोवाच 'तदभिवादिन्येषर्भिव-
ति' अस्मिन्नेव सूक्ते ॥ ३२ ॥

२० हैरण्यस्तूपः सवितर्थथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्
(ऋ० सं० १०।१४९।५) ॥ हैरण्यस्तूपो हैरण्यमयः स्तूपो
हैरण्यमयः स्तूपोऽस्येति वा स्तूपः स्थायतेः संघातः सवितर्थथा
त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजेऽन्नेऽस्मिन्नेवं त्वार्चन्नवनाय वन्दमानः
२५ सोमस्येवांशुं प्रतिजागर्भ्यहं त्वष्टा व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ ३३ ॥

१ क. ख. ग. च. ज. ठ. ड. °प्लवान्. २ ग. च. ज. °दुःकरं. ३ च.
°दक तारं. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. अधुनो°; च. अधुनाद°. ५ ग. च.
ज. °वक्षन्मे°. ६ ग. ज. स्तुनः. ७ ग. ज. °न्येष ऋग्भ°; च. °न्येषा ऋग्भ°.
८ क. ख. ८ (३२); ठ. ड. °सूक्ते । इति निरुक्तभाष्ये ४ ध्याये ३२ ६७६ः;
ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ९ क. ख. छ. त. द. वा ने अन्ने अस्मि°. १० क.

१२ ख. ९ (३३); त. द. ९.

हिरण्यस्तूपैः सवितर्यथा त्वेति । हे सवितः यथा अन्यकल्पीनो हिरण्यस्तु-
 सवितान्त्र म- षः त्वामाजुहाव कर्मण्याहृतवान् एवम् अहमप्येतस्मि-
 ध्यमः न्कल्पे हिरण्यस्तूपतामापन्नः अर्चनामा अवनाय वाजे
 अस्मिन् अन्ने संस्कृते हविषि त्वामाहूय वन्दमानः
 स्तुयन् सोमस्येवांशुं सोममिव क्रीत्वा आदृतः प्रति जागर्भिननन्यमनास्त्वा-
 मायागादुवास इति । ' स्वै संघाते ' (धा० १ । ९३५) तस्य
 स्तूप इति ।

' त्वष्टा (२१) व्याख्यातः ' (निक० ८ । १३) । तस्यैषा
 भवति ॥ ३३ ॥

१०

देवस्त्वष्टां सविता विश्वरूपः पुषोष प्रजाः पुरुषा जजान ।
 इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् (ऋ०
 सं० २ । ५५ । १९) ॥ देवस्त्वष्टा सविता सर्वरूपः पोषति प्रजा
 रसानुप्रदानेन बहुधा चेमां जनयतीमानि च सर्वाणि भूतान्युदका-
 न्यस्य महद्चास्मै देवानामसुरत्वमेकं प्रज्ञावत्त्वं वानवत्त्व वापि वासु-
 रिति प्रज्ञानामास्ययनर्थानस्ताश्चास्यामर्था असुरत्वमादिलुप्तं
 वातो वातीति सतस्तस्यैषा भवति ॥ ३४ ॥

१५

देवस्त्वष्टेति । वैश्वामित्रस्य प्रजापतेरार्षम् । वैश्वदेवे विनियोगः ।
 त्वष्टा देवो मध्यमः सविता सर्वस्य भूतग्रामस्य
 प्रसविता उत्पादयितोदकसंप्रदानद्वारेण । किमु-
 त्पादयितैव । नेत्युच्यते । पुषोष प्रजाः पुष्णाति रंसानुत्पाद्य । न केवलं

२०

१ ठ. ड. °स्तूप इति. २ ग. त्वेति° । हे. ३ क. ख. घ. झ. ठ. ड. °न्यका-
 लीनो; ट. °न्यकालीनो° कल्पी. ४ क. ख. ९ (३३); ठ. ड. °चति । इति
 निरुक्तभाष्ये ४ ध्याये ३३ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ५ छ. त. द.
 चेमां. ६ छ. °मेकत्वं प्र°; त. द. °मे कत्वं प्र°. ७ छ. त. °मनर्था. ८ क. ख.
 १० (३४); त. द. १०. ९ ग. °ष्टेति° । वे°. १० क. ख. घ. झ. ङ. ठ.
 ङ. °ति चासावुत्पाद्य.

१८

पुष्णाति । किं तर्हि । पुरुषा जजानेति । बहुधा चैनां जनयति वर्धयति ।
 केन पुनरसौ जनयति पुष्णाति वर्धयति च । यत आह । इमा च विश्वौ
 भुवनान्यस्य । इमानि विश्वानि भुवनानि उदकानि अस्य यतः स्वतायां
 वर्तन्ते तस्माज्जनयति पुष्णाति वर्धयति च । अतश्च सर्वमिदं शक्तः

५ कर्तुं यतो महद्देवानामसुरत्वमेकम् । महदसुरत्वम् । असुरिति प्रज्ञानाम् । तथा
 तद्वत्त्वम् । तथा महत्या प्रज्ञया उदकेन साधनेन सर्वमिदं जनयति पुष्णाति

असुरत्वमित्य-
 स्यार्थाः

वर्धयति च । अप्रज्ञो हि साधनसंपत्तावपि किं
 कुर्यात् । अथवा । 'अन्नत्वम्' । असुः
 प्राप्सतेन तद्वत्त्वम् । एवमपि सति प्राणेनेव

१० शक्यत एतत्सर्वं कर्तुम् । अप्राणो हि किं कुर्यात् । 'अन्नत्वम्' इति
 केचित् । तेषामन्नेहेतुभेदकेन तद्वत्त्वम् । तथापि योज्यम् ।

'असुरिति प्रज्ञानाम्' । तत्कस्मात् । 'अस्यति अनर्थान्' । प्रज्ञैव
 हि प्रज्ञावतोऽस्यति क्षिपत्यनर्थान्नाशयति । 'अरताश्चास्यानर्थाः' । न
 हि तदस्ति वैयक्तैर्यत्सर्वं प्रज्ञावतां प्रज्ञायां नास्ति । एतावांस्तु विशेषोऽभि-

१५ व्यक्तमनभिव्यक्तमिति । अथवा । यदेतदसुरत्वं वसुमतो भावो वसुरत्वम्
 एतत् । रो मत्वर्थे । वज्रारलोपध् । वसुना उदकेन तद्वान्तौ त्वद्य ।

'वातः' (२२) कस्मात् । 'वातीति सतः' । 'वा गतिगन्ध-
 नयोः' (धा० २ । ४०) इत्यस्य । सत
 वातः कस्मात् इति धातुकारकावधारणम् । वायुशब्दो हि

२० त्रयाणां धातूनां विस्तरपेव (निरु० १० । १) । अयं तु वातेरेवेति
 विशेषः । 'तस्यैषा भवति' ३४ ॥

वात आ वास्तु भेषजं संशु भयोभु नो हृदे । प्र ण आयूषि
 तारिपत् (ऋ० सं० १० । १८६ । १) ॥ वात आवातु भेष-

१ ग. च. ज. चैनां; ठ. ड. चैमा. २ ग. च. ज. 'च' नास्ति. ३ घ. ट.
 ठ. ड. विश्वा० न्यस्य. ४ च. विश्वा विश्वानि. ५ घ. ट. ठ. ड. 'देवाना० मेकम्.
 ६ ग. च. ज. 'मनर्थाः. ७ ज. व्यक्तमनभिव्यक्तमिति'. ८ ग. 'प्रज्ञावतां'
 नास्ति. ९ क. ख. १० (३४); ठ. ड. 'वति'. इति नैरुक्तभाष्ये चतुर्थाध्याये
 २९ (४ ध्याये) ३४ खण्डः; ग. च. बर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

ज्यानि शंभु मयोभु च नो हृदयाय प्रवर्धयै च न आयुरभिर्व्या-
ख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ ३५ ॥

वात आवातु भेषजमिति । उल्लस्य वातायनस्यार्पम् । वातः अस्मा-
नाभिमुख्येन भेषजं यद्यत्पथमस्माकं तत्तद्गृही- ५
वातः त्वा आवातु । तच्चास्माकं शंभु अस्तु । शमिति
सुखनाम । तद्भावकमस्तु तदात्वे । आयतौ च परिणामे मयोभु अस्तु ।
मय इति सुखनाम । हृदयाय तु उमस्तु । स्तूयमानः प्रत्यक्षीभूत इव मनसि ।
यतः प्रत्यक्षमुर्चते । प्र ण आयुंषि तारिपत् । हे भगवन् वायो प्रवर्धय १०
त्वमस्माकमायुंषि सपुत्रपौत्रादिवर्गाणां भेषज्यं च त्वमस्माकं नित्यमार्धहेत्ये-
वदाशास्महे ।

‘ अग्निः (२३) व्याख्यातः (निरु० ७ । १४) । ‘ तस्यैषा
भवति ’ ॥ ३५ ॥

प्रति त्वं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरभ्र आ
गहि (ऋ० सं० १ । १९ । १) ॥ तं प्रति चारुमध्वरं सोम-
पानाय प्रहूयसे सोऽग्ने मरुद्भिः सहागच्छेति कमन्यं मध्यमादेव-
मवक्ष्यं च स्वैपापरा भवति ॥ ३६ ॥

प्रति त्वम् । भेषातिथिः ऋद्धये । त्वं तम् अङ्गवैकत्यरहितम् अध्वरं
अग्निः प्रति हे भगवन्मध्ये त्वमस्माभिः गोपीथाय सोम-
पानाय प्रहूयसे आहूयसे । स त्वमेतज्ज्ञात्वा
मरुद्भिः सह आगहि आगच्छैतस्मिन्नास्मत्कर्मणि सोमं पातुमित्येतदाशास्महे ।

१ क. ख. छ. थ. घ. ठ. ड. प्रवर्धयतु. २ क. ख. ११ (३५); त. द. २५
११. ३ ग. 'मिति' । ड. ४ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. 'तदात्वे च आयतौ
परि'. ५ ग. ज. 'हृदयसुस्तय'; च. हृदयसुल'. ६ ग. च. ज. 'च्यसे. ७ ग. च.
ज. 'भावादीत्ये'. ८ क. ख. ११ (३५); ठ. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये उत्तरखण्डे
चतुर्थाध्याये ३१ खण्डः; ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये ३५ खण्डः; ग. च. वर्ज-
मितरेष्वङ्गो नास्ति. ९ छ. त. द. 'वक्षत्'. १० क. ख. १२ (३६); त. द.
१२. ११ ग. 'त्यं'. भे'; ठ. ड. त्यमिति. १२ ग. च. ज. तमध्वरं प्र'. १३ ग.
च. ज. 'प्रहूयसे' नास्ति. १४ ग. च. ज. 'स त्वं' नास्ति.

गोपीधाय मरुद्भिः सहेति मध्यमं लिङ्गम् । 'तस्यैषापरा भवति ? ।
सा पुनः किमर्थम् । गोपीधायेल्यव्यक्तं सोमपानम् । व्यक्तसोमपानलिङ्गोत्तरा ।
तद्यथा ॥ ३६ ॥

५ अ॒भि त्वां पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑ । म॒रुद्भि॑र॒ग्र आ
ग॒हि (ऋ० सं० १ । १९ । ९) ॥ अ॒भिसृ॑जामि त्वा पू॒र्व-
पी॑तये पू॒र्वपा॑नाय सो॒म्यं मधु॑ सो॒ममयं॑ सोऽग्ने म॒रुद्भिः सहा-
ग॒च्छेति॑ ॥ ३७ ॥

दशमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

१०

अभि त्वा पूर्वपीतय इति । हे भगवन्नग्ने पूर्वकाले प्रवृत्ताय पानाय
त्वाम् अभिसृजामि वदे । किमिति । इदं सोम्यं
मधु सोममयं तन्मधु । स त्वमागच्छेत्स्मिन्क-
र्भयेत्त्पातुमिल्येतदाशास्महे ॥ ३७ ॥

१५

पञ्चदशस्य तृतीयः पादः ।

चतुर्थः पादः ।

वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणस्तस्यैषा भवति ॥ ३८ ॥

२०

१ ग. च. ज. मध्यमलिङ्ग. २ क. ख. १२ (३६); छ. °तद्यथा । इति नि-
रुक्तभाष्ये चतुः ३६ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ३ क. ख. १३
(३७); त. द. १३. ४ छ. थ. घ. 'दश ०० पादः' नास्ति; त. दशमे तृती०;
छ. द. तृतीयः. ५ ग. इति° । हे°. ६ ग. च. ज. °जग्ने त्वामभिसृ°. ७ ग. च.
ज. °वदे इदं°. ८ ग. ज. स त्वमस्मादागं; च. तत्त्वमस्मदागं°. ९ ग. च. ज.
°र्मणि तत्पा°. १० क. ख. १३ (३७); ठ. ड. °रमहे इति पञ्चदशस्य (ठ.
पञ्चमाध्यायस्य) तृतीयः पादः । इति निरुक्तभाष्ये ३७ खण्डः; ग. च. वर्ज-

२८ मितरेष्वङ्को नास्ति. ११ क. ख. १ (३८); त. द. १.

‘ वेनः ’ (२४) इति वक्तव्यम् । स एष ‘ वेनतेः कान्तिकर्मणः ’ ।
 वेनः कस्मात् सर्वलोककान्तो हि मध्यमः सर्वस्योपकारित्वात् ।
 ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ ३८ ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपां ५
 संगमं सूर्यस्य शिशुं न विप्रामतिर्भी रिहन्ति (ऋ० सं० १० । १२३ ।
 १) ॥ अर्थं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भाः प्राष्टवर्णगर्भा आप इति वा
 ज्योतिर्जरायुर्ज्योतिरस्य जरार्थुस्थानीयं भवति जरार्थुर्जरया
 गर्भस्य जरया यूयत इति वेममपां च संगमने सूर्यस्य च शिशु-
 मिव विप्रा मतिर्भी रिहन्ति लिहन्ति स्तुवन्ति वर्धयन्ति पूजय- १०
 न्तीति वा शिशुः शंसनीयो भवति शिशीतेर्वा स्याद्दानकर्मणश्चि-
 रलब्धो गर्भो भवत्यसुनीतिरसून्नयति तस्यैषा भवति ॥ ३९ ॥

अयं वेन इति । भार्गवस्य वेनस्यार्पम् । शुक्रोऽनया गृह्यते (मैत्रा०
 सं० १ । ३ । १०) । अन्तर्भावितप्रज्ञानस्तास्मिन्मनसि प्रत्यक्षीभूतमभि- १५
 नयेन दर्शयन्निव कस्मैचिद्भवाति अयं वेन इति ।
 वेनः किं करोति । चोदयति पृश्निगर्भाः । पृश्निरादित्यः
 प्राष्टवर्णः । प्रकृष्टो ह्यनेन वर्णः आँष्टः आप्तः । यास्तस्य गर्भत्वमुर्पांगता
 रश्म्यन्तर्गताः परिपक्वा आपो मासाष्टकेन संभृतास्ता वेनश्चोदयति प्राष्टुषि
 वर्षभावेन प्रेरयति । किलक्षणः । ज्योतिर्जरायुः । ज्योतिरस्य विद्युदाख्यं २०
 कर्मात्मलक्षणं जरार्थुस्थानीयं प्रज्ञावतस्तदधिष्ठातुर्भ्रमस्य गर्भस्येव परि-
 वेष्टनं भवति । कावस्थितश्चोदयति । रजसो विमाने । रज उदकं तद्यत्र

१ क. ख. १ (३८) ; ठ. °वति । इति निरुक्तभाष्ये उत्तरपट्टके चतुर्थाध्याये
 १८ खण्डः; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ३८ खण्डः; ग. च. वर्षमितरेष्वङ्को
 नास्ति. २ त. थ. घ. °रायुः स्था°. ३ ङ. थ. द. °रायुजर°. ४ छ. त. द. रिहन्ति
 रिहन्ति लि°. ५ क. ख. छ. त. द. गर्भ इत्यमु°. ६ व. ख. २ (३९) ;
 त. द. २. ७ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. आप्तः ; ट. प्राप्तः° आ. ८ क. ख. घ.
 झ. ट. ठ. ह. °मुपग°. ९ च. °रायुः स्था°.

निर्मायते तत्रावस्थितः । अन्तरिक्षलोक इत्यर्थः । योऽयमेवमादिगुण-
युक्तो वेनस्तमिमं वेनम् अपां च संगमे सूर्यस्य च संगमे समागमन-
स्थाने यत्र सूर्यस्य रश्मिभिरापः संगच्छन्ते तत्र वर्तमानं मध्यस्थाने
५ रिहन्ति । यथा^१ शिशुर्नित्यं स्तूयत एवं स्तूयते । यदेतत् ' रिहन्ति ' इति एतत् ' लिहन्ति ' लिहेर्घातोः । वर्धयन्ति पूजयन्ति वेत्यर्थवचनम् ।

' जरायुः ' कस्मात् । तद्वि ' जरया गर्भस्य ' भवति । यथा
जरायुः कस्मात् यथा गर्भो भवति तथा तथा तदुत्पद्यते ।
' जरया यूयत इति वा ' । यच्चैतज्जरेति प्रसिद्धं

१० प्रसूताया गोः स्त्रिया वा पञ्चात्पत्सि स्या जरेत्युच्यते तथा यद्युच्यते मिश्रयते
शिशुः कस्मात् तज्जरात्पिशुच्यते । ' शिशुः ' कस्मात् । स हि
' संसनीयो भवति ' । प्रयोजने वाप्रयोजने

वैर्चन्ति यत्किञ्चनप्रलापेषु । ' शिधीतिर्वा स्यात् ' धातोर्दानार्थस्य । दीयते
हि स पुरुषेण स्त्रियै धारणाय । भवति च वादः स्त्रीणामभिनवगृहीत-

१५ गर्भाणाम् ' अचिरलब्धो मे गर्भः ' इति ।

' अमुनीतिः ' (२७) इत्येतद्वेवतापदम् । स पुनरयमिन्द्रो मय्यमः प्राणः ।

अमुनीतिः कस्मात् स पुनर्यदेतस्याच्छरीरादुत्क्रामत्यथेतरान्प्राणान्
' असूद् ' अन्यत्र ' नयति ' । विज्ञायते हि

' प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा जन्तून्क्रामन्ति ' (बृहदा० उप० ४ ।

१० ४ । २) इति । ' तस्यैषा भवति ' ॥ ३९ ॥

अमुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे मु प्र तिंरा न आयुः ।

रारन्धि नः सूर्यस्य संदर्शित्वं घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व (ऋ० सं०

१० । ५९ । ५) ॥ अमुनीते मनोऽस्मासु धारय चिरं जीवनाय

२५ प्रवर्धय च न आयूरन्धय च नः सूर्यस्य संदर्शनाय रन्धयतिर्वज्ञग-

१ क. ख. ग. ज. निर्माय°, ठ. ड. °तद्यन्तर्निर्माय°. २ ठ. ड. मध्यम-
स्थाने. ३ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. यथा हि शि°. ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड.
°त्यर्थः । ज°. ५ ग. च. ज. ' वा ' नास्ति. ६ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड.
°चिरालब्धो. ७ च. प्राणान् ननेनास्मच्छरीर एव धारय मा त्वमुत्क्रामीः । त्वदन्धव
नयति°. ८ क. ख. २ (३९); ठ. ड. ' वति । इति निरुक्तभाष्ये ३९ खण्डः ;

११ ग. च. वर्धयितरेष्वङ्को नास्ति. ९ छ. त. द. मनो अस्मा°.

मनेऽपि दृश्यते । मा रधाम द्विपते सोम राजन्नित्यपि निगमो
भवति । घृतेन त्वमात्मानं तन्वं वर्धयस्वर्तो व्याख्यातस्तस्यै-
षा भवति ॥ १० ॥

असुनीते मनो अस्मासु धारयेति । श्रुतबन्धोरार्षम् । हे असुनीते
असुनीतिः प्राण मनः अस्मासु धारय । मनःप्रभृतीनेतान्
प्राणानामनोऽवस्थानेनास्मच्छरीर एव धारय । मा
स्वमुक्तमोस्वदनुक्रमेणावस्थास्यन्त इति । जीवातवे चिरम् अस्माकं
जीवनाय मनो धारय । सु प्रतिरा न आयुः । अमुना प्रकारेण सुष्टु
प्रतिर प्रकर्षेण वर्धयास्माकमायुः । किञ्च । रारन्वि नः संसाधय । अस्माकं
तथानुगृहाण यथा सूर्यस्य सैदृशि संदर्शनापालं स्यात् । दिव्यं नः चक्षुरु-
त्यादय येन सस्यवसूयं पश्येम । सूर्यं चैतदन्नप्राचुर्ये सति भवति । यस्तो
ब्रूमः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व । घृतंन उदकेन त्वमात्मानं यथाकालं
वर्धयस्व । स्वयुदकं ददति सर्वमिदं भवति । अहविर्भाक्त्वादमुनीतेषुत्रमि-
त्युदकनामेत्यत्रोपपद्यते ।

‘ रथ्यतिर्वशगमनेऽपि दृश्यते ’ । तद्यथा । ‘ मा रधाम द्विपते ’ इत्यत्र ।
‘ देवीः धर्षुर्वोरु नः कृणोत । वशं देवस इह
रथ्यतिर्वशगमनेऽ-
स्यासृचि धीरयध्वम् । मा हास्माहि प्रजया मा तनृभिर्मा
रधाम द्विपते सोम राजन् ’ (ऋ० सं०

१० । १२८ । ५) इति ॥ वैश्वदेवी । विहव्यस्यार्षम् । वैहवं सूक्तम् ।
तत्रैषा दर्शपूर्णमासादिषु हविषानामिदर्शने विनियुज्यते । देवीः षट् द्यौश्च
पृथिवी च अहश्च रात्रिश्च आपश्चैतद्यथेति । ता उच्यध्वे । हे देव्यः
उर्यः षट् सर्वमिदम् ऊर्णुवत्यो यू मुयध्वे । उरु बहु यद्यद्व्यं युष्मामि-
वहु क्रियमाणमिच्छामस्तत्तत् उरुं बहु कुरुध्वे । हे विश्वे देवा यूयमपि इह
एतमिन् कर्मण्यस्माकमङ्गभास्वमुपगताः सन्तो धीरयध्वं धीरान् पुत्रान्

१ क. ख. ३ (४०) ; त. व. ३. २ ठ. ड. नीते इति. ३ ग. धेति ।
श्रु०. ४ ग. च. ज. भुक्मी. ५ ग. च. ज. ‘स्य दृश. ६ ग. च. ज. व.
३. श्लुवी. ७ ग. णति. ४. देव्यः; च. ज. घ. ह. ट. णोतेति । वैश्व०.
८ ग. च. ज. बहु उरु.

इच्छत दातुम् । अपि च । जातपुत्राः सन्तः मा हास्महि प्रजया ।
मास्मान् प्रजा कदाचिदपि ह सीत् । कष्टं हि पुत्रमरणम् । मा त्नुभिर्वियं
स्वाभिर्हास्महि । मास्माकमायुपश्छेदो भृद्युष्मदनुव्यानात् । अपि च ।
मा रथाम द्विषते सोम राजन् । हे भगवन् सोम राजन् विशेपतः त्वमु-
५ थ्यसे । सर्वस्या अस्या आशिपस्त्वदनुव्यानान्मा रथाम । मा वशं गच्छेम
द्विषते । द्विषन्त एवास्माकमर्थसंप्रदानादिना वश्यतामुपयान्तु यतोऽनिष्टं
हि द्विषतो विधेयत्वमिति । सामर्थ्यादिह ' र यतिर्वशगमने ' ।

' ऋतः ' (१६) इत्येतत्पदम् । तदेतत् ' व्याख्यातं ' निर्वचनतः
ऋतमिन्दुकनाम प्रयुक्तं भवति ' (नि० २१ २५) इति । इह
१० विधेयो मध्यमः । ' तस्यैषा भवति ' ॥ ४० ॥

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वोऽऋतस्य धीतिर्विजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः
(ऋ० सं० ४ । २३ । ८) ॥ ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति
१५ पूर्वोऽऋतस्य प्रज्ञा धैर्जनीयानि हन्ति ऋतस्य श्लोको बधिर-
स्यापि कर्णावातृणत्ति बधिरो वद्धश्रोत्रः कर्णा बोधयन्दीप्यमान-
श्रौयोरयनस्य मनुष्यस्य ज्योतिषो बोद्धस्य वेन्दुरिन्धेरुनत्तेर्वा
तस्यैषा भवति ॥ ४१ ॥

२० ऋतस्य हि शुरुध इति । धामदेवस्यायम् । संपातसृक्ते निष्केवल्ये
पृष्ठ्याभिप्लवयेः शस्यंत (अ.श्र० श्रौः ० । ७) । ऋतस्य मध्यमस्य ।
ऋतः किमिति । शुरुधः आपः सन्ति विद्यन्ते । किल-
क्षणाः । पूर्वाः अनेककालसंभृताः । यतश्चा-
सौ इद्रेऽऽद्वैतस्तस्य ऋतस्य उदकसंप्रदानद्वारेणानाकालं नाशयन्ती धीतिः

१ ग. च. ज. ठ. ड. प्रयुक्तं २ क. ख. ३ (४८) ; ठ. ड °वति । इति
निरुक्तभाष्ये ४ = रुण्डः ; ग च.वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. ३ त. ' प्रज्ञां वर्ध (जं)
नी° ; द. ' प्रज्ञावर्धनी° . ४ क. ख. छ. त. द. हन्त्यृन° . ५ छ. त द. ' श्राय-
२८ नस्य. ६ क. ख. ५ (४१) ; त द. ५. ' ७ ग. इति । ६° .

प्रज्ञा सर्वलोकस्य वृजिनानि वर्जनीयानि अयशांसि हन्ति नाशयति ।
 अनाकाले हि क्षुत्परिगृहीतानामयगस्करेषु जिह्वादिषु प्रवृत्तिर्भवति ।
 ददतश्चोदकं सर्वलोकवृजिनापवर्थाय तस्य ऋतस्य एवमतिमहान् श्लोकः
 शब्दः स्तनयित्नुलक्षणो भवति यो बधिरस्यापि बद्धश्रोत्रस्य विधात्रांपि
 निसर्गतोऽपिहितश्रोत्रस्य आयोः अयनस्य मनुष्यस्य बोधयत्यस्मृत इति ।
 कणौ अतिदुर्भेदोऽतृणन्ति आभिर्नन्ति शुचमानो दीप्यमानो उग्रोति-
 पश्चोदकस्य च श्लोकः । एवं सतत्त्वो ह्यसावृत इति ।

‘ इन्दुः ’ (२७) इत्येतत्पदम् । स कस्मात् । ‘ इधेः ’ दीप्यर्थस्य ।

इन्दुः कस्मात् ‘ उनत्तेर्वा ’ ऋदनार्थस्य । उभयमपीन्दाबु-
 पपद्यते चन्द्रमसि । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ ४१ ॥

प्र तद्वाचेयं भव्यायेन्द्रे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति
 रक्षोहा मन्म रेजति । स्वयं सो अस्मदानिदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
 अव स्रवेदप्रशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् (ऋ० सं० २ । १२०.
 ६) ॥ प्रग्रवीभि तद्भव्यायेन्द्रे हवनार्ह इव य इषवानन्नवान्का-
 मवान्वा मननानि च नो रेजयति रक्षोहा च बलेन रेजयति
 स्वयं सोऽस्मद्भिनिन्दितारम् । वधैरजेत दुर्मतिम् । अवस्रवेद-
 प्रशंसस्ततश्चावतरं क्षुद्रमिवावस्रवेदभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते
 यथालो दर्शनीयाहो दर्शनीयेति तत्परुच्छेषस्य शीलं परुच्छेष
 ऋषिः पर्ववच्छेषः परुषि परुषि शेषोऽस्येति वेतीमानि सप्तवि-
 शतिर्देवतानामधेयान्यनुक्रान्तानि सूक्तभाञ्जि हविर्भाञ्जि तेषामे-
 तान्यहविर्भाञ्जि वेनोऽसुनीतिर्ऋत इन्दुः प्रजापतिः प्रजानां
 पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति ॥ ४२ ॥

१ क. ख. च. °पवाता°. २ क. ख. ४ (४१) ; ङ. °वति । इति नैरुक्त-
 भाष्ये ४१ खण्डः ; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ४१ खण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को
 नास्ति. ३ क. ख. छ. त द. सो अस्म. ४ छ. त. द. ‘ पर्ववच्छेषः ’
 नास्ति. ५ क. ग. ५ (४२) ; त. द. ५.

प्र तद्वोचेयमिति । अतिच्छन्दाः । पारुच्छेपी । पष्टेऽहनि मस्त्वतीये
शस्यते (आश्व० औ० ८ । १) । यद्यदिष्टं
इन्दुः तस्मैन्दोस्तत्तदहं प्रब्रवीमि अस्मै इन्द्रवे प्रीत्यर्थम् ।

- किंलक्षणोः यः इन्दुः । भव्यो भवनाहं आत्मकान् । अभिप्रेतानां पात्रभूत
इत्यर्थः । भव्यो भावनाहं इव । यो हविषा भावनमर्हति न च भाव्यतेऽहवि-
र्भावत्वात् । हव्यो न हवनाह इव यो यज्ञे न च पुनराह्वयेनेऽहविर्भावत्वाद्देव ।
इष्टवान् निलाम् अन्नवान् । कामवान् वा । कामिनां स्तोत्रिणां नित्यमभिमत-
कृत्संप्रदानोन्मुखः । तत्संप्रदानोन्मुखतया च नित्यमस्माकं मन्म रजति मन-
नानि प्रज्ञानानि रजयति आकम्पयति । आकम्पितहृदयान् उपकारतया
नित्यमस्मान् करोति कथं नामैतं नित्यं स्तुयामेति । अपि च । रञ्जोहा
रक्षसि बलेन घ्नन् सुतरामस्माकं मन्म रजति । निच । स्वयं सो अस्म-
दाभिदः । स्वयम्प्रदस्वान् भूत्वा स इन्दुः अस्मदानिदः अस्मदभिनिन्दितारं
वज्रप्रहारैरतिदुःसहैः अजेत जयेत् क्षिपेद्वा दुर्भति पापमति योऽस्मान्
प्रति । तेन वातिबलकृतेन्दुना हन्यमानोऽस्मद् अघशंसः अस्माकं यः
पापानां शंसिता कथयिता स्वक्यानामपि स्फूर्तिकर्ता जन्मदे
असौ अवस्त्रवेत् । अधोगतिः स्यात् । अवतरमव क्षुद्रमिव स्ववेत् । यावच्च
प्रथमं स्तुतः । अधोगतस्ततोऽवतरं ततोऽधोवर्तरमिति तावत्स्त्रवेत्क्षुद्रमिव
द्रव्यं किंचिद्यावदाभूत्ततो नष्टमित्येतदास्माकं । कृत्कृतेर्मध्यम इति ।

- इहाभ्यासबाहुल्यं दृष्ट्वा ' रजति रजति स्ववेत् स्ववेत् ' इति प्रतिसमा-
धत्ते ' अभ्यासे भूयान्मर्थं मन्यन्ते ' इति । शब्दाभ्यासे यत्रान्यो
अभ्यासे भूयान्मर्थः विशेषेण नास्ति तत्रैवं विशेषमाचार्या मन्त्रार्थस्म-
तस्त्रविदो मन्यन्ते ' यदुत्तार्थभूयस्त्वम् ' इति ।
नै ह्यकस्मात् एव शब्दः पुनरभ्यस्यते । स्येकेऽपि चैतद् दृष्टं शब्दाभ्यासेऽ-

- १ ग. 'मिति' अ०. २ ग. 'क्षणाय इन्दुः'. ३ ग. च. ज. भव्याय भाष-
नार्हं. ४ क. ख. घ. झ. ट. 'राह्वयं'. ५ ग. च. ज. स्तोत्रिणां. ६ ग. ख.
ज. 'फलकामसंप' ; ट. 'कृत्' काम. ७ ग. च. ज. ठ. ड. ध्रुतः. ८ क.
ख. झ. ट. ठ. ड. 'प्यक्तर'. ९ क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. तत्रैवं. १० ग.
च. ज. इति । स्ववे (ग. ज. सवे; च. वे) इति प्रथमं स्तुतस्ततोऽवरं (च.
'वरतरं) ततोऽधोवतरमिति तावत्स्त्रवेत्क्षुद्रमिव द्रव्यं किंचिद्यावदाभूत्ततो नष्टमि-
त्येवम् (ग. ज. 'मिति पत्रं) । ३.

र्धभूयस्त्वमिति ' यथाहो दर्शनीयाहो दर्शनीयेति ' । गुणातिशये हि
स्त्रियाः शब्दाभ्यासः । तस्मान्मन्त्रेष्वपि तद्वदेवेति न्य.व्यम् । ' तर्त् ' १

अभ्यासः परुच्छे-
पस्य शीलम् च पुनरेतत् ' परुच्छेपस्य ' मन्त्रदशः
' शीलम् ' । स हि नित्यमभ्यस्तैः शब्दैः
स्तौति । मन्त्रदशोऽपि स्वभाव उपेक्ष्य इत्युप- ५

दर्शनायेदमुक्तम् । अथ पुनः ' परुच्छेः ' कस्मात् । ' परुच्छेप ऋषिः ' ।

परुच्छेपः कस्मात् तस्य हि ' पूर्ववत् ' महान् ' शेषः ' प्रजननम् ।
' परुषि परुषि शेषोऽस्येति वा ' । सर्वाङ्गसन्धिषु
शेषैः कृतो योगसुखाकिल । तस्य शेषोऽस्येति वा ।

' इतीमानि सप्तविंशतिदेवतानामवेयान्यनुक्रान्तानि ' । इतिकरणः प्रका- १०

एषु सप्तविंशतिदे-
वतानामधेयेषु कानि-
चित्सूक्तभाञ्जि हवि-
र्भाञ्जि च रवचनः । एवमेतानि यथासामान्नातानि
ममविंशतिः सप्ताधिका विंशतिः । देवतानामधे-
यानि ' वायुः ' इत्यत आरभ्य यावत् ' इन्दुः '
इति । तेषां पुनः किमर्थमनुकीर्तनम् । विशेष-
विवक्षया । कः पुनरसाविति । तेषां कानिचित् १५

' सूक्तभाञ्जि हविर्भाञ्जि ' च । सूक्तं च हविश्चोभयं भजन्ते । कानिचि-
त्सूक्तमेव न हविः । ' तेषामेतान्यहविर्भाञ्जि ' । तद्यथा । ' वेनोऽसुनी-

कानिचित्सूक्त-
भाञ्जि एव तिर्कृत इन्दुः ' इति । एभ्यो यान्यन्यानि
त्रयोविंशतिस्तान्युभयं भजन्ते सूक्तं हविश्च ।
देवतास्वभावोपप्रदर्शनार्थमिदमुक्तम् । घृतेन २०

उदकेन त्वमत्मानं वर्धयस्वेत्येवमाद्यभिधानार्थं विशेषप्रविभागप्रज्ञेतयेऽ-
हविर्भाक्तुं दुदकमत्र घृतमित्येवमादि तद्गतेषु मन्त्रेषु विशेष उपेक्ष्य इति ।

प्रजापतिः कस्मात् ' प्रजापतिः ' (२८) प्रजानां पाता वा पाल-
यिता वा । ' तस्यैषा भवति ' ॥ ४२ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता र्धभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्

१ ग. च. ज. ' अहो ' नास्ति. २ ग. च. ज. ' हि ' नास्ति. ३ च. यत्.
४ क. ख. घ ङ ट. शेषकृतो योगः सुं; च. ' सन्धिषोः कृतो योगमुखां.
५ ग. ज. ' इत्याय हविं; च. ' प्रजापयहविं'. ६ ग. च. ज. पेशयत इं. ७ क.
ख. ५ (४२); ट. ड. ' वति । इति निरुक्तभाष्ये ४२ खण्डः; ग. च. वर्जमि-
तरेवहो नास्ति.

(ऋ० सं० १०। १२१। १०) ॥ प्रजापते न हि त्वदेतान्यन्यः
सर्वाणि जातानि तानि परिवभूव यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रथीणामित्याशीरहिव्याख्यातस्तस्यैषा
भवति ॥ ४३ ॥

५

प्रजापते न त्वदेतानीति । प्राजापत्यस्य हिरण्यगर्भस्यार्थम् । पितृयज्ञ
उपस्थाने विनियुक्ता (मैत्रा० सं० १। १०। १९) । राजसूये च
विनियोगो होमे (मैत्रा० सं० २। ६। १२) । हे प्रजापते न
त्वदन्यो न काश्चिदपि एतानि सर्वदेवतारूपाणि परिवभूव परिगृह्य
भवति । त्वमेवैतानि सर्वाणि सर्वतः परिगृह्य

१०

प्रजापतिः

सर्वतो भवति । यत एव त्वां वयं सर्वतो विभूतं

पश्यामः सर्वस्थेशानमतो ब्रूमः । यत्कामास्ते येन येन युक्ताः सन्तो वयं
तुभ्यं जुहुमस्तन्नो अस्तु । स कामोऽस्माकं त्वदनुध्यानात्समृध्यताम् । नित्यमेष
च वयं स्याम पतयो रथीणाम् । रथीणां धनानां पतयः । ' इति '

१५

इयमपरा ' आशीः ' द्वितीया । यत्कामा इति प्रथमा । अथवा ' आशीः '
इत्याचार्यो दर्शयति । इयं मन्त्रगतैव यत्रापि न स्यात्तत्राप्यध्याहार्येति
स्तुत्याशिषोर्नित्यसंबन्धादिति ।

२०

' अहिः (२९) व्याख्यातो ' निर्वचनतः ' अहिरयनात् '
(निरु० २। १७) इति । इह त्वभिधेयो मध्यमः । ' तस्यैषा
भवति ' ॥ ४३ ॥

अञ्जामुक्थैरिहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्
(ऋ० सं० ७। ३४। १६) ॥ अप्सुजेमुक्थैरिहिं गृणीषे बुध्ने
नदीनां रजःसूदकेषु सीदन्बुध्नमन्तरिक्षं वेद्धा अस्मिन्धृता औष

२५

१ छ त. द. जानानि परि तानि बभूव. २ क. ख. ६ (४३); त. द. ६.
३ ग. ' नीति । प्रजा°; च. ज. ' नीति । प्रजा°; ठ. ड. ' तान्यन्य इति. ४ ग.
च. ज. भवति. ' ५ ग. च. ज. त्वा. ६ ग. च. ज. ' भूतं वयं प°. ७ ग.
च. ज. ' त्समुद्यतां. ८ क. ख. ६ (४३); ठ. ड. ' वति । इति निरुक्तभाष्ये
चतुर्धाध्याये ४३ खण्डः; ग. च. वर्जितरेष्वङ्के नास्ति. ९ छ. त. द. ' अप्सुजामु°.

३०

१० छ. त. द. ' जः सु षीद'. ११ छ. त. द. बुद्धा. १२ छ. त. द. आपश्च°.

इति वेदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन्भृताः प्राणा इति
योऽहिः स बुध्न्यो बुध्नमन्तरिक्षं तन्निवासात्तस्यैषा भवति ॥४४॥

अञ्जामुक्थैरिति । वासिष्ठस्यार्यम् । दशरात्रस्य चतुर्थेऽहनि
अहिः वैश्वदेवे त्रिनियोगः (आश्व० श्रौ० ८।८) ।
हे स्तोतस्वमेतम् अहिम् अप्पुत्रम् उदकज-
न्मानम् उक्थैर्गृणीषि स्तौषि बुध्ने नदीनां नदनानाम् अपां बन्धने एतस्मि-
न्मन्तरिक्षे वर्तमानं रजःसु सीदन् उदकेषु लब्धव्येषु निमित्तभूतेषु एत-
स्मिन्कर्मण्यङ्गभावमुपगच्छन् ।

‘ बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् भृता आपः इति । इदमपीतरत् ’ १०
बुध्नं कस्मात् शरीरं बुध्नमित्युच्यते । ‘ बद्धा अस्मिन् भृताः
प्राणाः इति । योऽहिः स बुध्न्यः ’ । एतावां-
स्तु विशेषः । ‘ बुध्नमन्तरिक्षं तन्निवासात् ’ अहि-
बुध्न्यः (३०) । ‘ तस्यैषा भवति ॥ ४४ ॥

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिपे धान्मा यज्ञो अस्य स्त्रियदृतायोः
(ऋ० सं० ७ । ३४ । १७) ॥ मा च नोऽहिर्बुध्न्यो रेपणाय
धान्मास्य यज्ञोखा च स्त्रियदृत्कामस्य सुपर्णा व्याख्यातस्त-
स्यैषा भवति ॥ ४५ ॥

मा नोऽहिर्बुध्न्य इति । पूर्वया समानं सर्वमिति । मा अस्मान्
अहिर्बुध्न्यो रिपे धात् रेपणाय हिमनाथ कस्मै-
चित् । किंच । मा यज्ञो अस्य स्त्रियदृतायोः ।
मा यज्ञोऽस्य ऋतायोः अस्य यजमानस्य यज्ञकामस्य मा स्त्रियत् मा
सुखवत् । नित्यमविनाशेन वर्ततामिति ।

१ छ. त. द. बुद्धा. २ क. ख. ७ (४४). त. द. ७. ० ग. 'रिति वास'.
४ ग. च. ज. वासिष्ठस्य पराशरस्यार्य. ५ ग. ज. 'तरद्बुध्नमपीतरत्'. ६ क. ख. ७
(४४); ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये ४४ खण्डः ग. च. वर्जितरेष्वश्रौ
नास्ति. ७ क. ख. ८ (४५); त. द. ८. ८ ग इति । पू. ९ क. ख. घ.
झ. ट ठ. धात् मारे. १० क. ख. व. झ ट 'चित् धात् किं'. ११ क. ख.
ग. च. ज. मूय. १२ ग. च. न. मूय. १३ ग. च. न. मा विस्त (च?) तनु.

‘ सुपर्णो (३१) व्याख्यातः ’ ‘ सुपतनः ’ (निरु० ३ । १२ ॥
४ । ३) इति । इह त्वभिधेयो मध्यमः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ ४५ ॥

- एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
५ तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेहळिं स उ रेहळिं मात-
रम् (ऋ० सं० १० । ११४ । ४) ॥ एकः सुपर्णः स समुद्रमावि-
शति स इमानि सर्वाणि भूतान्यभिविपश्याति तं पाकेन मनसा-
पश्यमन्तित इत्यृपेष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता तं माता
रेहळिं वागेवा माध्यमिका स उ मातरं रेहळिं पुरुरवा बहुधा
१० रोरुयते तस्यैषा भवति ॥ ४६ ॥

- एकः सुपर्ण इति । सध्रेर्भिस्य धेयमार्थम् । एक एवाद्वितीयः । यस्य
सुपर्णः पतने गमने प्रतिमौनन्यद्वितीयं नास्ति । स
सुपर्णः सुपतनो वायुः समुद्रम् अन्तरीक्षं
१५ निलम् आविशति । न कदाचिदप्यनाविष्टस्तत्र । स च पुनः सर्व-
भूतानुप्रवेशी तदात्रिंशद्विश्वं भुवनं सर्वाणि इमानि भूतानि अभिविपश्यति
यथा द्रष्टव्यानि । तमेवं वर्तमानमहं पाकेन मनसा विपक्षप्रज्ञानेन सर्वगत-
मपि सन्तम् अन्तिकम् इव अपश्यम् । ऋषिर्दृष्टदेवतासतरत्रः कस्मै-
चिदाचक्षौषो ब्रवीति । तं माता रेहळिं स उ रेहळिं मातरम् । माता
१० माध्यमिकौ वाक् तम् उपजीवति परम्परश्रयत्वात्तयोर्वृत्तरथ्यात्मवादिति ।
‘ पुरुरवाः ’ (३२) मध्यमः । विज्ञायते हि ‘ प्राण एव हि
पुरुरवाः कस्मात् पुरुरवाः ’ इति । स ‘ बहुधा रोरुयते ’ स्तन-
यति । तेन पुरुरवाः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ ४६ ॥

- १५ १ क. ख. ८ (४५) ; ठ. ड. ‘ वति । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थ्याध्याये ४५
खण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. २ क ख. ठ. ड. रेडि; छ. त. द् रेडि.
३ क. ख. ९ (४६) ; त. द् ९ ४ ग. इति । स०. ५ ग. च. ज. °स्त्रेर्गमिदे-
षस्य वे०. ६ क. ख. घ. झ. ट. प्रतिमायाजम्०. ७ ग. च. ज. °चक्ष्यागो. ८ ग.
च. ज. घ. झ. रेडि. ९ ग. च. ज. ‘ वाक् ’ न स्ति. १० क. ख. ९ (४६) ; ठ.
१० ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये चतुर्थ्याध्याये ४६ खण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.

समस्मिञ्जायमान आसत् या उतेमवर्धयन्नयः ? स्वगूर्ताः ।
 महे यत्त्वां पुरुरवो रणायवर्धयन्दस्युहत्यां देवाः (ऋ० सं०
 १० । १५ । १७) ॥ समासतास्मिञ्जायमाने या गमना-
 दापो देवपत्न्यो वापि चैनमवर्धयन्नयः स्वगूर्ताः स्वयंगामिन्यो
 महते च यत्त्वा पुरुरवो रणाय रमणीयाय संग्रामायावर्धयन्दस्यु-
 हत्याय च देवा देवाः ॥ ४७ ॥

समस्मिञ्जायमान इति । उर्वश्या अर्पम् । एतस्मिन् पुरुरवसि
 आयमाने वर्षकर्मण्यात्मानं प्रतिलभमानं प्रावृद्-
 पुरुरवाः काले । ' कर्मजन्मान ' (निरु० ७ । ५)

इति ह्युक्तम् ॥ समासत ग्रीः । आपः समागम्य ते परिवर्धयन्ति तद्विधेयतामुप-
 गम्य आसते तिष्ठन्ति ॥ उत अपि च यथार्थैवैवस्तुवशाद्वासु नद
 आरोहति तथातथैवेत्य नद्यः नदना आपः स्वगूर्ताः स्वयंगामिन्यो
 भूत्वा सुतस्यै तद्विधेयतामुपगच्छन्त्यस्तदधिकारोद्भवेन ईम् एनम्
 वर्धयन्ति । अतः परं स्तुयमानः प्रशस्तो भूतः । प्रत्यक्षकृत उत्तरोऽर्धर्चः ।
 हे पुरुरवः यत्त्वा महे रणाय यस्मात्त्वां महते रणाय भेद्यं सह रमणी-
 याय संग्रामाय अवर्धयन् वर्धयन्ति माध्वमिका देवाः दस्युहत्याय च मेव-
 चनाय चेति तस्मात्त्वामवश्यं प्राः समागम्यासते वर्धयन्ति च नद्यः । सर्व-
 थापि महानुभावस्थं सर्वमेव त्वमुपपश्यत इति ।

' देवपत्न्यो वा ' इति पृथक्त्वेन दर्शयति । तथापि योज्यते । समाग-
 म्यैतस्मिन्नैडे पुरुरवसि आसत् प्राः सर्वा देवपत्न्यः । स हि स्त्रीणां
 स्वभावो यत्प्रजायमानां स्त्रिये परिवार्यासते । उतेमवर्धयन् । अपि चैनमव-
 र्धयन् । नदनोक्ताः स्तुतिपरास्तस्य । स्वगूर्ताः स्वयंगामिन्यः अपरैरप्रमेय
 ईश्वरः । अपि च । सर्वमेतद्गुणयो पुरुरवस्त्वपि यस्मात्तस्मान्महते रणाय

१ छ. त. द् 'स्वगूर्ताः' नास्ति. २ क. ख. १० (४७); तं. द. १०. ३ ठ.
 ड. 'स्मिञ्जिति. ४ ग. इति । उ०. ५ ग. ज. 'प्राः समासतास्मिन् कृयमाणं य
 आपः'. ६ ग. च. न. 'यथैतम्'. ७ क. ख. व. झ ट. ठ. ड 'च' नास्ति.
 ८ ट. 'मनो' स्त्रिं नं प्रि. ९ क. ख. घ. झ. ट. 'ना प्राः स्तो'. १० म. ज.
 'गमहत्याः; च. 'शहेत्याः; ट. 'रणेषाः' हे.

रमणीयाय संग्रामाय असुरैः सह दस्युहत्याय शत्रुवधाय अवर्धयन् । स्वैर्म-
हिमभित्त्वं नोऽसुरान् जेष्यसीति पुरश्चक्रुर्देवा इति । द्विरभ्यासोऽध्यायप-
रिसमाप्तौ यमोत्तलक्ष्यते समाप्तम् ॥ ४७ ॥

श्रुत्वर्यायां निरुक्तपद्धतौ पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ।

* अर्थातोमध्यस्थानावा^१वायाह्यासस्त्राणास्रोनीचीनवारंतम्
श्विमारुद्राययातेदिद्युज्जर्वा^२वोधाद^३र्यो^४जातोविष्ट^५क्षानश्री^६पिनद्धमश्मा-
र्य^७मवतंक्षेत्रस्य^८पतिः^९क्षेत्रस्य^{१०}पतिना^{११}क्षेत्र^{१२}स्यपतेऽभी^{१३}वहापुनरे^{१४}हियो^{१५}अनि
१० +धमपरो^{१६}५वांस^{१७}सेनवसृष्टामित्रोजनी^{१८}न्हिर^{१९}गर्भे^{२०}यिते^{२१}स्वोविश्व^{२२}क-
र्मासर्व^{२३}स्यविश्व^{२४}कर्मा^{२५}विमना^{२६}विश्व^{२७}कर्भ^{२८}न्हाविपात्य^{२९}मूपुस^{३०}श्चित्त्वया^{३१}म-
न्योआदधि^{३२}क्राः^{३३}सविता^{३४}हिर^{३५}स्तूपोदेव^{३६}स्त्वष्टावा^{३७}त^{३८}आवातु^{३९}र्मतित्यम-
३० भित्त्वावेनो^{३८}धेनतेर^{३९}थवेनो^{४०}ऽसुनीत^{४१}क्रतु^{४२}स्यहिप्रतद्वो^{४३}चेयं^{४४}प्रजापतेऽब्ज^{४५}भु-
वथै^{४६}भोनोहिरेकः^{४७}सुर्षर्षः^{४८}सभस्मिन्त्सप्तचत्वारिंशत् = ॥

१५

इति निरुक्त उत्तरपट्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

- १ क. ख. व. झ. ट. 'स्मालक्ष्य'; ठ. ड. 'माप्ता । अस्मालक्ष्य'.
- २ ठ. ड. 'समाप्त' नास्ति. ३ क. ख. १० (४७); ठ. ड. 'लक्ष्यते । इति निरुक्तटीकायामुत्तरपट्टके चतुर्थाध्याये ४७ खण्डः । समाप्तश्चतुर्थोऽध्यायः. ४ क. ख. व. झ. ट. ठ. ड. इति श्री (ठ. ड. 'श्री' नास्ति) जम्बूमार्गाभ्रमवा (ठ. ड. निवा) सिन आचार्यभगवद्दुर्गाकृतावृत्तर्यायां निरुक्तवृत्तौ (ठ. ड. निरुक्तटीकायां निवण्टाध्यायपञ्चकेन सह निरुक्त) पञ्च. + छ. त द. अथातो इत्यादिका खण्डशृङ्खला नास्ति. + क. ख. व. 'निधोप'. × ट. ड. सर्वस्य कर्ता विश्व'. = ठ. ड. 'इत् । इति बालबोधार्थवेदिसं (ड. सं) प्रदायानुसारी खण्डानुक्राणी समाप्ता; 'इनि० ध्यायः' नास्ति ५ छ. इति निरुक्ते दशमोऽध्यायः; त. दशमोऽध्यायः समाप्तः
- १६ द. इति दशमोऽध्यायः; ध. इति निरुक्ते ३. ६ क. ख. ड. 'ध्यायः समाप्तः.

एकादशाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।



ॐ । श्येनो व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ १ ॥

५

श्येनो (निघ० ५ । ५ । १) व्याख्यातः 'श्येनः शंसनीयं गच्छति'
(निरु० ४ । २४) इति । इह त्वभिधेयो मध्यमः । तस्यैषा भवति ॥ १ ॥

आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् । अत्रा
पुरन्धिरजहादरातीमदे सोमस्य मूरा अमूरः (ऋ० सं० ४ । २६ । १०
७) ॥ आदाय श्येनोऽहरत्सोमं सहस्रं सवानयुतं च सह सहस्रं सह-
स्रसाव्यमभिप्रेत्य तत्रायुतं सोमभक्षास्तत्संबन्धेनायुतं दक्षिणा
इति वा तत्र पुरन्धिरजहादभिप्रायदानानिति वा । मदे सोमस्य मूरा
अमूर इत्येन्द्रे च सूक्ते सोमपानेन च स्तुतस्तस्मादिन्द्रं मन्यन्त
ओषधिः सोमः सुनोतेर्धदेनमभिपुण्यन्ति बहुलमस्य नैघण्टुकं १५
वृत्तमाश्रय्यभिव प्राधान्येन तस्य पावमानीषु निदर्शनायोदाहरि-
ष्यामः ॥ २ ॥

आदाय श्येन इति । वामदेवस्यार्पम् । श्येनाजिरादिषु मरुत्वतीये शस्यते
(आश्व० श्रौ० ९ । ७) । ऋत्विग्भिर्विधानतः प्रैत्तं श्येनः इन्द्रः सोमम् २०
श्येनः आदाय अभरत् अपिबत् । क । सहस्रं सवान्
सहस्रं सुत्यानां यत्र कुर्वन्ति अयुतं च दक्षिणाः
प्राप्नुवन्ति न तु दीयन्ते सत्रत्वात् । पृष्ठयशमनाभिर्प्रायं वा दक्षिणादानं

१ ङ. ड. हरिः ओम् । श्ये०; थ. 'ओ ३ म् । श्ये०; छ. तुं । श्ये०; घ. हरिः ॥
अम् ॥ श्ये०; त. द. 'ऋ' नास्ति. २ ग. ज. तुं । श्ये०; च. पुस्तके श्येन
इत्यादि सोमस्य तृप्तावित्पन्तं नास्ति. ३ ठ. ड. इति निरुक्तेतरषट्कभाष्ये पञ्च-
माध्यये प्रथमः खगडः; क. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ४ छ. त. द.
'नानीति. ५ क. ख. छ. त. द. 'रः । ऐन्द्रे. ६ ग. इति । वा०. ७ ग. घ. ज.
उ. ड. प्रत्वं; ट. प्रत्वं श्ये० सं. ८ ग. ज. 'प्रायेण.

२९

स्यात्सहस्रसाव्ये सत्रे तेषां तत्संबन्धात् । अत्रा पुरन्धिः अत्र अस्मिन् सह-
स्रसाव्ये सत्रे स श्येनः पुरन्धिः बहूनां धनस्य दात्रा मदे सोमस्य तृप्तौ सोमस्य
प्राप्तायम् अजहादरातीः अमुरानमित्रान् पृथक्त्वपक्षेऽप्यजयत् प्राणैर्मदान्
अप्रतिप्रतिक्रान् कृत्वा विपादमुपनीय अमूष्टे निःसाध्वसः । त्रित्वपक्षे तु
१ 'अदानानिति वा' इति । रातिर्दानार्थः । तत्प्रतिपेयेनारतिः । प्राक्सोमपान-
मदप्राप्तेः अदानानिति न् दास्यामीत्येवंधियो मृष्टमतपः कौर्षभसंयुक्ता ये
स तान् प्रति सोमस्य मदे प्राप्ते अमूढः अकृपणो भूत्वा अजहात्
अजयत् । शतश संपेदे ।

‘सहस्रसाव्यमभिप्रेत्य तत्संबन्धेनायुतं दक्षिणा इति वा’ । ‘इति क’-

- १० सहस्रसाव्यसंब- शब्देन किं विकल्पते । सहस्रसाव्यं वा सत्रं
न्धेन वा अयुतं दक्षिणा यप्रठन्ति याज्ञिकाः । तद्यथा । अतिसात्रयोर्मध्ये
सहस्रसाव्यानि शतक्रतो दशसत्रयाकृतिरग्रेः सह-
स्रसाव्यामात् । (आश्व०श्रौ० १२ । ५) । तदङ्गं सहस्रं दशभिश्चमत्तैर्गुणितं
चमसपरिसंख्ययोपलक्ष्यमाणमयुतं सोमभक्षणं संपद्यते । सोमभक्षणं कृ-
२५ ध्वंश्रुतेश्च दक्षिणा नामस्ति । ‘यग्रे सदस्येभ्यो ददाति सोमर्षीयं तस्य निष्क्री-
णीते’ (मैत्रा० सं० ४ । ८ । ३) इति । न चासति प्रश्ने रूढिवाक्ये
न्याय्य इति । असत्यं दक्षिणादानसंबन्धे सहस्रसाव्यमेव सत्राणाम् ॥

- अथवा अयुतश-
३० ष्देन प्रासर्पकाद्योत्पन्ने प्रासर्पकमिप्रायं वा अयुतम् । अथवा । सहस्रमिति
अथवा बहूनां सह- बहुनाम् । सहस्रं सत्रान् । अभिप्रेत्या बहवः प्रतिस-
स्त्रायुतशब्दौ वनमभिप्रेत्यमभिप्रेत्य । यस्मिन् कार्त्तिके दक्षिणा-
वति सोमे अयुतं च दक्षिणाः बहव इत्यर्थः ।
अस्ति हि शक्तिः । विशेषशब्दाः सामान्येषु भवन्तीति । तद्यथा । हिमेनो-
२५ दकेनेति (निरु० ६ । ३६) । अदक्षिणात्वात्सत्राणामेवं वेद्यमभिप्रेत्य
‘वा’ शब्दं चकार ।

१ ग. च. ज. तृत्व°. २ ग. ज. 'नर्णाति' क. 'नर्णाति' नि. ३ ग.
ज. कामर्ष्यमिसं; च. व. षण्यमिसं. कौर्षण्य. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'क्यण्यम्'.
५ ग. ज. 'पीव'. ६ ग. ज. निःक्रीत; इति च. नि. क्री°; घ. ट. नि. क्री° ७ क.
१० क. घ. ट. ठ. ड. 'पि कति म्'; च. 'पि३° कतिवम्.

‘सोमः’ (२) इति वक्तव्यम् । स पुनरेव ‘ओषधिः’ सोमः ।
 सोमः कस्मात् हेमवतो मौजवतो वा । स कस्मात् । ‘सुनेतोः’ ।
 ‘षुञ् अभिषवे’ (धा० ५ । १) इत्यस्य ।
 अभिपूयते ह्यसौ यज्ञे । ‘यदेनमभिषुण्वन्ति’ इति कर्मकारकं दर्शयति ।
 स कथं मध्यमस्थानः । भवति हि तमधिकृत्य ‘यत्ने सोम दिवि ज्यातिः’ ५
 स कथं मध्यमः (मैत्रा० सं० १ । ३ । ३) इति । ‘सोमो
 वै वाजस्तस्य चन्द्रमास्तृतीयमयं यः पवते स
 तृतीयमिति स तनूकरणे तं सर्वं स्वैतनूभूतमाध्याययति’ (मैत्रा० सं०
 ४ । ५ । ४) इति । तस्मादस्यैवैव सौ तनूर्ध्वचन्द्रमा रसात्मकत्वात् ।
 वायुर्वा सोमनेवमात्मानमापाद्यामिपूयत इति भवति स मध्यमः । १०
 ‘बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तम्’ । अस्वार्था स्तुतिः परार्था । तद्यथा ।
 सुक्तेषु गौणवृत्त्या प्रायः पावमानं मण्डलम् । ‘आश्वर्यमिव प्राधा-
 स स्तूयते । प्राधान्येन न्येन’ । स्वप्रधाना स्तुतिः क्वचिदाश्वर्यं चित्रतः
 क्वचिदेव स्तुतिः स्यात् । ‘तस्य पावमानीपु’ ऋक्षु ‘निद-
 र्शनाय’ उभयम् ‘उदाहारिष्यामः’ परार्थः च १५
 स्तुतेः स्वार्थत्वं च । परार्थं तावदुदाह्रियते । तद्यथा ॥ २ ॥

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे
 सुतः (ऋ० सं० १९ । १ । १) ॥ इति सा निगदव्याख्या-
 ताथैपापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ॥ ३ ॥ २०

स्वादिष्टया मदिष्टयेति । मयुच्छन्दस आर्षम् । प्रावस्तीत्रे (आश्व०
 श्रौ० ५ । १२) । हे सोम स्वादिष्टया स्वादु-
 सोमः तमया मदिष्टया मदयितृतमया त्वं धारया पवस्व
 प्रक्षर । किमर्थम् । इन्द्राय इन्द्रार्थं पातवे पानाय सुतः अभिपुतः । २०
 इन्द्रार्थं पवस्वेत्यस्वार्थता लक्ष्यते ।

१ ग. ज. घ. ट. ठ. ड. मध्यस्था०. २ ग. च. ज. ड. दिवि ज्यो०. ३ ग.
 च. ज. सुतनू०. ४ ग. ज. स्वतेनू०; ठ. ड. स्व तनू० च. स्वतेनू० स्वात. ५ क.
 ख. घ. ट. ठ. ड. साऽयमे०; ग. ज. सोममेतमा०; च. सोममेऽय०. ६ ट. ड.
 यथा । इति निरुक्तमध्ये पञ्चमाध्याये द्वितीयः खण्डः; क. ख. ग. च. वर्णमितेरे-
 ष्वङ्गो नास्ति. ७ ग. येति० । म०. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. स्तोत्रे विनियोगः ।
 हे०; च. स्तोत्रे । हे विनियोगः.

- ‘ अथैपापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ’ इति । ‘ अथ ’ शब्देन विशेष-
 एपापरा ऋक् चन्द्र- पाधिकारवाचिना स्वप्रधानतां स्तुतेरधिकरोति ।
 मस एतस्य वा चन्द्रमसो वेति चन्द्रत्वमापन्नस्याधौपधिसो-
 मस्यै । यथोक्तं ‘ स तनूकरणे ’ (निरु०
 ११ । २) । इतरथा ह्यप्राकृतप्रक्रिया स्यादनधिकारादस्मिन् प्रक्रमे
 चन्द्रमसः । चन्द्रमसो वाधिदेवमापन्नस्य औपधिसोमस्य वाधियज्ञमाप-
 न्नस्य । तदेतदुभयथा दर्शयति ॥ ३ ॥

- सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिपन्त्योपधिम् । सोमं यं ब्रह्माणो
 १० विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन (ऋ० सं० १० । ८५ । ३) ॥
 सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिपन्त्योपधिमिति वृथासुतमसोममाह
 सोमं यं ब्रह्माणो विदुरिति न तस्याश्नाति कश्चनायज्वेत्यधियज्ञ-
 मथाधिदैवतं सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिपन्त्योपधिमिति यजुः-
 सुतमसोममाह सोमं यं ब्रह्माणो विदुश्चन्द्रमसं न तस्याश्नाति
 १५ कश्चनादेव इत्यथैपापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ॥ ४ ॥

- सोमं मन्यते पपिवानिति सूर्याया आधिम् । विवाहे विनियोगः
 अधियज्ञे सोमः (आश्व० गृ० १ । ८ । १३) ।
 यत्संपिपन्ति संचुर्गयन्ति अभिपुत्र्य पिबन्ति
 २० सोममोपधि कैचिद्रासायनिकाः । ते मन्यन्ते सोमं पपिवांसः सोममापस्यं
 इति । न च पुनस्ते सोमपाः । वृथासोमः स इति । अनेन तावदर्धर्चे-
 नायं मन्त्र एव ‘ वृथासुतमसोममाह ’ पातुंश्च । अथ कः सोमः के च
 सोमपाः । यतो ब्रवीति । सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन । यं
 ब्राह्मणाः सोमं विदुः अधियज्ञे अङ्गभूतं न तस्याश्नाति कश्चन अयज्वा
 २५ अनधिकृतो यजमानत्वेन । ‘ इत्यधियज्ञम् ’ इति विग्रहमुपप्रदर्शयति ।

१ ग. ज. ‘स्याप्योष’ । २ क. ख. घ. ट. ‘मस्य वा । य’; च. ‘मस्य’ ।
 य’ वा. ३ ग. ज. औष’. ४ क. ख. घ. ट. प्रदर्श’; च. ‘था’द’ प्र; ठ. ड.
 प्रदर्शयति । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये उत्तरवदके तृतीयः खण्डः; क. ख. ग.
 च. वर्जमितरेष्वद्भो नास्ति. ५ ग. ‘निति’ । सू. ६ ग. ज. किंचि’; च. किंचि’
 के. ७ क. ख. ‘पास्यमिति; घ. ट. ठ. ड. ‘पास्य इति. ८ ग. ज. इति च;

‘ अथाधिदैवतम् ’ इति विषयान्तरमाधिकरोति । उक्तं हि ‘ चन्द्र-
मसो वा ’ (निरु० ११ । ३) इति । तदुपप्रदर्शनार्थमाह । सोमं
मन्यते पवित्रान्यत्सर्पिषन्त्योषधिमिति ‘ यजुःसुतम् ’ अधियज्ञं चन्द्रमसम-
अधिदैवते पेक्ष्य ‘ असोममाह ’ । यथा पूर्वस्मिन् रासाय-
चन्द्रमाः निकसोमस्यासोमत्वमाधियज्ञमपेक्ष्यैवमिहाप्यधियज्ञ- ५
सोमस्यासोमत्वमधिदैवसोमं चन्द्रमसमपेक्ष्य । एवं
कृत्वा सोमं यं ब्रह्माणो विदुश्चन्द्रमसं न तस्यः श्राति कश्चन अदेव इति ।
देवानां हि भक्ष्यत्वेन त्रिपरिणतश्चन्द्रमाः । ‘ सोमो नूनमेव तद्देवानामन्नम् ’
इति ह विज्ञायते । एवमस्य स्वप्रधाना सोमस्यै स्तुतिः ॥

‘ अथैषापरा भवति चन्द्रमसो वैतस्य वा ’ । सा किमर्थम् । ‘ अश्व- १०
र्यमिव प्राधान्येन ’ इत्युक्तम् (निरु० ११ । २) । तथा चैयमपरा
अन्या प्राधान्यस्तुतिरप्यस्ति सोमस्येत्युपप्रदर्शनार्थमाह ॥ ४ ॥

यच्चा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः । वायुः सोमस्य
रक्षिता समाना मास आकृतिः (ऋ० सं० १० । ८५ । ५) ॥ १५
यच्चा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनरिति नाराशंसानभिप्रेत्य
पूर्वपक्षापरपक्षाविति वा वायुः सोमस्य रक्षिता वायुमस्य रक्षिता-
रमाह साहचर्याद्रसहरणाद्वा समानां संवत्सराणां मास आकृतिः
सोमो रूपविशेषैरोपधिश्चन्द्रमा वा चन्द्रमाश्चायन्द्रमति चन्द्रो
माता चान्द्रं मानमस्येति वा चन्द्रश्चन्दतेः कान्तिकर्मणश्चन्दनमि- २०
त्यप्यस्य भवति चारु द्रमति चिरं द्रमति चमेर्वा पूर्वं चारु रुचे-
र्विपरीतस्य तस्यैषा भवति ॥ ५ ॥

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. भक्ष्यत्ये; च. भक्ष्यक्ष्य. २ ग. ज. सोमस्तु. ३ क.
ख. घ. ट. ठ. ड. न्या स्वार्थमा; ग. अ. प्रधानस्तु. ४ ठ. ड. माह । इति
नेरुक्तभाष्ये उत्तरषट्के षतुर्थः पद्याये चतुर्थः खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमितोष्यङ्को
वास्ति.

यत्त्वा देव प्रपिबन्तीति । यदा त्वां हे देव सोम प्रपिबन्ति प्रारभन्ते

अस्यामपि सोम-
चन्द्रमा वा । अधियज्ञे
सोमः

पातुमृत्विग्यजमानाः त्रिषु सवनमुखेषु । तदा
किमिति । तत आप्यायसे पुनः । ततः अनन्तरं
पुनः आप्यायसे । तदुक्तमधियज्ञे “ आप्याय-
नमाप्यायस्व ‘सं ते पयांसि’ (ऋ० सं० १ ।

९१ । १८) भक्षशेषान् ” (मान० श्रौ० २ । ४ । १ । ४६)
इति । वायुः सोमस्य रक्षितेति । वायव्येष्वसौ पात्रेषु गृहीतो रक्षत

वायुः कथं सोमस्य
रक्षिता

इति ‘ व.युमस्य रक्षितारमाह ’ मन्त्रकृ।
‘ साहचर्याद्रसहरणाद्वा ’ । वायुसहचरितो
ह्यसौ । तेन नित्यं सहचरणादविनाभावात्क-

र्मणः । रसहरणाद्वा सर्वरसापहारी वायुः समर्थः सन्त्यन्न शोषयति
तेन सोमो रक्षितो भवति । समानां संवत्सराणां मासो माता निर्माता

सोम ओपधिः । सर्वस्य किलौपधिसोमस्य चन्द्रमसः कलोपचयमनु प्रत्य-
हमेकैकदेशेन कला इव चन्द्रमसः पर्णान्युपचीयन्ते । स पौर्णमास्यां

१५

पञ्चदशपर्णाः संपद्यते । पौर्णमास्याः पुनः परतः कलाहानौ चन्द्रमस
इव एकैकं पर्णमपचीयते इति ओपधेः सोमस्य चन्द्रमसः संपद्यते । तदा-

युर्वेदविदः सोमलक्षणं रसायनतन्त्रे स्मरन्ति । अमुना प्रकारेणोपचया-
पचयाभ्यां पर्णानां मासोपलक्षणद्वारेण समानां संवत्सराणाम् आकृतिः

२०

आकर्ता भवति सोमो ‘ रूपविशेषैः ’ । तदेवं पर्णानामुपचयापचयाभ्या-
न्व्यद्वयद्रूपं प्रतिपद्यते । एवमधियज्ञेऽपि स एव ओपधिः सोमः ।

अथाधिदैवे । यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनरित्यपरपक्षेण

अधिदैवे चन्द्रमाः पीयते रश्मिभिः । तदुक्तम् ‘ यमक्षितिमक्षितयः
पिबन्तीति ’ (निरु० ५ । ११) । तत

आप्यायसे पुनः । तं पूर्वपक्ष आप्याययन्तीति । तदप्युक्तम् । ‘ यथा देवा

२५

१ ग. ‘न्तीति’ । य०. २ ग. च. ज. तृषु. ३ ग. ज. ट. ड. ‘आप्यायसा’
नास्ति; च. यन् सं आप्यायस्व. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. भक्षशेषे; ग. ज.

‘सीति इति भक्षशेषे; च. सीति इति भक्षशेषे’ क्षय. ५ च. वायुः समर्थः युसहच-
रित इत्यादि सर्वं रसापहारी वेत्तवन्तं. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘यति सोमं तेन;

च. ‘यति तेन’ सोमं. ७ घ. ट. औष. ८ ठ. ड. ‘इति। स निष्पर्णोऽमावास्या-
यामोपधेः. ९ ग. घ. ज. ‘यन् तन्त्रे. १० क. ख. घ. सोमलक्षे; च. ‘साहचर्ये’

३१

मासो; ट. ‘सोमिल’ मासोप. ११ उ. ड. क्षितम’.

अंशुमाप्याययन्तीति ' (निरु० ५ । ११) । वायुं सोमस्य चन्द्रमसो रक्षितारमाह । एष ह्येनं सूक्ष्मया रश्मिनाञ्च्या सुपुञ्जाख्यया पुनर्थथाकाल-
मापूरयति । समानां संवत्सराणां मात्रः । चन्द्रमाः सोमो(प?)लक्षणत्वान्मासः ।
द्वादशकृत्वो मासभूतमात्मानमावर्तयन् संवत्सराणां कर्ता भवति । ' रूप-
विशेषैः ' इति कलानामुपचयापचयविशेषाभ्यां रूपविशेषाश्चन्द्रमसः
प्रतितिथि भवन्ति ।

' स्वादिष्टया मदिष्टया ' इत्यस्यामपि केचिदधिदैवमर्थं व्याचक्षते ।
तन्मतेनोच्यते । हे भगवन् सोम चन्द्र स्वादि-
'स्वादिष्टया मदि-
ष्टया ' इत्येतस्याम-
प्यृचि अधिदैवे चन्द्र-
मा इति केचित्

' चन्द्रमाः ' (३) कस्मात् । स हि ' चायन् ' पश्यन् सर्वभू-
तानि उपर्यवस्थितो ' द्रमति ' गच्छति । चायतेः
चन्द्रमाः कस्मात्
पूर्वपदं द्रमतेरुत्तरपदम् । अथवा । ' चन्द्रा
माता ' । चन्द्रश्चासौ माता च निर्माता सर्वस्येति चन्द्रमाः । चन्द्रः
पूर्वपदं मातोत्तरपदम् । ' चान्द्रं मानमस्येति वा ' । तदेवोत्तरपदम् ।
केवलं तु समानाधिकरणः पूर्वो बहुव्रीहिरुत्तरः । अथ ' चन्द्रः '

चन्द्रः कस्मात्
चन्दने च
कस्मात् । ' चन्दतः कान्तिकर्मणः ' । नित्य-
कान्तो ह्यसौ । ' चन्दनमित्यप्यस्यैव ' चन्दतेः
' भवति ' । तदपि हि कान्तम् । अथवा ।

' चारु द्रमति ' । चारुशब्दस्य पूर्वपदं द्रमतेरुत्तरपदम् । चार्थिति द्रमति-
क्रियाविशेषणम् । अथवा । ' चिरं द्रमति ' । तदेवोत्तरपदं चिरशब्द-
स्य पूर्वपदम् । ' चमेवां पूं ' द्रमतेरेवोत्तरपदम् । केऽर्थः । चम्यमानोः

भक्ष्यमाणो देवैरसौ द्रमतीति चन्द्रमाः । अथ
चारु कस्मात्
' चारु ' कस्मात् । ' रुचः ' अत्यन्त' विप-
रीतस्य ' दीप्तिकर्मणः । ' तस्यैषा भवति ' ॥ ५ ॥

१ ग. च. ज. ' देवतमर्थं. २ ग. ज. क्षरस्य. ३ ग. ज. सुषु पश्यन् रश्मिनाः
च. सुषु पश्यन् १° ज्ञेन. ४ क. ख. घ. ट. पण्डत्. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. वा
चन्द्रमाः । चन्द्रः पूर्वपदं तदे ; च. वा. तदे° चन्द्रमाः । चन्द्रः पूर्वपदं. ६ ठ.
ड. वति । इति नरुभाष्ये पञ्चमाध्याये पञ्चमः खण्डः; क. ख. ग. चवर्गमितेः
अङ्को नास्ति.

नवो नवो भवति जायमानोऽहं केतुरूपसामेत्यग्रम् । भागं देवेभ्यो विदधात्याय चन्द्रमास्तिरतं दीर्घमायुः (ऋ० सं० १ । ८५ । १९) ॥ नवो नवो भवति जायमान इति पूर्वपक्षादिभिर्भेदतयाहं केतुरूपसामेत्यग्रमित्यपरपक्षान्तमभिप्रेत्यादित्यदेवतो द्वितीयः पाद इत्येके भागं देवेभ्यो विदधात्याय क्षित्यर्थमासेऽद्यामभिप्रेत्य प्रवर्धयते चन्द्रमा दीर्घमायुर्मुत्पुमारयतीति सतो मृतं च्यावयतीति वा शतवलाक्षो भौद्रत्यस्तस्यैषा भवति ॥ ६ ॥

- १० नवानवा भवति जायमान इति । सृष्याया आपम् । दृणाश चान्द्रमसे चर्मा विनियोगो (आश्र० श्रौ० ९ । ८) चन्द्रमाः राजपक्षमृहीतप्रौ च (मान० श्रौ० २ । २ । ७) । नवो नवो भवति जायमानः । चन्द्राः प्रतीक्यां दिशि पूर्वपक्षान्तपक्षान्तपक्षान्तपक्षान्तगते आदित्ये पश्चादादित्यस्य प्रतिमसं जायमानो नवो नवो भवति । ' अहं केतुरूपसामेत्यपरपक्षान्तमभिप्रेत्य ' । अपरपक्षान्तेषु प्राच्यां दिशि प्रक्षीणः कल्पासात्रावशेषः अहं केतुः लक्षणम् । नक्षत्रोपचयापचयाभ्यां प्रतिपत्प्रभृत्तान्यहानि लक्ष्यन्ते । अथवा । अहं केतुः कर्ता स्वमतिविशेषः । उपसोभत्यग्रमिति । उपसो यः प्रकाशस्तस्यान्ते पुरस्तादुद्यतः सर्वस्य दृश्यते । स पुनरेष पत्रं पर्यायेण प्रतीची-
 १५ प्राच्यौ दिशौ व्याप्यपूर्वपक्षापरपक्षविभागेन देवादिभगं देवेभ्यो विदधा-
 २० ति । एककनेऽप्य पूर्वपक्षार्वागमास्यमावास्थयाः स्वगत्या कालं तिष्ठति । विभज्य देवेभ्यो ददाति । विभागदाने हेतुर्भवति । ' पूर्णे चन्द्रमस्तुपचये

१ छ. त. द. ' वा ' नास्ति. २ ग. इति । मु. ३ क. ख. घ. ट. ड. ड. ' भ्यां वि ' ; च. ' भ्यां ' प्र' इ. ४ क. ख. घ. ट. ड. ड. ' स्तस्य प्राक्तः ; च. ' स्तस्येने ' इत्यप्रा. ५ च. ' पक्ष-विभा ' एककशोऽपि पूर्वमस्यमावास्थया रामस्य भागो भावतुर्न निर्भागं वा, ट. पक्ष-हविर्भागं वा विभा ' एककश इत्यादि निन्दन् इत्यन्-पू. ; घ. ड. ड. ' पक्षहोर्भागं वा विभा ' ; क. ख. घ. पक्ष एककश-इत्यादि निन्दन् हविर्भागं वा विभागेन. ६ ग. ज. ' गेनाय ' ; च. नये न य'. ७ क. ख. घ. ट. ड. ड. ' भ्यां भागं वि ' ; च. ' भ्यो ' वि' भागं. ८ ग. ज. ' वात्येककर्म ' ; च. ' धात्येककर्म ' त्ये; घ. ट. ड. ड. ' धात्येककर्म '. ९ ग. च. ज. ' मास्यमा ' . १० च. वि ' चन्द्रमाः ' पूर्ण चन्द्रमस्तुपचये पूर्णमास्यदर्शनेऽ-मासस्यमिति २ विज्ञायते । १ एत' रोति. ११ ग. ज. स्युवावात्पूर्वमासस्येव-

पौर्णमास्यदर्शनेऽमात्रास्यायाम्' (मान० श्रौ० ४ । १ । १) इति ह विज्ञायते ।
य एतत्करोति चन्द्रमाः स प्रतिरते प्रवर्धयते ईजानानां दीर्घमायुः । यस्मादि
च यजामहे तमनेन हविषा । अतः सोऽस्माकमप्येतत्करोत्वियेतः ।

‘आदित्यदैवतो द्वितीयः पाद इत्येके’ । ‘पूर्वापरं चरनो म. य. वै. १’

आदित्यदैवतो (ऋ० सं० १० । ८५ । १८) इत्य- ५
द्वितीयः पाद इत्येके तोऽनन्तरमेवेयम् । मैत्रायणीये समाने हविष
विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । २ । ७ ॥ ४ ।

१२ । २) इत्यपेक्षेयमपि सौर्याच्च द्रमसीत्यह्नां केतुरित्यतो विशपल्ले-
ङ्ग इवीति ‘ आदित्यदैवतो द्वितीयः पादः ’ इति । तदर्थयोजना ।
यश्चन्द्रमा नयो नयो भवति जायमानो यश्च भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् १०
यश्च प्रतिरते दीर्घमायुः सोऽस्माकमप्येतत्करोतु । अयं पश्यं सुयोऽह्नां केतुः
कर्ता उदयारतमयाभ्याम् उपसां चाग्रमेति मुख्यत्वमागच्छति तत्कृतत्वा-
दुपजे जन्मनः । तद्वदिमप्रान्तप्रोत्सर्ष्यमाणे हि तमस्वुपजे जायन्ते । स तासां
जनयितेति मुख्यः । अतः सोऽस्माकमेतदेवं करोत्वियेतदाशास्महे ।

इहं तु कथं चन्द्रमा मध्यस्थानः । ननु सूर्यात्परतः शतसहस्रे योजनानां १५

चन्द्रमाः कथं म- चन्द्रमसः स्थानमिदं पौराणिकाः स्मरन्ति
ध्यस्थानः (ब्रह्मपुराणं २३ । ५) । सत्यं स्मरन्ति । कर्म-
संयोगेन तु युस्थानत्वे सति सर्वदेवतानां विशेषै-

स्थाननियमो विवक्षितः । तदेतद्दन्द्रं कर्म रसानुप्रदानं वृषवधो बलकृति-
रिति । तथा बाहुलेर्निन्द्रेण दृष्टत्वात् । बलकृतिश्च चन्द्रे दृष्टा । यथा । २०

‘ वरैरेजेत दुर्भितिर्म ’ (निरु० १० । ४२) । प्रसिद्धं चेदभिन्दु-
श्चन्द्रमा इति । रमात्मकत्वाच्चन्द्रमतो रसानुप्रदानसंबन्धः । एवं चेदिन्द्र-
श्चन्द्रमाः । तस्य भेदत्रयाधिकारसंबन्धात्कर्तृत्वेन सूर्यादवर्गमिति युक्तं मध्य-
स्थानश्चन्द्रमाः । अपि च । ओपविसे. मश्चन्द्रमा भवत्यधिःकृत्वापयः ।
स चन्द्रस्याक्रम् । अत्र चान्नाटस्याम्भसाद्भवत्यद्यमा स्थानन्यत्वेन रसा- २५

१ ठ. ड. सर्गा ऋक् पठयते २ क. न्य. घ. ट. ठ. ड. दध्; ३. 'सर्वे' यश्च.
३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'न्तेऽतः स'; च. 'न्ते' म° : ता. ४ क. ख. घ. ट.
ठ. ड. 'तु' नास्ति. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'शेषतः स्था'. ६ ग. ज.
'तिश्चन्द्रे; च. 'तिश्चन्द्रे'श्च. ७ ग. च. ज. तथा. ८ ग. ज. 'तिमिति' प्र°;
च. 'तिमिति' । प° ति. ९ क. ख. घ. ट. 'बन्धः वर्तु'; ज. 'वन्धः वर्तु' ता क. ३०

नात् । इत्यतो युक्तं मध्यस्थान इति । यथा च सर्वगतो वायुर्विशेषतो
मध्यस्थान इति । एवम् । इत्यतोऽदोषः ।

- ‘ मृत्युः ’ (४) इति वक्तव्यम् । स कस्मात् । ‘ मारयतीति
५ मृत्युः कस्मात् सतः ’ । मध्यमो हि प्राणो मृत्युः । उत्क्रामञ्छ-
रीरादितरैः प्राणैः प्राणिनो विशेषयति । एवं
मारयति । विज्ञायते हि । ‘ प्राणमनुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनुत्क्रामन्ति ’
(बृ० उप० ४ । ४ । २) इति । अथवा । ‘ मृतं च्यावयति ’ ।
ये एवोपक्षीणायुर्भवत्युपक्षीणकर्मा तमेवासावपगमनेन प्रच्यावयति । ‘ शत-
बलाक्षो मौद्गल्यः ’ आचार्यो मन्यते । बहुबलानि अक्षाणि इन्द्रियाणि
१० यस्य स शतबलाक्षः बह्विन्द्रियः । मुद्गलस्यापत्यं मौद्गल्यः । ‘ तस्य ’
मृत्योः ‘ एषा भवति ’ ॥ ६ ॥

- परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्
१५ (ऋ० सं० १० । १८ । १) ॥ परं मृत्यो ध्रुवं मृत्यो ध्रुवं
परेहि मृत्यो कथितं तेन मृत्यो मृतं च्यावयते भवति मृत्यो मदेर्वा
मुदेर्वा तेषामेषा भवति ॥ ७ ॥

- परं मृत्यो अनु परेहि पन्थामिति । सङ्कुमुको नाम । तस्यार्थम् ।
२० मृत्युः आउयहोमः । पुत्रकामके कर्मणि स्थालीपाकवि-
धाने षडाहुतिः (मान० गृ० २ । १८ ।
२) । हे मृत्यो परम् अन्यम् अनुपरेहि अनुपरागच्छ त्वं पन्थानं यः ते
स्वः । कतमः सः । इतरो देवयानात् । यस्माद्देवयाने पथि वयं स्थिता
अनाध्रुष्यास्तव पितृयानं पन्थानमनुपरेहि त्वम् । अपि च । चक्षुष्मते
२५ शृण्वते च ते तुभ्यं ब्रवीमि । मा त्वमस्माकं प्रजां पुत्रान् पौत्रांश्च रीरिषो
हिंसीः । मा उत वीरान् अन्यानापि येऽस्मदाश्रयाः पुरुषास्तानपि मा
हिंसिरिति ॥ ७ ॥

- १ ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चम. ध्याये षष्ठः खण्डः; क. ख. ग.
च. वर्ज. मन्तरेष्वङ्को नास्ति. २ ठ. ड. मृत्यो इति. ३ ग. 'मिति'. स°. ४ ग. ज.
पुत्रांश्च री°; च. पुत्रांश्च री° वान् पौत्रां°. ५ ठ. ड. 'रिति । इति ७ खण्डः;
६१ गवर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.

त्वेषमित्था समरणं शिभीवतोऽन्द्राविष्णु सुतपा वांमुख्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुख्ययः (ऋ०
सं० १ । १५५ । २) ॥ इति सा निगदव्याख्याता । विश्वान-
नरो व्याख्यातस्तस्यैषा भवति ॥ ८ ॥

‘ विश्वानरः व्याख्यातः ’ अभिधानतोऽभिधेयतश्च (निरु०
७ । २१) । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ ८ ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमुखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः १०
(ऋ० सं० १० । ५० । १) ॥ प्रार्थित यूयं स्तुतिं महतेऽन्ध-
सोऽन्नस्य दात्रे मन्दमानाय मोदमानाय स्तूपमानाय शब्दाद्यय-
मानायेति वा विश्वानराय सर्वं विभूतायेन्द्रस्य यस्य प्रीतो सुम-
हद्वलं महच्च श्रवणीयं यशो नृम्णं च बलं नृन्नतं धावापृथिव्यौ वः
परिचरत इति कमन्यं मध्यमादेवमन्वक्ष्येत्तस्यैपापरा भवति ॥९॥ १५

प्र वो मह इति । वैकुण्ठस्यार्पम् । जगती । महाव्रते विनियोगः (ऐ०
आ । ५ । ३ । १) । हे स्तोतारः प्रार्थित प्रोच्चा-
विश्वानरः रयत स्तुतिम् उच्चार्यमाणां चान्द्रेः प्रपूजयत ।
करुणं । विश्वानराय । किलक्षणाय विश्वानराय । महे महते अन्धसः अन्नस्य २०
दात्रे मन्दमानाय हृष्यमाणाय । अथवा । शब्दाद्यमानाय स्तोतृभिः । विश्व-
भुवे सर्वप्रकारविभूतियुक्ताय । इन्द्रस्य ईश्वरस्य यस्य विश्वानरस्य सुमुखं

१ ठ. त्वेषमित्थेति महाराष्ट्रगुर्जरवैदिकपाठः । त्वेषमित्था० (सर्वा ऋषयश्चते) ।
इति सा निगदव्याख्याता । विश्वानरो व्याख्यातस्तस्यैषा भवति । इति निरुक्तमध्ये
उत्तरषट्के पञ्चमाध्याये अष्टमः खण्डः; ड. त्वेषमित्थेति महाराष्ट्रगुर्जरवैदिकपाठः ।
इति सा निगदव्याख्याता ॥ ८ ॥ इति निरुक्तमध्ये ८ खण्डः । विश्वानरो^१. २ घ.
२. ज. अङ्गो नास्ति. ३ क. ख छ त. द. शब्दाद्यमा^८. ४ छ त. द. 'वक्षत्'.
५ ग. इति । ६^२.

सहः सुमहद्वलं महि महच्च श्रवणीयं यशो बलमायतिर्महती नृगं
 च नृन् मनुष्यन् प्रति यद्विशेषतो नतं बलं तच्च यस्य महत् । अपि चैतां
 वः स्तुतिं यस्य विश्वानरस्य प्रोच्यमानां द्यावापृथिव्यौ परिचरतः पूजयतः
 अभिनन्दतः । सर्वभूतानामियमभिमता स्तुतिरस्त्वित्यभिप्रायः ।

- ५ ' तस्यैवापरा भवति ' । सा पुनः किमर्थम् । दृस्थानोऽपि हि विश्वानरः समाज्ञातः (निघ० ५ । ६ । १२) । अस्यां तु परस्यां व्यपदेशादुत्तमेन ज्योतिषा विश्वानरस्यासंशयं मध्यमत्वमित्येवमुदाह्रियते ॥ ९ ॥

- उद् ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रुत्
 १० (ऋ० सं० ७ । ७६ । १) ॥ उदशिश्रियज्ज्योतिरमृतं सर्वजन्यं
 विश्वानरः सविता देव इति धाता सर्वस्य विधाता तस्यैवा
 भवति ॥ १० ॥

- उद् ज्योतिरिति । वसिष्ठस्यार्पम् । प्रातरनुवाके विनिर्गोः (आश्र०
 १५ स एव श्री० ४ । १४) । उदश्रेत् उच्छ्रयति ऊर्ध्वमुप-
 नयति विश्वानरो मध्यमो वायुः । किम् । एतत्
 ज्योतिः अमृतं सूर्याख्यम् । सर्वगन्तूणां वायुपूर्वकत्वाद्गमनस्योपपद्यते । विश्व-
 जन्यं सर्वलोकहितम् ।

- एवमत्र विश्वानरो ज्योतिरुच्छ्रयतीति व्यपदेशान्मध्यमो विश्वानरः । एवं
 २० चाभिप्रेत्योक्तं ' कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत् ' (निरु० ११ । ९) इति ।

ओपस्थोऽर्धच उत्तर इति भाष्यकारो नाधिजगो । प्रसङ्गतस्तु निर्धूमः ।
 यदा तज्ज्योतिरुस्थानेमुत्नीयते विश्वानरेणाय तदा क्रवा तत्कर्मणा

- १ ग. ज. स्तुतिमस्य; च. स्तुतिर्मस्य° तिं ग. २ ट. ड. ' वति । निरुक्तभाष्ये
 पञ्चमाध्याये नवमः खण्डः. ३ ग. ज. 'स्थानेऽपि'. ४ क. ख. ग. च. वर्जमितरे-
 ष्वङ्को नास्ति. ५ छ. त. वृ. 'शिश्रय'. ६ ग. 'नि ३'. ७ क. ख. घ. ट. न.
 द. वायुः सविता । किं; च वायुः । किं सविता. ८ ग. ज. 'पूर्वत्वा'. ९ ग.
 १७ ज. 'स्थानमुद्भयमुप'.

देवानां रश्मिनां चक्षुः ख्यातं प्रकाशः । अजनिष्ट जायते उपाः । सा च पुनर्जाता व्याविरकः भुवन विश्वं सर्वमाविःकरोति भूतजातमित्यर्थः ।

‘ धाता ’ (६) कस्मात् । स हि ‘सर्वस्य विधाता’ स्रष्टा । उदक-
 धाता कस्मात् पूर्वकत्वाःसर्वविधानस्य मध्यमः । ‘ तस्यैषा
 भवति ’ ॥ १० ॥

५

धाता ददातु दाशुपे प्राचीं जीवातुमाक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं सत्यधर्मणः (अथ० सं० ७ । १७ । २ ॥ मैत्रा० सं० ४ । १२ । ६) ॥ धाता ददातु दत्तवते प्रवृद्धां जीविकामनुपक्षीणां वयं देवस्य धीमहि सुमतिं कैल्यार्णीं मतिं सत्यधर्मणो विधाता धात्रा व्याख्यातस्तस्यैष निपातो भवति बहुदेवतायामृचि ॥ ११ ॥

१०

धाता ददातु दाशुपे इति । वामदेवस्यापेम् । दात्रिकामु धात्रे हांवाप
 धाता विनियोगः (मैत्रा० सं० ४ । ३ । ५) ।
 य एव कश्चिद्वात्रे दत्तवान् हविर्भवति तस्मै
 दाशुपे स ददाति । किं ददाति । प्राचीं जीवातुमाक्षिताम् । प्राचीं प्रवृद्धां
 महतीं जीवातुं जीविकाम् अक्षिताम् अक्षीगम् । यत एवमगो ब्रूमः ।
 वयं देवस्य धातुः धीमहि धारयामहे सुमतिं कल्याणीं मतिं नित्यं हवि-
 दानयुक्तां सत्यधर्मणः नित्यमवितथार्थकारिणः ।

१५

१०

‘ विधाता (७) धा । व्याख्यातः ’ (निरु० ११ । १०) ।
 धातैव विधाता । ‘ तस्यैष निपातो भवति ’ स्तुतिसाधारणेन ‘ बहुदेव-
 तायामृचि ’ ॥ ११ ॥

१ क. ख. घ. ट. ड. ख्यानं; च. ख्यानं० नं. ० ट. ड. षति । इति
 निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये १० खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.
 ३ छ त. द. कल्याणीं मतिं र्मति. ५ इति । वा०. ५ ग. ज. सत्यम०; च.
 सत्ये नि. ६ ट. ड. ० मृचि । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये ११ खण्डः; क. ख.
 ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.

११

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्माणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्माणि ।
 तवाहमद्य मघवन्नृपस्तुतौ धातर्विधातः कलशा अभक्षयम् (ऋ०
 सं० १० । १६७ । ३) ॥ इत्येताभिर्देवताभिरभिप्रसूतः सोम-
 कलशानभक्षयमिति कलशः कस्मात्कला अस्मिञ्छेरते मात्राः
 कलिश्च कलाश्च किरतेर्विकीर्णा मात्राः ॥ १२ ॥

इत्येकादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१० सोमस्य राज्ञः इति । विश्वाभिन्नस्थार्धम् । सोमस्य राज्ञो धर्माणि कर्मणि यत्र
 विधाता सोम इज्यते तस्योपस्तुतौ वर्तमानस्तेन प्रसूतः
 सोमकलशान् अभक्षयम् । वरुणस्य चैवमव ।
 बृहस्पतेश्च अनुमत्याश्च शर्माणि शरणे आश्रये वर्तमानस्ताभ्यामभि-
 प्रसूतः । तवाहमद्य मघवन् उपस्तुतौ युवयोश्च हे धातः विधातः
 सर्वैर्भवद्विरनुज्ञात एतान् सोमकलशान् अभक्षयमिति ।

१५ ' कलशः कस्मात् । कला अस्मिन् शेरते मात्राः ' । कला
 अवयवाः सोमसमुदायात्केचिद्वृथकृताः । ते
 कलशः कस्मात् शेरते आसते अस्मिन् । कलाशब्दात्पूर्व-
 पदं शीङ् उत्तरपदम् । अथ कलः कस्मात् । अत आह कलानि-
 कलाः कस्मात् र्वचनैप्रसङ्गेन । ' कलिश्च कलाश्च किरतेर्विकीर्णा
 २० कलिश्च मात्राः ' । ' कु विश्लेषे ' (धा० ६ । १२८)
 इत्यस्य । कला वचांसि परस्परं विक्षिप्न्ते ।

कला अपि विक्रिप्ता भवन्ति कुतश्चसमुदायादिति ॥ १२ ॥

एकादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१ छ. त. द. 'कलशः कला'. २ छ. प्रथं; त. एकादश प्रथं; ड. थ घ. ठ.
 ड. 'इत्ये० पादः' नास्ति ३ ग. इति । वि ५ क. ख. घ. ठ. ड. प्रवर्तः; च.
 २५ वर्तं प्र. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. तवाहं हे मघवन्नद्य उपं; च. तवाह [हं हे] मघ-
 वन्ननु न अद्य उं. ६ क. ख. घ. ट. त. ड. धातः हे विं; च. धातः विं
 हे. ७ ग. ज. भक्षयि. ८ ग. ज. शयंत. ९ क. ख. घ. ट. चनानिर्वचनप्रसं;
 च. 'चनैर्मे क' नानिर्वचनप्रसङ्गे. १० ठ. ड. इति । इति षेडशाध्यायस्य
 प्रथमः पादः । इति निरुक्तभाष्ये उत्तरपदके पञ्चमाध्याये १२ खण्डः; क. ख. ग.
 १० च. वर्जमितरेण्यङ्गे नास्ति.

द्वितीयः पादः ॥

अथातो मध्यस्थाना देवगणास्तेषां मरुतः प्रथमागामिनो भवन्ति
मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनो वा महद्द्रवन्तीति वा तेषा-
मेषा भवति ॥ १३ ॥

‘ अथातो मध्यस्थाना देवगणैः ’ । अथातःशब्दावुक्तार्थो । तयोः
पुनरुपस्थासो बहुवचनविशिष्टोऽयमपरोऽधिकार इति । मध्यस्थाना देव-
गणा इतीदमपि प्रसिद्धमेव । ‘ तेषां मरुतः (८) प्रथमागामिनो भवन्ति ’ ।
कस्मात् । वायुरेव हि भेदनापेक्षमाणो मरुदभिधानो बहुवचनभाग्
भवति । तेषां प्राथम्यं वायुना व्याख्यातम् । एतावान्शु विशेषः । १०
बहुसाध्ये कर्मणि बहुधा मध्यमो भवति । धृथकःत्वेन तु विज्ञाता मरुतः
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्चैवेवमादयः सप्तसप्तका देवगणा मरुतेषु
गणेषु सप्तकपालेषु । अग्नौ पुराणे चैत एव प्रसिद्धाः सप्तस्कन्धवायुविचा-
रिणो मारीचात्करुपाईयां ये जज्ञिरे । नैरुक्तसमयस्तु सर्व एव गणा
मरुतः । उक्तं च वार्तिके । ‘ मध्यमा वाक्स्त्रियः सर्वाः पुमान्सर्वा ११
मध्यमः । गणाश्च सर्वे मरुतो गणोभवाः पुत्रकृतेः ’ (बृ०दे० ५ । ४८) ॥
अथ ‘ मरुतः ’ (८) कस्मात् । ‘ मितराविणो वा ’ । मितं नाम
सुच्छिष्टम् । तथा तेषां योग्यं रणितुं तथा रुचन्ति
मरुतः कस्मात् स्तनयन्ति । अथवा । ‘ मितरोचिनः ’ । तथैव ।
सुच्छिष्टं रोचन्ते । ‘ अमितराविणः ’ इति केचिद्विच्छन्ति ‘ मरुतोमितरा- १०
विणः ’ इति समानसंदिह्यत्वाद्भाष्यस्य तेषाम् । बहुवचनं च ते रुचन्ती-
त्यर्थः । ‘ मितरोचिनः ’ इत्यत्राप्येवमेव । ‘ महद्द्रवन्तीति वा ’ ।

१ क. ख. घ. घ. महद्द्रव०. २ क. ख. १ (१३), त. द. १ इ ठ. ड. ० गणा
इति । अथा०. ४ ग. च. ज. चैव ए०. ५ क. ख. द. ट. ह. सप्तथा पुत्रत्ववि० ;
च. सप्तस्कन्धवायुवि० वा पुत्रत्वः; ट. सप्तथा पुत्रत्वं वि० स्कन्धवायु. ६ क. ख. घ.
ट. ठ ड. ० पादाङ्गिण्यां; च पा०ङ्गिण्यां द. ७ ट. ‘ मध्यमा० ’ अस्य पाठान्तरं
मान्ते लिख्यते । सर्वा स्त्री मध्यमस्थाना पुगन्वायुश्च सर्वगः । गणाश्च सर्वे मरुत
इति घुट्टानुशासनम् ॥ इति; इदं पाठान्तरं ठ. ड. पुस्तकयोर्मूलेऽन्तर्भाव्ये;
च. पुस्तके इदं पन्ते लिख्यते. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. अमितं. ९ ग. ज.
महद्द्रव०.

इह शब्दमहत्ताभिप्रेता । पूर्वत्र बाहुल्यं बहुप्रकारता च । 'तेषामेषा भवति ॥ १३ ॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपणैः ।

- ५ आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पसता सुमायाः (ऋ० सं० १ । ८८ । १) ॥ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकैः स्वश्चनैरिति वा स्वर्चनैरिति वा स्वर्चिभिरिति वा रथैरायात ऋष्टिमद्भिरश्वपणैरश्वपतनैर्वर्षिष्ठेन च नोऽन्नेन वय इवापतत सुमायाः कल्याणकर्माणो वा कल्याणप्रज्ञा वा रुद्रा व्याख्यातास्तेषामेषा भवति ॥ १४ ॥

१०

आ विद्युन्मद्भिरिति^३ । गातमस्यापम् । आस्ताग्वाङ्कः । हे मरुतः
आयात यूयम् । केन कीदृशेन वा । विद्यु-
मरुतः
न्मद्भिः स्वकैः रथेभिः रंहणैर्भेद्यैः स्वश्चनैः

सुगमनैः । यद्वा । स्वर्चनैः शोभनमर्चनं येषां तैः । सुप्तु पुजितैः ।

- १५ अथवा । स्वर्चिभिः अनुपरतविद्युत्संपातैः । ऋष्टिमद्भिः रेपणवद्भिः अना-
कालस्य नाशिनैः । पृथक्त्वे । विद्युन्मद्भिरेव ऋष्टिमद्भिः आयुधोपेतैः ।
अज्ञानपतनैः व्याघ्रवतो येऽन्तरिक्षे भेषाः पतन्ति । पृथक्त्वे । समं
समेता अश्वयुग्भिरिति । अपि च । किमेवमेव यथाकथंचिदागच्छतेत्याग-
मनगात्रे वयमर्चिनः । नेत्युच्यते । आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पसता
२० सुमायाः । हे सुमायाः सुकर्मणः सुप्रज्ञा वा आपतत । कथम् । वर्षिष्ठया
इषा अन्नेन अश्मत्प्रदेयेन संयुक्ताः । किं अन्नवैरागपतत । नेत्युच्यते । वयो
न वय इव पक्षिण इव शीघ्रतापततेत्येतदाशास्मते ।

१ क. ख. १ (१७); ठ. ड. १३ । इति निरुक्तभाष्ये उ रसद्वेक पञ्चमाध्याये
१३ खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमिनेरेण्वङ्गो नास्ति. २ क. ख. ४ (१४); त. द.
२. ३ ग. 'रिति'. गो. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'न्मद्भिः विद्युत्तनं विद्युत्
विशिष्टरीतियुक्तैः स्वकैः; च. 'न्मद्भिः' 'स्य' विद्युत्तनं विद्युत् विशिष्टरीतियुक्तैः.
५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. आपसत आपतत । आगच्छते'दर्थः । वथम्; ग. ज.

२८ आपतत; च. ऊपतत आपतत.

‘ रुद्राः (९) व्याख्याताः (निरु० १० । ५) । तेषामेषा भवति ’ ॥ १४ ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोपसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तव । इयं वो अस्मदति हर्षते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे (ऋ० सं० ५ । ५७ । १) ॥ आगच्छत रुद्रा इन्द्रेण सहजोपणाः सुविताय कर्मण इयं वोऽस्मदपि प्रतिकामयते मतिस्तृष्णजे इव दिव उत्सा उदन्यवे इति तृष्णकृतृष्यतेरुदन्युददन्यतेः ऋभव उरु भान्तीति वर्तेन भान्तीति वर्तेन भवन्तीति वा तेषामेषा भवति ॥ १५ ॥

आ रुद्रास इति । श्यावश्वत्यापम् । जगती । आग्निमासुते शस्यते ।

रुद्राः हे रुद्राः आगच्छत यूपम् । इन्द्रवन्तः । ‘ इदि परमेश्वर्ये (वा० १ । ६३) ’ । सजोपसः

परमेश्वर्येण नियमासेविताः । पृथक्त्वपक्षे तूपययत एव इन्द्रेण सह प्रीय-

माणा इति । हिरण्यरथाः उदकहरणार्थे रंहणाः । पृथक्त्वपक्षे तु हिरण्य-

विकृतरथाः । सुविताय एतस्मै कर्मणे सुष्टु सर्गुणाय यथाशास्त्रं क्रियमा-

णाय प्राप्स्यर्थम् । किमिति आगच्छत । वः युष्मान् इयमस्मन्मतिः प्रति-

हर्षते प्रतिकामयते । युष्मद्विनाकृतमिदं कर्म गुणवद्व्येतैरङ्गैर्मा भुद्वि-

गुणमित्येवमर्थं प्रतिहर्षते । अपि च । हविः पूर्णं देवताः प्रेप्सन्ति ब्राह्मणा

इवोपनिमन्त्रणम् । ततो यजमानः संस्कृते हविषि तदव्यापत्तयं यागकाला-

नतिक्रमणाय चान्नपतिरिवात्रे संस्कृते तदव्यापत्तये भोजनकालानतिक्रम-

णाय च देवताः प्रतिप्रेप्सति । विज्ञायते हि । ‘ देवता वै सर्वा आशंसन्ति प्रहे गृह्यमाणे मह्यं ग्रहं गृह्णाति ’ (मैत्रा० सं० ४ । ८ । ७)

इति । अत इदमुक्तम् ‘ इयं वो अस्मदति हर्षते मतिः ’ इति ।

१ क. ख. २ (१४) ; ट. ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये उतरषट्के पञ्चमाध्याये चतुर्दशः खण्डः ; क. ख. ग. च. वर्जामितरुषड्को नास्ति. २ क. ख. छ. त. द. न. वो अस्म. ३ क. ख. ३ (१५) ; त. द. ३. ४ म. इति । इया. ५ ग. ज. °तस्मिन्कर्मणि, (स्मै) च. °तस्मिन्कर्मणि (स्मै) ६ व ट. सगणापः ट. ह. मृगणनाय. षे. ७ ग. प्र. °दृग्दर्शने.

५.

१०

१५

२०

२५

३०

- कथं पुनः प्रतिहर्षते । तृष्णजे न तृष्णजे इव । तृडुपजायते यस्मिन्
विशेषतः काले स तृडुपजः कालो घर्मान्तः । तस्मिन् यथा दिव उत्सा
द्युले कादुःसाः उत्सप्रभवा भेध्या आपः उदन्यत्रे उदकमिच्छते लोकाय
आगच्छन्ति प्रावृषि तथस्मन्त्या प्रतिहर्षमाणा आगच्छतेति । उदन्यु-
५ श्वातक इति केचित् । तस्य प्रेसतो यथा दिव उत्सा भेधा आगच्छन्ति
तथास्माकमागच्छतेत्येवं तेषां योजना ।

- ‘ ऋभवः ’ (१०) कस्मात् । ‘ उरु भान्तीति वा ’ । ते हि
बहु भान्ति दीप्यन्ते । उरुशब्दात्पूर्वपदं भातेरुत्त-
१० ऋभवः कस्मात् रपदम् । ‘ ऋतेन भान्तीति वा ’ । यज्ञेन
सत्येन वा भान्ति । तदेधोत्तरपदम् । पूर्वपदे विकल्पः । ‘ ऋतेन भव-
न्तीति वा ’ । भवतेर्धोत्तरपदम् । ते हि ऋतेन सत्येन वा भवन्ति यज्ञेन
वा भवान्त । भूत्या देवत्वेन सर्वे युज्यन्ते । ‘ तेषामेषा भवति ’ ॥ १५ ॥

- विष्टी शर्षी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
१५ सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः
(ऋ० सं० १ । ११० । ४) ॥ कृत्वा कर्माणि क्षिप्रत्वेन
वोढारो भेधाविनो वा मर्तासः सन्तोऽमृतत्वमानश्विरे सौधन्वना
ऋभवः सूरख्याना वा सूरप्रज्ञा वा संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः
२० कर्मभिर्ऋश्विभवा वाज इवि सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा
बभूवुस्तेषां प्रथमोचमाभ्यां बहुवचिगमा भवन्ति न मध्यमेन
तदेतद्भोश्च बहुवचनेन चमसस्य च संस्तवेन बहूनि दशत-
यीषु सूक्तानि भवन्त्यादित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते । अगोह्यस्य
यदसंस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानुं गच्छथः । अगोह्य आदि-
त्योऽगूहनीयस्तस्य यदस्त्रपथ गृहे यावत्तत्र भवथ न तावदिह
२५ भवथेत्यङ्गिरसो व्याख्यातास्तेषामेषा भवति ॥ १६ ॥

- १ क. ख. ३ (१५) ठ. ड °वति । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये पञ्च-
दशः एणहः; ग. च. वर्जमितरेण्यङ्को न.स्ति. २ छ. त. द. वोन्हारो. ३ क. ख.
२९ छ. त. द. सन्तो अमृ°. ४ क. ख. ४ (१३); त. द. ४.

त्रिष्टु शमीति^१ । कुत्सस्येयमार्षम् । आर्भवे विनियोगः (आश्व० श्रौ०
 ऋभवः ७ । ७) । 'त्रिष्टु शमी' इति द्वे अपि
 कर्मनामनी (निघ० २ । १) । यतोऽनामि-
 त्तायै भाष्यकारः पूः तावन्निराह 'कृत्वा' इति । किं कृत्वा । शनी
 कर्माणि । कथम् । तरणित्वेन क्षिप्रत्वेन क्षिप्रकारित्वेन सर्वयज्ञसंपर्दानेन ।
 वाघतो वोढारो यज्ञस्यानुष्ठातारो भेषाविनो वा । न ह्यमेवाग्निः संवत्सरेण
 सकलं कर्म समापयितुं शक्ताः । ते तु संवत्सरेऽखिलं कृत्वा मर्तासः
 मनुष्याः सन्तः अमृतत्वम् अमृतभावं देवत्वम् आनशिरे प्राप्तवन्तः । के
 पुनस्ते । सोधवनाः सुधन्वनः पुत्राः ऋभवः सूरचक्षसः सूभोत्रेख्याताः^२
 सूर्यसमानदर्शनाः सूर्यसमानप्रज्ञाः वा । यत ईदृशास्तेऽतः संवत्सरे
 समपृच्यन्त समयुज्यन्त धीतिभिः कर्मभिः । अतश्च देवा अमवन्ति ।

५

१०

'ऋभुर्विभ्रा वाज इति सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः'
 इति । आर्भवाणां मन्त्राणां स्वभावोपप्रदर्शनार्थ-
 माह । 'तेषां मथमोत्तमाभ्याम्' ऋभुणा वाजेन
 च बहुवृत्तिगमा भवन्ति न मध्यमेन विभ्रा ।
 स ह्यार्भवाणां मन्त्राणां स्वभावः । 'तदेतत्'
 उच्यते 'ऋभोश्च बहुवचनेन चमसस्य च संस्त-
 वेन बहुनि दशतयीषु सूक्तानि भवन्ति' । तद्यथा ।
 'इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसभै-
 रयन्त' (तै० सं० ३ । १९) इति ।

१५

२०

'आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते' इत्यभिधेयव्यभिचारमुपप्रदर्श-
 यति । क्व च पुनस्त उच्यन्ते । यतः पठति । 'उद्वत्स्वस्मा अकृणो-

१ ग. 'मीति' । कु०. २ घ. ट. ठ. ड. 'मित्वाये; च. 'मित्वाये' त्वा. ३ ग.
 ज. 'ख्यानाः; च. 'ख्यानाः ताः. ४ ग. ज. 'मानसंशा. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड.
 'त्सरे संवत्सरावयवे वसन्तादिकाले स'. ६ कं. ख. घ. ट. 'ति । अगोह्यस्य यदस-
 मन्नेति । उद्व'; च. 'ति'. उद्व' अगोह्यस्य यदसस्तनेति; ठ. ड. 'ति । अगो-
 हास्येति । ऋक् । उद्वत्स्व'.

तेना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः । अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तद-
द्येदमृभवो नानु गच्छथ ' (ऋ० सं० १ । १६१ । ११) ॥

अस्यामृच आदि- दीर्घतमस आर्षम् । जगती । उद्वसु ये उन्नताः
प्रदेशाः भुवः अङ्घ्रिनाक्रान्तास्तेषु अस्मै लोकाय
५ लयश्मय ऋभवः उपकरिष्यन्तो यूयमभवः अङ्घ्रिणातन प्रतिसं-
त्सरं कुरुध्वे तृणं कुशादि वर्षेणादित्यमण्डलादौ वर्तमानाः । निवत्सु

पुनर्निम्नेषु भुवः प्रदेशेषु अपः उदकं कुरुध्वे स्वपस्यया लोकानुग्रहप्र-
वृत्त्या वर्षक्रियया हे नरः । किञ्च । अगोह्यस्य योऽयम् अगोह्यः
आदित्यः अगृहनीयः न गृहितुं शक्यः केनचिदपि अस्य यदसस्तना

१० गृहे यावदस्य मण्डले सुप्ता इव निगृह्या भवथ । तद्येदमृभवो नानुग-
च्छथ । हे ऋभवो यावत्तत्र निगृह्या भवथ रात्रौ न तावदिह भवथ ।
ततश्च युष्मद्विनाभावे निरालोकोऽयं लोकः संपद्ये । एतद्वो महाभाग-
महमनुकीर्तयामि । ते यूयमदं नामास्माकं कुरुतेति ।

‘ अङ्घ्रिसो (११) व्याख्याता ’ एकवचनेन ‘ अङ्घ्रिष्वङ्घ्रिः ’

१५ (निरु० ३ । १७) इति । ‘ तेषामेषा भवति ’ ॥ १६ ॥

विरूपास इहपयस्त इद्रम्भीरवेपसः । ते अङ्घ्रिरसः सूनवस्ते
अग्नेः परि जङ्घिरे (ऋ० सं० १० । ६२ । ५) ॥ बहुरूपा ऋषयस्ते
गम्भीरकर्माणो वा गम्भीरप्रज्ञा वा त्साङ्घ्रिरसः पुत्रास्तेऽग्नेरधिज-
२० ङ्घ्रि इत्यग्निजन्म पितरो व्याख्यातास्तेषामेषा भवति ॥ १७ ॥

१ ग. 'तनेति । दी' ; व. ट. च. ज. 'तनेति । दी' . २ ग. 'प्रवत्तया; च.
'प्रवर्तया च; ज. प्रवर्तया; ट. प्रवृत्तया' वर्त. ३ म. ज. गृह' ; च. 'गृह' अ.
४ च. 'निगृ' न; ज. 'निगृ' ५ ग. ज. 'निरुह्या; च. 'निरुह्या' गू. ६ म. च. ज.
महा'. ७ क. ख. ४ (१६); ट. ड. १६ । इति निरुक्तमाग्ने पञ्चमाध्याये
षोडशः खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्घ्रि नास्ति. ८ क. ख. त. द. ते अङ्घ्रि'.

२७ १ क. ख. छ. त. द. 'स्ते अग्ने'. १० क. ख. ५ (१७); त. द. ५.

विरूपासः इति । नामानां देष्टव्यापम । अनुष्टुप् । पाष्टिके पष्टेऽहनि
विनियोगः (आश्व० श्रौ० ८ । १) । विरूपाः नानारूपाः । के

अङ्गिरसः पुनस्त इति । ऋषयः अविद्यथस्य ब्रह्मणो
द्वयारः । न केवलं पश्यन्ति । अपि च ।

गम्भीरवेपसः अप्रमेयकर्माणः । अप्रमेयबुद्धयो वा । ऋष्यनेकत्वे
कतमास्त इति । अङ्गिरसः सूनवः । येऽङ्गिरसः सूनवस्त
एते विवक्षिताः । कदा पुनस्ते अङ्गिरसो जङ्गिरे । अत आह । ते अग्नेः
पारि जङ्गिरे इति । अग्निस्वमापन्नस्याङ्गिरसोऽधि सकाशात् जङ्गिर ते एते
विरूपा गम्भीरवेपसश्च मनेदं नामं कुर्वन्विति ।

‘पितरो (१२) व्याख्याताः’ ‘द्यौर्मपिता’ (निरु० ४ । २१)
इत्यत्र । ‘तेषामेषा भवति’ ॥ १७ ॥

उदीरतामवर उत्परांस उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य इयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु (ऋ० सं०
१० । १५ । १) ॥ उदीरतामवर उदीरतां पर उदीरतां मध्यमाः
पितरः सोम्याः सोमसंपादिनस्तेऽसुं ये प्राणमन्वीयुरवृका अन-
मित्राः सत्यज्ञा वा यज्ञज्ञा वा ते न आगच्छन्तु पितरो ह्वनेषु
माध्यमिको यम इत्याहुस्तस्मान्माध्यमिकान् पितृन्मन्दन्तेऽङ्गिरसां
व्याख्याताः पितरो व्याख्याता भृगवो व्याख्याता अथर्वाणोऽ-
थनवन्तस्थर्षतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधस्तेषामेषा साधारणा
भवति ॥ १८ ॥

उदीरतामवर इति । शङ्खस्यार्पम् । पितृमन्त्रे विनियोगः (आश्व०
श्रौ० २ । १९) । ये तावत् अघरे पितरः
पितरः पृथिवीमाश्रितास्ते तावत् उदीरताम् ऊर्ध्वं
गच्छन्तु । अथ पुनर्घरे परे श्लोकमाश्रिताः तेऽप्युदीरतम् । तेषामप्यप्रत्यु-

१ ग. इति । ना. २ क. ग. व ट. ते अ. ३ ग. ज. यत्. ४ ट.
सोऽत्र मि. ५ ग. ज. कुरुध्वनिनि; च. कुर्वन्विति वन्वि. ६ क. ख. ५
(१७); ठ ड वनि । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चम्याये सप्तदशः खण्डः; ग. च.
वर्जितरेण्वङ्को नास्ति. छ. त. द. ‘पमूर्जियु’. ८ छ त. द. ‘धर्मको’. ९ छ.
त. द. ‘धमता’. १ क ख. ६ (१८); त. द. ६. ११ ग. इति । श. २१

तिरस्तु मुच्यन्तां वा तदधिकारप्रक्षये । उन्मथ्यमाः पितरो येऽपि मध्यमा
मध्यस्थानाश्रयास्तोऽप्युदीरताम् उत्तमं लोकमाश्रयन्ताम् । सोम्यासः सोम-
संपादिनः कर्मपथङ्गभावपुपगच्छन्तो ये सोमं संपादयन्ति । किंप्रकाराः ।
अमुं य ईयुः प्राणमात्रमूर्त्यः अस्थूलविप्रहाः । अवृका अनमित्राः परं
साम्यमुपगताः । ऋतज्ञाः यथावत्सत्यस्य वेदितारो यज्ञस्य वा । य एवमा-
दिगुणयुक्ताः पितरस्ते अस्माकं अवन्तु नित्यम् आगच्छन्तु हवेषु आह्वाने-
ष्वित्येतदाशास्महे ।

पितृणां कथं 'माभ्यमिको यम इत्याहुः' नैरुक्ताः । 'तस्मा-
माभ्यमिकत्वम् पितृन्माभ्यमिकान्मन्यन्ते' सै हि तेनां राजेति ।

- १० अत उत्तरे 'अथर्वाणो (१३) भृगवः' (१४) इत्येते पदे
समान्नाते । न चैतयोः समस्तयोः प्रत्येकं वा स्तुति-
रस्ति । अस्ति तु पित्रङ्गिरोभृगुभिः साधारणा स्तुतिः । यतस्तादृङ्नि-
र्धचनाय प्रसङ्गक्षमाणांभिः प्रेत्याथर्वाशब्दनिर्वचनप्रसङ्गद्वयीति । 'अङ्गि-
रसो व्याख्याताः' (निरु० ३ । १७) येऽस्यामृचि वक्ष्यमाणाः ।
१५ 'पितरो व्याख्याताः' (निरु० ४ । २१) । 'भृगवो व्याख्याताः'
(निरु० २ । १७) । 'अथर्वाणः' कस्मात् ।
अथर्वाणः कस्मात् ते ह्येते 'अथनवन्तः' । किमिदमथनं येन ते
तद्वन्तः । यत आह । 'थर्वतिश्चरतिकर्मा' गच्छत्यर्थः । ततः किम् ।
'तत्प्रतिषेधः' । पुरस्तादकारः । न थर्वन्तीत्यथर्वाणः । स्थिरप्रकृतयो हि
२० ते । 'तेषामेवा साधारणा भवति' अङ्गिरःप्रभृतीनाम् ॥ १८ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवगवा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमती यज्ञियां नामपि भद्रे सोमनते स्याम (ऋ० सं०
१० । १४ । ६) ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवगतयो नवनीत-

- २५ १ ग. ज. 'स्ति । तेषां'; च. 'न्ते । ' तेषां' स हि. २ ग. ज. अस्ति पितु-
भृग्वङ्गिरोभिः सा; च. अस्ति 'पि' तु. ३ क ख. घ. ट. ठ. ड 'संक्षमा'; ग.
ज. 'संक्षमाणामभिः; च. 'संक्षमाणामभि' न. ४ घ. ट. 'माणाः यां पि'; च.
'माणाः पि' यां, ठ. ड. 'माणायां पि'. ५ क. ख. ड (१८); ट. ड. १८
२९ लण्डः; ग. ज. वर्गमितरेष्वङ्को नास्ति.

गतयो वाथर्षाणो भृगवः सोम्याः सोमसंपादिनस्तेषां वयं सुमतौ
कल्याण्यां मतौ यज्ञियानामपि चैषां भद्रे भन्द्नीये भाजनवति
वा कल्याणे मनसि स्यामेति माध्यमिको देवगण इति निरुक्ताः
पितर इत्याख्यानमथाप्युषयः स्तूयन्ते ॥ १९ ॥

अङ्गिरसो नः पितर इति । यमस्यार्पितम् । अङ्गिरसः अस्माकं सोमसं-

पादिनः नित्यं कल्याण्यां मतौ वर्तन्ते । पित-

अथर्वाणः रश्च नवग्वाः नवगतयः पितृयज्ञानागन्तुं येषां

प्रतिमासं नवा गतिर्भवति । ' नवनीतगतयो वा ' । नवनीतं प्रति येषां

मनसो गतिरिदमस्माकमिति ते नवग्वाः । विज्ञायते हि । ' स्वयं विलीनं

पितृणाम् ' (वैत्रः ० १० ३ । ६ । ५) इति । पितरश्च वल्लक्षणाः अथर्वा-

णश्च भृगवश्च य एते सोमसंपादिनः । अस्माकं कल्याण्यां मतौ वयमपि तेषां

सुमतौ कल्याण्यां मतौ उपकारप्रवृत्तायां यज्ञियानां यज्ञसंपादिनां स्याम ।

अपि च । तेषां भद्रे भन्द्नीये स्तूये सोमनसे कल्याणे मनसि स्याम ।

' भाजनवति वा ' । येन मनसा भाजयन्त्यभिमतैरर्थैः स्तोतृस्तस्मिन् शोभने

च सेकल्पे शोभने वा अध्यवसाये स्यामेत्यर्थः ।

' माध्यमिको देवगण इति निरुक्ताः ' । ऋभवाऽङ्गिरसो भृगवाऽथ-

र्वाण इति स्तुत्युपपत्तेर्देवतापदमध्ये समाम्नाना-

देकैकै एषां देवगण इति निरुक्ता मन्यन्ते ।

' पितर इत्याख्यानम् ' । को विशेषः । अग्न्या-

दिदेवताविपर्ययस्तद्धर्मदेवताप्रकार एवायं य एते

पितरौ नाम । त एव ऋभुसुनन्कुमारादय इत्या-

ख्यानविदः स्मरन्ति । अस्मावपि मन्त्राणां विषय

इत्युपेक्ष्यः । अपि च । देवगणा एत एत पितरः

इत्युपेक्ष्यः । अपि च । देवगणा एत एत पितरः

इत्युपेक्ष्यः । अपि च । देवगणा एत एत पितरः

इत्युपेक्ष्यः । अपि च । देवगणा एत एत पितरः

१ छ. त. द. कल्याण्यां मतौ सुमतौ. २ छ. त. द. 'ध्यमिको. ३ क. ख.
७ (१९), त. द. ७. ४ ग. इति । य°; ठ. ड. न इति. ५ क. ख. घ. ट. ठ.
ड. 'र्षम् । विष्टम् । अ°; च. 'र्षम् । अ° विष्टम्. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड.
'कैकश ए°. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'वप पदविप'.

अथवा एते ऋष-
यः सूर्यस्मादपय ऋ-
ग्वेदे स्तूयन्ते

इति कुतो विचारः । ऋभवोऽङ्गिरसो भृगव
इत्येवमादीनामभिधानानामृषिषु प्रसिद्धेः ।
'अथापि' इदमपरं कारणमपय एवैत इति
यतोऽन्येऽपि 'ऋषयो' हि 'स्तूयन्ते' ।

५ तद्यथा । वसिष्ठाः ॥ १९ ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेपां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्ये तवे वः (ऋ० सं०
७ । २३ । ८) ॥ इति यथा आप्त्या आप्नोतेस्तेषामेव निपातो
२० भवत्येन्द्रासृचि ॥ २० ॥

सूर्यस्येव वक्षथ इति । इन्द्रस्यार्पम् । यथा सूर्यस्य दीतिरवभासिका
अस्यासृचि वसिष्ठाः अर्थानाम् एवम् एषां वसिष्ठानां वक्षथो
स्तूयन्ते वचनस्य दीतिर्गर्भदेवीदिगतानामर्थानामसंदेहे-
१५ नावभासिका वाच्येऽर्थे । अपि च । न केवल-
मेषामसंदिग्धार्थानि वचांसि गम्भीराणि च महार्थवन्ति गम्भीरार्थतया
दुरवगाहानि । यत आह । समुद्रस्येव महिमा गभीरः । यद्येदकमपरिभयं
समुद्रे एवमपरिभयार्थानि । सत्यपि च महार्थं नैते बिलम्बितस्तुतयः ।
किं चर्हि । वातस्येव प्रजवः । प्रकृष्टो जव आशुप्रतिपत्तिः । तुष्टृपतां
२० वर्णभद्रक्येषु निर्मलमनोवाग्भृती शब्दार्थावसङ्गम प्रतिपद्येत् । अपि च ।
एवमतिमहानुभावा एते नैतेषामन्यः स्तोता वचनपदवीमनुगन्तुं शक्तः ।
यतो ब्रवीमि । नान्येन केनचित्स्तोत्रा हे वसिष्ठाः । प्रत्यक्षीकृत्योत्तरेण
पादनं ब्रवीति । एष स्ताम इय स्तोतेभारवर्कौ अमांन्द्राश्चा गम्भीरा । वल-
म्बिता च नान्येनान्ये तत्र नानुगन्तुमन्येन शक्या । क एनामनुकारिष्यतीति
स्तुतिपरितुष्ट इन्द्रो वसिष्ठानस्तौत् ।

१ क. ख. ७ (१९) ; ठ. ड. °सिष्ठाः । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्यायं १५
खगडः ; ग. च. वर्जमिरेष्वङ्को नास्ति. २ क. ९. ८ (२.) ; त. द. ८. ३ ग.
इति । इ° ; उ. व. सूर्यस्येवेति. ४ ग. च. ज. °नामेषां ५ ग. ज. 'विदेवा° . ६ व.

२९ ट. ठ. ड. वसिष्ठाः, ७ ग. च. ज. °भारवर्कौ.

एवमृषयोऽपि स्तूयन्त इति प्रदर्शयत्ययमप्यस्तीति मन्त्राणां विषय इति ।

अपरे पुनः । सूर्यस्यैव वक्षथः सूर्यतेजःसमानदांतेरस एने वासिः
अन्येषां मते ऋचो- एतस्तजस्विनः समुद्रोपमगम्भीरस्वभावाश्च शशि-
न्योऽर्थः गतयश्च सर्वत्राप्रतिहनजयाः । नैतेषामन्येन गति- ५
स्तुगन्तुं शक्नोति वर्णयन्ति ।

‘ अःप्यः ’ (१५) अपीन्द्रसहचरिण ऋषय एकतद्वितत्रिताः ।
अःप्याः कस्मात् ‘ ते इन्द्रेण सह चेरुः ’ इति विज्ञायते (शत०
ब्रा० १ । २ । ३ । २) । ऋग्वेदादभोऽप्ये-
तस्मादेव दर्शनाद्यपिपक्षे मध्यस्थानाः । ते कस्मात् । ‘ आप्रोतेः ’ । १०
आप्नुवन्ति हि ते स्तुतिभिः स्तुत्यान् । तेषामेव निपातो भवत्यैन्द्रशामृषि
इन्द्रे यस्यां स्तूयते तस्यामृचि ॥ २० ॥

स्तुपेय्यं पुरुवर्षममृभ्वमिनतममाप्तयमाप्तयानाम् । आ
दर्पते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि (ऋ० सं० १५
१० । १२० । ६) ॥ स्तोतव्यं बहुरूपमुरुभूतमीश्वरतममाप्तव्य- १५
माप्तव्यानामाहृणाति यः शवसा बलेन सप्त दातृनिति वा सप्त
दानवानिति वा प्रसाक्षते प्रतिमानानि बहूनि साक्षतिराप्नोति-
कर्मा ॥ २१ ॥

३३कादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

२०

स्तुपेय्यं पुरुवर्षसमिर्ति । बृहद्विवस्यार्यम् । महाव्रते त्रिनिर्योगः (ऐ०
आ० ५ । १ । ६) । स्तुपेय्यं स्तोतव्यम् अहं
आस्थाः स्तोमोन्द्रम् । किलक्षणम् । पुरुवर्षसं बहुरूपम्
ऋभ्वम् उरुभूतम् इनतमम् ईश्वरतमम् आस्थम् अप्तयानामृषीणां स्तुति-

१ क. ख. ८ (२०) ; ठ. ड. °मृचि । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये
पिशतिः खण्डः ; ग. च. वर्जमिनेरेष्वङ्गो नास्ति. २ क. ख. ९ (२१) ; त. द.
१. ३ छ. द्वितीः ; त. इति एकादशमोऽध्याये द्विः ; द. एकादशमाध्याः ; इ. थ.
३. उ. ड. ‘ एका० पादः ’ नास्ति. ४ ग. ‘ मिने । ब.°.

२३

भिरतिशयेनः आप्तव्यम् । आदर्षते आदृणाति यः शवसा बलेन आदार-
यति । किम् । सप्त दानून् सप्त दातृन् मेघान् । असुरान् दानवान् ।
नमुचिप्रभृतीन्पृथक्प्रपक्षे । केन । शवसा बलेन । प्रसाक्षते च य
आप्तोऽभिभवति च प्रतिमानानि भूरे बहून्पि । तदुक्तम् । ' येरेनं
५ प्रतिमिते नैनं तानि दभ्नुवन्ति ' (निरु० ५ । १२) इति ।

' साक्षित्तिरामोत्तिकर्मा ' ॥ २१ ॥

षोडशस्य द्वितीयः पादः ।

तृतीयः पादः ।

१० अथातो मध्यस्थानाः स्त्रियस्तासामदितिः प्रथमागामिनी
भवत्यदितिर्व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ २२ ॥

१५ ' अथातो मध्यस्थानाः स्त्रियः ' । बहुवचनविशिष्टस्य मध्यमस्य
मध्यस्थानाः स्त्रियः गणशोऽवस्थितस्य विभवो व्याख्यातः । लिङ्ग-
विशिष्टस्येदानीं यथासमन्नायमेव व्याख्यातव्यः ।
तदर्थं पुनर्विशेषतोऽधिकारवचनम् ' अथातः ' इति । मध्यम् आसां
स्थानमिति ' मध्यस्थाना ' इति । काः पुनस्ताः । स्त्रियः इति ।
वक्ष्यन्त इति शेषः । ' तासामदितिः (१६) प्रथमागामिनी भवति ' ।
सा कस्मात् । उक्तं हि ' अदीना देवमाता ' (निरु० ४ । २२)
२० इति । ' तस्या एषा भवति ' ॥ २२ ॥

१ ग. ज. सप्तदा उदके सप्त० २ क. ख. व. ट. ठ. ड. °रन्वा दा०
३ च. °न वान्ने° न्वा. ४ क. ख. १(२१); ठ. ड. °कर्मा । इति निरुक्त-
भाष्ये पञ्चमाध्याये एकविंशतिः खण्डः; ग. च. वर्जितरेष्वङ्गो नास्ति. ५ व. ट.
षोडशाध्यायस्य द्वि०; ठ. ड. इति निरुक्तभाष्ये नियण्टुपञ्चमाध्यायेन सह षोडशा-
ध्यायस्य द्वितीयः पादः. ६ क. ख. १ (२२); त. व. १. ७ च. मध्यमा० म.
८ क. ख. १ (२२); ठ. ड. °दिति । इति निरुक्तभाष्ये द्वाविंशतिः खण्डः; ग.
९ च. वर्जितरेष्वङ्गो नास्ति.

दक्षस्य वादिते जन्मानि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
 अतूर्तपन्थाः पुरुरथा अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु (ऋ०
 सं० १० । ६४ । ५) : दक्षस्य वादिते जन्मानि व्रते कर्मणि
 राजानौ मित्रावरुणौ परिचरसि विवासतिः परिचर्यायां हविष्माँ
 आविवासतीत्याशास्तेर्वातूर्तपन्था अत्वरमाणपन्था बहुरथोऽर्यमा- ५
 दित्योऽरीन्निचच्छति सप्तहोता सप्तास्मै रश्मयो रसानभिसंनाम-
 यन्ति सप्तैनमृषयः स्तुवन्तीति वा विषमरूपेषु जन्मसु कर्मसूदये-
 श्वादित्यो दक्ष इत्याहुरादित्यमध्ये च स्तुतोऽदितिर्दाक्षायणी ।
 अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वादितिः परीति च । तत्कथमपुष्येत
 समानजन्मानौ स्यातामित्यपि वा देवधर्मेणेतरेतरजन्मानौ स्याता- १०
 मितरेतरप्रकृती अग्निरप्यदितिरुच्यते तस्यैषा भवति ॥ २३ ॥

दक्षस्य वादित इति । गयस्यार्पम् । वैश्वदेवे शस्यते । अहोरात्रे
 मित्रावरुणौ । तयोर्या मन्ध्रवेला तस्यां प्रथममव-
 द्वादितिः इयायरमानुप्रदानसंवन्धात्तौ मध्यमामदितिमभि- १५
 प्रेलोच्यते । दक्षस्य वादिते इति । ' वा'शब्दः किमर्थः । यदा
 आदित्यस्त्वत्तो जातस्त्वं वा आदित्यात् । सन्निवेदानन्तरं ह्यादित्यस्योदयो
 जन्म । तदेवास्य व्रतं कर्म । तदुक्तम् । ' कर्मजन्मानः ' (निरु० ७ । ५) इति ।
 अथ तदेवं दक्षस्य जन्मनि उदये चार्धवर्तिन्यादित्ये यतो वा लम्बाभिका २०
 त्वम् अपि अहोरात्रे उभे विवाससि परिचरसि सर्वतो व्याप्तोपि । अर्धेनाह-
 र्वाप्तोपि मित्रम् अर्धेन च रात्रिं वरुणम् । राजानौ सर्वलोकेश्वरौ
 स्वाधिकारयुक्ताश्चितिकर्तव्यतासु तदधीनत्वात्प्रवृत्तेरिति । किलक्षणे यो
 दक्षस्तस्य जन्मनीति । यत आह । अतूर्तपन्थाः योऽवमादित्यः अत्वर-
 माणपन्थाः अत्वरमाणः पथि वर्तते नियतगतिः प्रतिमुहुर्त् प्रत्यहं च । पुरु- २५
 रथः बहुरंहणः अर्धमा अरीणां तमनां नियन्ता । सप्तहोता । सप्तास्मै रश्मयो
 रसानभिसंनामयन्ति । तदस्य सप्तहोतृत्वम् । ' सप्तैनमृषय आह्वयन्ति ' २५

१ छ. त. द. कर्मणि व्रते. २ क. ख. २ (२३); त. द. २. ३ ग. इति । ग०.
 ४ ग. ज. तस्याः प्रथमस्यायरसा०. ५ च. छ. ंन्धानां. ६ क. ख. ग. ज. द.
 ७. ८. ९. यदा दक्ष आदिः च. यदा दित्ये दक्ष आ.

नमन्ति स्तुवन्ति वसिष्ठाद्यास्तद्वास्य सप्तहोतृत्वम् । विषमरूपेषु जन्मसु ।
विषमरूपेषु । अन्यस्मिन्श्चान्यस्मिन्श्च नभसः प्रदेशे अयमुदेति मण्डलान्तरं
हित्वा दक्षिणोत्तरायणयोः । तदस्य विषमरूपस्य विषमजन्मता । ततो
लब्धाभिका तं वा जनयन्ती या त्वमेतौ मित्रावरुणौ परिचरसि सा
५ त्वमिदं नामास्माकं कुरुष्वत्येतदाशास्मह इति समस्तार्थः ।

अथवा । दक्षस्य वा । यदा दक्षस्त्वत्तो जातो व्रतं च कर्मणि पृच्छतः

ऋचोऽन्योऽर्थः स्वाधिकारयुक्तोऽयम् अर्तुत्पन्थाः पुरुरथो अर्थ-
मा सप्तहोता विषुस्वरूपेषु जन्मसु । य एष

वर्तते भगवानादित्योऽथ तदा मित्रावरुणौ त्रिवासस्याशास्से ममैतावपि पुत्रत्वे
१० लोकोपकारित्वेन सम्यग्वर्तेयातां यथैष दक्ष इत्यैतिहासिकपक्षे योजना ।

‘ त्रिवासतिः परिचर्यायाम् ’ इत्यत्र निगमः । ‘ हविष्मा आवि-
वासति ’ ।

‘ यो अग्निं देवधीतये हविष्मा आविवासति । तस्मै पावकमूर्च्छय ’

अस्यामृचि विवा- (ऋ० सं० १ । १२ । ९) ॥ भेषातिथेरा-
१५ सतिः परिचर्यायाम् पम् । गार्हपत्यानुगमने पूर्णाहुतिरनया हृतते.
(आश्व० श्रौ० ३ । १३) । हे पावक

अग्ने देवधीतये देवभोजनाय हविष्मान् हविःसंपयुक्तो यस्त्वाम् आविवा-
सति परिचरति तस्मै मूर्च्छय उपदयां रक्षां कुर्वित्येतदाशास्महे ।

‘ आदित्यो दक्ष इत्याहुः ’ देवतासतत्त्वविद्ः । केन दर्शनेन ।

२० दक्ष आदित्यो य- ‘ आदित्यमध्ये च स्तुतः ’ । चक्षत्रो हेत्वर्थः ।
स्मादादित्यानां मध्ये यस्मादादित्यमध्ये स्तुतः । स्तुतिप्रामाणिका हि
स्तुतः ते देवतासतत्त्वचिन्तां प्रति । कथमादित्यमध्ये
स्तुत इति । ‘ इमा गिरः ’ (ऋ० सं० २ ।

२७ । १) इत्युपक्रम्य व्रवीति ‘ तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ’

२५ (ऋ० सं० २ । २७ । १) इति आदित्यमध्ये स्तुतेरादित्य एवा-
साविति ।

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘विपुरु’; च. विषमं पु. २ क. ख. घ. ट. ठ.
ड. ‘न्तरं मण्डलान्तरं हि’; च. ‘न्तरं हि’ मण्डलान्तरं. ३ क. ख. घ. ट. ठ.
ड. ‘रथो’ जन्मसु. ४ ग. ज. ‘विषमरु’. ५ ग. यो अग्निं देवधीतये मूलय;
घ. च. यो अग्निं मूलय; ट. यो अग्निं मूलय. ६ ज मूलय. ७ ग घ. च. प्र.
३१ मूलय. ८ च. ‘स्मृतिप्रैमा’ प्रा.

यद्यत्र नन्विदमपरं विरुध्यते यदैतिहासिका आहुः 'अदितिर्दाक्षायणी'
इति । उभयमपि चैतन्निगमे श्रूयत आदित्यो दक्षो दाक्षायण्यदितिरेति ।
तद्यथा । ' अदिदेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वादितिः परि । भूर्जज्ञ उत्तानपदो
भुव आशा अजायन्त ' (ऋ० सं० १० । ७२ । ४) ॥ अदिदेर्दा-
क्षायण्या आर्षम् । उत्तानपाद्राजा कश्चिद्यः पुराणेऽपि मर्थते । ततस्तावद्भ-
र्नाम कश्चिज्जज्ञे । सतोऽपि भुव आशा दिशः अजायन्त । किञ्चजन-
नभावमसौ कथमपि विभर्ति देवताजन्मप्रतिक्रियया वा । अदिदेर्दक्षो अजायत
प्रादुर्बभूव । दक्षाच्चै परि अधि सकाशात् अदितिः प्रादुर्बभूव ।

५

' तत् ' इतरेतरविरुद्धं ' कथमपपद्येत ' । यतः प्रतिसमाधानं ब्रवी-

अदिदेर्दक्षोऽजा- ति । ' समानजन्मानौ स्यतामिति ' ।
यत दक्षाच्चादितिरे- समनन्तरजन्मानौ समानजन्मानौ यथोपवर्णितं
ति कथमुपपद्येत मन्त्रे । ' दक्षस्य वादिते ' इत्यत्र । ' अपि वा
देवधर्मेण ' । महात्मनादितिमपेक्ष्य तस्याः
कारणत्वं च कार्यत्वं च दक्षस्य । अथवा । महात्मना दक्षमप-
दित्यादितेः कार्यत्वम् । एवं कृत्रोक्तम् ' इतरेतरजन्मानावितरेतरप्र-
कृती ' इति ।

१०

१५

अधुना व्यभिचारं दर्शयति । ' अग्निप्यदितिरुच्यते ' इति ।
' तस्य ' अग्नेर्दितिशब्दवाच्यत्वे ' एषा भवति ' ॥ २३ ॥

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददांशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता । यं भ-
द्रेण शर्वसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम (ऋ० सं०
१ । ९४ । १५) ॥ यस्मै त्वं सुद्रविणो ददार्ष्यनागास्त्वमनप-
राधत्वमदिते सर्वासु कर्मतत्पत्राग आङ्पूर्वाद्भवेरेण एतः किलिपं
किलिभदं सुकृतकर्मणो भयं कीर्तिस्य भिनचीति वा यं भद्रेण

२०

१ ग. ज. तद् । २ क. ख. य. ट. चैतपरमन्त्रिं ३ च. 'था । अदिते-
र्दाक्षा० अदिदेर्दक्ष इत्यादि; ठ. ड. 'भूर्जज्ञ' इति पूर्वार्थे यथा संहितायाम्. ४ ग.
परि ॥ मू. ५ ग. ज. दक्षाद्भुपरि०. ६ ग. च. ज. 'कृती त इति ७ क. ख. २
(२३); ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाषो उत्तरपदके पञ्चमाध्याये त्रयोविंशतिः
खण्डः; ग. च. वर्जमिरेरप्यङ्को नास्त. ८ उ. त. द. 'इ शोना'; क. दक्षयना०.
९ उ. त. द. 'राधिव'. १० ड. 'कर्मणो'.

२९

शवसा बलेन चोदयसि प्रजावता च राधसा धनेन ते वयमिह
स्यामेति सरमा सरणात्तस्या एषा भवति ॥ २४ ॥

- यस्मै त्वं मुद्रविण इति । कुत्सस्यार्पम् । प्रातरनुवाके विनियोगः
 ५ अस्यामृचि अ- (आश्व० श्रौ० ४ । १३) । हे मुद्रविणः
 गिरिदितिः मुधन अदिते अग्रे यस्मै त्वं ददाशः ददासि ।
 किमिति । अनागास्त्वम् अनपराधत्वं सर्वताता
 सर्वा मु कर्मततिषु इष्टिपशुसोमलक्षणामु अत्रेगुण्यं करोषि । यं भद्रेण शवसा
 बलेन श्वजात्यविरोधिना प्रजावता च राधसा प्रजासंयुक्तेन च धनेन त्वं
 १० चोदयसि अनुगृह्णासि । ते वयमेवानुगृह्णास्तव स्यामेत्येतदाशास्महे ।
 ' आगः आङ्पूर्वाद्भ्रमेः ' । अवश्यमेवैतदागच्छति कर्तारभित्यागः ।
 प्रसङ्गादाह । ' एन एतेः ' । तदप्येवमेवावश्यमेवैति । यदेतत् ' किंत्वि-
 पम् ' एतत् ' कीर्तिं भिनासि ' ।
 ' सरमा ' (१७) देवशुनीत्यैतिहासिकपक्षेण । माथमिका वाङ्-
 १५ सरमा कस्मात् नैरुक्तपक्षेण । सा कस्मात् । ' सरणात् ' गम-
 नात् । ' तस्या एषा भवति ' ॥ २४ ॥

किमिच्छन्तीं सरमा प्रेदमानद् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
 कास्मेहांतिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि
 २० (ऋ० सं० १० । १०८ । १) ॥ किमिच्छन्ती सरमेदं प्रानर्ह
 दूरे ह्यध्वा जगुरिर्जङ्गम्यतेः पराञ्चनैरचितः का तेऽस्मास्वर्थहि-
 तिरासीत्किं परितकनं परितक्म्या रात्रिः परित एनां तक्म
 तक्मेत्युष्णनाम इति सतः कथं रसाया अतरः पयांसीति रसा
 नदी रसतैः शब्दकर्मणः कथंरसानि तान्युदकानीति वा

- १ छ. त. द. ० धसा ते. २ क. ख. ३ (२४); त. द. ३. ३ ग. इति । कु०;
 ठ. ड. यस्मै त्वामनि. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. यं च भ०. ५ ग. ज. थं चो०;
 च. ० न० चो० त्वं. ६ ग. ज. तद्वे०; च. तद्वे० य. ७ क. ख. २ (२४); ठ.
 ड. ० वति । इति निरुक्तमध्ये पञ्चमः अध्यायः २४ एण्ड; ग. च. वर्जमितेरेष्वङ्गो
 २९ नास्ति. ८ छ. प्रापह; न. द. प्रापह.

देवशुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरैः समूद इत्याख्यानां सर-
स्वती व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ २५ ॥

किमिच्छन्तीति । देवपणयः किलामुराः देवगर्भरपजहुः । ततः
किलेन्द्रस्तदन्वेषणाय तदालयं सरं प्राहिणोत् ।
सरमा ते च देवपणयतां दृष्ट्वा पप्रच्छन्नयर्वा ' किमि-
च्छन्ती सरमा' इति । इदमस्मन्निवासस्थानं सरमा किमिच्छन्ती
किमस्मत्तः प्रार्थयन्ती प्राणत् प्राप्तवती कदाचिदप्यनागतपूर्वेति । अपि च ।
दूरे ह्यध्या । महदेतदधानं न यदृच्छया शक्यमागन्तुम् । य एव जगुरिः
स्यात् भृशंगन्ता स एव शक्त आगन्तुम् । पराचैः पराञ्चनैरचितः पराङ्मुलैः
अञ्चनैर्गमनैः अचितो गतो विप्रकृष्टो देवानवासात् । यतो ब्रूमः । हे सरमे
कास्मेहितिः । का तव अस्मास्वर्थहितिः अर्थस्यार्थानम् । कोऽस्मत्तोऽर्थ-
स्त्व प्राप्तव्योऽभिप्रत आसीद्यनाथमर्तमहानध्या ज्ययसित आगन्तुम् । को
परितर्क्यतीति । किं परितकम् । अपि सुखा रात्रिः अन्तरा तत्रासीत् ।
परितर्क्यो रात्रिः । ' तकमेत्युष्णनाम' तकर्तेर्गत्वर्थस्व । सर्वे गो हि तद्भवं
भवति । तदेनामुभयतः परिगृह्य वर्तते इति परितर्क्यो रात्रिः । अपि च ।
कथं रसाया अवरः पयांसि । रना नाम नदी अव्यर्थयो जनविस्तारा । तस्याः
पयांस्यतिदुस्तराणि कथनतरः कथं तीर्गव्यसि । अथवा । कथरसानि
तायुःकनि । अपि नाम स्वादनि । अपि श्रान्तापरैः श्रान्तरा वासाः
केष्वसन्निति ।

'देवशुनीन्द्रेण प्रहिता' इति निदानप्रत्यासन्न मन्त्रार्थाभिव्यक्तये ।
समूदे संवादं कृतवतीत्यर्थः । इत्याख्यानां च तद एव मन्त्रन्ते ।

वाक्यक्षे तु चिरकार्लानशुष्टुपुपरने कदाचिदभिनयमघसं ये सहसैव
स्नयितुमुपश्रुत्य कुत इयं पाथ्यमिका वाक्यक्षे-
णागतेति । 'स्मितस्ताममूयन्निव व्रवीति' किमि-
च्छन्ती सरमा' इति । इदमस्मच्छेत्रे चिरमनामभ्य

१ छ. समू सु १ २. ख. ४ (५), ट. इ. २४. उ. म. 'न्तीति । दे.
४ क. ख. व. ट. ठ. ड. 'स्यमिवा'. ५ क. ख. व. ट. ठ. ड. अपि च ।
का'; च. ५ का' अपि च. ६ च. 'तवया' कथा. ७ क. ख. व. ट. ठ. ड.
अपि नाम सु'; च अपि ५ सु' नाम. ८ क. ख. व. ट. उ. इ. अन्तरा; च.
अन्तरा. ९ च. 'सरमा.

- सरमा माध्यमिका वाक् किमिच्छन्ती प्रानट् प्राप्तवती । अपि च । दूरं ह्यध्वा ।
चिरकालश्रुनेयमस्माभिः । जगुरिः भृशं यो गन्ता स्यात्सा चिरविच्छिन्नमेतद-
र्षवर्त्म पुनरागच्छेत् । पतनुयात्सरं चैः परं ड्मुखैः एतदचिन्त्यम् । चिरनष्ट-
मित्यर्थः । अपि च । क स्नेहितिः । किमस्मोर्वर्थाभिधानमासीत्पूर्वं तत्र हे
५ सरमे येनागमः । किं वा न जातं येनापुनरागमः । अपि च । चिरप्रो-
षितायास्तत्र किं परितकनमाभीत् । अन्तरिक्षनद्या अपि महत्या रसायाः
कथमत्तरः पयांसि । कथमतिबहुन्युदकानि संक्षोभ्यात्मानं प्रतिलब्धव-
त्यसि । 'वाग्ये सरमा' (भैत्रा० सं० ४ । ६ । ४) इति हि विज्ञायते ।
सरस्वती (१८) अकारुपाता नदीवत् (निरु० २ । २३) इति ।
१० 'तथेद्वतावत्' इत्युक्तमिदं तत् । 'तस्या एषा भवति' ॥ २५ ॥

- पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धिया-
वसुः (ऋ० सं० १ । ३ । १०) ॥ पावका नः सरस्वत्यैरन्नवती
यज्ञं वष्टु धियावसुः कर्षवसुस्तस्या एषापरा भवति ॥ २६ ॥
१५

पावकः नः सरस्वतीति । मधुच्छन्दस आपम् । प्रदग् विनयागः
सरस्वती (आश्र० श्रौ० २ । ८) । सारस्वतं हविषि च
(भैत्रा० सं० २ । १ । ७ ॥ २ । ५ । २ ॥

- २० २ । ५ । ४ ॥ ४ । ७ । ८) । पावका प्रक्षारयन्त्युदकेन । का पुनरसाविति ।
सरस्वती माध्यमिका वाक् । वाजेभिर्वाजिनीवती । अन्नं हविषे देकेन वा
तद्वती । यज्ञमेतमस्माकं वाजेभिः अन्नैः युक्तं वष्टु कामयताम् । अथवा ।
ऋगादिभावमापन्ना देवान्प्रति ब्रह्मु । बक्षयति हि 'तां विश्वरूपाः
पशवो धर्दन्ति' (निरु० ११ । २९) इति । धियावसुः कर्षधना ।
'तस्या एषा अपरा भवति' स्फुटतरादकर्षलङ्का ॥ २६ ॥
२५

१ ग. ज. प्राङ्मुखः. २ ग. ज. 'मस्मत्स्वर्था'; च. 'मस्मत्स्वर्था' स्मास्व.
३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. च. 'वत्यसीति वा । वा. १ ग. च. २५. क. ख. ४
(२९); ठ. ड. 'वति' इति निरुक्तभाष्ये ५ ध्याये २५ खण्डः; ग. च. वर्जमितरे
वृद्धो नास्ति. ५. ख. ५ (२०); त. व. ५. ६ ग. इति । म. ; ट. ड. पावका
न इति ७. ख. घ. ट. ठ. ड. सारस्वते च हविषि च. 'स्वते' च. ८ क.
ख. ५ (- ६); ठ. ड. 'वति' इति निरुक्तभाष्ये ५ ध्याये २६ खण्डः; ग. च.
३२ वर्जितरेष्वङ्गे नास्ति.

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विरा-
जति (ऋ० सं० १ । ३ । १२) ॥ महदर्णः सरस्वती प्रचेत-
यति प्रज्ञापयति केतुना कर्मणा प्रज्ञया वेमानि च सर्वाणि प्रज्ञा-
नान्यभिविराजति वागर्थेषु विधीयते तस्मान्माध्यमिकां वाचं
मन्यन्ते वाग्व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ २७ ॥

५

महो अर्णः सरस्वतीति । पूर्ववदापि त्रिनियोगश्च । महो अर्णो मह-
सैव सरस्वती दुदुक्ं सरस्वती माध्यमिका वाक् । किं करोति ।
प्रचेतयति प्रज्ञापयति आधिःकरोति १ वर्षभावेन ।
केन पुनराधिःकरोति । केतुना स्वेन कर्मणा प्रज्ञया वा । न ह्यप्रज्ञानव-
त्यवलिष्टा चेतच्छक्ता कर्तुम् । एवं चोदकमाधिःकुर्वती धियो विश्वा वि-
राजति । सर्वाणि प्रज्ञानान्यभिविराजति । कथम् । उदकादन्नमन्नाप्रज्ञान-
मित्येवं सर्वप्रज्ञानानामसार्थाष्ट इति ।

१०

‘ वागर्थेषु विधीयते ’ इत्युपपत्तिवचनम् । के पुनर्वाचोऽर्थाः ।
सरस्वती माध्य- ‘ चतस्र ऊर्जं दुदुहे पर्यासिः ’ (निरु० ११ । १५
मिका वाक् २८) इत्येवमादय उदकाधिकारलक्षणाः ।
तोष्यमपि सरस्वती विधीयते ‘ महो अर्णः ’
इत्येवमादिषु । ‘ तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते ’ निरुक्ताः ।
‘ वाक् ’ (१९) वक्तव्या । सा पुनः ‘ व्याख्याता ’ ‘ वचेः ’
(निरु० २ । २३) इति । ‘ तस्या एषा भवति ’ ॥ २७ ॥

२०

यद्वाग्बदन्त्यविचेतनानि राष्ट्रीं देवानां निषसाद् मन्त्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पर्यासिः कं शिवदस्याः परमं जंगम (ऋ० सं०
८ । १०० । १०) ॥ यद्वाग्बदन्त्यविचेतनान्यविज्ञातानि राष्ट्रीं
देवानां निषसाद् मन्त्रा मदना चतस्रोऽनु दिश ऊर्जं दुदुहे पर्या-

१ छ. त. द. °मि मृतान्यभि'. २ क. ख. ६(२९)त. द. ६. ३ ग. °तीति ।
प°. ४ क. ख. ६ (२५); ठ. ड. °वति इति निरुक्तभाष्ये ५. व्याखे २७ खण्डः;
ग. च वर्जमिरेष्यज्ञा नास्ति.

१८

सि क् स्विदस्याः परमं जगामेति यत्पृथ्वीं गच्छतीति वा यदा-
दित्यरश्मयो हरन्तीति वा तस्या एपापरा भवति ॥ २८ ॥

- यद्वाग्दन्तीति । नेमस्यार्यम् । सारस्वते पशौ विनियोगः (आश्व०
 ५ वाक् श्रौ० ३ । ८) । यदा माध्यमिका वाग्दन्ती
 निर्वचन्ती । कानि । अत्रिचेतनानि अविज्ञाता-
 र्थानि शब्दरूपाणि स्तनयित्नुलक्षणानि । राष्ट्रं ईश्वरं माध्यमिकानां देव-
 तानाम् । निपसाद निपीदति व्यापृणोति आत्मानं वर्षकर्मणि मन्द्रा मदना
 १० हर्षकरी तर्पयित्री वा लोकस्य । अथ तदा । किमिति । चतस्र ऊर्जं दुदुहे
 पयांसि । चत्स्रो दिशः प्रति अनुदिशश्च दुदुहं दुग्धे प्रक्षरति ऊर्जम् अन्नं
 पयांसि उदकानि । तेषां च पयसां क् स्विदस्याः परमं जगाम । कैता
 निष्पाद्यौपधीर्गच्छन्ति कुतो वा प्रतिसंवत्सरं पुनरागच्छन्तीति कस्तत्त्वं
 ऊर्जाम जानाति यानि गृध्रव्यामवतिष्ठन्ते यानि धादित्यरश्मयो हरन्तीति
 एवमनुपक्षीणपयस्केयमिति श्रूयते ।
 १५ ' तस्या एपापरा भवति ' । सा पुनः किमर्थम् । इयमेव वाक्स-
 र्धप्राण्यन्तर्गता माध्यमिका सर्वार्थाभिवादिनी भवतीति विभूत्युपप्रदर्श-
 नार्थम् ॥ २८ ॥

देवी वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
 सा नो मन्त्रेषुर्जं दुहानां धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुते (ऋ० सं०
 ८ । १०० । ११) ॥ देवी वाचमजनयन्त देवास्तां सर्वरूपाः

- १ क. ख. ७ (२८); त. द. ७ २ ग. °न्तीति । ने. ३ क. ख. घ. ट.
 °चयन्ती; च. च°न्ती य; ठ. ड. प्रज्ञपयन्ती ४ ग. ज. 'रा या माध्य°; च.
 °ग माध्य° या; ठ. ड. °श्वरा माध्य°. ५ ग. ज. 'यित्; च. °यित्° ३. ६ ग.
 ज. 'गो पयां; च. 'रनिपयां' ऊर्जमभं. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. कैत नि
 नि°. ८ ग. ज. जानाति जगाम; घ. ट. ठ. ड. जगाम अजान । यानि°; च.
 जानाति. जगाम ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. चादि°; च. वेदि° चा. १ ग. ज.
 'मिति नियूयते. ११ क. ख. ७ (२८); ठ. ड. °नार्थम् । इति निरुक्तभाष्ये
 २९ ५ध्याये २८ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्कां नास्ति.

पशवो वदन्ति व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च सा ना मदेनाश्रं च
रसं च दुहाना धेनुर्वागस्मानुभैतु सुष्टुतानुमती राकेति देवपत्न्या-
विति नैरुक्ताः पौर्णमास्याविति याज्ञिका या पूर्वा पौर्णमासी
साऽनुमतिर्योत्तरा सा राकेति विज्ञायनेऽनुमतिरनुमननात्तस्या
ष्ठा भवति ॥ २९ ॥

५

दशो वाचमजनयन्तेति । तदेवाषम् । देवी दार्त्रीमुदकानां यां वाचम्
अजनयन्त माध्यमिका देवास्तामेवैतां यथा-
वागत्र भिमतर्याभिघायिकां विदेवरूपाः सर्वरूपाः

पशवो वदन्ति व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च । व्यक्तवाचो मनुष्यादयोऽव्य-
क्तवाचो गवादयः । यैवं सर्वपशुभिरुच्यते सा नः सास्माकं मन्द्रा मदना
ईषं चोर्जं च दुहाना प्रक्षरन्ती धेनुः तर्पयित्री वागस्मानुभैतु सुष्टुते-
त्येतदाशास्महे ।

१०

‘ अनुमती राकेति देवपत्न्याविति नैरुक्ताः ’ । सह पदयोर्न्यासस्तु-

अनुमतिः राका ल्योऽनयोः रभिधेयविचार इतं । मध्यस्थान देव-
च देवपत्न्यौ इति पत्न्याविति निर्जाते तदभिधाने इति नैरुक्ताः ।
नैरुक्ताः पौर्णमास्याविति याज्ञिकाः । ते च ब्राह्मण-
पौर्णमास्यौ इति मुदाहरन्ति ‘ या पूर्वा पौर्णमासी ’ (ऐ०
याज्ञिकाः ब्रा० ३२ । ९) इत्येवमादि । कात्काधिशैवते चन्द्रसहचारिण्याविति मध्यस्थानं । पौर्णमास्य-
मावास्थयोर्नक्षत्रेष्टकामध्य उपधानात् (तै० सं० ३ । ५ । १ ॥ ४ ।
४ । १०) नक्षत्रत्वम् । अतश्च प्रदर्शनात्सर्व एवायं ज्योतिर्मणो ग्रह-
नक्षत्रतारकारूपो रसप्रायो मूर्तिमान्बुधन्मध्यस्थान एवेति लक्ष्यते ।

२५

२०

‘ अनुमतिः (२०) अनुमननात् ’ । अनुमता किलेयमृषिभिर्देवै-

१ छ. त. द. मनना०. २ क. ख. ८ (२९); त. द. ९. ३ ग. ०न्तेति ।
तं; ठ. ड. वाचमिति. ४ ग. ज. दातुम्; च. दातुम् ब्री. ५ क. ख. घ.
ट. ठ. ड. न्ति तत्पूर्वकन्वाद्वाप्रवृत्तेः; ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. इषम् अश्रं पयो-
घृणादिरूपं रसं च ऊ०; च. इषं० वा० अश्रं पयोघृणादिरूपं रसं. ७ क. ख. घ. ट.
ठ. ड. सुष्टु स्तुते०; च. सुष्टुते० ष्टु स्तु. ८ ग. ज. ब्रह्मम्.

२९

अनुमतिः कस्मात् श्वातुर्दशके पक्षेऽस्त्वियं पौर्णमासीति । ' तस्या एषा भवति ' ॥ २९ ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूऽपि तारिषः (तै० सं० ३ । ३ । ११) ॥ अनुमन्यस्वानुमते त्वं सुखं च नः कुर्वन्नं च नोऽपत्याय धेहि प्रवर्धय च न आयू राका रातेर्दानकर्षणस्तस्या एषा भवति ॥ ३० ॥

१० अन्विदनुमत इति । वामदेवस्यार्षम् । देविकासु विनियोगः (मैत्रा० सं० २ । ६ । ४) । हे अनुमते त्वम् अनु-
अनुमतिः मन्यासै अनुमन्यस्व अस्माकं यदनुमन्तव्यं त्वया । शं च नस्कृधि । सुखं चास्माकं कुरु । इयम् अन्नं चास्माकं तोकाय अपत्याय धेहि । आयुषि च नः प्रतारिषः प्रतीर्णानि कुर्वित्येतदा-
१५ शास्महे ।

सैव पौर्णमासी पञ्चदशके पक्षे ' राका ' (२१) इत्युच्यते । सा पुनः कस्मात् ' रातेर्दानकर्षणः ' । हविर्दाननिमित्तं हि सा भवति । ' तस्या एषा भवति ॥ ३० ॥

२०

राकामहं सुहृवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्त्रपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं ।
(ऋ० सं० २ । ३२ । ४) ॥ राकामहं सुहृवानां सुष्टुत्याह्वये

१ क. ख. ८ (२९); उ. ड. षिति । इति निरुक्तभाष्ये ९ ध्याये २९ खण्डः; ग च. वर्जमिभरेष्वहो नास्ति. २ क. ख. ५ (३०); त. द. ५. ३ ग. इति । वा ; उ. ड. मने त्वमिति. ४ क. भ. व. ट. ठ. ड. कुरु वर्धयेत्यं; च. कुर्वित्यं न वर्धये. ५ क. ख. ९ (३०); उ. ड. षिति । इति निरुक्तभाष्ये

शृणोतु नः सुभगा बोधत्वान्मना सीव्यन्वपः प्रजननकर्म सूच्या-
च्छिद्यमानया सूची सीव्यतेर्देदातु वीरं शतप्रदमुक्थं वक्तव्यप्र-
शंसं सिनीवाली कुहुरिति देवपत्न्याविति निरुक्ता अमावास्ये
इति याज्ञिका या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योचरा सा
कुहुरिति विज्ञायते सिनीवाली सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि
बालं पर्व वृणीतेस्तस्मिन्नश्रवती वालिनी वा बालेनेवास्यामणु-
त्वाच्चन्द्रमाः सेतव्यो भवतीति वा तस्या एषा भवति ॥ ३१ ॥

राकामहं सुहवामांते । गृहसमदस्यापम् । देविकामु त्रिनियोगः
(भैत्रा० सं० २ । ६ । ४) । राकामहं सुहवां स्वाह्वानां यस्याः १०
शोमनमाह्वानं तां सुष्टया शोभनया स्तुत्या आह्वये । सौ पुनः सुभगा

राका सुधनास्माभिराहूयमाना शृणोतु । श्रुत्वा च
बोधु । कर्तव्यतया तद्व्याचष्टु । यदपि च न
ब्रूहे तदपि आत्मना एव बुध्यताम् । अपि चेदमुच्यते । एवं सीव्यतु अपः ।
सेतनोतु प्रजननकर्म अस्माकम् । सूच्या अच्छिद्यमानया अत्रिच्छिद्येन प्रजा- १५
संतनेन । न च पुनः प्रजामात्रमर्थयामहे । किं तर्हि । ददातु वीरं पुत्रम् ।
किलक्षणम् । शतदायं बहुप्रदम् । उक्थ्यम् वक्तव्यप्रशंसं च अपरिसमात-
स्तुतिम् ।

‘ सिनीवाली वुहू. ’ इति पूर्वद्वुपन्यासः । ‘ अमावास्ये इति
याज्ञिकाः ’ । तथैव ब्राह्मणमपि चेदाहरन्ति । ‘ तथैव पूर्वा सिनीवाली २०
उत्तरा कुहूः ’ (ऐ० ब्रा० ३२ । ९ ॥ भैत्रा० सं० ४ । ३ । ५) ।

‘ सिनीवाली ’ (२२) कस्मात् । ‘ सिनमन्नं भवति ’ । तत्कस्मात् ।
सिनीवाली कस्मात् ‘ सिनाति ’ ब्रूति । ‘ भूतानि ’ रसादिभि-
र्धातुभिः । ‘ बालं ’ किमुच्यते । ‘ पर्व ’ ।
सिनम् तत्कस्मात् । ‘ वृणीतेः ’ । वृणन्ति देवस्तत्र २५
घालम् हर्षापि । ‘ तस्मिन् ’ पर्वण्यसौ सिनिनी ‘ अन्न-
वती ’ इति सिनीवाली । अथयोत्तरपदे विकल्पः । ‘ वालिनी ’ बालै-

१ क. ग. ड. थ. ध. ट. ड. सेवितं. २ क. ख. १० (३१); त. द. १०.
३ ग. 'मिति'. गृ; ठ. ड. 'मइमिति. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. सा च पुं;
च. सा 'पुं च. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'च' नास्ति; च. च. ६ च. न.
ड. बाले°.

स्तद्वनी । सिनिनी च सा वालिनी चेति सिनीवाली । औपमिकं वा ।
कथमिति । ' वालिनेवास्यामणुव्याञ्चन्द्रमाः सेतव्यो ' बैदव्यो ' भवति ' ।
एवमणुरसौ चन्द्रमा भवत्यस्यां येन ज्ञायते वालिनाप्ययं सीयेत बध्येतेति ।
' तस्या एषा भवति ' ॥ ३१ ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्य-
माहुतं प्रजां देवि दिदिदृढि नः (ऋ० सं० २ । २२ । ६) ॥
सिनीवालि पृथुजवनं स्तुकरत्यायतेः संघातः पृथुकेशस्तुके
पृथुष्टुते वा या त्वं देवानामसि स्वसा स्वसा सु असा
१० स्वेषु सीदतीति वा जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां च देवि दिश नः
कुहूगूहतेः काभूदिति वा क सती हूयत इति वा काहुतं हविर्जु-
होतीति वा तस्या एषा भवति ॥ ३२ ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके इति^{११} । गृत्समदस्यर्षम् । देविकासु विनियोगः
१५ सिनीवाली (मैत्रा० सं० २ । ६ । ४) । हे सिनी-
वालि पृथुष्टुके विस्तारणजघने । अथवा । पृथुष्टुके
पृथुकेशस्तुके पृथुक्कृत्वाप । अथवा । पृथुष्टुते । या त्वं देवानां स्वसा
भगिनी माध्यमकानां सा त्वं जुषस्व आमेवस्व एतत् हव्यम् आहुतं
मर्धादया विधानतो हृतमस्माभिः । आसे^{१२} च^{१३} प्रजामस्माकं दिश अति-
२० सृज देहीत्याशास्महे ।

१ ग. ज. वालिनीवा^१; ड. बालि^२. २ ग. ज. स्यत^३; च. स्यत^४ सं; ठ. ड.
सेवितव्यो. ३ क. ख. थ. च. ट. ठ. ड. बौद्ध^५. ४ ग. ज. ड. बालि^६. ५ क.
ख. घ. ट. ठ. ड. बोध्य^७; ग. ज. भवति; च. भयिन^८ तंति बोध्ये. ६ क. ख.
१० (३१); ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये^९ ध्याये ३१ लाटः; ग. च. वर्जाम-
तरेष्वङ्गः नग्नित. ७ छ. न. व. स्तुका. ८ ह. थ. ट. ट. पृथुस्तुके; छ. त. द.
पृथुस्तुतिवा या^{१०}. ९ क. १०. छ. थ. घ. ट. ड. हव्यमदन प्र^{११}. १० क. ख. ११
(३२); त. द. ११. ११ ग. हवि । ग^{१२}. १२ ग. च. ज. 'स्व्यं. १३ क. ख. घ.
२८ ट. ठ. ड. च प्रजां देवि दिदिदृढि नः; ग. च. च प्रजां देवि दिदिदृढि नः.

‘ कुहः (२३) गृहोः । निगृह्यमौ चन्द्रमसः । ‘ काभूदिति
 वा ’ । तस्यामप्रत्यक्षत्वद्वितर्क्यश्चन्द्रमा भवति
 कुहः कस्मात्
 कासावभूदयेति । ‘ क सनी ह्यने इति वा ’ ।
 सैवामना देवताभावादप्रयक्षौ न ज्ञायते काभि सत्याद्भूत इति । अतो
 वितर्क्य भवति । ‘ तस्या एषा भवति ’ ॥ ३२ ॥

कुहूमहं सुकृतं विद्वानापसमस्मिन्यज्ञे सुहवां जाद्वीमि । सा
 नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्यै ते देवि हविषा विधेम (मैत्रा०
 सं० ४ । १२ । ६) ॥ कुहूमहं सुकृतं विद्वित्कर्माणमस्मिन्यज्ञे
 सुह्वानामाह्वये सा नो ददातु श्रवणं पितृणां पित्र्यं धनमिति
 वा पित्र्यं यज्ञ इति वा तस्यै ते देवि हविषा विश्रमेति व्याख्यातं
 यमी व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ३३ ॥

कुहूमहं सुकृतमिति । देविकामु त्रिनेत्रियोगः (मैत्रा० सं० २ ।
 ६ । ४) । कुहूमहं सुकृतं शोभनानां कर्मणां
 कुहः
 कर्त्तुं विद्वानापसं सर्वत्र प्रत्यक्षकर्माणम् अस्मिन्यज्ञे
 सुहवां स्वाह्वानां शोभनमाह्वानं यस्यास्तां जोहवीमि अह्वयामि । सा
 अस्माभिराह्वानास्मिन्यज्ञे एष हविर्भूत्वा अस्माकं ददातु श्रवणं पितृणां
 ‘ पित्र्यं धनमिति वा पित्र्यं वा यज्ञः ’ । कुत्रेचित्तमित्यर्थः । प्रत्यक्षी-
 कृत्योत्तरेण पादेनास्तौत् । या एवमस्माकमेतत्कर्मणि तस्यै तुभ्यं हे देवि
 कुहु हविषा विधेम । दद्वं इत्यर्थः । अथवा । त्वां हविषा परिचरामति ।

१ च. कर्त्तुं कर्त्तुं २ क. ख. ग. ज. घ. ठ. ड. दस्येति; च. ट. ‘ दस्ये’
 धं ३ ग. च. ज. ‘ क्षात्रज्ञा’; ठ. ड. ‘ क्षात्रज्ञा’ . ४ क. ख. ११ (३२); ट.
 ड. ‘ विति । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्याये ३२ खण्डः; ग. च वर्जितोऽप्यङ्कः
 नास्ति. ५ क. ख. ड. थ. घ. ठ. ड. भूतं. ६ क. ख. पितृणां. ७ क. ख. १२
 (३३); त. द. १०. ८ क. ख. घ. ट. सुवृत्तः; ग. सुकृतमिति । ९; ठ. ड.
 ‘ अहमिति. १०. ड. सुवृत्तं. १० ग. ज. पित्र्यं यज्ञः; च. पित्र्यं यज्ञं वा ११ ग.
 ज. ‘ मर्दुश्रेयस्यर्थः’; च. ‘ दर्शयर्थः’ हावर्द् १२ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ता त्वां;
 च. ‘ त्वां’ तां. १३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘ चराम इति; च. ‘ चराम इ’ रा.

‘ यमी (२४) व्याख्याता ’ यमेन (निरु० १०।१९) ।
 निरुमात्रविशेषः । “ तस्या एषा भवति ” ॥ ३३ ॥

अन्यमू पु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाने लिवुजेव वृक्षम् ।
 ५ तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवादां कृष्ण्य संविदं
 सुभद्राम् (ऋ० सं १०।१०।१४) ॥ अन्यमेव हि
 त्वं यम्यन्यस्त्वां परिष्वङ्गयते लिवुजेव वृक्षं तस्य वा त्वं मन
 इच्छे स वा तवादानेन कुरुष्व संविदं सुभद्रां कल्याणभद्रां यमी
 यमं चकमे तां प्रत्याचक्षेत्याख्यानम् ॥ ३४ ॥

१० एकादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

अन्यमू पु त्वं यम्यन्य इति । यमी किल यमं चकमे आतरम् ।
 ५ यमी तां किल यमोऽनयर्चा प्रत्याचक्षे । कथम् ।
 हे यमी अन्यमू पु त्वम् अन्योऽव त्वं परिष्वजस्व
 १५ वैशुनाभिप्रायेण । लिवुजेव वृक्षं वृष्टीव काचिद्रहं मनीषजं वृक्षम् । अन्य
 एव त्वां परिष्वजतां यस्व येऽप्या त्वगनेनाभिप्रायेण परिष्वक्तुम् । तस्य
 वा त्वं मन इच्छा । तस्य च त्वं मनः प्रवेष्टुमिच्छे । स वा तव । अथैव-
 भेकचित्समुपगममानेन समानेन सह वृष्ण्य संविदं सकृत्पादिवैशुना-
 र्यम् । सुभद्रां कल्याणभद्रां संविदमुभययोकात्रिगोविनीमित्याभिप्रायः ।
 २० त्विष्वक्षे तु माध्यमिको यमो माध्यमिको वाचमुपसमात्मनः प्रथिभक्ता-
 माध्यमिकक्षे मित् वृत्तोभयस्थानां तां ब्रवीति । हे यमी अती-
 यमी उपः तरेतेऽस्मत्परिष्वङ्गममयः । प्रमत्तमिदानीम् ।
 लिवुजेव वृक्षं तुस्थाने परिष्वक्तुमिच्छे । तस्य च
 त्वं मनः प्रकाशमनुप्रवेष्टुमिच्छे । स च तव प्रकाशमनुप्रवेशितु । अथै-

२५ १ क. ख. १२ (३३); उ. ड. ० विति । इति निरुक्तभाष्ये षष्ठमध्याये ३३
 खण्डः; ग. च. वर्गमितोऽप्यङ्को नास्ति. २ छ. इच्छा; त. इच्छां स° छ ३ छ.
 त. द. चक्षुःश्यां. ४ क. ख. १३ (३४); न. द. १३. ५ छ. द. तृती°;
 त. एकादशाध्यायं तृ°; छ. थ ध. ठ. ड. ‘एकादः पादः’ नास्ति. ६ ग. इति° ।
 य°; उ. ड. अन्-मू ष्विति. ७ क. ख. संचक्ष्वाः; घ ट. संचक्ष्वा°. ८ ग. ज.
 ‘पक्ष मां. ९ क. ख. माध्यमिको. १० ग. ज. ‘मिच्छंति सा व मनः प्रकाशम-
 नुप्रवेष्टुं तस्य°; च. ‘मिच्छंति सा वै मनैः प्रकाशं अनुप्रवेष्टुं तस्य°’. ११ घ. ट. ठ.
 ३१ ड. ‘नुपसि°’.

वमितरेतरसंपर्कत्वेन महैकीयता लोकोपकाराय कुरुष्व परस्परसंविदं
संवेत्माधनं प्रकशमिति ॥ ३४ ॥

पे ङशाध्यायस्य तृतीयः पादः ।

चतुर्थः पादः ।

उर्वशी व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ३५ ॥

‘ उर्वशी व्याख्याता ’ । ‘ उर्वशी ’ (२५) वक्तव्या । सा पुनः
‘ व्याख्याता ’ । तदिहापि देवतायां योग्यम् । ‘ उर्वश्यश्चते ’ । बहु-
दकं व्याप्नोति । ‘ उरुर्वा वशोऽस्याः ’ । महानस्याः काम उदके
(निरु० ५ । १६) । ‘ तस्या एषा भवति ’ ॥ ३५ ॥

१०

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्धरन्ती मे अग्या काम्यानि ।
जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः (ऋ० सं०
१० । ९५ । १०) ॥ विद्युदिव या पतन्त्यथोतत हरन्ती मे
अप्या काम्यान्पुदकान्यन्तरिश्लोकस्य यदा नूनमयं जायेता- १५
द्धयोऽधप इति नैर्यो मनुष्यो नृभ्यो द्वितो नरापत्यमिति वा
सुजातः सुजाततरोऽथोर्वशी प्रवर्धयते दीर्घमायुः पृथिवी
व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ३६ ॥

विद्युन्न या पतन्तीति । मध्यमः पुरुरवाः त्रिवपसे व्रवीति । आत्मनो २०
उर्वशी ज्योतिषः शब्दस्य च विभागमिव कृत्वा ।
विद्युन्न विद्युदिव । संप्रयर्थे वा नकारः ।
किर्मान । या पतन्ती गच्छन्त्यन्तरिक्षं भेषादेर्यु दविद्योत् पुनःपुनर्द्यतेते
पुनःपुनरात्मानं प्रतिष्ठते । कथय । हरन्ती हरन्ती मे मम स्वभूतानि

१ क. ख. १३ (३४), उ. ह. िति । १६ ध्यायस्य ३ पादः । ३४; २१
ग. च. वर्जितरेष्वङ्गा नास्ति. २ क. ख. १ (३५); त. द. १. ३ क. ख.
घ. ट. ठ. ड. ‘ उर्वशी व्याख्याता ’ नास्ति; च. उर्वशी व्याख्याता. ४ क. ख.
१ (३५); ट. ह. ‘ वति ’ । इति निरुक्तभाष्ये ५ ध्यो ३५ खण्डः; ग. च.
वर्जितरेष्वङ्गा नास्ति. ५ छ. म. ३. २ (३६); न. द. २. ७ ग.
३४
‘ न्तीति ! म’

३०

अप्या अप्यानि काम्यानि उदकानि अन्तरिक्षरमाणानि अन्तरिक्षलोकस्य
अधिपत्नी योर्वशी सा यदैवमुदकानि हरन्ती भेष्यः पतन्ती भृशं स्वयं
विद्योतते नूनं निश्चयेन तदा जनिष्ठो अः अधपः अधिक उदकोर्मि-
जायते यः सर्भमिदमाच्छादयति नर्यो नृभ्यो हितः पृथ्वः सस्यसंभ्रकरः ।

५ 'नरापत्यमिति वा' इत्यैतिहासिकपक्षं द्योतयति । मुजातः मुजाततरः
शोभनादपि शोभनतरः उदकोर्मिः । अथ तेन महतोदकोर्मिणा सस्यम-
भिनिष्पाद्य लोकस्यान्नसंप्रदानद्वारेण प्रोर्वशी तिरैते प्रतिरते प्रवर्धये
दौर्ध्रमायुः ।

ऐतिहासिकपक्षे त्वैल्लैः पुरुरैवाः उर्वशा अप्यरसा विद्युक्तो ब्रवीति ।

१० ऐतिहासिकपक्षे विद्युदिव या पतन्ती अद्योतत भृशं वपुष्पत्तया
परन्ती धरयन्ती अनेकानि स्त्रीगताणि हार-
मावादीनि काम्यानि वस्तूनि मे मम अन्या

नित्यमात्तया प्रिया । सा च पुनराहितगर्भा यतोऽनो ब्रवीमि । जनिष्ठो

१५ अपः निश्चयेन जनिष्यते अधपः अधिककर्मा नर्यः नृभ्यो हितः सम्य-
करिपालयिता नराणाम् । अथवा । मम नरस्यापत्यमायुर्नाम राजा यं पुरा-
णाविदः कथयन्त । मुजातो मच्छकृत् वीर्यवतो जतो विशेषत
उर्वशाः क्षेत्रगुणामुजाततरः । तस्य वावश्यमुर्द्धास्मदसानिधोऽपि
प्रवर्धयते तयोर्मैः कर्मभिर्दौर्ध्रमायुरिति ।

'पृथिवी(३६)व्याख्याता' । 'अथ ये दर्शनेन पृथुः'(निरु० १।

२० १४) इत्यत्र । इह तु माध्यमिका । 'तस्या एषा भवति' ॥ ३६ ॥

बलित्था पर्वतानां खिद्रं विभर्षि पृथिवि । प्र या भूमिं प्रव-
त्वति मल्ल जिनोर्पि महिनि (ऋ० सं० ५।८४।१) ॥ सत्यं त्वं
पर्वतानां मेघानां खेदनं छेदनं भेदनं बलममुत्र धारयसि पृथिवि

२५ १ क. ख. घ. ट. ठ. ड. अक्षरमाणाः; च. अन्तरिक्षं. २ क. ख. घ. ट.
ठ. ड. 'हितः सस्य'; च. पृथ्वीः. ३ ग. ज. प्रोर्वशी प्रः; च. प्रोर्वशी प्रः
तिरते. ४ ट. ठ. ड. त्वैल्लैः. ५ ग. ज. पुरुरैवाः. ६ पुरुरैवाः; क. ६ घ.
ट. ठ. ड. नरापत्या; च. न. ७ क. ख. २ (३६); ठ. ड. 'वति' ।
इति निरु. निरु. पत्रके ५ अध्याये ३६ खण्डः; ग. च. वर्जमिर्णवद्भौ नास्ति. ८ क.

३० ख. छ. त. द. न बलित्था.

प्रजिन्वसि या भूमिं प्रवृणवति महत्त्वेन महतीत्युदकवतीति
वेन्द्राणीन्द्रस्य पत्नी तस्या एषा भवति ॥ ३७ ॥

ब०ः ३ व्या परतानामिति । अत्रेवार्थम् । ब० इति सत्यस्य नाम (निव०
पृथिवी ३।१०।१) । इत्येति अमुत्रेत्यर्थः । हे
पृथिवि मध्यमिके सत्यं यथाभूमाम् अनुत्र अमु-
ष्मिन्नन्तरिक्षालोके वर्षमाना विद्वन्नेतन्नेन पर्वताः नद्यस्त्येत्तुं
शक्यन्ते तद् ब० विमर्षि धारयामि । हे प्रवत्यति प्रवृणवति गमनवती या
त्वं भूमिं प्रजिन्वसि वर्षमुसृजन्ती मह्ना महत्त्वेन हे महिनि महति ।
अथवा । उदकवति । या त्वमेवं भूमिं प्रजिन्वसि सा कथं न भेदानां
पर्वतानां छेदनसमर्थं ब० धारसीत्यमि तावः ।

१०

पृथिवि त्वं भूमिं प्रजिन्वसितीत्यपदेशान्मध्यस्थाना । हिरण्यनाशेष्टयां
यास्कस्यामिप्रायो भौमस्यैककपालस्येवं याज्या (मैत्रा० सं० ४
१२।२) । तत्र विज्ञायते । 'अथ यद्भौमोऽस्यां
मैत्रयगीसंहितायां द-
त्तविनियोगेन विरुद्धः
हि स तद्विन्दत्' (मैत्रा० सं० २।२।७)
इति । तेन तत्रेयं भूमिरिज्यते । न च भूमिरस्या-
मृचि प्रधानत्वेन वर्तते । यथा चायमाचार्यो निराह तदयमस्योदाहरणा-
मिप्रायः । स च विनियोग इति विरोधः । अविरोधमेतयोर्मेधाविनः
समनु स्थेयन्ते ।

१५

'इन्द्राणां (२७) इन्द्रस्य पत्नी' । इन्द्रस्य विभूतिः पृथक्त्वे वा
इन्द्राणी कस्मात् निर्ज्ञाना पौराणिकैः । 'तस्या एषा भवति' ॥ ३७ ॥

२०

१ छ. ड. प्रवृणवति, त. प्रवृणवति, ठ. प्रवति. २ क. ख. ३ (३७); ट. द.
३. ३ क. ख. ग. च. ज. घ. वृद्धिः ४ ग. ० भूमिं । अ. ५ ठ. ड. ब०.
६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. सत्पत्न. ७ ग. ज. तस्मिन्; च. तस्मिन्. ८ च. प्रवृण-
वति० व. ९ क. ख. घ. ट. न. ड. धारयिष्यति । अवश्यं धारयं; च. धारयं०
धिष्यति । अवश्यं धार. १० क. ख. घ. इत्यविरोधोऽस्यो; च. इत्यविरोधः ।
अश्रियंते, विविधं अश्रियमाना म; ट. इत्यविरोधः अश्रियं अस्मान्-
र्था म इति पाठः । इति विरोधः अश्रियंति विरोधमेतयोर्मेधाविनः समनुगस्यन्ते
इति वा पाठः; ठ. ड. इत्यविरोधः । इति विरोधः अश्रियंति विरोधमेतयोर्मेधाविनः
समनुगस्यन्ते इति वा पाठः. ११ क. ख. घ. ट. 'निना स'. १२ क. ख. घ. ट.
नुगस्यन्ते; ग. च. ज. 'गमन्ते'. १३ क. ख. ३ (३७); ठ ड. वति । इति निरु-
क्तभाष्ये उत्तरषट्के ५ धातौ ३७ खण्डः; ग. च. वर्जमिरेषाद्वा नास्ति.

२५

३१

इन्द्राणीषामु नारिषु सुभगामहमश्रवम् । न ह्यस्या अपरं च न
 जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १० । ८६ ।
 ११) ॥ इन्द्राणीषामु नारिषु सुभगामहमश्रवम् न ह्यस्या अपरामपि
 समां जरया श्रियते पतिः सर्वस्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमेतद्द्रुमस्तस्या
 ५ एषापरा भवति ॥ ३८ ॥

इन्द्राणीषामु नारिषुमिति । वृष. कपोरार्पम् । पृथुयस्य पशुऽहनिब्राह्मणाः
 इन्द्राणी च्छलिनः शस्त्रे विनियोगः (अश्व० श्रौ०
 ८ । ३) । निर्वार्यं ब्रवीति । सर्वस्वेव आमु

- १० नारिषु इन्द्राणीषु एव अहं सुभगा सांगाययुक्तां लक्षणार्पम् अश्रवम्
 अश्रवणवम् । केन हेतुना । यत् आह । न ह्यस्या अपरं च न । 'हि'शब्दो
 हेत्वर्थः । वनेत्यप्यर्थः । यस्मात्स्या अपरमपि समां संसरं प्रति न कदा-
 चिदपि पतिर्व्रियते नापि जीर्यते यथान्वासां प्राकृतानां नारीणाम् ।
 कतमः पतिः । विश्वस्मात्सर्वस्मात् जगतो य इन्द्रः उत्तरः । योऽयमिन्द्र
 १५ उद्गततरः । तमेतम् इन्द्रमधिकृत्य ब्रूम इत्याचार्यो ब्रवीति ।

‘तस्या एषापरा भवति’ । सा पुनः किमर्थम् । ऋषिवृष. कपिः प्रसिद्धः ।
 स पुनरादित्योऽभिप्रेतो नरुक्तानाम् । तद्दृपप्रदर्शनायापरामाह ॥ ३८ ॥

- नाहमिन्द्राणि रारण सख्युष्टपाकपेर्कते । यस्येदमप्यं हविः
 २० मिथं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १० ।
 ८६ । १२) ॥ नाहमिन्द्राणि रमे सख्युष्टपाकपेर्कते यस्येदमप्यं
 हविरपु न्नाहमिन्द्रः संस्कृतमिति वा मिथं देवेषु निगच्छति सर्व-
 स्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमेतद्द्रुमो गौरी रोचतेज्वलतिकर्मणोऽयमपी-

१ द. ध. नारिषु २ छ. 'मश्रव' श्रवण. ३ क. ख. ४ (३८), त. द. ४.
 ४ ठ. ड. इन्द्राणीमिति 'म. ग. 'मिति । वृ'. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'र्षम् ।
 पङ्क्तिः । पृ. ; च. 'र्षम् । 'पृ. ' पङ्क्तिः । ७ ग. ज. 'श्रवं केन ; च. 'श्रवं केन'
 अश्रवणं. ८ घ. ऋपिः स एवा. स पुन' ; ट. ऋपिः स एव । स पुन' वृषाकपिः
 प्रसिद्धः. ९ क. ख. ४ (३८); ठ. ड. 'माह । इति निरुक्तभाष्ये 'प. ध्याये ३८

तरो गौरो वर्ण एतस्मादेव प्रशस्यो भवति तस्या एषा भवति
॥ ३९ ॥

नाहमिन्द्राणीति । समानो विनियोगः पूर्वयोर्पि च । इन्द्रो ब्रवीति ।
इन्द्रोऽप्येव विभक्तामिन्द्राणी माननः कृत्वाह । नाहमिन्द्राणि ५
रण । नरमे अहम् । सस्युर्वृपाकपेकते । य एष
मम सत्या वृपाकापिस्तस्मादृते । किं योऽयमूर्ध्वनुष्येषु प्रसिद्धः । नस्यु-
च्यते । अस्थेदग्गुणं हन्ति । अप्सु शनं चरुपुरे डाशादि वा । ' अङ्घ्रिः
संस्कृतमिति वा ' । सोऽस्य मे प्रिय इष्टः सर्वेष्वपि देवेषु । निर्धार्योच्यते ।
यस्य विशेषतो गच्छति । विश्वस्मात् सर्वस्मात् अपि जगतो योऽहम् १०
इन्द्र उत्तरः उद्गततरः सोऽप्यहमेवं ब्रवीतीति ।

'गौरीः (२८) रोचतेः' ज्वलत्यर्थस्य । माध्यमिका वाक् । सा पुनर्दति-
मती । ' अयमर्पात्तरो ' यो ' गौरो वर्णः ' ५
गौरीः कस्मात् सोऽपि ' एतस्मादेव ' रोचतेः । स र्दमित्यु-
त्वात्कृष्णादीनेत्येव ' प्रशस्यो भवति ' । ' तस्या एषा भवति ' ॥ ३९ ॥ १५

गौरीर्निर्माय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी वसुधुदी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋ० सं०
१ । १२४ । ४१) ॥ गौरीर्निर्माय सलिलानि तक्षती कुर्वत्ये-
कपदी मध्यमेन द्विपदी मध्यमेन चादित्येन च चतुष्पदी दिग्भि- २०
रष्टापदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भिश्च नवपदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भि-
श्चादित्येन च सहस्राक्षरा बहुदका परमे व्योमने तस्या एषापरा
भवति ॥ ४० ॥

१ क. ख. ५ (३९) ; त द ५ २ ग ' णीति । स' । ३ क. ख. ' या
आर्पि च । इन्द्रो' ; घ. ट. ' याः जार्पि तु इन्द्रो' ; ठ ड. ' या अर्पि तु इन्द्रो' ।
४ ग. ज. चरु च पु' । ५ क. ख. ५ (३९) ; ठ. ड. ' वति । इति निरुक्तभाष्ये
५ ध्याये ३२ खण्डः ; ग. च. वर्जितरत्नद्वौ नास्ति. ६ क. ख. ६ (४०) ;
त. द. ६.

गौरीर्निर्मामेति^१ । अस्थवर्मायै दीर्घतमस आर्षम् । गौरी सर्वमिदं
निर्मिमीते । कथम् । सलिलानि तक्षती कुर्वती ।
गौरीः उदककर्षणत्वा सर्वानर्तणस्य । कथमुत्कानि
कुर्वती । एकपदी बभ्रुवुषी एकपदी भवती मध्यमेन सहकत्वमपत्ता ।
द्विपदी मध्यमेन चादित्येन च । चतुष्पदी दिग्भिः अनपेक्षेत्रन्द्रादित्यौ ।
अष्टापदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भिश्च । नवपदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भिश्च सह
आदित्येन च । सहस्राक्षरा बहुदका परमे ऋचने । विभक्तानां भूतानां
यत्परममवनमेकं सर्वभावानामविभक्त एक आत्मा यस्तदात्मनैवंभूता सः।
लनिर्माणद्वारेण सर्वमिदं निर्मिमीते ।

१. ' तस्या एव परा भवति ' । सा पुनः किमर्थमिति । गौरीति गुणा-
भिधः नमप्रसिद्धाभिधेयं छ-दसि देवतायाम् । यतः परया समर्थयति ॥ ४० ॥

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतंसः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विन्वमुप जीवति (ऋ० सं० १ । १६४ ।

१५ ४२) ॥ तस्याः समुद्रा अधिवि क्षरन्ति वर्षन्ति मेघास्तेन
जीवन्ति दिगाश्रयाणि भूतानि ततः क्षरत्यक्षरमुदकं तत्प्रवाणि
भूतान्युपजीवन्ति गौर्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ४१ ॥

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्तीति । अलिङ्गो मन्त्र इति चेतस्या

२० गौरी एव इत्येतेन लिङ्गमन्त्रादित्यने संवन्वाद्ययोः ।
तस्याः समुद्राः अधिवि क्षरन्ति तेषां गौर्याः अर्चयन्तीति ।
समुद्राः मेघाः अधिवि क्षरन्ति वर्षन्ति । तेन उदकेन जीवन्ति प्रदिशश्चतंसः ।

१ ग. 'येति । अ. २ ठ. ड. 'वती वायुना इन्द्रेण वा मध्य' (४ पुस्तके
' मध्यमेन ' इत्यस्यार्थः ' वायुना इन्द्रेण वा ' इति प्राप्ते लिख्यते). ३ क.
ख. घ. ट. ठ. ड. 'नेव भूतानां स' ; च. 'नेव भूतानां स' व भूतानां ४ ग. ज.
समर्थयते; च. समर्थयति^० र्थ. ५ क. ख. ६ (४०); ठ. ड. 'ति । इति
रिक्तभाष्ये ५ ध्याये ४० रूपेण; ग. च. 'वर्जितरेण्ड्रे नास्ति. ६ क. ख.

१३ ५ (४१); न. द. ७. ७ ठ. ड. समुद्रा इति ८ ग. 'निर्मिती । अ.

द्विकप्रतिद्विवासीनि 'भूतानि' तेन जीवन्ति । ततः क्षर-
त्यक्षरम् । पुनः पुनः प्रतिसंवत्सरं तत एव क्षरत्युदकं भेषद्धारण । तद्विश्वं
भूतजातम् उपजीवति । एवं सैव सर्वोदभेदानां गौरित्यभिप्रायः ।

'उदकम् अक्षरम्' इत्युच्यते । तत्कस्मात् । तद्धै सर्वमिदमभिव्य-
क्षयत् 'क्षरति' । सर्वमिदं संचरति । 'गौः व्याघ्रता' (निरु०
२ । ५) । 'तस्या एष भवति' ॥ ४१ ॥

गौरमीमेदनु वत्सं पिपन्तं मूर्धानं हिड्डकृणोन्मनाषा ॥
सृकाणं धर्ममभि वावशाना भिमाति मायुं पयाते पयोभिः (ऋ०
से० १ । १६४ ॥ २८ ॥) गौरन्वमीमेदन्से निपिपन्तभानिभि-
पन्तमादित्यमिति वा मूर्धानमस्थाभिहिड्डकृणोन्मनाष सृकाणं
स्वरणं धर्म हरणमभिवावशाना भिमाति मायुं प्रयायते पयोभिर्मा-
यमिवादित्यमिति वा त्रांगपा माध्यमिका धर्मभुगिति यज्ञिका
चेन्नुर्धयतेर्वा धिनोतेर्वा तस्या एषा भवति ॥ ४२ ॥

गौरमीमेदति । दीधत्तमम् आर्षम् । महाश्वेते विनियोगः (ऐ०
आ० ५ । ३१ । २) । गौः माध्यमिका
याक पुत्रन् अन्यमीमेत् अनुगच्छयति महद्भिः ।
स्तनयितुशब्दैः आदित्यम् । स हि तस्या रजहरणाद्भवतः । पिपन्तम्
अनिमित्तत्वं अव्यवहितदर्शनं सर्वदा । आ । अ । मूर्धानं शिरोरर्द्धमिन्
अस्य मध्यस्थानप्राप्तं प्राप्य हिड्डकृणोत् द्विकारं गौराशब्दयोर्भि । मातृभे
सर्वलोकज्ञानाय उदकान्तं सृकाणं स्वरणम् अनवस्थायितमादित्य धर्म हरणं
रसानाम् । अभिवावशाना पुनः पुनर्वाद्यमाना प्रतिसंवत्सरमेव भिमाति
मायुं शब्दं करोति यथादमे च प्रकरणेण वर्तते पयोभिः उदकैः ।

१ क. ख. घ. ट. 'द्विकनिव' । २ क. ख. द. ट. ठ. ड. 'भिदं सचराक्षरं
संज्ञं च. 'मिदं' सं' सचराक्षर. ३ क. ख. ७ (४१) ; ४. ड. 'धति । इति
निरुक्तमभ्ये ५ उपपत्ते ४१ खण्डः; ग. च. बर्जभित्तेरुक्तं कारित. ४ क. ख.
८ (४२) ; त. द. ट. प. म. दिति । ई. ६ ग. च. म. 'इत्तान्' ७. ४.
च. ग. पुत्रावित्य' ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'मना वाशब्दी पति' ९. ४.
१२७

वर्मशुक्लक्षे । यवसमेव यवसम् । तज्जग्धा पक्षिष्वनी भव ।

वर्मशुक्लक्षे अर्थः यवमपि च त्वप्रत्तेन पयसा धनवन्तः स्यात् ।
या त्वमस्माकमेवमुपकारिणी सा त्वं नित्यमस्मि

तगमन्थे । विश्वदानां नित्यं कालं पिव च शुद्धमकलयमुदकमाचरन्ती अत्र-
५ सितन्ती आ सर्वतो यथाकाममरण्ये चरन्ती ।

‘तस्या एषापरा भवति’ । सा पुनः किमर्थम् । रूपतो हि पूर्वं
स्मिन्मन्त्रे वर्मशुक्ल सुतरामुपपद्यते । यतः परया वसुभिर्देवैः संकथान्माध-
मिकैव देवैश्च्युत्पादयति ॥ ४४ ॥

१० हिक्वण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यामात् ॥
दुहामभिभ्यां पयो अन्वयेयं सा वर्धनां भवत सौभगाय (ऋ०
१ । १६४ । २७) ॥ इति सा निगदव्याख्याता पृथ्या स्वस्तिः
पन्था अन्तर्गिस्तं तन्नित्नामात्तस्या ण्या भवति ॥ ४५ ॥

११ हिक्वण्वतीति । पूर्ववर्दादीदि । हिक् इयैयंप्रकारं शब्दं स्तनयित्कु
अन्या एव कुर्वती वसुपत्नी वसुनामृदकानामिध्या । वसूनां
वा आदित्यरश्मीनां महतां वा । वत्स आदित्यः ॥

मयस्थानो वा रसइरण्डमसः । तन् इच्छन्ती मनसा या माधमिकावाक्
त्रियम् अभ्यामात् सेःम् अभिभ्यां रावाप्रथिवीभ्यां सूर्याचन्द्राभ्यां वा

१० कपीय दुहां दुग्धां प्रक्षरतां पयः उदकम् । अमुना प्रकारेण प्रतिसंवत्सरं
वर्धनाम् उदकेनास्माकं महते सौभगाय । यथा म्हासौभाग्यं धनेवत्सं
स्यात्तथा वर्धनामिति ।

१ क. ख द. ट. च ततः त्वं; च. च त्वं ततः; ठ. ड. च ततः त्वत्पसा-
देन पयः. २ ग. ज. रन्ती सेव; च. रन्ती सं आ. ३ क. ख. १० (४४);
ठ. ड. वति । इति निरुक्तभाष्ये पञ्चमाध्यायं ४४ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेण्वो
न गि. ४ क. ख. ११ (४५); त. द. ११. ५ ग. तीति । पू. ६ ग. ज.
‘दार्ध । दिहिं; च. दार्ध । दिहिं’ शं. ७ ग. ज. कुर्वती; च. कुर्वती’ पं. ८ ग.
ज. भ्यां व; च. भ्यां वं वा. ९ ठ. ‘धन’ क्लृप्यन्तरमध्यायस्य पञ्चमिणि म्हादि-

१० ग. ज. मिति वर्तयामेति; च. मिति वर्तयामेति.

‘ पथ्या (३२) स्वस्तिः ’ (३३) इति वक्तव्यम् । अत्र पूर्वपदं
 पथ्या अन्तरिक्षम् । तन्निवासात् पथ्या । स्वस्ति-
 रित्युक्तं निर्धचनम् (निरु० ३ । २१) ।
 यथा प्रायणीयायां यजतिप्रयोगो दृष्टस्तथा समास्रातः ‘ पथ्यां स्वस्ति
 पूर्वा यजति ’ इति । ‘ तस्या एषा भवति ’ ॥ ४५ ॥

५

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा
 नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा (ऋ०
 सं० १० । ६३ । १६) ॥ स्वस्तिरेव हि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वती
 धनवत्यभ्येति या वसूनि वननीयानि सा नोऽमा गृहे सा निर- १०
 मणे सा निर्गमने पातु स्वावेशा भवतु देवी गोप्त्री देवान्गोपा-
 यत्विति देवा एनां गोपायन्त्विति वोषा व्याख्याता तस्या
 पथा भवति ॥ ४६ ॥

स्वस्तिरिद्धिरिति । वसुकर्णस्याभम् । ‘ इत् ’ इत्यवधारणार्थे । १५
 स्वस्तिरेव हि प्रपथे अन्तरिक्षे श्रेष्ठा प्रशस्या
 सर्वदेवताभ्यः । रेक्णस्वती धनवती उदकेन । अभि
 या वाममेति । या वननीयानि उदकानि अभ्येति । तस्याः किमिति ।
 सा नः सा अस्मान् अमा । अमेति गृहनाम (निघ० ३ । ४ । ११) ।
 गृहे वसतः अरणे अरण्ये च निर्गमने च बहिर्गृहात् पातु रक्षतु । २०
 स्वावेशा स्पृशरणा भवतु अस्माकम् । देवगोपा देवी चासौ गोप्त्री चेति
 देवगोपा । देवान् दातृन्स्मान् गोपायत्विति वा । हविषो गोपायतु ।
 अथवा । देवा मास्थमिका ह्यस्थाना वा रश्मय एनां गोपायन्त्विति वा ।

१ ग. ज. पूर्वद्धि; च. पूर्वद्धि य ० वा. २ क. ख. ११ (४५); ड. वति ।
 इति निरुक्तभाष्ये ५ व्याये ४५ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ३ क. २५
 ख. १२ (४६); त. द. १२. ४ ग. रिति । व. ५ क. ख. व. ट. ङ. ड.
 कानि नित्यमभ्येति; च. कान्यभ्ये मत्व. ६ ग. ज. मणे; च. मणे च ० ने.
 ७ क. ख. घ. ट. ड. देवान्गोपायत्विति वा । दातृन्स्मात् । किम् । सर्व-
 स्पाद्धिषो गोपायतु । अथ; च. देवान् गोपा दातृन् वत्विति वा. ८ च.
 दातृन् वत्विति वा. ९ च. हविं किं सर्वस्मात्. १० च. हवि गोपा वा. ३०

‘ उपा (३४) व्याख्याता ’ (निरु० २ । १८) । ‘ तस्या
एषा भवति ’ ॥ ४६ ॥

अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादहं बिभ्युषीं । नि यत्सीं शिश्र-
५ थदृषां (ऋ० सं० । ४ । ३० । १०) ॥ अपासरदुषा अनसः
संपिष्टान्मेघाद्भिभ्युष्यनो वायुरनितेरपि व.पमार्थे स्यादनस इव
शकटादिवानः शकटमानद्मस्मिंश्चीवरमानितर्वा स्याज्जीवनकर्मण
उपजीवन्त्येनन्मेघोऽप्यन एतस्मादेव यन्निरशिश्रथदृषा वषिता
मध्यमस्तस्या एषापरा भवति ॥ ४७ ॥

१०

अपोषा अनसः सर^३दिति । वामदेवस्यापिम् । परा च । अपासरदुषाः ।

उपाः अपासरत् । कुतः । अनसो वायोः ।

यदा संपिनष्टि वायुर्मेघं तदा तन्निवासिन्युषा
मामप्यथं हनिष्यतीति बिभ्यत्यनसरति । नि यत्सीं शिश्रथत् । यदा निर-
१५ थिश्रथत् निर्जघान निर्हन्ति वृषा वषिता वायुः तदा अपासरदुषाः ।

‘ अनो वायुरनितेः ’ घातोः प्राणनार्थस्य । ‘ अपि वोपमार्थे
स्यात् । अनस इव शकटात् । यथा शाकटिकः शकटात्केनचित्संपिष्य-
भाणादपमर्षेदेवं वायुना संपिष्यमाणान्मेघादपासरदृषा इति द्वितीया
कल्पना ।

२०

‘ तस्या एषापरा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । उत्तमापि ह्युपा
आदित्यसंश्रयाद्भवति । इयं तु मध्यमा भेदसंश्रया वायोरेव संस्तवादिति
मध्यमास्वभावप्रायोवृत्त्युपप्रदर्शनार्थम् ॥ ४७ ॥

एतदस्या अनः शयं सुसंपिष्टं विपाश्या । ससारं सीं
परावतः (ऋ० सं० ४ । ३० । ११) ॥ एतदस्या अन आशेते

१ क. ख. १२ (४६) ; ड. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ५ ध्याये ४६
सण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. २ क. ख. १३ (४७) ; त. द. १३.
३ ग. °दिति । वा° ; ड. अपोषा । इति. ४ च. °मानार्थे. ५ क. ख. १३ (४७) ;
६. °त्पुपप्रदर्शोऽर्थम् । ४७ । °इति नास्ति ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

सुसंपिष्टमितरदिव विपाशि विमुक्तपाशि ससारोपाः परावतः
भेरितवतः परागताद्देवा व्याख्याता तस्या एषा भवति ॥ ४८ ॥

एतदस्या अनः शय इति । विशीर्णमुदकभावेन पृथिवीं संक्षेप
अवस्थितं दर्शयन् ब्रवीति मेघम् । एतदस्याः
उषा एव उपसः अनो मेघाख्यमाश्रयभृतं सुसंपिष्टं सुष्टु
संचूर्णितं वायुना इतरदिव शकटानः विपाशि छिन्नसर्वपाशबन्धनम्
आशते आतस्य पृथिवीं शेते आस्ते यतः संपिष्ट्यमाणात् ससार माध्य-
मिका उषाः परावतः दूराद्दूरं ननाशेति ।

‘इळो (३५) व्याख्याता ‘इडेः स्मृतिकर्मणः’ (निम० ८१७)
इति । ‘तस्या एषा भवति’ ॥ ४८ ॥

अभि न इळो यूथस्य माता स्मददीभिर्बुर्वशी वा गृणातु ।
बुर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्णाना प्रभृथस्यायोः (ऋ० सं०
५ । ४१ । १९) ॥ सिपत्तु न उर्जव्यस्य पुष्टेः (ऋ० सं०
५ । ४१ । २०) ॥ अभिगृणातु न इळा यूथस्य मातां स्मदभि
नदीभिर्बुर्वशी वा गृणानुर्वशी वा बृहद्दिवा महादिवा गृणानाभ्यु-
र्णाना प्रभृथस्य प्रभृतस्यायोर्यर्जस्य ज्योतिषो वोदकस्य वा
सेवतां नोऽस्य पुष्टे रोदसी रुद्रस्य पत्नी तस्या एषा
भवति ॥ ४९ ॥

१ क. ख. छ. त. दं. यिला. २ क. ख. १४ (४८), त. द. १४. ३ ग.
हाति । नि; ड. एतदस्या इति. ४ क. ख. ग. घ. ञ. इला. ५ क. ख. १४
(४८); ड. षति । इति भाष्ये ५ पद्याय ४८ खण्ड; ग. अ. वज्रमितेः खण्डा
भास्ति. ६ क. ख. छ. त. द. इला. ७ क. ख. ड. घ. ध. ड. माता सर्वस्य
माता स्म. ८ क. ख. ड. घ. ञ. ड. विष्य रुद्रस्य स्मो. ९ क. ख. १५
(४९), त. द. १५.

अभि न ईङ्गति । अत्रेरापम् । शकरी । अभिगुणौतु अभिशब्द-
 यवस्मान् । कासौ । इत्यौ । किलक्षणा । यथस्य माता मेघयुथस्य निर्मात्री
 मध्यमा । केनाभिगुणातु । नदीभिः नदीनाभिराङ्गिः । उर्वशी वा । उर्वशीति
 वा योच्यते इडेति वा सा गुणातु नः अस्मानिति अभिस्तनयतु । उर्वशी
 वा चृहदिव्य गृणाना । उपमार्थे वा 'वा'शब्दाद् भेदापेक्षया । उर्वशीव
 चृहत् महत् गृणातु दिवा द्योतनवता विद्युःसहितेनोदकसमूहेन अभ्यु-
 प्वीना सर्वमिन्द्रमभिप्रच्छादयन्ता प्रभृतम् प्रकर्षेण नभृतस्य आयाः
 अयनस्य गमनशीलस्य उदकस्य समूहेन सिपकु सेवताप् अस्मान् ऊर्व-
 व्यस्य पुष्टेः यवादेः अन्नस्य पोषणाय ।

१० रोदसी करमात् 'रोदसी (३६) रुद्रस्य पत्नी' रुद्रस्य विभूतः ।
 'तस्या एष भवति' ॥ ४० ॥

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुचामहे । आ यस्मिन्तस्थौ
 सुरणानि विभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी (ऋ० सं० ५।५६।८) ॥
 १५ रथं क्षिप्रं मारुतं मेघं वयं श्रवणीयमाह्वयामहे आ यस्मिन्तस्थौ
 सुरमणीयान्युदकानि विभ्रती सचा मरुद्भिः सह रोदसी रो-
 दसी ॥ ५० ॥

१ क. ख. ग. घ. च. ज. ट. इति १ अ०. २ ग. ज. 'णतु इति अभि';
 १० च. 'णातु इति अभि'. ३ क. ख. ग. घ. च. ज. इला. ४ ग. ज. 'नदाभि'; च.
 'नदीभि' इना. ५ ग. ज. उर्वश्यर्थ, च. उर्वश्यर्थे पमा. ६ क. ख. घ. ट. ड.
 'हेन गृणाना इद्वयन्ता अ'; च. 'हेन अ' गृणाना इद्वयन्ता ७ क. ख. १५
 (४९); ड. 'वति । इति नेरुकोत्तरपटके भाष्ये ७, ध्याये ४९ स० ४; ग. च.
 'नेरुकोत्तरपटके नास्ति. ८ छ. ल. द. 'मेघं' नास्ति. ९ क. ख. १६ (५०); ल.
 १५ क. १६; ड. ५० इति नेरुकोत्तरपटके पञ्चमाध्यायः अन्तर्भवति.

रथं नु मारुतमिति । श्यावाश्वस्यार्थम् । आग्निमारुते विनिषेगः ।
 स्तोता ब्रवीति । नु क्षिप्रं वयं रथम् आहुशामहे अह्वयामहे मारुतं
 रोदसी मरुतसंयुक्तं श्रवस्युं श्रवणीयं यशास्विनम् ।
 किमिति^३ । आ यस्मिन् तस्थौ । यस्मिन्नातिष्ठति
 रंहणे रोदसी सह मरुद्भिः सहिता मरुद्भिः । रोदसी किमिति । सुराणामि
 सुष्ठु रमणीयानि उदकानि विञ्चती धारयन्ती आतिष्ठति । तं वयं मेवं
 रथम् अह्वयामहे वर्षार्थमिति ॥ ५० ॥

५

इति श्रीजम्बूमार्गनिवासिनोः भगवद्गुर्गाचार्यस्य कृतौ ऋग्वर्षार्था
 निरुक्तवृत्तौ षोडशोऽध्यायः ।

१०

+इयेन^१भादौ^२यस्वादिष्टुयासो^३मंगन्यते^४यत्त्वादे^५बनबोर्न^६वोर्पैरंमृतयो
 स्वेर्वा^७मिस्था^८प्रवो^९महउ^{१०}दुजेयो^{११}तिधर्तौ^{१२}ददा^{१३}तुसो^{१४}मस्यरा^{१५}ज्ञोधातो^{१६}मध्यस्था-
 नौ^{१७}देवमणा^{१८}आवि^{१९}न्मद्भि^{२०}रारुद्रा^{२१}सोविष्टी^{२२}समीवि^{२३}रुं ससउ^{२४}दीर^{२५}तामङ्गि^{२६}र-
 सोनः^{२७}सूर्यस्येव^{२८}स्तुपे^{२९}यमथातो^{३०}मध्यस्थानौ^{३१}ःस्त्रियो^{३२}दक्षस्यै^{३३}रा^{३४}यस्मै^{३५}त्वांकि-
 मिच्छन्ती^{३६}पा^{३७}र्वानो^{३८}महो^{३९}अ^{४०}गो^{४१}यद्भि^{४२}र्वदन्ती^{४३}देवी^{४४}वाचमन्वि^{४५}दनु^{४६}मोरा-
 कौ^{४७}महसि^{४८}नी^{४९}वी^{५०}लि^{५१}कुहू^{५२}महमन्य^{५३}मूपू^{५४}वशी^{५५}विद्युन्न^{५६}वळित्ये^{५७}र्त्नी^{५८}नाहमि-

११

१ ग. 'मिति' इग° । २ ग. ज. मारुतं वा म°; च मारुतं वा म° । ३ क. ख. घ. ट. ड. यस्मिन् किमिति; अ. 'कि° यस्मिन्' । ४ घ. ठ. ड. 'स्थौ यस्मिन्नातस्थौ यस्मिन्'; अ. 'स्थौ + य° यस्मिन्नातस्थौ' । ५ क. ख. घ. ट. ड. 'णे गमने रो°'; अ. 'जे + रो° गमने' । ६ क. ख. घ. ट. ड. सत्वा सह; अ. 'सह° सत्वा' । ७ क. ख. १६ (५०); ड. 'मिति' इति श्रीजम्बू°; ग. अ. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति । ८ ग. च. ज. जम्बू° । ९ ड. निरुक्तः प्रकाशां निधण्डाव्यावायकेन सह नेरुक्तयोः डशो° । १० क. ख. अ. ज. ड. 'ध्यावः समासः + छ. त. इ. एषा खण्डशृङ्खला नास्ति' । ११ ड. इयेनो ध्यास्वात आदा° । १२ ड. ड. 'त मवरेङ्गि°' । १३ थ. यद्भिदेवी । १४ थ. राङ्गासिनी । १५ थ. कुहूमन्-म्' । १६ थ. 'विद्युन्नवळित्ये' । १७ थ. 'नाहं मोरी' ।

११

न्द्राणिगौरीमिमायतस्याःसमुद्रागौरीमीदुर्षेद्वेसूर्यवसाद्धिंकुंभ-
तीस्वस्तिरिद्धैषपोषी एतदस्याअमिनइळारथंनुं पञ्चाशत् ।

इति निरुक्त उत्तरषट्के पञ्चमोऽध्यायः ।

१ य. 'रिदपो'. २ छ इति नैरुक्ते एकादशोऽध्यायः; त. द. इत्येकादशमो
ध्यायः समाप्तः; ध. इति नैरुः छ. 'इति० ध्यायः' नास्ति.

अथ द्वादशाध्यायस्य

प्रथमः पादः ।

ॐ ॥ अथातो शुस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतोऽश्विनौ यध्यश्रुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्योऽश्वैरश्विना-
वित्यौर्णवाभस्तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येकेऽहोरात्रावित्येके ५
सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकास्तयोः
काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भमनु तमोभागो हि
मध्यमो ज्योतिर्भाग आदित्यस्तयोरेषा भवति ॥ १ ॥

व्याख्याता मध्यस्थाना देवताः सवचनलिङ्गविशेषाः । अधुना त्वेनैव १०
समान्नायानुक्रमेण शुस्थाना व्याख्येयाः । तदर्थं विशेषतः पुनरधिकार-
वचनम् । ' अथातो शुस्थाना देवताः ' इति । बहुवचनं पक्षेऽर्धवत् ।
द्यौस्तेषां स्थानमिति शुस्थानाः । देवता व्याख्यास्यन्त इति शेषः । 'तासा-
मश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः ' । तौ कस्मात् । कालतो हि शुस्थानानां

अश्विनौ किमर्थं देवतानां विशेषो विवक्षितः । आश्विने च १५
प्रथमं कथ्यते स्तुतशस्त्रके कर्मणि प्रथममश्विनोः कालः संपौ ।
एकश्चाश्वी मध्यस्थान एको शुस्थानो नैरुक्ता-
नाम् । अतो शुस्थानमध्येस्थानत्वात्तथोराश्विनोरुपन्यासः । यद्येवमेकस्य मध्य-
स्थाने एकस्य शुस्थाने उपदेशः प्राप्नोति । न । एकैकस्य तयोरश्विशब्दस्य

द्वयोरेकत्र कथने किं पृथग्भावेन स्तुत्यभावादश्विद्वन्द्वस्य चात्यन्तमवि- २०
कारणम् योगान्नासत्याविति च पृथक्स्तुत्यभावात् । सत्यर्ष्य-
विद्योगे प्राथम्यात्प्रथमस्य समानानं युक्तमिति
चेन्न तत्कालेन मध्यस्थानस्य हीयमानरूपत्वाद् शुस्थानस्य च वर्धमानरूप-
त्वात् अतोऽनन्तरं च शुस्थानदेवतारूपान्तरसंस्थानादिति ।

१ छ. ड. हरिः ओम्; छ. जुं; थ. ओ३म्; घ. उंम्. २ छ. त. द. ड.
'नुत्तमो. ३ ग. च. ज. जुं व्या°; ब. ट. श्रीगणेशाय नमः । व्या° ४ ग. ज.
'चनपक्षे°. ५ च. मधा-स्था° म. ६ च. ट. °कस्यै तयोरश्वि° स्या. ७ ग. ज.
'अपि' नास्ति ८ ग. ज. °प्रातं.

‘अश्विनौ’ (निघ० ५।६।१) कस्मात् । ‘यद्यश्वजाते सर्वम्’ । केन ।

अश्विनौ कस्मात् ‘रसेनान्यः’ । रसेनोदकेन सर्वम् व्यश्रुते व्या-
प्नोति । ज्योतिषैकः । ‘अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः’ ।

अश्वैस्तद्वन्तौ तावित्यौर्णवाभ आचार्यो मन्यते ।

५ ‘तत्का अश्विनौ’ इति विचारः । तदिति वाक्योपादाने । कावे-
कौ अश्विनौ तावश्विनाविति विचारार्थः प्रश्नः । ‘द्यावापृथि-
व्यावित्येके’ । विज्ञायते हि ‘तौ यो प्रत्यक्ष-

दैवतमश्विनाविभे एव ते द्यावापृथिव्यौ’ इति । यौर्ज्योतिषा व्याप्नोति
पृथिव्यन्नेन । ‘अहोरात्रावित्येके’ । अहर्ज्योतिषा व्यश्रुते रात्रिरवश्यायैः ।

१० ‘सूर्याचन्द्रमसावित्येके’ । सूर्यो ज्योतिषा व्यश्रुते रसेन चन्द्रमाः ।
‘राजानौ पुण्यकृतवित्यैतिहासिकाः’ । ‘अश्वैरश्विनौ’ इत्येतन्निर्वचन-
मथास्मिन्पक्षे इतिहासे समवैति ।

‘तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्प्राक्काशीभावस्यानुविष्टम्भम्’ । ज्योतिषा

११ तयोः कालः व्यलिभिद्यमानमूर्ध्वमर्धरात्रात्तमो यदा ज्योतिरनु-
विष्टमिति सोऽश्विनोः कालः । ततः प्रभृति
संविस्तोत्रं पुरोदशोदाश्विनम् । उदिते सौर्याणि । तत्र यत्तमोऽ-
नुप्रविष्टं ज्योतिषि तद्भागो मध्यमस्य रूपम् । षड्ज्योतिस्तमस्यनु-
प्रविष्टं तद्भागं तद्रूपम् ‘आदित्यः’ । तावतौ मध्यमोत्तमाविति स्वमतमा-
चार्यस्य । यतः समर्थनायोदाहरति । ‘तयोरेषा भवति’ ॥ १ ॥

२०

वसतिषु स्म चरथोऽसिनौ पेत्वाविव । कदेदमश्विना युवमभि
देवाँ अंगच्छतम् ॥ इति सा निगदव्याख्यातां तयोः समान-
कालयोः सञ्चालनार्थोऽर्थोः संस्तुतप्राययोरसंस्तवेनैषोऽर्थोर्चो भवति

१ क. ख. घ. ट. ड. ‘केन सर्वं व्य’; च. ‘केन व्य° सर्वं. २ ग. ज.
२१ यायाश्वि°; च. ‘यायाश्वि द्वा. ३ क. ख. घ. ट. ड. मध्यमः ।
तन्मध्यमस्य; च ‘यो मध्य° मध्यमः । तन्म° ४ ट. वति । इति नि० निघण्टुपं०
१ स्रष्टः; ड. ‘वति । इति निरुक्तटीकायां निघण्टुपञ्चकेन सह सप्तदशाध्याये
प्रथमः स्रष्टः; क ख. ग च. वर्जितेः श्वङ्गो नास्ति. ५ ड. थ. घ. ट. ड.
‘वसता वसतिषु स्म च रथो वसतमो र. तयो वसन्ते स्म इत्येतेषा तयो वक्त्रेवा वदन्ते-
२० वसितौ पेत्वाविव । अनेवा वृत्रहणं सुगतयोस्तयोः’.

वासात्यो अन्य उच्यत उषःपुत्रस्तवान्य इति तयोरेषापरा
भवति ॥ २ ॥

वसातिषु स्मेति । उपजातदेवतादर्शनचक्षुरतीतेषु रात्रिपर्यायेषु संधौ
अश्विनौ प्राप्ते सहसैवाश्विनौ दृष्ट्वा मघ्नद्यत्रवीति । वसा- ५
तिषु रात्रिषु । तासु हि प्राणिनो वैसन्ति । किं
तास्त्रिति । चरथो युवाम् । कथम् । अस्तित्वाविष पेत्वौ । कृष्णाविव भेषौ
समानरूपौ । उषसि कथमपि मया लक्षितौ । यतो ब्रवीमि । कदेदमश्विना
युवम् । कदेदमस्मत्कर्म प्रति ये देवा भागतास्तान्प्रति हे युवामश्विनौ
आगच्छतम् आगतवन्तौ स्थः । १०

‘ तयोः ’ अश्विनोः ‘ समानकालयोः ’ । उभयोरपि हि तयोर्दुर्ध-
मर्धरात्राकाल इति समानकालः । ‘ समानक-
तयोः कालः कर्म मर्णोः ’ । उभयोरपि तयोरेकं कर्म । तिरोभह्याः
च समाने सृक्तानि सोमा आश्विनश्च द्विकपालः । ‘ संस्तुतप्रापयोः ’ ।
ऋचश्च प्रायः स्तुति- प्रायेण हि तयोर्बाहुल्येन संस्तव एव । तयोः पुनः १५
रूपाणि असंस्तवरू
पोऽर्धर्चः ‘ असंस्तवनेषोऽर्धर्चो भवति ’ ।

नैवस्यामृचि वसातिषु स्म चरथ इति वसातयो हि जनपदा अपि
प्रासिद्धाः । तदधिपती राजानौ पुण्यकृतौ अश्वि-
नायमर्धर्चोऽश्वि- स्तद्वन्ताविति शक्यते कल्पयितुम् । तद्यथा ।
पर इति केचित् वासात्यो रादेशाधिपती कौचिद्राजानौ बह्वश्वौ २०
पुण्यकृतौ यज्ञकर्मणि देवान्प्रति गतौ केनचिदुच्येते । यौ युवां वसातिषु
जनपदेषु नित्यमसिताविव पेत्वौ समानवेषौ चरथस्तौ युवामिदं देवस्थानं प्रति
ये देवां वर्तन्ते तान्प्रति कदा हे अश्विनौ युवामागच्छतमागतवन्ताविति ।
मा भूदेषा मन्त्रार्थयोजनेत्यत आह । ‘ वासात्यो अन्य उच्यत उषः-

१ ग. भेति । उ°; ज. भेति । उ° । २ क. ख. घ. ट. ठ. ड. निव° । ३ क.
ख. घ. ट. ठ. ड. °वीति । ४ ग. ज. °मानः का° । ५ ग. ज. ‘ ननु ’ नारित.
६ ग. ज. ‘ तिशु ष्म च° ’; ‘ तिशु ष्म च ’ षु स्म. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. पुण्य-
कृतौ राजानौ. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. युवःमागतव° । ९ क. ख. घ. ट. ठ.
ड. °त्योऽन्य° ।

अश्विपरोऽर्थः पुत्रस्तवान्ब इति । एको वासास्य उच्यते
एकश्च उषसः पुत्र इति । एवमेतस्मिन् भिन्न-
स्तुतावर्धर्चे उषसः पुत्रेण सूर्येण सह समानहैयानादसंशयं मध्यमो
वासास्यो रात्रेः पुत्र इति ।

५ 'तयोरेषापरा भवति' । सा पुनः किमर्थम् । मध्यमोत्तमावश्विना-
वित्यस्यैवार्धस्य दृढतायै स्फुटं यदेतस्यामेतत्परस्यामृचि ॥ २ ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा^३ नामाभिः स्वैः ।
जिष्णुर्^४मन्यः सुमखस्य सूरिर्^५दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे
१० (ऋ० सं० १ । १८१ । ४) ॥ इह चेह च जातौ संस्तूयेते
पापेनालिप्यमानया तन्वा नामभिश्च स्वैर्जिष्णुर्^६मन्यः सुमहतो
बलस्येरयिता मध्यमो दिवोऽन्यः सुभगः पुत्र उह्यते आदित्यस्त-
योरेषापरा भवति ॥ ३ ॥

१५ इहेह जातेति । अगस्यस्यापिम् । प्रातरनुवाकाश्विनयोर्विनियोगः
(आश्व० श्रौ० ४ । १५) । हे अश्विनौ युवामुच्येथे । इहेह जातौ
अश्विनौ इहं च मध्यस्थाने इह च युस्थाने जातौ समवा-
वशीतां संस्तूयेथे । केन । अरेपसा तन्वा अपापया
तन्वा यथासंकल्पकृतया नामाभिः स्वैः । परमनाश्रित्य यानि स्वैर्निमित्तानि तैः ।

२० किंच । जिष्णुर्^७मन्यः । नित्यमेव जेता युवयोऽन्यः । सुमखस्य सूरिः
सुमहतो बलस्येरयिता शत्रुषु । स च नान्यो मध्यस्थानादिति मध्यस्थानः ।
दिवो अन्यः सुभगः पुत्रः सुभगः सुधनः ऊहे उह्यते वायुना नित्यम् ।
स च नान्यः सूर्यादित्येवमत्रापि मध्यमोत्तमाविति ।

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. °मानव्याख्या° । २ ट. ड. °मृचि । इति निरुक्तभाष्ये
३ ध्याये २ खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ४ छ. त. सुमहतो
महतो बल°. ५ क. ख. छ. त. द. दिवो अन्यः. ६ क. ख. ड. थ. ध. ठ. ड.
ऊह्य. ७ ग. °तेति° । अ°. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. °ल्यतया; च. °ल्यकृत°.
९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. स्वस्तानि°; च. स्व-नि° स्तुति. १० क. ख. घ. ट.
२१ ट. ड. ऊह्य°.

‘ तयोरेषापरा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । संस्तुतप्रायावेतौ समानकालौ समानकर्माणावित्युक्तं तदुपप्रदर्शनार्थम् ॥ ३ ॥

प्रातर्युजा विबोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये (ऋ० सं० १ । २२ । १) ॥ प्रातर्योगिनौ विबोधयाश्विनांविहागच्छतामस्य सोमस्य पानाय तयोरेषापरा भवति ॥ ४ ॥

प्रातर्युजेति । मेधातिधेरार्षम् । प्रातरनुवाके विनियोगः (आश्व० तौ एव श्रौ० ४।१५) । हे स्तोतः यावेतौ प्रातर्युज्येते हविषा स्तुत्या च । तावेतौ अश्विनौ विस्य-
ष्टाभिः स्तुतिभिरस्मदर्थं विबोधय । विबोधितौ च त्वया इह कर्मणि आगच्छताम् अस्माकम् अयं सोमस्य पीतये पानांगं ॥

‘ तयोरेषापरा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । नैवानयोरन्यस्मिन् काले इज्यास्ति । यद्यपि क्रियतानिज्यैव सेति सुतरां पर्या संस्तवं कालं चोपप्रदर्शयति ॥ ४ ॥

प्रातर्यजध्वमश्विनां दिनोत्तं न सायमस्ति देवया अजुष्टम् । उत्तान्यो अस्मद्यजने वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् (ऋ० सं० ५ । ७७ । २) ॥ प्रातर्यजध्वमश्विनौ प्रहिणुत न सायमस्ति देवेज्या अजुष्टमेतदपर्यन्योऽस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान्वनयितृनमस्तयोः कालः सूर्योदयपर्यन्त-
स्तस्मिन्नन्या देवता औप्यन्त उपा बह्वः कान्तिकर्मण उच्छते-
रितरा माध्यमिका तस्या एषा भवति ॥ ५ ॥

१ उ ड. °नार्थम् । इति निरुक्तभाष्ये षष्ठाध्याय तृतीयः खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. २ ग. °जेति । मे°. ३ उ. ड. °यति । इति निरुक्त-
भाष्ये ६ ध्याये ४ खण्डः; कं. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ४ क. ख. छ. त. द. °प्यन्यो अस्म°. ५ छ. त. द. इत्य°.

- प्रातर्यजध्वमिति । अत्रैरार्षम् । प्रातरनुवाके विनियोगः (आश्व०
 ५ तौ एव श्रौ० ४ । १५) आश्विने च (आश्व०
 श्रौ० ६ । ५) । हे स्तोतारो यूयमुच्यध्वे ।
 तौ अश्विनौ प्रातः एव यजध्वम् । कथमिति । यतो ब्रवीमि । प्रहिणोत
 प्रकर्षेण तौ प्रति स्तुतीर्हवीषि च गमयतेति । फिमित्येवं ब्रवीति प्रात-
 र्यजध्वमिति । इतो यस्मात् न सायमस्ति देवयाः । अनयोर्देवयोर्न साय-
 मस्ति इत्या । यद्यपि कथञ्चित्स्यात् अजुष्टम् अनासेवितं च तदश्विभ्यां
 १० यजमानः प्रथमः प्रथमो ब्रजमानो वनीषान् वनयितृतमः संभक्तृतमः
 आदृतर्वीत् । तस्यैव हविरासेवेते अश्विनौ नेतरस्येति ।

- ‘तयोः कालः सूर्योदयपर्यन्तः’ । ‘प्रकाशीभावस्यानु विष्टम्भम्’ (निरु०
 आश्विने काले १२।१) इत्यतः कालः प्रभृति सूर्योदयपर्यन्तस्तयोः
 १५ अन्यासां देवतानामा- कालः । ततः परं यागकालः । ततः किम् । ‘तस्मि-
 वापः न्नन्या देवताः’ । तस्मिन् स्तुतिकालेऽन्या
 देवता आश्विने शस्त्रे याः स्तुतिं लभन्ते ताः
 ‘अप्यन्ते’ तासामावापस्तकालस्तुतिप्रतिलभ्मे इति । तत्र तावदुषाः
 २० तासु उषाः प्रथमा प्रथमोप्यन्ते । तद्देवतानि सूक्तानि शस्यन्ते ।
 ‘उषा (२) वष्टेः कान्तिकर्मणः’ । ‘षश
 कान्तौ’ (धा० २ । ७०) इत्यस्य । यच्चोक्तम् ‘उच्छतीति सत्याः’
 (निरु० २ । १८) इति तद्वदं विकल्पेन
 उषाः कस्मात् शुथानायाः । या पुनः ‘इतरा माध्यमिका’
 उषा न तस्या विकल्पः । किं तर्हि । ‘उच्छतेः’ एव सा विवासना-
 र्थस्य । उदकानि विवासयति विवासयते वा भेषान्मध्यमेनेति । ‘तस्या
 २५ एषा भवति’ ॥ ५ ॥

१ ग. ज. प्रातरेताश्विनौ य°; अ. प्रातरेताश्विनौ य°. २ क. ल. घ. ट.
 ठ. ड. ‘अ’ नास्ति. ३ ग. ज. ‘न्योऽप्यस्म’°. ४ घ. ट. ‘तस्वत्’. ५ ग. ज.
 ‘सेषिनौ श्विनौ; अ. सेषिनौऽश्वि’ ते अ. ६ ग. ज. उप्य°; अ. उप्य° ओ. ७ ग.
 अ. ज. ‘षमोप्य’°. ८ ठ. ड. ‘वति’ इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ५ लृष्टः; क.
 ११ ल. ग. ज. वर्जमितरेष्वहो नास्ति.

उपस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तो च तनेयं च
धामहे (ऋ० सं० १ । ९५ । १३) ॥ उपस्तच्चित्रं चायनीयं
मंहनीयं धनमाहरास्मभ्यमन्नवति येन पुत्रांश्च पौत्रांश्च दधीमहि
तस्या एषापरा भवति ॥ ६ ॥

५

उपस्तच्चित्रमा भरा^२ते । गोतमस्यार्पम् । प्रातरनुवाकं (आश्व० श्रौ०
उषाः ४ । १५) आश्विने (अश्व० श्रौ० ६ । ५)
च विनियोगः । हे उषः तदस्माकं चित्रं चाय-
नीयं धनम् आहर त्वं येन त्वत्पत्नेन वयं पुत्रांश्च पौत्रांश्च अविच्छेदेन
तृप्तान् दधीमहि ।

१०

‘ तस्या एष परा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । पूर्वस्यामृचि चित्रं
धनमाहरेत्युक्तम् । तच्च पुनरुभयोरप्युपसोरविशिष्टम् । विशिष्टं तु पर-
स्यामुत्तमलिङ्गं ‘ पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ’ इति । अतः परोदा-
हियते ॥ ६ ॥

१५

एता उ त्वा उपसः केतुमकृत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गात्रोऽरूपीर्यन्ति मातरः
(ऋ० सं० १ । ९२ । १) ॥ एतास्ता उपसः केतुमकृत
प्रज्ञानमेकस्या एव पूजनार्थं बहुवचनं स्यात्पूर्वेऽर्धेऽन्तरिक्षलोकस्य
समञ्जते भानुना । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः । निरि-
त्येष समित्येतस्य स्थानं एषादिषां निष्कृतं जारिणीवेत्यपि
निगमो भवति । प्रतियन्ति गात्रो गमनादरूपीरारोचनान्मातरो

२०

१ छ. त. द. ‘ तत्रचायनीयं धनं ’. २ ग. ‘ रिते ’ । गो. ३ ग. ज. ‘ वाके
वि ’; च. ‘ वाके ’ वि° आश्विने च. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. उपः वाजिनीवति
तं; च. उषः तं वाजिनीवति. ५ ठ. ड. ‘ यते ’ । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ६
खण्डः; क. ख. ग. ज. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. ६ क. ख. द. ‘ तपूर्वे अर्धे अन्तं; ’
त. ‘ तपूर्वे अन्तं ’. ७ क. भ. छं. त. द. स्थानं । एमी°.

२७

भासो निर्माड्यः सूर्या सूर्यस्य पत्न्येषैवाभिःसृष्टकालतमा तस्या
एषा भवति ॥ ७ ॥

- ५ एता उ स्या इति । पूर्ववदायं विनिर्गोश्व । याः पूर्वे अर्धे अन्तरि-
क्षलोकस्य समञ्जते भानुना भासा आत्मानं
सैमभिर्व्यञ्जयन्ति । एतास्ता उपसः । किमिति ।
केतुमकृत अकृषत कुर्वन्ति लोकस्य प्रज्ञानम् । कथं ताः प्रज्ञानं
लोकस्य कुर्वन्ति । अत आह । निःकृष्णाना आयुधानीव धृष्णवः ।
‘ निरित्येष समित्येतस्य स्थाने ’ । यथा संस्कुर्वाणाः नित्यं निर्मज्जतः
१० आयुधनि निर्मलानि कृषन्ति धृष्णवः धर्षयितारः ते आयुधिनस्तज्जी-
वना एवं भानुना स्वेन भासा तमोमलमपनीय निर्मलानि प्रज्ञानानि
लोकस्येषतः संकुर्वन्ति । ततश्च प्रति गावोऽरुषीर्यति मातरः । यत
एवोदितस्तमेव सूर्यं प्रति यन्ति तत्रैवान्तर्धीयन्ते । सूर्यस्यैव हि रश्मिप्रा-
न्तप्रोत्सार्यमाणे तमस्यपररात्रे जाते प्रकाश उपजायते । ता उपम इत्याच-
१५ क्षने । स एष परमार्थः । सूर्य एव स्त्रीलिङ्गविशिष्टो भवति सूर्यकार्यत्वा-
त्प्रकाशस्य ।

- ‘ एकस्या एष पूजनार्थे बहुवचनम् ’ इति वचनभेदप्रतिसमाधानम् ।
निरित्येष समित्येतस्य स्थाने । सामर्थ्याद्व्य-
२० ताय स्थाने तस्य । संस्क्रियमाणानि ह्यायुधान्यतिनिर्मलानि
भवन्ति ।

यथा चेत्पपद्यते उपसर्गाव्यत्ययस्तथा निगममुदाजहार । ‘ एमीदेयाम् ’
इति । ‘ यदा शिष्ये न ददिवर्षैः परायद्भ्रुवोऽर्वाहीय सखिभ्यः । न्युत्ताश्च
तस्योदाहरणम् वभ्रवो वाचमर्कतं एमीदेयां निष्कृतं जाश्रीव ’
(ऋ० सं० १० । ३४ । ५) ॥ कवषस्य
बाक्षस्य वार्षम् । कृतनिवृत्तिर्देवनादशकनुवन्नात्मानं धारयितुं ब्रवीति ।

- १ छ. ‘ भिविसृ’ । २ ग. इति । ३ पू. ३ ग. च. ज. ‘ अन्त’ । ४ क. ख.
५ ट. ठ. ड. ‘ नमभि’ । ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘ न्तलीय’; च. ‘ धी’ ली.
७ ग. ‘ पाणीति । कव’; ज. ‘ वाणीति । कव’; घ. ट. ‘ वाप्येभिः । कव’.

यदा दीध्ये भृशमभिधायामि निश्चयेन न दविषाणि न देविष्यामि एभिः
 अक्षैरिति अथ तदा सखिभ्यः समानहृयान्भ्यः कितवेभ्यः परामङ्गयः
 परागच्छद्भ्यो देवनस्थानम् अहमेभ्यः अवहीये भृशं हीनोऽस्मीति । यदा
 च पुनस्ते प्रप्य आस्फारं निवपन्ति अज्ञान् अथ पुनस्तदा तैर्न्युताश्च ते
 बभ्रवः बभ्रुवर्णा अक्षा वाचमक्रत शब्दमकृषत । अथ तदा निवृत्तिभविग-
 णथ्य एमीत् आगच्छास्येव एवाम् अप्येयाम् अप्येवं निष्कृतं संस्कृतमश्व-
 स्थानम् आस्फारं संस्कृतं जारिणीव व्यभिचारिणीव काश्चिरेत्नी चारिष-
 मात्मनोऽविगणद्येति ।

‘ सूर्या ’ (३) इति वक्तव्यम् । सा पुनरियं ‘ सूर्यस्य पत्नी
 का सूर्या
 ‘ एषैव ’ उवा ‘ अभिसृष्टकालतमा ’ । यथा १०
 सूर्यस्थोदयकालं प्रत्यभिसृष्टतमा भवति गततमा
 भवति तथा तथा सैषा उवाः सर्गा संपद्यते । ‘ तस्या एषा भवति ’
 ॥ ७ ॥

सुकिंशुकं शलमलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रम् । १५
 आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्थानं पत्ये बहतुं कुरुष्व (ऋ०
 सं० १० । ८५ । २०) ॥ सुकाशनं शन्नमलं सर्वरूपमपि
 चोपमार्थे स्यात्सुकिंशुकमिव शलमालिमिति किंशुकं क्रंसतेः
 प्रकाशयतिकर्मणः शलमलिः सुशरो भवति शरवान्मारोह सूर्ये
 अमृतस्य लोकं हृमुदकस्य सुखं पत्ये बहतुं कुरुष्व सविता सूर्या २०
 प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे प्रजापत्ये वेति च ब्राह्मणं वृषाकपायी
 वृषाकपेः पत्न्येषैवाभिसृष्टकालतमा तस्या एषा भवति ॥ ८ ॥

सुकिंशुकं शलमलिमिति । सूर्याया आर्षम् । विवाहे विनियोगः
 सूर्या (आश्व० गृ० १ । ८ । १३) । त्रिस्त्रे २५
 तावदच्यते । यानेव विनियुज्य प्रभामारमनो

१ ग. अ. ‘व्याण्येभिः’; च. ‘व्याण्येभिः’ ग्ये; ट. ‘व्याण्येभिः’ ष्ये; ठ. ड.
 ‘व्याण्येभिः’ २ ग. ‘व्यास्फारं; ज. ‘व्यास्फारं. ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘चिद्वु-
 स्त्री; च. ‘चित् स्त्री’ इदुः ४ ठ. ड. ‘वति । इति निरुक्तभेद्ये उत्तरषट्के षष्ठा-
 ध्याये सप्तमः खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जयितरेष्वङ्गो नास्ति. ५ ग. ‘मिति । सू°;
 ठ. ड. सुकिंशुकमिति. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘च्यते प्रभा°; ग. ज. या प्रभा°.

विमर्जते तदधिदेवतां ब्रवीति । सुकिंशुकं सुप्रु काशनं दीपनं लोकानां
शरमलं शनमलं व्यपगतमलं विश्वरूपं सर्वरूपं हिरण्यवर्णं हिरण्योपमवर्णं
हिरण्यमिव वैरणीयं सुवृत सुवर्तनं शोभनैर्वा रश्मिभिर्वृतं सुचक्रं सुचकनं
सुदीप्तम् । एतमेवंलक्षणं मण्डलं रथम् आरोह त्वं हे सूर्ये भवृतस्य
उदकस्य लोकं स्थानम् । तत एवमधिरुह्यार्यो नं सुखम् एतस्मै पत्ये मण्ड-
लाधिष्ठात्रे बहतुं कृणुष्व कुरुष्वेति ।

पृथक्त्वपक्षे तु रथ एव रथः सूर्य उोढौ कन्या सूर्योच्यते । एवं-
लक्षणं रथमारोहेति ।

‘अपि बोपमार्थे स्यात् । सुकिंशुकमिव शरमलमिति’ । किंशुकमिति

१०

सुकिंशुकमित्यादि
रथविशेषणम् । अथवा
उपमार्थे स्यात्

पलाशपुष्पे प्रसिद्धिः । इह तु रक्तपुष्पत्वमामान्या-
स्तुपुष्पितामिव शरमलमिति सामर्थ्यात् तेनोप-
मार्णयोग आदित्यस्य पुष्टतर इति किंशुकशब्दः
पुष्पिते शरमलौ गौण इति भाष्यकाराभिप्रायः ।

‘किंशुकं केशतेः’ धातोः प्रकाशनार्थस्य । तद्धि दौसिमद्भवति ।

१५

‘शरमलः सुशरो भवति’ । ‘शू हिंसायाम्’ (धा० ९ । १६)
इत्यस्य धातोः । स हि मृत्वास्तुहिंस्यो भवति । ‘शरवान् वा’ ।
व. ष्टकेस्तौ द्वि-रित् हिंसायाम् । ‘सविता
मूर्या प्रायच्छसोमाय राज्ञे प्रजापतये वेति च
ब्राह्मणम्’ । नैरुक्तपक्षे ज्योत्स्नां सोमाय ददाति ।

२०

यदुक्तम् । ‘आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति’ (निरु० २ । ६) इति ।
‘प्रजापतये वेति’ । उपसं वा मध्यस्थानात् प्रजापतये ददाति । केचि-
न्नेतिहासकपक्षे इच्छन्ति । तेषामिनिहासं शैष्ठ्यं कथमेतदिति ।

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. विभज्य; म. ज. विभज्यते. २ ग. ज. वार; च.
वैरणी’ वैरम; ठ. ड. रमणीयं. ३ ग. च. ज. ‘पये बहतुं मण्डलाधिष्ठात्रे कृ’.
४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘इति’ नास्ति. ५ ठ. ड. ‘बोढा । पत्ये सोमहित्वा-
दि । कन्या’ (ट. च. पुस्तके इदं प्रान्ते लिखितम्). ६ घ. ट. ठ. ‘पमायोम.
७ क. ख. घ. ट. ‘वान्वा । हिंसाव. न । क’. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. हि; च.
हिंसायो. ९ क. ख. घ. ठ. ड. निरु’. १० ग. ‘हासो मूर्य; च. ‘हासं सोम-
११ म्येः शणु; न. ‘इमो मूर्य कथ’.

१९

‘ वृषाकपायी (४) वृषाकपेः पत्नी ’ । वृषाकपिरादित्यः । तस्य
का वृष कपायी पत्नी तैद्विभृतिः उपःकाले यदवश्यायान् वर्षति
कम्पयति च तद्गुणयोगात् । सा पुनः ‘ एषैव ’
सूर्या ‘ अभिसृष्टकालतमा ’ वृषाकपायीत्युच्यते । ‘ तस्या एषा
भवति ’ ॥ ८ ॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुसुनुषे । घसत्त इन्द्र उक्षणः
प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १० ।
८६ । १३) ॥ वृषाकपायि रेवति सुपुत्रे मध्यमेन सुसुनुषे माध्य-
मिकया वाचा स्नुषा साधुसादिनीति वा साधुसानिनीति वा १०
स्वपत्यं तत्सनोतीति वा प्राश्नातु त इन्द्र उक्षण एतान्माध्यमिका-
न्तसंस्त्यायानुक्षण उक्षतेवृद्धिकर्षण उक्षन्त्युदकेनेति वा प्रियं कुरु-
ष्व सुखाचयकरं हविः सुखकरं हविः सर्वस्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमे-
तद् ब्रूम आदित्यं सरण्युः सरणात्तस्या एषा भवति ॥ ९ ॥

१०

१५

वृषाकपायि रेवतीति । इन्द्रस्यार्षम् । पष्ठे पृष्ठवाहनि वृषाकपौ विवि-
वृषाकपायी योगः (अश्व० श्रौ० ८ । ३) । हे वृषाक-
पायि रेवति रयिमिति धनं गमे । सुपुत्रे मध्यमेन
इन्द्रेण रसहरणसामान्यात्सहस्थानसामान्यात् । सुसुनुषे माध्यमिकया वाचा
मिथुनसामान्यात् । किमिति । घसत्त इन्द्र उक्षणः । प्राश्नातु ते इन्द्रः तव २०
स्वभूतान् एतान्माध्यमिकान् उक्षणः अवश्यायसंस्त्यायान् एष इन्द्र आदित्यः ।
स हि तानुच्यन् पिबति । प्रियम् इष्टम् एतत्काचित्करं हविः । किमिति सुख-
नामं । तस्य यत् आचितम् आचयनं करोति तद्भवति काचित्करम् । किं
पुनस्तत् । हविः उदकम् । तत्कुरुष्वभावश्यायलक्षणं हविः । अन्नमव-
श्यायैरभिनिष्पादय । किमर्थम् । विश्वस्मात् य एष इन्द्र आदित्यः उत्तरः २५
तदर्थमिति ।

२०

२५

१ ग. ज. ‘पत्नी न्वकाले’; च. तैद्विभृति. २ घ. ट. ठ. ड. कम्पति. ३ ठ.
ड. ‘वनि । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ८ खण्डः; क. ख. ग. घ. वर्जमितरेष्वहो
नास्ति. ४ छ. त. द. ‘हविः सुखकरं’ नास्ति. ५ ग. ‘तीति’ । इ°. ६ क.
ख. घ. ट. ठ. ड. धनवनि रयिमनि. ७ ग. ज. तदर्थमिति उत्तरः; च. ‘तदर्थमिति
किं तरेः’ उत्तरः.

‘सुधा साधुसादिनीति वा साधुसानिनीति वा’ । संतानलक्षणे
सुधा कस्मात् सीदति अङ्गभावमुपैति सुधा । साधु सनोति संततिं
संभजतीति वा सुधा । ‘स्वपत्यं तत्सनोतीति वा’

- ५ सु इत्यपत्यनाम प्रभूयते हि तदिति । तदियं श्वशुरस्य सनोति संभजतीति
वा सुधा । उक्षणः उक्षतेः वृद्धार्थस्य । वर्षयन्ति हि भोषधीरवयवायाः । त
एव वा बहुधाद्वा भवन्ति । उक्षतेर्बा लेचनार्थस्य । ‘उदकेन ’ ह्यन-
श्यावाः सर्वमिदं तिष्ठन्ति ।

- १० ‘सरण्युः’ (५) इति वक्तव्यम् । सैव यदा सूर्य प्रति अविभागेन
सरण्युः कस्मात् प्रसृता भवति तदा ‘सराणात्’ सरण्यूरित्यु-
च्यते । ‘तस्या एषा भवति’ ॥ ९ ॥

- अपागूहकमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सर्वर्णामददुर्विवस्वते । उताः
श्विनावभरद्यत्तदासीदजहाद् द्वा मिथुना सरण्युः (ऋ० सं० १०।
१७।२) ॥ अप्यगूहकमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सर्वर्णामददुर्विवस्वतेऽ-
प्यश्विनावभरद्यत्तदासीदजहाद् द्वा मिथुनौ सरण्यूर्मध्यमं च माध्य-
मिकां च वाचमिति नैरुक्ता यगं च यमी चेत्येतिहासिकास्तत्रेतिहा-
समाचक्षते त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद्यर्मा मिथुनौ जन-
यांचकार सा सर्वर्णामन्यां प्रतिनिधायाम् रूपं कृत्वा प्रदुद्राव
१० स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य संबभूव
ततोऽश्विनौ जज्ञाते सर्वर्णायामनुस्तदभिवादिन्येषर्भवति ॥ १० ॥

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड शोभनेऽर्थे श्वशुरस्य संता°; च. ° संता° शोभनेऽर्थे
श्वशुरस्य. २ क. ख. घ. द. ट. ड. °पितीति सु; च. पै°ति° ती. ३ च. सु°
सु. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. हि ते ओ°; च. हि ° ओ° ते. ५ क.
ख. सूत° प्रसृत°; घ. ट. ठ. ड. सूता भ°; च. ° प्रसृ° सूता. ६ ट. ड. °वति ।
इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १ रूपद्वः क. ख. ग. च. वर्षमितरेष्वङ्गो नास्ति.

अपागृहभिति । देवश्रवस अर्षम् । अपागृहन् अमृताम् एतामुषसं
 वृषाध प.एवस्थायां मर्त्येभ्यो मनुष्येभ्य ।
 सरण्युः फे ते । श्रवसः । कृत्वी स्वर्णं ददुर्विवस्वते ।
 सःमवर्णमितां कृत्वा सरण्यम् अददुः विवस्वते आदित्याय । उताश्वि-
 नावभरत् स्तुतिभिः सा उवाः । स ऋश्विनोः स्तुतिकालः । अथवा । सर-
 ण्यूरभरद्वविषा । स ऋश्विनोर्यागकालः । यस्तदासीत् उपसो रूपं
 सरण्यवा वा अजहात् अत्यजत् द्वा द्वौ मिथुना मिथुनौ सरण्युः । 'मध्यमं
 नैरुक्तमते मिथु-
 नौ मध्यमो माध्यमिका
 च वाक्
 च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्तः' । यदा हि
 सरण्युरादित्यस्य सकाशं मण्डलमनुप्रविष्टा भव-
 त्यविभागेन तदोदिते आदित्ये विच्छिद्यते मध्य-
 मस्य माध्यमिकायाश्च वाचः काल इत्येष तयो-
 रस्मागः ।

'यमं च यमीं चैथैतिहासिकाः' । तन्मतेन मन्त्रार्थस्य योजना । त एव
 दमो यमीं चैथै- रश्मयः प्राणाधिदेवताभावमापन्नास्तेषु वैयस्तं
 तिहासिकाः रूपं चैथैतिहासिको व्यवहारः । तां त्वाष्ट्रीं सर-
 ण्युमक्षां कृत्वा तथा सत्यश्विनोर्जन्म भविष्यं
 पश्यन्तोः लोकहिताय अमृताम् अमरणधर्मिणीं देवीमपागृहन् अन्तर्हितां चक्रुः
 मर्त्येभ्यो मनुष्येभ्यः । उत्तरान् कुरून् प्रति निन्युः । ततश्चान्यां तत्सव-
 णां छायाप्रभवां कृत्वा तामददुर्विवस्वते । उताश्विनावभरत् । यत् आश्वं
 तदा रूपमसीत्तेन सा सरण्यूरश्विनावभरत् अजनयत् अपुष्णात् उत्त-
 रेण कुरुषु । अजहाद् द्वा मिथुना सरण्युः । द्वावन्यौ मिथुनौ यमं च यमीं
 चैति विवस्वतेः रुकाशादंजहात् हिंसा ननाशेति ' तत्रेतिहासमाचक्षते ' ।
 ऋजुरितिहासार्थः । यथा त्वाष्ट्रीं सरण्यूर्विवस्वतोऽपि सा च तस्मान्ननाश ।
 ' तदभिवादिन्येयर्भवति ' ॥ १० ॥

१ ग. 'भिति' । दे० । २ क. ख. घ. 'स्तेष्वन्यसद्रूपं' ; ग. ज. 'स्तेष्वन्यद्रूपं' ;
 च. 'स्तेष्वन्यसद्रूपं व्यस्तं रूपं' (तद्गुः) ट. 'स्तेष्वन्यसद्रूपं' व्यस्तं रु; ठ. ड. स्तेष्व-
 न्यस्तद्रव्यस्तं तद्रूपं. ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. भविष्यत्; च. भविष्ये° ध्यत्.
 ४ ग. च. ज. 'भरवत् । आश्वं' ५ ठ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये
 १० खण्डः; क. ख. ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

त्वष्टा दुहिते वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति । यमस्य
माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश (ऋ० रां० १०
। १७ । १) ॥ त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोतीतीदं विश्वं भुवनं समे-
तीमानि च सर्वाणि भूतान्यभिसमागच्छन्ति यमस्य माता पर्यु-
ह्यमाना महतो जाया विवस्वतो ननाश रात्रिरादित्यस्यादित्यो-
दयेऽन्तर्धीयते ॥ ११ ॥

इति द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१० त्वष्टा दुहिते इति । पूर्वयैव समानार्थं विनियोगश्च । त्वष्टा देवो
सैव विश्वकर्मा यं पुरागविदो वदन्ति स दुहितुः
वहतुं वहनं त्रिवाहं करोतीति इदं विश्वं भुवनं
भूतजातं त्रिवाहदर्शनप्रेप्तया समेति । स हि विवस्वतो स्वभावः । यमस्य
माता । भविष्यता योगेनेत्येत । पर्युह्यमाना पर्युह्या यमं च यमीं च जन-
यित्वा ततो महो महतो ज या विवस्वतो देवस्य जाया भार्या हित्वा अपत्ये
१५ मिथुनौ भाश्यं रूपं कृत्वा ननाशेति ।

नैरुक्तपक्षे तु त्वष्टा मध्यमस्तमोभागस्योपसो दुहितुः दूरे हितायाः

नैरुक्तपक्षेऽर्थः प्रकाशरूपाया वहतुं वहनं विवस्वतः करोति ।
इदं विश्वं भुवनं समेति । प्रभातमिति मत्वा

सर्वाणि भूतानि स्वोस्वितिकर्तव्यतासु अभिसमागच्छन्ति । यमस्य माता
२० पर्युह्यमाना । यमस्य मध्यमस्य माता देवधर्मेण । अथवा । शुस्थानस्य
यैव जाया सा मातेति । जायतेऽस्यां पुत्रत्वेन पतिः जाया भार्या । महतो
विवस्वतः प्रकाशेन प्रोत्सार्थमाणा ननाश नश्यति । संश्लेषतो भाष्यका-
रोऽर्थं निराह । ' रात्रिरादित्यस्य ' उपा जाया । सा ' आदित्यस्योदयेऽन्त-
र्धीयते ' ॥ ११ ॥

२५ समदशाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

१ छ. त. द. ' इति इदं विश्वं भुवनं समेति ' नास्ति. २ छ. प्रथमः पादः;
त. इति द्वादशमोऽध्यायस्य प्र०; द. इति प्रथ०; ड. थ. ध. 'इति पादः' नास्ति.
३ ग. इति'. पू. ४ क ख ट. ठ. ड. स्वासु स्मि; च. ५ स्वां स्वासु. ५ क.
ख. ट. 'यत इति; च. 'यते' त इति; ठ. ड. 'यत इति । इति निरु-
क्तोत्तरपट्टभाष्ये षष्ठाध्याये एकादशः रूपड । इति निवण्टपञ्चकेन सह सप्तदशां,

३२ क. ल. ग. च. कर्ममत्तैश्चक्रे गोपिन.

द्वितीयः पादः ।

सविता व्याख्यातस्तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्ण-
रश्मिर्भवति तस्यैषा भवति ॥ १२ ॥

‘सविता’ (७) इति चक्रव्यम । अ पुनरेष ‘व्याख्यातः’
अभिधानतः (निरु० ७ । ३१ ॥ १० । ३१) । इह पुनरादित्यः ॥
‘तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति’ । यदा यस्मिन् काले
द्यौरेवापहततमस्का भवति न पृथिवी । पृथिव्यां तमो भवति । दिव्यपहते
तमसि विक्षिप्त्वा अस्थं रश्मयो भवन्ति । स सावित्रः कालः । अस्मिन्
काल आदित्यः सवितोच्यते । ‘तस्य’ सवितुस्तत्कालोपलक्षितः ।
‘सुप्तो’ प्राधान्यस्तुतिः ‘भवति’ ॥ १२ ॥

विश्वं रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीन्द्रं द्विपदे चतु-
शपदे । वि नाकंमरुपत्सविता वरेण्योऽनुं प्रयाणंमुपसो वि राजति
(क्र० सं० ५ । ८१ । २) ॥ सर्वाणि प्रधानानि प्रतिमुञ्चते
मेधावी कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा प्रसुवति भद्रं द्विषा-
द्भयश्च चतुष्पाद्भयश्च व्यचिख्यपद्माकं सविता वरणीयः प्रया-
णमनूपसो विराजत्यधोरागः सावित्र इति पशुसमाम्नाये विज्ञा-
यते कस्मात्सामान्यादित्यधस्तात्तूलीयां तमो भवत्येतस्मा-
त्सामान्यादधस्ताद्रामोऽधस्तात्कृष्णः कस्मात्सामान्यादित्यभि-
वेचित्वा न रामायुपेयाद्रामा रमणायोपेयते च धर्माय कृष्णजाती-
यैतस्मात्सामान्यात्कृकवाकुः सवित्र इति पशुसमाम्नाये विज्ञा-
यते कस्मात्सामान्यादिति कालानुवादे परीत्य कृकवाकोः पूर्वं
अन्दानुकरणं वचेरुत्तरं भूमे व्याख्यातस्तस्य कालः प्रायु-
त्सर्पणात्तस्यैषा भवति ॥ १३ ॥

१ क. ख. १ (१२); त. द. १. २ क. ख. घ. ट. न. ड. ‘षा ऋक् प्रा’.
३ क. ख. १ (१२); ठ. ड. ‘वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १२ खण्डः;
ग. च. वर्जमितरेष्वद्भो नस्ति. ४ छ. त. व्यख्यपनां; द. व्यख्यनां. ५ ड. घ.
ठ. ड. ‘द्वेष्टायां ६ क. ख. २ (१३); त. द. २.

- विश्वरूपाणि प्रति मुञ्चते कविरिति । श्यावाश्वस्यार्थम् । आभिष्ट-
 सविता विके प्रथमेऽहनि विनियोगः (आश्व० श्रौ०
 ७ । ५) शिक्षपाशप्रतिमोके च यजमान-
 स्यामौ (भैत्रा० सं० ३ । २ । १) । विश्वानि सर्वाणि रूपाणि
 ५ रूपवसु अर्थेषु प्रतिमुञ्चते आवध्नाति तमोऽपन्नन् रूपण्यविःकुर्वन्
 कविः क्रान्तदर्शनः । अथवा । कवतेः धातोर्ग्यर्थस्य कविः । गच्छ-
 त्यसौ नित्यम् । किञ्च । कथित्वादेव प्रासावीत् प्रसुवति जन-
 यति अभ्यनुजानाति च भद्रं द्विपदे चतुष्पदे द्विपद्भ्यश्च मनुष्यादिभ्यः
 चतुष्पाद्भ्यश्च गवादिभ्यः । यद्यत्तेषां भद्रं कल्याणं तत्तत्प्रसुवति । किञ्च ।
 १० वि नाकमस्यत् । विरूपापयति नाकं वां च विदर्शयति । तदा हि तरयां
 विकीर्णा रश्मयो भवन्ति । किञ्च अनुप्रयाणमुपसो विराजति । उषसः
 प्रयाणमनु विराजति प्रकाशते । सोऽस्माकं नामेदं वरोवित्याशिषा स्तुति-
 निराकाक्षा ।

- ‘ वि नाकमस्यत् ’ इति सवितुः कालोपलैक्षकं मन्त्रलिङ्गं तपशुगु-
 १५ णसामान्येन समर्थयन्नाह + ‘ अधोरामः सावित्रः (काठकसं० ५ ।
 ८ । २ । तै० सं० ५ । ५ । २ । वाज० सं० २९ । ५८)
 इति पशुसामान्ये विज्ञायते ’ । ‘ कस्मात् ’ गुण ‘ सामान्यादिति ’ ।

- अधोरामः किमिति ‘ अधस्तात्तद्वैर्लयां तमो भवति ’ । उपरिष्ठाच्च
 २० सावित्र इत्युच्यते ज्योतिः । शुक्लं तदा दिवि भवति कीर्णरश्मि-
 त्वात्तस्याः । अधस्तात्तु भूम्यां तदा तमो भवति ।
 एतस्मात् कालदेवतागुणसामान्यात् पशुरपि तथारूप एव भवति
 सावित्रः ।

आह ‘ अधोरामः ’ इति किमुक्तं भवति । उच्यते । ‘ अधस्ता-
 त्कृष्णः ’ इति यदुक्तं स्यात्तदुक्तं भवत्यधोराम
 अधोरामः कस्मात् इति ।

१ ठ. ड. रूपाणीति श्यावा°. २ ग. °रिति । श्या°. ३ ग. च. ज. °ध्रातीति.
 ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. क्वति गच्छ°. ५ क. ख. घ. ट. ट. ड. °लक्षणकं.

आह । कृष्णः ' कस्मात्सामान्यात् ' राम इत्युच्यते । शृणु । विज्ञायते
 रामशब्दस्य कथं हि ' अग्निं चित्वा प्रथमं चित्वा न रामामुपेयात् ' ?
 कृष्ण इत्यर्थः (काठकसं० २१ । ७) इति । ' रामा ' इति शब्दे च्यते । सा हि ' रमणाय ' एव
 ' उपेयते न धर्माय ' (वासिष्ठधर्मशास्त्रम् । १८ । १८) । रमणा-
 र्थमेव सा । ' कृष्णजातीया ' । इत्येकार्थो शब्दौ । अधुनाऽस्य रामां
 स्त्रियं प्रधीणादिशब्दवत्पशावयं रामशब्दो वृत्तः कृष्णसामान्यमात्रेण ।

' कृकवाकुः सावित्रः (मैत्रा० सं० ३ । १४ । १५) इति
 कृकवाकुः किमर्थं पशुसामान्याये विज्ञायते ' । स ' कस्मात्सामा-
 सावित्र इत्युच्यते न्यात् ' इति । उच्यते । ' कालानुवादं परीत्य ' ।
 सवितुः कालमसौ वक्तव्येवं परीत्य परिज्ञाय
 सामान्याये तस्य सावित्रत्वम् । कृकवाकुशब्दमधुना निर्वक्ति । ' कृकवाकोः

कृकवाकुः कस्मात् पूर्वं शब्दानुकरणम् ' । कृकवाकुशब्दस्य पूर्व-
 पदं शब्दानुकरणम् । ' कृकः ' इत्येवमसौ शब्दं
 करोति । ' वचेरुत्तरं ' वाकुरित्येतत् । कृक इत्येवं वक्तीति कृकवाकुः ।
 ' भगो ' (८) वक्तव्यः । स पुनरेव ' व्याख्यातः ' (निरु०
 ३ । १६) स्त्रीभगेन शब्दव्युत्पत्तितः । तस्मात्सावित्रात्कालात्परत एत-
 दुत्तमं ज्योतिर्भगारूढं भवति । ' तस्यैवा भवति ' ॥ १३ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं ह्येव वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्र-
 श्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याहं (ऋ० सं०
 ७ । ४१ । २) ॥ प्रातर्जितं भगमुग्रं ह्येव वयं पुत्रमदितेर्यो
 विधारयिता सर्वस्याध्रश्चिद्यं मन्यमान आढ्यालुर्दरिद्रस्तुरश्चित्तुर
 इति यमनाम तरतेर्वा त्वरतेर्वा त्वरया तूर्णगतिर्यमो राजा चिद्यं
 भगं भक्षीत्याहान्धो भग इत्याहुरनुत्सृष्टो न दृश्यते प्राशित्रमस्या-
 क्षिणी निर्जघानेति च ब्राह्मणं जनं भगो गच्छतीति वा जनं
 गच्छत्यादित्य उदयेन सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्यतेर्वा तस्यैषा
 भवति ॥ १४ ॥

१ ट. क. ख. २ (१६); वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १३ खण्डः
 (ड. पुस्तके इदं नास्ति); ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. २ छ. थ. ' व्यालुर्द' .
 ३ क. ख. छ. त. द. वा विज्ञायो ज'. ४ क. ख. ३ (१४); त. द. ३.

प्रातर्जितं भगमिति । वसिष्ठस्याश्रम् । प्रातः प्रतः तमसि यो

भगः

जयति स भवति प्रातर्जित् । तं प्रतर्जितं भगं
सूर्यम् उग्रम् उदूर्णम् अभ्युद्यतमुदयाय ह्येष

आह्वयामहे वयं पुत्रमदितेः यो विधर्ता विधारयितः सर्वस्य जयतः स्वेना-

७

नुग्रहेण । किंच । आध्रश्चिद्यं मन्यमानः । आह्व्य ह्यः आह्वयनां । स्पृहयितः

दस्त्रिः । सयं मन्यमान आकाङ्क्षन् ह्यन्यहानि पूजन् आस्तेऽपि नामोदिवा-

द्भगस्ततो वार्तार्थं पर्यट्यमिति । तुरश्चित् । तुरोऽपि यमस्तूर्णगतिः । सर्वान्

प्राणिन अभिमुख्येनोपसंहाराय तूर्णगतिस्वस्तिगतिः । यं मन्यमान आस्ते

प्रेताधिपतिः । तद्दृश्याद्वि कालातिक्लमेष्वासाद्युसंहरति प्राणिनः । राज्

१०

चित् । सजापि चार्थिनां कार्यचिकीर्षया यं भगं भक्षि उदयं भजेत्येव-

माह । तं वयं भगम ह्वयामहे ।

आह । ‘अन्धो भगः (कौषी० ब्रा० ६ । १३ ॥ शत० ब्रा०

भगोऽन्ध इति किम-

१५

धर्ममुच्यते इति । उच्यते । स हि सूर्यभावम् ‘अनुःसृक्ते

न दृश्यते ’ । नास्मिन् दृष्ट्याः ध्यानं दर्शनम-

स्तीत्यन्धः । न पुनरसावेव न पश्यतीति । “ प्राशित्रमस्याक्षिप्त्वा निर्ज-

घान ’ इति च ।” (कौषी० ब्रा० ६ । १३) इत्यैतिहासिकपक्षाभिप्रायोऽ-

यमर्थवादः प्राशित्रस्य भागस्यानन्वीक्षणस्तुत्यर्थम् । ‘जनं भगो

२०

मच्छति ’ (मैत्रा० सं० १ । ६ । १२) इति । तदेतत्प्रसिद्धमेव ।

यदा तदात्मना जनमादित्यो मच्छति ।

‘सूर्यः ’ (९) इति वक्तव्यम् । स पुनस्यं भगकालात्सूतः सूर्यो

भवति । ‘सर्तेर्वा ’ सूर्यः । ‘सुवतेर्वा ’

सूर्यः कस्मात् प्रसवार्थस्य । स एव हीदं सर्वं प्रसुवति ।

२५

जनयतीत्यर्थः । ‘स्वीर्यतेर्वा ’ । सूर्वस्य वा ईर्यतेर्गत्यर्थस्य । वायुनः

ह्ययं सुष्ठु ईर्यते । प्रेर्यते इत्यर्थः । ‘तस्यैषा भवति ’ प्राधान्य-

स्तुतिः ॥ १५ ॥

१ म. °मिति । वं. २ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ‘इति ’ नास्ति. ३ क. ख.

व. ट. ठ. ड. °सिन्धुभा°. ४ क. ख. ३ (१४); ठ. ड. °स्तुतिः । इति नैक-

३६

कभाष्ये ६ ध्याये १५ खण्डः; ग. ज. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

उदु त्थं जातवेदसं देवं वदन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम्
(ऋ० सं० १ । ५० । १) ॥ उद्वहन्ति तं जातवेदसं
रश्मयः केतवः सर्वेषां भूतानां दर्शनाय सूर्यमिति तस्यैषापरा
भवति ॥ १५ ॥

उद्वे त्थं जातवेदसमिति । प्रस्कण्वस्यार्थम् । आश्विने विनियोगः
सूर्यः (आश्व० श्रौ० ६ । ५) । यम् उद्वहन्ति
उदयमुपायन्ति जातवेदसम् इति सूर्यं केतवः
रश्मयः अश्वा वा यमुद्वहन्ति सर्वेषां भूतानां दृशे दर्शनाय सूर्यं तं वय-
मभिप्रतार्थमिद्वेऽभिष्टुमः ।

१०

‘ तस्यैषा अपरा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । जातवेदसं सूर्य-
मिति श्रवणात्संदेहः किमिधं जातवेदस्युत सौरीति । परा त्वसंशयमेव
सौरीति परा निजगाद ॥ १५ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्भिन्नस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा
द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा जगत्स्तस्थुषश्च (ऋ० सं०
१ । ११५ । १) ॥ चायनीयं देवानामुदगादनीकं ख्यानं मित्रस्य
वरुणस्याग्नेश्चापूपुरद् द्यावापृथिव्यौ चान्तरिक्षं महत्त्वेन सूर्यं
आत्मा जंगमस्य च स्थावरस्य चाथ यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत्पूषा
भवति तस्यैषा भवति ॥ १६ ॥

१५

२०

चित्रं देवानामिति । कुत्सस्यार्थम् । आश्विने विनियोगः (आश्व०
श्रौ० ६ । ५) । चित्रं चायनीयं पूजनीयम् ।
स एव किं पुनस्तत् । देवानां रश्मीनां यदेतत् उदगात्
अनोकं समूहः । किमस्य । चक्षुर्भिन्नस्य वरुणस्याग्नेः । एतस्मिन् मित्र-

२५

१ क. ख. ड. थ. घ. ठ. ड. °मिति कमन्यमादित्यादेववक्ष्यत्तस्यै°. २ क.
ख. ४ (१५); त. द. ४. ३ ठ. ड. त्थमिति । प्रस्क°. ४ ग. °मिति । प°.
५ ग. ज. °न्ति य इष्टाः स°; च. °न्ति यै इष्टाः स°. ६ क. ख. ४ (१५); ठ.
ड. °गाद् । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १५ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.
७ क. ख. ड. थ. घ. ठ. ड. °त्वेन तेन स°. ८ क. ख. ५ (१६); त. ड. ५. ३०

स्य वरुणस्याग्नेश्चक्षुः । ख्यानम् इत्यर्थः । य एष सूर्य आत्मा जङ्गमस्य च
स्थावरस्य च सर्वभूतानुप्रवेशी अप्राः आपूपुरत् आपूरयति द्यावापृथिव्यौ
च अन्तरिक्षं च । महत्त्वेन सूर्य आत्मा । एतस्मिन् मित्रवरुणाग्न्यादीनां
देवतानां ख्यानम् । अनेन सूर्यात्मना य एतान् मित्रप्रभृतीन् पश्यति स
साधु पश्यतीत्यभिप्रायः । विज्ञायते हि रहस्यब्राह्मणे ' य एष सूर्य
आत्मा जगतस्तस्थुपथ ' (ऐ० आ० २ । २ । ४) इति । एतदिहै-
वोपेक्ष्यमिति ।

भेदपक्षे तु मित्रप्रभृतीनामेतच्चक्षुरीति । याज्ञिकपक्षे चक्षुषा ते पश्य-
न्तीति । तत्रापि विज्ञायते हि । ' एष वै विश्वेषां देवानां चक्षुः ' इति ।
१० ' अथ यत् ' यदा ' रश्मिपोपम् ' आपूर्णस्तेजसा रश्मीन् सूर्यः
'पुष्यति' विभर्ति ' तत् ' तदैव ' पूषा (१०)
पूषा कर्मत् भवति । ' तस्यैषा भवति ' ॥ १६ ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषु रूपे अहनी द्यौरिवासि । विश्वा
१५ हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु (ऋ० सं०-
६ । ५८ । १) ॥ शुक्रं ते अन्यल्लोहितं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्य-
ज्ञियं ते अन्यद्विषमरूपे ते अहनी कर्म द्यौरिवा चासि सर्वाणि प्रज्ञा-
नान्यवस्यन्नवन् भाजनवती ते पूषन्निह दत्तिरस्तु तस्यैषापरा
भवति ॥ १७ ॥

२० शुक्रं ते अन्यदिति । भरद्वाजस्यार्षम् । चातुर्मास्थेषु विनियोगः पौष्णे
हविषि (मैत्रा० सं० १ । १० । १ ॥ ४ । १०
पूषा ३) । हे पूषन् शुक्रम् अन्यत् तव रूपम् यल्लो-
हितम् अन्यत्तव रूपम् । शुक्लेन व्यपदेशात्सामर्थ्याल्लोहितादि । यजतं
२१ यज्ञियं यज्ञार्हम् अन्यत् । अयज्ञियमयज्ञार्हमन्यत् । भगांशरूपेण हि
नायमिष्यते । विज्ञायते हि ' तस्मादेतौ भगांशौ यज्ञे नै यजन्ते ' (मैत्रा०
सं १ । ६ । १६) इति । किंच । विषु रूपे भवतः । एते शुक्लकृष्णे

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'ग्नेश्च चक्षुः; च. 'ग्नेश्चक्षुः' च. २ ग. ज. 'षा
पश्यती'; च. 'षा पश्यतीति'; ते पश्यन्ती. ३ क. ख. ५ (१६); ट. ड. 'वति ।
इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १६ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ४ क. ख.
३१ ६ (१७); त. द. ६. ५ ग. ज. 'शौ न यज्ञेन य'; च. 'शौ नै यज्ञेन य'.

रूपे । अहनी अहोरात्रे । कर्मणा उदयेन शुक्लमहः करोषि अस्तमयेन कृष्णम् । घौरिवासि । यथा घौरावृत्त्य सर्वं वर्तत एवं त्वमपि । विश्वा हि मायाः सर्वाः प्रज्ञाः प्रज्ञावतां त्वम् अवसि पालयितौ पालयसि उद्य-
न्ननुगृह्णासि । हे स्वधार्त्रैः पूषन् यं त्वामेवमादिगुणयुक्तमद्राक्षम तव तस्य भद्रा भन्दनीया स्तुत्या रातिः दानम् इह अस्मिन् कर्मणि अस्मान् प्रति अस्तु इत्येतदाशास्महे ।

‘ तस्यैषा अपरा भवति ’ । सा पुनः किमर्थमिति । पथि रक्षितृत्वे पूषणोऽधिकारः । तत्परिप्रख्यापनार्थम् । अथवा । इयं वै पूषा (मैत्रा० सं० २ । ५ । ५) इति विज्ञायते । तद्ब्रुदासार्थम् ॥ १७ ॥

१०

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानल्लेकर्म । स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियं सीपघाति प्र पूषा (ऋ० सं० ६ । ४९ । ८) ॥ पथस्पथोऽधिपतिं वचनेन कामेन कृतोऽभ्यानल्ले-
कर्मभ्यापन्नोऽर्कमिति वा स नो ददातु चायनीयाग्राणि धनानि कर्म कर्म च नः प्रसाधयतु पूषेत्यथ यद्विपितो भवति तद्विष्णुर्भवति विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्रोतेर्वा तस्यैषा भवति ॥ १८ ॥

१५

पथस्पथः परिपतिमिति । ऋजिश्चन आर्षम् । पौष्णे हविषि पञ्चमेऽ-
स एव हनि व्युढे विनियोगः । पथस्पथः । सर्वमार्गा-
णामित्यर्थः । किमिति । परिपतिम् अधिपतिं २०
वचस्या वचनेन स्तुत्या कामेन स्वेन पूषणं कामेनैव प्रत्यभिमुखीकृत्य
अर्कम् अहम् अभ्यानत् । स्तुत्या कामप्राप्त्यर्थमभिव्याप्तौमि । सोऽभि-
व्याप्तः सन् नोऽस्मभ्यं रासत् ददातु । किम् । शुरुधश्चन्द्राग्राः । शुचं
संरुन्धन्ति यानि धनानि चायनीयाग्राणि अभिपूजितागमानि । धर्म्य
आगमो येषाम् । किंच । तैर्धनैर्धर्मलुब्धैः धियं धियं सीपघाति साध- २५

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. किंच । विश्वाः. २ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'यितृ-
त्वात्पाल'; च. 'यितौ पा' तृत्वात्पा. ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'धावः अन्नवन्
पू'; च. 'धावः पू' अन्नवन्. ४ क. ख. ६ (१५); ठ. ड. 'सार्थम्'. इति निरु-
क्तभाष्ये ६ ध्याये १७ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ५ छ. त. द.
'नलर्क'. ६ क. ख. ७ (१८); त. द. ७. ७ क. ख. ग. च. ज. 'प्रोति. ३०

यति प्र पूषा । वर्म कर्म अस्माकम् इष्टिपशुसोमादिलक्षणं प्रसाधयतु
पूषा । यागायाविघ्नेनोपनामयत्वित्यर्थः ।

‘ अथ यत् यदा ‘ विपितो ’ व्याप्तोऽयमेव सूर्यो रश्मिभिः ‘ भवति ’

विष्णुः कस्मात् तदा ‘ विष्णुः (११) भवति ’ । ‘ विश-
तेर्वा ’ । यदाविष्टः प्रविष्टः सर्वतो रश्मिभिर्भ-

वति तदा विष्णुर्भवति । ‘ व्यश्नेतेर्वा ’ । विपूर्वस्य व.श्नेतेः । यदा
रश्मिभिरतिशयेनायं व्याप्तो भवति व्याप्नोति वा रश्मिभिरयं सर्वं तदा
विष्णुरादित्यो भवति । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ १८ ॥

- १० इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूह्लमस्य पांसुरे
(ऋ० सं० १ । २२ । १७) ॥ यदिदं किंच तद्विक्रमते
विष्णुस्त्रिधा निश्चत्ते पदं पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपुणिः
समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः समूह्लमस्य पांसुरे
प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे स्यात्समूह्लमस्य
१५ पांसुल इव पदं न दृश्यत इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा
पन्नाः शेरत इति वा पिंशनीया भवन्तीति वा ॥ १९ ॥

इति द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

इदं विष्णुरिति । मेधातिथेरापमं । प्रायश्चित्ते (आश्व० श्रौ० ३ ।-

- १० विष्णुः १० ॥ मैत्रा० सं० १ । ८ । ९) आज्या-
सादने (मैत्रा० सं० ४ । १ । १२) च
विनियोगः । यदिदं किंचिद्विभागेनावस्थितं तद्विक्रमते विष्णुरादित्यः ।
कथमिति । यत् आह । त्रेधा निदधे पदं निश्चत्ते पदम् । निधानं पदैः
क । तत्र तावत् ‘ पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपुणिः ’ । पार्थिवोऽग्नि-
२५ भूत्वा पृथिव्यां यत्किञ्चिदस्ति तद्विक्रमते तदधितिष्ठति । अन्तारिक्षे विशुदा-

१ क. ख. ७ (१८); उ. ड. ० वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये १७
खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति २ क. ख. छ. त. द. ‘मूल्हमं’. ३ क.
ख. ड. थ. ध. ठ. ड पदं त्रेधाभावाय पृ०. ४ छ. त. द. ‘पांसुरे’ नास्ति.
५ ड. थ. घ. ठ. ड. पंशनी’. ६ क. ख. ८ (१९); त. द. ८. ७ छ.
द्वितीं; त. द्वादशमोऽध्याये द्विं; द. इति द्विं; द. थ. ध. ठ. ड. ‘इति०
३१ पादः’ नास्ति.

स्मया दिवि सूर्यमना । यदुक्तम् । ' तम् अकृण्वन् त्रेवा भुवे कम् ' (ऋ० सं० १० । ८८ । १०) इति । ' समारोहणे ' उदयगिरिबु-
 द्यन् पदमेकं निधत्ते । ' त्रिष्णुपदे ' मध्यन्दिनेऽन्तरिक्षे । ' गयीशिरसि '
 अरुगिरौ । ' इत्यौर्णवामः ' आचार्य एवं मन्यते । समूहलोऽस्य पांसुरे ।
 अस्मिन् प्यायने एतस्मिन् अन्तरिक्षे सर्वभूतवृद्धिहेतौ यन्मध्यन्दिनं पदं
 द्वैद्युदास्यं तत् समूहलम् अन्तर्हितम् । न चियं दृश्यते । सद्रुक्तम् । स्वप्नै-
 मेतन्मध्यमं ज्योतिरनित्यदर्शनम् ' इति (निरु० ५ । ३) । ' अपि वोप-
 मार्थे स्थासमूहलमिव पांसुले पदं न दृश्यत इति ' । यथा पांसुले
 प्रदेशे पदं न्यस्तमुक्षेपणसमनन्तरमेव पांसुभिराकीर्णत्वान्न दृश्यते एवमस्य
 मध्यमं द्वैद्युदास्यं पदमाविर्कृत्स्नमकाख्येण व्यवधीयते । न्याय- १०
 तिष्ठत इत्यर्थः ।

' पांसुरे ' इति रो मत्वर्थः । अथ ' पांसवः ' कस्मात् । ते हि
 ' प्राद्वैः मयन्ते ' । अन्यन्त इत्यर्थः । अथक् । ' पन्नाः शेरत इति ' ।
 अथवा । ' पिशनीया ' श्वंसनीया ध्वंसनार्हास्ते ' भवन्ति ' तदाकी-
 र्णस्य दुर्ङ्गीकृत्वात् ॥ १९ ॥ १५

सप्तदशस्य द्वितीयः पादः ।

तृतीयः पादः ।

विश्वानरो व्याख्यातस्तस्यैष निपातो भवत्यैन्द्रशा-
 मृचि ॥ २० ॥ २३

विश्वानरो (१२) वक्तव्यः । स्व पुनरेव ' व्याख्यातः ' अभिधा-
 नव्युत्पत्तिकः ' प्रवृत्तः सर्वाणि भूतानि ' (निरु० ७ । २१)

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. मन्यत एवम्. २ क. ख. घ. च. ज. 'मूल्ह'.
 ३ ट. 'स्वैमि' स्वपन; ठ. ड. स्वपनमे. ४ ग. घ. ज. 'विः कृ'. ५ ग. ज.
 'इति । पिशनीयाः बुद्धि'; च. 'इति + रि' अथवा. ६ क. ख. ८ (१९); ठ.
 ड. 'कृत्वात् । इति नेरुक्तभाष्ये ६ अध्याये १२ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.
 ७ ठ. ड. इति निवण्टपञ्चकेन सह सप्तदशाध्यायस्य द्वितीयः पादः. ८ च. पादः
 समाप्तः. ९ क. ख. १ (२०); त. द. ६.

इति । इह तु नियमतो द्युस्थानः । ' तस्यैव निपातो भवत्येन्द्र्या-
मृचि ' ॥ २० ॥

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनाम्-
मृती हुवे रथानाम् (ऋ० सं० ८ । ६८ । ४) ॥ विश्वानर-
स्यादित्यस्यानानतस्य शवसो महतो बलैस्स्यैवैश्च कामैरयनरव-
नैर्वा चर्षणीनां मनुष्याणामृत्या च पथा रथानामिन्द्रमस्मिन्यङ्गे
ह्ययामि वरुणो व्याह्वयात्स्तस्यैषा भवति ॥ २१ ॥

१० विश्वानरस्य वस्पतिमिति । ' आ त्या रथं यथोत्पे ' (ऋ० सं०
विश्वानरः ८ । ६ । ८) इत्येतास्मिन्नेन्द्रे सृक्ते प्रियमपेन
दृष्टे । निष्केवल्ये विनियोगः । विश्वानरस्य
अप्रदित्यस्य अनानतस्य शवसः अनानतज्योतिर्वलस्य अनभिभूतप्रकाश-
स्याग्नैज्योतिर्भिः बलपतिं पातारं रक्षितारमिन्द्रम् अस्मिन्यङ्गे युष्माक-
१५ मर्थसिद्धये आह्वयामः । केनेति । एवैश्च कामैरयनैः चर्षणीनां मनुष्या-
णाम् अवनैः गमनैः तं प्रति निमित्तभूतैः ऊत्या च पथा येन मार्गेण
रंहणा रश्मय इमं लोकमागच्छन्ति तेन पथा भवतामहमिन्द्रमाह्व-
यामि ।

२० ' विश्वानरस्य वस्पतिम् ' इति पतिशब्देनेन्द्रवाचिना व्यपदेशात्प्र-
दृष्टान्तस्य विश्वानरशब्दस्य द्युस्थानवाचिन्वे सामर्थ्यमुपपद्यते ।

' वरुणो । (१३) व्याख्यातः ' निर्वचनतः (निरु० १० । ३) ।
इह त्वादित्यः । ' तस्यैषा भवति ' ॥ २१ ॥

१ क. ख. १ (२०); उ. ड. 'मृचि । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २०
रुण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. २ ध. बलस्यै°. ३ ड. थ. घ. छ. २१.
४ ग. 'मिति । आ°. ५ क. ख. व. ट. ठ. ड. 'ज्ञे वः युः'; च. 'ज्ञे ~ यु' वः.
६ क. ख. २ (२१); उ. ड. 'वति । इति निरुक्तभाष्ये उत्तरपट्टके ६ ध्याये

२८ २१ सण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनुं । त्वं वरुण
पश्यसि (ऋ० सं० १ । ५० । ६) ॥ भुरण्युरिति क्षिप्रनाम
भुरण्युः शकुनिर्भूरिमध्वञ्चं नयति स्वर्गस्य लोकस्यापि वोहळा
तत्संघाती भुरण्युरध्वेच पावकरुयानेन । भुरण्यन्तं जनाँ अनुं ।
त्वं वरुण पश्यसि । तत्ते वयं स्तुम इति वाक्यशेषोऽपि वोच- ५
नस्थाम् ॥ २२ ॥

येना पावक चक्षसेति । प्रस्कण्वस्थेताः सर्वा आर्षम् । आश्विने
विनियोगः (आश्व० श्रौ० ६ । ५) ।
वरुणः
'भुरण्युरिति क्षिप्रनाम' (निघ० २ । १५ । १४) । १०
'भुरण्युः' क्षिप्रगार्भा 'शकुनिः' । स पुनरयमेव योऽभियज्ञे अग्निश्ची-
यते । स सुपर्णः । विज्ञायते हि 'स्वर्गीय वै लोकायाग्निश्चीयते
(मैत्रा० सं० ३ । ४ । ८) इति । 'तत्संघाती' तेन युक्तोऽग्निचित्
उपात्तापूर्वसंभारः स्वर्गं लोकं प्रति तदैवं शीघ्रं यः पतति गन्तुमिच्छति
स भुरण्यति । हे भगवन् वरुण पावक पावयितः येन रुयानेन दर्शनेन १५
अनुग्राहकेण त्वं पुण्यकृतो जनाननु भुरण्यन्तं पूर्वेषां पुण्यकृतां मार्गेण
देवयानेन क्षिप्रं गच्छन्तमनुपश्यसि । किं तस्य दर्शनस्थेति । अपरि-
'तत्ते वयं स्तुमः' समाप्तं वाक्यमिति यद्वृत्तमपेक्ष्य तद्वृत्तमभ्याजहारा
इत्यभ्याहृत्य वाक्यस- 'तत्ते' दर्शनमनुग्राहकं 'वयं स्तुमः' इति
मासिः वाक्यशेषः । २०

'अपि वोत्तरस्याम्' । अपि चैवं यथोक्तमपि चैवमन्यथा स्यात् ।
कथमिति । यथोत्तरा ऋक् । तथापि सहैकवाक्यतोपेक्षया । कथमिति । यतः
पुनः पठति ॥ २२ ॥

२५

१ छ. त. द. वोहळा; ठ. ड. °स्यामि वोहळा. २ °मुत्तरस्यामन्वयस्तेन
ष्येति' इति सायणभाष्ये निरुक्तमूलम्. ३ क. स्व. ३ (२२); त. द. ३.
४ ग. °सिति । प्र°; ठ. ड. पावकेति प्र°. ५ ग. ज. तद्वं शी°. ६ च. वैव°
थै. ७ क. ख. ३ (२२); ठ. ड. °ठति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २१
खण्डः; ग. च. दर्जमितेरेवङ्को नास्ति.

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अनु ॥ त्वं वरुण
 पश्यसि (ऋ० सं० १ । ५० । ६) ॥ विद्यामेपि रजस्पथ्वह
 मिमानो अक्तुभिः । पश्यन्जन्मानि सूर्य (ऋ० सं० १ । ५० । ७) ॥
 व्येषि द्यां रजश्च पृथु महान्तं लोकमहानि च मिमानो अक्तुभिः
 रात्रिभिः सह पश्यन् जन्मानि जानन्ति सूर्यापि वा पूर्व-
 स्यात् ॥ २३ ॥

येना पावकेति । येन हे पावक वरुण स्वानेन जना अनु भुर-
 १० अथवा उत्तरस्यां ण्यन्तं पश्यसि तेनैव स्वानेन तथैव स्यात्प्रा-
 वाक्यशेषः प्रज्ञया युक्तस्त्वं विद्यामेपि विविधमेपि । अतिश-
 येन वा एषि । किमेपि । वुलोकम् । रजश्च
 पृथु महान्तं लोकम् अन्तरिक्षम् । किं कुर्मणः । महानि च मिमानो
 कुर्वन् अक्तुभिः रात्रिभिः सह पश्यन् जन्मानि जन्तानि सर्वभूतान्यनुमा-
 हकत्वेन सूर्य ।

३५ अपि वीत्तरस्यामेकवाक्यता स्यात् । ' अपि ' तर्हि ' पूर्वस्याम् '
 अत्युपेक्षया । कयमिति । यतः पठति ॥ २३ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अनु ॥ त्वं वरुण
 पश्यसि (ऋ० सं० १ । ५० । ६) ॥ प्रत्यङ् देवानां विशः
 २० प्रत्यङ्ङुदेपि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे (ऋ० सं० १ ।
 ५० । ५) ॥ प्रत्यङ्ङुद्विदं सर्वमुदेपि प्रत्यङ्ङुद्विदं ज्योतिरुच्यते
 प्रत्यङ्ङुद्विदं सर्वमभिपश्यसीत्यपि वैतस्यामेव ॥ २४ ॥

१ क. ख. ४ (२३) ; त. द. ४. २ ग. ' केति । ये ' . ३ क. ख. ४
 (२३) ; उ. ड. ' ठति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २३ सण्डः ३ ग. च. वर्जमितो-
 षङ्को नास्ति. ४ क. ख. छ त. द. ' ज्योतिरुच्यते प्रत्यङ्ङुद्विदं ' न प्रस्ति. ५ क.
 ३७ ख-छ. त. द. सर्वमिदमभि'. ६ क. ख. ५ (२४) ; त. द. ५.

येना पावकेति । हे वरुण पावक येन ह्यनेन ययैवानुग्रहबुद्ध्या जना-
ननु भुरण्यन्तं पश्यसि तथैव ह्यत्या प्रज्ञया युक्तः प्रत्यङ् देवानां या
विशः ताः कृत्वा पुरस्तात्तासाम् उदेधि । मानुषांश्चैवमेव प्रत्यङ् कृत्वा तेषामपि
पुरस्तादेवेदेधि । किं बहुना । हे स्वः आदित्य प्रत्यङ् इदं सर्वम् आत्मनः
कृत्वा पुरस्तादुद्यन् सर्वमभिविपश्यसि ।

न चेत्पूर्वस्यामुत्तरस्यां वा एकवाक्यता स्यात् 'अपि' तर्हि
'तस्यामेव' । कथमिति । यतः पुनः पठति ॥ २४ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु । त्वं वरुण
पश्यसि । तेन नो जनानभिविपश्यसि केशी केशा रश्म-
यस्तैस्तद्वान् भवति काशनाद्वा तस्यैषा भवति ॥ २५ ॥

येना पावकेति । हे पावक वरुण येन ह्यनेन ययैवानुग्राहक-
अथवा ऋचैव प्रज्ञया जनाननु भुरण्यन्तं पश्यसि त्वं पुण्यका-
वाक्यसमाप्तिः रिणः तेनैव ह्यनेन तयैवानुग्रहकारकबुद्ध्या
अस्माकं जनानभिविपश्येति ।

को विशेषः प्रथमादध्याहारात् । प्रथमे हि तत्ते वयं स्तुम इति स्तुत्या
परिसमापितम् । इह पुनराशिषा 'तेन नो जनानभिविपश्य' इति । स्तुत्या-
शिषोः संबन्धनित्यत्वाद्वाक्यस्य । एष साकाङ्क्षाणां मन्त्राणामेकवाक्यता-
प्रकार उपप्रदर्शितः ।

'केशी' (१४) इति वक्तव्यम् । अत्र 'केशा रश्मयस्तैस्तद्वान्'
कोशे कस्मात् आदित्यो यो मध्यादिने भवति । 'काशनाद्वा' ।
प्रकाशनादित्यर्थः । रश्मयोऽपि केशाः काशना-
देव । 'तस्यैषा भवति' ॥ २५ ॥

१ ग. 'केति' । हे । २ म. ज. 'वानां विशः या' ; च. 'वानां विशः याः' ।
३ क. ख. ५ (२४) ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गा नास्ति. ४ क. ख. ड. 'नाद्वा
प्रकाशनाद्वा त' । ५ क. ख. ६ (२५) ; त. द. ६. ६ ग. 'केति । हे' । ७ ग.
अ. 'भिवश्ये' ; च. 'भिवश्ये' . ८ क. ख. ५ (२५) ; ठ. ड. 'वति । इति
निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २ । खण्ड ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गा नास्ति.

केश्यमिं केशी विषं केशी विभर्ति रोदसी । केशी विश्वं
 स्वर्दश केशीदं ज्योतिरुच्यते (ऋ० सं० १० । १३६ । १) ॥
 केश्यमिं च विषं च विषमित्युदकनाम विष्णातेर्विपूर्वस्य स्नातेः
 शुद्धयर्थस्य विपूर्वस्य वा सचतेर्घावापृथिव्यौ च धारयति केशीदं
 ५ सर्वमिदमभिविषयति केशीदं ज्योतिरुच्यत इत्यादित्यमाहाथा-
 प्येते इतरे ज्योतिषी केशिनी उच्येते धूमेनाग्नी रजसा च मध्यम
 स्तंपामेपा साधारणा भवति ॥ २६ ॥

केश्यमिमिति । जूनेरार्यम् । केश्यमिं विभर्ति वर्षेगोदकेनौषधीरभिनि-
 १० केशी ष्यादयन् । आहृतिद्वारेण केशी विषं विभर्ति ।
 ' विषमुदकं विष्णातेर्विपूर्वस्य स्नातेः शुद्धयर्थस्य ।
 विपूर्वस्य वा सचतेः ' । सर्वत्र ह्यतिशयेन यस्सक्तमिति तदपि केशी
 विभर्ति । रोदसी अपि च केश्येव विभर्ति । तन्निवासीनि भूतान्यनुगृ-
 ह्णाति । अपि चायं स्वरादित्यः केशी विश्वमिदं सर्वमिदम् अभिविष-
 १५ यति यथाभिदृष्टव्यम् । कोऽयं केशीति । यत आह दर्शयन्नेवादित्यं
 केशीदं ज्योतिरुच्यत इति ।

अतः परं विचारः । ' अथाप्येते इतरे ज्योतिषी ' प्रथममाच्यभिके
 इतरे ज्योतिषी ' केशिनी (१५) उच्येते ' । तत्र तावत् ' धूमे-
 २० अपि केशिनी उच्येते नाग्निः ' केशी । स हि तस्य प्रकाशनाय निगू-
 ढस्यापि भवति । ' रजसा च मध्यमः ' ।
 असावप्यमूर्त्वाद्प्रकाशः सन् रजसोद्भूतेन प्रकाशतेऽसौ वायुरागच्छतीति ।
 उदकेन च वैद्युतः । ' तेषां ' त्रयाणामपि केशिनाम् ' एषा ' साध-
 रण्येन प्रधानस्तुतिः ' भवति ' ॥ २६ ॥

१ छ. त. द. °र्वस्य वा सचते°. २ क. ख. छ. त. द. °ध्यमस्तयोरेषा भवति.
 ३ क. ख. ७ (२६); त. द. ७. ४ ग. °मिति । जु°. ५ ग. च. ज. तु.
 ६ क. ख. ७ (२६); ठ. ढ. °वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २६ खण्डः;
 २८ ग. च. षर्त्तमितरेष्वङ्गो नास्ति.

त्रयः केशिनं ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एकं ए-
षाम् । विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न
रूपम् (ऋ० सं० १ । १६४ । ४४) ॥ त्रयः
केशिनं ऋतुथा विचक्षते काले कालेऽभिविपश्यन्ति संवत्सरे
वपत एक एषामित्याग्निः पृथिवीं ददृशे सर्वमेकोऽभिविपश्यति
कर्मभिरादित्यो गतिरेकस्य दृश्यते न रूपं मध्यमस्याथ यद्रश्मि-
भिरभिप्रकम्पयन्नेति तदृषाकपिर्भवति वृषाकम्पनस्तस्यैषा
भवति ॥ २७ ॥

त्रयः केशिन इति । दीर्घतमस आर्षम् । महाव्रते वैश्वदेवे शस्यते १०
अग्निवायुसूर्याम्न- (ऐ० आ० ५ । ३ । २) । य एते त्रयः
योऽपि केशिनः केशिनः अग्निवायुसूर्याः ऋतुथा कालेकाले वि-
चक्षते । पर्वकालम् अभिविपश्यन्ति । स्वकर्माधि-
कारयुक्तेनानुग्रहेण लोकमनुगृह्णन्ति । तेषाम् एकः पृथिवीस्थानः अग्निः संव-
त्सरे पृथिवीं वपते । दहतीत्यर्थः । तथा हि सा कर्मण्या संपद्यते । विश्व- १५
मेको अभि चष्टे । स्वाधिकारयुक्तैः कर्मभिः अविभिपश्यति अनुगृह्णति आदि-
त्यः । ध्राजिरेकस्य ददृशे । गतिरेकस्य रजसेऽद्भूतौ न पार्थिवेनोदकेन वा
दृश्यते न रूपं मध्यमस्य ।

‘अथ यद्रश्मिभिरभिप्रकम्पयन्नेति’ । यदा रश्मिभिः उपलङ्घ्यते रूपसं-
वृषाकपिः कस्मात् पन्नैः भूतानि अभिप्रकम्पयन्नेति तदा ‘वृषाकपिः १८
(१६) भवति’ । वर्षिता चावश्यायानां कम्प-
नश्च भूतानाम् । सर्वो हि भगवत्यदृश्ये तद्भयात्कम्पते । तस्यैषा
भवति ॥ २७ ॥

१ क ख ८ (२७) ; त. द. ८ २ ग. इति । दी०. ३ ग. ज. ठ. ड.
‘अग्निवायुः सूर्याः. ४ ग. ज. ०था काले विच. ५ च. ट पर्वं यथा; ठ. ड. यथा-
कालम्. ६ ग. ज. वपति; च. वपति० द. ते. ७ क. र. घ. ट. अथ एत यदा-
दित्यो रश्मि०. ८ क. ख. ८ (२७) ; ठ. ड. ०वति । इति निवण्टपञ्चनेन सह
निरुक्तसप्तदश्याध्यायमध्ये सप्तविंशतिः खण्डः; ग. च. वर्षितरेत्त्वञ्चो नास्ति. २९

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै । य एष स्वप्ननशनेऽ
स्तमेपि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १०।८६
२१) ॥ पुनरेहि वृषाकपे सुप्रसूतानि वः कर्माणि कल्पयावहै य
एष स्वप्ननशनः स्वप्नान्नाशयस्यैदित्य उदयेन सांस्तमां पथा
पुनः सर्वस्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमेतद् ब्रूम आदित्यं यमो व्याख्यात-
स्तस्यैषा भवति ॥ २८ ॥

पुनरेह वृषाकपे इति । वृषाकपेरापम् । पृष्ठयस्य पष्ठेऽहाने ब्राह्मणा-
वृषाकपिः च्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्ता (आश्व० श्रौ०
८।३) । हे वृषाकपे भगवन् य एष त्वं स्वप्न-
नाशनः स्वप्नान् उदयेन नाशयसि सोऽस्तमेपि पथा पुनः । यश्च त्वं
विश्वस्मात्सर्वस्मात् जगत इन्द्रः ईश्वरः उत्तरः उद्धततरः स त्वं पुनः एव
हि उदयं प्राप्नुहि । तत आवां सुविता सुप्रसूतानि सुप्रवृत्तानि शोभन-
मर्थमुद्दिश्य जगतोऽनुग्रहमेतानि शोभनानि कर्माणि प्रवृत्तानि कल्पयावहै
सगुणानि कुर्वः त्वमुदयेनाहमनुष्ठानेनेति ।

‘ यमो (१७) वक्तव्यः । स पुनः ‘व्याख्यातो’ निर्धचनतः (निरु०
१०।१९) । इह त्वादित्योऽभिधेयः । ‘ तस्यैषा भवति ’ ॥ २८ ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबन्ते यमः । अत्रां नो विध्वर्षतिः
पिता पुराणां अनु वेनति (ऋ० सं० १०।१३५।१) ॥ यस्मिन् वृक्षे
सुपलाशे स्थाने वृतः क्षये वापि वोपमार्थे स्यादृक्ष इव सुपलाश
इति वृक्षो ब्रश्चनात्पलाशं पलाशनाद्वैः संगच्छते यमो रश्मिभिरा-
दित्यस्तत्र नः सर्वस्य पाता वा पालयिता वा पुराणाननुकामयेताज

१ क. ख. छ. त. द. ‘यत्पादि’ । २ क. ख. ९ (२८) ; त. द. ९. ३ ग.
इति । वृ०. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. पुनरायाहि उदयं ; च. पुनरेवै ह्युं राया.
५ ग. ज. त्वंदुद्दं ; च. त्वंदुद्दं उ. ६ क. ख. ९ (२८) ; ठ. ड. वति । इति
२७ निरुक्तभाष्ये ६ ध्वाये २८ र. प्रहः, ग. च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.

एकपादजन एकः पाद एकेन पादेन पातीति वैकेन पादेन पिबतीति
वैकोऽस्य पाद इति वा । एकं पादं नोत्खिदतीत्यपि निगमो भवति
तस्यैष निपातो भवति वैश्वदेव्यामृचि ॥ २९ ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाश इति । कुमारस्य यामायनस्यापि । यस्मिन्वृक्षे
यमः आदित्ये । स हि स्वगत्या कालमतिक्रामयन् सवे-
भूतानामायंषि क्षपयति । ' वृक्षतीति वृक्षः । वृत्तः
क्षये वा ' । पुण्यकृद्भिर्वृती निवास इत्यर्थः । सुपलाशे सुपु पराशीर्णमले
'सुपलाशे' वृक्षे' दीप्तिमति देवैः सह रश्मिभिः संपिबते संगच्छते
इत्यस्य विशेषणम् । अस्तं गच्छन्नादित्यः । तत्र किमिति । अत्रै नः
अस्मान् पुण्येन कर्मणा विषया च सत्पापिकया
गतात्मनः पुराणान् इव तच्चिन्वासिनः अनुवेनतु कामयतु । संपीण्ययती-
मित्यर्थः ।

' वृक्षे इष सुपलाशे इति ' ऐतिहासिकपक्षे । स्वगृहमुपगतान्स्मन्
अथवा वृक्षे इव सुपलाशवृक्षप्रत्यये सुखनिवासं पितृराजो यमः
सुपलाशे इत्युपमा पुराणान् इव तद्योकिनिवासिनः पितॄन् अनु-
कामयतु । अस्मिन् पक्षे देवैः संपिबते इति
तदनुचारीणो गृह्यन्ते देवा इति ।

' अज एकपात् ' (१८) इति धक्तध्यम् । स पुनरथमादित्यो
नित्यम् ' अजनो ' गमनः । ' एकः ' च
कः अजपात् कस्माच्च ' पादो ' इत्यणः । विज्ञायते हि ' अग्निः पादो
चायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पादः ' (छा० उप० ३।१८।२)
। ' एकेन पादेन पातीति वा ' । सर्वमिदं जगदेकेनशेनानुप्रविश्य

१ क. ख. १० (२९) : त. द. १०. २ ठ. ड वृक्ष इति. ३ ग. इति ।
कुं. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. वृत्तक्षणे. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. वृत्ते च.
वृती ते. ६ क. ख. घ. निवासे; ट. निवासं यस्मिन्स्थाने; ड. ड. निवासे
यास्मिन्स्थाने इत्यर्थः. ७ ग. ज. अजा; च. अजा नः अ. ट. क. ख. घ. ट. ठ.
ड. यत्पितृभ्यः. ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. सुपाम्. १० क. ख. घ. ट. ठ. ड.
; च. प्रत्ये इत्य. ११ क. ख. घ. ट. ड. वामे च. वासं

पाति रक्षति श्वापश्याले प्राणात्मनाऽजं पचन् । अजनश्चेत्यज एकपात् ।
 ' एकेन पादनं पिबन्ति वा ' । एकेनाशेनोऽकं सर्वस्माज्जगतः पिबत्य-
 जनश्चेत्यज एकपात् । अथ ' वा ' । अजनो गमनः ' एकोऽस्य पाद
 इति ' अज एकपात् । जीवैभूतोऽस्य कृत्स्ने जगति एकः पादोऽनुप्रविष्टः ।
 ' निगमोऽपि हि भवति ' एवास्मिन्नर्थे । " एकं पादं नोऽखिदति

जीवोऽस्य ब्रह्मण सखिलद्वंस उच्चरन् । स चेत्तमुद्धरेदङ्ग न
 एकः पाद इत्यर्थे नि- मृत्युर्नामृतं भवेत् " । एकमात्मनः पादमशे
 गमः नाखिदति नोद्धरति आदित्यो हंसः महत्तस्तमसो
 वाध्वनो वा हन्ता । कुतः पुनर्नोऽखिदति ।

१० सखिलात् सन्मात्रे ब्रह्मणि लीनादेतस्माज्जगत उच्चरन् । अहन्यहनि
 उच्चानित्यर्थः । स चेत्तं जीवभूतमात्मनः पादमेतस्माज्जगतः उद्धरेत्
 ततस्तदुद्धरणसमकालमेव अङ्गं क्षिप्रं न मृत्युर्नामृतं भवेत् । सर्वमिदमव्यप-
 देयं सदेव स्यादित्यर्थः ।

' तस्यैष निपातो भवति ' साधारण्येन ' वैश्वदेव्यामृचि ' ॥ २९ ॥

१५

पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।

विश्वे देवासः शृण्वन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या
 (ऋ० सं० १० । ६५ । १३) ॥ पविः शल्यो भवति यद्विपु-

२०

पावीरवानित्यपि निगमो भवति । तद्देवता वाक्पावीरवी पावीरवी
 च दिव्या वाक्तन्यतुस्तनित्री वाचोऽन्यस्या अजश्रैकपादिवो
 धारयिता च सिन्धुश्चापश्च समुद्रियाश्च सर्वे च देवाः सरस्वती च
 सह पुरन्ध्या स्तुत्या प्रयुक्तानि धीभिः कर्मभिर्युक्तानि शृण्वन्तु
 वचनानीमानीत पृथिवी व्याख्याता तस्या एष निपातो भवत्यै-

१५

न्द्राग्न्यामृचि ॥ ३० ॥

१ च. °का अस्य. २ ग ज. जीवोऽस्यः च जीवोऽस्य° भूतो. ३ च. °मंशे-
 नो°. ४ क. ख. (१०) °९; ठ ड. °मृचि । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये २°
 रुण्डः, ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति ५ °. त. द. ' च ' नास्ति. ६ क. ख.

३०

११ (३०); न. व. १९.

पावीरवी तन्तुरीणि । वसुकर्णस्यर्षम् । वैश्वदेवे शस्त्रे विनिभोगः ।
 पावीरवी कस्मात् ' पथिः शस्त्रो भवति ' । कस्मात् । ' यद्विपु-
 नाति ' विदारयति ' कायम् ' । तेन शस्त्रेण
 ' तद्वत्पावीरमायुधम् ' । रो मत्वर्थे । तेन शस्त्रवतायुधेन ' तद्वानिन्द्रः
 पावीरवान् ' ।

५

यथा चैवं मन्त्ररगाद् ' अतितस्यौ पावीरवानिति ' । ' यो जनान्म-
 धीर्वा इवातितस्यौ पावीरवान् । उतापावीरवान्युधा '
 पावीरवान् इन्द्रः (ऋ० सं० १० । ६० । ३) ॥ विप्रब-
 न्धोरार्षम् । यः इन्द्रो महिमान् अतिमहतोऽप्यसुरजनान् युधा युद्धेन
 अतौत्य तस्यौ तिष्ठति पावीरवान् आयुधवान् । अपि च अपावीरवान् । १०
 अनायुध इत्यर्थः । सायुधो निरायुधश्च नित्यमसुरजनान् महतोऽपि अति-
 तिष्ठति यः स इदं नामास्माकं करोष्विति ।

' तदेवता वाक् पावीरवी ' । स इन्द्रो यस्या वाचो माध्यमिकाया
 हेवता सा ऐन्द्री वाक् पावीरवी । तस्यतुः तर्निर्वा वाचोऽन्यस्याः । तदु-
 क्तम् । ' तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ' (ऋ० सं० ८ । १०० । ११ ॥ १५
 निरु० ११ । १९) । सा च दिव्या वाक् अजश्चैकपात् दियो
 धारयिता । एतदत्र युस्थानस्यम् अजस्यै तर्पदः ।
 अज एकपात् सिन्धुश्च नदः आपश्च समुद्रियाः । विश्वे च देवाः
 शृणवन् शृण्वन्तु इमानि वचनानि स्तुतिलक्षणानि । किं वचनान्येव ।
 न । किं तर्हि । सह धीभिः कर्मभिः हविर्दानयुक्तैः सहितानि । सरस्वती २०
 च शृणोतु पुरन्ध्या सह बहुधात्र्या माध्यमिकया वाचस्येतदाशास्महे ।

निर्वचनस्यास्यामृद्युत्तरे पादे सम्पक्पाठोऽन्वेष्यः ।

' पृथिवी (१९) व्याख्याता (निरु० १ । १४) । तस्या एष

१ ग. 'रिति । व'. २ क. ख. घ. ट. ठ. ड. चैतदेवं तथैष निगमः
 अति' ; ३. 'चैवं मन्त्ररगाद्' तदेवं तथैष निगमः; ४ घ. ट. 'थौ इव । विश्व'.
 ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. माध्यमिकाया वाचो; ५. माध्यमिकया वाचो; ५ क.
 ख. घ. ट. ठ. ड. 'स्तनयित्री; ६ ग. ज. 'जस्यैत्रपादः; घ. ठ. ड. 'जश्चैक'; ७.
 'जश्चैक' स्यै ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'देवाः तर्पे; च. देवाः; ८ ग. ज. निर्व-
 चनस्यान्वये'.

२६

निपातो भवति । विष्णुः पृथिव्यां । ऐन्द्रास्त्रामृचिः । न स्तुत्यत्वेन । किं
तर्हि । नैघण्टुकत्वेन केवलम् ॥ ३० ॥

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

५ अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य (ऋ०
सं० १ । १०८ । १०) ॥ इति सा निगदव्याख्याता समुद्रो
व्याख्यातस्तस्यैष निपातो भवति पावमान्यामृचि ॥ ३१ ॥

१० यादन्द्राग्नी परमस्यामिति । कुत्सस्वार्थम् । हे इन्द्राग्नी यदि युवां
पृथिवी परमस्यां पृथिव्यां बुलक्षणायां यदि मध्यमायाम्
अन्तारिक्षे यदि अवमस्थामिव भूम्याम् । उत
स्थः तथापि पर्यायीतम् अस्मान् प्रति । पर्येत्य अथ सोमस्य पिबतम्
अभिषुतस्य स्वमंशामिति ।

१५ 'समुद्रो (१०) व्याख्यातः' (निरु० २ । १०) । इह
आदित्य इति विशेषः । अत्रापि 'समुद्रवन्त्यस्मादापः' इत्येवमादि
तदेव निर्वचनम् । 'तस्यैषः' समुद्रस्य 'निपातो भवति पावमान्या-
मृचि' ॥ ३१ ॥

२० पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितृषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् (ऋ०
सं० ९ । ७३ । ३) ॥ पवित्रवन्तो रश्मिवन्तो माध्यमिका देव-
गणाः पर्यासते माध्यमिकां वाचं पितृषां प्रत्नः पुराणोऽभिरक्षति
व्रतं कर्म महः समुद्रं वरुणस्तिरोऽन्तर्दधात्यथ धीराः शक्नुवन्ति

१ क. ख. ११ (३०) ; ठ. ड. 'वलम् । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३०
खण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ५ क. ख. १२ (३१) ; त. द. १२.
३ ग. 'मिति । कु. ४ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'मीवृषणौ यं ; च. 'ग्नी य
'वृषणौ. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'मस्यामस्यामेव'. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड.
इह तु आं ; च. इह आं तु. ७ क. ख. १२ (३१) ; ठ. ड. 'मृचि । इति
निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३१ खण्डः ; म. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ८ छ. त. द.
१६ माध्यमहा. ९ छ. त. द. 'सते मध्यमः पिते'.

धरुणेषुदकेषु कर्मण आरम्भमारब्धुमज एकपाद्वाख्यातः पृथिवी
व्याख्याता समुद्रो व्याख्यातस्तेपामेष निपातो भवत्यपरस्यां
बहुदेवतायामृचि ॥ ३२ ॥

पवित्रवन्तः परि वाचमिति । पवित्रस्यार्पम् । प्रवर्षेविनियोगः (आश्व० ५
श्रौ० ४ । ६) । रश्मयः पवित्रवन्तः ; अमु-
समुद्रः ष्मादादित्यमण्डलात्प्रसृता मध्यस्थाने मरुत्प्रभृ-
तिभिर्देवगणैः संयुज्यन्ते । तत्संयोगात् माध्यमिका देवगणाः पवित्रवन्तो
भवन्ति । ते च पर्युपासते । ते च परिर्वार्य माध्यमिकां वाचम् आसते
विद्युद्वाख्याम् । स वरुणो विद्युद्वाख्यो मध्यमः पिता पाता रक्षिता तेषां १०
मरुत्प्रभृतीनां प्रान्तः पुराणः व्रतं कर्म तदाधिकारयुक्तम् अभिरक्षत ।
कथमिति । तदुच्यते । महः महान् वरुणो मध्यमः महान्तं वा समुद्रम्
आदित्यं भेषजालेन यदा तिरोदधाति दुर्दिनं कृत्वा वर्षति ओपधीषु
अर्धं धीरा धीमन्तः धरुणेषु उदकेषु शेकुः शक्नुवन्ति कर्मणः कृष्यादे-
वैदिकस्य वा आरम्भं प्रारम्भम् इत्येवमभिरक्षति तेषां माध्यमिकानां १५
व्रतम् । यदि ह्यसर्वावृणोति मेघैस्ततस्तेपामधिकारप्रतिलम्भो भवति ।

‘ अज एकपाद् (१८) व्याख्यातः ’ (निरु० १२ । २९) । इह
तूत्तमः । ‘ पृथिवी (१९) व्याख्याता ’ (निरु० १ । १४) । ‘ समुद्रो
(२०) व्याख्यातः ’ (निरु० २ । १०) । ‘ तेषामेष निपातो
भवति ’ स्तुतिसाधारण्येन ‘ अपरस्यां बहुदेवतायामृचि ’ ॥ ३२ ॥ २०

१ छ. त. 'रश्मयः'. २ क. ख. १३ (३२); त. द. १३. ३ ठ. ड.
वन्त इति । पवि. ४ ग. 'मिति'. ५. ५ क. ख. घ. ट. ठ. ड. पवित्रं
तेऽमुं; च. पवित्रवन्तोऽमुं वं तेऽ. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. माध्यमिकां वाचं
परिवार्य; च. परिवार्यं माध्यमिकां वाचं. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ' विद्यु-
द्वास्यां ' नास्ति; च. विद्युद्वास्यां. ८ ग. ज. 'धीषु धीराः'; च. 'धीषु धीराः' अथ.
९ क. ख. घ. ट. ठ. आरम्भं; च. ज. आरम्भं भं. १० ग. ज. यदि पोति मेघैः;
च. ह्यसौ वृं सावावृ. ११ क. ख. १३ (३२); ठ. ड. 'मृचि'. इति निरुक्त-
भाष्ये ६ ध्याये ३२ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति.

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवा
 ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु (ऋ० सं०
 ६ । ५० । १४) ॥ अपि च नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजश्चैकपात्पृ-
 थिवी च समुद्रश्च सर्वे च देवाः सत्यवृधो वा यज्ञवृधो वा ह्यु-
 ५ माना मन्त्रैः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु मेधाविशस्ता
 दध्यङ्प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति
 वाथर्वा व्याख्यातो मनुर्मननात्तेषामेव निपातो भवत्यैन्द्र्या-
 मृचि ॥ ३३ ॥

- १० उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्विति । ऋजिश्चन आर्षम् । आग्निमारुते
 धिनियोगः (आश्व० श्रौ० ५ । २०) ।
 अज एकपात् पृ- अत्यस्मकम् अहिर्बुध्न्यः शृणोतु । अपि अज
 थिवी समुद्रः अस्यामृ- एकपाद् अपि च पृथिवी अपि च समुद्रः
 चि नैघण्टुकाः विश्वे देवः सर्वे एते एवमादयो देवाः ऋतावृधेः
 १५ सत्यवृधो यज्ञवृधः उदकवृधो वा हुवाना आहूयमानाः मन्त्रैर्नृण्यैः
 स्तुताश्च स्तोत्रैः सामभिः कविशस्ताः कविभिश्च नैघण्टुकत्वेन मेधाविभिः
 शस्त्रैश्च शस्ताः स्तुतास्तेऽस्मानवन्वित्येतदाशास्महे ।

‘ दध्यङ् मनुः अथर्वा ’ इति त्रिविधे आदित्य एवैते तद्गुणयोगा-
 द्भवन्ति द्युस्थाने समाभ्यानात् । पृथक्त्वे पुनर्द्युस्थानास्तत्सहचारिण एते
 २० ऋषयः ।

‘ दध्यङ् (२१) प्रत्यक्तो ध्यानं ’ प्रतिगतो ध्यानमिति । ध्यानारम्भणे
 ह्येष युक्तः स्वमधिकारमनुतिष्ठति । अथवा ।
 दध्यङ् कस्मात् ‘ प्रत्यक्तमस्मिन्ध्यानमिति वा ’ । अधिकरणं
 कारकम् । तथा हि तस्मिन्ध्यानकार्यं सफलं लक्ष्यत इति ।

- १ ङ. ‘ कपाद्विधो धारयिता सिन्धुश्वापश्च समु ’. २ छ. त. द. स्यान्. ३ क.
 ख. १४ (३३); तद. १४. ४ ग. ‘ त्विति । ऋ ’; ठ. ड. ‘ बुध्न्य इति । ऋ ’.
 ५ ग. ज. ‘ वृधः उदकवृधो यज्ञवृधो वा हृ ’; च. ‘ वृध. उदकवृधो यज्ञवृधो
 वाहृ ’ सत्यवृधः. ६ ग. ज. सामभिः कत्वेन मेधा; च. सामभिः कत्वेन मेधा कवि
 २१ शस्ता एकविभिश्च नैघण्टु. ७ ग. ज. शस्त्रैः स्तुता; च. शस्त्रैः स्तुताः श्व शस्ता.

‘ अथर्वा (२०) व्याख्यातो ’ निर्वाचनतः (निरु० ११।१८)।
 न ह्ययं स्वस्मादधिकारात् यथाते । न कदाचित्स्वमधिकारं मुञ्चति
 मनुर्भननात् ‘ मनुः ’ (२२) ‘ अयं मननात् ’ । न हि
 तदस्ति यदयं न मनुते । ‘ तेषामेव निपातो
 भवत्यैन्द्रधामुचि ’ ॥ ३३ ॥

यामथर्वा मनुषिपिता दध्यङ् च धियमत्नत । तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्व-
 थेन्द्र उक्था समगमतार्चन्ननु स्वराज्यम् (ऋ० सं० १ । ८० ।
 १६)॥ यामथर्वा च मनुश्च पिता मानवानां दध्यङ् च धियमतनिपत
 तस्मिन्ब्रह्माणि कर्माणि पूर्वेन्द्र उक्थानि च संगच्छन्तामर्चन्योऽ-
 नूपास्ते स्वाराज्यम् ॥ ३४ ॥

द्वादशस्य तृतीयः पादः ।

‘ यामथर्वा ’ । गोतमस्यार्षम् । पाण्डिने पञ्चभेऽहनि विनियोगः (आ०
 अथर्वा दध्यङ् मनुः श्रौ० ७ । १०) । ऐन्द्रे सृक्ते यम् अथर्वा
 मनुश्च पिता मानवानां दध्यङ् च धियम् अत्नत
 अतानिपत । एतद्गुणांवाशेषो य आदिभ्यः यस्त्वरुमाहोनिर्वृत्त्यादलक्षण
 तनोति तस्मिन्सति ब्रह्माणि अर्चन्ति उक्थानि च शस्त्राणि पूर्वथा
 पूर्ववत् इन्द्रे समगमत समगच्छन्ति यज्ञेषु । किलक्षणे इन्द्रे इति । यत
 आह । अर्चन् । यः इन्द्रमभिपूजयते स्वराज्यम् अनु उपास्ते ।
 यथाशास्त्रमनुतिष्ठतीत्यर्थः ।

१ क. ख. १४ (३३) ; ठ. ड. ‘ मृचि । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३३
 खण्डः ; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. २ छ. त. ‘ वा मनु ’ च; द. वाश्च मनुः.
 ३ छ. मनुष्यपिता; त. मनुश्च; द. मनुःपिता. ४ छ. त. कर्माणि ब्रह्मा-
 णीन्द्र उक्था; द. कर्माणि ब्रह्माणीन्द्र उक्था. ५ क. ख. १५ (३४); त. द.
 १५. ६ छ द. तृती; त. इति द्वादशोध्याये तृ. ७ ग. वेति । गो. ८ क. ख.
 घ. ट. ठ. ड. यत्तकं च. यस्ते. ९ ग. ज. ‘ त्कर्मादिभिर्वृ ’; च. ‘ त्कर्माहो-
 निर्वृ ’ होति. १० ग. ज. अग्नानि; च. अश्नानि चा. १२ क. ख. घ. ट. ठ.
 ङ. ‘ च्छन्तु. १६ क. ख. य. इन्द्रः अभि; ट. इन्द्रः अभिन्द्र.

पृथक्पक्षे आदित्यसहचारिण एते ऋषयः । तदा योज्यम् । य एते
ऋषयः कर्म अतनिषत याज्ञं तस्मिन्ब्रह्माणि अन्नानि ईन्द्रे पृथ्वत्समगत
समागच्छन्तीति । शेषं समानमेवेति ॥ ३४ ॥

सप्तदशैष तृतीयः पादः ।

चतुर्थः पादः ।

अथातो द्युस्थाना देवगणास्तेषामादित्याः प्रथमागामिनो
भवन्त्यादित्या व्याख्यातास्तेषामेषा भवति ॥ ३५ ॥

- १० 'अथातो द्युस्थाना देवगणाः' इत्येवमादि वक्तव्यम् । अतः परमे-
तदेवोत्तमं अथोतिर्गणशब्दाभिधेयत्वेन निर्वा-
च्यम् । एतदेव हि गुणविकारोपजनापेक्षया
देवगणाः भेदाभेदाभ्यां मन्त्रदृशः पश्यन्तोऽभियुवते । तदर्थं
विशेषतः पुनरधिकारवचनम् 'अथातो द्युस्थाना देवगणाः' इति । उक्तमे
१५ द्युस्थाना इति । के पुनस्ते । देवगणा इति देवानां मित्रप्रभृतीनां गणाः ।
पृथक्पक्षे गणा इति वचनमर्थवत् ।

- 'तेषामादित्याः (२४) प्रथमागामिनो भवन्ति' । ते कस्मात् । प्रत्यक्ष-
त्वाच्छब्दस्य 'सप्तऋषयः' इत्येवमादीनां च परो-
क्षत्वात् । ते पुनरभिधाननिर्वचनतो 'व्याख्याताः'
२० 'आदत्त रसान्' (निरु० २ । १३)-इत्यत्र ।
केवलं त्वत्र बहुवचनमिति विशेषः । 'तेषाम्' आदित्यानाम् 'एषा'
प्राधान्यस्तुतिः 'भवति' यां दृष्टेह. द्युस्थाने गणाभिधानेन समा-
न्नाताः ॥ ३५ ॥

- १५ १ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ऋषय एते. २ ग. ज. ऐन्द्रे; च. ऐन्द्र' इ. ३ क. ख.
१५ (३४); ठ. ड. 'वेति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३५ खण्डः; ग. च.
वर्जमितरेष्वको नास्ति. ४ च. 'शस्याध्यायस्य; ठ. ड. इति सप्तदशाध्यायस्य तृ.
'५ क. ख. १ [३५]; त. द. १. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'इत्यन्तः
स्तुय'. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'वैरेषां स्थानं त इमे यु'; च. 'उत्तमे' 'वैरेषां
स्थानं त इ. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. इति बहुवच'; च. इति 'व' बहु. ९ क.
ख. १ [३५]; ठ. ड. 'न्नाताः । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३५ खण्डः;
१२ ग. च. वर्जमितरेष्वको नास्ति.

इमा गिरं आदिभ्यो घृतस्नुः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
 शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः
 (ऋ० सं० २ । २७ । १) ॥ घृतस्नुर्घृतप्रस्ताविन्यो घृतप्रस्ता-
 विण्यो घृतसानिन्यो घृतसारिण्य इति बाहुतीरादित्येभ्यश्चिरं
 जुह्वा जुहोमि चिरं राजभ्य इति वा शृणोतु न इमा गिरो मित्र-
 आर्यमा च भगश्च बहुजातश्च धाता दक्षो वरुणोऽशक्षाशोऽशुना
 व्याख्यातः समक्रूपयो व्याख्यातास्तेषामेषा भवति ॥ ३६ ॥

इमा गिरं आदिभ्य इति । कूर्मस्य गार्समदस्य गृत्समदस्य वेद्यमा-
 आदित्याः र्षम् । इमा गिरो घृत्स्नुः । घृतम् आङ्गितिलक्षणं १०
 याः प्रस्रुचन्ति प्रक्षरन्ति ता घृतस्नुः । अथवा ।
 'घृतप्रस्ताविण्यः' । धात्विन्यस्त्वमर्थकत्वम् । 'घृतसानिन्यो वा' । घृतं देवा-
 न्प्रति सानयन्ति संभाजयन्तीति तथा । सनोतेः संभजनार्थस्य । 'घृत-
 सारिण्यो वा' । 'सृ गतौ' (धा० १ । ९६०) इत्यस्य । देवान्प्रति घृतं
 याः सारयन्ति गमयन्तीति । तामिर्गीर्भिः तैर्भन्त्रैः सनाद्राजभ्यः चिरंत- १५
 नेभ्यः सर्वलोकराजभ्यः । अथवा । सनादिति यावदायुषम् अनुसर्गेण
 जुह्वा जुह्वंशकेन पात्रेण जुहोमि । ताः पुनर्गिरोऽस्मदाशीर्युक्तः ।
 तत्समर्थनाय शृणोतु अस्माकं मित्रो अर्यमा भगश्च तुविजातः बहुजातश्च
 धाता दक्षो वरुणः अंशश्च ।

तुवीति बहुनाम । सर्वविधातृत्वाद्बहुजन्मा धाता यावदधिकारं २०
 जन्मेति । 'अंशः अंशुना व्याख्यातः' (निरु० २ । ५) ।

प्रत्येकपद्येते मित्रादयो युस्थानत्वेनोपेक्षयाः । शास्त्रातिगौरवमयात् न
 पृथक् युस्थानत्वेन समाह्वताः । ते त्वादित्यङ्गलिङ्गितेषु मन्त्रेषु पृथक्
 पृथगुपेक्षयास्तस्तुतीनां पृथगपि विद्यमानत्वात् ।

१ क. ख. छ. त. द. 'सारिण्यो घृतसानिन्य इति' । २ क. ख. २ २५
 [३६] ; त. द. २. ३ ठ. ड. गिर इति कू. ४ ग. इति । कू. ५ घ. ट.
 ठ. ड. 'जभ्यः सर्वलोके' । ६ घ. ट. त्समवर्धनाय ; ठ. ड. त्समावर्धनाय. ७ ग.
 ज. उक्षः अंशश्च ; च. दक्षः - अं' वरुणः. ८ ट. 'अंशश्च' इत्यस्यानन्तरं
 ' इन्द्रश्चेति । अष्टौ पुत्राः आदिनेः । पृथक्त्वपक्षे' पान्ते लिख्यते, तच्च ठ. ड.
 पुस्तकयोरन्तर्भाव्यते. १ क. ख. २. ट. पृथक् पृथक् ; च पृथक्.

‘सप्तऋषयो’ (२५) षक्तव्याः । ते पुनरमी ‘व्याख्याता’ निर्द-
चनतः । इह त्वभिधेया रश्मय इन्द्रियाणि वा । ‘सप्त सृता संख्या’
(निरु० ४ । २६) ‘ऋषिःशनात्’ (निरु० २ । ११)
इति । सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः । ‘तेषामेषा’ प्राध्याय्यस्तुतिः
‘भवति’ ॥ ३६ ॥

- सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमिगुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च
देवौ (वा० सं० ३४ । ५५) ॥ सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
- १० रश्मय आदित्ये सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादं संवत्सरमप्रमाद्यन्तः
सप्तापनासु एव स्वपतो लोकमस्तमितमादित्यं यन्ति तत्र जागृ-
तोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ वाय्वादित्यावित्यथिदैवतमथाध्यात्मं
सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे पर्लिन्द्रियाणि विद्यासम्प्राप्तात्मनि
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादं शरीरमप्रमाद्यन्ति सप्तापनानीमान्येव
- १५ स्वपतां लोकमस्तमितमात्मानं यन्ति तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रस-
दौ च देवौ प्राज्ञश्चत्मा तेजसश्चेत्यात्मगामिचष्टे तेषामेषापरा
भवति ॥ ३७ ॥

- सप्त ऋषयः प्रतिहिता इति । हिःप्यगर्भस्यार्यम् । आधर्षणे आःम-
२० सप्त ऋषयः अधि- स्तुतौ विनियोगः । उत्तरा च । शृणुति सर्व-
देवतं मिदमिति इह मादित्यः । अश्रुणाद्वा । मर्त्रामद-
मसिन्न श्रितगिति । तस्मिन् सप्त ऋषये रश्मयः
प्रतिहिताः प्रत्येकं हिताः निहिताः । ते पुनः सप्तव अन्युताधिकाः
सन्तः सार्धदिकमुद्रकमुपनयन्तः तेनेर्द्धाः तमादित्यं सप्त सदैव अप्रमाद्यन्तः

१ क. ख. ० (६), उ. ड. घने । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्यये ३६
० षडः; ग. च. वर्णमितरेष्वङ्गो नास्ति. ० क ख ड. त. द. ‘यन्त्वत्र ३ क.
ख. छ. त. द. ‘तो अस्व’. ४ छ. त. द. षलिन्द्रि°. ५ क. ख. ३ (३५);
त. द. ३. ६ ड. ह. न्नय इति । हि°. ७ ग. इति । हि°. ८ ग. ज.

अनुत्सर्गेण स्वस्य कर्मणः रक्षन्ति । निरिन्धनः पार्थिवोऽपि ह्यग्निरेन्धन-
क्षयानिर्वापेत् । त एव सप्त सृष्टाः आपनाः सर्वस्य लोकस्य व्यापनाः
स्वपतः अस्तमुपगच्छतः अस्यादित्यस्यैव तं लोकम् आत्मानं गच्छन्ति ।
ब्रह्मं मण्डलं प्रविशन्ति । तेष्वमुप्रविष्टेषु तत्र मुनेषु उपरतगक शशुतिषु
तत्रान्तर्गतौ जागृतः तन्मण्डलान् रघुरूपः तदधिष्ठिता योऽनैः 'हिरण्य-
श्रुः हिरण्यक्रेगः' (छान्दो० उ० १ । ६ । ६) इति विज्ञायते वायुश्च
'इत्यधिदैवतम्' ।

५

'अथाध्यात्मम्' । मण्डलवदस्मिच्छरीरे रश्मिवादिन्द्रियाणि प्रतिदि-
तानि निहितानि तच्छरीरं नियं रूपाद्यलोकना-
ध्यात्मे च लुपकरेण रक्षन्ति अप्रमाद्यन्ति । सप्त आपनानि

१३

व्यापनानि विषयाणां शरीरस्य वा । तन्मेव स्वपतोऽस्य जीवस्य सुख-
दुःखभोक्तुः लोकं शरीरमेव प्रत्यस्मित्तीयुः । बुद्धिद्वारेण भोक्तोरेव
आधनैरूपेण लीयन्ते यद्वाधनोपपादकः स्वप्रभोक्तः स्वप्नो भवति । तत्र
जागृतः शरीरपरिपालनार्थं प्रज्ञश्चात्मा परमात्मा चिन्मात्रेण यः शरीरं
व्याप्य वर्तते तैजसश्च प्राणोऽन्नं पानं पचनव्यूहस्यैरसन्तर्भूतं तेजोवायु-
वृत्तिः ।

१५

'तेषामेषापरा भवति' । सा पुनः किमर्थम् । रश्मय एवेति
रफुटनावै ॥ ३७ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नो यस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् ।
अत्रासंत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः (अथ०
सं० १० । ८ । ९) ॥ तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबन्धन ऊर्ध्वबो-
ध्नो वा यस्मिन्यशो निहितं सर्वरूपमत्रासत ऋषयः सप्त सहा-
दित्यरश्मयो ये अस्य गोपा महतो बभूवुरित्यधिदैवतमथाध्यात्मं
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबन्धन ऊर्ध्वबोध्नो वा यस्मिन्यशो निहितं

२०

२५

१ ठ. 'वायुश्च' इत्यारभ्य 'देवानां भद्रेति यावत्' पत्रद्वयं नोपलभ्यते. २ क.
ख. घ. ट. ड. 'वनानुरू'; च. 'वना' रू' नु. ३ क. ख. घ. ट. ड. 'यूहश्च
रसा'; ग. ज. 'यूहं स्वरसा'. ४ ग. ज. 'वृत्ति. ५ क. ख. ३ (३७); ड.
सायै । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ३७ खण्डः; ग. ३८; च. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति.
६ छ. त. द. विश्वरू'.

सवरूपमत्रासत ऋषयः सप्त, सहेन्द्रियाणि यान्यस्य गोप्तृाण
महतो बभूवुरित्यात्मगतिमाचष्टे देवा व्याख्यातास्तेषामेषा भवति
॥ ३८ ॥

- ५ तिर्यग्बिलक्षमस इति । तिर्यग्भिः अस्य मण्डलस्य मधुपर्णस्येव
रश्मिच्छिद्राणि । चमनं चोदकमेव सनोतीति
ते एव अधिदेवते चमसः । ऊर्ध्वं चैतद्द्वन्द्वमाभृतसंश्लवात्त्र निषद्यत
इति ऊर्ध्वबुध्नः । ऊर्ध्वं वावस्थितः प्रकाशेन बोधयतीति ऊर्ध्वबुध्नः ।
तरिमक्षमसे मण्डले यशः उदकं निहितं नियमेनाधिकं वा हितम अव-
स्थापितं विश्वरूपम् अनेकप्रकारमनेकरूपम् । कैः पुनस्तन्निहितमिति ।
१० ये अस्य महतो जगतः आत्मनो वा गोपाः गोप्तारः एते रश्मयो बभूवुः
भवन्ति । ये च अत्र एतस्मिन् मण्डले साकम् एकीभूतास्तदधिष्ठात्रा सह
आसते । तैर्हि चतसृषु दिक्षुर्व्यमधोमण्डलं वेति यानि सृप्तानि ज्योतीषि
अस्य । ते रश्मयः सप्त सर्पणा श्रेयणादर्शनादस्य धर्मस्य ऋषय उच्यन्ते
१५ ' इत्यधिदैवतम् ' ॥

- ' अथाध्यात्मम् ' इति । तिर्यग्बिलक्षमिदमेव शिरः चमसः । चम्यन्ते
अध्यात्मे च ह्यानेन रसा इति । ऊर्ध्वबन्धनश्च । उपरि ह्यव-
स्थितमेतद्बन्धनमस्य शरीरस्य । एतद्वियोगे हि
विस्रंस्यते शरीरम् । यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपं नानाप्रकारमिन्द्रिया-
२० ननुभूतं रसारूपं ज्ञानारूपं वा । तस्य चमसस्य ये विधातारः तद्द्वारे-
णास्य शरीरस्य महतो गोप्तारः तत्रैव चमसान्तरमनुपविष्टाः साकं सह
तद्यश उपजीवन्त आसते ' इत्यात्मगतिमाचष्टे ' ॥

१ क. ख. ४ (३८) ; त. द. ४. २ ग. इति । ति०. ३ क. ख. घ. च.
ट. तिर्यग्बिलक्षस्य. ४ क. ख. घ. ठ. ड. °लं चोत्सृप्तानि यानि ज्यो°; च. वेति
यानि सृप्तानि ज्यो° चोत्सृप्तानि यानि. ५ ट. 'णात् सर्पणां' अर्षः; ड. सर्पणात्
ऋषणां. ६ ग. इत्यधिरूपमथा°; च. ज. इत्यधिदैवरूपमथा°. ७ ग. ज.
°ते । यस्मिं. च. ते. यस्मिं शरीरम्. ८ क. ख. ग. घ. ज. 'न्द्रियत्वेन
भूतं; च. 'न्द्रियाननुभूतं' यत्वेन भू; ट. 'न्द्रियत्वेन भूतं' याननुभू; ड. इन्द्रिया-
१९ ननुभूतत्वेन भूतं.

‘ देवाः ’ (२६) वक्तव्याः । ते पुनः ‘ देवो दानाद्वा दीपैनाद्वा
द्योतनाद्वा ’ (निरु० ७ । १५) इत्यत्र निर्वचनतो ‘ व्याख्याताः ’ ।
इह तु रश्मयो बहुवचनेनोच्यन्त इति विशेषः ।

‘ तेषामेषा ’ प्राधान्यस्तुतिः ‘ भवति ’ ॥ ३८ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निर्वर्त-
ताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु
जीवसे (ऋ० सं० १ । ८९ । २) ॥ देवानां वयं कल्याण्यां
मतादृजुगामिनामृतुगामिनामिति वा देवानां दानमभि नो निव-
र्ततां देवानां सख्यमुपसीदेम वयं देवा न आयुः प्रवर्धयन्तु १०
चिरं जीवनाय विश्वे देवाः सर्वे देवास्तेषामेषा भवन्ति ॥ ३९ ॥

देवानां भद्रेति । गोतमस्यार्यम् । ‘ देवेभ्यो वःप्रामालभेत ’ (भैत्रा०

देवाः सं० २ । ५ । २) इति विनियोगः । अस्य १५
पशोर्नपायाः पुरोनुवाक्या (भैत्रा० ४ ।

१४ । २) य एते देवाः रश्मयो नित्यम् ऋञ्चैव मण्डलादनावरण-
त्वादन्तरिक्षस्य सर्वतो यन्ति । अथवा । ऋजूयताम् ऋतुगामिनाम् ऋतौ
यथाकालम् अस्मान्मण्डलाद्गच्छतां सुमतिः शोभना मतिः प्रसादाभिमुखी
मतिः सा अस्मान् प्रति निवर्ततां नियमेन वर्तताम् । तत्पूर्विका च रातिः २०
धनलाभोऽस्मान् प्रति नियमेन वर्तताम् । ततश्च तेन धनलाभेन उपज-
नितसामर्थ्याः सन्तो वयं तेषामेव देवानां सख्यं समानख्यानतां योजे

१ ग. ज. °व्याः । देवा; च. °व्याः । देवो ते पुनः. २ ग. च. ज. °द्वा द्योत°.
३ ग. च. ज. °शेषात्तेषा°. ४ क. ख. ४ (३८); ड. °वति । इति निरुक्त-
भाष्ये ६ ध्याये ३८ खण्डः; ग. च. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ५ क. ख. ५ (३९);
त. द. ५. ६ ग. °द्रेति°. दीर्घतमस आ°; च. °द्रेति°. दीर्घतमस आ° गो-मस्य; ज.
°द्रेति । दीर्घतमस आ°. ७ क. र. ६. ट. ठ. ड. °मृतावृत्तौ य°; च. °मृ° तो
य° तावृ. ८ क. ख. घ. ट. ड. समानतां; च. समानर्थानतां. ९ ग. ज. यज्ञे. २५

कर्मणि समानमङ्गलभावम् उपलभेदिम गच्छेम वयम् । ततश्च तथाभूताना-
मस्माकं ते देवाः प्रतिरन्तु प्रवर्धन्तु आयुः । जीवसे चिरं जीवनायत्ये-
तदाशास्महे ।

विश्वे देवा (२७) इति वक्तव्यम् । तं एव रश्मय उहितविश्वविशे-
षणाः सन्तो विश्वे देवा भवन्ति । 'तेषां' तद-
विश्वे देवाः के भिवाग्विशिष्टं नाम् 'एषा' प्राधान्यरतुतिः
१ ' भवति ' ॥ ३९ ॥

ओमासश्चर्पणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्रांसो दाशुपः

१० सुतम् (ऋ० सं० १ । ३ । ७) ॥ अवितारो वावर्नाथा वा
मनुष्यधृतः सर्वे च देवा इहागच्छत दत्तवन्तो दत्तवतः सुतमिति
तदेतदेकमेव वैश्वदेवं गायत्रं तृचं दशतन्त्रीषु विद्यते यच्च किञ्चि-
द्बहुदैवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते यदेव विश्वलिङ्गमिति
शाकपूणिरनत्यन्तगतस्त्वेव उद्देशो भवति बभ्रुरेक इति दश
१५ द्विपदा अलिङ्गाः (ऋ० सं० ८ । २९) । भूतांशः काश्यप
आश्विनमेकलिङ्गमभितेष्टीयं सूक्तमेकलिङ्गं साध्या देवाः
साधनात्तेषामेषा भवति ॥ ४० ॥

११

ओमासश्चर्पणीधृत इति । मधुच्छन्दसा दृष्टा । प्रथमे ग्रहे विनियोगः ।

१० विश्वे देवाः वैश्वदेवश्चानेन प्रातःसवने ग्रहो गृह्यते (मैत्रा०
सं० १ । ३ । १८) । हे विश्वे देवाः । ये
यूयम् ओमासः अवितारः रक्षितारः चर्पणीनां मनुष्याणां स्वेनोपकरणेण
अवर्नाथा वा तर्पणार्हाः धारयितारश्च स्थितिकर्तारः ते यूयं दाश्रांसो

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. उपगच्छेम; च. दिम ग उप. २ क. ख. घ. ट. ठ.

१५ ड. 'स्माकमायुः ते'. ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'आयुः' नास्ति. ४ क. ख.

घ. ट. ठ. ड. 'देवा वक्तव्याः; च. 'देवा इति वक्तव्यं' व्याः. ५ ग. ज. 'ते'

नास्ति; च. ए एव त. ६ क. ख. ७ (३९); ट. ठ. 'वति' इति निरुक्तभाष्ये

२ ध्याये ३९ खगडः; ग. च. वर्गमितरेष्वङ्को नास्ति. ७ छ. त. द. 'कमिव.

८ छ. त. द. भवति भूतांशः. ९ छ. त. द. 'लिङ्गं बभ्रुरेक इति दश द्विपदा

३० अलिङ्गाः साध्या'. १० क. ख. ६ (४०); न. द. ६. ११ ग. इति. ११ म.

दत्तवन्तः । मनसा कृतसंकल्पा भूत्वा इदं नामास्माभिरस्मै देयमिति ।
ततोऽस्य दाशुषो दत्तवतो हवींषि यजमानस्यैतं सुतम् अभिषुनं सोमं
पातुम् आगतेत्येतदाशास्महे ।

अधुना विश्वेदेवानधिकृत्य तद्गतमेवाधियज्ञे किञ्चिद्विचारयिष्यन्नुपो
वैश्वदेवं गायत्रं तृ-
चम् एकमेव
एतादृशां तृचानां
प्रयोजने बहुदेवतानि
तृचानि प्रयुज्यन्ते
अस्येवास्मिंश्छन्दसि प्रयोजनं च गायत्रच्छन्दो-
युक्तैरन्यैरपि बहुभिर्वैश्वदेवैर्नक्षत्रैरधियज्ञे । तत्र किं कर्तव्यमिति । यत्
आह । ' यत्तु किञ्चिद्बहुदेवतं ' मन्त्रजातं गायत्रेण छन्दसा युक्तं ' तद्वैश्व-
देवानां स्थाने युज्यते ' । न्यायप्रमित्यतो ' यदेव ' विश्वशब्दोपेतं मन्त्रजातं

विश्वशब्दोपेतमेव
मन्त्रजातं युज्यते इति
शक्यपूणिः
सक्तं वा तदेव वैश्वदेवानां स्थाने विनियुज्यते
न बहुदेवतामात्रेण ' इति शाक्यपूणिः ' मन्यते ।
तत्किमस्यापि यास्काचार्यस्यैतदेवाभिमतमनुनेति ।
यत आह । ' अनल्पन्तगस्वेन उद्देशी भवति ' ।

शक्यपूणोरेतन्मत-
मनैकान्तिकम्
अनेकान्ति क एष उद्देशः । उद्देशनं प्रीतिः ।
यदेव विश्वलिङ्गोपेतं तदेव वैश्वदेवानां स्थाने
प्रयुज्यते इति । कथमनैकान्तिकमिति । वैश्व-

देवं हि मन्त्रजातं सामान्यं क्रियार्थमुत्पद्यमानमन्त्रस्य क्रियार्थत्वाद्गायत्रे
छन्दसि तदेवैतत्तु नर्हति विश्वयुक्तमन्त्रत्रतवद्यानकार्यसु सर्ववैश्वदेवेषु
तच्छन्दस्येषु अलमिति । न च तत्सर्वैरपि दीशतर्थावस्थितं छन्दस्यलं-
कर्मोपादेः । प्रयोजनं च तच्छन्दे युक्तैरपि विविधैर्मन्त्रैर्भवति । च ते
तथाविधाः सन्तीति बहुदेवताश्च तस्मिंश्छन्दसि सन्ति । तत्किमस्तु तस्य

१ ग. ज. मनसा दत्तवन्तः कृतसंकल्पास्तत्वा इदं । क ख. घ. ट. ठ. ड.
विश्वान् देः; च विश्वेः शान् ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'श्ले विचा' ४ च.
कमिव. क. ख. घ. ट. ड. विनियु; च. प्रीयु विनि. ६ ग. ज. 'जात्मान्नाये
७ ग. ज. तच्छन्दस्येषु अलं; घ. तच्छन्दस्तमयेषु; च ट. तच्छन्दस्तमयेषु
१०; ठ. ड. तच्छन्दस्येषु अलं ८ घ. ट. ट. दाशुष; च. वैसादा.

बहुदेवतं गायत्रं
मन्त्रजातं विनियोक्त-
म्यमिति यारकः

कर्षणः प्रहाणमुत् हा तस्थाने बहुदेवतानि
सूक्तान्योप्यन्तामिति । युक्तं यद्बहुदेवतानि ओप्ये-
रन्निति यास्काचार्यः पश्यन्नाह ' यस्तु किञ्चिद्बहु-
देवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते ' । सथमनुप-

५ तिर्गायत्रे छन्दःसि वैश्वदेवानां मन्त्राणां यावदलंकाराण गमयति बहुविश्व-
शब्दयोरितरेतरार्थाभिधेयप्रत्यारस्या बहुदेवतान्यपि वैश्वदेवानां स्थाने
युज्यन्त एवांत । अपि चैवमन्यन्तगत इत्युद्देशः । येन ' भूतांशः

अश्विशब्दयुक्तया
एकयापि ऋचा सर्वं सू-
क्तमाश्विनम् इति भूतांशः
१० क्तमाश्विनम् इति भूतांशः
नीत्वं तैवैकेनाश्विलिङ्गेन । यथैकेनपि छत्रिणा मध्यगतेन छत्रिणो
भवन्त्येवमेकेन विश्वलिङ्गानुचने यावन्ति सूक्तानि कर्मणि संयुज्यन्ते बहु-
देवतान्यविश्वलिङ्गान्यपि तानि तदर्थसाधकानीति ।

१५ ' ऋध्याम ' (ऋ० सं० १० । १०६ । ११) अश्विलिङ्गं येनै
पर्फरीसुक्ते ' ऋ-या-
म ' इत्यत्र ऋक् अ-
श्विलिङ्गः
पर्फरीसुक्तं सर्वमाश्विनम् । ' ऋध्याम स्तोमं सनु-
यामै वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्कं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः

२० काममप्राः ' (ऋ० सं० १० । १०३ । ११) ॥

हे अश्विनौ सरथौ समानरंहणौ समानगनी युवामायातम् ।

१ क. ख. घ. ट. ठ. ड. उच्यते । युक्तं ; च. ' युक्तं ' उच्यते.
२ च. ' येन ' ते. ३ ग. ' यामेति ' हे; घ. च. ज. ठ. ' यामेति । ठे. ४ क.
५ व. ट. ठ. ड. सरथ विन्यारय सरस्थानन्त्रविवर्णस्थाने वयमित्यादि वर्तते । तत्स-
२५ र्वं सायणभाष्यमेव; ट. पुस्तके ' सरथौ ' इत्यादि प्रान्ते लिख्यते. वयं स्तोमं
त्रिवृत्पञ्चदशादिकम् ऋध्याम ऋध्यास्म वर्धयेम । किञ्च । वाजं हविर्लक्षणमन्नं
युवाभ्यां सनुयाम प्रयच्छेम । तस्माद्युगं सरथा सरथौ समानरथौ एकमेव रथमारूढौ
सन्तो इह अस्मिन्कर्मणि नः अस्मदीयं मन्त्रं मननीयं स्तोत्रम् उपयातम् उपागच्छ-
तम् । गोष्वन्तः गोरुधस्यवस्थितं पक्कं परिणं तदेव मधुरं यशो न । यश इत्यन्नाम ।
नश्चार्थे । क्षीराज्यादिलक्षणं महानीरसात्रे अवनीयमानम् अन्नं चापेक्ष्य आगच्छत-
मिति संबन्धः । एवमुक्तप्रकारेण भूतांश एतन्नामा ऋषिः अश्विनोः काममभिलाष-
मात्मीयाभिः स्तुतिभिः अप्राः आपूरयत् । रूपूर्णमकार्षीदित्यर्थः । ' प्रा पूर्ये
३३ आदादिकः ' । व्यत्ययेन नध्यमः ।

इम ... वतः श्रुतवतोर्भवतोः स्तोममृष्याम ऋद्धिं प्राप्नुमो वयम् । कथमिति ।
सनुयाम वाजनु अन्नं भैरमहे । किञ्च । यतो न पक्वं मधु क्षीरं घृतं च
रैद्रं च तः मध्यं स त देन भूांशः अश्विनोर्भवतोः काममप्राः अपूरयते
इत्यत आयातमिति ।

‘ अभितष्टीयं सूक्तं चन्द्रम् । तदपि ‘ एकलिङ्गम् ’ इति । यथा ।
अस्मिन्सूक्ते एक- ‘ शुनं हुवेमं मघां नमिन्द्रमस्मिन्भरे वृमं वाज-
शामेव ऋ. च इन्द्र- सातौ । शृण्वन्तमुप्रमृतये समसु प्रन्तं वृत्राणि
लिङ्गम् संनितं धनानाम् ’ (ऋ० सं० ३ । ३८ ।

१०) ॥ विजयाय समसु संप्रामेषु नित्यं प्रन्तं वृत्राणि वारकाणि शत्रुजा-
तानि संजितं समस्तानां वीर्याणां जेतारमै ऊाये रक्षणाय अस्मिन् भरे
संप्रामे वाजातातौ यस्मिञ्छत्रून् जित्वाङ्गानि सभजन्ते तस्मिन् हुवेम
वर्षयमह्यामहे तमिन्द्रोवमादिगुण्युक्तमात्मनो विजयायेति ।

‘ साध्याः (२८) देवाः साधनात्’ । ते हि सर्वमिदं साधयन्ति ।
साध्याः के यदप्येन सर्वकर्मभिरसाधितं तत्साधयन्तीति
कस्माच्च साध्या उच्यन्ते । ते च पुनः प्राणः विश्वसृज १५
ऋषयो ये सहस्रैस्तारैर्गं सत्रेगेदं विश्वमसृजन्त
त एतैर्धिदैर् रशायः । विज्ञाते हि । ‘ प्राणा वै सत् ऋषयः साध्या
विश्वसृज ’ इति । ‘ तेषामेषा ’ प्राधान्यस्तुतिः ‘ भवति ’ ॥ ४० ॥

१ ट. इहानि न्कर्मणि उपाच्छतं [इदं स.यणभाष्यस्थम्] किञ्च युवयोः २०
स्तोत्रं त्रिवृ. ि. ं ऋष्याम. २ ट. भक्षीमहे. ३ ग. ज. यद्दोषतन्मध्वस्ति.
४ ग. ज. विमेति । वि ; घ. ट. वेमं. ५ ग. ज. ण. ट. ठ. ड. °जा-
त्यानि; च. °जात्. °नि° तां. ६ क. ख. घ. ङ. ठ. ड. °णां धनानां च जे°; च.
°णां च जे° धनानां च. ७ क. ख. घ. ङ. ठ. ड. °तारं शुनं शूनं उत्साहेन
प्रवृद्धं नूनमं ज. तः अनिशयेन भेतारं ऊनं; च. °तारं ऊतं शुनं शूनमित्यादि.
८ ट. ड. वयं कुशिका अर्द्धे [° कुशिकाः ’ ठ. पुस्तके प्राग्ते] ९ ग.
सः सं. च. सहस्रं स. १० क. ख. घ. ङ. ट. ड. °त्सरसत्रेण; च. °त्सरं स° र.
११ क. ख. ६ (४०); ठ. ड. °ति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ४०
रूपः; ग. च वर्जमित्येवञ्चो नास्ति.

- यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानं सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः (ऋ० रां० १।१६४।५० ॥ १०।९०।१६) ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा अग्निनाग्निमयजन्त देवा अग्निः पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्तेति च ब्राह्मणं तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानं सप्तसेवन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः साधनाद् शुस्थानो देवगण इति नैरुक्ताः पूर्वं देवयुगमित्याख्यानं वसवो यद्विवसते सर्वमग्निर्वसुभिर्वासव इति समाख्या तस्मात्पृथिवास्थाना इन्द्रो वसुभिर्वासव इति समाख्या तस्मान्मध्यस्थाना वसव आदित्यरश्मयो निवासनात्तस्माद् शुस्थानास्तेषामेषा भवति ॥ ४१ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्तेति । दीर्घतमस आर्षम् । अग्निनाग्निमयजन्त देवाः ।

साध्याः उक्तं च ' तमुन्नियथुः सर्वगणं सर्वनामानम् ' (निरु० ६।३६) इति । तम् अग्निं स्थावरजं-

- १५ गमभावेनेति । ' तं वक्षराथा वयं वसत्या ' इत्येतत् (निरु० १०।२१) । तस्मादर्शनवतः प्रयोक्तुः सर्वमिदमग्निरित्यभिप्रेत्य ब्रवीति । अग्निना स्थावरजंगमभावमापन्नेन हविर्भूतेन अग्निम् एव सर्वदेवताभूतमादित्यादिप्रनाडिकया महान्तमात्मानम् अयजन्त देवाः देवभाविनः पूर्वं ज्ञानकर्मसमुच्चयकारिणो यजमानभावमापन्नाः साध्याः विश्वसृजः ऋषयः प्राणाः ।
- २० तानि धर्माणि तानि कर्माणि तथाविधज्ञानयुक्तानि प्रथमानि मुख्यानि महद्दत्तमभावापत्तये आसन् । तैरप्यंक्रियन्तेत्यर्थः । ते च तानि कृत्वा नियमेनैवानन्यभावितात्फलस्य महिमानः तदानुपूर्वेषु जातमहद्दत्तमभावाः सन्तः तमेव नाकं महान्तमात्मानमेकान्तसुखम् असचन्त । तद्भावमेव ते

१ छ त. द संसेव्यन्. २ क. ख. ७ (४१); त. द. ७. ३ ठ. ड. दक्ष-
मिति । दीर्घः । ४ ग. 'नेति । दी०. ५ ग. 'नेति । आहुतिश्चरसौस्थावगत्वे-
नेनित्यत्र । तस्मादर्शनम् । तं; व. 'नेति । आहुतिश्चरसौ (वा) स्थानवनेन...
त्यर्थे तैस्मिन्नेति । तं. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. देव० । ७ क. ख. ग. घ. ठ. ड.
'रपि क्रि; च. 'रप्यंक्रि० गि. ८ क. ख. व. ट. ठ. ड. 'यन्ते इत्यं; ग.
९ 'यन्तेत्यं; ख. 'यन्ते + त्यं इ.

आपेदिरे । किं त एवेति । नृत्यव्यते । यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः । शब्दार्थोपदेशनित्यत्वाद्यत्र पूर्वं च पूर्वतरे च ज्ञानकर्मसमुच्चयकारिण आसते । संविज्ञेष्टुरित्यर्थः । विज्ञायते हि 'विश्वसृजः प्रथमे सत्रमासत' इति (तै० ब्रा० ३।१२।९) इति ।

शिरो ह्यध्यासं घुस्यागभक्तिः । अतः सप्त ऋषयो देवाः विश्वेदेवाः साध्या इति सर्वे एते प्राणा रश्मयो वेत्युपपद्यते । ब्राह्मणमपि चैतमर्थमेवानुविदधाति 'अग्निः पशुरासीत्' इत्येवमादि ।

'वसवः' (२९) इति वक्तव्यम् । ते पुनरभी त्रिस्थानाः । ते यस्मात्सर्वभिर्दं विभ्रगैनावस्थितमाच्छादयन्ति । कथमिति । वासवोऽग्निरिति वसवः के कस्माच्च समाख्या । तस्मात्पृथिवीस्थानाः । इन्द्रो घसुभिर्वासव इति समाख्या । तस्मात्सर्वस्थानाः । वसव आदित्यरश्मयो विवासनाम् । तस्मात् घुस्यानाः । 'तेषामेषा' प्राधान्य-स्तुतिः 'भवति' ॥ ४१ ॥

सुगा वो देवाः सुपैथा अकर्म य आजग्मुः सर्वेनभिर्दं जुषाणाः । जक्षिवांसं पविवासंश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥ स्वागमनानि वो देवाः सुपथान्यकर्म य आगच्छत सवनानीमानि जुषाणाः स्वादितवन्तः पीतवन्तश्च सर्वेऽस्मासु धत्त वसवो वसूनि तेषामेपापरा भवति ॥ ४२ ॥

सुगम वो देवा इति । परनेष्टिन आर्षम् । समिष्टयजुःषु विनियोगः (मैत्रा० सं० ४।८।४ । मान० श्रौ० २।५।४।१६) । हे देवाः धृष्टं ये आजग्मुः नित्य-आगच्छत इदं सवनम् इमं बलम् अस्माभिः सह जुषाणाः प्रीयमाणः । तेषां वः अनुगच्छतां स्वागमनानि ज्ञोभनानि अगमनानि पुनःपुनरस्म-दक्षेषु एवमेव सुपथानि सुमार्गाणि सन्तु । पिच । एतस्मिन्पक्षे जक्षि-

१ क. ख. सन्ति जग्मुः, ग. कश्चित् कः-सुरिः. २ क. ख. ७ (५) ठं. ड. 'वति' । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ४१ खण्डः; ग. च. वर्धितरेष्वङ्गो नामस्ति. ३ क. घ. घ. ट. ड. 'देवा इदममकर्म'. ४ क. ख. ८ (४२); त. द. ८. ५ म इति । ५. ६ क. ख. ग. ट. ड. ड. वं धृष्टं; च. धृष्टं धं.

वासः खादितंयन्तो हवीषि तीवन्तश्च सोमदृप्तः सन्तः आत्मसु धत्त निधत्त
हे वसवो वसूनीत्येतदाशस्महे ।

समिष्टयजुःषु तृतीयसवने त्रिनियोगादत्र शुस्थानाः वसवः ।

त्रिस्थाना इत्युक्तम् । यत इतरयोरपि स्थानयोः प्रदर्शयति । ' तेषा-

मेया ' अपरा ' भवति ' ॥ ४२ ॥

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।

अर्वाक्पथ उरुज्वयः कृणुध्वं श्रोतां दूतस्य जग्मुषो नो अस्य

(ऋ० सं० ७ । ३९ । ३) ॥ ज्मया अत्र वसवोऽरमन्त देवा

१० ज्मा पृथिवी तस्यां भवा उरां चान्तरिक्षे मर्जयन्त गमयन्त रैम-
यन्त शुभ्राः शोभमाना अर्वाक् एनान्पथा बहुत्वाः कुरुध्वं
शृणुत दूतस्य जग्मुषो नोऽस्याग्नेर्वाजिनो व्याख्यातास्तेऽभेया
भवति ॥ ४३ ॥

११ ज्मया अत्र वसवः इति । वसिष्ठस्यार्षम् । उरा पृथिवी । तरयीं नित्यं

ते एव त्रिस्थानाः भवन्ति ते ज्मयाः । रन्त रमन्त । अत्र एत-

स्मिन् कर्मणि अस्मिन्वा लोके देवाः वसवः ।

ये च उरौ विस्तृते अन्तरिक्षे विस्तीर्णे मर्जयन्त । माष्टिर्गत्यर्थः । गमयन्त

यद्येषां गमयितव्यम् । अथवा । वर्तमानाः । शुभ्राः शोभमानाः । एव-

१० मनयोः स्थानयोर्वसून् बिभज्यधुना शुस्थानास्तान् वृत्वा ब्रवीति । ये यूय-

मेधं त्रिस्थानास्तान्वा ब्रवीमि । नित्यम् अस्य अग्नेः नः अस्मद्दूतस्य

जग्मुषः गौतवतः शृणुत यदयं ब्रवीति । श्रुत्वा चास्मान् अर्वाक् आभि-

१ क. ख. ठ. ड. कपिवत्सश्च कीर्तः; २. च पीतं पवित्रंश्च २. ख. ८

(४२); ठ. ड. वति । इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ४२ स. १६; १. च. वर्ज-

मितोष्वङ्गे नास्ति. ३ छ. 'यन्त च शु' रमयन्त. ४ क. ख. छ. त द. नो

अस्मन्. ५ क. ख. ९ (४३); त. द. ०. ६ ग. इति । ७. ५ क. ख. घ.

ट. ठ. ड. तस्यां ये नि; ७. तस्यां च नि' ये. ८ क. ख. च नो अस्मन्; ग.

च नोऽग्नेः अस्मन्. ९ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'षो युक्तान्यति म'; च. षो च म'

३९ युष्मान्यति. १० घ. अ. 'वर्वादिभिः'; च. 'वर्वादिभिः' ना.

मुख्येन उरुजयः बहुजनाः बहुप्रकारगतयो नित्यमग्रेरहतान् पथः कुरु-
ध्वमित्येतादाशास्महे ।

‘ वाजिनो (३०) व्याख्याताः ’ ‘ अपि स वाजी वेजनवान् ’
(निरु० २ । २८) इत्यत्र । केवलमत्र बहुवचनकृतो विशेषः । रस-
यक्षाभिधेयाः । पृथक्त्वे देवाश्वाः । ‘ तेषामेवा भवति ’ प्राधान्य-
स्तुतिः ॥ ४३ ॥

शं नो भवन्तु वाजिनो ह्येषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भ-
यन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मर्षुयवन्नमीवाः (ऋ० सं० ७ ।
३८ । ७) ॥ सुखा नो भवन्तु वाजिनो ह्यनेषु देवतातौ यज्ञे
मितद्रवः सुमितद्रवः स्वर्काः स्वञ्चना इति वा स्वर्चना इति वा
स्वर्चिष इति वा जम्भयन्तोऽहिं च वृकं च रक्षांसि च क्षिप्रमस्म-
द्यावयन्वमीवा देवाश्वा इति वा देवपत्न्यो देवानां पत्न्यस्तासा-
मेषा भवति ॥ ४४ ॥

शं नो भवन्तु वाजिन इति । वसिष्ठस्येयमार्थम् । वाजिनयागे विनि-
वाजिनः योगः (आश्व० श्री० २ । १६) । एत-
स्मिन् देवतातौ यज्ञे ह्येषु आह्वानेषु शम्
खस्माकं मुखाः सन्तु वाजिनः । किलक्षणः । मितद्रवः सुस्त्रिष्टं
शोभनं ये द्रवन्ति । स्वर्काः ये स्वञ्चनाः । शोभनम् अञ्चन्ति गच्छन्ति ।
शोभनं वा अर्चनं येषां स्तुतिः । स्वर्चिषो वा । येषां शोभना अर्चिषः सुदी-
प्तयः । ते आगच्छन्तु आह्वानेष्वस्माकम् । जम्भयन्तः । किमिति ।

१ क. ख घ. ट. ड. °कारं शतसहस्रमागमनेनैव मार्गान् प्रहतान् कुरुं ;
च. °करं गतयो नित्यमग्रेरहतान्कुरुं हे वसवः शतसहस्रमागमनेनैव मार्गान् प्र.
२ ग. ज. ‘ पथः ’ नास्ति; च. पथैः. ३ क. ख. ९ (४३); ठ. ड. °स्तुतिः ।
इति निरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ४३ खण्डः; ग. च. वर्जयितरेष्वङ्को नास्ति. ४ छ.
त. द. °वयममी°. ५ क. ख. १० (४४), त. द. १०. ६ म. इति ।
७. °. ७ क. ख. घ. ट. ठ. ड. °वस्यार्थम्. ८ क. ख. घ. ट. उ. छ. ‘ किंवि-
दी’, च. ‘ चिषः सुदी’.

अर्हि च कृष्णं च । यश्चास्मानाहन्ति यश्च वृक्षस्तस्करो मुष्णति । रक्षसि
 च । येऽस्मान् रहसि क्षिण्वन्ति । तांश्च अस्मत्तो जम्भयन्तः द्विसन्तः सनेभि
 क्षिप्रम् । सामर्थ्यादिह सनेमीति क्षिप्रनाम । युयवन् । समर्थ्यात्
 ' अप ' इत्यध्याहृत्यै अपयावयन्तु । अपभिश्चयन्तिवत्यर्थः । इष्टं द्विरक्षसां
 ५ नाशनं न मिश्रणमिति ।

‘ देवपत्न्यः ’ (३१) वक्तव्याः । ताः पुनः ‘ देवानां पत्न्यः ’
 पालयिष्यः पालनीया वा । पत्नीसंयाजेष्वेतौ इज्यन्त इत्यतस्तृतीयसवन-
 भक्तिवादादित्यं भजन्ते । तदुक्तम् । ‘ अथैताभ्यादित्यमत्कीन्यसौ लोक-
 स्तृतीयसवनम् ’ [निरु० ७ । ११] इति ॥ ४४ ॥

१०

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वार्जसातये ।
 याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म
 यच्छत (ऋ० सं० ५ । ४३ । ७) ॥ देवानां पत्न्य उशत्योऽ-
 वन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजयेऽपत्यजननाय चाक्षसंसननाय च
 १५ याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते कर्मणि ता नो देव्यः सुहवाः
 शर्म यच्छन्तु शरणं तासामेपापरा भवति ॥ ४५ ॥

२०

देवानां पत्नीरिति । प्रतिक्षत्रस्येयमार्यम् । आग्निमारुते (आश्व०
 दधपत्न्यः श्रौ० ५ । २०) पत्नीसंयाजेषु (आश्व०
 श्रौ० १ । १०) च विनियोगः । या एता
 देवपत्न्यो नियमस्मत्तो हविरुशन्ति कामयन्ते ता अस्मत्तो हविरुभुञ्ज्य
 ततोऽस्मान् अवन्तु प्रसितर्पयन्तु धनेन । किंच । प्रावन्तु नस्तुजये । प्रका-

१ अ. 'दधादेव्यं' ये ६ ग. ज. 'हृष्यायविषं मिम' ; च. हृष्यायविषं
 (अपयावयन्तु) अकउ-यते इति मिम. ६ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'ह चर'. ४ ग.
 ज. 'धेता तृती' ; च. 'धेताभूती' इज्यन्त इत्यतः. ५ क. ख. १ (४४) ;
 ट. क. इति । इति विरुक्तभाष्ये ६ ध्याये ४४ खण्डः ; म. च. वर्जामिरेष्वदो
 नास्ति. ६ क. ख. छ. त. द. 'स्तु नोऽपत्यं'. ७ क. ख. छ. त. द. दुर्गाभि
 २८ मते. ८ क. ख. ११ (४५) ; त. द. १३. १ ग. 'रिति' इति.

र्वेण अवन्तु रथन्तु अपत्यजननाय वाञ्छसात्थे चै अनसंभजनाय च ।
कतमास्ताः । याः पार्थिवास्तः पृथिव्यां भवाः या अपामपि ब्रौ कर्मणि वर्षो-
स्तर्मे व्यापृताः सर्वाः सुहवाः स्वाह्वानाः अस्माकं यञ्छन्तु ददतु शरणं
गृहं सुखं त्राणं वेत्येतदाशास्महे ।

‘ तासामेव परा भवति ’ । सा पुनः किमर्थम् । सामान्यतः पूर्व- ५
स्य मुक्ताः । विशेषतः परस्यामुष्यन्ते । पूर्वपैव समानर्षविनियोगा ॥ ४५ ॥

उत मा व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य १ माय्यश्विनी राट् । आ
रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् (ऋ०
सं० ५ । ४ । ८) ॥ अपि च मा व्यन्तु देवपत्न्य इन्द्राणी- १०
न्द्रस्य पत्न्यगनाय्यग्नेः पत्न्यश्विन्यश्विनोः पत्नी राह्याजते रोदसी
रुद्रस्य पत्नी वरुणानी च वरुणस्य पत्नी व्यन्तु देव्यः कामयन्तां
य ऋतुः कालो जायानां य ऋतुः कालो जायानाम् ॥ ४६ ॥

उत मा व्यन्तु देवपत्नीरिति । पुरुषैः पीतमग्न्यादिभिः अपि माः स्त्रियो १५
ता एव व्यन्तु पिबन्तु एतदाज्यम् । कतमाः । इन्द्राण्य-
माय्यश्विनी राट् । आशृणोतु च रोदसी ।
आभिसूख्येन च स्थित्वा शृणोतु रोदसी रुद्रस्य पत्नी । अर्धवर्णे रोदसी-
स्य प्रसृष्ट्य पदम् । तदपेक्षैकवचनेन भाष्यकारो निराह ‘ रोदसी रुद्रस्य
पत्नी वरुणानी च वरुणस्य पत्नी ’ । सर्वा अध्येता व्यन्तु पिबन्तु २०

१ क. स्व. य. ट. ड. वाञ्छसंभजनायाजसंभ°; च. चास ५ संभ° संसननायाज.
२ क. स्व. १२ (४५); ठ. ड. °योग । इति निरुक्तमध्ये ६ ध्याये ४५
खण्डः; ग. च. वर्जितरेष्यङ्को नास्ति. ३ क. स्व. १२ (४६); त. व. १२;
ठ. ४६ । देवपत्न्यो देवपत्न्य इत्येकत्रिंशद्व्याख्या समाप्ता; ड. ४६ । इति
नैहकोत्तरटके षष्ठे ष्यायः । देवपत्न्यो देवपत्न्य इत्येकत्रिंशद्व्याख्या समाप्ता.
४ ग. °रिति । पुं. ५ क. स्व. य. ट. ड. ह. °सी वरुणानी च °उां; अ. °सी°
आ° वरुणानी च. ६ क. स्व. य. ट. ड. आथ°; अ. अथ° आ. ७ क. स्व. य.
ट. पत्नीति; च पत्नी° स्त्रीति; ग. °पत्नी । सर्वा अध्येता ।

एतदाज्यज्यम् । य ऋतुर्जनीनां यो भोजनकालो जायानां तस्मिन् काले
दधिमानम् । कश्चासौ । भुक्तवःसु पुरुषेभ्यति ॥ ४६ ॥

सप्तदशाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।

५ जम्बूमार्गाश्रमनिवासिनो भगवद्दुर्गाचार्यस्य कृतौ ऋग्पर्यायां
निरुक्तेऽस्ती

सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ।

(* अथानोद्युस्थानावसांति + पुस्मेहे^३जाताप्रार्थुजाप्रार्थजध्वसुष-
स्तश्चित्रमेता^१उत्थाःसु^२किंशुकं^३वृषा^४कपाय^५पांगूहं^६स्त्वष्टी^७दुहित्रे^८विता-
१० विश्वै^९रूपाणि^{१०}मेता^{११}जितमुदुं^{१२}यंचित्रं^{१३}शक्रंते^{१४}पथं^{१५}पथं^{१६}दां^{१७}विष्णुविश्वानरो-
क्या^{१८}रुयातो^{१९}विश्वानरस्य^{२०}येनापावके^{२१}नितुष्कं^{२२}कश्य १ अत्र^{२३}यः^{२४}काशिनः
पुनर^{२५}हियस्मिन्^{२६}वृक्षेषा^{२७}वीरवी^{२८}यदिन्द्रा^{२९}ग्रीपा^{३०}वित्रवन्त^{३१}उतना^{३२}हिर्या^{३३}मथै^{३४}र्वा-
थातो^{३५}द्युस्थाना^{३६}देवगणा^{३७}इमागिरः^{३८}सप्त^{३९}कैषय^{४०}स्तिर्या^{४१}ग्विलो^{४२}देवीनां^{४३}मद्रौ-
१५ मांसो^{४४}यज्ञन^{४५}×सुर्गो^{४६}त्रोदेवा^{४७}ज्मया^{४८}अत्र^{४९}शंनो^{५०}भवन्तु^{५१}देवानां^{५२}पत्नी^{५३}रुतप्रा-
व्यन्तु^{५४}पद^{५५}त्वारिंशत् ॥)

इति निरुक्ते उत्तरपटके षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

* छ. त. द. इयं सण्डशृङ्खला नास्ति. + तिषस्वचरथो स्मेहे . × ठ. ड.
यज्ञेन यज्ञं सुगा°.

२० १ क. ल. १२ (४६); ग. च. वर्जितरेण्डो नास्ति. २ ग. ठ. ड.
इति सप्त०; ज. सप्तदशस्याध्या०. ३ क. ल. ए. ट. तुरीयः. ४ च. पादः
समाप्तः; ठ. ड. पादः समाप्तः । इति ४६ सण्डः. ५ क. ल. घ. ट. 'भम-
याति'. ६ ड. 'वृत्ती नि. षट्पञ्चाध्यायेन सह सप्त'. ७ ड. 'माप्तः । समाप्ता
नवषट्कपद्याख्या. ८ छ. ध. 'निरुक्ते'. ९ छ. द्वादशेऽध्यायः; त. द. द्वादश-
२१ माऽध्यायः. १० थ. ध. 'समाप्तः' नास्ति.

अथ परिशिष्टम् ।

अथ त्रयोदशतन्त्राद्यस्य

प्रथमः पादः ।

ॐ अथेमा अतिस्तुतय इत्याचक्षतेऽपि वा संप्रत्यय एव
स्वप्न्याहाभाग्याद्देवतायाः सोऽग्निमेव प्रथममाह त्वमग्ने द्युभिस्त्व-
मानुशुश्रुणिरिति यथैतस्मिन्सूक्ते न हि च्चदारे निमिषश्चनेश्च
इति चरुणस्याथैवेन्द्रस्य ॥ १ ॥

‘अथेमा अतिस्तुतय इत्याचक्षते’ इत्येवमादि वक्तुं प्रकृतशेषम- १०
नुवर्ष्यते । किं चात्र प्रकृतम् । स्तुतिलक्ष्य-
इमा वक्ष्यमाणा अतिस्तुतयः देवतेति । ‘यत्काम ऋषिर्वैश्यां देवताय.मार्थपत्य-
मिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते’ (निरु० ७।१)
इत्यत्र ताः स्तुतयः कर्माधिकारनिरृताः । स्वकर्माधिकारातिक्रमेण स्वगु-
णातिशयेन च यास्ता उपप्रदश्योः । तःथ विशेषतः पुनरधिकारवच- १५
नम् ‘अथ’ इति । ‘इमाः’ या वक्ष्यम.णास्ताः । ‘अतिस्तुतय इत्या-
चक्षते’ । अन्येऽप्याचार्या एवमेवैता आचक्षते कथयन्ति सिध्येभ्याऽतिस्तु-
तय इति । प्राप्तेऽहोऽभ्येत.सु संज्ञयभिप्रायः । अथवा । नैवेतद-
अथवा नैवेदति- तिसत्वनम् । किं तर्हि । ‘संप्रत्यय एवःस्यत्’ ।
स्तवनम् । किंतु देव- देवतासमानमेव । किं कारणम् । न ह्यतिशयो १०
त्तानां माह्यभाग्यमेव नाम देवतायाः स्तुतेरस्ति । कस्मात् । ‘साहाभा-
ग्यद्देवतायाः’ । न विभूतेरियत्तास्ति यामतिरिच्य
स्तुयेत । तद्भुक्तम् ‘ऋषीपमः’ इति (निरु० ६।२३) । तथा च
‘नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देसुः’ (निरु० ५।१२) इति ।

१ ङ. ङ. हरिः ओम्; घ. हरिः अम्; छ. हरिः उं; झ. उं; ठ.
'अ' नास्ति. २ घ. ट. श्री । अये; च. उं अये. ३ घ. 'नुवर्ष्यते; च.
वर्ष्यते' तै; ट. 'नुवर्ष्यते' तै; ठ. ङ. 'वर्तते. ४ ठ. ङ. 'मिच्छंस्तु'. ५ घ.
ठ. ङ. 'निष्ताः; ट. निष्ताः. ६ क. ख. च. स्तुतिर'. ७ ठ. ट. सर्वा
ऋषीयते दुर्गवृत्तिसाधनभाष्ययोश्च मिश्रणं क्रियते.

नैरुक्तसमयानुवृत्तयेऽतिस्तुतयः प्रदर्शन्ते । ' सः ' इति स्तोत्रा
असावाचार्यः ' अग्निमेव ' अधिकृत्य ' प्रथममाह ' । किं कारणम् ।
येनैव हि क्रमेण स्तुतय उपप्रदर्शितास्तेनैवात्र क्रमेणातिस्तुतयो न्यव्याः
प्रदर्शयितुम् । न ह्यति कारणे मुख्यातिक्रमे न्याय्य इति । क । यथा

५ अग्नेः अतिस्तुतिः ' त्वभग्ने शुभिस्त्वमांशुशुश्राणिः ' इति । (ऋ०
सं० २ । १ । १ ॥ निरु० ६ । १) ।
यथैतस्मिन् सूक्ते स्वकर्माधिकारव्यतिरेकेणातिशयेन वा स्तुतिः ।

मध्यस्थाने ' नहि त्वदारे निमिषश्च नेश इति वरुणस्य ' । ' भग्नो
सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राज्जृतात्रोऽनुं मा
१० वरुणस्य गृभाय । दामेव वत्साद्वि मुमुग् यंहा । नहि त्वदारे
निमिषश्चनेश ' (ऋ० सं० २ । २८ । ६) ॥ हे भगवन् वरुण
सम्राट् ऋतवन् यदेतत् अपः कर्म निचित् भियसं भवन्वरेम अस्मासु
अंहः पापं यदात्मनः कायकृतं तदस्मात्तो दामेव वत्सात् विमुपुश्वि त्वं
प्रमुञ्च । ततश्च तत्प्रमुच्यसु म्यक्ष सुप्र गमय । नाशोपत्यर्थः । वत्सात्पु-रेवं
१५ भूमहे । इतो यस्मात् न हि त्वदारे निमिषश्चनेतो ! तद्वदितोऽपि वर्त-
मानस्य दूरेऽपि च यः कश्चित्स्यापि त्वदन्वो नेश । तमेव दूरं चान्तिके
चेशिपे इत्यभिप्रायः ।

' अथैषेन्द्रस्य ' ॥ १ ॥

२० यद् द्यावं इन्द्र ते शनं शतं भूमीरुत स्युः । न त्वां वज्रि-
न्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदती (ऋ० सं० १।७।१) ॥
यदि त इन्द्र शनं दिवः शनं भूमयः प्रतिपानति स्तुर्न त्वा
वज्रिन्सहस्रमपि सूर्या न द्यावापृथिव्यावपभ्यश्चुतीतामित्यर्थेना-
दित्यस्य ॥ २ ॥

१ घ. च. द्र. वरुणेति । हे भ०. २२. ' द्रस्य । इति निरुक्तभा० उ० ष०
निघण्टपञ्चाध्या० सह अष्टाद् ० ध्या० प्र. पा०; ड. ' द्रस्य । इति निरुक्तीका-
यामुत्तरपटके निघण्टपञ्चाध्यायेन सह अष्ट द्वाव्याये प्रथमः सङ्घः; क. ख. च.

२१ वर्जमितरेष्वहो नास्ति. ३ छ. त. वज्रित्प०.

यद् द्याव इन्द्र ते शतमिति । पुरुहन्मन आर्षम् । बृहती । वैरूपे
 इन्द्रस्य स्तोत्रियरु रूपे (आश्व० श्रौ० ७ । १०) ।
 हे भगवन् इन्द्र यदि तव शतं दिवः शतं
 च भूमयः सहस्रं च सूर्यः रोदसी अपि च समस्ते प्रतिमानानि उप-
 मानानि भवेयुः कथञ्चित् तथापि त्वां जातमात्रं पि सर्वाण्यपि तानि
 नष्ट नेशाम्यश्रुवरिन् । किं तर्हि । त्वमेतानि सर्वाणि अम्यश्रुश्रीयाः ।
 अतिरिच्य वर्तेथा इत्यर्थः ।

‘अपैपादित्यस्य’ ॥ २ ॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन । कस्य पुल्वघो मृगः
 यमगञ्जनोपौ दिश्वस्मिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १० । ८६ ।
 २२) ॥ यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्त कस्य पुल्वघो मृगः
 क स बह्वादी मृगो माष्टैर्गतिकर्मणः कमगमदेशं जनयो-
 पनः सर्वस्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमत्द् ब्रूम आदित्यमथैपादित्यररमी-
 नाम् ॥ ३ ॥

यदुदञ्चो वृषाकप इति । पङ्क्तिः । इन्द्राण्या आर्षम् । पृष्ठयस्य षष्ठेऽ-
 आदित्यस्य हनि विनियोगः (आश्व० श्रौ० ८ । ३) ।
 हे भगवन् वृषाकपे इन्द्र यदा त्वम् उदञ्चः

उदङ् एव वर्तमानः प्रदक्षिणं भुवनानि परिगच्छन् गृहम् अजगन्तन ।
 गृहानुप्रवेशे हि व्यवधीयते । व्यवधीयते च भगवानस्तं गच्छन्नादित्य इत्येत-
 स्मास्तामान्यादुच्यते गृहमिन्द्राजगन्तन इति । तदा त्वयि गृहमुपगते अदृश्ये
 गिरालोको लोकः सहस्रैव विस्मितो ब्रवीति । कस्य पुल्वघो मृगः । स्यः
 सः । पुरुशब्दात्पूर्वपदं घतेरुत्तरपदम् । क स बह्वादी मृगः । बह्वासा-
 वत्ति सर्वप्राणिष्ववस्थितः । तदुक्तम् । ‘सूर्य अत्मा जगन्तस्तथुःश्व’
 (ऋ० सं० १ । ११५ । १) इति । ‘मृगो माष्टैः गत्यर्थस्य । न
 ह्यसाववतिष्ठते । माष्टैरेव हि मृगः । कं देशमगमत् गतवान् । येनास्मा-

१ ठ. ड. यद् द्याव इति । पुरु०. २ घ. ट. ठ. ड. ‘उपमानानि’ नास्ति.
 ३ ठ. ड. इत्यस्य । इति निरुक्तभाष्ये उत्तरषट्के ७ ध्याये २ खण्डः; क. ख.
 ग. च. पर्णमितरेष्वङ्गो नास्ति. ४ ठ. ड. ‘वक्ष इति । पङ्क्तिः.

कमन्श्यः स देशो जनयोपनः जनमोहनो बभूव । उदयास्तमयपरिगमना-
दादियस्य जना मुह्यन्ते तत्त्वापरिज्ञानात् । विश्वस्मात्सर्वस्मात् जगतः
पस्वम् इन्द्र उत्तरः तमेतं धाम् आदित्यम् एवं ब्रूमो बहुदृच्छो
वृषाकप इति ।

५ “अथैषादित्यरश्मिनाम्” अतिस्तुतिः ॥ ३ ॥

वि हि सोतो^१रसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत । यत्राभेदवृषाकपिर्यः
पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (ऋ० सं० १० । ८६ ।
१) ॥ व्यसृक्षत हि प्रसवाय न चेन्द्रं देवममद्वृषत यत्रामाद्यद्वृ-
१० षाकपिर्य ईश्वरः पुष्टेषु षोषेषु मत्सखा मम सखा मदनसखा ये
नः सखायस्तैः सहेति वा सर्वस्माद्य इन्द्र उत्तरस्तमेतद् ब्रूम आदि-
त्यमथैषाभिनोः ॥ ४ ॥

वि हि सोतो^१रसृक्षतेति । पूर्वैव समानार्थविनियोगच्छन्दस्कारः ।
१५ आदित्यरश्मिनाम् व्यसृक्षत व्यसृजत यदादित्यो रश्मीनहन्यहनि
सोतोः सर्वभूतप्रसवाय अभ्यनुज्ञानाय तत्प्रका-
शितलोकस्य सर्वकर्मोपपत्तेः । तत्र किमिति । तदा ते रश्मयः सर्व-
कर्मण्यनुगमनात् नेन्द्रं देवममंसत । तमेवेन्द्रमादित्यं येन विसृष्टास्तमे-
तमात्मनो दीपयितारं न मन्यन्ते । स्वमहिम्नैव वयं दीप्यामह इति मन्यन्ते ।
२० कदा । यदा रश्मिषोषं पुष्यति पुष्टेषु एकौभूनेषु मध्यदिने मत्सखा मम
सखा इति मन्त्रद्वगाह । अथवा । सर्व एव मन्यन्ते यमायं सखा ममयं
सखेति । अथवा । मदनसखा । हर्षसखेयर्थः । अथवा । ये नः सखायो
रश्मयस्तैः सहेति । विश्वस्मादित्युक्तार्थः । “अथैषा वाचः प्रव-
न्हितेव” ॥ ४ ॥

१ ठ. ह. °स्तुतिः । इति निरुक्तभाष्ये ७. ध्याये ३ खण्डः; क. ख. म. च.
वज्रमिनोष्वङ्को नास्ति. २ घ. ट. ठ. ढ. यदा अमदद वृषाकपिः अर्थः इवःपी
३८ रश्मिः ३ घ. ट. ठ. ढ. मन्यन्ते; च. मन्यन्ते. ले.

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका । उदन्य-
 जेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायुं (ऋ० सं० १० ।
 १०६ । ६) ॥ सृण्येवेति द्विविधा सृणिर्भवति भर्ता च हन्ता च
 तथाश्विनौ चापि भर्तारौ जर्भरी भर्तारावित्यर्थस्तुर्फरीतू हन्तारौ ।
 नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका । नितोशस्यापत्यं नैतोशं नैतोशेव
 तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ । उदन्यजेव जेमना मदेरू । उदन्यजेवेत्युद-
 दकजे इव रत्ने सामुद्रे चान्द्रमसे वा जेमने जयमने
 जेमना मदेरू । ता मे जराय्वजरं मरायुं । एतच्चजरायुजं शरीरं
 शरदमजीर्णमथैषा सोमस्य ॥ ५ ॥

५

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी
 धावति (ऋ० सं० ९ । ५८ । १) ॥ तरति स पापं सर्वं मन्दी यः
 स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वं गतिम् । धारा सुतस्यान्धसः । धार-
 याभिषुतस्यान्धसः । धारयाभिषुतस्य सोमस्य मन्त्रपूतस्य वाचा
 स्तुतस्याथैषा यज्ञस्य ॥ ६ ॥

१०

१५

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
 त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आश्रितेश (ऋ०
 सं० ४ । ५८ । ३) ॥ चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्र-
 योऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये
 सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा वद्धो मन्त्रब्राह्मण-
 कल्पवृषभो रोरवीति रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्धनुभिः
 सामभिर्धेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्धेजन्ति सामभिः स्तुवन्ति
 महो देव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्या आश्रितेष हि
 मनुष्यानाविशति यजनाय तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय ॥ ७ ॥

१०

१५

स्वर्गन्तो नापेक्षन्त आद्यां रोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतो-
 धारं सुधिर्द्वांसो विवेनिरे ॥ स्वर्गच्छन्त ईजाना वा नेक्षन्ते तेऽमु-

१ ठ. ड. पञ्चमषष्ठसप्तमष्टमखण्डः न वर्तन्ते. २ क. ख. छ. त. मसीति वा.
 ३ क. ख. छ. त. द. त्रयो अस्य.

मेव लोकं गतवन्तं ईक्षन्त इति । आद्यां रोहन्ति रोदसी । यज्ञं
ये विश्वतोधारं सर्वतोधारं सुविद्वांसो विवेनिर इत्यथैषा वाचः
प्रवहन्तिव ॥ ८ ॥

- ५ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनी-
षिणः । गुहा त्रीणि निहितानि नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या
वदन्ति (ऋ० सं० १ । १६४ । ४५) ॥ चत्वारि वाचः परिमि-
तानि पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये भेषाविनो गुहायां त्रीणि
निहितानि नार्थं वेदयन्ते गुहा गूढतेःतुरीयं त्वरतः कतमानि
१० तानि चत्वारि पादान्योक्तारो महाव्याहृतश्चेत्याः नामाख्याते
चोपसर्गनिपाताश्चेति वैयाकरणा मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणं चतुर्थी
व्यावहारिकीति याज्ञिका ऋचो यजूंषि सामानि चतुर्थी
व्यावहारिकीति नैरुक्ताः सर्पाणां वाग्वयसां क्षुद्रस्य सरीसृपस्य
चतुर्थी व्यावहारिकीत्येके पशुषु तूष्णेषु मृगेष्व-
११ त्मनि चेत्यात्मप्रवादा अथापि ब्राह्मणं भवति ' सा वै वाक्सृष्टा
चतुर्थी व्यवभवदेवैव लोकेषु त्रीणि पशुषु तुरीयं या पृथिव्या
साग्नौ सा रथन्तरे यान्तरिक्षे सा वायौ सा वामदेव्ये या दिवि
सादित्ये सा वृहति सा स्तनयित्नावथ पशुषु तते या वागत्य-
रिच्यत तां ब्राह्मणे न्येदधुस्तस्माद्ब्राह्मणा उभयीं वाचं वदन्ति
१० या च देवानां या च मनुष्याणाम् ' (मैत्रा० सं० १ । ११ ।
५) इत्यथैषाक्षरस्य ॥ ९ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानीति । दीर्घतमस आर्षम् । वाग्देवते पशौ
विनियोगः (आश्व० श्रौ० ३ । ८) । प्रवहन्ति-
वाचः तेल्यनभिव्यक्तिविशिष्टो वाक्पार्थः । चत्वारि वाचः
परिमितानि पदानि । न पञ्चमं पदमस्ति । तानि पुनः ब्राह्मणा विदुः ।

- १ क. ख. ड. थ. ध. °बन्तमीक्षन्तमिति; छ. त. °बन्त इच्छन्त इति.
२ क. ख. छ. त. द. ड. थ. °बन्दिते°. ३ छ. त. तूष्णेषु मृ°. ४ क. ख. ड.
१९ थ. ध. ठ. ड. °ब्राह्मणेष्वङ्.

किं सर्वे । न । ये मनोषिणः ये मेधाविनः । तेषां च पुनः पदानां गुहायां
 श्रीणि निहितानि नेङ्गयन्ति नार्थं वेदयन्ते न प्रख्यापयन्ति । तुरीयं चतु-
 र्थं भागम् एकं पदं मनुष्याः परिज्ञानार्थं वदन्ति । तुरीयं त्वरतेः ।
 तद्धि त्वरितमिव निर्गतं भवति त्रिभ्यः ।

‘ कतमानि तानि चत्वारि पदानि ’ इति विचारार्थः प्रश्नः । तत्र
 कतमानि चत्वारि पदानि तावत् ‘ नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्चेति वैया-
 क्रणाः ’ मन्दन्ते । तत्राप्रसिद्धार्थत्वादाख्यातो-
 पसर्गनिपातपदान्यर्थं न वेदयन्ते । नामानि तु
 नामादीनीति प्रसिद्धतरार्थत्वाद्गवाश्वादीन्वेदयन्त्यर्थान् । एवम् ।
 वैयाकरणाः ‘ मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणं चतुर्थी व्यावहारिकीति
 याज्ञिकः ’ । अत्रापि व्यावहारिकेव तू वेदय-
 ल्यथेम् । ‘ ऋचो वर्ज्येण सामानि चतुर्थी व्याव-
 हारिकीति नैरुक्ताः ’ । अत्रापि व्यावहारिकेव
 वेदयते । ‘ सर्पाणां वाग्वयसां क्षुद्रस्य सरीसृ-
 पस्य चतुर्थी व्यावहारिकीत्येके ’ । सर्पादीना-
 र्थात् इत्येके ित्यभिभूतवदः । अत्रापि व्यवहारिकेव वेद-
 यते नेतराः । ‘ पशुषु तूणवेषु मृगेष्व्वात्मनि
 प्रवादाः । ‘ ब्राह्मणम् अपि च भवति ’ एतस्मिन्नर्थे ‘ सा वै वाक्सृ-
 ष्टा चतुर्थी व्यभवत् ’ इत्येवमादि । तदेतदभिव्यक्तार्थमेव । ‘ ततो या
 वाग्लरिच्यत तां ब्राह्मणे न्यदधुः ’ निहि-
 तवन्तः । ‘ तस्माद्ब्रह्मणा उभर्था वचं वदन्ति
 या च देवानां या च मनुष्याणाम् ’ । लौकिकी
 वैदिकी चेत्यर्थः ।

‘ अथ ’ पुनः ‘ एषाक्षरस्य ’ अतिस्तुतिः प्रवर्हिहेतेव ॥ ९ ॥

ऋचो अक्षरं परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

१ च. ‘ श्वान्वे ’. २ क. ख. तूणवे; ठ. ड. ‘ पशुषु । गवाङ्गयः । तूणवेषु ।
 षीणाजातिषु वायोषित्यर्थः । आत्मानं (ठ. पुस्तकप्रान्ते लिखितं विवरणमतत्).
 ३ ठ. ड. ५ । इति नैरुक्तभाष्ये ७ ध्याये ५ खण्डः; क. ख. वर्जमितरे-
 ष्वक्षो नास्ति.

यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते
 (ऋ० सं० १ । १६४ । ३९) ॥ ऋचो अक्षरे परमे व्यवने
 यस्मिन्देवा अधिनिषणाः सर्वे यस्तन्न वेद किं स ऋचा करि-
 ष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति विदुष उपदिशति कतम-
 ५ त्तदेतदक्षरमोऽमित्येषा वागिति शाकपूणिर्ऋचश्च ह्यक्षरे परमे
 व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मन्त्रेष्वेतद्ध वा एतदक्षरं यत्सर्वा
 त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम् (कौपी० ब्रा० ६ ।
 १२) ॥ १० ॥

१० ऋचो अक्षरे परम् इति । दीर्घतमस आर्षम् । अस्या निर्वचनत्र-
 यमधियज्ञाभिर्देवाध्यात्मविकल्पेन ॐकार आदित्य
 अक्षरस्य आत्मा चेति । तत्र तावच्छाकपूणिपक्षमाश्रिया-
 धियज्ञगतमुच्यते ।

‘ कतमत्तदेतदक्षरमोऽमित्येषा वागिति ’ शाकपूणेरभिप्रायः ।

१५ अक्षरम् । ॐ ॐकारमृते न ह्यर्चयन्ति । तस्या अक्षरं परमं
 इति शाकपूणिः व्योम । त्रिचिधमरिम्न् शब्दजातभोतमिति
 व्योम । तस्मिन् तिसृषु मात्रासु अका-

रोकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदवशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम । अप-
 रमाकाशमपेक्ष्य तत्परं व्योम । शब्दसामान्यमभिधक्तमित्यभिप्रायः । यस्मिन्

२० देवा अधिनिषणाः सर्वे । ऋगादिषु ये देवास्ते मन्त्रद्वारेणाक्षरे निषण्णः-
 स्त्स्य शब्दकारणत्वात् । तद्यथा । प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः
 ऋग्वेदः पृथिवीलोकनिवासिन इत्येव । द्वितीयायां मात्रायामन्तरिक्षं
 वायुर्यजुषि तल्लोकनिवासिनो जना इति । तृतीयायां मात्रायां
 द्यौरादित्यः सामानि तल्लोकनिवासिनो जना इति । विज्ञायते हि
 ‘ ॐकार एवेदं सर्वम् ’ इति । यस्तन्न वेद अनया त्रिमूर्त्याक्षरं किमसौ
 ऋगादिभिर्मन्त्रैः कारिष्यति यस्तान्यक्षरात्मना न पश्यति । य इत्तद्विदुस्त
 इमे समासत इति विदुष उपदिशति । ते हि तत्परिज्ञानात्ताद्वान्यमुपगताः

प्रणवविग्रहमात्मानमनुप्रविश्य समीकृता निर्वाण्ति शान्तार्चिष इवा-
नला इति ॥ १० ॥

आदित्य इति पुत्रः शाकपूणरेपग्भवति यदेनमर्चन्ति प्रत्यृचः
सर्वाणि भूतानि तस्य यदन्यन्मौत्रेभ्यस्तदक्षरं भवति रश्मयोऽत्र
देवा उच्यन्ते य एतस्मिन्नधिनिषण्णा इत्यधिदैवतमथाध्यात्मं
शरीरमत्र ऋगुच्यते यदेनेनार्चन्ति प्रत्यृचः सर्वाणीन्द्रियाणि
तस्य यदविनाशिधर्मं तदक्षरं भवतीन्द्रियाण्यत्र देवा उच्यन्ते
यान्यस्मिन्नात्मन्येकं भवन्तीत्यात्मप्रवादाः ॥ ११ ॥

‘ आदित्य इति पुत्रः शाकपूणरेपग्भवति ’ इति मण्डलमभिप्रे-
तम् । ‘ यदेनमर्चन्ति ’ इति । यस्मादेनमर्चन्ति
आदित्यः अक्षर- तस्मात् ऋक् । तस्य यदन्यत् मण्डलगतेभ्योऽ-
मिति शाकपूणेः पुत्रः वयवेभ्यः तत्परमम् अक्षरं व्यवनं तत्र सर्वमोत-
मिति । रश्मयोऽत्र देवा उच्यन्ते य एतस्मिन्नधिनिषण्णा भवन्ति । यस्तन्म-
ण्डलम् अक्षरात्मना न वेद किं स ऋचा आदित्येन मण्डलात्मना कारि-
ष्यति । नासौ यथावदादित्यं वेदेत्यर्थः । य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति
व्याख्यातम् ।

आत्मेत्यात्मप्रवादाः । अयमृग्भवति शरीरमिति । इन्द्रियाण्यत्र देवा
उच्यन्ते । तानि हि विषयेषु द्योतन्त इति देवाः ।
आत्मेत्यात्मप्र- तस्य यदविनाशिधर्मि वेतनासत्त्वमात्रविज्ञानं
वादाः तत्परममक्षरं व्यवनम् । यत्तदक्षरं न वेद किमसौ

१ ठ. ड. °नद्याः. २ ठ. ड. इति । इति निरुक्तभाष्ये ७ ध्याये ६ खण्डः;
क. ख. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति. ३ क. ख. ड. थ. ध. ठ. ड. °न्यन्मन्त्रेभ्यः.
४ त. प्रत्यृचं. ५ क. ख. छ. त. °स्मिन्नधिनिषण्णानीत्यात्म°. ६ क. ख. घ. ट.
ठ. ड. ° इति ’ नास्ति. ७ क. ख. ठ. ड. °मिति । य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यः
पुरुषो वृश्यत इति श्रुतिः । रश्मं (ट. पुस्तके ‘ यः ’ श्रुतिः ’ इदं प्रान्ते विवरण-
मिति लिखितम्). ८ ठ. ड. °त्यर्थः । भूम्यां रोगराहिताः सुखेन जीवन्ति । य°
(ट. पुस्तके ‘ भूम्यां ’ जीवन्ति ’ इति । प्रान्ते विवरणमिति लिखितम्).

ऋचा शरीरेण करिष्यति । न तस्य जीवितेनार्थः । य इच्छिदुरिति
व्याख्यातम् ॥ ११ ॥

- अक्षरं न क्षरति न क्षीयते वाक्षर्यं भवति वाचोऽक्ष इति
५ वातो यानस्याञ्जनात्तत्प्रकृतोत्तरद्वर्तनसामान्यादित्ययं मन्त्रार्थ-
चिन्ताभ्यूहोऽभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतो न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा-
निर्वक्तव्याः प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्या न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्य-
नृषेस्तपसो वा पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः
१० प्रशस्यो भवतीत्युक्तं पुरस्तान्मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवा-
नब्रुवन्को न ऋषिभविष्यतीति तेभ्य एतं तर्कमपि प्रायच्छन्मन्त्रा-
र्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूहं तस्माद्यदेवं किंचानुचानोऽभ्यूहत्यापि तद्भ-
वति ॥ १२ ॥

- अक्षरं कस्मात् । तद्धि ' न क्षरति ' । नान्यथाभावमापद्यते । अथवा ।
१५ अक्षरं कस्मात् ' न क्षीयते ' । न कदाचिदप्यामूलतो विनश्यति ।
अर्थवा । ' वाक्क्षयो भवति ' । नादो हि
वर्णलक्षणाया वाचो निवासः । ' वाचोऽक्ष इति वा ' । अक्षरो ह्यक्षं
इवानुप्रविश्य व्यञ्जनानि धारयति । अथ ' अक्षः ' कस्मात् । उच्यते ।
२० अक्षः कस्मात् यानाक्षस्तावत् ' समञ्जनात् ' । नित्यमसौ
म्रक्षते गैलादिना । ' तत्प्रकृतोत्तरत् ' स्वरा-
ख्यमक्षरं ' वेर्तनसामान्यात् ' । स्वरमधिकृतानि व्यञ्जनानि वर्तन्ते ।
' इति ' । परिसमाप्त्यर्थ इतिकरणः । उपप्रदर्शनार्थो वान्तस्य ।

१ उ. ड. ' व्यातम् । इति निरुक्तभाष्ये उच्यते उ उच्छ्रः; क. ख. व. जे-
मिनरेष्वङ्को नास्ति. २ ड. थ. ध. ठ. ड. वाक्क्षरं भवति. ३ छ. त. व क्षेपादान-
स्या. ४ क. ख. छ. त. ' भ्यूहोऽपि. ५ क. ख. छ. त. ' भ्यूहं & क. ख. ' देवं.
७ उ. ड. अक्षरं न क्षरति । अक्षरं. ८ च. ' इत्यति ' वाक् ' श्वा नोस्ये. ९ च.
मा वाचो'. १० य. उ. उ ड ह्यक्षे. ११ य. उ. ड. ड. वर्तमानं; क.

एवमत्रै ' मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूहः ' । मन्त्रार्थचिन्तानामभ्यूहो मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहः वितर्कितः शक त एतावता मन्त्रार्थोऽभ्यूहितुमिति ।

श्रुतिसाहाय्येन पुनरयम् ' अपि श्रुतितोऽपि तर्कितः ' । श्रुतिभ्यो ब्राह्मणेभ्यो निगमशेषेभ्यश्चोक्तितार्थाभिधानसामर्थ्येभ्यो वाक्यार्थसामर्थ्यात् । तस्योपरि पर्यायास्तर्कशास्त्रमिदं समाप्तम् । ' यद्यप्ययमभ्यूहस्तथापि न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः ' । कुतः पृथक्त्वेन । प्रकरणात् । किं तर्हि । ' प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः ' । तान्येतानि प्रकरणानि मन्त्राणां याज्ञं देवतमध्यात्ममितिहासानुप्रवेश इति । किं कारणम् । ' न ह्येषु ' मन्त्रेषु ' प्रत्यक्षम् ' अर्थदर्शनम् ' अस्ति ' । किं नास्त्येव । न नास्ति । किं तर्हि । ' अनृषे रतपसो वा ' इति । तस्येदानीमपि स्याद्य ऋषिस्तपस्वी च । निर्देग्बकलमषयोस्तयोः प्रतिबन्धका-

मन्त्राः प्रकरणशो निर्वक्तव्याः

मावाद्यथावदर्थं मन्त्राणां पश्यतः । येऽन्ये पुनरौपदेशिकास्तानधिकृत्योच्यते । ' पारोवर्यविद्युः तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यौ भवतीत्युक्तं पुस्तात् ' इति (निरु० १ । १६) । एतेषु उपदेशतः पारोवर्येण परोवरभावेन मन्त्रार्थान् प्रतिपद्यन्ते ते पारोवर्यविदः । तेषु यः कश्चिद्भूयोविद्यो बहुश्रुतो भवति स एव मन्त्रार्थपरिज्ञाने प्रशस्यो भवति । मन्त्रार्थ एव ह्ययं सर्वविद्यावस्थानभावेन विष्वग्भूतो लोकव्यवहारभावेन च विप्रकीर्णो विजृम्भत इति तमब्रह्मश्रुतो नालमुत्प्रेक्षितुमिति युक्तं यत्परिज्ञानयोगे भूयोविद्यः प्रशस्यत इति ।

यस्मान्मन्त्रेषु प्रत्यक्षं ज्ञानमाधुनिकानां नास्ति

श्रुतिनिर्वचनाय श्रुतिज्ञानरूपं बहुविधत्वमावश्यकम्

पुरस्तादपि चैतदुक्तम् । इह तु प्रसङ्गादुच्यते । अतः परमागमविशुद्धये प्रस्तौति । ' मनुष्या वा ऋषिपूज्यास्तु देवानब्रुवन् ' इति । पूर्वमपि हि ' साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः ' (निरु० १ । २०) । इत्युक्तम् । इह तु मन्त्रार्थाभ्युपपदर्श

१ क. ख. एवमर्थः; च. ' मयैम° व. २ व. ठ. ड. तर्कितः; च. तर्कतः° किं; ट. तर्कितः° क. ३ घ. ठ ड. तस्यापरपर्या°; च. तस्योपरिपर्या° स्यापर°; ट. तस्योपरिपर्या° स्थोपरि. ४ च. ' क्षमर्चद° र्ध. ५ च. ' म्ये पर्यवेदेयिका ' पुनरौपदेशि. ६ च. ' ज्ञयो बहु'. ७ च. ' एवैमिह° इ°

५
१०
१५
२०
२५

नार्थमिति विशिष्यते । ' मनुष्या वा ऋषियूक्तामस्तु देवानमृगवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति ' । एवमादिपुराकल्परूपोऽर्थवादः शास्त्रावतारस्तुतथे । तेभ्यः ' एतं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूहं प्रायच्छन् ' ते देवा एतं

५ अभ्यूहश्चावश्यकः समस्तार्थमूहमपि भवन्तोऽनेन मन्त्रार्थान् शैक्य-
न्तेऽभ्यूहितुमिति । यस्मादेतदेवं तस्मात्
अस्मिन् सूक्ते निरुक्तशास्त्रे यः ' अनूचानः ' विद्वान् यदेव किञ्चिन्म-
न्त्रार्थेषु ' अभ्यूहत्पर्यं तद्भवति ' । तथैव तदृषयोऽभ्यूहितवन्त इत्यभि-
प्रायः । न तत्त्वमनीषिकयोच्यते । मन्त्रार्थोऽप्येतस्मिन् विषये बृहस्पतिना
दृष्टो ब्रह्म वा स्वयं प्राह । तद्यथा ॥ १२ ॥

हृदा तष्टेषु मनसो जघेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोहब्रह्मणो वि चरन्त्यु त्वे (ऋ० सं०
१०।७१।८) ॥ हृदा तष्टेषु मनसां प्रजघेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते
समानंख्याना ऋत्विजोऽत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिर्वेदितव्याभिः
१५ प्रवृत्तिभिरोहब्रह्मण ऊहब्रह्मण ऊह एषां ब्रह्मेति वा सेयं विद्या
श्रुतिमतिबुद्धिस्तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यं तदिदमायुरिच्छता
न निर्वक्तव्यं तस्माच्छन्दःसु शेषा उपेक्षितव्या अथागमो यां
यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवत्यनुभवति ॥ १३ ॥

२० हृदा तष्टेषु हृदयेन बुद्ध्या तष्टेषु सूक्ष्मतामापादितेषु अचिन्त्याध्यात्मा-
अस्यामृचि अभ्यूहः दिषु विद्वद्भिः मनसो जघेषु मनसां येषु प्रजवाः
प्रशस्यते प्रगमाः । न साक्षात्ते । दृश्यन्ते तेष्वर्थेषु स्वर्गापूर्व-
देवतादिषु ब्राह्मणाः अधिगतमन्त्रार्थतत्त्वा विचा-
रयन्तः किमत्र तत्त्वं किं वा अतत्त्वमिति प्रवचनेन ततः संयजन्ते परस्परेण

२५ १ क. ख. घ. ट. ड. °भ्यूहमभ्यूहं प्रा°; च. °भ्यूहमभ्यूहं प्रा°; ठ. °भ्यूहं
प्रा°. २ ट. 'मूह' गौ; ठ. ड. °स्तार्थगूह. ३ च. °र्थान्क्षयंथो भ्यू° न् शक्षयंथो
(वयन्ते). ४ ठ. ड. 'प्राह । इति निरुक्तभाष्ये ७ ध्याये खण्डः । तद्यथा°;
क. ख. वर्जमितरेष्वङ्गो नास्ति. ५ छ. त. समानाख्याना. ६ ठ. ड. 'वति ।
इत्युत्तरपटके निरुक्ते खण्डः । समाप्तातिस्तुतिरध्यायः. ७ घ. ट. सर्वा ऋक्
१५यन्ते; ठ. ड. तष्टेष्विति । इदं°. ८ क. ख. घ. ट. ठ. ड. ये प्रा°; च. येषु.

६० ९ घ. ट. संयजन्ते°.

संपूजयन्ति । कतमे ते इति । सखायः समानख्याना ऋत्विजः । ते हि प्रयोगेऽभियुक्तत्वादतितरां विद्वांसः । तेषु किमिति । अत्राह । तत्र तेषु अर्थेषु सूक्ष्मेषु विजहुः तयजुः त्वम् एकम् त्यक्तवन्तो मन्त्रार्थव्याख्याने । कम् । अविद्वांसम् । केन तयजुः । वेद्याभिः वेदितव्याभिः प्रवृत्तिभिः । न हि तासां मनोवृत्तीनामन्तोऽस्ति यामु प्रतिभानवतामपि मनोवृत्तयो न प्रवर्तन्ते । अतस्ता वेदितव्या एव भवन्त्यविद्वद्भिः । ये पुनः ओहब्रह्माणः । इदं निरुक्तशास्त्रम् ऊहब्रह्म येषामस्ति ते शब्दार्थन्यायसंकेतेष्वप्रतिबध्माना अतिक्रम्य अविद्वांसं विशेषतः सर्वत्र प्रतिपूज्यमानाः चरन्ति त्वे एक इत्यर्थः ।

५

एवमेतास्मिन्मन्त्रे अस्या उद्गाहितो नैश्वानेदाद्वेद इति मन्त्रार्थचिन्ता-
भ्यूहस्य ब्रह्मत्वं श्रूयते । तस्मादिदमपि निरुक्तशास्त्रं ब्रह्मैव । वेद इत्यर्थः ।

१०

इदानीमुपसंहारि 'संयं विद्या' इति । श्रुतिमतीति । आद्या इयमे-
श्रुतिमति या बुद्धिः त्रैका विद्या । बुद्धिं वर्धति । ज्यायसी सर्वभ्यो
विद्याभ्यः । महानेप तर्कः । 'तस्यास्तपसा
पारमीप्सितव्यम्' । गन्तुमिति वाक्यशेषः ।

१५

अयमभ्यूहः परां
कोटिं नेतव्यः
पदवाक्यप्रमाणविदा ब्राह्मणेन । यस्माद्वेदो विधि-
प्रतिषेधप्रसवनियमपरिसंख्यापुनर्वचनपरार्थवादग-
हनोऽर्थवादाश्च यथाश्रुतप्रमाप्राहिणो विदुषोऽपि

परमभ्रान्तिहेतवस्तस्मात्परमदुर्विज्ञानवेदनीयत्वाद्देववाक्यानामिमां विद्यामन्त-
रेण सम्यगर्थावगमो न भवति । अतोऽस्या अखिलपुरुषार्थोपकारप्रवृ-
त्ताया अन्तरेण तपःपारगमनं नास्तीत्यत इदमुक्तमाचार्येण 'तस्या-

२०

१ च. 'द्याभिः प्रवृ' । २ च. ऊह; घ. ट. ठ. ड. ओह; ठ. ड. ओहनिश्चयो ओहमानं ब्रह्म विद्याश्रुतिमतिबुद्धिलक्षणं येषु ते तथोक्ता ऊह° (ओह० तथोक्ताः) इति च. ट. पुस्तकयोर्विवरणमिति प्रान्ते लिखितम्; ओहेति विनिश्चये इत्यादि ट. पुस्तके). ३ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'र्थसंक'. ४ क. ख. घ. ठ. सर्वत्रैव प्र°. ५ क. ख. 'हितार्थाने'. ६ क. ख. 'नेवोद्दिश्य मन्त्रा; च. ट. 'दोद्देद' दोद्देश; ठ. ड. 'भ्वात्तदोद्देशे इति'. ७ क. ख. श्रुतिमतीयाद्यर्थमवे'; घ. ट. ठ. ड. श्रुतिमतीत्याद्येयं च. श्रुतिमतीत्ययमवे' त्याद्ये.

२८

स्तपसा षारमौषितव्यम्' इति । अयमभ्युपायस्तस्याः पारगमने ।
 'तदिदम्' अतपस्विना सर्वथाऽपि 'आयु-
 रिच्छता' निरुक्तशास्त्रं 'न निर्वक्तव्यम्' ।
 अतपस्वी ह्यागमवानपि मलिनान्तःकरणत्वान्न
 शक्नुमात् । ततोऽस्यायुश्छिद्येत । तपस्विनापि
 च निर्भ्रुवता 'तस्माच्छन्दःसु' शाखान्त-
 रेषु निगमोदाहरणानामाकाङ्क्षित्वनिराकाङ्क्षायै
 वाक्यशेषाः पादार्धार्चादिउक्षणा 'उपेक्षि-
 त्व्याः' ॥ १३ ॥

१०

इति श्रीमज्जम्बूमार्गश्रमत्रासिनो भगवद्दुर्गाचार्यस्य कृतावृत्तार्थायां
 निरुक्तवृत्तौवष्टादशोऽध्यायः ॥

निरुक्तवृत्तिः समाप्ता ॥

१५

* (अथेमायद्दुर्गाचोयद्दुर्गाविहिंसोतोःसृण्येवतरत्सचत्वारिं-
 शृङ्गार्षर्धन्त्रत्वारिवागृचोअक्षरआदित्यइत्यक्षरनक्षरतिहृदातेष्टेषु-
 त्रयोदश) ॥

इति निरुक्ते उत्तरपट्टे सप्तमाऽध्यायः

१०

* छ.त. ध. ठ. ड. इयं खण्डशृङ्गला नास्ति.

१ ठ. ड. 'तव्याः । उपेत्येक्षितव्याः । इति श्री° (' उपेत्येक्षितव्याः ' इति
 र. पत्रके प्रान्ते लिखितम्). २ ठ. ड. 'श्रमनिवासि'. ३ ठ. ड. निरुक्तटीकायां
 निबन्धाध्यायपञ्चकेन सह नैरुक्तसप्तदशोऽध्यायः समाप्तः; क. ख. वर्जमितरेष्वङ्गो
 नास्ति. ४ समाप्ता निरुक्तवृत्तिः. ५ छ. प्रथमः पादः । व्याख्या; त. त्रयोदशोऽ-
 ध्याये प्रथमः पादः । व्याख्या; थ. अथ परिशिष्टा । हरिः; ध. इति निरुक्ते त्रयो-
 दशोऽध्यायः.

१६

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

ॐ व्याख्यातं दैवतं यज्ञाङ्गं चाथात ऊर्ध्वमार्गगतिं
 व्याख्यास्यामः सूर्य आत्मेत्युदितस्य हि कर्मद्रष्टाथैतदनुभवद-
 त्यथैतं महान्तमात्मानमेपगर्गणः प्रवदतीन्द्रं मित्रं वरुणमाग्निमाहु-
 रित्यथैष महानात्मात्माजज्ञासयात्मानं प्रोवाचाग्निरस्मि जन्मना ५
 जातवेदा अहमस्मि प्रथमजा इत्येताभ्याम् ॥ १ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
 अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम (ऋ०
 सं० ३ । २६ । ७) ॥ अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो १०
 अमृतस्य नाम । यो मा ददाति स इदेव मार्गदृष्टमक्षमन्नमदन्त-
 मग्नि ॥ इति स ह ज्ञात्वा प्रादुर्बभूवैवं तं व्याजहाराय तमात्मान-
 मध्यात्मजमन्तिकमन्यस्या आ चचक्ष्वेति ॥ २ ॥

अपश्यं गोवामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिर्धरन्तम् । स १५
 सग्रीचीः स विपूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः (ऋ० सं०
 १ । १६४ । ३१) ॥ आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तरित्यथैष महानात्मा
 सत्त्वलक्षणस्तःपरं तद्ब्रह्म तत्सत्यं तत्सलिलं तदव्यक्तं तदस्पर्शं
 तदरूपं तदरसं तदगन्धं तदमृतं तच्छुक्लं तन्निष्ठो भूतात्मा सैषा १०
 भूतप्रकृतिरित्येके तत्क्षेत्रं तं ज्ञानात्क्षेत्रज्ञमनुप्राप्य निरात्मकमथैष
 महानात्मा त्रिविधो भवति सत्त्वं रजस्तम इति सत्त्वं तु मध्ये
 विशुद्धं तिष्ठत्यभितो रजस्तमसी रज इति कामद्वेषस्तम इत्यवि-
 ज्ञातस्य विशुद्धयतो विभूर्ति कुर्वतः क्षेत्रज्ञपृथक्त्वाय कल्पते प्रति-

१ छ. त. 'ॐ' नास्ति; छ. घ. हरिः ओम्; य. ओ ३ म. २ क. ख. छ. थ. घ.
 'दन्त्यथै'. ३ क. ख. छ. थ. 'दन्तीन्द्र'. ४ क. ख. १ (१४); छ. त. १४; द.
 १. ५ छ. घ. नाभिः. ६ छ. थ. घ. मावा अहं १ छ. थ. घ. 'हारायत'.
 ८ छ. थ. घ. 'मध्यात्म'. ९ क. ख. २ (१५); छ. त. १५; द. २. १० छ. थ.
 घ. तदज्ञा. ११ छ. थ. घ. 'त्मजम'. १२ छ. य. घ. 'मसी इति'. १३ क.
 य. परिभा.

भातिलिङ्गो महानात्मा तमोलिङ्गो विद्या प्रकाशलिङ्गस्तमोऽपि
निश्चयलिङ्गः आकाशः ॥ ३ ॥

- ५ आकाशगुणः शब्द आकाशाद्वायुर्द्विगुणः स्पर्शेन वायोज्योति-
ह्लिगुणं रूपेण ज्योतिष आपश्चतुर्गुणा रसेनाद्भ्यः पृथिवी पञ्च-
गुणा गन्धेन पृथिव्या भूतग्रामस्थावरजङ्गमास्तदेतदहर्द्युगसहस्रं
जागर्ति तस्यान्ते सुषुप्स्यन्नङ्गानि प्रत्याहरति भूतग्रामाः पृथिवी-
मपियन्ति पृथिव्यप आपो ज्योतिषं ज्योतिर्वायुं वायुराकाशमा-
काशो मनो मनो विद्यां विद्या महान्तमात्मानं महानात्मा प्रतिभां
१० प्रतिभा प्रकृतिं सा स्वपिति युगसहस्रं रात्रिस्तावेतावहोरात्रावजस्रं
परिवर्तेते स कालस्तदेतदहर्भवति युगसहस्रपर्यन्तमहर्षद्ब्रह्मणो
विदू रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जना इति ॥ ४ ॥

- १५ तं परिवर्तमानमन्योऽनुप्रवर्तेते स्रष्टा द्रष्टा विभक्तातिमात्रोऽह-
मिति गम्यते स द्विध्यादर्शवेदं पावकं महाभूतेषु चिरोष्वाका-
शाद्वायोः प्राणैश्चक्षुश्च वक्तारं च तेजसोऽद्भ्यः स्तंहं पृथिव्या मूर्तिः
पार्थिवांस्त्वष्टौ गुणान् विद्याञ्चीन्मातृतस्त्रीन्पितृतोऽस्थिस्त्रायुम-
ज्जानः पितृतस्त्वङ्मांसशोणितानि मातृतोऽन्नं पानमित्यष्टौ
सोऽयं पुरुषः सर्वमयः सर्वज्ञानोऽपि वल्लभः ॥ ५ ॥

१०

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति यदि धर्मोऽनुरुध्यते तदेवो भवति
यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति यदि काममनुरुध्यते संचयवत्
इमां योनिं संदध्यात्तदिदमत्र मतं श्लेष्मा रेतसः संभवति
श्लेष्मणो रसो रसाच्छोणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेदसः
स्त्रावा स्त्रावोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा मज्जातो रेतस्तादिदं योनौ
रेतः सिक्तं पुरुषः संभवति शुक्रातिरेके पुमान् भवति शोणिता-

तिरेके स्त्री भवति द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति शुक्रेण भिन्नेन
यमो भवति शुक्रलोपितसंयोगान्मातृपतृमयौमात्रं तस्मैथमिदं
शरीरं परं संयम्यते सौम्यो भवत्येकरात्रोपतं कललं भवति पञ्च-
रात्राद्बुद्धदाः सप्तरात्रात्पेशी द्विसप्तरात्राटशुद्धः पञ्चविंशतिरात्रः स्व-
स्थितो घनो भवति मासमात्रात्कर्कटनो भवति दिनासाभ्यन्तरे ५
शिरः संपद्यते मासत्रयेण ग्रीवाव्यादेशो मासचतुष्टयेण त्वग्भ्या-
देशः पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रं च
संभवति सप्तमे चलनसमर्थो भवत्यष्टमे बुद्ध्याध्यवस्यति नवमे
सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति । मृतंश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नानायोगिनिसहस्राणि मयोरितानि यानि वै । आहारा विविधा १०
भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः । मांसो विविधा
दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा । अनाङ्गुष्ठः पीड्यमानो जन्तुश्च सम-
न्वितः । सांख्यं योगं समभ्यस्येत्पुरुषं वा पञ्चविंशकामिति
ततश्च दशमे मासे प्रजायते जातश्च बन्धुना स्पृष्टो न स्मरति
जन्ममरणोन्तो च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् ॥ ६ ॥ १५

अष्टोत्तरं संधिशतमष्टाकपालं शिरः संपद्यते षोडश वपापलानि
नवस्नायुशतानि सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणामर्धचतस्रो रोमाणि कोटयो
हृदयं ह्यष्टकपालानि द्वादशकापालानि जिह्वा वृषणौ षष्टसुतणौ
तथोपस्थगुदपाद्येत्तन्मूत्रपुरीषं कस्मादाशरुमानसि कृत्वादनुचित- १०
कर्माणावन्योन्यं जायेते इति तं दिव्याकर्मणि समन्वारभेत् पूर्णज्ञा-
च गृह्यज्ञानतमसि मर्षो जरादरणक्षुत्वितासाशोकक्रोचलोभमोह-
मदभयमत्सरहर्षविषादेर्ष्यासूयात्मधैर्द्वैरभिभूयमानः सोऽस्मा-

१ क. थ. ध. शुक्रभि°. २ क. थ. ध. छ. त. द्विः त°. ३ क. थ. ध.
स्पृष्टस्तत्र स्म°. ४ क. थ. ध. रणमन्ते. ५ क. ख. ६ (१५); छ. त. १५; ब.
६. ६ छ. सुवर्णौ. ७ छ. त. द. 'हारपात'. ८ क. थ. छ. त. द. 'कर्म-
णा'. ९ क. ख; क. थ. ध. द. मर्षो.

वार्जवं जधीभावावां तन्निर्मुच्यते सोऽस्मात्पांन्हाभूमिकावच्छरी
 राग्निभेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिरधिपरीत्य तैजसं शरीरं कृत्वा
 कर्मणाऽनुरूपं फलमुभूय तस्य संक्षये पुनरिमं लोकं प्रति-
 पद्यते ॥ ७ ॥

अथ ये हिंसामाश्रित्य विद्यामुत्सृज्य महत्तपस्तेपिरे चिरेण
 वेदोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रग्नि
 रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षादक्षिणायनं दक्षिणायनात्पि-
 तृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रमसं चन्द्रमसां वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेरोपध-
 यश्चित्तञ्ज्वा तस्य संक्षये पुनरेवेमं लोकं प्रतिपद्यते ॥ ८ ॥

अथ ये हिंसामुत्सृज्य विद्यामाश्रित्य महत्तपस्तेपिरे ज्ञानो-
 क्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति तेऽचिरभिसंभवन्त्यचिपोऽहरह आपु
 र्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्दग्गयनमुदगयनाद्देवलोकं देवलोकान्ना
 दित्यमादित्याद्दृष्टुं दृष्टुतान्मानसं मानसः पुरुषो भूत्वा
 ब्रह्मलोकमभिसंभवन्ति ते न पुनरावर्तन्ते शिष्टा दन्दशूका यत्
 इदं न जानन्ति तस्मादिदं वेदितव्यमथाप्याह ॥ ९ ॥

न तं विदाथ य इभा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहा-
 रेण प्रावृता जलया चासुतृष उक्थशासंश्चरन्ति (ऋ० सं० १० ।
 ८२ । ७) ॥ न तं विद्यया विदुषो यमेवं विद्वांसो वदन्त्यक्षरं
 ब्रह्मणस्पतिमन्यद्युष्माकमन्तरमन्यदेपामन्तरं बभूवेति नीहारेण
 प्रावृतास्तमसा जलया चासुतृष उक्थशासः प्राणं सूर्यं यत्पथगा-
 मिर्नैधरन्त्यविद्वांसः क्षेत्रज्ञमनुप्रवदन्त्यथाहो विद्वांसः क्षेत्रज्ञोऽनुक-

२५ १ क. ख. छ. थ. ध. त. द. 'स्वापात्रमया' . २ त. 'कर्तार' ३ छ. त. द.
 'र्मणानु'. ४ क. ख. ७ (२०); छ. त. २ ; द. ७ ॥ द्वितीयः पादः ॥ अर्थः
 ५ छ. त. द. 'तस्य संक्षये' नास्ति. ६ क. ख. ८ (२१); छ. त. २१; द. १.
 ७ छ. 'न्ति न तेन पु'; त. 'न्तिपेन' न. ८ क. ख. ९ [२२]; छ. त. २२;
 द. २. ९ छ. त. प्राणांस्तस्मिन्त्यथगां; द. प्राणं सूर्यं यत्पथः. १० छ. त. द.
 'गामिन्यम्'. ११ छ. त. द. 'ज्ञानक'.

ल्पते तस्य तपसा सहाप्रमादधेत्यथाप्तव्यो भवति तेनासंततमि-
च्छेत्तेन सख्यमिच्छेदेष हि सखा श्रेष्ठः संजानाति भूतं भवद्भ-
विष्यदिति ज्ञाता कस्माज्जायतेः सखा कस्मात्सख्यतेः सह भूते-
न्द्रियैः शैते महाभूतानि सेन्द्रियाणि प्रज्ञया कर्म कारयतीति वा
तस्य तदापः प्रतिष्ठा शीलमुपशम आत्मा ब्रह्मेति स ब्रह्मभूतो ५
भवति साक्षिमात्रो व्यवतिष्ठतेऽवन्धो ज्ञानकृतोऽथात्मनो महतः
प्रथमं भूतनामधेयान्यनुक्रमिष्यामः ॥ १० ॥

हंसः । घर्दः । यज्ञः । घेनः । मेधः । कुमिः । मुमिः । विपुः ।
प्रभुः । शम्भुः । राभुः । वधकर्मा । सोमः । भूतम् । १०
भुवंनम् । भविष्यत् । आपः । महत् । व्योम । यज्ञः । यज्ञः ।
स्वर्णिकम् । स्मृतीकम् । स्मृतीकम् । सतीकम् । सतीनम् । गह-
नम् । गभीरम् । गह्वरम् । कम् । अकम् । हविः । सख्यः । सख-
नम् । ऋतम् । योनिः । ऋतस्य योनिः । सत्यम् । नीरम् ।
हंविः । रथिः । सत् । पूर्णम् । सर्वम् । अक्षितम् । बर्हिः । नार्थः । १५
सर्पिः । अपः । पवित्रम् । अमृतम् । इन्दुः । हेम । स्वः । सर्गाः ।
शम्बरम् । अश्वरम् । वियत् । व्योम । बर्हिः । धन्वः । अन्तरि-
क्षम् । आकाशम् । आपः । पृथिवी । भूः । स्वर्धूः । अधर्वा ।
पृक्करम् । समरः । रुद्रः । तपः । तेजः । सिन्धुः । अर्णवः ।
नाभिः । वृक्षः । ऊर्ध्वः । तत् । यत् । किम् । ब्रह्म । वरेण्यम् । २०
हंसः । आत्मा । भवति । वधन्त्यध्वानम् । यद्वाहिर्ध्या ।
शरीराणि । अव्यर्थं च संस्क्रुते । यज्ञः । आत्मा । भवति ।

१ छ. त. 'जानतेः'. २ छ. त. 'न्द्रियैः से शैते म ; द. 'न्द्रियैः सेवेते
म'. ३ क. ख. छ. घ. च. शैते. ४ छ. थ. प. 'वा' नास्ति. ५ क. ख.
ड. थ. घ. यदापः. ६ क. ख. १० (२); छ. त. २३; द. १. ७ छ. त. द.
'हविः' नास्ति. ८ क. ख. छ. त. द. नाभिः । ऊर्ध्वः । वृक्षः । तत्. ९ क.
ख. छ. त. द. भवन्ति. १० क. ख. छ. त. पयन्ति । अपरा. ११ क. ख.
छ. त. द. ब्रह्मिष्या. १२ छ. त. द. अव्यर्थम्.

यदेनं तन्वतऽथत महान्तमात्मानमंतानि सूक्तान्यंता ऋचांऽनु-
प्रवदन्ति ॥ ११ ॥

- सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
 ५ जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः
 (ऋ० सं० ९ । ९६ । ५) ॥ सोमः पवते सोमः सूर्यः प्रसव-
 नाज्जनिता मतीनां प्रकाशकर्मणामादित्यरश्मीनां दिवो द्योतनक-
 र्मणामादित्यरश्मीनां पृथिव्याः प्रथनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्भ्रे-
 र्गतिकर्मणामादित्यरश्मीनां सूर्यस्य स्वकरणकर्मणामादित्यर-
 १० श्मीनामिन्द्रस्यैश्वर्यकर्मणामादित्यरश्मीनां विष्णोर्व्याप्तिकर्मणामा-
 दित्यरश्मीनामित्यधिदैवतमथाध्यात्मं सोम आत्माद्येतस्मादेवे-
 न्द्रियणां जनितेत्यर्थः । अपि वा सर्वाभिर्विभूतिभिर्विभूतत-
 आत्मेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १२ ॥

- १ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणां ।
 श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमित्येति रेभन्
 (ऋ० सं० ९ । ९६ । ६) ॥ ब्रह्मा देवानामित्येष हि ब्रह्मा
 भक्ति देवानां देवनकर्मणामादित्यरश्मीनां पदवीः कवीना-
 मित्येष हि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानानामादित्यरश्मीनामृषि-
 १० विप्राणामित्येष हि ऋषिणो भवति विप्राणां व्यापनकर्मणामा-
 दित्यरश्मीनां महिषो मृगाणामित्येष हि महान् भवति मृगाणां
 मार्गणकर्मणामादित्यरश्मीनां श्येनो गृध्राणामिति श्येन

१ छ. त. द. श्वेनः. २ क. स्व. ११ (२४); छ. त. २४ द. ४. ३ छ
 त. द. सोमः पवते जनयिता मतीना जनयिता दिवो जनयिता पृथिव्या जनयि-
 ताग्नेर्जनयिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्यःजनयितोत विष्णोः । २५ ब्रह्मा. १; क. स्व.
 पुस्तकयोः इति प्रवरणं महाराष्ट्रीयं च वर्तते. ४ छ. पुस्तकस्य प्रान्ते महाराष्ट्रीयवि-
 षरणं लिख्यते तत्र ' विभूततम आत्मगतिमाचष्टे ' इति वर्तते. ५ क. स्व. १२

आदित्यो भवति इत्यायतेर्गतिकर्मणो मृध्र आदित्यो भवति
 मृध्रयतेः स्थानकर्मणो यत एतस्मिंस्तिष्ठति स्वधितिर्वेनानामित्येष
 हि स्वयंकर्माण्यादित्यो धत्ते वनानां वननकर्मणामादित्यरश्मीनां
 सोमः पवित्रमत्येति रेभन्नित्येष हि पवित्रं रश्मीनामत्येति
 स्तूयमान एष एवैतत्सर्वमक्षरमित्यधिदैवतमथाध्यात्मं ब्रह्मा ५
 देवानामित्ययमपि ब्रह्मा भवति देवानां देवनकर्मणामिन्द्रियाणां
 पदवीः कवीनामित्ययमपि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानानामि-
 न्द्रियाणामृषिर्विप्राणामित्ययमप्यृषिणो भवति विप्राणां व्यापन-
 कर्मणामिन्द्रियाणां महिषो मृगाणामित्ययमपि महान् भवति
 मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणा इधेनो गृध्राणामिति इधेन १०
 आत्मा भवति इत्यायतेर्ज्ञानकर्मणो गृध्राणीन्द्रियाणि मृध्रयतेर्ज्ञान-
 कर्मणो यत एतस्मिंस्तिष्ठति स्वधितिर्वेनानामित्ययमपि स्वयं-
 कर्माण्यात्मनि धत्ते वनानां वननकर्मणामिन्द्रियाणां सोमः पवि-
 त्रमत्येति रेभन्नित्ययमपि पवित्रमिन्द्रियाण्यत्येति स्तूयमानोऽय-
 मेवैतत्सर्वमनुभवत्वात्मगतिमाचष्टे ॥ १३ ॥ १५

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निरऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनी-
 षाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो
 वावशानाः (ऋ० सं० ९ । ९७ । ३४) ॥ वह्निरादित्यो भवति
 स तिस्रो वाचः प्रेरयत्यृचो यजूषि सामान्यृतस्यादित्यस्य २०
 कर्माणि ब्रह्मणो मतान्येष एवैतत्सर्वमक्षरमित्यधिदैवतमथा-
 ध्यात्मं वह्निरात्मा भवति स तिस्रो वाच ईरयति प्रेरयति विद्या-
 मतिबुद्धिमतामृतस्यात्मनः कर्माणि ब्रह्मणो मतान्ययमेवैतत्सर्व-
 मनुभवत्वात्मगतिमाचष्टे ॥ १४ ॥

सोमं गावो वेनयो वावशानाः सोमं विप्रां मतिभिः पृच्छ-
 मानाः । सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः

१ क. ख. १३ (२.); छ. त. घ. २६; द. ६. २ क. ल. १४
 [६७]; छ. त. २७ द. ७.

- संनवन्ते (ऋ० सं० ९ । १७ । ३५) ॥ एत एव सोमं गावो धेनवो रश्मयो वार्षश्यमानाः कामयमाना आदित्यं यन्त्येवमेव सोमं विप्रा रश्मयो मतिभिः पृच्छमानाः कामयमाना आदित्यं यन्त्येवमेव सोमः सुतः पूयते अज्यमान एतमेवार्काश्च त्रिष्टुभश्च संनवन्ते तैत एतस्मिन्नादित्य एकं भवन्तीत्यधिदैवतमथाध्यात्ममेत एव सोमं गावो धेनव इन्द्रियाणि वार्षश्यमानानि कामयमानान्यात्मानं यन्त्येवमेव सोमं विप्रा इन्द्रियाणि मतिभिः पृच्छमानानि कामयमानान्यात्मानं यन्त्येवमेव सोमः सुतः पूयते अज्यमान इममेवात्मा च सप्त ऋषयश्च संनवन्ते तानीभान्येतस्मिन्नात्मन्येकं भवन्तीत्यात्मगतिमाचेष्टे ॥ १५ ॥

- अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मजनयन्प्रजा भुवनस्य राजा । वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः (ऋ० सं० ९ । १७ । ४०) ॥ अत्यक्रमीत्समुद्र आदित्यः परमे व्यवने वर्षकर्मणा जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यधिदैवतमथाध्यात्ममत्यक्रमीत्समुद्र आत्मा परमे व्यवने ज्ञानकर्मणा जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा सर्वस्य राजा वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुरित्यात्मगतिमाचेष्टे ॥ १६ ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । अर्धादिन्द्रे पथमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः (ऋ० सं० ९ । १७ । ४१) ॥ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवा-

१ छ. त. क. वाक्ष्य०. २ छ. त. त ए०. ३ छ. य. ध. तान्येतस्मि०. ४ क. ख. १५ (२८); छ. त. २८; द. ८. ५ क. ख. छ. द. मह०; त. बृह० म. २७. ६ क. ख. १६ [२३]; छ. त. २९; द. ९.

नामाधिपत्यमदधादिन्द्रे पत्रमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दु-
रादित्य इन्दुरात्मा ॥ १७ ॥

विधुं दद्राणं समने वहूनां युवानं सन्तं पलितो जंगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान (ऋ० सं०
१० । ५५ । ५) ॥ विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं युवानं
चन्द्रमसं पलित आदित्यो गिरति सद्यो म्रियते स दिवा समुदि-
तेत्यधिदैवतमथाध्यात्मं विधुं विधमनशीलं दद्राणं दमनशीलं
युवानं महान्तं पलित आत्मा गिरति रात्रौ म्रियते रात्रिः
समुदितेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १८ ॥

१०

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजे पलित्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः
(ऋ० सं० १ । १६४ । १५) ॥ सहजातानां पण्णामृषीणामादित्यैः
सप्तमस्तेषामिष्टानि वा कान्तानि वा क्रान्तानि वा गतानि वा
मतानि वा नतानि वाऽऽः सह समादन्त यत्रतानि सप्तऋषीणां
ज्योतींषि तेभ्यः पर आदित्यस्तान्येतस्मिन्नेकं भवन्तीत्यधिदैव-
तमथाध्यात्मं सहजातानां पण्णामिन्द्रियाणादात्मा सप्तमस्तेषामि-
ष्टानि वा कान्तानि वा क्रान्तानि वा गतानि वा मतानि वा
नतानि वान्नेन सह समादन्ते यत्रेमानि सप्तऋषीणानीन्द्रिया-
ण्येभ्यः पर आत्मा तान्येतस्मिन्नेकं भवन्तीत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ १९ ॥

१५

२०

१ क. ख. १७ (००); छ. त. ३० द. ११ २ क. ख. १८ (३१) छ. त.
३१ द. ११. ३ क. ख. छ. त. पलित्यं ४ ड थ. घ. 'दिन्यरश्मयस्तेषां'.
५ छ. थ. यान्यं; घ. तान्येतस्मिं. ६ क. ख. १९ (३२) । इति नेहने
त्रयोदशस्थैव द्वितीयः पादः समाप्तः । अथ तृतीयपादः । स्त्रियः; घ. ३० ॥
द्वितीयः पादः ॥ स्त्रियः; त. ३२ त्रयोदशोऽध्याये द्वितीयः पादः । स्त्रियः; द.
३५ । इति त्रयोदशाध्यायस्य तृतीयः पादः स्त्रियः.

२८

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षणाञ्च विचेतदन्धः ।
 कविर्यः पुत्रः स इमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितृष्पिासत्
 (ऋ० सं० १।१६४।१६) ॥ स्त्रिय एवैताः शब्दस्पर्शरूपरसग-
 न्धहारिण्यस्ता अमुं पुंशब्देनै निराहारः प्राण इति पश्यन् कष्टान्
 ५ विजानात्यन्धः कविर्यः पुत्रः स इमा जानाति यः स इमा जा-
 नाति स पितृष्पितासदित्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २० ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणे ।
 ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः (ऋ०
 १० सं० १।१६४।३६) ॥ सप्तैतानादित्यरश्मीनयमादित्यो गिरति
 मध्यस्थानोर्ध्वशब्दो यान्यस्मिंस्तिष्ठन्ति तानि धीतिभिश्च मनसा
 च विपर्ययन्ति परिभुवः परिभवन्ति सर्वाणि कर्माणि वर्षकर्माणे-
 त्यधिदैवतमथाध्यात्मं सप्तैमानीन्द्रियाण्ययमात्मा गिरति मध्य-
 स्थानोर्ध्वशब्दो यान्यस्मिंस्तिष्ठन्ति तानि धीतिभिश्च मनसा
 १५ च विपर्ययन्ति परिभुवः परिभवन्ति सर्वाणीन्द्रियाणि ज्ञानकर्म-
 णेत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २१ ॥

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
 यैदा मार्गन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अंशुवे भागमस्याः (ऋ०
 २० सं० १।१६४।३७) ॥ न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः

१ ऋ. थ. घ. एवैति ताः २ ऋ. थ. घ. 'शब्दे नि'. ३ छ. त. पश्यदक्षणाञ्च
 विजा°. ४ छ. त. 'ष्पिता भवत्यात्म'. ५ क. ख. २० (३३) ॥ २ ॥; छ. त.
 ३३; द. १. ६ ऋ. थ. घ. यत एतस्मिंस्तिष्ठति तानि°; छ. एतै एवभिस्मि.
 ७ ऋ. थ. घ. 'ष्ठति ता'. ८ छ. त. परिभूणि परि'. ९ छ. त. 'वाणि
 कर्माणि ज्ञा'. १० क. ख. २१ (३४) ॥ २ ॥; छ. त. १४; द. २. ११ ऋ.
 २६ थ. घ. 'यदागमन००० चरामि' नास्ति .

संनद्धो मनसा चरामि न हि ज्ञानन् पुष्टिः पुत्रः परिवेदयन्तेऽयने
मादित्योऽयमात्मा ॥ २२ ॥

अपाङ्क प्राङ्ङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

ता शश्वन्ता विपूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्व्युर्न नि चिक्व्युर्न- ५
न्यम् (ऋ० सं० १ । १६४ । ३८) ॥ अपौञ्चयति प्राञ्चयति ।
स्वधया गृभीतो मर्त्य आदित्यो मर्त्येन चन्द्रमसा सह तौ शश्व-
द्गामिनौ विश्वगामिनौ बहुगामिनौ वा पश्यत्यादित्यं न चन्द्रमस-
मित्यधिदैवतमथाध्यात्ममपौञ्चयति प्राञ्चयति स्वधया गृभीतोऽ-
मर्त्य आत्मा मर्त्येन मनसा सह तौ शश्वद्गामिनौ विश्वगामिनौ १०
बहुगामिनौ वा पश्यत्यात्मानं न मन इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥२३॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेपनृम्णः । सद्यो
जज्ञानो निरिणाति शत्रून्नु यं विश्वे मदन्त्यूमाः (ऋ० सं० १० ।
१२० । १) ॥ तद्भवति भूतेषु भुवनेषु ज्येष्ठमादित्यं यतो जज्ञ १५
उग्रस्त्वेपनृम्णो दीप्तिनृम्णः सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूनि
निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वानुमदन्ति यं विश्व ऊमा
इत्यधिदैवतमथाध्यात्मं तद्भवति भूतेषु भुवनेषु ज्येष्ठमव्यक्तं यतो
जायत उग्रस्त्वेपनृम्णो ज्ञाननृम्णः सद्यो जज्ञानो निरिणाति
शत्रूनि निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वानुमदन्ति यं सर्व २०
ऊमा इत्यात्मगतिमाचष्टे ॥ २४ ॥

१ ङ. थ. घ. द. °हि विजानान्बुद्धिमतः पुत्रः° (द. °विजानान् ' इत्यत्र
' जजानान् '). २ क. ख. २२ (३५) ॥ ३ ॥; छ. त. ३६; द. ३. ३ छ.
अपाङ्क चैति प्राङ् चैति स्व°; द. अपाङ्क चयति प्राङ् चयति स्व°. ४ ङ. थ. घ.
'न' नास्ति. ५ क. ख. २३ [३६] ॥ ४ ॥; छ. त. ३६; द. ४. ६ ङ. थ.
घ. °निति रिणा°. ७ ङ. थ. घ. तपो. ८ क. ख. २४ [३७] ॥ ५ ॥ २५
छ. त. ३७; द. ५.

को अद्य युक्ते धुरि गा ऋतस्य श्मिर्वतो भामिने
 दुर्हगायून् । आसन्निषून्हन्स्वसां मयोभून्य षपां भृत्यामृणवत्स
 जीगत् (ऋ० सं० १ । ८४ । १६) ॥ क आदित्यो धुरि
 गा युक्ते रश्मीन् कर्भवतो भानुमतो दुराधर्षानमूनसुनवन्ति। षनि-
 ५ पुणवन्ति मयोभूनि सुखभनि य इमं संभृतं वेद कथं स जीव-
 तीत्यधिदैवतमथाध्यात्मं क आत्मा धुरि गा युक्ते इन्द्रियणि कर्म-
 वन्ति भानुमन्ति दुराधर्षानमूनसुनवन्तीषुनिपुणवन्ति मयोभूनि
 य इमानि संभृतानि वेद चिरं स जीवतीत्यात्मगतिमाचष्टे ॥२५॥

१० क ईषते तुष्यते को विभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अग्निं ।
 कस्तोकाय क इमांयोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वेरे को जनाय (ऋ०
 सं० १ । ८४ । १७) ॥ क एव गच्छति को ददाति को
 विभेति को मंसते सन्तमिन्द्रं कस्तोकायापत्याय महते च नो
 रणाय रमणीयाय दर्शनीयाय ॥ २६ ॥

१५

को अग्निमीष्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
 कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसन्ते वीतिहोत्रः सुदेवः
 (ऋ० सं० १ । ८४ । १८) ॥ क आदित्यं पूजयति हविषा
 च घृतेन च स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिरिति कस्मै देवा आव-
 १० हानाशु होमार्थान् को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः कल्याणदेव इत्य-
 धिदैवतमथाध्यात्मं क आत्मानं पूजयति हविषा च घृतेन च
 स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिरिति कस्मै देवा आवहानाशु होमा-

१ व. °धर्षान्यसू° । २ क. ख. ड. थ. घ. द. °सून्सु° । ३ ड. थ. घ.
 कर्मवतो भानुमतो । ४ ड. थ. घ. द. इमं संभृतं वेद चिरंजी° । ५ क. ख. २५
 (३८) ॥ ६ ॥; छ. त. ३८; व. ६. ६ छ. इव. ७ छ. त. °को ददाति को
 वषति को वि° ८ क. ख. २६ (३९) ॥ ७ ॥; छ. त. ३९; व. ७. ९ ड.

२७ थ. घ. पूय° ।

वान् को मंसते वीतिहोत्रः सुप्रज्ञः कस्याणमज्ञ इत्यात्मगतिमा-
॥ २७ ॥

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघ-
वन्नस्ति मर्दितेन्द्र श्रवीमि ते पचः (ऋ० सं १ । ८४ । १९) ॥ ५
त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यं न त्वदन्योऽस्ति मघवन् पाता
वा पालयिता वा जेता वा कुस्वयिता वेन्द्र श्रवीमि ते पचः
स्तुतियुक्तम् ॥ २८ ॥

हंसः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसद्गोता वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् । नृष- १०
द्वरसद्वतसद्रूपोमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् (ऋ० सं०
४ । ४० । ५) ॥ हंस इति हंसाः सूर्यरश्मयः परमात्मा परं ज्योतिः पृ-
थिवी व्योम्नेति व्याप्तं सर्वं व्याप्तं वननकर्मणानभ्यासेनादित्यमण्डले-
नेति त्ययतीति लोको त्ययतीति हंसयन्त्ययतीति हंसाः परमहंसाः
परमात्मा सूर्यरश्मिभिः प्रभूत गर्भीर वसतीति त्रिभिर्वसतीति १५
वा रश्मिर्वसतीति वा वद्विर्वसतीति वा सुवर्णरेताः पूषा गर्भा-
रिभेति रिभन्ता वनकुटिलानि कुटन्ता रिभन्तान्तीरक्षा चरत्पथा-
न्तीरक्षा चरदिति दिवि भुवि गमनं वा सुभानुः सुप्रभूतो होता-
दित्यस्य गता भवन्त्यतिथिर्दुरोणसत्सर्वे दुरोणसद्रवं सर्वे रसा

१ क. ख. २७ (४०) ॥ ८ ॥; छ. त. ५०; द. ८. २ क. ख. छ. त. २०
वच इति स्तुतिमयुं. ३ क. ख. ८ (४१) ॥ ९ ॥ इति निरुक्ते त्रयोदशाध्या-
यस्यैव तृतीयः पादः ॥ अथ चतुर्थः पादः ॥ हंसः; छ. ४१ । तृतीयः पादः ।
द्वा सुपर्णा; त. ४१ । त्रयोदशोऽध्याये तृतीयः पादः । द्वा सुपर्णा; द. ९॥ छ. ॥
द्वा सुपर्णा घ. ४१. ५ छ. त. द. हतेति हं. ५ छ. त. 'थिव्योम्ने'. ६ छ. त.
'कर्मण्य'; द. कर्मण्य'. ७ छ. त. त्यजतीति लोकस्यजनी हंसस्यजतीति २५
हंसाः परमा. ८ छ. त. 'भीत वस'. ९ छ. त. वा वद्विर्वसतीति वा रश्मिर्वसतीति
वा सु. १० छ. त. द. पुरुषा गर्भाभिरिति रिफि (छ. त. 'रिफि; द. रिफिता)
वनकुटिलानि. ११ छ. त. द. रेफन्तान्तीरिक्षं चरेदथेत्यन्तीरिक्षं चरतीति दिवि
भूमिर्ग (दिविभूमिर्ग) मनं वा स्वभानुः सुप्रभूतो (द. सूना) होता होतादि. १२ छ.
त. द. 'रोणसद् द्रवन्ति सर्वे रसा (द. रसाश्चिकीर्षयन्ति रश्मिभि) चिकीर्षयन्तीति.
वा वचं (द. नमत्) भवतीत्यम्.

विकर्षयति रश्मिर्विकर्षयति बह्विर्विकर्षयति वननं भवत्यश्व-
गोजा अद्रिगोजा धरित्रिगोजाः सर्वे गोजा ऋतजा बहुशब्दा
भवन्ति निगमो निगमव्यति भवत्येष निर्वचनाय ॥ २९ ॥

- ५ दा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति (ऋ०
सं० १ । १६४ । २०) ॥ द्वौ द्वौ प्रतिष्ठितौ सुकृतौ धर्मकर्तारौ
दुष्कृतं पापं परिसारकमित्याचक्षते सुपर्णा सयुजा सखायेत्यात्मौनं
परमात्मानं प्रत्युत्तिष्ठति शरीर एव तज्जायते वृक्षं वृक्षं शरीरं
१० वृक्षं पक्षौ प्रतिष्ठापयति तयोरन्यद्भुक्त्वाभिमनश्नन्नन्यो सारूपतां
सलोकतामश्नुते य एवं वेदान्मनश्नन्नन्यो अभिचाकशीतीत्यात्म-
गतिमाचष्टे ॥ ३० ॥

- औ याहीन्द्र पथिभिरीळितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुपस्व ।
१५ तृप्तां जहुर्मातुर्लस्येव योपा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव (खैलि-
कसूक्तं १४ । ६) ॥ आगमिष्यन्ति शक्रो देवतास्तास्त्रिभिस्ती-
र्थेभिः शक्रप्रतरैरीळितेभिस्त्रिभिस्तीर्थैर्यज्ञमिमं नो यज्ञभागमशीषो-
मभागाविन्द्रो जुपस्व तृप्तामेवं मातुर्लयोगकन्याभागं सर्तृकेव सा
या देवतास्तास्तत्स्थाने शक्रं निदर्शनम् ॥ ३१ ॥

२०

- १ छ. त. धनगोजाः सर्वगोजातिर्कच इतिजो बहुजो शब्दो (त. °गोजा
ऋतजा इति गोजाजो बहुशब्दो; द. °इति जोबहुशब्दो;) भवति निग°. २ छ.
त. द. निगमव्योभवत्पिनिर्व°. ३ क. ख. २९ (४२) ॥ १ ॥ छ. ४४;
त. १ । ४४; द. ३. ४ छ. त. °रिचार°. ५ क. ख. छ. थ. ध. °त्मानं दुरात्मानं
पर°. ६ क. ख. छ. थ. ध. रक्ष. ७ क. ख. छ. थ. घ. वृक्षे. ८ छ. त. °न्य-
द्व्युक्त्वान्यमनश्नुं; द. °न्यद्व्युक्त्वमत्यनश्नुं. ९ छ. थ. ध. °नन्यं स°. १० छ.
त. द. 'अलं' नास्ति. ११ छ. त. द. 'इति' नास्ति. १२ क. ख. ३०
(४३) ॥ २ ॥ ; छ. ४२; त; ४३. द. १. १३ छ. त. द. अयं खण्डो नास्ति.
२९ १४ क. ख. घ. °तुल्ये°. १५ छ. °तुल्यो°. १६ क. ख. ३१ (४४) ॥ ३ ॥

विप्रं विप्र्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीभिर्हवामहे
 (ऋ० सं० ८ । ११ । ६) ॥ विप्रं विप्र्रासोऽवसे विदुर्वेदै
 विन्दतेवेदितव्यं विमलंशरीरेण वायुना विप्रस्तु हृत्^३निलयस्थि-
 तमकारसंहितमुकारं पूर्येन्मकारनिलयं गतं विप्रं प्राणेषु विन्दु-
 सिक्तं विकसितं बद्धिजः प्रभं कनकं पद्मेण मृतशरीरममृतजात- ५
 स्थितममृतवाचामृतमुखे वदन्ति । अग्निं गीभिर्हवामहे । अग्निं संबो-
 धयेदग्निः सर्वा देवता इति तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनायाः ३२ ॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः । स नः
 पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः (ऋ० सं० १०
 १ । ९९ । १) ॥ जातवेदस इति जातमिदं सर्वं सचराचरं
 स्थित्युत्पत्तिप्रलयन्यायेनाच्छीय सुनवाम सोममिति प्रसवेनाभिष-
 षाय सोमं राजानममृतमरातीयतो यज्ञार्थमिति स्मो निश्चये निदहाति
 दहाति भस्मीकरोति सोमो दददित्यर्थः । स नः पर्षदति दुर्गाणि
 दुर्गमनानि स्थानानि नावेव सिन्धुं यथा कश्चित्कर्णधारो नावेवं १५
 सिन्धोः स्यन्देनान्नादीं जलदुर्गा महाकूलां तारयति दुरितात्यग्नि-
 रिति दुरितानि तारयति तस्यैषापरा भवति ॥ ३३ ॥

१ छ. त. द. 'वेद' नास्ति. २ छ. त. द. विमलं शरीरं वा°. ३ छ. त. द.
 'स्तु पद्मनिलयं हृदिस्थितमकारसंहारितमुकारं'. ४ छ. त. पूर्यन्म°; द. पूजयन्म°. २०
 ५ छ. त. द. गमयति. ६ छ. त. द. विन्दुः सिक्तं. ७ छ. त. विकसितं. ८ छ.
 त. द. प्रभं. ९ छ. द. कनकं परमेश्वरममृत°; त. कनकं पद्मेण मृतं कं परमेश्वरम.
 १० छ. त. 'वाचा अमृत [द. दमृत] मुखा व°. ११ क. ख. ३२ [४५] ॥४॥; छ.
 ४३; त. ४४; द. २. १२ छ. त. द. 'येन जातवेदस्या [छ. स्यां] स्या; द. स्यां]
 इदं [द. वैवं] जातवेसेर्चाय सुन°. १३ छ. त. द. प्रसवायाभिष°. १४ छ. त. द.
 'र्थमानि स्मो निदहाति निश्चयेन दहाति'. १५ छ. त. द. 'ग्निं विश्वाणि दुर्गमानि
 स्थानानि°. १६ छ. त. द. 'न्धुं नावा सिन्धुं यथा वः कश्चि'. १७ छ. त. द.
 नावा सिन्धुः [द. सिन्धोः] स्यन्दमामानां नदी°. १८ छ. घ. 'न्दनां नदीं.
 १९ क. ख. ३३(४६) ॥ ५ ॥; छ. घ. ४६; त. ५।४६ द. ५. १९

इदं तेऽन्याभिरसमन्तमद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रवहन्ति नद्यः ।
सर्पो जार्णामिव त्वचं जहानि पापं साशरस्कोऽभ्युत्थ्य ॥ इदं-
तेऽन्याभिरसमानाभिर्याः काश्च सिन्धुं पति कृत्वा नद्यो वहन्ति
सर्पो जीर्णामिव सर्पस्त्वचं त्यजति पापं त्यजन्त्याप आमोतेस्ता
५ स्त्रामेषा भवति ॥ ३४ ॥

इयंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । सर्वारकमिव बन्ध-
नान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् (ऋ० सं० ७ । ५९ । १२) ॥ इय-
म्बको रुद्रस्तं इयम्बकं यजामहे सुगन्धिं सुगन्धिं सुष्टुगन्धिं पुष्टि-
१० वर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः
सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषामितरेषापरा भवति ॥ ३५ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताच्छातमुं वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी संत्रिता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः (ऋ०
१५ सं० १० । १६ । ४) ॥ शतं जीव शरदो वर्धमान इत्यपि निगमो
भवति शतमिति शतं दीर्घमायुः कृत एता वर्धयन्ति शतवर्धनमेव
शतात्मानं भवति शतमनन्तं भवति शतैश्वर्यं भवति शतमिति
शतं दीर्घमायुः ॥ ३६ ॥

९० मा ते राधांसि मा तं ऊतयो वसांस्मान्कदा चना दभन् । विश्वा
च न उपमिधीह मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ (ऋ० सं० १
८४ । २०) ॥ मा च ते धनानि मा च ते कदा च नः सरिषुः

१ छ त. द. अयं खण्डो नास्ति. २ क. ख. ३५ [२५] ॥ ६ ॥ ३ छ.
त. द. सुगन्धिं पुष्टिं. ४ छ. त. द. 'सुगन्धिं सकृदेव'. ५ छ. त. द. 'फलं'
नास्ति. ६ क. ख. ३५ [४५] ॥ ७ ॥ छ. ४५; त. ४ । ४५; द. ४. ७ छ.
त. 'स्तो मां व'. ८ छ. त. द. 'एवं' नास्ति. ९ छ. त. द. शतमात्मानं.
१० छ. त. द. 'शत०० भवति' नास्ति. ११ क. ख. ३६ [४९] ॥ ८ ॥ छ.
१२ ४५; त. ६ । ४५; द. ६. १२ क. ख. छ. थ. घ. धामानि. १३ छ. 'बनस'.

सर्षाणि प्रज्ञानान्युपनामय मनुष्यहितोऽयमादित्योऽयमात्मायैतद-
नुभवदत्तैयैतं महान्तमान्मानमेपगर्णः प्रवदति वैश्वकर्मणे देवानां
नु बयं जाना नारदासीनो सदासीत्तदानीमिति च सैषात्मजिज्ञा-
सा तेषा सर्वभू जिज्ञासा ब्रह्मणः सांश्रिष्टं सरूपता सलोकतां गम-
यति य एवं वेद नमो ब्रह्मणे नमो महते भूर्नोय नमः पारस्कराय
नमो यास्काय ब्रह्मशुक्लमसीय ब्रह्म शुक्लमसीय ॥ ३७ ॥

* व्याख्या १ तमग्निरस्मिजन्मनापश्यंगोपामाकाशगुणस्त-
परिवर्तमानंसयर्थं नुरुध्यतेऽष्टोत्तरमथयेहिसामाश्रित्याथयेहिसामुत्सृ-
ज्यनतंहसोर्धर्मःसोर्धर्मःपवतेब्रह्मादवानांतिस्त्रिवाचरयतिसोमंगी-
बोऽक्रान्महत्तसोमोविधुंद्राणंसाकंजानांस्त्रियःसतीःसप्तार्धगर्भा-
नविजानाम्यपाङ्कतितोदासकोअर्धकुक्केकश्चित्कोअग्निमिष्टि-
र्यभङ्गइतिःशुचिपद्द्वानुपर्णयाहीन्द्रविभ्रविभ्रोसोजातवेदसइदते-
न्याभिस्तुयैकंशतंजीवमोतराथांसीति सप्तत्रिंशत् ।

इति निरुक्ते चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इति निरुक्ते उत्तरषट्कः समाप्तः ।

इति निरुक्तं समाप्तम् ।

* क. ख. थ. घ. अस्याः शृङ्खलाया आदौ त्रयोदशाध्यायस्य शृङ्खलाया
लिख्यते; छ त. द. शृङ्खलानास्ति. १ क. ख. घ. व्याख्यातं देवतमाग्निं°.

१ क. ख. छ. य. घ. 'न्युपमानाय. २ क. ख. छ. थ. घ. 'पवदन्त्यथे'. १०
३ छ. साधि. ४ छ. 'हते देवाय नमो यास्काय'. ५ क. ख. ३७ (५८) ॥ १ ॥ छ.
४८; त. ७।४८; द. ७. ६ क. ख. थ. घ. पञ्चाशत्. ७ छ. इति नैरुक्त
उत्तरषट्कः; थ. इति निरुक्ते उत्तरषट्कः समाप्तः । इति निरुक्ते चतुर्दशोऽध्या-
यः । घ. इति नैरुक्ते उत्तरषट्के सप्तमेऽध्यायः । इत्युत्तरषट्कः समाप्तः । छ.
इति नैरुक्ते त्रयोदशोऽध्यायः । द. इति नैरुक्ते त्रयोदशाध्यायस्य पञ्चमः पाठः ।
त्रयोदशाध्यायः समाप्तः ।

उत्तरषट्कम् । सप्तमोऽध्यायः ।

पत्रं
६०९

पङ्क्तिः

१४ अस्य ऐकपदिकप्रकरणस्य अनु अनन्तरम् ।

१६ गुणपदानि = येषु क्रिया गुणभूता लक्ष्यते तानि ।

१६ लक्षणोद्देशतः = लक्षणेन लक्षणशास्त्रेण उद्देशेन यत्प्रयोजनं मनसि वर्तते तेन । लक्षणशास्त्रं व्याकरणशास्त्रम् ।

१६ तानि लक्षणोद्देशतो व्याख्यातानि इत्यन्वयः ।

१७ संविज्ञातपदानि = रूढपदानि । येषु क्रिया न लक्ष्यते तानि संविज्ञातपदस्य व्याख्यानं दुर्गेण ६९-७१ पत्रेषु क्रियते ।

२२-२३ अत्र क्रमः । २३-२४ अत्र हेतुः ।

६१०

१ सतत्त्वम् = तत्त्वं लक्षणम् । किं सतत्त्वं यस्य । अस्य दैवतप्रकरणस्य किं लक्षणम् ।

२-३ प्राधान्येन न तु गौणत्वेन स्तुतिर्यासाम् । तासां देवतानां यानि नामानि तद्दैवतम् । नेदं समीचीनं वाक्यम् । यानि नामानि तानि दैवतम् । एवं वाक्यं स्यात् । किंतु केवलानि नामानि न दैवतं प्रकरणम् । यत्र प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां नामानि व्युत्पाद्यन्ते व्याख्यायन्ते वा तद्दैवतं प्रकरणम् । अयं वाक्यस्यार्थः ।

१० निर्गिक्ते = शोधिते निश्चिते । समाप्ते इति यावत् । यथाप्रकरणोपन्यासेन = यथाप्रकरणोपन्यासम् । प्रकरणानाम् उपन्यासः क्रमः । तम् अनतिक्रम्य ।

११ सामान्येन विशेषेण स्वालक्षण्येन सतत्त्वेन च उपपत्तयः । सामान्येन उपपत्तिः = देवतायाः वर्गिकरणम् । तथा विशेषेण । स्वलक्षणमेव स्वालक्षण्यम् । स्वस्मिन्नान्नि एव वर्तमानं लक्षणं व्युत्पत्तिः ।

१४-१९ देवतोपपरीक्षा = तदाभिधानव्युत्पत्तितत्स्तुत्युदाहरणतान्निर्वचनानि । तस्या देवताया अभिधानस्य व्युत्पत्तिः । तस्याः स्तुतेः उदाहरणम् । तस्य उदाहरणस्य निर्वचनम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६१०

१६ मन्त्रे अधिकृतं दैवतं तस्य लक्षणम् । मन्त्रे अधिकृतं दैवतं केन लक्षणेन ज्ञातव्यम् ।

१७ अवधिधारयिषा = अवधारयितुं निश्चेतुम् इच्छा ।

१८-१९ नेदं तमीचीनं वाक्यम् । सकामः अन्वा विशिष्टकामप्रयुक्तः ऋषिः आर्थपत्यामिच्छन् यस्यां देवतायां स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्देवतः स मन्त्रो भवति । यत्कामः इत्यत्र 'यत्' अस्य न कोऽपि आकाङ्क्षानुरक्तः शब्दो वर्तते ।

१९ अर्थः एव वस्तुः । यत् अर्थवस्तु = यद् अर्थम् यत् वस्तु वा ।

६११

१ ' मन्त्रे देवतालक्षणम् ' सर्वेषु पुस्तकेभ्यमेव पाठः । ' मन्त्र-देवतालक्षणम् ' इत्यवश्यम् ।

३ ' आर्थपत्यामिच्छन् ' इत्यस्य द्वितीयं विवरणं न साधु ।

४ ' येन मन्त्रेण ' इत्यत्र 'येन' नावश्यम् ।

५-६ ' नाम्ना बन्धुभिः कर्मणा रूपेण ' इति ह्युक्तम् (निरुक्तं ३९६।१) ; कुत्रोक्तम् । वाजसनेयसंहितामहीधरभाष्ये (९।३४) ' स्तुतिः स्वनाम्ना कर्मणा वाऽथ रूपैः ' (कात्या० ९।८।२२) इत्युक्तम् । किंतु कास्वायनश्रौतसूत्रेषु नेदमुपलभ्यते ।

७ अपिहितः = गूढः ।

आदिष्टदेवतेषु मन्त्रेषु किमर्था देवतोपपरीक्षः । कामेन प्रयुक्तः आर्थपत्यामिच्छन् ऋषिः तं कामं दातुं या समर्था देवता तद्देवताकमेव मन्त्रं प्रयुञ्जीत । सक्त्रम् ऋषिः आर्थपत्यामिच्छन् यां देवताम् आदिष्टदेवतेन मन्त्रेण स्तौति तद्देवतः स मन्त्रो भवति । अत्र देवता नान्वेष्या । सा मन्त्रे वर्तत एव । केवलम् इष्टदेवतामन्त्रः अन्वेष्यः प्रयोज्यश्च ।

६१२

९ ' तद्यथा ' इदम् ' एतानि ' इत्यादितः भिन्नम् । तद्यथा । एतान्यु० एवं मुद्रितव्यमासीत् ।

११ सूर्यस्तुता यशस्कामो यजेत (आश्व० श्रौ० ९ । ८) ।

१३ पर्वतानां = गिरिणाम् ।

टिप्पणी ।

पत्रं
६१२

पङ्क्तिः

१४. मेधिराणां = मेधावतां बुद्धिमताम् ।

१७ ' ईशे ' इदम् उक्तमपुरुषस्य एकवचनम् । किंत्वत्र तत् ' ईष्टे ' इत्यर्थे ।

२० अनूषत = अभिष्टुत । ' अनूषत ' नेदं लोटि किंतु लेटि लङि च रूपम् ।

६१३

२०. पारिसर्गासः = पारिसृताः । पारिसृष्टाः । आशवः = व्याप्नुवन्तः ।

२२-२३. स्मेमः इन्द्रात् ऋते सवनस्थानानां किञ्चिदपि धाम स्थानं प्रति न पवते । इन्द्रमेव पवते गच्छति । व्याप्नोतीत्यर्थः ।

६१४

१० अस्याः ऋचो मूलं नोपलब्धम् ।

६१५

४ देवानां जामयः स्वसृभूताः इन्द्रमातरः नाम ऋषिकाः ।

६१६

१-२ अन्या देवता देवतान्तरम् । ' अन्यत् ' पदं व्यर्थम् ।

१० कण्वाः = मेधाविन ऋत्विजः । इदं विवरणं सायणभाष्या-
द्वहीतं स्यात् ।

१६ ' हतसर्वाभिन्नः ' इति समीचीनम् ।

२० युष्मदः गुणरूपेण गौणत्वेन प्रयोगः येषु । क्रिया वाक्ये मुख्या । कर्ता गौणः ।

२०-२१ ' देवन्तान्तराणि ' अत्र ' अन्तर ' शब्दो व्यर्थः । देवतानि इत्यर्थः ।

२१ परोक्षकृतः अभिसंबन्धो येषाम् ।

६१७

८ ' आदि ' इत्यस्यानन्तरं विरामो वर्तते ।

१० ' एवम् आदिब्रह्म ' एवं पठितव्यम् ।

१० आत्मस्तुतिप्रयुक्तम् = ' अहं भुवम् ' इत्यादिना तथा आत्मा स्तूयते । आत्मनः स्तुतिः तथा प्रयुक्तं प्रेरितम् आदिब्रह्म ।

६१८

१. प्रत्युपकारः = उपकारनिर्यातनम् । किमर्थमीदृशम् उपकार-
निर्यातनम् । यस्मात् यजमानैः इन्द्राय सोमः अतितरां दत्तः ।
प्रत्युपकारोऽपि अतितरां भवितुमर्हति । ' अथैवमतितरां प्रत्यु-
पकाराभिप्रायः किमर्थः । ब्रूते ' एवं शुद्धं वाक्यम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६१८

१ ऋम्भणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्मानी ब्रह्मविदुषी सूक्तेनानेनाऽऽत्मानमस्तौत् । तस्मात् एतस्मूक्तं वागाम्भृणीयम् । वागाम्भृणीये वागाम्भृणिये । इति द्वे अपि रूपे ।

८ स्तुतिरूपेण = अहं वाक् स्तुतिरूपं गृह्णामि । तेनाहं सर्वैर्देवैः सहभूता सर्वं भवामि । अहमेव सर्वा देवताः । ' स्तुतिरूपेण ' इत्यस्य ' चरामि ' इत्यनेनान्वयः साधीयान् । ग. च. ज. पुस्तकेषु तस्य ' बिभर्मि ' इत्यनेनान्वयः कृतः ।

६१८

स्तुतिरूपेण हविषा = ८ स्तुतिरेव हविः तेन । स्तुत्या इत्यर्थः । मत्पूर्वकं = अहं पूर्वा यस्मिन् । स्तुतिः पूर्वा । हविः पश्चात् । ' स्तुतिरूपेण हविषा बिभर्मि ' अत्र ' स्तुतिरूपेण ' इदं ' स्तुतिपूर्वकेण ' इत्यस्यापभ्रंशः स्यात् ।

६१९

१ ' शाखान्तरेषु ' इदं प्रक्षिप्तं भवेत् । नास्यात्र किमपि प्रयोजनम् । भूयिष्ठाः = बहवः ।

२ अल्पशः = काचित् काचित् । ' ऋतशाखायाम् आध्यात्मिक्य ऋचः अल्पाः । शाखान्तरेषु बहवः ' एवं मूलवृत्तिः स्यात् ।

५-६ ' आशीर्योज्या ' इति याज्ञिकमतम् ।

१० कुत्रेदं प्रतिपादितम् ।

११ मधुपर्कग्रहणानन्तरं जामाता ' मुचक्षा अहं० ' इति मन्त्रेण यथालिङ्गमङ्गानि स्पृशति = (मान० गृ० १ । ९ । २९) । क्षुत्त्वा जृम्भित्वाऽमनोज्ञं दृष्ट्वा पापकं गन्धमाघ्रायाक्षिस्पन्दने कर्णध्वनने च मुचक्षा इति कर्णाभ्यां मयि दक्षकतू इति जपेत् (आश्र० गृ० ३ । ६) ।

१४ कर्मकरणेषु = मन्त्राः कर्मणां करणानि साधनानि । न हि मन्त्रादृते कर्म ।

१४ इतरयोः वेदयोः = ऋतमामवेदयोः । ' इष्टाशीरेव ' अत्र ' एव ' = अपि ।

१५-१६ देवतेष्टे = देवता = ईष्टे । ' इष्टा ' इति पाठान्तरं (२९) न साधु

पत्रं

पङ्क्तिः

६१९

१८ अभियुक्तः = दूषितः । (अभियोगः = दोषारोपः) ।

२३ यातुधानः = राक्षसः । पारसीकभाषायां जादु = यातुः ।
नार्सभाषायां जोदुन् = राक्षसः ।

६२०

१ आचिख्यासा = अख्यातुमिच्छा ।

७ व्यपदेशः = अभिधानं यदितरवस्तुभ्यो विशिष्टवस्तुनो भिन्नतां
दर्शयेत् ।

१२ अवातं = वातस्य अभावः । अव्ययीभावः । तत् ब्रह्म । तदा
ब्रह्म कस्यापि कारणं न भवति । कार्याणां कारणानां चाभा-
वात् । तदा वातनामकं कार्यं नास्सीत् । ब्रह्म वातं नोदपादयत्
तदा । तेन अननाय श्वासोच्छ्वासक्रियायै वातो नास्वश्यकः ।
वातं विनैव ब्रह्म आनीत् ।

१५-१६ स्वधया = अन्नेन अन्नशक्त्या ।

१७-१८ तस्माद्भान्यन्न = तस्मात् + हं + अन्यत् + न ।

१९ व्यपदेशुम् = इदं ब्रह्म विशिष्टं वस्तु इति अभिधातुं नाम्ना
दर्शयितुम् ।

२३-२४ सर्वत्र तम एव आसीत् । तमसो भिन्नं किञ्चिदपि नास्सीत् ।

२४ अप्रकेतम् = अप्रज्ञातम् । प्रकेतं = प्रज्ञातं = विशिष्टं ज्ञानम् ।

६२१

२ प्रधानं = जगतः उपादानम् उपादानकारणम् ।

३ पारमर्षं = परमः ऋषिः कपिलः तेन कृतं रचितम् ।

‘पारमार्थं’ (२१) इदं पाठान्तस्म । परमः अर्थः प्रधानम् । तत्सं-
बन्धि सूत्रम् ।

४ सलिले = सं = बिलम् । स = सत् । लिलं = लीनम् ।

अस्य शब्दस्य पञ्चैव प्रयोगा ऋग्वेदे । एकस्मिन् स्थले सलिल-
नामा कश्चिद्देवः । अन्येषु स्थलेषु सर्गात् प्राक् अविशिष्टं जग-
द्वीजम् । अत्रापि स एवार्थ इति भाति । विशिष्टोऽर्थो ज्ञातु-
मशक्यः ।

पत्रं

६२१

पङ्क्तिः

१ तुच्छयेन = सूक्ष्मीभूतेन कर्मणा । तत् कर्म पटमण्डपसदृशम् । पटानां (कृतः) मण्डपः । तुच्छयेन = त्याज्येन अनिष्टेन (तमसा) ।

१ आः (६२० । २१) = आसीत् (सायणः) ।

६ आभु (६२० । २१) = आभवतीति (सायणः) । आसमन्तात् भूतं प्रसृतम् । यत् आभु तुच्छयेन अपिहितम् आसीत् ।

७ तपसः = तपोनामा देवः । तस्य महत्त्वेन । अथवा तपो-रूपकर्मणो महत्त्वेन ।

१६ सुदेवः = सुभगो राजा । सौभाग्यम् उर्वश्या लाभेन । प्रप-तेत् = ऊर्ध्वं गच्छेत् । अनावृत् = अनावर्तमानः पृथिवीलोकं प्रति । परावतो नाम त्रयः स्वर्गलोकाः । तासु परमा उच्चतमा गन्तवै = गन्तुम् । परावतं परमां गन्तवै = पतितश्च दूरा-द्दूरतरं गच्छेत् (दुर्गः) । अयमर्थः 'परावच्छब्दस्याज्ञानात्प्रा-र्मादिकः ।

१८ अथा = अध अथ अथवा ।

१९ निर्ऋतिनामा नरकसदृशो लोकः । उर्वश्या अलाभे मरणं नरकप्राप्तिश्च ।

६२२

१ 'आर्षम् । संशयोत्थापनम्' इति पाठान्तरम् (२८) । यदि वा इदमस्मि इति संशय उस्थाप्यते ।

७ यत् ऽइव इति पदपाठः । 'संदिवा' इति दुर्गः । यत् वस्तु इव इदम् अहम् अस्मि । केन वस्तुना सदृशोऽहमिति न जानामि ।

९ निण्यः = गूढः प्रश्नः । अयं गूढप्रश्नः । तं प्रश्नं मनसा संनद्धः बुद्धिसहाय्येन चरामि विवेक्तुं यते ।

१४ आत् इत् = अनन्तरम् । ततः ।

६२३

१९ अददत् न प्रत्यवेयात् = यस्यान्नं नास्ति स यदि अन्नं न ददाति परेभ्यः तत्रापि तस्य न प्रत्यवायः दोषः ।

११-१५ अयमाध्यात्मिकोऽर्थो न स्वाभाविकः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६२३

१६ अत्र 'देवताः' शब्दो द्विवचनं प्रयुज्यते । सकृदेव तस्य प्रज्ञे-
जन्मः । देवताः अन्नमोक्षग्रीः यदि स पश्येत् । 'यदि-
स्यादिति' अस्मिन् वाक्ये प्रथमो 'हि' निपातो व्यर्थः । तत्र
भुक्तेन = देवताभिर्भुक्तादवाशिष्टेभ्यः अन्नं भुक्तेन । अवाशिष्टान्न-
भक्षणोमे केवलप्रयोः नः स्यात् ।

२१ अनुक्रमण्यां चतुर्थी ऋगेष जगती । शिष्टास्त्रिष्टुमः । छन्दोनु-
क्रमण्यां तु चतुर्थी त्रिष्टुप् । शिष्टा जगत्यः । अस्य सूक्तस्य
दिव्य आङ्गिरसो वा ऋषिः ।

६२४

१ उद्धहनं = विवाहः ।

३ पुष्करिणी इव = पुष्करिणीसदृशम् । पुष्करिणी = पुष्करयुक्ता
लता पुष्करैः सञ्चिता सरसी वा । भोजस्य इदं वेश्म पुष्करि-
णीव पुष्करैः परिष्कृतं संस्कृतम् (दुर्गः) ।

३ देवमानं = दैवतं विमानम् । (दुर्गः) । किंतु (ऋ० सं०
१० । १३२ । ७) इत्यत्र यमस्य रथः देवमानमित्युच्यते ।
देवमानं रथो वा प्रासादो वा । देवमानेव = देवमानमिव = देवसभ-
मिव ।

१३ इत् = एव ।

६२५

२-३ बृहद्देवतायां निदानं दीयते । आर्षानुक्रमण्यामार्षमेव । दुर्गकाले
कदाचित् आर्षानुक्रमणी इति द्वयोरपि ग्रन्थयोर्नाम स्यात् ।

५ परोक्षकृतादीनां मन्त्राणां लक्षणानि उदाहरणानां च निदानानि
दत्तानि । लक्षणोद्देशतः = लक्षणैः उद्देशैश्च । उद्देशः =
निदायम् ।

६२६

१७ उत्सन्नयज्ञः = अग्नी अनुष्ठेयानामङ्गानां बहुलत्वात् प्रमादात्
अज्ञानाद्वा कश्चित् किञ्चिद्भ्रममुत्सन्नं भवति । अङ्गस्योत्सन्नत्वे
यज्ञः पूयते । एतद्दोषपरिहाराय अग्निचित्ये अश्विना इष्टका
उपधीयन्ते ।

१७ 'उत्सन्नयज्ञो वा एष को ह तद्वेदं यदेतस्य क्रियते यन्न' [मैत्रा०
सं० १ । ११ । ६] । इदमुत्सन्नत्वं पुनः पुनराहुतिदानेन

पत्रं

पङ्क्तिः

६२६

१७ निराक्रियते । 'उत्सन्नयज्ञो वा एष संवत्सराद्वा अध्युत्सन्नयज्ञोऽ
वरुध्यते संवत्सरादेवैनमध्याप्त्वावरुन्दे' (मैत्रा० सं० ४ ।
३ । ३) । चातुर्मास्यैः इष्टिभिः इदमुत्सन्नत्वमवरुध्यते ।
उत्सन्नः = नष्टो बहिष्कृतो वा । सर्वो यज्ञ उत्सन्नः यस्मात्
अज्ञानात् प्रमादः अपरिहार्यः । ब्राह्मणे उत्सन्नत्वम् = अङ्गवै-
कल्यम् । दुर्गमते उत्सन्नत्वम् = मन्त्राणां यज्ञेषु प्रयोगाभावः ।

६२६

२० उत्सन्नं प्रकरणं प्रयोगश्च येषाम् । कस्यां संहितायामेते मन्त्रा
विद्यन्ते कस्मिन् कर्माणि च ते विनियुज्यन्ते इति न ज्ञायते ।

२१ 'वाचस्तोमयोगविनियोगकल्पेषु' इदं दुर्बोधम् । वाचस्तोमयागस्य
प्रयोगः मन्त्रविनियोगश्च द्वावपि नष्टौ । अयमर्थः स्यात् ।
अथवा वाचस्तोमप्रयोगे यथा मन्त्राणां विनियोगो नष्टस्तथा
केषुचिद्भागेषु । किंतु वाचस्तोमप्रयोगो नष्टः तत्रत्या मन्त्रा
अपि नष्टा इति न श्रुतम् । 'वाचस्तोमप्रयोगविनियोगकल्पेषु'
इदं प्रक्षिप्तं भाति ।

२१-२२ इन्द्रो ब्राह्मणो भूत्वा त्वां याजयानीति मनुमुवाच । कतमस्त्व-
मसि ब्राह्मण इति पृष्टः प्रत्युवाच । किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु
पृच्छसि मातरम् । श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः
(मैत्रा० सं० ४ । ८ । १) इति ॥ वृत्तौ दत्तमधतरणम-
शुद्धम् । अस्य श्लोकस्य प्रकरणं ज्ञायते । सोमयागे पात्नी-
षतो नाम ग्रहः । तस्येदं ब्राह्मणम् । विनियोगश्च तस्मिन्नेव ग्रहे
भवितुमर्हति । इन्द्रश्च देवता स्यात् । दुर्गेण किमित्ययं श्लोकोऽ-
धतारित इति न ज्ञायते ।

६२७

१ यज्ञो वै प्रजापतिः । अनिरुक्तया जुहोति । अनिरुक्तो हि
प्रजापतिः (मैत्रा० सं० ३ । ६ । ९) । बदनिरुक्तं प्राजा-
पत्यं शंसति । अनिरुक्तो हि प्रजापतिः (ऐ० ब्रा० २९ ।
४) । यस्मिन् मन्त्रे देवता न स्पष्टा सोऽनिरुक्तः । प्रजा
पतिश्च सृष्टेः पूर्वं मूर्तिराहित्यादानिरुक्तः ।

३ सामान्यात् = समानधर्मात् ।

८ अग्निश्चेन्द्रश्च भूयिष्ठभाजौ देवतानाम् । तस्मात् ब्राह्मणश्च

पत्रं

६२७

पङ्क्तिः

” राजा च भूयिष्ठभाजौ मनुष्याणाम् (मैत्रा० सं० ४ । ७ । ८) ।

१० अग्निर्वै सर्वा देवताः (मैत्रा० सं० २ । १ । ४) । काठ० सं० १० । १) । अग्निर्वै सर्वा देवताः । अत्र वैश्यस्यापि देवता (मैत्रा० सं० २ । ३ । १) । ‘ अत्र वै सर्वा वसति देवता ’ इदं कस्यां संहितायां वर्तते इति न ज्ञायते ।

११ ‘ नाराशंसः ’ इति पाठान्तरम् (२८) । निरुक्तपाठस्तु ‘ नराशंसः ’ (६२९ । १०) । नराशंसः अग्निः । नाराशंसो मन्त्रः । ‘ यज्ञप्रभवत्वात् ’ अत्र च. ट. पुस्तकयोः ‘ विष्णु ’ इति प्रान्ते विवरणं क्लियते ।

११-१२ यज्ञस्य श्रेष्ठ्यं भगवद्गीतायां तृतीयचतुर्थाध्याययोर्निरूप्यते ।

१७ यस्मात् मन्त्रा अनाविष्कृतलिङ्गा अत एव दुर्बोधाश्च यस्माच्च मनुष्या अल्पबुद्धित्वात्तेषां मन्त्राणामर्थं कर्तुं न शक्नुवन्ति तस्मादेते मन्त्रा नाराशंसा इति न शक्यं वक्तुम् । एतेषु नराः स्तूयन्ते इति कथं ज्ञेयम् । इदं दुर्गमतं न ग्रहीतुं शक्यं यस्मात् ‘ नराशंसः ’ इति शब्द एव नरा यस्मिन् आशस्यन्ते स मन्त्रः इति दर्शयति । नाराशंसा मन्त्रा हीना इत्यापि मतं कचिद्वर्तते ‘ नाराशंसैः न शंसेत् ’ एवम् ।

२१-२२ गुणपदमयः = विशेषणपदयुक्तः । तत्र स्पष्टं प्रधानपदं न दृश्यते ।

२२ देवतायाः संविज्ञानपदं रूढपदम् । यथा अग्निः इन्द्रः वरुणः इत्येवमादीनि रूढपदानि । संविज्ञानपदस्य व्याख्या (निरु० ७० । २०) इत्यत्र । ‘ अन्यतमत ’ (३०) । इदं प्रामादिकम् (पा० ७ । १ । २९) ।

२३ यतः विशेषात् = यस्मात् देवताविशेषप्रख्यापकात् (२२) । अवतिष्ठेत इत्यस्य कर्ता देवतासंविज्ञानपदम् । अन्याभ्यः देवताभ्यः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६२७

२४ गुणपदानि केवलानि विशेषणानि सर्वाः देवताः आश्रयन्ते । तानि सर्वासां साधारणानि । यस्मात् ताः ईश्वराः सर्वे कर्म कर्तुं समर्थाः ।

६२८

१-२ प्रायःशब्दस्य अधिकारः इत्यर्थोऽन्यत्र न दृश्यते । अन्यच्च 'यद्देवतः स यज्ञो यज्ञाङ्गं वा ' इत्यत्र अधिकार एव । प्रायः-पदेन तस्य पुनरुक्तिः किमर्था ।

२ 'अध्ययनपाठानुक्रमे ' इदं 'यद्देवताधिकारे ' इत्यस्य विवरणं स्यात् ।

९ बहुलं=बाहुल्येन कचित् नतु विस्तृतत्वेन । अयम् आचारो बहुलं विस्तृतः । बहुलशब्दो यास्ककाले प्रधानशब्दवत् नपुंसक आसीत् । अत्र बाहुल्यम् आचारस्य न । 'बाहुल्यस्य भूयस्त्वेन प्रसिद्धिः' अयं दुर्गकृतोऽर्थोऽत्र नावश्यः । बहुलं = भूयः इति बहुलशब्दप्रयोगो लोके प्रसिद्धः । यथा सर्वे अतिथयः सर्वे पितरः तथा सर्वे देवाः न विशिष्टाः अतिथयः पितरो देवा वा दुर्गकृतोऽर्थो न समीचीनः । 'बहुलाऽस्य' इति च पाठः (२३) अस्य आचारस्य बहुला भूयस्त्वेन प्रसिद्धिः । अयमाचारः प्रायः सर्वत्र प्रचलितः । अयं पाठः साधुः ।

११-१२ 'देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्' (पा० ९ । ४ । २४) । देवदेवतायै इदम् इति देवदेवत्यम् । देवाः देवताः अतिथयो देवताः पितरो देवताः ।

१९ निर्वपणं=बलिदानम् । इदं शिष्टं नः अस्माकं देवपितृमनुष्याणां सह साधारणम् ।

१७ बहुदेवतः = वैश्वदेवः (२९) ।

२० मन्त्रा याज्ञा वा दैवता वा । यदा न याज्ञास्तदा दैवताः । तत्र प्रजापतिदेवताकाः नराशंसदेवताकाः कामदेवताकाः प्रायो-देवताकाः इति ऋत्वारः पक्षाः ।

६२९

२ प्रवाहितशब्दस्यार्थो न ज्ञायते ।

११ तौ=काल्यक्यशाक्यपुत्री ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६२९

१४-१९ यागा द्विविधाः प्रकृतियागा विकृतियागाश्च । दर्शः प्रकृति-
यागः । काम्येष्टयो विकृतियागाः । दर्शे सांनाय्य ऐन्द्रो
माहेन्द्रो वा । सांनाय्ये 'इषे त्वा' इत्यादयो दर्भच्छेदनपरा
मन्त्रा आवश्यकः (१६) । सांनाय्येनेन्द्र इज्यते महेन्द्रो वा ।
तेन एते मन्त्रा ऐन्द्रा महेन्द्रा वा (१७) । ते सांनाय्यं संस्कु-
र्वन्ति (१६) । विकृतियागे नैतदावश्यकम् । एतेषु मन्त्रेषु
इन्द्रलिङ्गं महेन्द्रलिङ्गं वा नास्ति (१७) । सांनाय्यः =
शृतं क्षीरं दधि च । आदौ क्षीरं हूयते पश्चात्
दधि । अयं सांनाय्ययागोऽमावास्यायां कर्तव्यः । (तै० सं०
२ । ९ । ३) । अगतश्रीः संवत्सरमिन्द्रं यजेत । ततोऽग्नये
व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् । ततो महेन्द्रं यष्टुं योग्यो
भवति (तै० सं० २ । ९ । ४) । अयं सांनाय्ययागो येन
सोमयागः कृतस्तेनैव कर्तव्यः (तै० सं० २ । ९ । ९) ।

१८ चोदकेन = कल्पसूत्रेण ब्राह्मणेन वा । प्रदिश्यन्ते = विनियोक्तव्या
इति निर्दिश्यन्ते । 'प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि । एष ते योनिः ।
प्रजापतये त्वा' (मैत्रा० सं० १ । ११ । ४) । इदं वाक्यं
चोदकम् । कुविदङ्ग इति मन्त्रः (१९) अनेन प्राजापत्यग्रहणे
विनियुक्तः । अस्मिन्मन्त्रे प्रजापतिलिङ्गं नास्ति ।

२१ 'ऋषभोऽसि शाकरो वषट्कारस्य त्वा मात्रायां सादयामि'
(मैत्रा० सं० १ । ११ । १२) ।

२२ ऋषभोऽसि शाकर इति दक्षिणतो जुह्वाः पूर्णस्रुवं सादयति
(मान० श्रौ० १ ; २ । ६ । २७) । अयं स्रुवासादनमन्त्रः ।
तस्य स्रुवे आपारे विनियोगः (२३) । प्रजापतये स्वाहेति
पूर्णस्रुवं ध्रुवायामवनीय ततो ज्वलत्यग्नौ जुहोति । (मान० श्रौ०
१ । ३ । ११९)) स्रुवेण प्राजापत्यमाधारमाधारयति (तै०
सं० ३ । ३ । ७) । तेनायं मन्त्रः 'ऋषभोऽसि शाकरः'
प्राजापत्यः ।

६३०

१ संस्कारपूर्वं ग्रहणं स्यादुपाकरणं श्रुतेः (अपरः २ । ७ । ४०) ।
उपाकर्मविधिः वसिष्ठस्मृतौ (१३ । १-३) ।

पत्रं

६३०

पङ्क्तिः

- २ ब्रह्मयज्ञः = स्वाध्यायः । स्ववेदपठनम् । जपः सावित्र्याः ।
एतानि सर्वाणि गृह्यकर्माणि । तेषु श्रौतमन्त्रा विनियुज्यन्ते ।
- २ नैष्ठिको ब्रह्मचारी आचार्यं परिचरेत् (वासिष्ठस्मृतिः ७ । ३१) ।
आ शरीरविमोक्षात् (७ । ४) । वेदस्वीकरणे दृष्टो गुर्व-
धीनो गुरोर्हितः । निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकः स उदात्तः
(लघुविष्णुस्मृतिः १ । २४) । नैष्ठिकब्रह्मचारिणो यज्ञादि,
श्रौतं कर्म विवाहादि गृह्यं च नास्ति । तथापि उपाकरणाद्य-
स्तस्यापि विद्यन्ते ।
- ३ इदमवतरणं दुर्गेण वृत्त्युपोद्धाते दत्तम् (निरु० २ । ३-९) ।
अत्रत्येऽवतरणे केचित्पाठा भिन्नाः ।
- ६ प्रत्यवायः=अनिष्टम् ।
- ११ नराशंसो यज्ञोऽग्निर्वेति पूर्वमुक्त्वा (६२७।४) अत्र 'सौर्या
वा' इति किमित्युच्यते ।
- १९ ' अथवा ' इत्यादिरर्थः (६२७ । २०-२४) इत्यत्र न
दत्तः ।
- १६ तस्मिन्मन्त्रे । अभिसंदधीत = मनसि कुर्यात् । स मन्त्रस्तथा
देवतया संबद्ध इति मनसि कुर्यात् । ' यद्देवतः स मन्त्रः '
इत्यादेरिदमपरं व्याख्यानं न सरलम् ।
- १९-२० देवतानामार्थपत्यसंबन्धात् = देवता यजमानमर्थपतिं कर्तुं
समर्थाः इत्यस्मात्कारणात् ।
- २० संविज्ञातं = रूढम् ।
- २१ ' अधिपतिरपि ' अत्र ' अपि ' शब्दस्य न किमपि प्रयोज-
नम् । ' अपि ' अपपाठः स्यात् । मूलपाठः ' इति ' स्यात् ।
अथवा ' कामस्याधिपतिरपि देवता कल्प्यते ' इत्यन्यः
अर्थश्च स्यात् । अत्रापि देवता कल्प्यते नादेवता ।
- २२ व्याहन्यते = नोपपद्यते न संगच्छते विरुद्धत्वात् ।
- २९ तानि अश्वादीनि सत्त्वानि न अक्षादीनि द्रव्याणि ।

पत्रं
६३०

पङ्क्तिः

२६ स्तोतुः ० ० कारिष्यन्ति = स्तोतारम् अभिमतस्य इष्टस्य
अर्थस्य पतिं कारिष्यन्ति । इष्टमर्थं दास्यन्तीत्यर्थः ।

६३१

१ विशेषतः = इयं स्तुतिः इयं निन्दा इति ।

२ चित्तिः=ज्ञानशक्तिः । 'चित्तिः' (२६) इति पाठान्तरम् ।

२ अश्वादयः = अश्वः शकुनिः मण्डूकाः (निघ० ५ । ३) ।

अक्षादयः = अक्षाः ग्रावाणः रथः (निघ० ५ । ३) ।

अथाप्यष्टौ द्वंद्वानि (६२५ । १३) । इदं दुर्गेण न

व्याख्यातम् । निरुक्तमूले इदं प्रक्षिप्तमिव भाति एतेषु द्वंद्वेषु

उल्लखलमुसले (२९) हविर्धाने (३०) विपाट्छुतुद्री (३२)

आर्नी (३१) एतानि अदेवताः । इतराणि चत्वारि देवता

एव । अदेवता देवताव-स्तूयन्ते इत्यस्यानन्तरम् अदेवता एव

निर्देष्टव्या आसन् ।

३ यस्मात् अदेवता देवतावत् स्तूयन्ते तस्मात् ।

३-४ लक्ष्येण (देवता) लक्षणम् अविरुद्धं संगतम् इति स न
मन्येत ।

४-५ आगन्तून् = कविकल्पितान् । ऋषिभिः स्तुत्यर्थमारोपितान् ।
न स्वाभाविकान् । इवशब्देन काचित् शङ्का प्रदर्श्यते न तु
निश्चितं मतम् ।

६-७ आगन्तवः = अपायिनः अनित्याः । ६-८ इदं विवरणं
न क्लिष्टम् ।

९ 'प्रत्यक्षदृश्यमेतद्भवति' अस्यापि दुर्गकृतोऽर्थः क्लिष्टः । एते
अर्था नागन्तुका इतीदं प्रत्यक्षं दृश्यते यस्माद्देवता ऐश्वर्ययुक्ताः ।

११ हरी इन्द्रस्य रोहितः अग्नेः हरितः सूर्यस्य (निघ० १ । १५) ।

१३ 'शिष्यो न मन्यते' अत्र न शब्दो व्यर्थः । 'मन्येत'
इति पाठ इष्टः । न एतत् सम्यक् अभिधीयते इति स शिष्यो
मन्येत ।

१४ 'प्रत्यक्षदृश्यमेतद्भवति' इत्यादि सर्वमुत्तरम् । देवता महा-
भागा अष्टसिद्धियुक्ताः । तस्मात्तासामेतेऽर्था नागन्तुकाः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६३१

” सिद्धियुक्ता मनुष्या अपि अशक्यानर्थान् संपादयन्ति । किं पुनर्देवाः । एतत्सर्वं प्रत्यक्षं दृश्यते पृथिव्याम् ।

१६-१७ ऐश्वर्यं महत् = महदैश्वर्यम् । महान्भागः यस्याः सा महा-
भागा । तस्या भावः माहाभाग्यम् । एतन्माहाभाग्यम् आणिमा-
दिसिद्धयः (१७-१९) ।

२१ देवता एव आत्मा । देवतायाः माहाभागात् प्रत्यक्षदृश्यमेतद्भवति इत्यन्वयः दुर्गमते ‘ माहाभागात् देवतायाः एकः आत्मा ’ इत्यन्वयः । ‘ एकोऽपि सन् देवतात्मा ’ इति दुर्गो ब्रवीति । (६३२।११) इत्यत्रापि तथैव ।

२१ प्रकृतिभेदेन = चेतनभेदेन (६३२।११-१३) । अप्रकृति-
भेदेन = अचेतनभेदेन (तथैव) । वर्धमानः = नानारूपाणि
गृह्णानः ।

२२-२३ बोभवीति = भृशं पुनः पुनर्वा भवति ।

२४ यथा (प्रथमं) = इति यथा ।

२९ ‘ छन्दसि दृष्टानुविधिः ’ इति पातञ्जलमहाभाष्ये वचनम् । वेदे बहूनि शब्दरूपाणि न पाणिनीयव्याकरणानुसारीणि । वेदे यानि रूपाणि एवंविधानि दृश्यन्ते तेषामनुरोधेन विधयः सूत्राणि कर्तव्यानि । अस्य वचनस्य दुर्गेण भिन्नोऽर्थः कृतः । छन्दः लक्ष्यम् । तत्र यावन्ति नामानि तावत्यो देवताः । अन्यथा नामबाहुल्यस्य न कोऽप्यर्थः ।

६३२

१ यावदभिधानम् = अभिधानानि अवधार्य । अव्ययीभावः । यावद्वधारणे (अमर ३ । ३ । २४७) । अभिधानसं-
ख्यया देवतानानात्वविधिः । देवता नाना इति कथं विहितं व्यवस्थापितं वा । अभिधाननानात्वेन देवतानानात्वं विहितम् । विधिः = व्यवस्था । देवतानानात्वविधिः = देवतानानात्व-
व्यवस्था ।

२-३ येषु सूक्तेषु संवादो वर्तते तानि संवादसूक्तानि ।

३ ‘ कया शुभा ’ इदं पञ्चदशर्चं सूक्तम् (ऋ० सं० १।१६९) ।
अस्मिन्मरुतामिन्द्रेण संवादः । अगस्त्यलोपामुद्रासंवादो नदीनां

पत्रं

६३२

पङ्क्तिः

” विश्वामित्रेण संवाद इत्यादयः संवादा ऋक्शाखायां वर्तन्ते ।
व्यपदेशः = भेदः । देवताभेदे एव संवादः शक्यः । अयमेव
हेतुः देवतानानात्वे । एतद्देवतानानात्वं कथं निराक्रियेत ।
अपासितुं = त्यक्तुं निराकर्तुम् । गमयन्ति नानात्वम् ।

४ असंकरवर्तीनि = अमिश्राणि असाधारणानि विशिष्टानि ।

५ कर्माण्येव लिङ्गानि । अर्थः = प्रयोजनम् उपयोगः । भिन्न-
कर्माणां प्रयोजनं दृश्यते । अर्थदर्शनमेव हेतुः । तेन उपबृंहि-
तानि = समर्थानि बलवन्ति । एतानि उपयुक्तानि कर्माण्येव
हेतुः त्रित्वे ।

१० अपरिहीणं = ऐश्वर्यं न केनापि अंशेन ऊर्नाभवति ।

१२-१३ यद्यपि आत्मा एकः तथाऽपि स चेतनभेदैः अचेतनभेदैश्च
आत्मानं विकर्तुं समर्थः । चेतनरूपेषु अचेतनरूपेषु च विकरणं
धर्मः विद्यते अस्य ।

१३ विकुर्वतः अस्य एकस्य देवतात्मनः (११) ।

१४ प्रत्यङ्गानि = अङ्गानि ।

१५ महता देवतात्मना ।

१६ व्यतिरिच्यन्ते = भिन्नानि भवन्ति मूलद्रव्यात् । ‘अतिरिच्य-
न्ते’ (२७) इति पाठभेदः ।

१७ वा = च । अधिष्ठानम् = अत्र आत्मा ।

१८ प्रत्याधिष्ठानं = वर्तमानमधिष्ठानमभिलक्ष्य तत्पुरतः कृतम्
अन्यत् आधिष्ठानम् ।

२० अयमङ्गप्रत्यङ्गभेदः क्लिष्टः अनवश्यश्च ।

२१ व्यूहं = विस्तरं प्रपञ्चं विकरणम् ।

६३३

३ वक्ष्यति (१००७ । १७-२०) इत्यत्र । १००७ अत्र ‘स
एष’ (४) तत्र ‘अथैष’ (१७) । अत्र ‘सत्तालक्षणः’ (९) ।
तत्र ‘सत्त्वलक्षणः’ (१८) तत्र ‘तद्ब्रह्म’ इत्यस्यानन्तरं ‘तत्सत्यं०

पत्रं

६३३

पङ्क्तिः

” तच्छुक्लं’ इत्यधिकम् । अत्र ‘स भूतात्मा’ (९) । तत्र ‘तन्निष्ठो भूतात्मा’ (१९) ।

८ प्रकृतेः यानि भूमानि बहुत्वानि तैः सत्त्वानाम् अनन्यविषयत्वम् । प्रकृतिभूमानि एव सत्त्वानि । प्रकृतिभूमभ्यो न भिन्नानि । ‘सत्त्वानां प्रकृतिभूमभिः ऋषयः स्तुवन्ति’ इदं दुर्बोधम् । किं स्तुवन्ति । सत्त्वानां स्तुवन्ति इत्यशुद्धं वाक्यं स्यात् । सत्त्वानि स्तुवन्ति इति शुद्धम् । सत्त्वानि प्रकृतिभूमभिः ऋषयः स्तुवन्ति इति वाक्यं चेत् अर्थः सुलभः । बहोर्लोपो भू च बहोः (पा० ६।४।१९८) इति सूत्रेण भूमन् । भूमा = बहुत्वम् । भूमभिः = महिमाभिः । प्रकृतेः भूमानः महिमानः सत्त्वेषु आरोप्यन्ते । यदा ऋषयः सत्त्वानि स्तुवन्ति तदा तेषु ते प्रकृतिगुणान् आरोपयन्ति । भूमन् महिमन् गरिमन् इत्यादय इमनन्ताः शब्दाः पुंलिङ्गाः न नपुंसकाः ।

९ द्यौः अन्तरिक्षं पृथिवी इत्यादयः कारणस्य महिमानः महान्ति रूपाणि ।

१० द्यौस्ते पृष्ठमिति मन्त्रं पिण्डोपरि पदं दधतमश्वम् अस्पृशंस्तिष्ठन्नश्वर्युः दक्षिणकरम् अश्वस्य पृष्ठे धारयन् पठति (कात्या० श्रौ० १६।२।१९) । अग्निचितौ गर्तखननेऽयं विधिः । तत्राश्व उच्यते ‘ द्यौस्ते पृष्ठम् ’ इति ।

१० ‘ सधस्थम् ’ इत्यस्य स्थाने ‘शरीरम्’ (२७) इति पाठान्तरम् । तत् मंत्रायणीतैत्तिरीयवानसनेयकठशाखासु नोपलभ्यते । सधस्थं = सहस्थानम् । अग्निना सह निवासस्थानम् ।

१३ प्रकृतिः आत्मा स्वयमेव । सर्वाणि स्थावरजंगमानि विशिष्टवस्तूनि प्रकृतेः आत्मनः अभिन्नानि । आत्मैव तेन तेन रूपेण अवस्थितः ।

१९ अदेवता इति अभिमतम् । यन् अदेवतेदमिति लोका मन्थन्ते तत् ।

१९ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायं प्रातर्बलिं हरेत् (मान० गृ० २।१२) तत्र पृथक् पृथक् बलिदानमुपदिश्यते ऋक्षेभ्यः पिपीलिकाभ्यः

पत्रं

६३३

पङ्क्तिः

१५ पिशाचेभ्यः शैलेभ्यः पन्नगेभ्यश्च बल्यर्पणम् (मान० गृ० २ । १२ । १७) ।

१७ नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (पा० ८ । २ । ७) इत्यनेन यथा राज्ञो भावः राज्यं तथा सर्वनाम्न्याः भावः सार्वनाम्यं न तु सार्वनाम्यम् । प्रकृतिः सर्वनाम्नी । 'भस्यादे तद्धिते' इत्यनेन वार्तिकेन सर्वनाम्नी इत्यस्य पुंलङ्गावः । छ. त. द. ग. च. ज. पाठः 'सार्वनाम्यम्' एव ।

यस्मात् प्रकृतेः सर्वनामता यस्मात् सर्वाणि नामानि प्रकृतेरेव तस्मात् सर्वाणि सत्त्वानि प्रकृतिरूपाणि । 'प्रकृतिः' सर्वेषु 'नता' (२०) इति दुर्गकृतोऽर्थः । यदि अयमर्थः तर्हि स माहाभाग्ये अन्तर्भूतः । प्रकृतिः महाभागा समर्था । अत एव सर्वेषु वस्तुषु नता । सर्वाणि सत्त्वानि प्रकृतिरूपाणि । किंतु 'प्रकृतिसार्वनाम्याच्च' अयं पूर्वस्मात् अपरो हेतुः । सर्वेषां सत्त्वानां नामानि प्रकृतेरेव । अश्वः अक्षः इत्यादयः प्रकृतिनामान्येव ।

१९ नतिमात्रं = नतिरेव । नाम नतिः एव नान्यत् किञ्चित् । नतिः नाम नमनं संज्ञा एते समानार्थाः शब्दाः । 'न संज्ञा' (३०) इति च. पाठः । न संज्ञा = नाम न कस्यचित् विशिष्टपदार्थस्य संज्ञा । मनुष्याश्चादीनि नामानि सर्वेषां मनुष्याश्चादीनां माश्वारणानि ।

२० सर्वत्वेन नता = सर्वैः पदार्थैः प्रकृतिः नमति परिणमते । सर्वे पदार्थाः प्रकृतेरेव परिणामाः । प्रकृतेः सर्वनाम प्रकृतिसर्वनाम । तद्भावः प्रकृतिसार्वनाम्यम् । अवोत्तरपदवृद्धिः केन सूत्रेण ।

२२ देवता एव प्रकृतिः इति समासे । यस्मात् देवताप्रकृतिः माहाभाग्ययुक्ता 'इत्यन्वयः' । यदा देवता प्रकृतिः इति पृथक् असमासघटितौ शब्दौ तदा 'यस्मात् माहाभाग्ययुक्ता देवता प्रकृतिः' इत्यन्वयः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६३३

२३ ' प्रकृतिसार्वनाम्यात् ' इत्यस्यायमर्थः स्यात् । सार्वनाम्यं = सर्वनामावस्था । यथा अहं त्वं सः इत्यादीनि सर्वेषां वस्तूनां नामानि न मनुष्याश्चादिवत् विशिष्टजातीनां तथा प्रकृतिः सर्वेषु पदार्थेषु वर्तते । प्रकृतिं विना पारिणामाः कथं स्युः । ' प्रकृतिसार्वनाम्याच्च ' इत्यस्य संबन्धः ' इतरेतरजन्मानो भवन्ति ' इत्यनेन स्यात् । देवा इतरेतरजन्मानः कथं भवन्ति । यस्मात् प्रकृतिः सर्वेषु पदार्थेषु वर्तते तस्मात् इन्द्राग्न्यादयः कदाचित् प्रकृतिः भवन्ति कदाचित् विकृतिः ।

२४ अभिहितम् (६३१ । १०—१३) । ' इन्द्रादीनां हरिरोहितादीनि आगन्तूनिव अर्थान् मन्यमानः मनुष्याश्चवत् (तेषाम्) अनित्यत्वं (च) अवेत्य (इदं) सम्यक् नाभिधीयते इति स न मन्येत ' इत्यन्वयः । नेदं वाक्यं सुरचितम् ।

६३४

२ इति यद्भिहितम् अत्र अस्मिन् विषये । अत्र = तदन्तरेण ।

६ ' इतरेतरजन्मानः ' इत्यस्य ' इतरेतरप्रकृतयः ' इति विवरणं प्रान्ते लिखितं वृत्तौ अन्तर्भूतं स्यात् ।

७ मनुष्याणां = मनुष्येषु । देवतानां (९) = देवतासु । ' देवानां ' (२७) इति पाठान्तरम् । देवताशब्दो देवेशब्दात् पूज्यतरः ।

१० सायमुपस्थानस्य किं कारणम् इति प्रश्नः । तस्योत्तरम् ' असौ वा आदित्यः सायमासुवति (मंत्रा० सं० १ । ९ । ७) । आसुवति = प्रसूते (अग्निम्) । अन्धकारानोदायाग्निः प्रज्वाल्यः उपस्थेयश्च । एषः अग्निः प्रातः प्रसुवति आदित्यम् । तस्मात् असौ अग्निः सूर्यप्रकाशकारणमिति नोपस्थेयः । प्रसुवति (२९) इति प्रामादिकः पाठः । प्रसुवति = प्रसूते ।

१२ अदितेर्दक्षो अजायत दक्षद्वदितैः परि ।

पत्रं

६३४

पङ्क्तिः

१३ अध्यात्मे = शारीरकविषये । कोष्ठे भवः कोष्ठचः । कोष्ठे अन्नपाकायाग्निर्विद्यन्ते । नादः = नादरूपः । कोष्ठचादग्नेर्नाद इन्द्रः कथं जायते इति न ज्ञायते । सर्वा बलकृतिः इन्द्रस्यैव । मन्थनं बलकृतिः । इदं वचनं कस्यामुपनिषदि कस्मिन् ग्रन्थे वेति न ज्ञायते । ' अग्नेर्वा आदित्यो जायते ' (ऐ० ब्रा० ४० । २८) । तत्रैव ' वायोरग्निर्जायते । प्राणाद्धि बलान्मध्यमानोऽधिजायते ' । ' अयमग्निर्वैश्वानरो ऋष्यमन्तः पुरुषो येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति यदेतत्कर्णाविधाय दृणोति' (मैत्रायण्युपनिषद् २ । ८) । सर्वो नाद इन्द्र एव । कोष्ठाग्निन्नं पचति । तदा नाद उत्पद्यते । अयं नाद इन्द्रः । तस्मादग्नेरिन्द्रो जायते ।

१६ आगन्तवः = अनित्याः । यद्येतेऽर्था देवानामपि आगन्तवः तर्हि किं स्यात् । माहाभाग्यहानिः कथं भवेत् । मनुष्यवन् देवा अपि अन्यानर्थान् संपादयेयुः । दुर्गकृतम् 'आगन्तूनिवार्थान्' इत्यस्य विवरणं क्लिष्टम् ।

२१-२२ देवाः ईश्वराः । अर्थाः ईशितव्याः ईश्वरैः । देवाः ईश्वरा इति कथं ज्ञेयम् । येषामर्थानां ते ईशते तैर्विना ऐश्वर्यज्ञानमशक्यम् । ऐश्वर्यं प्रख्यातिं न इयात् = ऐश्वर्यं जनैर्न ज्ञायेत ।

२६ उक्तः अस्मिन्नेव खण्डे । सर्गस्थितिलयाः एताः तिस्रोऽवस्थाः । स्थितौ उपात्तसर्वमूर्तिः प्रलये उपरतसर्वमूर्तिः । सर्गकाले षोढा०० त्रिभर्ति इत्यन्वयः । उपात्तः स्वीकृताः सर्वाः मूर्तयो येन ।

२७ षोढा = जायते इत्याद्यः षड्भावविकाराः (निरु० पत्रं १९ । १९-२०) । सर्गकालात् प्राक् आत्मा भावास्यः सन्मात्रः एव । किमर्थं जायन्ते । कर्मार्थम् । तैरपि कर्माणि कर्तव्यानि इति ते जायन्ते । 'उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्' (भ० गी० ३।२४) । किं स्वत एव जायन्ते । न । आत्मनः जायन्ते ।

पत्रं
६३५

पङ्क्तिः

- २ कामकारः = इच्छा स्वेच्छा ।
- ३ योगेन । समाधिना आत्मानं पश्यन्तः ततः तस्मादात्मनः कामकारतः स्वेच्छया एव ।
- ४ तेषां मनसि वर्तमानः संकल्पः विचारो निश्चयो वा । संकल्पम् अनुविधत्ते अनुकरोति । कर्म संकल्पानुविधायि । यादृशः संकल्पः तादृशं कर्म । कर्मणः अनुरूपं कर्मसंपादनाय यदवश्यं (साधनं) तत् । कार्यकारणं = कार्यसाधनम् । कार्यकरणम् इति इष्टः पाठः । एतत् साधनं शरीरादि तत् कस्मात् उत्पद्यते । आत्मनः । कर्मकरणार्थं यदवश्यं शरीरादि तत् आत्मनः परमात्मनः उत्पद्यते । परमात्मा तेभ्यः कर्मानुकूलानि साधनानि ददाति । मनुष्यादीनां जन्म प्राक्तनकर्माद्यत्तम् । देवानां स्वेच्छायत्तम् ।
- ७ आत्मा तेषां संकल्पान् अनुविधत्ते । 'आत्मैवैषां रथः' इत्यादि कस्यामुपनिषदि ।
- ८ देवस्य देवस्य = सर्वेषां देवानाम् । देवानां सर्वं सर्वाणि रथादीनि वस्तूनि आत्मैव ।
- ९ इति यत् उक्तं (८) एतत् । इमाः = अश्वादीनि सत्त्वानि अक्षरथप्रभृतीनि च द्रव्याणि ।
- ११-१२ रथादिरूपेण प्रकृतिभेदेन = रथादयः प्रकृतेरेव भेदाः । देवताया इमे रथादयो विकारा एव साध्यः अर्थः । देवतैव प्रकृतिः ।
- १३ सा देवता स्तोतुः आशासितम् अर्थं तेन रथादिरूपेण साधयितुम् अलं समर्था । सः अर्थः तस्याः देवतायाः स्तुत्या समवेतः युक्तः । मन्त्रे स्तुतिः आशासितोऽर्थश्च द्वे अपि वर्तेते ।
- १५ तिस्रो देवताः तेनैव रूपेण आत्मानं धारयन्ति = तत्तद्रूपं गृह्णन्ति । अस्मिन् खण्डे अयं विचारक्रमः । यदा मन्त्रेषु देवता न निर्दिश्यते तदा का देवता । यज्ञे यज्ञाङ्गे वा या देवता सा इत्युत्तरम् । यज्ञे अप्रयुज्यमाना अपि मन्त्राः सन्ति । तेषु

पत्रं

६३५

पङ्क्तिः

१ देवताया अनिदेशे का देवता । प्रजापतिः याज्ञिकमते । नरा-
शंसः नैरुक्तमते । अथवा प्रयोक्तुः तत्क्षणे या इष्टा देवता
सा । अथवा । प्रायोदेवता या काऽपि देवता सर्वा देवताः ।
यथा देवदेवत्वमित्यादिषु सर्वे देवाः सर्वे अतिथयः सर्वे पितरः ।
किं कारणं प्रायोदेवतेति । यस्मात् मन्त्रो याज्ञो वा
दैवतो वा भवितुमर्हति । याज्ञदैवतो मन्त्र इति प्रायो-
देवता इत्यादिकस्य कारणम् इति शब्दप्रयोगात् ।
न तु निरुक्तकारस्य निश्चितं मतं यथा दुर्गो मन्यते । अदेवताः
यत्र स्तूयन्ते तत्र का देवता । एते अश्वादय अर्थाः न देवताः
किंतु देवतानाम् उपयुक्ताः बाह्याः अर्थाः । यथा रथादयः
मनुष्याणाम् । आगन्तवः बाह्या अर्था इति प्रत्यक्षमेतत्
दृश्यते । एते न मनुष्याः किंतु मनुष्योपयुक्ताः पदार्थाः तथा
देवतानाम् । तस्मात्ते स्तुतिं नार्हन्ति इति स आक्षेपको न
मन्येत एतादृशम् आक्षेपं न अरोपयेत् । देवता महाभागा
यावत्किंचिद्रूपं ग्रहीतुं समर्थाः । आत्मा एक एव । सर्वे देवाः
तस्य भेदाः । अपि च यदा सत्त्वानि द्रव्याणि च स्तूयन्ते
तदा तेषु सत्त्वेषु द्रव्येषु च प्रकृतेः भूमानः महान्तो गुणा
आरोप्यन्ते । तस्मात् एतासु स्तुतिषु आत्मैव स्तूयते । प्रकृतिः
(आत्मा)सर्वनामसदृशी सर्वेषु वस्तुषु वर्तते । अस्मादेव कार-
णात् देवा इतरेतरजन्मानः । किमर्थं देवा अजाः सन्तः
जायन्ते । कर्मकरणार्थम् । किं स्वतः जायन्ते । न । आत्मनः
एव जायन्ते । एवम् आत्मैव सर्वं वस्तुजातं यदेवैरुपयुज्यते !
एतस्यां विचारसरण्यां अस्माभिः कृताः केचिदर्थः पूर्वत्र
दत्तेभ्यो भिन्नाः ।

६३६

१३ 'मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुक्षा मरुतः परिं ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सैष्ठः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥
एते अश्वं स्तुवन्तीति इन्द्रादयो देवा अस्मान्मा निन्दन्तु ।
अत्राश्वः स्तूयते । किंतु स्तुतोऽपि स कमर्थं दद्यात् ।

१४ न्याहन्यमानम् = अयुक्तम् ।

पत्रं
६३६

पङ्क्तिः

१९ आक्षिप्ते = आक्षेपे कृते ।

१६-२१ एतत्सर्वं पूर्वखण्डवृत्तौ नोक्तम् । ऋक् ब्राह्मणवाक्ये च अत्रै-
वावतारितानि ।

२० एतानि वाक्यानि आत्मा एक एव इति प्रतिपादयितुं समर्थानि ।
दुर्गेणोदं पूर्वास्मिन् खण्डे नोक्तम् । उन्नय = साधयित्वा ।

२२ आत्मनः शरीरे तिष्ठतां जीवन्मुक्तानामित्यर्थः ।

२४ अन्यत् = व्यतिरिक्तम् ।

६३७

१ अभिधेयं = वस्तु । सत्त्वाविशेषात् = यस्मात् सर्वाणि सत्त्वानि
आत्मैव

२ यत् अभिधेयं वस्तु अभिधानं नाम अभिधेयात् निर्दिशेत् ।
आत्मनो भिन्नं वस्तु निर्देष्टुमशक्यम् ।

पुरुषार्थः चतुर्विधः । स एव निश्रेणी सोषानपरम्परा । प्रथमं
निश्रेणीफलकम् = यज्ञः ।

३ अधियज्ञेन उपक्रमः (१) । तत्र अधियज्ञे यदा अवधानं
दीयते तदा अधिदेवताविचारः प्रसज्यते । अस्य यज्ञस्य काऽधि-
देवता इति प्रश्न उत्पद्यते ।

३-४ किञ्चित् अध्यात्मं विदुषः = अल्पम् आत्मज्ञानं यस्य ।
किञ्चित् इत्यनेन ज्ञानम् अत्यल्पं शून्यमिति व्यज्यते । 'अवि-
दुषः' (२४) इति ग. ज. पाठः ।

५ अधियज्ञं = यज्ञम् ।

६-७ अभिधानभेदः स्तुतिभेदश्च ।

७ यथाग्रहं = ग्रहः संस्कारः । कर्मविद्यया संस्कारः तदनु रूपम् ।
'पृथगिव' इवशब्देन पृथक्त्वं न सत्यम् । 'पृथगिव' इदं
'पृथगात्मनो देवताः पश्यतः' (४) इत्यनेन किञ्चि-
द्विरुद्धम् । 'इव' शब्दोऽनवश्यः । 'पृथगात्मनो देवताः
पश्यतः' इदं 'पृथक् देवताः प्रकाशन्ते' इत्यस्मिन् अन्तर्भू-
तम् । अत एव तत्र नावश्यम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६३७

९-१० आत्मानं यजते इति आत्मयाजी । देवान् यजते इति देव-
याजी । 'श्रेयाश्न्' अत्र प्लुतिः विचारणायाम् (पा०
८।२।९७) । प्रमाणैस्तत्त्वपरीक्षणं विचारणा । नैकम्मि-
न्नपि पुस्तके प्लुतिचिह्नं वर्तते ।

११ ब्रह्म = ऐकात्म्यम् । देवता एव वृक्षः । तस्य मूलं ब्रह्म
ऐकात्म्यं वा ।

१२ विधिरेव प्रधानं येषाम् । 'प्रधानात्' (२८) इत्यपपाठः ।
प्रति अवभासते ब्रह्म । ब्रह्मणो नानाभेदा यज्ञिकान् प्रति
अवभासन्ते । यावन्ति अभिधानानि तावत्यो देवताः ।

१३ मध्यमोऽवशिष्यते स नैरुक्तान् प्रति अवभासते । (६३१—
६३२) इत्यत्र त्रयः पक्षाः उक्ताः । तत्र नैरुक्तपक्षो मध्यमः ।

१७-१८ 'स्थानभेदात् ० ० दर्शनाच्च' इदं सूत्रवद्भाति ।

१८ लिङ्गं त्रिधा हि भवति (२८) = स्थानत्रयदर्शकं लिङ्गं
विद्यते । विश्वकर्मा (१) गन्धर्वः (२) ओषधीनां जनिता
(३) । अत्र त्रित्वेऽपि अग्नीन्द्रवायुमूर्धाणां नामानि न
विद्यन्ते । एते त्रयः केऽपि अन्ये देवाः स्युः । ' विश्वकर्मा =
आदित्यान्तर्गतो ब्रह्मा । गन्धर्वः = आग्निः । तृतीयः पर्जन्यः '
इति महीधरः । तृतीयः सोम इति सायणः । ' विश्वकर्मा
चेदजनिष्ट ' इति मैत्रायणीकाठककपिष्ठलसंहितापाठः । इतरो
वाजसनेयतैत्तिरीयपाठः । दुर्गः प्रायो मैत्रायणीपाठान् पठति ।
अस्यामृचि त्रयो देवा इति प्रत्यक्षलिङ्गम् । प्रत्यक्षं = स्पष्टम् ।

६३८

१ 'अजस्य नाभा०' इदं किमर्थं पठितम् । एतत् ऐकात्म्यमेव
दर्शयति । वैश्वकर्मणसूक्तस्थेयमृक् ।

अन्यार्थदर्शनात् = 'त्रीन् महिम्नोऽसृजत' इति त्रित्वं विवि-
धनामोत्पत्तिदर्शनार्थमुक्तम् । तथा छान्दोग्योपनिषद्वाक्यं (४-९)
यज्ञेऽनुष्ठीयमाने ब्रह्मनामा ऋत्विक् मौनमाचरेत् । मौनभङ्गे च
प्रायश्चित्तं कुर्यात् इति प्रायश्चित्तविधानार्थम् । एतयोर्वाक्ययोः
त्रिस्वप्रस्थापनं नोद्देशः ।

पत्रं

६३८

पङ्क्तिः

९ प्रावृहत् = उद्धृतवान् ।

७ प्रकृतेः स्वरूपग्रहणात् = यदा प्रकृतेः आत्मनः स्वरूपं गृह्यते । प्रकृतिः स्वरूपेण एकैव । तस्याः त्रित्वे स्थानभेदो हेतुः । ' प्रकृत ' (२८) इति च. पाठः । प्रकृतः = आत्मा । तस्य स्वरूपम् एकत्वम् । यदि आत्मा एकः तर्हि तस्य त्रित्वे को हेतुः । स्थानभेदः ।

वशा स्त्री कारिणी च (अमर ३ । ३ । १६) वशा । वन्ध्या-
सुतायोषास्त्रीगवीकारिणीषु च (मेदिनी) । वशा = गौः ।

९-११ पृथिवी अन्तरिक्षं द्यौः वशाः गावः ।

१९ ' अर्थभेदेऽपि ' अत्र व्यर्थम् । ' अर्थाभेदेऽपि ' इति मूलपाठः स्यात् । यद्यपि अभिधानानाम् एकः अर्थः तथाऽपि यावन्ति इत्यादि ।

२१ प्रतिज्ञा ' तिस्र एव देवताः ' इति ।

२२-२३ अभिधाने भिन्ने तथाऽपि अभिधेयम् अभिन्नम् । अभिधान-
भेदेऽपि अभिधेयस्य अभेदात् इति सुवचम् । अथवा ।
' अभिधानमात्रभेदे अभिधेयस्य चाभेदे ' एवम् । अभिधाने
एव भिन्ने । न अभिधेये । ' अपि ' शब्दो व्यर्थः ।

२३ ' अस्य ' इति उपात्ते षष्ठ्याः एकवचने । उपात्त०० वचनः
(३१) इति पाठान्तरम् अशुद्धम् । यस्मात् विशेष्यः वायुर्वा
इन्द्रो वा न षष्ठ्येकवचनः । उपपत्तेः (३०) = विग्रहेण ।
अत्रापि विशेष्ये न षष्ठ्येकवचनम् । ' षष्ठ्येकवचनः ' अयं
कथं बहुव्रीहिः स्यात् । ' षष्ठ्याः एकवचनं यस्य ' इति नव
विग्रहः ।

६३९

२ निरुच्य = निर्वचनं कृत्वा ।

३ आ प्यायस्व = वर्धस्व ।

५-६ सोमपानम् इन्द्रशब्दात् अन्यत्र न संभवति । मुख्याभिसंब-
न्धिनो मध्यमात् = इदं दुर्बोधम् । ' मध्यमः मुख्याभिसं-

पत्रं
६३९

पङ्क्तिः

- ९-६ बन्धी ' अस्य कोऽर्थः । मुख्येन (इन्द्रेण) अभिसंबन्धो विद्यते अस्य । को मध्यमः । न इन्द्रशब्दः किंतु इन्द्रः । ' मुख्याभिसंबन्धिना मध्यमात् = इन्द्रात् ' इति सुबोधम् (१३-१४) ।
- ७ अमृष्यमाणः वृत्तिम् । मध्यमात् = इन्द्रात् । इन्द्रः वायुः एतौ न पर्यायौ इति यो वदेत् तम् आक्षिपन् = आक्षेपं दोषम् उद्भाव्य ।
- १० इन्द्रस्यायम् ऐन्द्रः । वायुः इन्द्रस्यानुचरो न स्वतन्त्रः ।
- १०-११ ' अस्यैन्द्रस्य वायो००० वहेयुः ' एतत् (निरु० ८२३ । १३) इत्यत्र वर्तते ।
- ११-१२ वायोविशेषणम् इन्द्रः । इन्द्रस्य वायुः नान्यम्य । एवं स्वस्वा-
मिभावः । वायुः स्वः इन्द्रः स्वामी ।
- १९ या प्रथमा संस्कृतिर्यज्ञे अस्मिन् यः परमो बृहस्पतिश्चिकित्वान् । यो मध्यमो वरुणो मित्रो अग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोत (मैत्रा० सं० १ । ३ । १२) ॥ क. ख. आदिपुस्तकेषु पठिता ऋक् (२९) बाजसनेयसं-
हितातः (वा० सं० ७ । १४-१९) । तस्यां ' मध्यम-'
शब्दो नास्ति ।
- १६-१७ शुक्रामन्थिनो असुराणां पुरोहितौ आस्ताम् । तौ अनेन हवनम-
न्त्रेण निरस्येते ।
- २० ' कर्मणा यमभिप्रैति संप्रदानम् ' (पा० १ । ४ । ३२) । दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति संप्रदानसंज्ञः स्यात् । अत्र इन्द्रशब्दः संप्रदानं यस्मात् तस्मै सुतं हूयते । ' चतुर्थी संप्रदाने ' (पा० २ । ३ । १३) । तस्मात् इन्द्रशब्दः
चतुर्थ्यन्तः
मध्यमाय इन्द्राय = यो मध्यमः०० तस्मै इन्द्राय
(१७-१८) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६३९

२१ मन्त्राग्ने संप्रदानेन सामानाधिकरण्यात् = बो मध्यमः 'अस्य चतुर्थपादे संप्रदानेन इन्द्रशब्देन सामानाधिकरण्यं ' तस्मै इन्द्राय ' इति । तस्मात्-मध्यमः इन्द्रः ।

२३-२४ प्रसिद्धतरत्वात्संबन्धस्य = पार्थिवं ज्योतिः अग्निः उत्तमं सूर्यः । एवं पार्थिवोत्तमयोः मुख्यतरः संबन्धः अग्निसूर्यशब्दाभ्यां न जातवेदःप्रभृतिभिः ।

२४ पार्थिवस्य ज्योतिषः जातवेदःप्रभृतिभिः शब्दैः संबन्धो गौणः अग्निना मुख्यः ।

६४०

३ 'इति'शब्दो व्यर्थः ।

९ अवैषम्येण = वैषम्यं भेदं न दर्शयित्वा । समतया । एकेनैव प्रकारेण ।

१२ वायुः सदा बहति । एवं मध्यमस्य क्रिया व्यापारो वा अनुपरतः ।

१३ इतरे ज्योतिषी अग्निसूर्यौ । तद्वत् । अग्नेः दहनक्रिया तथा सूर्यस्य प्रकाशनक्रिया अनुपरता ।

१४ 'अपरिहापितः' इदं 'परिहीणः' इत्यस्य णिच् । मध्यमः मुख्येन इन्द्रशब्देन मुख्यसंबन्धं परिजहाति । काश्चिदन्यः मध्यमम् एतं संबन्धं परिहापयति । मध्यमः संबन्धं परिहाप्यते परिहापितो भवति वा । मध्यमस्य इन्द्रशब्देन संबन्धः अपरिहापितः । अत्र णिच् किमर्थः । 'अपरिहीणः' इत्येव शुद्धम् ।

२१ माहाभाग्यत्वेन (३१) अयं ग. च. ज. पाठः अशुद्धः । 'य त्व' द्वावपि भाववाचकौ प्रत्ययौ ।

६४१

१ प्रतिस्थानं स्थाने स्थाने भिन्नानि नामानि भवन्ति । किंतु तस्याः तस्याः देवतायाः स्वा प्रकृतिः न भिद्यते । यथा ऐकात्म्यम् एकत्वं न जहानि ।

६ 'पञ्चत्विजम्बीणि त्रीणि कर्माणि कुर्युः (कात्यायनश्रौतसूत्रं २४। ४। ४१) होता आध्वर्यवपोत्रीये च (४२) उद्गाता वेष्टः च्छावाकीये (४३) मैत्रावरुणो ब्रह्मत्वप्रातिहर्त्रे (४४)

पत्रं

६-४:१

पङ्क्तिः

- ६ प्रस्तोता ब्राह्मणाच्छंसीग्नावस्तोत्रीये (४५) प्रतिप्रस्थाता आग्नीध्रोन्नेत्रे (४६) कुण्डपायिनामयनं पौर्णमासीदीक्षम् (२१) अत्सस्काः = कुण्डप्रतिरूपकाश्चमसाः (४०) । एतादृशैः कुण्डसदृशैश्चमसैः सोमं पिबन्ति । तस्मात्ते कुण्डपायिनः । तेषाम् अयनं (= सत्रं) संवत्सरं यावत् । अत्र ऋत्विजः पञ्चैव । न चत्वारो नापि सप्त । सप्त दीक्षन्ते इति दुर्गोक्तिः किमाधारा ।
- ७ यस्मात् पञ्च त्रीणि कर्माणि कुर्वन्ति तस्मात् ते पञ्चदश न षोडश । एते (षोडशर्त्विजः) एवाऽऽहिताग्नय इष्टप्रथमयज्ञा गृहपातिसप्तदशा दीक्षित्वा समोप्य अग्निं तन्मुखाः सत्राण्यासते (आश्र० श्रौ० ४ । १) । यास्कमते एक एव चतुर्णां कर्म करोति । अयं को यागः स्यात् । अप्येकस्य सतः (६) = एकस्यापि सतः ।
- १० यः क्षेत्रे धान्यं लुमाति स एव तत्पुनीते । तस्माद्यो लावकः स एष पाचकः । स एव पाचकः परिवेष्टा भोक्ता वा भवेत् । कारक (२५) इत्यादि पाठान्तरम् । कारकः (कर्ता) लावकः पाचकः इत्यादिर्भवति ।
- ११-१२ संविज्ञातपदत्वे = संविज्ञानपदविषये । 'संविज्ञात० ० तेषां कारकादिशब्दैः' (२७-२८) इति पाठान्तरम् । 'अन्यादीनां संज्ञाशब्दानां संविज्ञातपदत्वे तु तेषाम्' इत्यन्वयः । अन्यादयः संज्ञाशब्दाः संविज्ञाता (रूढा) एव । अरूढार्थे ते न कदापि प्रयुज्यन्ते । एवमयं पाठो न साधुः । अग्निः इन्द्रः वरुणः एवमादयः संज्ञाशब्दाः विशिष्टेषु अर्थेषु रूढाः । एषु शब्देषु धात्वर्थो वर्तमानोऽपि व्यवहारे न द्रियते । स नष्ट एव । न तथा लावकपाचकादिषु ।
- १२ कारकादिशब्दैः = कारकादिशब्देभ्यः ।
- १३ अग्रं नञ्ति इत्यादयः अग्निशब्दस्य व्युत्पत्तयः (६८०।९-१२) । अग्रनयनाद्यर्थाः यज्ञे दृश्यन्ते न तु अन्यत्र यज्ञात् । पाकशाल्म्यां ते न विद्यन्ते । तथाऽपि तत्रादिशब्दः प्रयुज्यते । एवम् अग्रनयनादिर्गोऽर्थः ।

पत्रं

६४१

पङ्क्तिः

१४ ते अग्न्यादयः शब्दा अग्न्यादीन् अर्थान् न जहति । करणादिवियोग० = किंतु यत्र कृतिः लवनं पावनं नास्ति तत्र कारकादिशब्दा न प्रयुज्यन्ते । 'जहाति' (२८) ग. च. ज. पाठः प्रामादिकः । 'करणादियोग०' 'करणादिविनियोग०' इति पाठौ प्रामादिकौ । यत्र करणादियोगः करणादिविनियोगो वा तत्र कारकादिशब्दा अवश्यं प्रयुज्येरन् । कदाचित् करणादियोगात् करणादिविनियोगात् वा समनन्तरम् इति विग्रहे यत्क्षणे योगो विनियोगो वा समाप्यंते तदैव इति अर्थः स्यात् । किंतु अयमर्थः क्लिष्टः ।

१९ अगौणत्वम् = प्राधान्यम् । सर्वाणि अभिधानानि प्रधानानि । न तेषु कानिचित् गौणानि कानिचित् प्रधानानि ।

१६ ऐश्वर्यात् = माहाभाग्यात् । उभयथा = माहाभाग्ये कर्मपृथक्त्वे वा । देवतायाः शक्तेः अप्रतीघातः । उभयत्र सैव शक्तिः । सा केनचिदपि न प्रतिहन्यते प्रतिबध्यते वा ।

२० पृथक् पृथक् = अत्यन्तभिन्नाः । औत्पत्तिकेन भेदेन = उत्पत्त्या एव देवता भिन्नाः ।

२३ अभिधाननियमः (६४२।८-१६) ।

२३-२४ अधियज्ञमिति किमर्थं व्याख्येयम् । नायं निरुक्तमूले शब्दः । 'अधियज्ञे' (२२) इत्यत्र 'अधियज्ञम्' इति पाठः स्यात् । अधियज्ञम् = यज्ञे । अस्या देवताया इयं विशिष्टा स्तुतिः इदं विशिष्टम् अभिधानम् (२३) । अस्मात्कारणात् देवता उत्पत्त्या एव भिन्नाः ।

२४ 'हीति हेतौ' (३१) इति पाठान्तरम् । 'पृथग्वि' इत्यत्र 'हि' निपातो हेतुं सूचयति ।

६४२

२ यस्मात् जातवेदसः सूक्ते अग्निच्छिद्रं नास्ति तस्मात् जातवेदा अग्नेर्भिन्नः ।

९ 'इत्यजाभिः' अत्र 'इति' शब्दोऽनवश्यः । यदि प्रमादात् अग्निः वैश्वानरस्तुत्या स्तुयेत तर्हि स व्यभिचारः प्रायश्चित्तम-

पत्रं

६४२

पङ्क्तिः

- ९ हति । यदि अग्निवैश्रानरयोर्न कोऽपि भेदः तर्हि प्रायश्चित्तं किमर्थम् । किमर्थं च विशिष्टानि वाहनानि यदि सर्वा देवता एका एव । प्रायश्चित्तं कस्मिन् ग्रन्थे विधीयते ।
- ६ ' अनुपपन्नं च ' अत्र 'च' शब्दो व्यर्थः । पर्यायवचनत्वे = यदि देवतानामानि केवलानां पर्यायाणां वाचकानि ।
- १० न तथा प्रसिद्धा ।
- ११ स्थितिः = स्थापितः सिद्धान्तः ।
- ११-१२ भिन्नानि अभिधानानि स्तुतिषु एव विद्यन्ते नान्यत्र । तस्मात् अभिधाननियमः स्तुतिनियमेऽन्तर्भूतः । अत एक एव हेतुः न द्वौ । अस्योत्तरम् । यथा स्तुतिषु तथा विधिषु अपि भिन्नान्य-भिधानानि ।
- १६ ' आग्नेयम् ' इति अभिधानेन चोदना विधिः । निर्वपणम् = अष्टाकपालपुरोडाशार्थं शकटात् धान्यम् अन्यर्थमेव निरूप्यते (गृह्यते) । पुरोडाशार्पणमपि अग्नेये एव न जातवेदसे ।
- १७ इति यदुक्तम् एषः अनेकान्तः अनियमः 'अनैकान्तिकः' (२७) इति पाटान्तरम् । अनैकान्तिकः व्यभिचारी । अनैकान्तिको दृष्टान्तः (२७) = को दृष्टान्तः । अत्र न कोऽपि दृष्टान्तो दीयते ।
- १८ प्रतिकर्म = कर्माणि कर्माणि भिन्नानि अभिधानानि यस्मात् प्रकृतिरेव भिन्नानि रूपाणि गृह्णाति ।
- १९ देवताः पृथक् पृथक् इति व्यवस्था स्थितिः । तस्याः कारणं माहाभाग्यम् ।
- २० पृथक्त्वेहेतुः अभिधानभेदः । प्रत्युक्तः = निराकृतः । प्रत्युक्तः = दूषितः (च. द.) ।
- २१ अभिधाने अभिधाने अर्थभेदः देवताभेदः ।
- १७-२१ ' बहवोऽपि विभज्य कर्माणि कुर्युः ' (६३६ । ९-६) इदं दुर्गेण न पठितं नापि व्याख्यातम् । यथा एको बहूनां कर्माणि कुर्यात् तथा बहवोऽपि पृथक् पृथक् कर्म कुर्युः । तस्मात् भिन्ना एव देवताः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१-६-१

१ तत्रास्ति (२२) अयं संधिः लेखकप्रमादादेव । तत् = एकत्वं चास्त्येव इति । गुणतः = न प्राधान्येन । याज्ञिकपक्षे एकत्वं न स्वातन्त्र्येण किंतु कारणतः । सहस्थानम् एकं कारणं संभोगश्च अन्यत् ।

३ तत्र (१) = तस्मिन् पृथक्त्वे सति ' बहवोऽपि विभज्य कर्माणि कुर्युः ' (६३६ । १-६) । तत्र = एवं सति । तेषां बहूनाम् एकत्वं संस्थानेन सहस्थानेन संभोगेन च सह-भोगेन च ।

४ उप = उपपत्तितः कारणैः ईक्षितव्यम् ।

४-९ मनुष्यमनुदेवाः एकस्मिन् स्थाने (पृथिव्यां) तिष्ठन्ति सह भुञ्जन्ति च । तेन तेषामेकत्वम् । यदि भिन्नाः तथाऽपि समानस्थाने वासमात् सहभोगश्च ते एके भवन्ति । ' स्थानैकत्वम् ' इति पाठात् ' संस्थानैकत्वं ' इति पाठः साधीयान् । द्वावपि पाठौ यास्क्रेण किमिति प्रकृत्येते ।

७ तस्याः पृथिव्याः ग्रहणेन । पृथिवी इत्युक्ते ।

९ संभोगः = सह एकत्र भोगः । यथा सह एकत्र वासः तथा । मनुष्यमनुदेवा एकत्र वसन्ति एकत्र च भुञ्जन्ति भुञ्जते वा । मनुष्याः पशून् भुञ्जते । देवाः द्वावपि भुञ्जते । पशवः मनुष्यान्सेवन्ते । पशवः मनुष्याश्च देवान्सेवन्ते ।

९-१० ' इतरेतरोपकारित्वम् ' इत्यस्य ' समानकार्यत्वम् ' इत्यर्थः कथं स्यात् । द्वौ परस्परमुपकुरुतः । एतत् कार्यं न समानम् । एकः अन्नदानेन अन्यमुपकरोति । सोऽन्य आशिषा तमुपकुर्यात् ।

११ ' पृथिव्याः पर्जन्येन ० ० लोकस्य ' अस्य कोऽर्थः । पर्जन्य-वाय्वदित्यम् । पृथिवीः भुञ्जन्ति । अग्निश्च इतरं लोकं स्वर्ग-लोकम् । संभोगशब्दस्य कोऽर्थः । इतरेतरोपकारित्वं सहकार्यता विषयो संभोगो वा । मनुष्यमनुदेवा इतरेतरम् उपकुर्युः । पृथिवी पर्जन्यं कथमुपकुर्यात् । इतरः लोकः अग्निं च कथमुपकुर्यात् । किमेतेषां सहकार्यम् । पृथिवी सती इति कृत्वा पर्जन्यवाय्वा-

पत्र

६४३

पङ्क्तिः

११ दित्याः तां किं बुद्धते । द्यौश्च स्त्री । तां किमग्निर्भुङ्क्ते ।
सर्वे देवाः संभोगेन एके । स्त्रीपुरुषयोः सहभोगः । तथा पृथिवी-
पर्जन्यवाद्यादित्यनम् । संभोगशब्दस्यार्थो न स्पष्टः ।

१४ अयः = पर्जन्यवाद्यादित्याः (निरु० १८७ । १६-१७) ।

१७ 'समीरयति' इत्यस्य स्थाने (तै० सं० २ । ४ । १० ॥
कठकसं० ११ । १०) इत्यत्र 'उदीरयति ।' (मैत्रा० सं० २
। १ । ८ ॥ २ । ४ । ८) इत्यत्र 'ईष्टे' । 'समीरयति'
अर्थं पाठो द्युमोण कुम्भोपलब्धः ।

१७ दिवं जिवन्त्ययः (निरु० १९९ । ९-१०) ।

१९ मनुष्यपशुदेवानां तथा पृथिवीपर्जन्यवाद्यादित्यानां तथा दिवः
अग्नेश्च कीदृशम् एककार्यत्वम् । दिवः अग्नेश्च वृष्टिः एककार्यं
स्यात् । मनुष्यपशुादीनां किं तदेकं कार्यम् । वाक्तं (भक्त्या
लक्षणया प्राप्तं) गौणम् ।

६४४

३ नराः परस्परतो भिद्यन्ते । किंतु तेषां राष्ट्रमिति एकत्वम् ।

४ पृथिव्यां भवः अग्निः एक एव । तस्य जातेवेदा इत्यादयो
भेदाः । एते परस्परतो भिन्नाः । किंतु सर्वे अग्नौ अन्तर्भूताः ।

७ किं गौणं किं प्रधानम् इति अपेक्षा भावना पुरुषस्य पुरुषस्य
बुद्धौ अवलम्बते । सा बुद्धिश्च तस्य तस्य अनुरागविशेषेण
रज्यते । क्रस्मैचित् भेदो रोचते क्रस्मैचित् अभेदः । विशि-
ष्टानुरागेण बुद्धिः प्रवर्तते इदं गौणम् इदं प्रधानम् इति च
निश्चिनोति । पुरुषानुरागविशेषात् पुरुषबुद्ध्यपेक्षा । तस्यां च
गुणप्रधानापेक्षा । इदं वाक्यं क्लिष्टम् ।

८ गुणीकृत्य = तदङ्गप्रत्यङ्गभावेन कल्पयित्वा (निरु० १३९
१६-२०) ।

१० ' इति ' शब्दो व्यर्थः । त्रित्वे नानात्वैकत्वे गुणीकृत्य त्रित्वं
पश्यन्ति ।

११ नानात्वं पश्यन्ति इति शेषः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६४४

१२ प्रतिपत्तृ = ज्ञानृ श्रोतृ । 'प्रतिवक्तृ' (२७) इति पाठान्तरम् ।

१३ अस्य शब्दस्यायमर्थः इति अन्वयः । नाथम् इति व्यतिरेकः । इदमर्थज्ञानं तत्तद्वुद्धचपेक्षम् । वक्ता विशिष्टेषु अर्थेषु शब्दान् प्रयुनक्ति । श्रोता तान् शब्दान् तेषु अर्थेषु गृह्णीयात् न वा ।

१५ अकृतकं = स्वाभाविकम् (१४) ।

अप्रच्याव्यमानौ तस्मात् संबन्धात् । यदा शब्दः अस्वाभाविके अर्थे प्रयुज्यते तदा स स्वाभाविकात् अर्थात् प्रच्याव्यते । अभिधाशक्तिः स्वाभाविकमर्थं सूचयति । लक्षणा अस्वाभाविकम् । लक्षणायां शब्दः स्वाभाविकात् अर्थात् प्रच्यावते वक्त्रा च प्रच्याव्यते ।

१६-१७ यथा अग्नेः अवभास्यताशक्तिः तथा शब्दस्य अभिधावकशक्तिः । यथा वस्तुनः अवभास्यताशक्तिः तथा अभिधेयस्य अभिधेयताशक्तिः ।

१७ व्यवधानं = द्वयोर्वस्तुनोर्मध्ये निहितं प्रकाशतिरोधानं यथा दारुफलकम् ।

१७-१८ पदवाक्यप्रमाणानां वैदिकानां कः इमं शब्दार्थयोः अकृतकं स्वयमपि अधीतं संबन्धं विकल्पते (संबन्धमन्तरेण स विकल्पं प्रकटयति । अयमर्थः स्यादयं वेति वदति) । न कोऽपि । सर्वः स्वाभाविकमेव संबन्धम् अनुसरति । अत्र 'न' 'हि' शब्दौ त्यक्तव्यौ । अन्यथा न कोऽपि अर्थो लभ्यते । अथवा । 'कः' इत्यत्र 'कश्चिदपि' शब्दो युक्तः । स्वयमप्यधीतं = वैदिकः कोशेभ्यः ग्रन्थेभ्यः व्यवहाराच्च शब्दानाम् अर्थान् अधीते निश्चिनोति च । 'अधीतकः' (२९) अयं शब्दो नैकस्मिन्नपि कोशे विद्यते । ग. ज. पुस्तकयोरेव 'प्रमाणानाम्' (१८) इत्यस्यानन्तरं विरामः । च. व्यतिरिक्तेषु इतरेषु 'विकल्पते' इत्यस्यानन्तरम् । च. पुस्तके 'आत्मभावानुशयवशेन' इत्यस्यानन्तरम् । इदं

पङ्क्तिः

१७-१८ पुस्तकं ट. पुस्तकानुसारेण शुद्धीकृतं तेन स्थाने स्थाने मूल-
पाठा नष्टाः ।

१८ आत्मनो भावः (भावना श्रद्धा) स तस्य अनुशयः अनपार्या
संस्कारः । तद्वशेन । यादृशी आत्मभावना तादृशं वेदार्थविवरणम् ।

१९ आत्मवित् अध्यत्मदृष्ट्या विवृणोति । नैरुक्तः अधि-
दैवदृष्ट्या । याज्ञिकः अधियज्ञदृष्ट्या । अविपर्यासिनीम्
वेदस्याभिधानशक्तिम् = वेदस्य अर्थाभिधानशक्तिम् । एकैव
(निश्चिता) । न तस्यां कश्चिदपि विपर्यासो भिन्नभिन्नार्थ-
करणसंभवः । तथाऽपि विपर्यासः भिन्नार्थता शक्या इति एते
त्रयो मन्यन्ते । अतः तैः कृतानि विवरणानि परस्परतो विप-
र्यस्यन्ते भिद्यन्ते ।

२१ सर्वथाऽपि = सर्वमपि । देवतायाः सतत्त्वं तत्त्वं निश्चितः
सिद्धान्तः स्वरूपमन्तरेण । भेदे सतत्त्वं सिद्धान्तः अभेदे च ।
किंरूपौ भेदाभेदौ । भेदः कदा अभेदः कदा ।

२२ यथाग्रहं = वक्तुः प्रतिपत्तुश्च ग्रहणशक्यनुरूपम् ।
प्रख्यातिम् उपयत् = जगति प्रसरत् ।

२२-२३ स्तुतिरूपेण मन्त्रैराविष्क्रियते । देवाः स्तूयन्ते । तासु स्तुतिषु
इन्द्रो युज्यते इत्येकदा उच्यते । अत्र भेदः । ' न त्वं
युयुत्से ' इत्यभेदः । इन्द्रः तस्य च शत्रवः इति भेदो नास्ति ।
सुद्धवर्णनं केवलं रूपकम् । तस्य हेतुः स्तुतिः ।

२३ आत्मनः अर्थसतत्त्वं तत्त्वम् । तथाभूतं = सत्यम् । आत्मनः
सत्यं रूपं कीदृशम् । एतदपि मन्त्रैराविष्क्रियते । स्तुतौ
भेदः । अन्यत्र अभेदः । ' आत्मनः ० भूतम् ' इदम्
' आविष्क्रियते ' इत्यस्यानन्तरं वार्तितुमर्हति । अथवा इदमन-
वश्यं यस्मात् ' भेदाभेदवर्ति देवतासतत्त्वम् ' इत्यास्मिन् अन्त-
र्भूतम् ।

१ तस्मादेतद्विषयाऽभ्युक्तम् । ' न त्वं युयुत्से कतमच्च नाह न तेऽमित्रो
मघवन् कश्चनास्ति । मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाह शत्रुं
न नु पुरा विवित्से (शत० ब्रा० ११ । १ । ६ । १०) ॥

पत्रं

६४६

पङ्क्तिः

३ अध्यात्माद्यौ = अस्यात्माधिदेवाधियज्ञेषु । अध्यात्मे आत्मनः
 ऐकात्म्यम् । अधिदेवे त्रित्वम् । अधियज्ञे नानात्वम् । एवं स्वे
 स्वे विषये तस्मिन् तस्मिन् विषये आत्मनो रूपं निष्ठितं निश्च-
 येन स्थितम् । किंतु परमार्थतया सर्वेषां निष्ठा ऐकात्म्ये एव ।
 तत्र वाचः पारिसमाप्तिः । ऐकात्म्यात्परतो न किञ्चिदप्यस्ति ।
 ऐकात्म्यादेव वाचो निवर्तन्ते । ऐकात्म्यं को निरूपयेत् ।

अस्मिन्ग्रन्थे ' यथा पृथिव्यां मनुष्याः • • लोकश्च ' इत्यत्र कश्चित् शब्दव्यत्यासो जातः स्यात् । देवाः दिवि अन्तारिक्षे वा । तेषां पृथिवी न वासस्थानम् । कदाचित् ईदृशो मूलपाठः स्यात् । ' यथा पृथिव्यां मनुष्याः अन्तारिक्षे पक्षिणः दिवि देवाः इति स्थानैकत्वं । संभोगैकत्वं च दृश्यते । यथा पृथिव्याः पर्जन्येन वाय्वादित्याभ्यां च संभोगः । अग्निना चेत- रस्य लोकस्य ' । मनुष्याः परस्परतो भिन्नाः । तथा पक्षिणो देवाश्च । तथाऽपि तेषां पृथिव्यामन्तारिक्षे दिवि च सहवासदेक- त्वम् । अत्र संभोगो नास्ति । पर्जन्यवाय्वादित्याः पृथिवीं स्त्री इति कृत्वा भुञ्जते । अग्निश्च दिवम् । द्यौरपि स्त्री । यथा संभोगः स्त्रीपुरुषयोः । स्त्रियः पुरुषेभ्यो भिन्नाः । तथाऽपि तेषां संभोगेन एकत्वम् । एतादृशे एकत्वे नरराष्ट्रम् उदाहरणम् । नरा भिन्नाः । तथाऽपि ते एकस्मिन् राष्ट्रे वसन्ति । तेन तेषामे- कत्वम् । अस्मिन् उदाहरणे सह स्थानेन एकत्वं न संभोगेन ।
 १८ इत्येतत् वचनं विरुध्यते । विकरणं विविधाकारग्रहणं तेषां धर्मः ।
 तेन आकारनियमो नास्ति (१६-१७) ।

२० प्रकृतिः मूलस्वभावः मूलस्वरूपम् । सत्ता = अस्तित्वम् । मूल- प्रकृतौ विकरणमवलम्बते । अन्यथा कस्य विकरणम् ।

२२ उभयं साकारत्वं निराकारत्वं च । उभयः भागो विद्यते एषाम् ।
 ' भावित्वात् ' (२९) इति पाठे उभयः भावो विद्यते एषाम् ।

६४६

३ उदस्त = त्यक्त ।

९ अविषयं = विषयस्याभावः । नञ्समासः । तस्य सिद्धिः ' रक्षो- हागमल्लखसंदेहा इति भाष्यवचनेन ' अद्भुतायामसंहितम् ' इति वार्तिकेन च । अव्ययीभावसादृश्येन नपुंसकम् ।

षट्त्रं

पङ्क्तिः

६४६

९-१० पुरुषस्य विधा इव विधा अस्मिन् त पुरुषविधः । तस्य भावः पौरुषविध्यम् । 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्माणि च' (पा० ५ । १ । १२४) इत्यनेन ष्यन् । विधा = प्रकारः ।

११ यादवभिधानं देवतापक्षवादिनां साक्षिकामाम् = यावन्ति अभिधानानि तावत्यो देवताः इति पक्षः । तदन्तरेण ये वदन्ति तेषाम् । अयं शब्दसमुदायो न सुरक्षितः । 'यावदाभिधानं देवता इति वादिनाम्' इति सुवचम् ।

१२ यथा अग्निः प्रत्यक्षः तथा जातवेदाः पर्जन्यश्च । रुद्रेन्द्राश्विनः अप्रत्यक्षाः । न पर्जन्यमातवेदसौ ।

१३-१४ रुद्रः इन्द्रः इत्यादयः शब्दाः श्रूयन्ते । तेन शब्दाः प्रत्यक्षाः । न तु देवताः ।

१४-१५ कानिचित् अभिधानानि आकृतिमतः षट्कार्थान् अभिदधते, कानिचित् अनाकारार्थान् अभिदधते ।

१७ तत्रैतद्भवति = अयं प्रश्नः उत्पद्यते ।

१८ अर्थस्य अप्रत्यक्षत्वात् = रुद्रादयो देवा न दृश्यन्ते ।

१९ वायुः प्रत्यक्ष इत्युच्यते (१२) । अत्र कथम् अप्रत्यक्षः ।

६४७

१ तत्रैतद्भवति (६४६ । १७) ।

१-२ देवाः प्रत्यक्षं द्रव्यमेव ।

२ संशयम् उपोद्धृत्य तस्य संशयस्य व्युत्क्रमाय निराकरणाय ।

३ पक्षः = चेतनपक्षः ।

४ मन्त्रेषु प्रत्ययो ज्ञानं यस्य । अस्तित्वस्य देवाः सन्ति इत्यस्य ज्ञानस्य किं प्रमाणम् । मन्त्राः ।

६ प्रथमं देवतास्तित्वम् । ततः मन्त्राणां तद्देवतात्वम् । मन्त्रे का देवता अयं प्रश्नः देवतास्तित्वे अवलम्बते ।

७ तत्प्रत्ययः = मन्त्रप्रत्ययः । यदि च इवम् = यदि देवतास्तित्वं मन्त्रप्रत्ययम् ।

८ देवतायाः संविज्ञातं पदं त्वं नाम । अग्न्यादीनां रूपाणि तत्तन्नामभिः संबद्धानि ।

पत्रं

६४७

पङ्क्तिः

- ९ एकं मतम् । न तु मन्त्रेषु दर्शनम् । दर्शनं = मन्त्रेषु केषुचिद् देवतानां पौरुषविध्यं दृश्यते ।
- ११ चेतनावत् + वत् = चेतनावताम् + इव ।
- १४ पुरुषाकारविग्रहाः = पुरुषविग्रहाः (१०) विग्रहः किमाकारः । पुरुषाकारः ।
- १५ 'नास्ती'ति अत्र उच्यते । किंतु (१८) ' सत्यपि चैतन्ये ' इत्यनेन तत् स्वीक्रियते ।
- १६ चैतन्यं विवेकात् भिन्नम् । आसन्ना समीपवस्तुषु वर्तमाना चेतना येषाम् । इदमसत्यं यस्मात् गवाद्यः अप्रत्यक्षान् अनासन्नानपि पदार्थान् चेतयन्ते । ग. च. ज. पुस्तकेषु ' क्षमाः ' इत्यस्यानन्तरं विरामो न वर्तते । ' आसन्नचेतनाः ते तु न विवेकक्षमाः ' इत्यन्वयः । किंतु विरामोऽवश्यो यस्मात् ' आसन्नचेतनाः ' इति हेतुः अविवेकस्य । द्वयोर्बहुषु वा वस्तुषु किं स्वीकार्यं किं न इति विचारणा विवेकः । विवेकाय स्मृतिरवश्या । सा पशुषु नास्ति । इदमपि असत्यम् । गवाद्यः स्वं स्थानं बहोः कालादनन्तरमपि प्रतिनिवर्तन्ते । इदं मे गृहमिदं न इति विवेक्तुं तेऽपि समर्थाः ।
- १९ श्वस्तनम् आगामि वृत्तं वस्तु ते न जानते । अस्य किं प्रमाणम् । तेऽपि श्वस्तनं जानीयुः । अश्वाद्य आगामि युद्धं ज्ञात्वा स्फूर्तिं दर्शयन्ति । लोकः = स्वर्गः । अलोकः = नरकः ।
- २१ मर्त्येन = ज्ञानकर्मरूपसाधनेन ।
- २२ हिताहितपूर्णज्ञानाय विशिष्टचैतन्यमवश्यम् । न सामान्यं यस्मात् गवादीनां सामान्यं चैतन्यं वर्तते । नियम्यते - गृह्यते । किमर्थमीदृशः पुरुष एव गृह्यते । यस्मात् देवतानां पौरुषविध्यमस्माभिः साधयितव्यम् । नियम्यते उपमानत्वेन । पुरुषा इव देवताः ।
- १ ' श्रूयन्ते ' (२३) इति पाठान्तरम् । यथा पुरुषा अर्थान् चेतयन्ते इति श्रूयते तथा । किंतु पौरुषविध्ये स्तुतिः कारः न श्रवणं (जगति ख्यातिः) ।

६४८

पत्रं

६४८

पङ्क्तिः

३ ' पौरुषविध्यमुपपद्यते चेतनावत्सदृशस्तुतिभिः । तत्प्रति ताः कारणं भवन्ति' (२९-२६) इति पाठान्तरम् । तत्प्रति = पौरुषविध्यं प्रति । ताः = स्तुतयः ।

४ अभिधानानि = परस्परम् उक्तप्रत्युक्तानि ।

५ परस्परतः संबद्धानि = ' कया शुभा ' इत्यास्मिन् सूक्ते मरुतः ' कस्त्वमिन्द्र ' इति पृच्छन्ति । इन्द्रः तान् प्रतिवदति । मरुदुक्तिः इन्द्रप्रत्युक्तिश्च परस्परसंबद्धे । यथा प्रश्नः तथोत्तरम् । संवादसूक्तानि कयाशुभादीनि (निरु० ६३२ । १-३) । उक्तानि प्रत्युक्तानि च (४) पौरुषविध्ये कारणं भवन्ति (३) । अभिधानानि = नामानि यथा पुरुषाणां मनुष्याणां नामानि रामलक्ष्मणादीनि तथा देवतानाम् । तस्मात् देवताः पुरुषविधाः । अयमर्थः सरलः । रामलक्ष्मणादीनि न पशूनां नामानि ।

८ पौरुषविधिकैः = पुरुषस्य अयं पौरुषः । ' तस्येदम् ' (पा० ४ । ३ । १२०) । पौरुषः विधिः विधा प्रकारो येषाम् । ' शेषाद्विभाषा ' (पा० ९ । ४ । १९४) इत्यनेन कप् । पौरुषी विधा यस्य स पौरुषविधः । तस्य भावः पौरुषविध्यम् । एवमपि विग्रहः पौरुषविध्यस्य स्यात् । ' पौरुषविधत्वे ' (२७) इति पाठान्तरम् ।

१९-१६ अश्वमेधशेषभूता एकादाशिनः पशवः । एकादशानां पशूनां समूहः एकादाशिनी (तै० सं० ९ । ९ । ११) ।

२० ऋष्वौ = बलिष्ठौ । स्थविरस्य = स्थिरस्य ।

६४९

४-९ तेषां मन्त्राणाम् अर्थः लक्षणं यस्य । निरुक्तशास्त्रं मन्त्रार्थ-लक्षणभूतम् ।

६-७ अश्वगृहजायादिभिः संयोगः पुरुषविधत्वं दर्शयति । पौरुष-विध्ये द्रव्याणि आवश्यकानि । वस्तुतः पौरुषविधैः पौरुषविधिकैः इत्येतयोरेक एवार्थः ।

पत्रं

६९०

पङ्क्तिः

१ कल्याणीः = प्रशस्तरूपा ।

ते गृहं सुरणं (६४९ । १९) = तत्र गृहे शोभनं रमणं भोगः वर्तते । 'सुष्ठु रमणीयं पारिभोगयोग्यं पर्यङ्कास्तरणादि इति स्कन्दस्वामी' (ट.) ।

२ 'दक्षिणावत्' 'विमोचनम्' इत्यस्य विशेषणम् । वाजिनः वाजयुक्तस्य धनपूर्णस्य रथस्य दक्षिणावत् धनवत् विमोचनम् अध्वनः अन्तः विश्रान्तिस्थानम् । यत्र रथः अश्वा वा विमुच्यन्ते यत्र नरा देवा वा अध्वनोऽन्ते विश्रान्तिन्ति । यत्र अध्वगमनस्य अन्तः तद्विमोचनम् । अत्र वाजी रथः नाश्वः । 'विमोचनम् = यत्राश्वा विमुच्यन्ते तत् । दक्षिणावत् = खाद्यपानयुक्तम्' (सायणः) ।

१४ रातं = दत्तम् । अस्माभिः मनसा रातम् ।

१५ 'इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि' इति धान्यग्रहणकाले तत्संस्कारकाले च इन्द्र उद्दिश्यते । पूर्वं निर्वपणम् । तस्याऽऽदौ संस्कारकालः । हविर्धानशकटे वर्तमानस्य ब्रीह्यादिद्रव्यस्य अग्निहोत्रहवण्यं मुष्टिमात्रं निर्धीयते । ततश्च मन्त्रेण काञ्चिद्देवतामुद्दिश्य शूर्पे प्रक्षेपः = निर्वापः ।

६९१

१-२ 'आश्रुत्कर्ण' इत्येकं पदम् । न 'आश्रुत्कर्ण' इति द्वे ।

३-४ नू चित् इति अवधारणार्थे । मे गिरः दधिष्व गृहाण एव ।

५-६ युजः = सरुयुः । युजः = 'त्वद्युक्तस्य त्वां प्रति आदृतस्य पुनः पुनरपि ब्रुवतः' अयमर्थो दुर्गेण स्वमनस उत्पाद्यते । अन्तरं कृष्व = मनसि धारय ।

८ अद्याशृणुहि = अद्धि (६९० । ११) + आशृणुहि । ऋणि तु 'श्रुधी' । (६९० । १९) न आशृणुहि । अद्धि इत्यत्र अदनाय श्रुधी इत्यत्र श्रवणाय आमन्त्रणं 'हि' इति लोट् प्रत्ययेन । अनयोर्मन्त्रयोर्विनियोगः इत्यन्वयः । एते मन्त्रः अदनाय अपरः श्रवणाय विनियुज्यते । विनियोगात् अदनश्रवणे पूर्वे कथं स्याताम् । विनियोगः अदनश्रवणपरः ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ६९१ < 'अद्धिं श्रुधि इति आमन्त्रणेन अदनाय श्रवणाय च अन-
योर्मन्त्रयोर्विनियोगः' इति सुवचम् ।
- ९-१० गवादयोऽपि एतादृशम् आमन्त्रणं जानते ।
- १०-११ कार्याणि अदनश्रवणादीनि तेषां करणानि मुखश्रोत्रादीनि तेषां
संनिवेशो यथा मनुष्येषु तथा देवेषु ।
- " ११-१२ यदि कार्यकरणानि न स्युः विशिष्टज्ञानमपि न स्यात् । 'कार्य-
कारण' (२९) इत्यपपाठः ।
- १४ अपरं मतम् ।
- २१ अषि तु यत् दृश्यते अपुरुषविधं तत् (६९२ । १३) इत्य-
न्वयः । या या देवता दृश्यन्ते तासां पुरुषाकारो नास्ति ।
- ६९२ १५ अतः = अपुरुषविधत्वात् । अन्यथा = पुरुषविधा इति अभ्यु-
पगमे स्विकारे ।
- १८-१९ केषित् मनुष्याः आकारिणः केषिन्न इति नोपपद्यते ।
- २१ चेतनाबतां स्तुतिः विद्यते एषां ते चेतनाबस्तुतिमन्तः ।
- ६९३ ६ हरितेभिरासभिः (१) = हरिद्वर्णैः आस्यैः ।
- < विष्ट्री = विष्ट्रा । अत्र क्त्वाप्रत्ययः । नेदं नाम । विष्ट्री = यशः
संपाद्य । सुकृत्यया = अभिषवकर्मणा ।
- १० 'आशत = आशितवन्त इति स्कन्दस्वामी' (ट) ।
- १८ संकल्पतः = कविकल्पनया ।
- २१ यथाभूता = यथार्था सत्या । रथस्य अध्वानां च उपपत्तिः
प्राप्तिः संबन्धः संयोगः ।
- ६९४ ४ अनुक्रमण्यां प्रियमेधः । न प्रियमेधाः ।
- ६ अध्विनम् = अध्वयुक्तम् । सिन्धुः नदः न नदी । अस्थ
नदस्य । न रथस्य । (१०) ।
- < आजवने = आ अभिव्याप्तौ । आ सर्वत्र जवनं वेगः यस्मिन् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६५४

११ 'स्वयंशसः स्वायत्तकीर्तिः' (२९) इति पाठान्तरम् । इदं सायणभाष्यात् गृहीतम् ।

१२ 'रथमिव अश्विनं' कोऽर्थः ।

१३ रूपकं प्रवादः रूपं यासाम् ।

१६ अज्ञानस्य शक्तिः क्रिया च ।

१० उभये हेतवः एव प्रामाण्यम् । वा + अपुरुषविधानाम् ।'

२३ परे = देवाः । अथवा । क्षितिजलादिभ्यः परे भिन्नाः ।

२४ अनुग्रहः विरोधदूरीकरणेन । पृथिव्यादयः अपुरुषविग्रहा इति प्रत्यक्षम् । आगमे वेदे तु पौरुषविध्यम् ।

६५५

१ 'इदमेतेन' इत्यस्य स्थाने शतपथब्राह्मणे 'इदं मेऽनेन' । 'स ह वा आत्मयाजी यो वेदेदं मेऽनेनाङ्गं संस्क्रियत इदं मेऽनेनाङ्गमुपधीयत इति । स यथाऽहिस्त्वचो निर्मुच्यत एवमस्मान्मर्त्याच्छरीरात्पाप्मनो निर्मुच्यते । स ऋद्धमयो यजुर्मयः साममय आहुतिमयः स्वर्गं लोकमभिसंभवति' (शत० ब्रा० ११ । २ । ६ । १३) । उपधीयते = स ऋद्धमयो यजुर्मय इत्यादिर्भवति । इदं जन्मप्राप्तमङ्गं संस्क्रियते । अन्यच्च वेदाहुतिमयं प्राप्यते । 'यद्वै यजमानोऽग्निं चिनुतेऽमुष्मै तल्लोकाय यज्ञेनाऽऽत्मानं संस्क्रुते । एतदु ह यज्ञियं कर्मासंस्थितमा श्मशानकरणात्' (शत० ब्रा० १३ । ८ । १ । १७) ।

३ 'यदष्टा (कपालानि) उपदधात्यात्मानं वा एतद्यजमानः संस्क्रुते । तं संस्कृतममुष्मिल्लोकेऽनु परैति' (मैत्रा० सं० ४ । १ । ८ ॥ काठक सं० ३१ । ६) । तं संस्कृतमात्मानं यजमान उपैति । एवं यज्ञो यजमानस्य कर्मात्मा (६५४ । २४) । कर्मणा संपादित आत्मा । एकं जन्मना प्राप्तं शरीरम् । अपरं कर्मणा प्राप्तम् ।

५ समयः = सिद्धान्तः ।

६-७ एवं वीर्यबलोत्सिक्तैर्भूरियत्नैर्महासुरैः ।

पीड्यमाना मही राजन् ब्रह्माणमुपचक्रमे । (महाभा० आदि० ६४ । ३७) ।

पत्र
६९९

पङ्क्तिः

६-७ ततो मही महीपाल भारता भयपीडिता ।

जगाम शरणं देवं सर्वभूतपितामहम् (३९) ॥

८ अभ्यागच्छत्तदा विप्रो वासुदेवधनंजयौ ।

बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ॥

हरिपिङ्गोज्ज्वलश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः ।

तरुणादित्यसंकाशश्चीरवासा जटाधरः ॥

पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव (२२४।३०-३२) ।

नाहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मा निबोधत (२२५।९) ॥

स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः ।

दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया (१०) ॥

(स भगवान् विप्रः) -

तैजसं रूपमास्थाय दावं दग्धुं प्रचक्रमे (२२७।३३) ।

दहतस्तस्य च वभौ रूपं दावस्य भारत ।

मेरोरिव नगेन्द्रस्य कीर्णस्यांशुमतोऽशुभिः (३६) ॥

स मांसरुधिरौघैश्च वसाभिश्चापि तर्पितः ।

उपर्याकाशगो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥

दीप्ताक्षो दीप्तजिह्वः संप्रदीप्तमहाननः ।

दीप्तोर्ध्वकेशः पिङ्गाक्षः पिबन् प्राणभृतां वसाः (२३०।३९-३६) ॥

११ इत्येवमादिना आख्यानसमयः प्रदर्शयते ।

१२ तदेतत् = अयं विषयः ।

१३ उभये विधे यस्य स (विषयः) उभयविधः । तस्य भावः औभयविध्यम् । ' गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ' (पा० ९ । १ । १२४) कर्म अर्थः (प्रयोजनं) यस्य तत् कर्मार्थम् औभयविध्यम् । ' कर्मार्थात्मौभयविध्यम् ' (२६) अयं प्रामादिकः पाठः । ' कर्मार्थात्मौभयविध्यम् ' इति इष्टम् । कर्मार्त्तमे औभयविध्यम् ।

१४ ' माहाभागे सति ' इत्यनन्तरम् ' ऐश्वर्यात् ' व्यर्थम् । कथमिव = क्वत् केन कारणेन । इव प्रार्थनायां स्वत्वर्थे वा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६९९

१९-१७ महाभारतादिकथानाम् आख्यातृणाम् । ते नानावस्थामु
नानारूपैर्वर्तमाना अपश्यन् अवर्णयन्श्च । एवम् ऋषयः ।
उभयत्र दर्शनं वर्णनरूपेण (इतिहासेषु) स्तुतिरूपेण मन्त्रेषु
सफलम् । ' दर्शनवत् ' इत्यस्य स्थाने ' वर्णनवत् ' इष्टम् ।
सर्वथैव = मूर्तेः अमूर्तेर्वा एकत्वेन बहुत्वेन वा स्तुतौ न
कोऽपि दोषः ।

१८-१९ तद्रूपम् तेन तेन रूपेण इच्छाशक्त्या वर्तमानानाम् ।

१९ निन्दा हीना न = यदा देवा निन्द्यन्ते तदा ते हीना इति न
ग्रहीतव्याः ।

२० अग्न्या = श्रेष्ठा ।

२०-२१ बुद्धिशक्त्याः क्षयेऽपि स्तोतुं स्तवने यो निश्चयः तं न
त्यजन्ति । यस्मात् स्तवनादृते अन्यां गतिं न पश्यन्ति ।

६९६

४ ' गायत्रो ह्यग्निर्गायत्रच्छन्दाः ' (मैत्रा० सं० १।९।९) ।
गायत्र्यामृचि अच्युदं साम रथंतरं यथा ' अभि त्वा शूर
नोनुमः ' (ऋ० सं० ८ । ३२ । २२) । ' ऋचां
स्तोमं समर्धय गायत्रेण रथंतरम् ' (मैत्रा० सं० २।७।१) ।
त्रिवृत्स्तोमे तिस्र ऋचो गेयाः । तस्य गानस्य त्रिविधः प्रकारः
(ताण्ड्य० ब्रा० २ । १) प्रथमा मध्यमा उत्तमा । अयं
प्रथमः प्रकारः उद्यतीसंज्ञकः । अत्र एकैका ऋक् त्रिवारं गेया ।
स एव ऋचां क्रमः । किंतु तासामनावृत्तिः । अयं द्वितीयः
प्रकारः पारिवर्तिनीसंज्ञकः ।

प्रथमा मध्यमा उत्तमा } अयं तृतीयः प्रकारः कुला-
मध्यमा उत्तमा प्रथमा } यिनीसंज्ञकः ।
उत्तमा प्रथमा मध्यमा }

१० देवताप्रयाधिकारः आकारचिन्तनेन व्यवहितः । तस्य अधि-
कारस्य कश्चित् विशेषः वक्तुम् इष्टः । तस्य अधिकारस्य अनु-
स्मृतये अनुसंधानाय । तत् (११) = देवताप्रयाधिकारम् ।
प्रकरोति = तत् स्मारयति । अनुस्मृतिः विशेषविवक्षार्था ।

पत्रं
६९६

पङ्क्तिः

१० इदं वाक्यम् अतीव क्लिष्टं संदिग्धं च । 'तत्' शब्दः
त्रिवारं संदिग्धत्वेन प्रयुक्तः ।

१३-१६ भक्त्या गौणत्वेन आश्रितत्वेन साहचर्यम् ! न समतया
प्राधान्येन वा । एतानि सर्वाणि अग्न्याश्रितानि । अथवा ।
भक्तये साहचर्यम् । अग्निं भजेमहि इत्यनेन उद्देशेन तेन सह
चरन्ति । लोकादीनाम् अग्न्यादिभिः भक्तिमूलं साहचर्यम् ।

१७ संविज्ञातदेवतापदानि = रूढानि अग्न्यादिनामानि । येषु तानि
रूढनामानि सन्ति न तेषु आश्रितवस्तुक्त्थनेन देवता तर्क्येत ।

६९७

२ अग्नौ भक्तिः आश्रितत्वं येषां तानि । अथवा । भज्यते सेव्यते
इति भक्तिः । अग्निः भक्तिः येषां तानि । 'भक्तिः' (पा०
४ । ३ । ९९) ।

७-८ इळा (निघ० १ । १४) पृथिवी (निघ० ९ । ३ । २६)
अग्न्यायी (निघ० ९ । ३ । २८) इति निघण्टुक्रमः ।

९ तेन अग्निना समम् आख्यायानं नाम यस्याः । 'पृथिवीति'
इत्यत्र 'इति'शब्दो व्यर्थः ।

१० यद्यपि इळा इति पृथिव्या नामधेयं तथाऽपि तत् परोक्षं न
स्पष्टम् । तस्मिन्नामधेये पृथिव्या न किञ्चिदपि चिह्नम् ।

१२-१३ 'आ नो' यज्ञं भारती तूयमेत्विळां मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्त्रो देवीर्बाहीरिदं स्योनं सरस्वती स्वपंसः सदन्तु ' ॥ अस्य
सूक्तस्य देवता आप्रियः । तस्मादिदमाप्रीसूक्तम् (१०) ।
'भारती इळा सरस्वती' इमाः 'तिस्त्रो देवीः' आप्रियः ।
आप्रीमध्ये (१०) = आप्रीसूक्तमध्ये । अस्मिन् मन्त्रे इळा
भारत्या अनन्तरं श्रूयते । तेन सा अन्तरिक्षस्थाना । तत्कथं
पृथिवीस्थाना (१४) ।

१४-१९ अनुयाजाः = प्रधानयागानन्तरम् इज्यते यैरिति व्युत्पत्त्या
होत्रा पठ्यमाना याज्यमन्त्राः । 'देवादयोऽनुयाजाः (आश्व०
श्रौ० १ । ९) वीतवत्पदान्ताः (तथैव) । त्रयः (तथैव) एते
अनुयाजाः (मैत्रा० सं० ४ । १३ । ८) इत्यत्र वर्तन्ते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६९७

१९-१६ सरस्वती इमम् अन्तरिक्षलोकं रुद्रैः अस्पृशत् ।

१६ अग्निः इहैव पृथिवील्लोके एव वसुमत्या इळया यज्ञम् आवीत् अरक्षत् । अस्य मन्त्रस्य सायणेन (तै०ब्रा० ३ । ६ । १३ । ७) इत्यस्य भाष्ये अयमर्थः कृतः । ' भारती आदित्यैः सह द्यां स्पृशतु । हविषा देवान् तर्पयितुं तत्र गच्छतु । सरस्वती रुद्रैः सह इमं यज्ञम् अवतु रक्षतु । अत्रैव स्थित्वा यज्ञं निर्वर्तयतु । अथ वसुमत्या धनयुक्त्या इळया सधमादं सहैव स्थाने हर्षो यथा भवति तथा मदेम तृप्ता भूयास्म ' । ' इहैवेळया वसुमत्या ' इत्यस्यानन्तरं ' सहमादं मदेम ' इति शब्दौ ।

७ अग्निर्वसुभिरिति वसुसाहचर्यम् । इळा च वसुमती । तेन तस्या अग्निना संबन्धः । इह इत्यनेन पृथिवी सूच्यते । इहैवेळया = इहास्थितया इळया । तेन द्वावपि पृथिवीस्थानौ । तस्मात् इळा अग्निभक्तिः । ' द्यां भारती ' इत्यनुयाजप्रैषमन्त्रः । तस्य प्राक् ' तिस्रो देवीरिडा सरस्वती भारती ' (मैत्रा० सं० ४ । १३ । ८) इति । सामर्थ्यम् = इष्टार्थकरणाय प्रमाणम् । उक्तीय = तर्केण लब्धा ।

१९ तथैव वसुसाहचर्यात् इळा पृथिवीस्थाना ।

२० अन्यां देवतां न गच्छति । इदं सर्वम् अग्नेरेव कर्म ।

२३ दृष्टिः (दर्शनं वस्तूनाम्) एव विषयः । ' तत्र भवः ' (पा० ४ । ३ । ९३) इत्यनेन अथवा ' ठगायस्थानेभ्यः ' (पा० ४ । ३ । ७९) इत्यनेन दृष्टिविषये भवं दृष्टिविषयात् आगतं वा दार्ष्टिविषयिकम् । वस्तुतः दृष्टिविषयस्येदं दार्ष्टिविषयिकम् । दार्ष्टिविषयिकं = दर्शनसंबद्धम् । नेदं सर्वदा सत्यं यस्मात् दिने वस्तुदर्शनं सूर्यप्रकाशायत्तम् । यत्र सूर्यप्रकाशः अल्पः अल्पकालीनो वा तत्र अग्निप्रकाशः अवद्भवः । यथा ध्रुवप्रदेशयोः । धूमज्वालोत्थापनं दहनमित्यादि कदाचित् दार्ष्टिविषयिकं कर्म स्यात् ।

२९ पुनरुक्तिः अवधारणार्था नाऽऽदरार्था । अध्यात्मप्रकाशः कथम् अग्न्यायत्तः । स तु सूर्यायत्तः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६९८

१ ' अत इनिठनौ ' (पा० १।२।११९) । संस्तव + इन् = संस्तवी । संस्तवी + इकः = संस्तविकः । संस्तवः विद्यते एषां ते संस्तविकाः । ' सांस्तविकाः ' (२१) इति पाठान्तरम् । ' तत्र भवः ' इत्यनेन संस्तवे भवाः सांस्तविकाः । सं + स्तवः । सं = सह ।

३-४ ' द्वंद्वे वि ' (पा० २।२।३२) इत्यनेन अग्निशब्दस्य पूर्वनिपातः । देवताद्वंद्वे अग्नेर्मुख्यता यस्मात् तस्य पूर्वनिपातः ।

७ ' यदकृत्वाऽऽग्रायणं नवस्याश्रीयाद्देवानां भागं प्रतिवल्समश्रीयात् । आर्तिमृच्छेत् ' (मैत्रा० सं० ४।३।२) । ' नानिष्ठाऽऽग्रयणेन नवस्याश्रीयात् ' (मान० गृ० २।३।९) । ' पर्वणयाग्रयणं कुर्वीत वसन्ते यवानां शरदि व्रीहीणाम् ' (मान० गृ० २।३।१०) । ' ऐन्द्राग्रमेकादशकपालं निर्वपेदाग्नेद्रं वा ' (मैत्रा० सं० २।६।२) । ' देवा ओषधीषु पक्वासु आजिमयुः । स इन्द्रोऽवेत् अग्निर्वाव इमाः प्रथममुज्जेप्यतीति । सोऽब्रवीत् यतरो नौ पूर्वं उज्जयेत् तन्नौ सहेति । ता अग्निरुदजयत् । तदिन्द्रोऽनूदजयत् । तस्मादैन्द्राग्रम् । अथो आहुः ऐन्द्राग्रं कार्यमिति । अग्निर्हि ता अग्ने उदजयत् । तदुज्जित्यै एवाऽऽग्रायणः ' (मैत्रा० सं० ४।३।२) ।

१९ ' अग्नीषोमीयः स्थालीपाकः पौर्णमास्याम् ' (मान० गृ० २।३।३) । ' अग्नीषोमीयम् ' (मैत्रा० सं० २।१।४ ॥ ४।४ । १८ ॥ १।९।१) । ' अग्नीषोमीयमेकादशकपालं पूर्णमासेऽनुनिर्वपेत् । आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया । सोमराजा यज्ञमुखम् ' [काठकसं० ८।१०] ।

६९९

१४ अवतं = रक्षतम् । मे धियम् अवतं नः सुष्टुतिम् अवतम् इत्यन्वयः ।

१७ इळाम् अन्नं अन्यः पर्जन्यो जनयतु । गर्भम् अन्यः अग्निः जनयतु ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१८ इषः = धनानि ।

११०

३ ऋतुयाजशब्दव्युत्पत्तिः (निरु० २२९ । २-६) इत्यत्र ।

५ सोनिषु = स्थानेषु ।

६ पारि = पारित । भूष (= भव) । पारितो भूत्वा देवेभ्यो हवीषि देहि ।

८ ' अग्नाविष्णू महि तद्वाम् ' (मैत्रा० सं० ४ । १११ । २ ॥
तौत्ति० सं० १ । ८ । २२ ॥ काठकसं० ४ । १६)' अग्नाविष्णू महि धाम ' (मैत्रा० सं० ४ । १० । १ ॥
तौत्ति० सं० १ । ८ । २२ ॥ काठकसं० ४ । १६) एते
द्वे ऋचौ हविष्येव विनियुक्ते ।' दर्शपूर्णमासौ आरप्स्यमानः अन्वारम्भणीयामिष्टिं कुरुते ।
पौर्णमास्यां पूर्वेषुः नान्दीमुखम् । आन्वारम्भणीयायाः अग्ना-
विष्णू सरस्वती सरस्वान् अग्निर्भगी इति प्रधानदेवताः । आग्ना-
वैष्णव एकादशकपालः । अग्नाविष्णू सजोषसा इत्यनुवाक्या
(श्रौतपदार्थनिर्वचनम् पत्रे ८७-८८) ।' देवताद्वंद्वे च ' (पा० ६ । ३ । २६) इत्यनेन
' अग्नाविष्णू ' । अग्नाविष्णू देवते अस्य (पा० ४ । २ ।
२४ ' साऽस्य देवता ') तत् आग्नावैष्णवम् ' देवताद्वंद्वे च '
(पा० ७ । ३ । २१) इत्यनेन आत्वम् । ' इद्वृद्धौ '
(पा० ६ । ३ । २८) अस्य ' विष्णौ न ' इति वार्तिकं
बाधकम् ।

१४ सजोषसा = सहयुक्तौ ।

१६ द्युम्नैः = धनैः । वर्धन्तु = स्तुवन्तु पुष्टौ कुर्वन्तु वा ।

१९ तु = किंतु । ' सांस्तविकी ' (३१) इति ग. च. ज.
पाठः । संस्तवे भवा सांस्तविकी । ' तत्र भवः ' (पा०
४ । ३ । १३) इत्यनेन सूत्रेण । निरुक्तमूले ' संस्तविकी '
(६९६ । ८) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६६०

२० ' संख्याया अवयवे तयप् ' (पा० १ । २ । ४२) ।

दश अवयवाः दशतय्यः । ऋक्संहितायाः दश अवयवाः ।

दशतयीषु = दशसु अवयवेषु । मण्डलानि एव अवयवाः ।

' दश मण्डलानि अवयवाः यस्याः सा बह्वृचसंहिता इति केचिदाहुः । दश मण्डलाख्या अवयवा यासां ता दशतय्यः ऋग्वेदस्य शाखाः तासु इत्यन्ये ' (ट.) ।

(निरुक्त० १६१ । २४) इत्यत्र ' आर्चाम्याम्नाये ' न तु ' दशतयीषु ' । दश अवयवाः अस्य इति विग्रहे दशतयः दशतयी वा इति एकवचनान्तं रूपं स्यात् । दशतयः ऋग्वेदः । दशतयी ऋक्संहिता । दशतयीषु इति बहुवचनं किमर्थम् । अस्य प्रक्षम्य निराकरणार्थं दुर्गेण बहुवचनस्य कथमपि विवरणं क्रियते ।

२३ शस्त्रम् = अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः । तत् होत्रा पठ्यते ।

स्तोत्रं = प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः । सा उद्गात्रा गीयते

शस्त्रे एका द्वे बह्व्योऽपि ऋचः सन्ति । शस्त्रमध्यपातिनी = अनेकाभिः ऋग्भिः युक्ते शस्त्रे वर्तमाना ऋक् ।

६६१

१ ' स्यादपि ' अत्र ' अपि ' शब्दो व्यर्थः ।

२ असंस्तवयुक्ताऽपि ऋक् ऋग्वेदे नास्ति इत्यधिकोऽर्थो दुर्गेण निष्पाद्यते । किंतु नायमावश्यकः स्वाभाविको वा । उत्सर्गः = व्यापकं वचनम् ।

४ ' देवताद्वंद्वे च ' (पा० ६ । ३ । २६) इत्यनेन अग्नापूषणौ ।

अग्नापूषणौ देवते अस्य (पा० ४ । २ । २४) ' साऽस्य देवता ')

तत् ' आग्नापौष्णम् ' । ' देवताद्वंद्वे च ' (पा० ७ । ३ । २१)

इत्यनेन भात्वम् । ' इद्वृद्धौ ' (पा० ६ । ३ । २८)

इदं सूत्रं ईदमेः सोमवरुणयोः ' (पा० ६ । ३ । २७)

पत्रं

पङ्क्तिः

६६१

४ इत्यस्यैव बाधकं न ' देवता द्वंद्वे च ' (पा० ६।३।२६)
इत्यस्य । ' आग्रापौष्णवम् ' (२१ । २२) अयमपपाठः ।

५ अत्र 'तु' शब्दो द्विः प्रयुज्यते । ' किं तु' शब्दौ अनवश्यौ ।

७ विभक्ता स्तुतिः । ' विभक्तिस्तुतिः ' (२३) इति पाठे
विभक्त्या विभागेन स्तुतिः ।

१५-१६ ' अग्निदेवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ' अयं पादः किमर्थं न स्वर्गते ।
नात्र अन्ते इति शब्दः ।

१९-२० अयं विनियोगः कस्मिन् ग्रन्थे दीयते । ' शवस्य कर्णे '
इत्यत्र ग. ज. पाठः ' शुनस्कर्णे ' (२६) । प्रमीतानुमन्त्रणं
शुनः कर्णे कर्तव्यम् । कस्मिन् ग्रन्थे एतद्विद्यते । प्रमीतः =
मृतः (अमर २।८।११७) ।

६६२

४ अनष्टपशुः = अविनश्वरपशुयुक्तः । सुविदत्रियेभ्यः (८) =
सुधनेभ्यः (च. ट.) । ट. पुस्तके प्रान्ते लिखितमिदं विवरणं
ट. ड. पुस्तकयोरन्तर्भाव्यते

७ ' अपरपक्षाद्यान् षड् दक्षिणैति मासान् मासेभ्यः पितृलोकम् '
(छा० उप० ५।१०।३-४) । अपक्षीयमाणपक्षाद्यान् षण्मा-
सान् दक्षिणाऽऽदित्य एति मासेभ्यः पितृलोकम् ' (बृह०
उप० ६।२।१६) ।

८-९ सुविदत्रियेभ्यः = ये विद्युतो मध्ये निवसन्ति तेभ्यः ।
विद्युनि निवसन्ति ते विदत्रियाः । अयं दुर्गकृतोऽर्थः क्लिष्टः ।

९ ' चन्द्रमसो विद्युतम् ' (छा० उप० ५ । १० । ३) ।
' आदित्याद्विद्युतम् ' (बृह० उप० ६।२।१५) । दुर्गं
कस्या उपनिषद् एते वाक्ये उदाहृते इति न ज्ञायते ।

११-१२ अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिस्तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वाङ्गिकाननृणाः संचरेमहि ॥
इति जपति यजमानः (भा० श्रौ० २।३।५।२२) ।

पत्रं
६६२

पङ्क्तिः

१३ सांशयिकः = संशयम् आपन्नः (पा० ९ । १ । ७३)

१७ पूर्वस्मिन् अर्धे कथितस्य पुनर्निर्देशः अन्वादेशः ।

सामर्थ्यात् = अन्वादेशकरणात् ।

१८ दर्शनं = मतम् ।

२० पितृभ्यः इति पञ्चमी ।

२१ देवेभ्यः इति चतुर्थी ।

२२ दिष्टं = प्रेषितम् । इतः = पृथिवील्लोकात् ।

२३ सः (६६१ । १०) इति सर्वनाम्नः । व्यपेक्ष्य = विशेषतः अपेक्ष्य ।

२४ प्रकर्षेण कीर्तना कथनम् । अपरं = दर्शनम् । अकल्पयत् = अर्थमकरोत् । अथवा । अपरं दर्शनम् अकल्पयत् ।

‘ अथा पितृन्सुविदत्रां उपेहि ’ (ऋ० सं० १० । १४ । १०)

‘ आहं पितृन्सुविदत्रां अवित्सि ’ (ऋ० सं० १० । १९ । ३)

‘ आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्धर्मसद्भिः ’

(ऋ० सं० १० । १९ । ९) एतेषु सुविदत्रशब्दः पितृणां विशेषणम् । (ऋ० सं० २ । १ । ८ ॥ २ । ९ । ८)

इत्यत्र अग्नेः । (ऋ० सं० ७ । ९१ । ९) इत्यत्र नियु-

ताम् । (ऋ० सं० २ । २४ । १०) इत्यत्र ‘ सुविदत्रा-

णि सातानि ’ । सुविदत्रशब्दस्य ऋग्वेदे सप्तैव प्रयोगाः । स

प्रख्यातार्थं प्रयुज्यते इति भाति । पदपाठः सुऽविदत्र इति ।

तेन विदधातोः विदत्रशब्दः । सुविदत्रिय = सुविदत्र । सु

शोभनं विदत्रं प्रख्यातिः येषां ते सुविदत्राः । पितरः प्रख्या-

ताः यस्मात्ते देवलोकं गताः । देवल्लोके च ते देवभूताः ।

अनष्टपशुः भुवनस्य गोपाः विद्वान् पूषा त्वाम् इतः पृथिवी-

ल्लोकात् प्रच्यावयतु त्वरयतु स्वर्गगमनाय । तत्र गतं त्वाम्

सः अग्निः एतेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः पितृभ्यः परिददत्

ददातु । पथस्पतिः पूषा पशुपालः । तेन रक्षिताः पशवः न

कदाऽपि नश्यन्ति यस्मात् स विद्वान् भुवनस्य च गोपाः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६६२

२४ मनुष्यपशून् अप्रमादेन स स्वर्गं नयति । अग्निस्तान् पितृभ्यः
अपर्यति । अयमेव ऋषोऽर्थः । स्पष्टश्च । दत्र-शब्दो
दानार्थं वर्तते । सु शोभनं वि विशिष्टं दत्रं दानं येषाम् ।
पितर इहस्थेभ्यो मनुष्येभ्यो दानानि ददति इति ऋग्वेदे
कथ्यते । तेन सुविदत्राः = दानानां दातारः । किंतु 'सुविद-
त्राणि सातानि' इत्यत्र सातानि = दानानि । अत्र सुविदत्र-
शब्दः सातानि इत्यस्य कथं विशेषणं भवेत् ।

६६३

२ पञ्चदशस्तोमः । अस्य त्रयः प्रकाराः । तिस्र ऋचः । तासु

प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (सकृत्) + उत्तमा (स०) = ९ प्रथमः प्रकारः
प्रथमा (स०) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (स०) = ९ पञ्चदशिका-
प्रथमा (स०) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (त्रिः) = ९ नामा
१९

प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ९ ।
प्रथमा (स०) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ३ द्वितीयः
प्रथमा (स०) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (त्रिः) = ७
१९

प्रथमा (स०) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ३ } तृतीयः प्रकारः
प्रथमा (स०) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (स०) = ९ } उद्यतीनामा
प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (त्रिः) = ७ }
१९

बृहत्साम = ' त्वामिद्धि हवामहे ' (ऋ० सं० ६ । ४६ ।
१) इत्यस्यामृच्युत्पन्नम् ।

१०-१७ ' ये च देवगणाः ' = देवाः वरुणादयः । देवगणाः पुनर्मरुदाद-
यश्च । बाश्च स्त्रियः = अदित्यादयः (११) । रसानुप्रदानं =
वृष्टिः (१३) मेघवधः । या च का च बलकृतिः = यच्च
किंचिद्दलेन क्रियते पतङ्गादिभिरपि कर्म इन्द्रकर्मैव तत्
(१६-१७) । कुतः । बलं हि प्राणः । प्राणश्च वायुः ।
वायुश्च इन्द्रः ' (ट.) ।

१३ रसाः = अवश्यायः वर्षः ।

- पत्रं
६६३ पङ्क्तिः
१४ अन्या वृत्रवधात् ।
१६ इन्द्रस्यैव तत् नान्यस्व । इन्द्रकर्म इति पुनरुक्तिः अब-
धारणार्था ।
२० हे इन्द्राग्नी दिवो रोचना त्रीन् स्वर्गान् वाजेषु संग्रामेषु पारिभू-
षथः व्याप्नुयः । तत् युवयोः वीर्यं प्र चेति ज्ञायते ।
- ६६४ ६ न शेषः किंतु सर्व एव मन्त्रः (मिरु० ३९३ । १६-२२)
इत्यत्र व्याख्यातः । ' शेषः '—शब्दो व्यर्थः ।
२० उक्तं होत्रा शस्यते । प्रतिगरश्चाध्वर्यवे दीयते । अध्वर्यवे
होत्रा दत्तमुत्तरं प्रतिगरः । उक्तं शस्यते मदश्च शस्यते ।
मदः = प्रतिगरः (दुर्गः) । मदः = मदजनकम् उक्तम्
(सायणः) ।
- ६६५ १ ' चन ' इति पदपाठे एकपदम् । तथापि च न इति द्वे पदे
अर्थकरणाय आवश्यके ।
१६ रथः अत्र रथः एव । न रंहणम् ।
१८ वीराः = शूरपुत्राः ।
- ६६६ ५ अपिकर्णे = (स्तोतुः) कर्णसमीपे ।
६ र्षीं = सीम् । सीं = सर्वतः (दुर्गः) । सीं = बुद्धिस्थं
कांचित् अरिम् । निर्धमथः = निःसारयथः निरस्यथः ।
७ निः = निर्धमथः । षधस्तात् = सधस्तात् सहस्थानात् सर्व-
स्मात्स्थानात् ।
८ मघोनः = मघवतः यजमानस्य । हृदः = हृदयात् ।
९ अनाकालः = दुर्भिक्षम् ।
१३ त्रैधातवी नाम इष्टिः । इन्द्रो वृत्रस्य वीर्यं विष्णुसाहाय्येन
त्रिःकृत्वः त्रिभिर्भागैरपाहरत् । तस्मात् ' त्रैधातवी ' इति
नाम (मैत्रा० सं० २ । ४ । ३ - ५) ।
१८ अप्रति = प्रतीकाराय असमर्था यथा भवेद्युः तथा । वीरान् =
पुत्रान् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६६७

१३ अथापि = तथा च । विशेषतः मित्रादीन् न तथाऽन्यान् देवान् । प्रकरोति = स्तोतुमारभते ।

१५ पराणि = अन्यानि । अन्या देवताः मित्रादयः । अपरेण मित्रवरुणादिनाम्ना । भेदपक्षे = देवतानानात्वपक्षे ।

१७ इन्द्रवायुसंस्तवे (४-६) । मित्रादयो मध्यमस्य कर्मात्मानः इति विरोध आभास एव ।

१८ मुख्या स्तुतिः यस्याः सा । सा + अमुख्या ।

१९ निर्दिष्टा तृतीयया विभक्त्या ।

६६८

९ ' अस्माकं गव्यृतिं रजांसि च ' इति दूरान्वयः ।

१६ चन्द्रसूर्यौ कथं दिवं जनयतः । स्वेन उपकारेण कर्मणा प्रकाशदानेनामृतजलदानेन च । इदं जननं काल्पनिकम् ।

१८-१९ सार्वलौकिकस्य उदकस्य । देवाः युवां नाभिं कुर्वन्ति ।

६६९

१० अग्निना पूषा संस्तूयते ! सोऽग्निर्मध्यमः स्यात् द्युस्थानो वा । यस्मात्पार्थिवेनाग्निना पूषसंस्तवस्य प्रतिषेध उक्तः (६६१। ४-९) । ' पूषा त्वेतश्च्यावयतु० ' इदमाशापौष्णहविष उदाहरणं न संस्तवस्य । मध्यमद्युस्थानाग्नेः पूष्णा संस्तवस्योदाहरणं नोपलभ्यते ।

“अग्निना च पूषेत्यपाठः ' न तु संस्तवः ' (निरु० ७।८) इति प्रतिषेधविरोधात् । वायु च पूषेत्यपाठः । उदाहरणम् । ' प्रतव्यसो नमउक्ति० उत त्मन् ' (ऋ० सं० ९।४३.९) । सप्त्यणभाष्यं च दीयते । अत्र पूषवायू संस्तूयते ” (ट.) । ' अथाप्याशापौष्णं हविर्न तु संस्तवः ' इति (निरु० ७।८) संस्तवप्रतिषेधः । तस्मात् ' वायुना च पूषा ' इति पाठः स्यात् इति कस्यचिन्मतम् । किंत्वयं प्रतिषेधः पार्थिवाग्निपूष्णोः संस्तवस्य न मध्यमाग्नेर्द्युस्थानाग्नेर्वा पूष्णा संस्तवस्य । तस्योदाहरणमद्यापि नोपलब्धम् । मृग्यं तत् ।

११ नोदाहरन्ति = दुर्गमदृशाः केचिद्वृत्तिकाराः । ' उदाहरति ' (२९) इत्यपपाठो यस्माद्यास्कः संस्तवोदाहरणानि न ददाति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६६९

१२ 'वायुना च संस्तवः' इदमपूर्णम् । केनाप्यन्येन प्रान्तभागे लिखितं स्यात् । तत्केनापि लेखकेन दुर्गवृत्तावन्तर्भावितम् ।

१२-१३ 'वायुना संस्तवः' पूष्णोऽस्ति (ऋ० सं० १।४३।९) इत्यत्र ।

१७ दिवो धर्तार इत्यस्मात्कारणात्सुहस्ताः ।

१८ वाजिनः = 'अग्निर्वायुः सूर्यस्ते वै वाजिनः' इति हि तौत्तिरीयब्राह्मणं १।६।३।९ (च.) ।

१९ द्योतनवन्तो ये वाजिनश्च उदकस्य धारयितार उक्ताः । 'अप्स्वन्तरमृतं' (ऋ० सं० १।२३।१९) इत्यत्र । मित्रवरुणरुद्रसोमवातपर्जन्या मध्यस्थानीयाः । पूषा पृथिवी. स्थानीयः ।

६७०

६ सप्तदशस्तोमः—

$$\left. \begin{array}{l} १ \text{ प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ९} \\ २ \text{ .. (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (स०) = ९} \\ ३ \text{ ,, (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) = ७} \end{array} \right\} \text{दशसप्ता}$$

१७

अथवा १ प्रथमा (सं०) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (स०) = ९

२ .. (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (त्रि०) = ७

३ .. (त्रिः) + ; (स०) + .. (स०) = ९

१७

१ प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (स०) = ७

२ ,, (स०) + ,, (स०) + .. (स०) = ३

३ ,, (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) = ७

१७

अथवा १ प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (त्रिः) = ७

२ ,, (स०) + ,, (स०) + ,, (स०) = ३

३ ,, (त्रिः) + ,, (स०) + ,, (त्रिः) = ७

१७

पत्रं पङ्क्तिः

$$\begin{array}{l}
 ६७० \quad १ \text{ प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ९} \\
 २ \quad \text{,, (स०) + ,, (स०) + ,, (स०) = ३} \\
 ३ \quad \text{,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) = ९} \\
 \hline
 १७
 \end{array}$$

$$\begin{array}{l}
 १ \text{ प्रथमा (स०) + मध्यमा (स०) + उत्तमा (स०) = ३} \\
 २ \quad \text{,, (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (स०) = ९} \\
 ३ \quad \text{,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) + ,, (त्रिः) = ९} \\
 \hline
 १७
 \end{array}$$

$$\begin{array}{l}
 १ \text{ प्रथमा (त्रिः) + मध्यमा (त्रिः) + उत्तमा (स०) = ७} \\
 २ \quad \text{,, (स०) + ,, (त्रिः) + ,, (स०) = ९} \\
 ३ \quad \text{,, (स०) + ,, (स०) + ,, (त्रिः) = ९} \\
 \hline
 १७
 \end{array}
 \left. \vphantom{\begin{array}{l} १ \\ २ \\ ३ \end{array}} \right\} \text{ भक्त्वा}$$

१९ अग्निप्रकरणे (निरु० ७ । ८) इन्द्रप्रकरणे (निरु० ७ । १०) च ' अथास्य संस्तविका देवाः ' इत्यब्रवीत् ।

१६ आदित्यः = सूर्यः ।

१७ स्वपक्षः ' तिस्र एव देवताः ' इति । तस्य उद्योतनेन पुनरुक्त्या अनुस्मृतिः । पुनरुक्तिरनुस्मृतये । उद्योतनं = प्रकर्षणकथनम् ।

२१ ' यञ्च ' इत्यस्य स्थाने छ. त. द. ग. च. ज. पुस्तकेषु ' यत्तु ' (३२) ।

२१-२२ ' प्रवल्हितम् = अन्तर्धानकर्म । रात्रिग्रहनक्षत्रादिप्रच्छादनमत्तञ्चास्यै प्रकाशनेनान्तर्धत्ते इति प्रवल्हितं प्रकाशनम् । आदित्यकर्मैत्यर्थः । अविद्यापनयेनात्मादिप्रकाशनम् ' (ट.) । धातुपाठे वल्हधातुर्नास्ति । यद्ययं धातुर्हलधातुसदृशो भवेत्तर्हि ' हल हल चलने ' इत्यनेन प्रवल्हितमित्यस्य चलनमित्यर्थः स्यात् । यत्किञ्चिच्चलति तदादित्यप्रभावेणैव । सर्वं चलनमादित्यायत्तम् । प्रकाशनमग्नेः कर्म । बलकृतिरिन्द्रस्य । चलनं चाऽऽदित्यस्य ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६७०

२२ अत्र किमर्थं चन्द्रमसा वायुनेति । त्रय एवेति कृत्वा प्रपञ्चौ न कृतः ।

६७१

१६ उत्तरोऽर्धर्चो निराकाङ्क्ष आशिषा ।

६७२

१ ऋतवः छन्दांसि स्तोमाः पृष्ठानि एतानि कानिचित् पूर्वेषु अग्नि-
भक्तिषु कथितानि । शेषाण्यत्र कथ्यन्ते ।

‘ स (इन्द्रः) एतं माहेन्द्रं ग्रहमब्रूत माध्यंदिनं सवनानां
निष्केवल्यमुक्त्वानां त्रिष्टुभं छन्दसां पृष्ठं साम्नाम् ’ (ऐ० ब्रा०
१२ । १०) ।

‘ अभि त्वा शूर नोनुम इति रथंतरस्य योनिम् ’ (ऐ०
ब्रा० २१ । २) ।

‘ त्वामिद्धि हवामह इति बृहतो योनिम् ’ (ऐ० ब्रा०
२१ । ४) ।

अयं लोकः प्रातःसवनं वसन्तः गायत्री त्रिवृत् रथंतरम् ।

अन्तरिक्षं माध्यदिनं ग्रीष्मः त्रिष्टुप् पञ्चदश बृहत् ।

असौ लोकः तृतीयसवनं वर्षा जगती सप्तदश वैरूपम् ।

एते स्थान(लोक)व्यूहाः । स्थानव्यवस्थेत्यर्थः ।

शरद् अनुष्टुप् एकविंशः वैराजम् ।

हेमन्तः पङ्क्तिः त्रिणवः शाकरम् ।

शिशिरः अतिच्छन्दाः त्रयस्त्रिंशः रैवतम् ।

एतानि शिष्टान्यनुक्रमेण पूर्वेषु व्यूहेषु संस्थाप्यानि ।

पूर्वा मुख्या कल्पना (व्यवस्था) । इयमनुकल्पना तदवल-
म्बिनी व्यवस्था ।

‘ अनुकल्पयति ’ = अनुकल्पयेत् । आह्वयति = आह्वयेत्
(आश्व० श्रौ० ८ । १३) । वेदयति (आश्व० श्रौ० ८ ।
१४) । कामयीरन् (आश्व० श्रौ० १२ । ८) । एतानि
श्रौतसूत्रकालीनानि रूपाणि ।

पृष्ठं = सामसाध्यं पृष्ठस्तोत्रम् । यथाऽग्निष्टोमे रथंतरं साम
अत एव रथंतरं पृष्ठम् । अतिरात्रे बृहत्साम बृहत्पृष्ठम् । एवं

पत्रं
६७२

पङ्क्तिः

१ रथंतरं बृहत् वैरूपं वैराजं चेति चत्वारि सामानि तान्येव च पृष्ठानि ।

त्रयाणां सवानां छन्दांसि देवताश्च (ऐ० ब्रा० १३ । ३) इत्यत्र दीयन्ते ।

पूर्वेष्वन्यादिभक्तिष्वन्तर्भूताः । ऋतुच्छन्दःस्तोमपृष्ठानामन्यादिषु भक्तिः । कथितेभ्यस्तेभ्योऽकथितानि शिष्टानि । सोऽयं भक्तिशेषः । ऋत्वादीनि शिष्टानि अन्यादिभक्तीनि पूर्वेष्वन्तर्भूतानि ।

२ पृष्ठानि = पृष्ठस्तोत्रसाधकानि सामानि ।

४ ऋतवोऽन्यादीन् भजन्ते । ऋतुशेषं शिष्टानृतून् ।

९-६ गायत्रीतः अनुष्टुप् । त्रिष्टुभः पङ्क्तिः । जगत्या अतिच्छन्दाः (ऐ० ब्रा० १९।६) ।

अग्निः त्रिवृत्स्तोमः रथंतरं साम गायत्री छन्दः (ऐ० ब्रा० २०।१)
इन्द्रः पञ्चदशस्तोमः बृहत्साम त्रिष्टुप् छन्दः (ऐ० ब्रा० २०।३) ।
विश्वे देवाः सप्तदशस्तोमः वैरूपं साम जगती छन्दः (ऐ० ब्रा० २१।१) ।

वाक् एकविंशः वैराजं अनुष्टुप् (ऐ० ब्रा० २१।४) ।

गौः त्रिणवः शाकरं पङ्क्तिः (ऐ० ब्रा० २२।१) ।

वैरूपं (६) = ' यद्याव इन्द्र ते शतं ' (ऋ० सं० ८ ।

७० । ९) इत्यस्यामृच्युत्पन्नम् । (ऐ० ब्रा० २१ । २) ।

' पिवा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा ' (ऋ० सं० ७ ।

२३।१) इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम वैराजम् (ऐ० ब्रा० १७ ।

७) । ' प्रोष्वस्मै पुरोरथम् ' (ऋ० सं० १० । १३३ ।

१) इत्यस्यां गीथमानं शाकरं साम (ऐ० ब्रा० १७ । ७) ।

१ प्रथमा (३) मध्यमा (९) उत्तमा (१) = ९
२ " (१) " (३) " (९) = ९
३ " (९) " (१) " (३) = ९ } त्रिणवः

२७

द्यौः त्रयस्त्रिंशः रथंतं अतिच्छन्दाः (ऐ० ब्रा० २२।७) ।

पत्रं
६७२

पङ्क्तिः

१-६ ' रेवतीर्निः सधमादे ' (ऋ० सं० १ । ३० । १३) इत्यस्या-
मृच्युत्पन्नं साम रैवतम् । (ऐ० ब्रा० १७ । ७)

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|-------|--------------------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ३ + उत्तमा | १ = ७ | } सप्तसप्तिनी एकविंशः |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ३ = ७ | |
| ३ | " | ३ + " | १ + " | ३ = ७ | |

२१

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|-------|----------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | १ + उत्तमा | १ = ९ | } उद्यती |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ३ = ७ | |
| ३ | " | ३ + " | ३ + " | ३ = ९ | |

२१

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|-------|---------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ३ + उत्तमा | ३ = ९ | } प्रतिष्ठतिः |
| २ | " | १ + " | ३ + " | १ = ९ | |
| ३ | " | ३ + " | १ + " | ३ = ७ | |

२१

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|-------|----------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ३ + उत्तमा | ३ = ९ | } सूर्मा |
| ३ | " | १ + " | १ + " | १ = ३ | |
| ३ | " | ३ + " | ३ + " | ३ = ९ | |

२१

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|-------|--------------------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ९ + उत्तमा | १ = ९ | } त्रिणवः प्रतिष्ठिता |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ९ = ९ | |
| ३ | " | ९ + " | १ + " | ३ = ९ | |

२७

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|----------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ३ + उत्तमा | १ = ७ | } उद्यती |
| ३ | " | १ + " | ३ + " | ९ = ९ | |
| ३ | " | ९ + " | ३ + " | ३ = ११ | |

२७

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|-----------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ७ + उत्तमा | १ = ११ | } त्रयस्त्रिंशः |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ७ = ११ | |
| ३ | " | ७ + " | १ + " | ३ = ११ | |

३३

पत्रं
६७२

पङ्क्तिः

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|------------------------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ७ + उत्तमा | १ = ११ | } समत्रिंशा त्रयस्त्रिंशः |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ७ = ११ | |
| ३ | " | ७ + " | १ + " | ३ = ११ | |
| | | | | ३३ | |

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|---------------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ९ + उत्तमा | ३ = ११ | } नेदीयः संक्रमा |
| २ | " | ३ + " | ३ + " | ९ = ११ | |
| ३ | " | ९ + " | ३ + " | ३ = ११ | |
| | | | | ३३ | |

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|----------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ९ + उत्तमा | १ = ९ | } उद्यती |
| २ | " | १ + " | ३ + " | ७ = ११ | |
| २ | " | ७ + " | ३ + " | ३ = ११ | |
| | | | | ३३ | |

| | | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|-----------------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ९ + उत्तमा | ९ = १३ | } प्रत्यवरोहिणी |
| २ | " | ९ + " | ३ + " | ३ = ११ | |
| २ | " | ३ + " | ३ + " | ३ = ९ | |
| | | | | ३३ | |

| | | | | |
|---|--------|------------|------------|--------|
| १ | प्रथमा | ३ + मध्यमा | ७ + उत्तमा | ९ = १९ |
| २ | " | ९ + " | ३ + " | ३ = ११ |
| ३ | " | ३ + " | १ + " | ३ = ७ |
| | | | | ३३ |

६-७ अग्निः पृथिवीस्थानः । एतान्यपि पृथिवीस्थानानि । एतेषामे-
कस्यापि श्रवणे मन्त्र आग्नेयः ।

७ 'अन्यतमस्यात्' (२०) इदं पाठान्तरं प्रामादिकम् ।

११-१२ पृथिवीभक्तीन्यन्तरिक्षभक्तीनीत्यत्रापि अयं प्रणाडिकान्यायो
योज्यः । अवयवस्य स्तुतिरवयविनि संक्रमयितव्येति न्यायः ।

१२ एते देवताव्यूहा न स्थानव्यूहाः । अयं भागः प्रक्षिप्त इव
भाति यस्मादिदं न साक्षादन्यादिभक्तिभिः संबद्धम् । सामस्थाने
पृष्ठशब्दः अग्निभक्तीनीन्द्रभक्तीनीति वक्तव्ये पृथिव्यायतनान्य

पत्रं

पङ्क्तिः

६७२

१२ न्तरिक्षायतनानि आदित्यभक्तीनीति वक्तव्ये द्युभक्तीनि
' अनुकल्पयीत ' इत्याख्यातरूपं मन्त्रयजुःशब्दयोर्व्युत्पत्ति-
रित्येतेभ्यः कारणेभ्यो नेदं यास्करचितम् ।

१३ ' सर्वमेतन्मन्त्राश्रयम् ' इति कुत्रोक्तम् । ' यत्कर्मः० ' (६०९ ।
८) इदं मन्त्रदेवतालक्षणम् ।

६७३

८-९ मन्तारो मननशीला एभ्यो मन्त्रेभ्योऽऽयात्माद्यर्थं मन्यन्ते
मन्तुमुपलभन्ते ।

९ दुर्गदत्तं ब्राह्मणवचनं कस्माद्ब्राह्मणादिति न ज्ञायते ।

१०-११ ' देवा वै मृत्योर्बिभ्यत्स्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते छन्दोभिरच्छा-
दयन्त्यदेभिरच्छादयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ' (छा० उ०
१ । ४ । २)

' देवा असुरान्हत्वा मृत्योरबिभ्युस्ते छन्दांस्यपश्यंस्तानि
प्राविशंस्तेभ्यो यद्यदच्छदयत्तेनात्मानमच्छादयन्त तच्छन्दसां
छन्दस्त्वम् ' (मैत्रा० सं० ३ । ४ । ७) ।

१२ ' यजुषा ह वै देवा अग्रे यज्ञं तेनिरेऽथर्चाऽथ साम्ना । यजो
ह वै नामैतद्यजुरिति ' (शत० ब्रा० ४ । ६ । ७ । १३) ।

१३ ' सोऽनुवाक्यामनूच्य साज्यामनुद्गत्य पश्चाद्द्वषट्करोति । सह वै
वषट्कारेण जुहुयाद्द्वषट्कृते वा ' (शत० ब्रा० १ । ७ । २ ।
२२) । ' देवपात्रं वा एष यद्वषट्कारः (तथैव १३) । स वै वौ-
गिति करोति । वाग्वै वषट्कारो वाग्रेतो रेत एवैतत्सिञ्चति
षडित्यृतवो वै षट् तदृतुष्वेवैतद्रेतः सिञ्चते तदृतवो रेतः
सिक्तमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति तस्मादेवं वषट्करोति ' (तथैव
२१) । को वषट्करोति ।

' स्तवे वज्री ऋचीपमः ' (निरु० ६ । २३) अत्र ऋचीपमः
= ऋचा समः । एवं प्रजापतिरात्मानमृचा समं मेने । किंतु
साम ऋचा समं यस्मात्तत् ऋच्यध्यूढम् । साम ऋच एव
विस्तरः । गोया ऋक् = साम । तस्मात् ' प्रजापतिः साम
ऋचा समं मेने ' इति साधुतरं निरूपणम् ।

१८ संहिता तत्पदानि तेषां च स्तोभः विस्तरः सामनामा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६७३

२० यस्मिन्ग्रन्थे ऋचामुत्पत्तिकारणानि दीयन्ते स ग्रन्थोः निदानः ।
तं ग्रन्थं ये अधीयते ते । अथवा ऋचां निदानानि ये विदुस्ते
नैदानाः । ' तदधीते तद्वेद ' (पा० ४ । २ । १९) ।

२२ 'त्रिवृत्स्तोमानां मुखं गायत्री छन्दसामग्निर्देवतानां ब्राह्मणो
मनुष्याणां वसन्त ऋतूनाम् । (ताण्ड्य० ६ । १ । ६)

राजन्यस्य पञ्चदशः स्तोमः त्रिष्टुप् इन्द्रो ग्रीष्मः (ताण्ड्य० ६ । १ । ८)

वैश्यस्य सप्तदशः जगती विश्वेदेवाः वर्षाः (ताण्ड्य० ६ । १ । १०)

शूद्रस्य एकविंशः अनुष्टुप् न काचन देवता (ताण्ड्य० ६ । १ । ११)

२३ त्रि + गमना (६७२ । १८) । एते विपरीते । गाय (गमना)
+ त्री (त्रि) = गायत्री । त्रिभिः पादैर्गच्छति तस्माद्गायत्री ।
इदं ' गायतो मुखात्० ' (६७२ । १८) इति ब्राह्मणवाक्यं च
दुर्गेण न व्याख्याते ।

' सेयं सर्वा कृत्स्ना मन्थमाना गायद्यद्गायत्तस्मादियं गायत्री ।
अग्निर्गायत्रः ' (शत० ब्रा० ६ । १ । १ । १९) ।

' सा ह्येषा यगास्तत्रे । प्राणा वै गयाः । तस्माद्गायत्री ' (शत०
ब्रा० १४ । ८ । १९ । ७) ।

(प्रजापतिः) भूरितीमामसृजताग्निं रथंतरं त्रिवृतं गायत्री
भुवरित्यन्तरिक्षं वातं वामदेव्यं त्रिष्टुमं पञ्चदश
स्वरिति दिवं सूर्यं बृहदेकविंशं जगती (काठ०
सं० ६ । ७) ।

' या ते अग्ने पवमाना तनूः पृथिवीमन्वाविवेश
याऽऽश्रौ या रथंतरे या गायत्रे च्छन्दासि या त्रिवृति स्तोमे ।
या ते अग्ने पावका तनूः अन्तरिक्षमन्वाविवेश
या वाते या वामदेव्ये या त्रैष्टुभे च्छन्दासि या पञ्चदशे ।
या ते अग्ने शुचिः तनूः या दिवमन्वाविवेश
या सूर्ये या बृहति या जागते च्छन्दासि या सप्तदशे ' (काठ० सं० ७ । १४)

पत्रं
६७४

पङ्क्तिः

१ गायत्रीत उष्णिहि चत्वार्यधिकान्यक्षराणि । यथा—
'यस्य त्यच्छम्बरं मदे (१) दिवोदासाय रन्धर्यः (२) अयं
स सोमं इन्द्र ते (३) सुतः पिब' (ऋ० सं० ६ ।
४३ । १) ॥ 'सूतः पिब' एतानि चत्वार्यधिकान्यक्षराणि ।
एतदुष्णीषसदृशम् (४) । उत्स्नाता (६७३ । २६) =
उद्वेष्टिता । उत्स्नाता = अधिकं स्नाता चतुर्भिरक्षरैः ।

१-२ उष्णिक् त्रिपाद् । गायत्रौ द्वौ पादौ प्रत्येकमष्टाक्षरौ । जाग-
तश्च द्वादशाक्षर एकः पादः ।

उत् + स्निह् । अथवा 'उ' इत्युपजन उच्चारणार्थः ।

९ उष दाहे । शिरोदाहं सूर्यकृतशिरस्तापमिदं नयतीति उष्णीषम् ।
अथवा 'उ' उच्चारणार्थे । ष्णीष् ष्णा शौचे (धा० २ ।
४२) इत्यस्मात् ।

११ अनुष्टोमति = स्थिरी करोति ।

१२ ' अनुष्टुप् (चतुष्पाद) गायत्रैः ' (पिङ्ग० ९ । ३ ।) ।

१३ समुच्चिनोति = समर्थयति ।

१९ ' अनुस्तोमति ' (च. ज. २४) इत्युपपाठो यस्मात् ' उप-
सर्गात्सुनोति० स्तोमति० ' (पा० ८ । ३ । ६९) इत्यनेन
सस्य षो भवत्येव ।

१६-१७ बृहत्या एकः पादो नागतो द्वादशाक्षरः । इतरे त्रयः पादा
गायत्राः । अनुष्टुभः सर्वे पादा गायत्राः ।

१८ ' पङ्क्तिर्जागतौ गायत्रौ च ' (पिङ्गलसूत्रं ९ । १७) ।
पङ्क्तेश्चत्वारः पादाः । तेन कथं पञ्चपदा पङ्क्तिः । 'पदपङ्क्तिः
पञ्च' (पिङ्ग० ६ । ६) । 'चतुष्कषट्कौ त्रयश्च ' (पिङ्ग०
६ । ७) । एतेन पदपङ्क्तिः पञ्चपदा । 'पञ्चपदा पङ्क्तिः'
(ऐ० ब्रा० २३ । ४ ॥ २९ । ४) । या ह्यक्षरपङ्क्तिः
सा पङ्क्तिश्चतुर्धा ह्येतस्याः पञ्च पञ्चाक्षराणि (मैत्रा० सं० १
११ । १०) ।

पत्रं
६७४

पङ्क्तिः

१९ त्रिष्टुब् अनुष्टुभं पादे पादे त्रिभिरक्षरैः स्तोभति वर्धयति त-
स्मात् त्रि+ष्टुम् । अनुष्टुप्पादस्याष्टाक्षराणि । त्रिष्टुप्पादस्यैकादश ।
'ततो निराह' इत्यत्र 'ततः' इत्यस्य स्थाने अतोवाचि 'यतः'
पदं स्यात् ।

२१ गायत्र्यादिभ्यः तीर्णतमं गायत्रीं स्तोभति च ।

२२ बहुत्वात् = बहुक्षरत्वात् ।

२३ स्तोभनी = अवष्टम्भः । त्रिवृत् वज्रं तस्य स्तोभनी स्तुतिः
त्रिष्टुप् ।

६७५

१ 'वज्रमस्त्री' (अमर० १।१।५०) । चतुर्णां त्रयः संधयः ।

३ 'यत्रिरस्तोभत्' (२३) इदं मूले वर्तते । (६७३ । ५-६) ।
क्रितु इदं ग. च. ज. पुस्तकेषु न दीयते । दुर्गेण च न
व्याख्यातम् ।

| | | | | | |
|------------|----------|------------|---|----|------------|
| गायत्री | त्रिपदा | अष्टाक्षरा | = | २४ | अक्षराणि । |
| उष्णिक् | ,, | <+<+१२ | = | २८ | ,, |
| ककुब् | ,, | <+१२+< | = | २८ | ,, |
| अनुष्टुप् | चतुष्पदा | <×४ | = | ३२ | ,, |
| बृहती | ,, | <+<+१२+< | = | ३६ | ,, |
| पङ्क्तिः | पञ्चपदा | <×५ | = | ४० | ,, |
| त्रिष्टुप् | चतुष्पदा | ११×४ | = | ४४ | ,, |
| जगती | ,, | १२×४ | = | ४८ | ,, |

१८ आसं = पूर्णम् । 'अन्त्यम्' इति पाठान्तरं (३१) सुबोधम् ।
जगती इत्यत्र चर्केरीतवृत्तौ अभ्यासो भृशार्थे । ज + गती =
परां काष्ठां गता ।

१९ जलचराः = ऊर्भयः (दुर्गः) । जलनिवासिनः प्राणिनः । तेषां
मन्दा गतिः ।

१९-२० 'जह्णाल्यमानः' । 'गल्' इत्यस्य चर्केरीतवृत्तम् । गल् अदने
(धा० १।५४७) । पुनः पुनर्भृशं वा भक्षयन् सन् । मन्दं
मन्दं भक्षयन् प्रजापतिर्जगतीमसृजत् । ब्राह्मणमपि जगत्या
मन्दगतिं दर्शयति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६७६

१ बाहुल्यात् प्रयोगस्य ।

२ ' विराजो दिशः ' (पिङ्ग० ४।९) । विराट्पादे दशाक्षराणि । त्रिष्टुप्पादे एकादश । तस्मात् त्रिष्टुभः प्राग् विराट् किमिति न निरूपिता ।

३ साकल्यात् = दशाक्षरैः ।

४ विराध्यति = समृद्धा संपूर्णा न भवति यदा कदाचिदस्याः पादोऽक्षरेण विकलो भवति । कदाचिदाधिकाक्षरेणेयं विशेषं मानं प्राप्नोति ।

५ दशाक्षरस्वरूपाद्विप्लुता अतिरिक्ता ।

६ पिपीलिकामध्या गायत्री (< + ७ + <) यथा—(ऋ० सं० ४ । ३३ । ११) । ' त्रिपादानिष्ठमध्या पिपीलिकमध्या ' (पिङ्ग० ६ । १७) । पिपीलिकस्य मध्य इव मध्यो यस्याः । अनुक्रमणीकारदर्शितः छन्दसां क्रमः (ऐ० ब्रा० भाष्यं ७।८) । छन्दोविचारः (ष्टे० ब्रा० १३।३-४) ।

१७ भूयिष्ठा देवता एकैकामृचमेव भजन्ते न कदाऽपि सूक्तम् ।

१९ लक्षणभेदाग्निभिः = सा सा देवता भिन्नलक्षणैर्लक्षिता ।

२१ ' उद्वेतीत्यर्धपञ्चमाः ' (ऋ० सं० ७ । ६३ । १-४३) सौर्यम् बृहद्दे० ६ । ९) ।

यत्रा चक्रुर्मृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पार्थः ।

प्रति वां सूर उदिति विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत ह्वयैः (ऋ० सं०

७ । ६३ । ९) ॥ अत्र प्रथमोऽर्धर्चः सौर्यः शौनकस्य

मतेन । उत्तरो मैत्रावरुणः । अन्येषां भिन्नं मतमासीदिति

भाति । ' उद्वेति सुभगो ' । (ऋ० सं० ७ । ६३ । १)

' यत्रा चक्रुः ' (ऋ० सं० ७ । ६३ । ९) ।

१ नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुपसामेत्यर्धम् ।

भानं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः

(ऋ० सं० १०।८।१९) ॥

पत्रं

६७७

पङ्क्तिः

१ नवो नवो भवति जायमानः सूर्य एव इति केचित् । अहां केतुः स उपसामग्रे एति । चन्द्रमा आयन् देवेभ्यो भागं विदधाति दीर्घमायुः प्रतिरते च । अन्ये तु प्रथमः पादश्चन्द्रमःपरः । द्वितीयः आदित्यपरः । सर्वस्याश्चन्द्रमा देवतेत्यनुक्रमणी ।

‘ परस्याः (१०।८५।१९) प्रथमौ पादौ सौर्यौ चान्द्रमसौ परौ ’ । (बृहद्दे० ७।१२९) । ‘ और्णवामो द्रवृचे (१० । ८५ । १८-१९) त्वस्मिन्नश्विनौ मन्यते स्तुतौ ’ (बृहद्दे० ७ । १२९) ।

४ ‘ ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः ’ (६७५।९) इत्यत्र भूयिष्ठग्रहणात् ।

५ कल्प्याः= स्थापनीयाः व्यूह्याः ।

६ परमेष्ठी अमुष्मिन् लोके । ग्रहनक्षत्राण्यन्तरिक्षे । इतराणि पृथिव्याम् । ‘ परमेष्ठी ’ एतन्नाम ऋक्शाखायां नोपलभ्यते । ऋक्शाखायां ‘ कुषुम्भकः ’ इति शब्दो न तु कुसुम्भः कुसुम्भको वा ।

७ निपातः = गौणं स्थानम् ।

८ उप साधारण्येन स्तुतिः उपस्तुतिः । सर्वेषां साधारणा स्तुतिर्न तु कस्यचिदेकस्य मुख्या । तत्र = तस्मिन्निपातद्वैविध्ये । साधारण्यं नाम = साधारण्यस्यार्थं उदाहरणं च ।

९ ‘ तत्र साधारणं नाम ’ (२७) इति पाठान्तरम् । नायं पाठः साधुः । किं तत्साधारणम् ।

‘ तत्र साधारणोपस्तुतौ ण्यं तद्य० ’ (२७) अयं ग. ज. पाठो मिश्रितः । यथा—‘ तत्र साधारण्येनोपस्तुतौ + तत्र साधारण्यम् ’ । ‘ तत्र साधारण्येनोपस्तुतौ ’ अयं पाठः साधीयान् ।

१४ पुनः = तु ।

१६ ‘ पृथिव्याम् ’ इति पृथिवी इन्द्रान्योर्निवासस्थानम् । नायं पृथिव्याः प्राधान्येन निर्देशः ।

१८ लक्षणत्वेन = पृथिवीनिवासिनो इन्द्राग्नी ।

१९ काश्चिन्निपातभाज इत्वस्मिन्नधिकारे ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६७७

२१ अत्खन्तनैषण्टुकं = सदैव नैषण्टुकम् ।

२३ आदित्यस्य ' स्वः पृथिः ' इत्यादीनि नामानि । किं तेषां न कदाचन प्राधान्येन स्तुतिः ।

६७८

१ वाक्यार्थेन उपजनितं चारन्नन्वयं यस्य । आक्षिप्तं गृहीतं जितं स्वाभिधेयसामर्थ्यं यस्य । इवशब्दोऽग्निशब्दस्य प्राधान्यमाक्षिपति तिरस्करोति ।

१-३ पाठान्तरे यच्छब्दो द्विः प्रयुज्यते (२४-२५) ।

२ उपमानशब्देन = ' अग्निरिव ' इत्यत्र इवशब्दोऽग्नैरुपमानत्वं दर्शयति । तेन इवशब्द उपमानशब्दः । ' उपमाशब्देन । इति पाठ इष्टः ।

३ वाक्यार्थस्य सामर्थ्यं तेनोपजनितं प्राधान्येन सामर्थ्यं यस्य । मन्युशब्दः प्रधानमिति वाक्यार्थेन ज्ञायते ।

७ अग्निशब्दो विशेषणशब्दो गौणो विशेष्यं प्रधानशब्दमाकाङ्क्षते । तादृशं संबोधनान्तं मन्युशब्दमाकाङ्क्षन् ।

८ अर्थिनि = प्रधानार्थवति ।

११ अथोत = अपि च । अभिधानैः = गुणवाचकैर्विशेषणैः ।

१४ संविज्ञानात् = एकमत्येन । इन्द्रादौ देवतारूपेऽर्थे रूढम् ।

१५ आमन्त्रायविधौ = आमन्त्रयेन कृते विधौ । आमन्त्रात्कृतचोदनायाम् ।

१६ ' इन्द्राय वृत्रतुरे ' (६७९ । ११) न व्याख्यातम् । ' वृत्रहं-होमुकप्रभृतीनि ' (१९) इत्यत्रापि न वृत्रतुरशब्दो विद्यते ।

' इन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय वृत्रबूरा एकादशकपालम् ' (मैत्रा० सं० २।२।११) । वेदः चोदयति ।

१७ ' इन्द्रायांहोमुच एकादशकपालं निर्वपेत् ' (मैत्रा० सं० २।२।१०)

१८ ' समामनन्ति ' । अनेन समाम्नाया बहव आसन् यास्केनापि निघण्टुसमाम्नायो रचित इति भाति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६७८

१९ देवतानामसु समामनन्ति ।

२२ 'तु' इत्यस्य स्थाने 'तेषु' इति पाठान्तरम् (२९) ।
तेषु = देवतापदेषु ।

२३ एतादृक्समाह्वानेन देवतानामानि भूयांसि भवेयुः ।

६७९

१-२ 'भूयांसि तु समाह्वानात्' (६७८ । २२) = किंतु यानि
समाह्वानानि तेभ्योऽन्यान्मपि बहुतराणि सन्ति । किंतु अस्मि-
न्नर्थे 'तु'शब्दो व्यर्थो भवेत् । 'भूयांसि तु समाह्वानात्'
(६७९ । १२) इदं 'तान्यप्येके समामनन्ति' (६७९ ।
११) इत्यस्यानन्तरं वर्तते । तस्मात्तस्यान्योऽप्यर्थः स्यात् ।
भूयसां समाह्वाने किं प्रयोजनम् । न किमपि । केवलं गण-
नम् । भूयांसि समाह्वानानि स्युरित्येव केवलम् ।

६ संविज्ञानभूतं = रूढम् । प्राधान्येन स्तुतिर्विषयस्य तत् । देवताना-
मसु तदेवाहं समामने गणत्रे ऋद्धं प्राधान्यस्तुति च ।

७-८ निर्विशेषणं = यदभिधानैः गुणपदैर्न संयुक्तम् ।

९ 'व्रतभृत् व्रतपतिः' इत्यादीन्यशेर्नामानि । 'अशे व्रतपते
व्रतमालप्स्ये' (मैत्रा० सं० १ । ४ । १ ॥ १ । ४ । ९) ।
'अशेर्वै देवानां व्रतपतिः' (शत० ब्रा० १ । १ । १ । २२ ॥
मैत्रा० सं० १ । ४ । ९) । 'त्वमशे व्रतभृच्छुचिः') मैत्रा०
सं० ४ । ११ । ४ ॥ तै० ब्रा० २ । ४ । १ । ११)
एवमशिव्रतभृत् ।

१७ पूर्वेष्व्यः समाह्वानात्तृभ्यः = ये हविःसंबद्धानि अभिधानानि
समामनन्ति तेभ्यः ।

'इन्द्राय वृत्रघ्ने अष्टाकपालं निर्वपेत्' इत्यादिविधिः । एता-
दृशा विधयो वेदब्राह्मणयोर्दृश्यन्ते । पूर्वे समाह्वानातारो विधि-
दर्शनादाभिधानानि समामनन्ति । कथमिदं ज्ञायते यद्विधिदर्श-
नात्ते समामनन्ति । 'हविश्चोदयति' (६७९ । १०) इति
याम्भवचनात् । 'इमे' शब्दः (१८) संनिहिततरं वस्तु दर्शयति ।
ये वृत्रहाद्यभिधानानि समामनन्ति ते स्तुतिदर्शनात्समामनन्ति ।

पत्रं
६७९

पङ्क्तः

१७ इदं च ' कर्माभिर्क्रिषिर्देवताः स्तौति ' (६७९ । १३) इति
यास्क्रवचनात्स्पष्टम् ।

१८ स इन्द्रः । वज्रबाहुः (१९) इदं कथं कर्मनाय भवेत् ।

२२ पृथक् = विशेष्यं विना प्रयोगे । वृत्रहादिविशेषणस्य नेन्द्रा-
दिविशेष्यं विना स्वातन्त्र्येण स्तुतिः ।

२३ केवलस्य = विशेष्यासंबद्धस्य ।

६८०

२ ' विशेषतः ' = ' विशेष्यतः ' इति पाठः स्यात् । विशेष्यं
विना । क्वचित् = क्वचिदपि । अनवस्थानात् = विशेष्यं विना
विशेषणं स्वातन्त्र्येण न क्वपि अबतिष्ठते प्रयुज्यते ।

६ क. ख. ग. च. अ. पुस्तकेषु ' निरुक्तभाष्यार्थनिबन्धपद्धतौ '
इदमाकस्मिकं न क्वचिदन्यत्र वर्तते ।

२० प्रकरणे प्रकरणे व्याख्या भिन्ना । नैषण्टुकप्रकरणे व्याख्या
(१४३ । २९-२८) । नैगमप्रकरणे(२९२।२१-२२)

६८१

५ तत्रैतद्भवति = अयं प्रश्नो विचारो वोद्भवति ।

८ निःशेषण (सर्वत्र सर्वैश्च) ज्ञातमेतदेवाभिधानं यस्य ।

९ स्वज्ञादिकर्मणोऽङ्गम् । विवक्षिते विशिष्टे स्थानकर्मणी यस्य ।
विवक्षितं स्थानं विशिष्टं च स्थानं यस्य इति पाठान्तरे (२८-
२९) अयं विवक्षितशब्दो विशिष्टमित्यर्थे प्रयुज्यते ।

१६ अस्माकमाग्निः संनिष्ठः । पृथिव्यन्तारिक्षं सुलोक इत्थमुक्त्वाः ।

१८-१९ देवताभ्यः प्रत्यक्षाभिधानं साक्षादाभिधानं न रोचते । परोक्षा-
भिधानं तेषां प्रियम् । देवताभिधानं व्युत्पादयितव्यं लौकिकश-
ब्दवत् ।

१९ देवता न साक्षाद्द्रष्टुं शक्या । साऽऽदौ परोक्षीकर्तव्या । अशि-
रिति न देवतायाः साक्षात्त्वम् । पराक्ष इहं तत् । परोक्षीकृत
तत्त्वं = परोक्षीकरणमेव तत्त्वम् । तदेव अर्थितम् इष्टं तेषां
परोक्षनाम्नां निर्वचनेन

षत्रं

पङ्क्तिः

६८१

१९-२० ' परेक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विपः' (शत० ब्रा० १४ । ९ । ९ । २) ।

२१ आगमः प्रमाणं यस्य । यदा देवताभिधानं सम्यग्ज्ञावते तदा देवतातादात्म्यमनुभूयते ।

२१-२२ 'अथाऽऽगमो यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति' (निरु० १३ । १३) ।

२४-२५ ' अग्निः कस्मात् ' इत्युपोद्धातः । ' अग्रणीर्भवति ' इत्युपन्यासः ।

२५-२६ ' अथाऽऽत्मनो महतः प्रथमं भूतनामश्रेयान्बनुकामिष्यामः ' (निरु० १४ । १०) । अनेन सर्वाणि नामान्यात्मन एव ।

२७ ' अयमेवैतत्सर्वमनुभवति ' (निरु० १४ । १३-१४) । ' तानीमान्येतस्मिन्नात्मन्येकं भवन्ति ' (निरु० १४ । १५) । ' तस्मिन्नेकं भवन्ति ' (निरु० १४ । १६) । ' सैषाऽऽत्मजिज्ञासा सैषा सर्वभूतजिज्ञासा ब्रह्मणः सारिष्टं सरूपतां सलोकतां गमयति य एवं वेद ' (निरु० १४ । ३७) । एवं विभूतिताद्भाव्यमनुभवति ।

६८२

१ ' अपि वा सर्वाभिर्विभूतिभिर्विभूतत आत्मा ' (निरु० १४ । १२) । एवं सर्वा विभूतय आत्मन एव ।

३ ' अग्रणीर्भवति ' इति विग्रहेण वाक्यम् । कृतस्य वाक्यस्य पदानां वर्णाः । तेषां (पदेभ्यः) निष्कर्षणेन समुदायः । तेनोच्यतेऽग्निशब्दः । अग्रणीः = अग्र + नी = अग्रं + नयति । अस्य वाक्यस्य द्वे पदे । तेषां वर्णाः स्पष्टाः । ते पदेभ्यो निष्कृत्यन्ते । तेभ्यो वर्णेभ्योऽग्निशब्द उत्पन्नः ।

५ अग्निशब्दस्य ' अग् ' इत्यवयवः अग्रशब्दादुत्पद्यते । न केवलो ' ग् ' इति । तेन अग्रशब्दः कर्मस्थानीयः पूर्वपदं च ।

६ अपरं शब्दं ' नद्यतिम् ' उत्तरपदमवस्थाप्य । अग्रशब्दो निःसंशयः । स कस्या अपि क्रियायाः कर्म । तेन स व्यवस्थाप्यते ।

पत्रं

६८२

पङ्क्तिः

६ न तश्चोत्तरपदम् । (नि) नयतिः उत्तरपदं न उत्तरपदस्थम्
(२७) ।

७ कर्तव्यात्मनि कर्तव्यरूपे किमपि कर्तव्यमपेक्ष्यते इति
नयतिसदृशं पदमावश्यकम् । करणीयस्थाने नयतिपदमवस्थाप्य ।
'कर्तव्यात्मना' (२८) इति ग. ज. पाठोऽपि साधुः । 'कर्त-
व्यार्थात्मना' (२८) = कर्तव्यार्थेन + कर्तव्यात्मना एवमयं मिश्र
पाठः । तेन चोत्तरपदेन कर्तव्यरूपेण भवितव्यम् । किमपि करणी-
यम् । तस्मात् 'नयतिः' उत्तरपदम् । ' अवस्थाप्य ' इत्यनेन
काचित्संदिग्धता प्रदर्श्यते । ' कर्तव्यात्मनि • र्या ' इति केनापि
च. पाठो रूपान्तरितः (२८) । किंतु सोऽशुद्धः । नयतिः
कर्तरि अवस्थाप्येत । ' आत्मनि ' पदं किमर्थम् ।

१० अग्रं प्रधानशब्दवन्न नित्यं नपुंसकम् । ' अधिके च प्रधाने च
प्रथमे चाभिधेयवत् ' (मेदिनी) । यजमानमितरांश्चाग्रं नयति ।

१२ अग्निग्रहणं प्रथमं कर्म । यः पूर्वद्युरग्निं गृह्णाति स श्रोभूते
देवता अभियन्ते । ततश्च ' अग्ने व्रतपते व्रतमालप्स्य ' इति ।
' अग्निर्वै देवानां व्रतपतिर्ब्राह्मणो व्रतभृद्व्रतपतय एव प्रोच्य
व्रतमालभते ' (मैत्रा० सं० १ । ४ । ९) । प्रणीयते
पूर्वादिभक्त्याह्वनयिस्थानं प्रति गार्हपत्यात् । अग्रं +
नी = अग्निः ।

१४ अथवा अङ्गं + नी = अग्निः । संनममानः =
सम्यक् नममानः = कर्मार्थं प्रह्वीभूय । सं नम्
धातुर्यास्ककाले आत्मनेपदी आसीत् । अथवा 'ताच्छ्री-
ल्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ' (पा० ३ । २ । १२९)
इत्यनेन ' संनममानः ' संनमनशीलं दर्शयेत् ।

१९ स्थूलौ अष्टीबन्तौ (जानूरुसंधी) यस्य स स्थूलाष्टीवान् ।
तस्यापत्यं स्थौलाष्टीविः ' बाह्वादिभ्यश्च ' (पा० ४ । १ ।
९६) इति सूत्रेण । बाह्वादिराकृतिगणः ।

पत्रं
६८२

पङ्क्तिः

२२ 'वनूयी शब्दे उन्दे च' (धा० १ । ४८६) । ' अतिही-
न्दीरीवनूयीक्षमाय्यातां पुङ्णौ ' (धा० ४ । ३ । ३६) इत्यनेन
'वनोपयति' = आर्द्रां करोति । ' अ + वनो + प + न = '
इत्यस्मात् अ + क्तः = अवनः अशः भग्निः ।

६८३

३ ता हेतुत्वेनोपादाय = शब्दसाधने ताः क्रिया हेतवः ।

४ ' इतात् ' अत्र ' इतः ' इति निष्ठान्तं रूपम् । ' इण्-
धातोः ' इत्यर्थः ।

६ ' षीङ् ' इति ग. च. ज. पाठः प्रामादिकः ।

८ एतेर्धातोः = इण्धातोः । खलुशब्दो धाष्टर्चं द्योतयति ।

९ किमपि वर्णसामान्यं भवेन्न भवेद्वा । अत्र ' वर्णसामान्येन ' पदं
नावश्यकम् । वर्णसामान्येन इणि अकारो नास्ति । वर्णसामान्येन
सत्यं नास्ति ' इत्यन्वयः । ठ. ड. वर्णेषु पुस्तकेषु
' सत्यं नास्ति । वर्णसामान्येन ' इति विरामव्यवस्था ।
' अग्निः ' इत्यत्र अकारः कस्मिन्नपि इण् रूपे नास्ति ! एवं वर्ण-
सामान्याभावः । तस्य इणः विकारमादाय ततस्तं विकारं
न्यापादयति विपरिणमयति चेन अकार उपलभ्येत ।

अथवा । वर्णसामान्येन = केऽपि वर्णाः इण् रूपे स्मूः । तादृशं
किमपि रूपं गृहीत्वा । अत्र वर्णसामान्यं काल्पनिकम् ।

अग्नौ इणोऽर्थदर्शनात् । शठ्कार्थसंबन्धनित्यत्वात् । अर्थे च
गुणभूतत्वाच्छब्दस्य । एतेभ्यः कारणेभ्यः तद्विकारमित्यादि ।

१० अग्नौ इणः अर्थदर्शनात् तस्य धातोः कोऽपि विकारो ग्रही-
तव्यः । स च अकारवत्त्वेन परिणमयितव्यः ।

११ व्यापादयति = विपरिणमयति ।

११-१२ यथावस्थितस्य = वर्णन्यापादनं विना ।

१९ ततः = 'आययति' इति रूपात् ।

'अत्राऽऽकारः' इति पाठान्तरम् (२९-२६) । अत्र 'आय-
यति ' रूपे आकारः । ततः आकारादकारमादत्ते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

६८३

१५ कोऽयं मह्यन् प्रयासः । एतीति अयनः । अयनशब्दादकारः प्रयासं विना लभ्येत । अनर्त्तीति अज् । 'चोः कु' (पा० ८।२।३०) इत्यनेन अग् । इदं कुत्वम् । अथवा ! दहतीति भक् । 'इलां जश् झशि' (पा० ८।४।२३) इत्यनेन 'धग्' । इदं जश्त्वम् । यदा कुत्वं तदा अनक्तिर्धातुः । यदा जश्त्वं तदा दहतिः । अ (एतीति अयनः) + ग् (स्यनर्त्तीति व्यग्) + नि (नयति हविः०) = अग्निः । अथवा । अ (एतीति अयनः) + ग् (दहतीति) धग् + नि (नयति हविः०) = अग्निः । एर् 'त्रिभ्य आरूपातेभ्यः' (१) इत्युच्यते ।

१७ साधीयस्तराः = साधीयस्यः + साधुतराः ।

'अग्रं नयति अङ्गं नयति भवनोपनः' इत्येताभ्यः क्रियाभ्य-
स्तिस्त्रः क्रियाः साधीयस्यः ।

१८-१९ अनुक्रमेण अग्निर्लक्ष्यो निरूपणीयः । तस्य लक्ष्यस्य प्रधान-
स्तुत्या संबन्धः लक्ष्यप्रधानस्तुतिसंबन्धः । स लक्षितो अस्मिन्
तदाभिधानम् ।

२० अग्निकर्मणां शिङ्गैर्लिङ्गिताः ।

६८२-६८३

अग्निमद्वशो लातिनभाषायाम् 'अग्निस्' शब्दः । अग्ने
उस् (आग्नेयः) अग्निमुल्स् (अग्निकः) अग्निफर्
(अग्निभृत्) अग्निजेना (अग्निजः) अग्निपेस् (अग्निपाद्)
अग्निपोटेन्स् (अग्निपतिः) इत्यादितद्धितसमासरूपाणि ।
'अग्निस्' शब्दस्य (अग्निशब्दस्य) उत्पत्तिं को ज्ञातुं शक्नोति
'अग्निवह्नि' इत्यादिशब्देषु 'निः' नामकारकप्रत्ययव-
द्भाति । अजतीति अग्निः । वहतीति वह्निः । लातिनभाषा-
याम् 'अगो' चोदयामि । अजति = चोदयति । 'अज
गतिक्षेपणयोः' (धा० १।२।३०) । अजतीति अग्निः । 'अङ्गे-
र्नलोपश्च' (उणा० सू० ४।९०) इत्यनेन ।

६८४

३ छ. त. द. पुस्तकेषु 'यज्ञश्च' इत्यस्य स्थाने 'यज्ञस्य ।
इति पाठः (२९) । यज्ञस्य पुरोहितः इत्यन्वयः । अथवा
यज्ञस्य देव इति ।

पत्रं

६८४

पङ्क्तिः

४-९ ' यो देवः सा देवता ' इति न व्याख्यातम् । देवः = देवता ।
 ' होतोरित्थौर्णवाभः ' इति छ. त. द. पाठः (२९) ।
 ' रि ' अक्षरं लेखकप्रमादेनाधिकम् । ऊर्णवाभस्य अपत्यं-
 पुमान् और्णवाभः ।

७ ' अग्निमीळे ' इत्यस्य आग्नेये ऋतौ विनियोगः (आश्व०
 श्रौ० ४ । १३) न तु आश्विने । ' पुरोहितः
 पाकयज्ञे ' इति पाठान्तरम् (२७-२८) । ' भ्रयः
 पाकयज्ञाः ' (आश्व० गृह्य० १।१।२) । हुता अग्नौ ह्य-
 माना इत्यादि (आश्व० गृह्य० १।१।३) । अष्टकाः पार्षणः
 श्राद्धं श्रावणी आग्रहायणी चैत्री आश्वयुजी इति सप्त पाकय-
 ज्ञसंस्थाः (संस्काररत्नमाला—' अथ संस्काराः ' इति प्रकरणे) ।

११ ' ईड स्तुतौ ' (धा० २।९) । ' ईळिः ' इकारोपबन्धेन
 आस्कृताले धात्वो लिखिता इति भाति ; उपबन्धानां किं
 प्रयोजनमिति न ज्ञायते । नामकरणार्थं उपबन्धः स्यात् ।
 ' सनिस्त्वश्र्येषणा याञ्चाऽभिशस्तिर्याचनाऽर्चना ' (अमर० २।
 ७।३२) । अश्र्येषणा = गुर्वादेः कस्मिंश्चिदर्थे प्रार्थनया नियो-
 जनम् । याचनाऽप्यर्थः स्यात् ।

१२ ईडिः इहापि पूजाकर्मा स्यात् ।

१४ दिवु ऋडाविजिगीपाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिग-
 तिषु (धा० ४।१) । ' देव दिव् द्यु द्यौ ' एते सर्वे दिवु-
 धातोः । दीन्वन्ति (= द्योतन्ते) ते देवाः । अग्निः दीव्यति
 (= द्योतते) तस्माद्देवः । द्यौरपि दीव्यति (= द्योतते) ।
 अवेस्ताभाषायां रक्षोवाचको देवशब्दः । ग्रीकभाषायां
 डिऑस् थिऑस् । लातिनभाषायां डेउस् । देवता = डेओत-
 तेम् ।

१७ यद्यपि अग्निः पृथिवीस्थान इन्द्रोऽन्तरिक्षस्थानस्तथाऽपि द्वावपि
 द्युस्थानौ यस्मात् चोर्देवतानां सामान्यं स्थानम् । देवशब्दो

पत्रं

पङ्क्तिः

६८४

१७ द्युशब्दात् । इदं निर्वचनं पूर्वभ्यः सार्थतरम् । पृथिवी लोकात् द्युलोकं गच्छति यजमानेन सह । ' पक्षेऽर्थवत्त्वं निर्वचनस्य ' इदं दुर्बोधम् । कदाचिदयमर्थः स्यात् । दिवि भवतीति देवः । सूर्यरूपेण अग्निर्दिवि भवति इति पाक्षिकं द्युस्थानत्वम् । प्रातः अग्निः सूर्ये स्वतेजो निधत्ते इत्यर्थे वा द्युस्थानत्वम् ।

१९ होता जुहोतेरेव न तु ह्यतेरित्यस्मात् ।

१९-२० ' हु दानादनयोः । आदाने इत्येके ' (धा० ३ । १) । जुहोति = हविर्ददाति पुरोडाशभागमात्ति च । अथवा ददाति आदत्ते च ।

२२ परा क्रमेण

२३ ' अग्निः पूर्वभि० ' (ऋ० सं० १ । १ । २) । अपरा = अन्या ।

६८४

२३ } अमुना प्रकारेण एतस्यामुदाहृतायां वहनजर्मयुक्ताः सर्वा ऋच उदाहरणम् उदाहरणत्वेन उपेक्षया इत्युपप्रदर्शनार्थम् ।

६८९

१० तद्वृत्तं = ' सः ' शब्दस्य प्रयोगः । वृत्तं = रूपम् । यच्छब्दस्य किमपि रूपं यद्वृत्तम् । तच्छब्दस्य तथा तद्वृत्तम् ।

११ ' यत्तदोर्नित्यसंबन्धः ' इदं वार्तिकसदृशं वाक्यं व्याकरणमहाभाष्ये भृशं पठ्यते ।

१५ लोटा = आशीर्वाचकक्रियारूपेण । निराकाङ्क्षं भवति ।

१६ एकपदनिरुक्तम् ऋजु सरलम् ।

१८ आक्षिप्य = आक्षेपं दूषणमुद्भाव्य ।

२०-२१ स्वार्थं जहत् । उपसंक्रामत् अभिधानम् । ' उपसंक्रामन् ' (३१) नेदं रूपमत्र युक्तम् ।

६८६

१ ' नैव० ' इत्यादिना आक्षेपनिराकरणम् ।

२-३ तस्या गौण्याः सर्वार्थैस्तथाविधश्चल एव संबन्धः ।

३-४ तथाविधः = नित्यं प्रकरणोपपदपरतन्त्रः ।

११

पत्रं पङ्क्तिः

६८६

४-९ समर्थानि प्रकरणानि उपपदानि च तेषु परतन्त्रः । यादृशं प्रकरणमुपपदं वा तादृशः संबन्धः । गौणा अर्था अनेके प्रकरणोपपदपारतन्त्र्यात् ।

५ मुख्याया वृत्तेरर्थान्तरे विनियोग एव नास्ति । लोके प्रसिद्धि-वेदे बोधश्च वा ।

९ उपोद्बन्ति = (उप + उत् + हन्ति) उपोद्भातं करोति । चोदकः आक्षेपकः । पृथिवीस्थान एवाशिरिति स आक्षेपको न मन्येत । इदं मतं तस्य संमतं न स्यात् ।

१४ 'अग्निमौले' इत्येतस्वामृच्यावहनक्रिया न विद्यते । किंतु परस्यां 'स देवाँ एह वक्षति' इत्यस्याम् । अस्मिन् सूक्ते पार्थिवं ज्योतिरग्निः शब्देनोच्यते । 'आवहनहवनक्रियायोगात्' इति च. पाठः (२९) । 'आवहनक्रिया०' (ग. ज. पाठः) = आवहन + हवनक्रिया० । होतारमिति हवनक्रिया । 'आवक्षतु' इत्यावहनक्रिया । 'हवनक्रियायोगात्' इति सार्धी-वान् पाठः ।

६८७

११ 'अभिनवन्त' 'अभिनमन्त' इति नैकोऽपि पाठो व्याख्यातः ।

१६-१७ भर्तुः हर्षमुपजनयन्त्यः ।

२१ पार्थिवे (अग्निं) घृताहुतिहवनस्याविधानात्कल्पसूत्रे ब्राह्मणे वा । आज्यशस्त्रे विनियोगो नाऽऽहुतां (१०) ।

२१-२२ उपमानं योषाः उपमेयं घृतस्य धाराः । यथा योषा भर्तारमभिनमन्ति तथा घृतस्य धारा अग्निं कथमभिनमेयुः । किमत्र वैधर्म्यम् । अविधानं वैधर्म्यं चेति यौगपद्यम् ।

२२ वैद्युते (अग्निं) उदकस्य धाराणां संभवः । उपमानोपमेयसामञ्जस्यं चेति यौगपद्यम् । तत्र = वैद्युतेऽग्नौ ।

२३ सामर्थ्यम् = अर्थमन्तिः । ऋचि 'घृतस्य धाराः' इति न घृतधाराः (२९) । घृतस्य प्रसिद्धार्थं त्यक्त्वा ।

२४-२५ एतदेव सामर्थ्यम् = अस्मिन् मन्त्रे विद्यमानम् ।

पत्र

पङ्क्तः

६८८

१ एववेद्य. = एनं ज्ञातः निरूपितः ।

२ तस्मात्सुष्ठु उक्तमाक्षेपकेण ।

४-९ 'अन्यन्नित्वचनमूजु' इति कृत्वा 'नसतिराप्नोतिकर्मा वा नमतिकर्मा वा' (६८७ । ३) इति न व्याख्यातम् । तथा 'हर्यति-प्रेप्साकर्मा विहर्यतीति' (६८७ । ४) । विहर्यति = भृशं विहरति भुङ्क्ते । 'अभिहर्यति' इति पाठान्तरम् (६८७ । २६) ।

१० आदित्यमुक्तमस्यामेकस्यामृचि अथवा सकले सूक्ते भाष्यकारोऽमन्यत न वेति न स्पष्टम् । एका ऋक् अथवा सकलं सूक्तमापं स्यात् ।

१०-११ 'समुद्रादूर्भिरैकादशाऽऽशेषं जगत्यन्तं सौर्यं वाऽऽपं वा गल्यं वा घृतस्तुतिर्वा' अनुक्रमण्याम् । 'नानादेवताभिवाद०' (इत्यादिपाठान्तरम् २३) = 'समुद्रादित्यशेषमन्यस्य' (बृहद्दे० ९ । ९) ॥ 'आदित्यं वा ब्राह्मणोक्तं प्रदिष्टं ऋशेषं यद्वाऽऽज्यसूक्तं हि दृष्टम् । अपां स्तुतिं वा यदि वा घृतस्तुतिं गवां स्तुतिं वा सूक्तमेतद्वदन्ति' (बृहद्दे० ९ । १०) ॥

१२ प्रकाशेन सर्वस्य च्छादकः ।

१३ 'उदतीर्तत्' इति उत् + तृ इत्यस्य यङ्लुङि रूपम् । सूर्यः प्रथममद्भ्यो नङ्गे ।

१५ स चन्द्रमा अस्य सूर्यस्य । 'अथैतद्वृषा सोमः । योषा अपो हविर्धानेऽभ्येति तस्मान्मिथुनाच्चन्द्रमा जातोऽन्नाद्वै तदन्नं जातं यद्भ्यश्च सोमाच्च चन्द्रमाश्चन्द्रमा हेतस्यान्नं य एष तपति' (शत० ब्रा० ४ । ६ । ७ । १२) ।

१९ 'एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः' (शत० ब्रा० १ । ६ । ३ । ९) ।

पङ्क्तिः

२ अस्य मन्त्रस्य आदित्यदेवत्वे सत्यपि । आदित्यस्य अग्नित्वम् ।

३ ' समुद्रादर्मी० ' एता ऋचो घृतस्तोम्या उच्यन्ते (मैत्रा० सं० १ । ६ । ७) ।

४ इदं मध्यमं ज्योतिरशिरिति प्रतिपादयितुमिदमुदाहरणमस-
मर्थम् ।

५ एक्रेषां शाखिनां = वाजसनेयिनाम् ।

६ इमं स्तनमूर्जैस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये (यजु० सं० १७ । ८७) । इदं ८७-९९ ऋचात्मकं सूक्तम् (वा० सं० १७ । ८७-९९) । ' अपां प्रपीनमग्ने ' इति अस्मिन् सूक्ते अश्लिङ्गम् ।

' इमं स्तनं ' यजुर्वेदे सप्तदशोऽन्त्यास्त्रयोदश यजमानानुवा-
चनेः घृतस्तुतां वा विनियुक्ताः । तत्रेयं प्रथमा (च. ट.) ।

७-८ निविद् = सूक्तस्याऽऽदौ मध्येऽन्ते द्वयोः सूक्तयोर्मध्ये पठनीयानि
देवतास्तुतिपराणि कानिचित्पदानि । यथा ' अग्निर्देवेद्धः । अग्नि-
र्मन्विद्धः ' इत्यादिद्वादशपदा निविद् (ऐ० ब्रा० १० । २) ।
' तूष्णींशंसनिवित्मूक्तैराज्यशस्त्रं त्रिपर्वकम् ' (ऐ० ब्रा० साय-
णभाष्यं १० । १) । प्रथमं तूष्णींशंसः । ततः ' अग्निर्दे-
वेद्धः ' इति द्वादशपदा निविद् । ततः सूक्तम् । इदमाज्यशस्त्रम् ।
तूष्णींशंसः (ऐ० ब्रा० ९ । ७) । माध्यंदिने सूक्ते
विपरिहृत्य तयोर्निविदं दद्यात् (आश्व० श्रौ० ८ । ९ । २) ।
सूक्तयोर्व्यत्यासं कृत्वा तयोर्मध्ये निविदधीयते । इयं निविदग्नि-
स्तुतिपरा ।

९ ' अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेति ' (ऐ० ब्रा० १८ । ६) । उ-
दैति ' इति कौपीतिकिब्राह्मणपाठः (कौ० ब्रा० २९ । १) ।

१० तस्य ब्राह्मणस्य = ब्राह्मणोक्तवचनस्य ।

६ अस्यवामीये सूक्ते एषा ।

८ गरुत्मान् = गर् (गुरु) + त्मान् (आत्मा) । ' गुर्वात्मा
महात्मा ' (३) न व्याख्यातम् ।

पत्रं
६९०

पङ्क्तिः

९ गरणं = स्तुतिः ।

११ ' महान्तमात्मानमेकमात्मानम् (१) । दुर्गपाठे ' आत्मानं ' पदं सकृदेवास्तीदिति भाति ।

१३ ' तद्यदिदमाहुर्मुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेव उ ह्येव सर्वे देवाः ' (बृह० उ० १।४।६) । एतस्यैव प्रजापतेः सा भिन्नाभिन्नदेवतासृष्टिः । याज्ञिका भिन्ना देवता यजन्ते । किंतु प्रजापतिरेव सर्वे देवाः ।

१८ पूर्वपक्षव्यावर्तकः = परमतं व्युदस्यति ।

२०-२१ ' निर्वपेत् ' इति चोदना ।

२३ अत्र = पार्थिवेऽशां । लोकप्रसिद्धिवेदप्रसिद्धिश्चाग्निशब्देनास्मिन्नेव पार्थिवेऽशां ।

२४ ' अग्निमानय ' इति लोकोक्तिः । ' अग्निं प्रणय ' इति वेदोक्तिः । ' ॐ अग्निं प्रणय ' इति गार्हपत्यादाहवर्नाथं प्रति अग्निनयनाय प्रैपः ।

२६ चोदिताः = आदिष्टाः ।

६९१

२-३ यथा अग्नेरग्निशब्देन मुख्यः संबन्धः न तथा विद्युत्सूर्य-शब्दाभ्याम् ।

५ अस्य विचारस्य आक्षेपप्रतिसमाधानरूपस्य ' अयमेव पार्थिवोऽग्नि रूपाभ्यः ' इति प्रयोजनम् । आग्नेयेषु सूक्तेषु स एव स्तूयते तस्मै च हवींषि संप्रदीयन्ते स एव च तानि भुङ्क्ते ।

६ ' एतमेवोपासीत ' (२०) इति पाठान्तरं स्पष्टम् ।

६९२

१ देवतायाः बहुनामधेयत्वस्य कारणं माहाभाग्यं कर्मपृथक्त्वं वा (निरु० ७ । ९) । अग्निरेव जातवेदाः ।

१-२ ' पृथगेव म्युः पृथग्वि स्तुतयो भवन्ति ' (निरु० ७ । ९) । पृथगाभिधानानां स्तुत्यन्तरैः भिन्नस्तुतिभिः संबन्धः ।

६ जाते जाते = प्रत्येकस्मिन् प्राणिनि ।

९-१० विदेर्ज्ञानार्थस्य वेदस् । जातं जाते (जन्मतः) एव वेदो विद्या प्रज्ञानं यस्य ।

पत्रं
६९२

पङ्क्तिः

११ 'यत्तज्जातः' इति ब्राह्मणं जातवेदा जातधन इत्यर्थसमर्थ-
नार्थम् । तेन 'जातविद्यो वा जातप्रज्ञानः' इदं जातधन
इति व्युत्पत्तेः प्राक् स्यात् । अथवा मूलपाठे न स्यात् ।

(मैत्रा० सं० १।८।२) 'यत्तज्जातः' इत्यत्र 'यज्जातः'
अस्ति । अविन्दत' इत्यस्यानन्तरम् 'इति' नास्ति ।

'आजातं जातवेदसि' (ऋ० सं० ६।१६।४२)।
इत्यत्र 'जात इतरो जातवेदा इतरः' (ऐ० ब्रा० ३।५)।
जातं सद्योमथितमग्निं भेत्तीति आहवनीयाख्योऽग्निर्जातवेदा इत्यु-
च्यते । 'प्राणो वै जातवेदाः स हि जातानां वेद' (ऐ० ब्रा० १०।
८। ('यद्ब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदामिति तज्जातवेदसो जात-
वेदस्त्वम्' (ऐ० ब्रा० १३।१२) ।

१७ क. ख. छ. त. द. पुस्तकेषु 'जातवेदसे सुनवाम' इत्यधिकः
खण्डो वर्तते (२३-२९) । स दुर्गेण न व्याख्यातः । इदं
सर्वं (निरु० १४।३३) इत्यत्र वर्तते । किंतु तत्रापि दुर्ग-
वृत्तिर्न वर्तते ।

२३ अस्य सूक्तस्य (ऋ० सं० १।९९) एकैव ऋक् । एक-
र्गात्मकमिदं सूक्तम् ।

२५ जातवेदा देवता यस्या ऋचः सा जातवेदस्या । अथवा जात-
वेदसी नाम कर्म तस्याम् । 'जातवेदसे सुनवाम सोममिति
जातवेदस्यां पुरस्तात्सूक्तस्य शंसति स्वस्त्ययनं वै जातवेदस्याः
स्वस्तितायै' (ऐ० ब्रा० २०।३) । जातवेदसे सुनवा-
मेति खण्डः काचिद्दुर्बोधः । 'जातवेदस्यां' (२५) 'अर्चाय'
(२५) 'अनिस्मः' (२६) 'महाकूलां' (२९) एते शब्दा
दुर्बोधाः । 'दददित्यर्थः' (२७) अयं कस्यार्थः । जातवेदस्या
ऋक् । तस्याः किम् । वाशब्दः किमर्थः । वेदः = धनम् ।
अर्चाय = अर्चनीयाय ।

२८ 'सिन्धुं नावा' इति पुनरुक्तिः किमर्था । भाष्यं यास्कभाष्य-
सदृशं न भाति ।

- पत्रं
६९२ पङ्क्तिः
२९ महती दूरे कूले यस्याः सा महाकूला ।
३० दुरिता दुरितानि अतिपर्पत् अग्निः ।
- ६९३
१४ अश्वं = समश्वानं व्याप्नुवानं जगत् कर्मभिः । दुर्गवृत्तौ
‘अश्वानं’ न समश्वानम्’ (१) ।
१५ ‘आप्लु व्याप्तौ’ (धा० १।१४) । ‘आप्लु लम्भने’ (धा० १० ।
३०६) । ‘व्याप्नुवानम्’ इति रूपमिष्टम् । ‘व्यापयन्तम्’
इति प्रामादिकम् ।
१६ अपि वा अश्वमिव जातवेदसमिति उपमार्थे स्यात् (१) ।
१६—१७ अश्वशब्दः अश्वप्राणिनि रूढः । रूढिश्च शास्त्राद्द्वलीयसी । तेन
‘अश्वानम्’ इत्यर्थे इष्टोऽपि न गृह्यते ।
१८—१९ बर्हिषा उपलक्षितं कर्म लक्षणया बर्हिः ।
१९ ‘कर्म सीदेत्’ इत्यन्वयः ।
२१ ‘एकमिव’ इति छ. त. द. पाठः (२९) अपूर्णमबधारणं
दर्शयति । ‘एकमेव’ निःसंशयत्वं दर्शयति । ग. च. ज.
पाठः ‘एकमिव’ (३०) ।
२२ ‘तदेतत्’ इत्यत्र ‘तत्’ निपातसदृशः । केवलो वाक्प्रकारः ।
दशतयीस्थं तृचम् । तस्य अनुस्मृतये स्मृत्युद्धोधाय ।
२३—२४ एतया ऋचा तृचं संनिधीकृत्य । संनिधीकृत्य = संनिहिती-
कृत्य इति शुद्धं रूपम् । संनिधीकृत्य = संनिधौ कृत्वा
स्मारयित्वा ।
- ६९४
१ विवक्षिताय प्रयोजनाय ।
९ स्थितं = प्रतिपादितं सिद्धम् ।
११ अनर्थान्तरं ऋ न अर्थान्तरं न भिन्नम् । गायत्रा जातवेदसा मन्त्राः
कर्मसु विनियोक्तव्याः । किंतु जातवेदसं गायत्रं तृचमेकमेव ।
तस्मात् ‘आश्रेयान्मन्त्रान् जातवेदसानां स्थाने युञ्जीत’ इति
विधिरनुमितः ।
- ६९५
१ जातवेदसं सूर्यमुद्ग्रहन्तीति तु० = किंतु अस्यामृचि जातवेदाः
सूर्य इति स्पष्टम् ।

पत्रं
६९९

पङ्क्तिः

७-८ इतरयोः विशिष्यते प्रसिद्ध्या ।

१९ ' असौ लोकः पर्जन्यः पृथिवी पुरुषः योषा एते पञ्चाग्नयः ' (छा० उ० ९ । ४-८) । ' स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽभ्य एव हरन्ति ' (छा० उ० ९ । ९) । इयं पञ्चाग्निविद्या ।

२० ' अपि वा० प्रवर्तयति० ' इदं ' विश्वान्नरान्नयति ' इत्यस्या-
न्यद्विवरणम् ।

२३ ' स्वतन्त्रः कर्ता ' (पा० १ । ४ । ९४) । ' तत्प्रयोजको हेतुश्च ' (पा० १ । ४ । ९९) । अग्निहेतुरिति कर्ता । कर्तुः प्रयोजक इति हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च भवति ।

६९९
६९६

२३ } नरैः क्रियासु अङ्गभावं नीयमानः क्रियायाः कर्म भवति ।
१ }

२-३ विश्वानरः = विश्वान् + अरः (ऋ गतौ) = सर्वाणि भूतानि प्रति ऋतः ।

१३-१४ पृष्ठयम्यैव चतुर्थ्यऽहनि इयं प्रतिपद् (आश्व० श्रौ० ८ । ८) । अभिप्लवः पृष्ठमहश्च न निर्दिश्येते ।

१८ प्रकाशक इति दृष्टेरुपकारकः ।

६९७

१ ' विचष्टे संयतने राजा अभिश्रीः ' (६९६ । १६-२०) इति स्तुतिः । ' सुमतौ स्याम ' (६९६ । २१-२२) इति आशीः । स्तुतिः प्रथमा । तदर्थं पदानां भिन्नः क्रमः ।

२ तिङ् = क्रियापदम् ।

६ यतः = यस्मात् ।

७ तं स्तुतिरभिभंतिष्ठते यस्मात्तस्मात् यत्तदौरध्याहरेण (३) या स्वाचार्य्य एकवाक्यतया सामर्थ्यमुद्गावयांचकार (९) ।

८ मन्त्रेषु आवश्यकः ।

९ प्रत्याख्यातं = विवक्षितम् ।

१०-११ ' ऋचां त्वः० ' इत्यत्र ' प्रतिपदं ' (२७) इति पाठान्तरम् । किंतु प्रतिपदं वाक्यसमाधिर्नास्ति ।

पत्रं
६९७

पङ्क्तिः

१९ वाक्यस्योपादानमारम्भः ।

१७-१९ दिवम् (छा० उ० १।१२।२) आदित्यं (१।१३।२) वायुम् (१।१४।२) आकाशम् (१।१५।२) अपः (१।१६।२) पृथिवीं (१।१७।२) निरस्य उद्दालक उवाच ' एते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वांसोऽन्नमत्सु । यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्व्वात्मस्वन्नमत्ति ' (१।१७।१) । एवमात्मा वैश्वानरः । छान्दोग्योपनिषदि ' दिवं ' न तु ' इन्द्रम् ' (१८) ।

२२-२३ मन्त्रदृक् स्तौति इति हेतोः ।

६९९

१८-१९ तेषां मेघानामनुद्गमे ।

२० मेघं ' मिह सेचने ' इत्यस्मात् । अत एव उदकपूर्णम् ।

२१ यः असौ वैश्वानरः (१८) इत्यन्वयः ।

७००

२ एकस्मिन्नेव वाक्ये वैश्वानरोऽग्निर्वर्षकर्मणा संबध्यते ।

३ स्थितम् (६९४ । ९)

४ ' प्र नू महित्वं० ' इत्यत्र जातवेदसो मध्यमत्वे गौणः प्रत्ययः । स नेष्ट इति असावादित्य एव कर्मात्मा जातवेदःशब्देनापदिश्यते । एक एवाऽऽत्मा । किंतु अग्निवायुसूर्यास्तस्य कर्मात्मानः । एनमात्मानं कर्मात्मना आदित्यनाम्ना अपदिशन् गृह्णन् । असौ आत्मा । कर्मात्मा आदित्यः । अयं तस्याऽऽत्मनोऽपदेशो नोपदेशः ।

५ कस्मिंश्चित् = मध्यमे आदित्ये वा । पूर्वः (पाठान्तरे २३) = विचारं संशयनिराकरणं विनैव ।

८ एनं जातवेदसम् ।

१० पृथिवी अन्तारिक्षं द्यौः इति एषां लोकानां रोहः । तत्क्रमेण प्रातःसवनमाध्यंदिनतृतीयसवनानां रोहः । यथा उपरि उपरि आरोहः पृथिव्या अन्तरिक्षमन्तरिक्षादिवम् एवं दिवः अन्तरिक्षमन्तरिक्षात्पृथिवी इति अवरोहः (१४) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७००

१३-१४ कस्मिंश्चित्कर्मणि = विषुवन्नामकेऽहनि । तद्दिनकर्तव्ये यागे
(ऐ० ब्रा० १८ । ४) ।

१४-१५ रोहात्प्रत्यवरोहश्चिकीर्षितः = प्रत्यवरोह आवश्यक इष्टश्च
यस्मात् प्रत्यवरोहाभावे तस्यैहिकं जीवितमल्पावधि स्यात् ।
' अथ य एककामाः स्युः स्वर्गकामाः पराञ्चमेव तेषां रोहेत्ते
जथेयुर्हेव स्वर्गं लोकम् । नेत्त्वेवास्मिँल्लोके ज्योगिव वसेयुः '
(ऐ० ब्रा० १८ । ७)

१५ उप (सम्यक्) व्याचक्ष्महे ।

१६ भक्तिभाजनौ समानार्थौ । ' सा वा एषा तृतीयसवनभाजना '
(ऐ० ब्रा० १२ । ७) । ' मरुतां सा भक्तिः ' (ऐ० ब्रा० १२ ।
९) । पृथिवीलोकः अस्य भक्तिः (भज्यते सेव्यते इति भक्तिः) ।
प्रातःसवनं शंसित्वा = प्रातःसवनयोग्यं शस्त्रं पठित्वा ।

१६-१७ प्रातःसवनं पृथिवीलोके भज्यते माध्यंदिनं चान्तरिक्षे इति
शंसति ईदृगर्थं शस्त्रं पठति ।

१६-२० प्रातःसवने होता शौसावोमिति मन्त्रेणाध्वर्युमाह्वयते ।
शंसामो देवोमित्यध्वर्युः प्रतिगृणाति । ततो होता शंसति शस्त्रं
पठति । अध्वर्यो शौसावोमिति माध्यंदिनसवने होता । शंसामो
देवोमित्यध्वर्युः । अध्वर्यो शोशौसावोमिति तृतीयसवने होता ।
शंसामो देवोमित्यध्वर्युः । (ऐ० ब्रा० १२ । १) ।
' तं (अग्निं) यज्ञायज्ञीयेऽसीदत्स वैश्वानरियेणाऽऽग्निमारुतं प्रत्य-
पद्यत ' (ऐ० ब्रा० १२ । ३) । ' स पच्छः प्रथमं रोहतीमिं
तं लोकमाप्नोत्यथार्धर्चशोऽन्तारिक्षं तद्वाप्नोत्यथ त्रिपद्याऽमुं तं लो-
कमाप्नोत्यथ केवल्या तदेतस्मिन्प्रतितिष्ठति य एष तपति ' ।
' त्रिपद्या प्रत्यवरोहति यथा शाखां धारयमाणस्तदमुष्मिँल्लोके
प्रतितिष्ठत्यर्धर्चशोऽन्तारिक्षे पच्छोऽस्मिँल्लोक आप्तवैव तत्स्वर्ग-
लोकं यजमाना अस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति ' (ऐ० ब्रा० १८ । ७) ।
' भूरिति ब्रह्मा प्रातःसवने । भुव इति माध्यंदिने । स्वारिति
तृतीयसवने । भूर्भुवः स्वरिन्द्रवन्तः सवितृप्रसूता इत्यूर्ध्वमाशि-
मारुतात् ' (आश्व० श्रौ० ५ । ३) ॥ (ऐ० ब्रा० २५ । ९) ।

पत्रं
७००

पङ्क्तिः

१६-२०

‘प्रजापतिः गायत्रीमेवाग्रये वसुभ्यः प्रातःसवनेऽभजत् ।
त्रिष्टुभमिद्धाय रुद्रेभ्यः मध्यंदिनेऽभजत् । जगतीं विश्वेभ्यो
देवेभ्य आदित्येभ्यस्तृतीयसवनेऽभजत् । अस्माल्लोकादन्तारिक्षलो-
कम् । अन्तारिक्षलोकादमुं लोकम् ’ (ऐ० ब्रा० २८ । २) ।
‘अथैतं तूष्णींशंसमुपांशु शंसति सर्वेषां कामानामाप्लयै । अग्नि-
ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति तदिमं लोकं लोकानामाप्नोति प्रातःसवनं
यज्ञस्य । इन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्र इति तदन्तारिक्षलोकं
लोकानामाप्नोति माध्यंदिनं सवनं यज्ञस्य । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः
सूर्य इति तदमुं लोकं लोकानामाप्नोति तृतीयं सवनं
यज्ञस्य ’ (कौषी० ब्रा० १४ । १) । ‘ षड्वि-
धमाज्यं तूष्णींजपस्तूष्णींशंसः पुरोरूक् सृक्तंमुक्थंवीर्यं
याज्येति ’ (कौषी० ब्रा० १४ । १) । ‘ भूरग्नि-
ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति एकः तूष्णींशंसभागः । आज्यं प्रउगं
चेति प्रातःसवनस्य शस्त्रे । इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्र इति
द्वितीयस्तूष्णींशंसभागः । निष्केवल्यं मरुत्वतीयमिति मध्यंदि-
नस्य शस्त्रे । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्य इति तृतीयस्तूष्णीं-
शंसभागः । वैश्वदेवमाशिमारुतमिति तृतीयसवनस्य शस्त्रे ’
(ऐ० ब्रा० ९ । ७) । ‘ प्र वो देवायाग्रये ’ (ऋ० सं०
३ । १३) इत्याज्यशस्त्रं (ऐ० ब्रा० १० । ८) ।
प्रउगशस्त्रं (ऐ० ब्रा० ११ । १) । भूरिति व्याहृत्या
पृथिवीलोकः । भुवरित्यन्तारिक्षलोकः । स्वरिति द्युलोकः ।
‘ प्रातःसवनं पृथिवीलोकभक्तिं माध्यंदिनमन्तारिक्षभक्तिम् ’
इति पूर्ववाक्यपाठः । अत्र तु ‘ द्युलोकभक्तिं तृतीयसवनम् ’
इति । पूर्वस्मिन्वाक्ये तस्मिन्तास्मिँल्लोके स्थित एव शंसति ।
अत्र आरोहन्नेव शंसति (२०) । ततो द्युलोकमारूढो
भवति । तस्मात् ‘ द्युलोकभक्ति ’ पदं तृतीयसवनस्य केवलं
विशेषणम् । नास्य प्रामुख्येन निर्देशः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७००

१७ संसृतत्वात् = यस्मादयं होताऽन्तारिक्षलोकं संसृतः गतः ।
भक्तौ भक्तौ प्रतिभक्ति = प्रतिलोकं तं तं लोकम् । संसृतवत् =
संसृतः तस्मिंस्तास्मिँल्लोके गत इव । प्रतिभक्ति संसृतवच्च =
अस्माल्लोकादन्तारिक्षलोकं तस्माच्च द्युलोकं गत इव ।

२१ सवनानां लोकानां च प्रत्यवरोहः । यज्ञायज्ञीयमिति अग्निष्टो-
मस्य साम । ' यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम् ' (ऐ० ब्रा० १०।
९) । तृतीयसवनस्याऽऽग्निमारुतं शस्त्रम् ।

७००

२ }
१ }

सवनानां लोकानां च प्रत्यवरोहस्यानुकृतिं चिकीर्षन् ।

७०१

१ येन तृचेन शस्त्रं प्रारभते स प्रतिपद् । तदनन्तरभावी तृचोऽनुचरः ।
(ऐ० ब्रा० भाष्यं १२।४) प्रतिपद्यते = तां कृतिं प्रत्यवरोहकृ-
तिम् अनु अनुसृत्य प्रतिपद्यते प्रतिपदं प्रारभते । ' तृचाः प्रति-
पदनुचरा द्व्यृचाः प्रगाथाः ' इत्याश्रलायनः (ऐ० ब्रा० भा०
१२।६) । ' वैश्वानरीयेणाऽऽग्निमारुतं प्रतिपद्यते ' (ऐ० ब्रा०
१३।११) । यच्छस्त्रमाग्निमारुतं तच्छस्त्रं होता वैश्वानरी-
येण सूक्तेन प्रारभते ।

२ ' वैश्वानराय पृथुपाजसे विपः ' इति वैश्वानरीयं सूक्तम्
(ऐ० ब्रा० भा० १२।३) । अनेन मरुत्वतीयशस्त्रप्रा-
रम्भः (७००।२१) । ' स वैश्वानरीयेणाऽऽग्निमारुतं प्रत्य-
पद्यत ' (ऐ० ब्रा० १२।३) ।

३ यस्मिंस्तृचे सामगैः स्तोत्रं गीतं स तृचः स्तोत्रियः (ऐ० ब्रा० भा०
१२।३) । ' यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम् ' (ऐ० ब्रा० १०।४) इति
नियमेन ' यज्ञायज्ञा वो अग्नये ' इत्येवाऽऽग्निमारुतस्य शस्त्रस्य
प्रतिपद्भवेत् । किंत्वत्र स नियमो नाऽऽदूर्तव्यः । ' यज्ञायज्ञा वो
अग्नये ' अयं स्तोत्रियः । नायं तृचः शस्त्रम् ।

३-४ ' यज्ञायज्ञा वो अग्नये ' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम यज्ञाय-
ज्ञीयम् (७००।२१ ॥ ऐ० ब्रा० भाष्यं १२।३) ।
' तिसृभिर्हि साम संमितम् ' (ऐ० ब्रा० १२।१२) । एकं

पत्रं
७०१

पङ्क्तिः

३-४ साम तृचे क्रियते स्तोत्रियम् (ऐ० ब्रा० भा० १२ । १२) ।
यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति (ऐ० ब्रा० भा० १२ । १२) ।

५ ' यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम् ' इति स्तोत्रशस्त्राणां धर्मः ।

६ यस्मात् स स्तोत्रिय आग्नेयो भवति ।

८-९ अन्यत्र स्तोत्रियेण प्रारम्भः क्रियते । अत्र तु वैश्वानरीयेण सूक्तेन । नियमभङ्गस्य कारणं प्रत्यवरोहे आदित्यदेवता स्तोत-
व्येति ।

१० यः स्तोत्रियः स पुनराग्नेयः । प्रत्यवरोहे द्युस्थानदेवताशंसन-
मावश्यकम् । सा देवता आदित्यः । तच्छस्त्रं वैश्वानरीयेण
सूक्तेन प्रारभ्यते । तेन वैश्वानर आदित्यः ।

१३-१४ ततो होता रुद्रं मरुतश्च एता मध्यस्थाना अन्तारिक्षस्थाना
देवता आगच्छति ।

१५-१६ शस्तात् = पठितात्सूक्तात् ।

१७ मरुतां पिता रुद्रः ।

१९ ' अग्निमिहस्थानं ' (६९८ । १२) न व्याख्यातम् । इह
स्थानं यस्य तमग्निमागच्छति होता ।

२२ विधेः = सवनलोकप्रत्यवरोहस्य । अनुकरणात् = स्तुत-
शस्त्राभ्यां प्रत्यवरोहोऽनुक्रियते ।

७०२

१ सामान्यम् = साधर्म्यम् । देवतागुणेषु द्वादशकपालेषु च साम्यम् ।
' अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपत् ' (मैत्रा० सं०
२ । १ । २-३) द्वादशकपालं पुरोडाशम् ।

२ गुणविधयः = द्रव्यादिसंबन्धा विधयः ।

३ एतस्य = आदित्यस्य ।

५ देवतागुणस्य कपालविधिनाऽनुकरणात् ।

९ ' तूष्णींशंसनिवित्सूक्तैराज्यशस्त्रं त्रिपर्वकम् ' (ऐ० ब्रा० भाष्यं
१० । १) । ' अग्निदेवेद्ध ' इत्यादिद्वादशपदात्मिका निविद् ।
निविदः (ऐ० ब्रा० १० । १-२) । इत्यत्र पठन्ते ।

पत्रं पङ्क्तिः

७०२

९

‘ गर्भा वा एतदुक्त्यानां यन्निविदः । ताः प्रातःसवन उक्त्यानां
पुरस्तात् मध्यंदिने मध्यतस्तृतीयसवने अन्ततो धीयन्ते ’
(ऐ० ब्रा० ११ । १०) । प्रथममाहावः । ततो निविद् ।
ततः सूक्तम् । एवं निविद् शस्त्रमध्ये पतति (१०) ।
निविदः = तत्तद्देवतास्तुतियुक्तपदानां समूहाः । तेषां संख्या
एकादश । तेषां शृङ्खला—अग्निर्द्वादश । इन्द्रो मरुत्वान्,
इन्द्रो देवः सविता देवः पृथर्विशतिः । द्यौवापृथिवी पञ्चदश ।
ऋभवो देवाः सप्तदश । विश्वे देवास्त्रिंशत् । अग्निर्वैश्वानरः
पञ्चदश । मरुतो देवाश्चतुर्दश । अग्निर्जातवेदाः अर्श्यं मदे
पृथक् षोडश । इयं निविद् (७११ । ४—१०) इत्यत्र
पठ्यते । अस्याः पञ्चदश पदानि । ‘ आ यो द्यां भात्या
पृथिवीम् ’ (१२—१३) इदं सप्तमं पदम् । इयं निवित्सौ-
र्यवैश्वानरी ।

१०—११ स (मन्त्रः) तथा भवति = तस्या निविद् एतादृशानि
पदानि भवन्ति येनायं वैश्वानरः सूर्य एव । ‘ भात्याम् ’
(२७) इति ग. ज. पाठः । च. पाठोऽपि तथैवाऽऽसी-
दिति भाति ।

११ वैश्वानरः सूर्य एव ।

१६ द्वादशाहगते नवरात्रे त्रयस्त्र्यहाः । प्रथमाद्वितीयत्र्यहाभ्यां पृष्ठ्यः
षडहस्तृतीयत्र्यहस्य छन्दोम नाम (ऐ० ब्रा० भाष्यं २३।१) ।
द्वादशाहं प्रायणीयोदयनीयरूपे आद्यन्ते ये अहनी तयोर्मध्ये
दशरात्रोऽस्ति । तस्य त्रयो भागाः । पृष्ठ्यषडहच्छन्दो-

७०२

१६ मौख्योऽहर्विशेषाः । दशममहस्तृतीयो भागः (ऐ० ब्रा०
भाष्यं २४ । ३) । छन्दोमेषु विनियुक्तं सूक्तं छन्दोमिकम् ।
सूर्य एव वैश्वानरः सूर्यवैश्वानरः । ‘ तस्येदम् ’ । (पा० ४ ।
३ । १२०) इत्यनेन । सौर्यवैश्वानरम् ।

१७ ‘ दिवि पृष्ठो अरोचतेति वैश्वानरीयम् । दिवीति तदमुष्य लोकस्य
रूपम् ’ (कौषी० ब्रा० २६।१७) ॥ (आश्व० श्रौ० ८ । ११) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७०२

२१ रोचते । मूले तु 'अरोचत' (६९८ । १७) इति पाठः ।

पृष्टः = स्पृष्टः । मूले (६९८ । १७) 'स्पृष्टः' नास्ति ।

७०३

१ 'हविष्पान्तमजरं स्वर्विदम्' (ऋ० सं० १० । ८८)

इति हविष्पान्तीयं सूक्तम् ।

२ समर्थः = संगतार्थः समानार्थः ।

१०-११ 'विश्वानरावित्यप्येते' इति ङ. थ. घ. ठ. ड. पाठः

(६९८ । २९) । अत्र 'अपि' शब्दस्य न किमपि

स्वारस्यम् । 'अपि एते उत्तरे ज्योतिषी विश्वानरौ इति'

इत्यन्वयः । अपि = अपि च ।

११-१२ 'अपि वा विश्वानर एव कश्चित्स्यात् । तस्यापत्यं वैश्वानरः'

इति दुर्गस्वीकृतमूलपाठः स्यात् (६९९ । १४) ।

१४ यत् यस्मात् ।

१५ तद्धितवृत्त्या उत्पत्तिर्वैश्वानरशब्दस्य । व्यपदेशः = वृत्तिः

शब्दसिद्धिः ।

१६ 'यत्र वैद्युतः शरणं०' (६९८ । २०) इदं दुर्बोधम् । वैद्युतोऽग्निर्ज-

लेन न शाम्यतीति सत्यम् । किंतु स दार्वीदिदहत्येव । न तेम

शाम्यति ।

१७ शरणं = शरीरम् ।

१७-१९ 'शरणमभिहन्ति तत्प्रदीप्यते यात०' इति दुर्गस्वीकृतपाठः

स्यात् ।

१८ अभिहन्ति = निहन्ति = अभिगच्छति । 'हन गतौ' इत्य-

७०३

१८ स्मात् । 'हन हिंसागत्योः' (धा० २ । २) । अभिहन्ति =

अभिगत्य हिनस्ति । शरणं = गृहम् । आत्मन आश्रयः । दारु

वैद्युतस्याग्नेः कथमाश्रयो भवेत् ।

२२ विद्युदुक्तात्प्रभवति जडं प्रविश्य नश्यति । तेनायमग्निरुदके-

न्वनः शरीरोपशमनः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७०३

२३ रसः स्वभावो यस्य तेन उदकेन । ' इध्यते ' इन्वि-
धातोः कर्मणि रूपम्

२४ प्रतिहता जडा घना मूर्तिः स्वभावो यस्य तेन काष्ठेन ।

२५ पार्थिवो धातुर्बहुलो यस्मिन् । पार्थिवधातुप्रायम् ।

२६ स्थानम् अन्तरिक्षम् । जातिः रसः । आदिना मनुष्यैरस्पृष्टत्वादि ।
प्रथमस्य ज्योतिषः = पार्थिवाग्नेः । अहेतुकं = तादृशस्वाभाव्ये,
कोऽपि हेतुः किमपि कारणं वा नास्ति । प्रथमे ज्योतिषि तादृश-
स्थानजात्यादेरभावः ।

७०४

१ वैद्युतोऽग्निः कथं स्पृष्टः परिगृहीतो वा भवेत् ।

४ मध्यमेन = मध्यमात् । विपर्यस्तधर्मा = विरुद्धधर्मा ।

६ तद्धितार्थेन उपपत्तिः ।

८ अथ आदित्यादग्निर्जायते । उदीचि = 'उदङ्' इत्यस्य सप्तम्ये-
कवचनम् । ' उदीचीप्रथमसमावृत्ते ' (९-१०) दुर्गमते
अयं समासः । तेन 'उदीची' पाठः साधुः । किंतु नैकस्मिन्नपि
निरुक्तमूलपुस्तकेऽयमुपलभ्यते

११ उदगयनस्य उत्तरायणस्य आदौ ।

१२ आदित्यमणिः = सूर्यकान्तः । कंसः = काचपात्रम् । परिमृज्य
= घर्षणमापाद्य ।

१३ 'सृ शब्दोपतापयोः' (धा० १ । ९९७) । प्रतिस्वरे = परा-
वर्तिते तापे । यत्र = यदा ।

१४ असंस्पर्शयन् = किञ्चिद्दूरे । सूर्यतापो घृष्टात्कंसान्मणोर्वा
गोमयस्योपरि यदा पात्यते तदा तद्गोमयं ज्वलति पार्थिवोऽग्नि-
श्चोत्पद्यते । ' तत्प्रदीप्यते ' इत्यनेन ' यः० ' इत्यादेरन्वयः ।
स तापः शुष्कगोमये अग्निरूपेण जायते । ' शुष्कगोमयं
प्रतिस्वरे धारयति ' इत्यन्वयः । परिमार्जनस्यानन्तरं प्रति-
स्वरः ।

१५ असौ आदित्योऽपि ।

१७ तद्धितेन विग्रहः । तेन व्यपदेशो रूपसिद्धिः । व्यपदेशः =
निर्देशः कारणं वा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७०५

१ ' आत्मानाऽऽत्मानं संयतते ' (२७) इत्यत्र ' आत्मानं ' इत्यणपाठः ।

३ इममग्निमादधाति मनुष्यः ।

७-८ इतः = इह वर्तमानात्तेजःपिण्डादस्य अग्नेः इत्यादि । सूर्य-
रश्मयः अग्नेरर्चिभिः संयतन्ते ।

८ ' अवक्ष्यत् ' वचेर्लृङि रूपम् । अस्य रूपस्यात्र न किमपि प्रयोजनम् । ' अवक्षत् ' (२९) वचेः ' सिप् बहुलं लेटि ' (पा० ३ । १ । ३४) । अवक्षत् = अवोचत् । ' अवक्षत् ' इति पाठः साधुः ।

११ अन्यः अधिकारः = (प्रकरणम्) अधिकारान्तरम् । मध्यमे स्थाने भवाः मध्यमकाः । उत्तमे स्थाने भवाः उत्तमकाः । तेषामिमानि औत्तमकानि । अथवा मध्यममेव मध्यमकम् । उत्तममेव उत्तमकम् । तत्र भवाः माध्यमकाः औत्तमकाः ।

१२-१३ उत्तमे स्थाने वर्तमाना देवताविशेषाः तेषां स्तुतिः अर्थः प्रयोजनं येषां तानि

१५ वैश्वानरशब्दो गुणपदं (विशेषणं) न प्रधानं (विशेष्यम्) ।

१६ भगो वैश्वानरः सविता वैश्वानरः इति शब्दाः प्रयुक्ता अभवि-
ष्यन् ।

१९ वैश्वानरे आदित्यस्य उदयास्तंगमनादिक्रिया वर्णिता अभवि-
ष्यन् । हे वैश्वानर त्वमुदेषि अस्तमेपि विपर्येषि इति ।

२१ विपरि + एषि = पुनः उदेषि ।

७०६

९ विग्रहेण व्यपदेशो निर्देशः । ' वैश्वानरः ' इदं विश्वानरश-
ब्दात्तद्धितरूपम् । तेन वैश्वानरशब्दस्ताद्धितव्युत्पत्त्या कथितः
(७०३ । १४—१५) ।

२० दक्षिणायनादनन्तरमुत्तरायणम् । उत्तरायणाच्च दक्षिणायनम् ।
तत्र एवं व्यावृत्तयः । प्रतिसंवत्सरं द्वे अयने । दक्षिणायनो-
त्तरायणयोः पर्यायेण व्यावृत्त्या । पर्यायः - परस्परानन्त-
रमागमनम् । दक्षिणायनस्य व्यावृत्तिः उत्तरायणे । उत्तरा-
यणस्य दक्षिणायने ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७०६

२२ दक्षिणायनाहःसु उदकम् उत् एति । उत्तरायणाहःसु वर्षभावेन
अत्र एति । एवमेतौ द्वावहर्गणौ परस्परव्यावृत्तौ (२०) ।
उत्तरायणागमे तदुदेति दक्षिणायनागमे तदवैति । 'उत्तरायणद-
क्षिणायनयोः' (२९) इति पाठान्तरम् । जगत् =
ब्रह्माण्डं सर्वे लोकाः । वर्षभावेन उदेति द्यां प्रति । अवैति
च पृथिवीं प्रति वर्षभावेन ।

२३ पर्जन्याः प्रार्जयितारो रसानाम् ।

७०७

१ ' तेन अर्चिभिः दग्धाः कृत्वा परमं सूक्ष्मं देवोपभोगयोग्यम्
उदकभावम् आपाद्य ' इत्यन्वयः ।

६ प्रति = प्रत्युपकारबुद्ध्या । कल्पयन्ति = ददति ।

९ अयं लोकोऽपि वर्षवान् । न केवला द्यौः ।

१२ यल्लक्षणमभूत्तदवैशेषिकमिति कृत्वा मध्यमस्य वैश्वानरत्वे लक्षणं
न । अवैशेषिकं = समानम् ।

१६ वर्षकर्मणा अभिष्टवः स्तुतिः अनैकान्तः अवैशेषिकः समानः ।

७०८

२० करीरं = वंशाङ्कुरः । करीराणि ह्यन्ते अस्यां सा कारीरी ।

२०-२१ पर्जन्यावाप्तये कारीरीनाम्नी काम्येष्टिः (मैत्रा०सं०२।४
। ७-८) ।

२१ ' अग्नये धामच्छदेऽष्टाकपालं निर्वपेन्मरुतं सप्तकपालं सौर्यमेक-
कपालम् ' (मैत्र० सं०२।४ । ८) ॥ (का० सं०११।१०) ॥
सर्वे पुरोडाशा अग्नये धामच्छदे । तस्मात् अग्निरेव मरुतः
सूर्यश्च । अष्टाकपालं निर्वपेदित्यर्थः ।

२३ मैत्रायणीयके = मैत्रायणीसंहितायाम् ।

७०९

१ निर्गच्छतीति = निया । एतदिति = अनम् । निया +
अनं = नियानम् ।

२-३ देवी रात्री मानुष्या रात्रेर्दीर्घतरा षाण्मासिकी ।

७ तदुदकं तस्मिन् गर्भत्वेन निधित्समानाः ।

पत्रं

७०९

पङ्क्तिः

८ 'उत्तरायणं मासैः षड्भिः' इदम् 'उत्तरायणमासैः षड्भिः' इति स्यात् । अन्यथा 'उत्तरायणम्' इत्यस्य केनान्वयः । परितः सिक्तमुद्रकं यस्मिन् । एतादृशो गर्भो यस्य ।

९ नमस्यः = भाद्रपदः ।

१२ तेषां रश्मीनामावृत्तिरावर्तनम् । उद्यते = 'उन्दी क्लेदने' (धा०७।२०) इत्यस्मात्कर्मणि यक् ।

१५ धामच्छदशिरिति प्रकरणात्कथं ज्ञायते । मन्त्ररूपात् = मन्त्रशब्देभ्यः ।

१७ 'अग्नये धामच्छदेऽष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतं चरुं सौर्यमेककपालं मग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति धामच्छदिव भूत्वा वर्षति मरुतः सृष्टां वृष्टिं नयन्ति । यदाऽसा आदित्योऽर्वाङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षत्येता वै देवता वर्षस्येशते' (काठ०सं०११।१०) । 'अग्निर्वा इतो वृष्टिमीदृष्टे मरुतोऽमुतश्च्यावयन्ति ताँ सूर्यो रश्मिभिर्वर्षत्येते वै वृष्ट्याः प्रदातारः' (मैत्रा०सं०२।४।८) अग्निमरुदादित्या वृष्टेः कर्तारः । तस्मात्सर्वे एकैव देवता । अत्रापि नाग्निरादित्या क्रियते । अग्निः वृष्ट्या आदित्यस्य धाम च्छादयति दिवि वर्षति च । इमां वृष्टिं मरुतः अन्तरिक्षे प्रसारयन्ति । आदित्यः अग्निं स्वरश्मिभिः प्रज्वलयति भूमौ वर्षति च । इति ब्राह्मणवाक्यार्थः । 'अग्नये धामच्छदे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालं सौर्यमेककपालमग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति मरुतः सृष्टां वृष्टिं नयन्ति यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षति धामच्छदिव खलु वै भूत्वा वर्षति' (तै० सं० २ । ४ । १०) ।

१८-१९ ओषधिवनस्पतिभ्य आपो धूम (=वाष्प) रूपेण दिवं प्रति निवर्त्यन्ते । आहुतिभूताश्चाऽऽपस्तथैव । दिवः पतितं तोयमोषध्यादिभिर्दिवं प्रति निवर्त्यते ।

२२-२३ स्थानाभिसंपत्तिप्रनाडिकया = अग्निरेवान्तरिक्षे मरुद्रूपो वायुरूपो वा संपद्यते । दिवि चाऽऽदित्यरूपः । एवं स्थाने स्थानेऽग्निस्तत्तद्रूपो भवति । इयं प्रनाडिका प्रणाली क्रमः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७०९

२२-२४ ता आपोऽग्निर्मध्यमस्थानमापादयति ।

२३ मेघरूपै रश्मिभिः = मेघैः । आदित्यो मेघैः सर्वाणि तेजांसि
च्छादयति । धामच्छद् = मेघरूपैः रश्मिभिः धाम्नां छादायिता ।
' धामच्छद्विवि भूत्वा ' (७०८ । ६) इति क. ख. छ. त.
द. पाठः । ' धामच्छदिव खलु वै भूत्वा ' इति ङ. थ. घ. ठ.
ड. पाठः । तै० सं० पाठश्च । ' धामच्छदिव भूत्वा ' इति काठ-
कसंहितापाठः । ' धामच्छदादित्यो भूत्वा ' इति दुर्गस्वीकृतपाठः ।
(७०९ । २३) । अग्निः दिवि वर्षति (१७-१९) । आदित्यो
भुवि (२३) । मरुतोऽग्निना दिवि सृष्टां वृष्टिमन्तरिक्षं नयन्ति
(२४) । आदित्यस्तदा मेघान् स्वराश्मिभिरघः पातयति (२३) ।

७१०

२ निरुक्तमूले ' अथापि ब्राह्मणं भवत्याग्नि० वर्ततेऽथ वर्ष-
तीति ' । एवमेकमेव ब्राह्मणवचनम् । दुर्गमते द्वे । दुर्गकालीनः
काठकसंहिता पाठो भिन्नः । निरुक्तमूले ' उदीरयति धामच्छ-
दिव ' इत्यस्य स्थाने ' समीरयति धामच्छद्विवि ' इति । ' अर्वाङ् ' इत्यस्य स्थाने ' अग्निम् ' । ' न्यङ् ' इति ङ. थ. घ. ठ. ड. पाठः
(७०८ । २६) ।

३ अग्निरादित्यो भवति । आदित्यश्चाग्निं रश्मिभिः पर्यावर्तते ।
' यदासावादित्योऽग्निम् ' इति क. ख. छ. त. द. पाठो दुर्गेण
स्वीकृतः । ' यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् ' इति ङ. थ.
घ. ठ. ड. पाठः (७०८ । २६) । तै० सं० पाठश्च ।
' यदासा आदित्योऽर्वाङ् ' इति काठकसंहितापाठः ।

१० ' आदित्यो वैश्वानरः ' इति केवलमर्थवादः । न वास्तविकमेतत् ।

१४ कारीरीष्टचामेककपालः सौर्यः पुरोडाशः ।

१९-१७ द्वादशविधमस्य कर्म तस्माद्द्वादशकपाल इति एतद्यदि देवता-
गुणाभिप्रायमभविष्यत् तर्हि सौर्योऽपि इत्यन्वयः ।

१८ तस्मात्सूर्यस्य वैश्वानरत्वे कपालानि अनिर्वचनं न निर्गायको
हेतुः ।

१९ सूर्य एव वैश्वानर इति प्रवादः यस्मिन् ब्राह्मणे तत्सौर्य-
वैश्वानरप्रवादम् । ' तस्येदम् ' (पा० ४ । ३ । १२०) ।

- पत्रं
७१० पङ्क्तिः
२० बह्व्यो भक्तयः । तामिः वदन्तीति ।
२३ सर्वथा ब्रवीति = ब्रवीत्येव । तत्त्वं = कारणम् ।
२४ ' इयं वा अग्निर्वैश्वानरः ' (मैत्रा० सं० १ । ४ । १३) ।
' वैश्वानरः प्रविशतिरतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ' (कठोप० १ । ७) ।
२४-२९ किमपि बहु = कानिचिद् बहूनि वस्तूनि ।
२९ भक्त्या = गुणवृत्त्या ।
७११ २ तस्यां निविदि ।
२-३ ' यो विद्भ्यो मानुषीभ्यो अदीदेत् ' (६) तस्या निविदि
इदं चलुर्थं पदं वाक्यम् ।
७ ' ओर्वन्तरिक्षम् ' (२४) इति निवित्कुन्तापे पाठः ।
आ (भासयति) + उरु + अन्तरिक्षम् ।
२० यज्ञे साधुर्यज्ञियः पुरुषः ।
७१२ ९ वैश्वानरीयं सूक्तं तृचम् । तत्रैषा ' वृषा पावक दीदिह्यग्रे
वैश्वानर द्युमत् । जमदग्निभिराहुतः ' (आश्र० श्रौ०
८ । ९) ।
१२ आश्वलायनश्रौतसूत्र आदित्याहुतिर्न विधीयते । अग्निप्रक-
रणान्न तस्य संभवोऽपि
१६ ' आहूतः ' ' अभिहूतः ' इति छ. त. द. पाठौ (७०८ ।
२८) न दुर्गसंमतौ ।
१७-१८ ' जमु अदने ' (धा० १ । ४७२) । प्रजमिता भक्षिता
अग्रयो यैः ।
७१३ १२ ' पानयोग्यं च ' अत्र 'च' शब्दस्य प्रयोजनं नावगम्यते ।
१४ प्रगतो विवेको यस्मात् । अन्वेभ्यः पदार्थेभ्यो यद्विवेक्तुं न
शक्यते दग्धत्वात् (१३) ।
१६ व्यपदेशेन = पर्यायशब्देन ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७१३

२० विभूतिः = देवतातृप्तिसामर्थ्यम् ।

२१-२२ अविच्छेदनाय = देवताभ्यो न कदाऽपि विच्छिद्येतेति ।

२३ 'साधयतेः स्वधा' इति कदाचिदन्वयः स्यात् । 'साधयतेः'
'साधयते' वा पदं निष्प्रयोजनं भाति ।

७१४

१ 'प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम्
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्रेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः' । अपां
घृतम् = अद्भ्य उत्पन्नं घृतम् । ओषधीभ्योऽङ्गम् । अन्ना-
द्रेतः । रेतसः पुरुषः । पुरोडाशः पुरुषरूपः । घृतं पुरोडाशं च
मे दत्त ।४ अस्पृष्टं = यद्विषयो वादस्तस्य वैश्वानरशब्दस्य स्पर्शोऽपि
नास्त्यस्मिन्मन्त्रे ।५ तदग्निलिङ्गमेतद्धविष्पान्तीयं सूक्तमाग्नेयं करोति यस्मा-
त्तत्प्रथमायामृचि वर्तते । 'मतौ छः सूक्तसाम्नोः' (पा०
५ । २ । ५९) इति हविष्पान्तीयम् ।७ 'स प्रथमं स्वेनाव्यभिचारिणाऽभिधानेन स्तोतुमुपक्रम्यते'
इत्यन्वयः ।

९ तथा = एवं कृत्वा (२४) ।

१० उद्धिभावयिषा = उद्धावयितुमिच्छा ।

११ व्यञ्जनमात्रं = केवलं विशेषणम् । न तु प्राधान्येन स्वार्थ-
वाचि । अग्नेः 'अग्निः' इत्येतद्व्यभिचारि नाम (७) ।१३ भिन्ने ज्योतिषी लक्षणे यस्य । अस्मिन्मन्त्रे माध्यमिकं ज्योतिः
मातरिश्वा वैश्वानरश्च पृथिवीस्थानो भिन्नत्वेन निर्दिश्येते ।१४ अन्यत्वेन व्यपदेशो विद्यते अस्य । व्यपदेशः = निर्देशः
कथनम् ।

७१५

५ नेयं प्रातरनुवाकाश्चिनयोः शस्यते ।

८ महिषाः = महत्यन्तरिक्षलोके आसीनाः । महि = महति +
षाः = सन्नाः (दुर्गः) । त एव देवगणा महिषा महान्तः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७१९

९ यथा वा = अथवा । महिषाः = महान्तः ।

१३-१४ 'परावतः' एतत्स्वर्गादपि परतरस्य लोकस्य नाम । परा-
वतः = प्रकर्षेण ईरितवतः । आदित्यो वस्तूनि प्रकर्षेण ईरयति ।
परावतः = परागतात् । परा = दूरम् + गतात् ।

१४ विवस्वान् = विवस् + वान् = विवसाक्रियया तद्वान् (च.
पाठः) । विवासनाक्रियया तमसां तद्वतः (पाठान्तरम् २८)
= तमसां विवासनाक्रिया । तथा तद्वतः ।

१६ 'श्वस प्राणने' (धा० २ । ५९)

१७ 'अन च' (धा० २ । ६०) ।

२१ संनिधाने एकस्मिन्वाक्ये व्यपदेशो निर्देशः ।

२२ व्यवतिष्ठते = सिद्धं भवति ।

७१६

१ 'सूर्यादिसंबन्धि विशेषलिङ्गमङ्गीकृत्य वैश्वानरत्वं यदुक्तम्'
इत्यन्वयः ।

४ प्रथमायामृचि = 'हविष्पान्तमजरम्' इत्येतस्याम् ।

४-९ प्रकृत्यैव = अग्निरित्येव ।

९ प्रकृतिः = महान् आत्मा । तस्य भूम्ना महिम्ना ।

६ अपि तर्हि = यदा ।

१७ अभि + आ + पादम् । 'आभीक्ष्ण्ये णमुल्ब' (पा० ३ । ४ ।
२२) । 'अभ्यापाद्य' इत्यस्य 'सर्वाणि स्थानानि' कर्म ।
अग्निं स्थानं स्थानं अभ्यापाद्य स्थाने स्थाने स्थापयित्वा ।
भट्टोजीदीक्षितमते आभीक्ष्ण्ये द्वित्वमावश्यकम् । यथा पाठा-
न्तरे 'अभ्यापाद्य अभ्यापाद्य' (२५) । 'अभ्यापद्य'
(२६) इदं प्रामादिकम् । पदः णमुल् पादम् ।

७१७

५ मूर्ते = सर्वे शरीरजातम् । मूर् = मूर्ते + धा = धीयते ।

७ 'प्रधानम्' 'अग्निः' इत्यस्य विशेषणम् । मूर्धा = प्रधानम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७१७

१४ 'प्रज्ञाम्' (७१६ । २२) न व्याख्यातम् । ' प्रज्ञां त्वेताम् ' इत्यत्र ' मायां त्वेताम् ' इति दुर्गपाठः स्यात् ।

१९ यत् = यस्मात् । अपः = कर्म ।

१९ भूयस्तरं = भूयः + बहुतरम् ।

७१८

१० देवाः = यजमानाः । (११) ।

१३-१४ 'अथ यत्प्रातरनुदिते जुहोति । प्रजनयत्येवैनमेतत्सोऽयं तेजो भूत्वा विभ्राजमान उदेति शश्वद्ध वै नोदियाद्यदस्मिन्नेतामाहुतिं न जुहुयात्तस्माद्वा एतामाहुतिं जुहोति ' (शत० ब्रा० २ । २ । ९) ।

१८ अयमेवाग्निर्वैश्वानर इति शाकपूणिः । तन्मतं नाद्यापि पूर्णं प्रतिष्ठापितम् । शाकपूणिरेव प्रकृतः । तेन तन्नाम्नः पुनर्निर्देशः किंकारणः । स्वपक्षानुस्मृतिर्हेतुः ।

७१९

२-३ ' देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्सोऽग्निर्विजयमुपयत्सु त्रेधा तन्नो विन्यधत्त पशुषु तृतीयमप्सु तृतीयममुष्मिन्नादित्ये तृतीयम् ' (काठकमं० ८ । ८)

४ उभाभ्यां पक्षाभ्याम् = आत्मविद्याज्ञिकपक्षाभ्याम् (अपादाने पञ्चमी) । व्यावृत्त्य = (उभौ पक्षौ) विहाय ।

७ विभक्त्या = पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च विभागेन । विभक्ता-भिधानं (पाठान्तरम् २७-२८) = विभक्तं भिन्नमभिधानम् । अग्निर्विद्युदादित्य इत्यभिधानं विभक्त्या संपद्यते युक्तं भवति ।

८-९ एकस्यैव ज्योतिष आदित्याख्यं तृतीयं रूपमग्नीकृत्य ।

२४ अपूर्वं यज्ञफलं तेन कृतोऽयं जगद्विरचनाप्रपञ्चः ।

७२०

३ ' डुमिञ् प्रक्षेपणे ' (धा० ९ । ४) । ' मा गतौ ' (धा० १० । २९१) । ' मीङ् हिंसायाम् ' (धा० ४ । ३१) । ' मीञ् हिंसायाम् ' (धा० ८ । ४) ।

४ मि + नी + थुः = मिथुनौ ।

९ मि + वन + थ् = मि + थ् + उन = मिथुनौ ।

पत्रं
७२०

पङ्क्तिः

११ 'संप्रसारणपरपूर्वत्वम्' इत्यस्य कोऽन्वयोऽर्थश्च । 'संप्रसारणपूर्वो मध्यान्तविपर्ययः' इति सुबोधम् ।

१२ अन्तःस्थः = अन्ते वर्तमानः ।

१३-१४ अन्योन्यं प्रति समाश्रितौ आत्मानं नयतः कालं वा नयतः ।

१४ 'वनुतः : = परस्परं संभक्तौ संभजमानौ ।

१९ 'मिथु संगमे' (धा० १ । ८९९) । 'क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित्' (३ । ९९) । इत्यनेन उनन्प्रत्ययः ।

१६ मेथन्तौ = संगच्छन्तौ ।

७२१

१९ 'समानारूयानाः' इति दाक्षिणात्यः पाठः (२६) ।

१६-१७ आशोकुः = आशक्नुवन्ति । आ (ईषदर्थे) = न ।

१९ ' (तथा) विशेषलिङ्गेन मूर्यप्रधानं न' इत्यन्वयः । अग्निः प्रधानं यस्मिन् तदग्निप्रधानम् ।

७२२

१४ 'इहैव' इति छ. त. द. (२३) ग. च. ज. पाठः (२७) प्रामादिकः ।

१७ प्रतीकं = प्रतिगतम् । अथवा । प्रतीकं = प्रतिदर्शनम् (३) ।

१८ 'प्रत्यक्तं ज्योतिः' (९) इत्यन्वयः ।

२१ वसतिर्नात्र दर्शनार्थः । 'ज्योतिर्वर्णस्य' (९) न व्याख्यातम्, अथवा (प्रतिदर्शनं ज्योतिः' (३) इति । प्रतिदर्शनं = प्रतिदृश्यमानम् । वर्णस्य (९) = ज्ञानस्य इत्यर्थः स्यात् । यथा रात्रयो ज्योतिर्वसते ब्राह्मणो वर्णस्य (ज्ञानस्य) दावदुपदधाति (९-६) ।

७२३

१ दैव्योऽग्निः परः । अयं ब्राह्मणहोता अवरः । परो भूयोविद् । अयमल्पविद् (२) ।

१-२ अवरः होता परस्य अनुकरोति । किं कारणम् । अज्ञः अल्पविदिति ।

२ अल्पमिति = केनचिदंशेन । न तु सर्वथा ।

४ अग्निः प्रधानं येषु तानि । अग्निप्रधानानि कर्माणि यस्मिन् । अग्नि-

पत्रं
७२३

पङ्क्तिः

- ४ वैश्वानर इति कृत्वा वैश्वानरीयम् । अस्मिन् सूक्ते वैश्वानरशब्दो बहुकृत्वः प्रयुक्तः । ते सर्वे प्रयोगा अग्निपराः ।
- ५ होतृकर्मणोऽग्निना संबन्धस्तेन होतृजपोऽग्निवैश्वानरीयो भवितुमर्हति । किञ्च हातृवरणानन्तरं यो होत्रा तूष्णीं पठितव्यो जपस्तस्मिन्नग्निवैश्वानरो न । यस्माद्वैश्वानरोऽग्नेः पितेत्युच्यते । ‘अनग्निः’ (२४) इत्यपपाठ इव भाति । ‘अनग्निवैश्वानरीयः’ इति शुद्धः पाठः (च. ज.) स्यात् । अग्निरेव वैश्वानरः अग्निवैश्वानरः । ‘मतौ छः सूक्तसाम्नोः’ (पा० ९ । २.९९) इत्यनेन ‘अग्निवैश्वानरीयम्’ । जपो न सूक्तं नापि साम । तथाऽपि सूक्तसदृशो जप इति मन्तव्यम् । न अग्निवैश्वानरीयम् अनग्निवैश्वानरीयम् । ‘त्वमग्निवैश्वानरीयः’ (२९) इति पाठान्तरमपि दुर्बोधमशुद्धं च । हे देव सवितः एतमग्निं त्वां होत्राय वृणते । अत्र अग्निरेव सविता । अथवा । सवितैवाग्निः । ‘अनग्निः’ इति पाठे जपोऽनग्निः कथम् । ‘अग्निं त्वां होत्राय वृणते’ इति हि तत्रोच्यते । अनग्निवैश्वानरीयः’ इति च. ज. पाठ ।
- १०-११ मध्यमं वैश्वानरमुत्तमं वाऽस्य पितरमाह ।
- १९ क. ख. ठ. ड. (२९) वर्जमितरेषु पुस्तकेषु ‘अनग्निवैश्वानरीयत्वे’ ।
- १६ आचार्यो याम्कः । मन्त्रः = होतृजपः । अवग्नियते ‘यस्तु सूक्तं भजते’ इत्यादिना ।
- १७ व्यपदेशः = भेदेन निर्देशः ।
- १७-१८ ‘संप्रति मन्त्रेण’ अयमपपाठः स्यात् । ‘स प्रतिमन्त्रेण’ इति पाठः इष्टः । स आचार्यपक्षोऽन्यभिचारिणा शाकपूणिपक्षेण समी भवति । यदि होतृजपेऽग्निवैश्वानरयोर्भेदेन निर्देशः (व्यपदेशः) ‘आ दूतो०’ इत्यास्मिन्प्रतिमन्त्रेऽग्निवैश्वानर इति निर्दिश्यते ।
- १८ होतृजपे योऽग्निः (व्यपदेशवान्) भेदेन निर्दिष्टः स एव वैश्वानर इत्यास्मिन्मन्त्रे उच्यते ।

पत्रं
७२४

पङ्क्तिः

१ हेतवः = अतिरिच्यन्तेऽधिकाः ।

७-८ मन्त्राणामर्थानां घटनान्युद्घाटनानि । शब्दा अर्था न्यायाश्च एषू-
द्घाटनेषु प्राचुर्येण सहायाः । न्याया उपपत्तयः । तथाऽपि
मन्त्रार्थो दुरवबोधः ।

९ ईदृशमर्थकरणमल्पज्ञैर्नावबुध्यते । वयमल्पमतयः ।

इति सप्तमोऽध्यायः ।

अथाष्टमोऽध्यायः ।

७२९

८ देवतापदं = देवतावाची शब्दो नाम वा ।

१२ तदर्थिनः = धनार्थिनः ।

१६ यामृचम् ।

७२६

१८ स्तोतृत्वे चासंभवमपेक्ष्य ।

१८-१९ द्रविणोदाः स्तोता न भवति यस्मात् 'द्रविणोदाः' देवता भवति ।

२० यद्वृत्तम् = यत्पूर्वनाम्नो रूपम् । द्रविणोदा अर्थपतिः ।
तस्मिन्स्तुतिरभिसंबद्धा ।

२१ यद्रूपमभ्याहृत्यैकं वाक्यं करोति । 'द्रविणोदाः' तस्मिन्ने-
कवाक्ये पदम् । स्तुत्ये द्रविणोदस्यैकवाक्यतां कर्तुं सामर्थ्य-
मुत्पादयितुमिच्छन् । अनया क्लृप्त्या 'द्रविणोदाः' पदं
वाक्यस्याङ्गं भवेत् ।

२२-२३ 'यस्त्वम्' = (७२९ । १९) इत्यस्य स्थाने 'यस्तम्'
इति दुर्गस्वीकृतपाठ आसीदिति भाति ।

२३ तं द्रविणोदसं देवमीळते ।

२३-२६ 'अस्यानेन सामानाधिकरण्ये सामर्थ्यमुन्नीय' इत्यन्वयः ।

२७ तौ द्वौ शब्दावेकवाक्यतयाऽभिसंबन्धाति । एकं वाक्यं ययोस्तौ
एकवाक्यौ । तयोर्भाव एकवाक्यता ।

२८ श्लेषु = यजतिषु = हविःसंप्रदानेषु (२९) । यजतिः =
तिष्ठद्भोमः । जुहोतिः = उपविष्टहोमः ।

पत्रं
७२६

पङ्क्तिः

२९ त्रीणि सवनानि यागस्य प्रधानानि स्थानानि । सवने सवने
अग्नावाहुतिर्दीयते ।

३० द्रविण = द्रविणाय + सः = सीदन्ति ।

७२७

१ सोमः द्रविणसंभक्ता द्रविणं संभजते । द्रविणं + सः = सनुते ।

३ ' ईड स्तुतौ ' (धा० २ । ९) । यास्ककाले याञ्चास्तुति-
वृद्धिपूजार्थे । स्तुतिभिर्वर्धयन्ति ।

८ ' द्रविणसः ' = ' द्रविणस् ' शब्दस्य पञ्चम्येकवचनं षष्ठ्ये-
कवचनं वा । ' द्रविणोदा द्रविणसः ० ० प्र यंसत् ' (ऋ० सं १ । ९६ । ८) । ' द्रविणसः ' इति कर्मणि
षष्ठी । तस्मादत्र ' प्र यंसत् ' एतादृशं दानार्थं वर्तमानं
क्रियापदमध्याहार्यम् । यास्ककृतो विवरणप्रयत्नो व्यर्थः । द्रविणः
(नपुंसकद्वितीयैकवचनं) ददाति इति द्रविणोदाः । द्रविणस्
शब्दो न तु द्रविणम् । द्रविणः = द्रव्यं धनम् । सोमार्थः केवलं
काल्पनिकः (८ । ९) । ' द्रविणं = बलम् ' (७२९।४-९)
इदमपि चिन्त्यम् ।

१७-१८ द्रविणं = बलम् । तेन द्रविणोदा इन्द्रः । यस्मात्तस्य सर्वा
बलकृतिः ।

२१ सर्वेषामधिपतिरिन्द्रः । तेन इन्द्रो बलवान् ।

२७-२८ यस्मादयमोजसो जातस्तस्मादयं बलवान् ।

७२८

७ द्राविणोदसः = द्रविणोदसे हवीरूपद्रविणस्य प्रदात्रे हितः ।
' तस्मै हितम् ' (पा० ९ । १ । ९) इति सायणः । द्रावि-
णोदसशब्द ऋक्शाखायां सकृदेव ।

१०-११ एषोऽग्निः एतस्माद्द्विन्द्राज्जायते । बलादिन्द्रान्मध्यमानोऽ-
ग्निरिति च पूर्वमुक्तमेव (६३४ । १३) ।

१२ इन्द्रादग्निर्जात इत्यर्थे निगमोऽपि भवति । एवम् ' अपि '
शब्दस्य स्वारस्यम् ।

२१ ' अम्बा च दुलाच ' (२८) इति ग. पाठः (काठकसं०
४० । ४ ॥ तै० सं० ४ । ४ । ९ । १) ॥ मैत्रा० सं०

- पत्रं पङ्क्तिः
- ७२८ २१ २ । ८ । १३) । ' अम्बा दुला नितत्नी चुपुणिका अभ्र-
यन्ती मेघयन्ती वर्षयन्ती ' (काठकसं० ४० । ४) इति
सप्ताऽऽकाशनद्यः ।
- ७२९ ४ ' इत्यपि निगमो भवति' (७२९ । २९) न व्याख्यातम् ।
६ ऋतुयाजसंज्ञा यागाः । मधुमाधवादय ऋतुदेवा यत्रेज्यन्ते ते
ऋतुयाजाः । दुर्गमते ऋतुयाजा इति केषांचिन्मन्त्राणां संज्ञा ।
ऋतुयाजाः सर्वे नेन्द्रार्थाः । (कुन्तापाध्याये) ऋतुयाजप्रैषाः ।
- १ होता यक्षत् इन्द्रं होत्रात् ऋतुना सोमं पिबतु होतर् यज (४२) ।
२ " " मरुतः पोत्रात् " " " पोतर् " (४३) ।
३ " " ग्रावो नेष्टात् " " " नेष्टर् " (४४) ।
४ " " अग्निमाग्नीध्रात् " " " अग्नीत् " (४५) ।
५ " " इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् " " " ब्रह्मन् " (४६) ।
६ " " मित्रावरुणौ प्रशा-
स्तारौ प्रशास्त्रात् " " पिबतां प्रशास्तर " (४७) ।
७ " " देवं द्रविणोदां होत्रात् ऋतुभिः सोमं पिबतु होतर् " (४८) ।
८ " " " " पोत्रात् " " " पोतर् " (४९) ।
९ " " " " नेष्टात् " " " नेष्टर् " (५०) ।
१० " " , , अपाद्धोत्रा-
दित्यादिनिरुक्तं (७२९ । ११ - १९)
ऋतुभिः सोमस्य पिबतु अच्छावाक " (५१) ।
११ " " अश्विनाध्वर्यू आध्व-
र्यवात् ऋतुना सोमं पिबतां अध्वर्यू यजतम् (५२) ।
१२ " " अग्निं गृहपतिं गार्ह-
पत्यात् " " पिबतु गृहपते यज (५३) ।
ऋतुयाजेषु मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तगतेन मन्त्रेण होत्रादीन्प्रेष्यति ।
ते च याज्यया वषट् कुर्वन्ति । अध्वर्युयजमानौ प्रेषितौ स्वस्व-
याज्यां होत्रे प्रयच्छतः (ऐ० ब्रा० २२ । ४) ।
दविणोदःशब्दयुक्ताः प्रवादाश्चत्वारः ।
अपात् होत्रात् ४८ प्रैषमन्त्रेण ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७२९

६ पोत्रात् ४९ ”

नेष्ट्रात् ९० ”

निरुक्तम् ५१ (७२९ । ११-१५)

अत्रैकस्मिन्नेव प्रैषे ' इन्द्रपानम् ' (७२९ । १३) इति शब्दो न सर्वेषु चर्तुषु । इन्द्रपानमिति शब्दात् इन्द्रोऽत्र पाता द्रविणोदाश्चेत्यनुमानं कथं योग्यम् । इन्द्राय योग्यं पानं द्रविणोदाः पिबतु इत्येवार्थः ।

' इन्द्रस्य ' इदं पदं प्रक्षिप्तमिव भाति । यस्मादिन्द्रः पिबतीत्यनुमानं कर्तव्यमेव । द्रविणोदा देव इन्द्रमरुद्ग्रावान्यश्विमित्रावरुणेभ्यो भिन्न इति प्रैषमन्त्रेभ्यो भाति ।

८ होत्रपोत्रनेष्ट्राणि पात्राणि । तेभ्यो द्रविणोदाः सोममपात् । द्राविणोदसः = द्रविणोदसः (छान्दसं दीर्घत्वम्) । द्रविणोदो नाम तुरीयं पात्रं तस्मात्पिबतु । 'ततः किम् ।' तेषां० समाख्या भवति ' (२१-२२) इति च. कर्ममितरेषु पुस्तकेष्वधिकः पाठः । स ' तद्यथा ' इत्यनेनासंबद्धः । तस्मात्प्रक्षिप्त इव भाति ।

१० तत्पात्रस्य ' द्रविणोदः ' इत्येव नाम । एतमेव मन्त्रं मन्यन्ते । किंतु नायं मन्त्रो यस्मात् ' यस्यापत्यम् ' इत्यादिवाक्यरचना क्लिष्टा । यस्माच्च 'अथाप्याह द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः' इत्यग्रेऽस्मिन्नेव खण्डे षठति । क. ख. च. पुस्तकेषु ' द्रविणोदसः ' इति ऋगन्तः । न तु द्राविणोदसः ।

१-१५ ' तथा ० अच्छावाक यज ' इति । इदं मूलपुस्तके नासीत् (२४-२५) केनाप्यस्थानेऽन्तर्भावितम् । तस्य स्थानं ' प्रेषितः ' (१७) इत्यस्यानन्तरम् ।

१२ ' द्रविणोदसम् ' इति क. ख. ब्र. पाठः ।

१३ ' आयूयाः ' ' अभिगूर्याः ' इति कुन्तापाध्याये प्रैषपाठः ।

१५ १३ प्रयाजप्रैषाः < पानुकप्रैषाः ११ अनुयाजप्रैषाः १ सूक्तवाकप्रैषाः ३६ सुत्यायां सक्नीषप्रैषाः = ६९ । एवं प. ३-

पत्रं
७२९

पङ्क्तिः

१५ प्रैषसूक्तानि । ' होता यक्षत्० ' अयं प्रैषः पञ्चमे सूक्ते ।

१६ सर्वे प्रैषा मैत्रावरुणेनोच्यन्ते । अध्वर्युगृहपतिभ्यां ' होतरेतद्यज इत्युक्तो होता यजति (आश्व० श्रौ० ९ । ८) । अच्छावाकं प्रति मैत्रावरुणस्याऽऽज्ञा । अच्छावाकमैत्रावरुणौ होतुः पुरुषौ । मैत्रावरुणेन प्रेषितोऽच्छावाको याज्यां पठति ।

१६-१७ अध्वर्युप्रतिस्थातारौ ' ऋतुना प्रेष्य ' इत्युक्त्वा षड्ऋतुभिः मासैः प्रचरतः । ततः ' ऋतुभिः प्रेष्य ' इति चतुर्भिः । ततः ' ऋतुना प्रेष्य ' इति द्वाभ्याम् (मान० श्रौ० २ । ४ । २) । हे मैत्रावरुण होतारं याज्यां पठितुमाज्ञापयेति अध्वर्युर्वदति । मैत्रावरुणः प्रैषमन्त्रं पठति । ततो होता तत्पुरुषा वा याज्यां पठन्ति । सप्तमाष्टमनवमदशममासेषु ' ऋतुभिः प्रेष्य ' इति मैत्रावरुणं प्रति अध्वर्योरुक्तिः । प्रेष्य = याज्यां पठितुं चोदय ।

१९ होत्रात् = होतृकृतात् । होत्रपोत्रादीनि तत्तद्विजां धिष्ण्या अथवा स्थानानि ।

३०

१ पाठान्तरे ' उत पोत्रा० प्रयो हितम् ' इति ऋक्शब्दा निरुच्यन्ते (१८-२०) । ' देवेभ्यः अदत्तम्० ' इति पाठोऽधिकः सायणभाष्यादृहीतः (२२) । अमृत्तम् = असृष्टमन्यैः । अशुद्धं चैत्कथमिन्द्रपानयोग्यम् ।

४-५ ' अपाद्धोत्रात्० ' (ऋ० सं० २ । ३७ । ४) इतीयमृक् मैत्रावरुणेन यः प्रैषो दत्तोऽच्छावाकं प्रति तस्याच्छावाकेन दत्तं याज्यारूपमुत्तरम् । प्रैषानन्तरं याज्या पठ्यते । ' अपाद्धोत्रात् ' इयं याज्याऽच्छावाकेन पठ्यते ।

५ ' अमत्त उक्त अनुपत्त प्रयो हितम् ' एतत् ' अपाद्धोत्रात् ' इत्यस्यामृचि (७२९ । ९) । तदत्र व्याख्यायते । ' आमिध्यात् ' । ' कण्ड्वादिभ्यो यक् ' (पा० ३ । १ । २७) । अन्यथा ' मिश्रयेत् ' इति शुद्धं रूपम् । ' आमिश्रियात् ' कथमेतद्रूपं सान्यम् ।

६ ' ऋतुना ' = ' ऋतुभिः ' इति वक्तुमुचितं यस्मात् ' ऋतुभिः

पत्रं

पङ्क्तिः

७३०

६ प्रेष्य ' इत्यध्वर्युवचनम् । होत्रा = होतुः क्रिया शस्त्ररूपा ।
तथा होत्रया । अभिगूर्तया = उच्चरितयाऽभ्युद्यतया ।

६-७ ' सोमस्य स्वमंशम् ' इत्यन्वयः । अत्र ऋक्पाठोऽनावश्यकः ।

७-८ (७२८ । ८-९) शेषः प्रैषेणैव व्याख्यातः ।

८ तेषाम् (७२९ । २६) ऋतुयाजानाम् । तत्पात्रम् ' ऋतु-
पात्रम् ' इत्यभिधीयते (आश्व० श्रौ० ९ । ८) सोमः
' इन्द्रपानः ' उच्यते (ऋ० सं० ९ । ९६ । ३ । १३
च) । ' चमसा इन्द्रपानाः ' (ऋ० सं० १ । ९४ । ९) ' इदं
त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ' (ऋ० सं० ६ ।
४४ । १६) ' आप इन्द्रपानमूर्धिमकृण्वत ' (ऋ० सं०
७ । ४७ । १) । मत्सरमिन्द्रपानमूर्धिमम् (ऋ० सं० १० ।
३० । ९) ' एवम् 'इन्द्रपानं' न पात्रस्य नाम । सोमस्य
विशेषणं तत् । ' इन्द्रेण पेयम् ' इत्यर्थे । पात्रं = पेयं वस्तु ।
चतुर्थं पेयमिन्द्रेण पातुं योग्यं द्रविणोदाः पिबतु (१-४) ।

९ ' समाख्या भवति ' (७२९ । २६) इति मूलपाठः स्यात् ।

१२ ' होत्रात्सोमम् ' अत्र न कोऽपि स्तूयते । सोमपानेन स्तुति-
रन्यत्र वर्तते न ऋतुयाजेषु । ' अस्य मदे० ' इति निविदि
(निविद् ११) इन्द्रकर्माणिकथ्यन्ते । तस्य मूलम् (ऋ०
सं० २ । १९) । ' अस्य मदे० ' (ऋ० सं० ६ । ४४ । १४)
इति ऋगपि इन्द्र स्तुतिपरा । १ । १२४ । ४ ॥ १ । ९२ ।
९ ॥ १ । ९२ । १० ॥ १ । ९२ । १४ ॥ १ । ९६ । ३, ९, ६ ॥ १ । ८० ।
१, २ ॥ १ । ८९ । १० ॥ २ । १७ । १३ । ४ । ३ । ७ ॥ ४ । २६ । ७ ॥ ६ ।
२ । ७ । २ ॥ ६ । ४३ यस्य मदे ॥ ८ । ३ । ८ ॥ ८ । ७ । १४ ॥ ८ । १७ ।
८ ॥ ८ । ३२ । २८ ॥ ८ । ३३ । ४ ॥ ८ । ६६ । २ ॥ १० । ४४ । ८ ॥ एता
ऋचोऽपि तथैव ।

१४ अग्निराश्विनावन्येऽपि देवाः सोमपानेन स्तूयन्ते किंतु न बहुकृत्वः ।

१९ तस्मै इन्द्राय संस्कारः प्रधानं यस्मिन् । सोमाप्यायनं = हिं-
प्येन सोमस्य संसर्गः । धृतरूपवज्रेण सोमः पूर्वं हत आसीत् ।
तान्तं हि सोममृत्विजोऽनेन मन्त्रेणाप्याययन्ति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७३०

१६ 'अंशुंशु०' इत्यनेन भवेत् ऋत्विज आप्याययन्ति' (मैत्रा० सं० ३ । ८ । २) । 'ब्रह्मा राजानं विस्त्रंस्य हिरण्यमवदधा-
त्याप्यायनाय । अंशुंशुष्ट्रे देव सोमेत्याग्भ्य जपन्त्यृत्विजो
यजमानश्च' (मान० श्रौ० २।२।१।१२) ।

१७ 'आ त्वमिन्द्राय प्यायस्वा तुभ्यमिन्द्रः प्यायताम्' (मैत्रा० सं० १।२।७) । आप्यायनसंस्कार इन्द्रार्थः (७३२ । २) ।

७३१

३ 'तस्यापत्यम्' (पा० ४ । १ । ९२) 'शिवादिभ्योऽण'
(पा० ४ । १ । ११२) इति सूत्राभ्यां द्रविणोदसोऽपत्यं
द्रविणोदसः । द्रविणोदसोऽग्निर्गम्यापत्यं स द्रविणोदाः । क्लिष्टोऽ-
न्वयोऽयम् । द्रविणोदा एव द्रविणोदसः । अथवा । द्रविणोदसस्य
पितुः 'द्रविणोदाः' इति नाम स्यात् । इन्द्रादिभ्यां भिक्षोऽप्यं
द्रविणोदाः ।

१० 'इन्द्रो द्रविणोदा अस्तु' इत्यन्वयः ।

१२ एतानि माध्यमिकानि सूक्तानि ।

७३२

३ तामु (अशेः) उत्पत्तिः । तथा योगात्मवन्धात् । 'अपां
मित्रम्' इति न योग्यं निरूपणम् । मित्रं मित्रभृता आपो
धिपणा चाग्निं माध्वन् माध्वयन्त्युत्पादयन्ति ।

५-६ इदं नवर्चं सूक्तम् । नवर्मावर्जं प्रत्येकस्याः 'देवा अग्निं धार-
यन्द्रविणोदाम्' इत्यन्तिमः पादः ।

७३३

३ अग्निचितावुरुष्याः शार्वाङ्गदुम्बराद्यः समिध आर्थायन्ते । 'द्वन्द्वः०'
इत्यनेन क्रमुकं घृतान्वक्तमादधाति (मैत्रा० सं० ३।१।९)

५ आसवः = पानम् । सर्पिः = उदकम् ।

१० सामिधेन्यः = 'प्र वो वाजा०' इत्याद्या एकादशसंख्याका
ऋचो बहूनि सामिधेनहृतुत्वान्सामिधेन्य इत्युच्यन्ते । अत्राद्यं
कामः । तत्संनधि कर्म अग्ने अग्निदेवताकम् ।

११ धाय्या = सामिधेनीषु प्रक्षेप्तव्या ऋक् । 'धाय्याभिर्वै प्रजा'
पतिरिमाँल्लोकानधयद्यं यं काममकामयत्' (ऐ० ब्रा० १२।७) ।
'यत्र यत्र वै देवा यजम्य च्छिद्रं निरजानंस्तद्वाय्याभिरपि-

पत्रं

पङ्क्तिः

७३३

११ दधुस्तद्धाग्यानां धाग्यात्वम् ' (ऐ० ब्रा० १२ । ७) ।
 ' स्यूमहैतद्यज्ञस्य यद्धाग्यास्तद्यथा सूच्या वासः संदाधियादेव-
 मेवैताभिर्यज्ञस्य च्छिद्रं संदधेति ' (ऐ० ब्रा० १२ । ७)
 धाग्या शस्त्रे प्रक्षेपणीया । ' मूलं वा एतद्यज्ञस्य यद्धाग्याश्च
 याज्याश्च । ताः समान्य एव स्युः ' (ऐ० ब्रा० १३ । ७) ।
 ' पाग्यसांनाग्यनिकाग्यधाग्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ' ,
 (पा० ३ । १ । १२९) । धीयते समिदनया इति धाग्या ।

१६ ' अपि'शब्देन ' अग्ने वाजस्य० ' इयमपि धाग्या । अस्य
 विनियोगस्य मूलं नोपलब्धम् । ' अग्ने वाजस्य० ' इति तृचः
 प्रातरनुवाके आग्नेये ऋतौ (आश्व० श्रौ० ४ । १३) । ' त्वं
 ह यद्यविष्ट० ' (<) इयमपि (आश्व० श्रौ० ४ । १३) ।

७३४

३-४ इन्द्राद्द्रविणोदसोऽयं जायते इत्यनेनाभिप्रायेणेदं द्राविणोद-
 सत्वं न ।

१२ कठतैत्तिरीयवाजसनेयिसंहितासूत्रार्थोऽत्यन्तं भिन्नः ।

१८ ' अग्ना अग्निश्चरतीति स्तुवेणाभिजुहोति ' (मान० श्रौ०
 १ । ७ । १ । ४७) इति शास्त्रम् । अनेनाग्नेरेतदभिहो-
 मारुयं भागधेयं प्राप्तम् (१८-१९) ।

२० भागधेयं विधेम दन्नः ।

७३५

२ मूले समाख्याशब्दो नास्ति (७२५ । २६) ।

४ केनचिद्गुणसामान्येन संवादः = एकनाम । कुतश्चिदसमर्थकार-
 णाद्गुणेनानुवाद एकनाम ।

५ एकनाम्ने समर्थ कारणं नास्ति । यथा इन्द्राय योभ्यं पानं तथाऽ-
 न्येभ्योऽपि देवेभ्यः । देवेष्वसामर्थ्यम् । तस्मात्सोमपात्राणां
 वायव्यानीति नाम । कुतश्चित्कारणादसामर्थ्यं देवेषु ।

६ सोमं हन्तुमसमर्था देवा वायुं प्रार्थयामासुः । वायुरेतं वरं वव्रे ।
 मद्देवतान्येव पात्राण्यासन्निति । तस्मात्सर्वाणि सोमपात्राणि
 वायव्यानीत्युच्यन्ते (मैत्रा० सं० ४ । ५ । <) । ' हतः
 सोमोऽप्ययत् । देवैः प्रार्थितो वायुस्तमस्वदयत् । स वरम-

पत्रं

पङ्क्तिः

७३९

६ वृणोत् । महेवत्यान्येव वः पात्राण्युच्यन्ता इति तस्मान्नानादेव-
त्यानि सन्ति वायव्यान्युच्यन्ते' (तै० सं० ६ । ४ । ७) ।

१६ यद्गन्धुं = ये दग्धुमागच्छन्ति (च. ट.) ।

१८-१९ मरुतः = मरुद्देवताः । दुर्गकृतोऽर्थोऽनवश्यः (१४) ।
यद्यपि मरुद्भिः सह पानं तथाऽप्यग्नेः पातृत्वं न बाध्यते ।

२२-२३ ' उपरिष्ठाच्चृच ऋतुयाजानाम् ' (आश्व० श्रौ० ८ । १) ।
सप्तमादीनां प्रैषाणामुपरिष्ठात् ' मन्दस्व० ' (ऋ० सं० २ ।
३७ । १-६) इत्याद्याः षडृचः क्रमेण प्रक्षेपणीयाः ।

२९ सोमपानार्थं संबोधने द्रविणोद्सो वनस्पतिशब्देन सामानाधि-
करण्यम् ।

७३६

१ तेनैकं विशेषणमन्यद्विशेष्यम् । तस्माद्वनस्पतेर्द्रविणोदा नान्यः ।

२ ' वनस्पते रशनया विगूय पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् । वहा
देवत्रा दिधिषो हवीषि ' (मैत्रा० सं० ४ । १३ । ७) ।
' होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतम् ' (मैत्रा० सं० ४ । १३ । ७) ।

३ ' हे वनस्पते दिधिषो देवेषु हवीषि वह ' अत्र वनस्पतिहेवि-
र्वहनं प्रार्थ्यते । इदं कर्माग्नेः ।

४ स्विष्टकृन्नामा विकृतोऽग्निरस्मिन्प्रकरणे श्रूयते । तस्माद्वनस्प-
तिरग्निः ।

८ ' अभित्यं देवं सवितारमिति सवितृप्रसूत एव गृह्णाति ' (मैत्रा० सं० १ । २ । ९ ॥ ३ । ७ । ४) ।

" उपांशुसवनमुपले निधाय तस्मिन्राजानं सर्वं मिमीते ' इन्द्राय
त्वाभिमातिग्ने ' (मैत्रा० सं० १ । ३ । ३) इतिप्रभृतिभिः पञ्चकृत्वो
यथा ऋये " (मान० श्रौ० २ । ३ । ३) ।

१० ' अंशुरंशुष्टे ते देव सोमाप्यायतामिन्द्राय ' (मैत्रा० सं० १ ।
२ । ७) । ' आ त्वमिन्द्राय प्यायस्व ' (मैत्रा० सं०
१ । २ । ७) ।

११-१२ ' पुनरपि चाप्यायते ' (२७-२८) अस्मिन्पाठे ' पुनरपि ' ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७३६

११-१२ व्यर्थम् । ' पुनरपि मीयते ' इति समञ्जसः पाठः । आप्यायन-
मेव संस्कारः । भंस्क्रियते = आप्याय्यते ।

१२ ' इन्द्राय त्वाभिमातिधे इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते इन्द्राय
त्वादित्यवते ! अग्नये त्वा रायम्पोपदे विष्णवे त्वा इयेनाय त्वा
मोमभृते विष्णवे त्वा ' (मैत्रा० सं० १ । ३ । ३) ।

१४-१६ सोमग्रहा नानादेवताभ्यो ह्यन्ते । यथा । उपांशुः (मैत्रा० सं०
१ । ३ । ४) ऐन्द्रवायवः (मैत्रा० सं० १ । ३ । ६)
मैत्रावरुणः (मैत्रा० सं० १ । ३ । ७) आश्विनः (मैत्रा० सं०
१ । ३ । ८) ।

१९ ' उपयामगृहीतोऽभि ' इत्यनेन ग्रहणं (मैत्रा० सं० १ ।
३ । ४ ३६) ।

२१ ' अग्नये त्वा रायम्पोपदे ' इदं यजुर्न ऋक् ।

२२ ' रायम्पोपदे ' इति मैत्रायणीकाटकवाजसनेयिसंहितापाठः ।
' रायम्पोपदाय ' इति शुद्धं रूपम् ।

७३७

१६ पानं पिबन्ति ते पानपाः ।

१७ धिष्ण्यं = स्थानम् । ' मर्वे वपट्कारं कृत्वा यजन्ति ' (आश्व०
श्रौ० ८ । १) । वपट्कृतं = याज्यां पठित्वा नेष्टा वौपट्
ब्रवीति । ततो हविर्दीयते ।

७३८

१ तदर्थं वागर्थं होता शस्त्रं ब्रूयादित्यर्थं मोमः साद्यते ।

३ ' धिप शब्दे ' (धा० ३ । २१) ।

४ ४ मा वागर्थं प्राग्यति ।

६ ' धिपणाभवः ' (७३७ । ६) न व्याख्यातम् । धिपणार्था
भवः धिष्ण्यः ।

९-६ धीः प्रज्ञा कर्म वैतस्यां वाचि मीदत्येतां वाचं सनोति
संभजते वा ।

६ अथर्वपा वाक् धियं कर्म वा संभजते । तयोः = धीकर्मणोः ।
यस्मात् धीः कर्म च तस्या वाचो निमित्तम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७३८

१९ ' वनु याचने ' (धा० ८।८) । ' पिपर्तुभिः ' इति थ. थ.
ठ. ड. पाठः (२६) ।

१९ अत्र अशिर्द्रविणोदा इन्द्रो वा इत्येष प्रश्नः । उत्तमस्य ज्योति-
पोऽत्र संबन्धो नास्ति । तेन ' उत्तमं च ज्योतिः भजेते '
इत्यपपाठः (२७) ।

७३९

८ पाठक्रमप्रयोजनस्य गृह्यमाणत्वात् ।

१२ पाठे आनुपूर्व्या । पृथिवीस्थाना अन्तरिक्षस्थाना द्युस्थाना इति
देवतानां क्रमो देवतापदसमास्राये ।

७४०

३ अशिशब्दस्यार्थो (गुणः) पार्थिवस्य ज्योतिषः संनिकृष्टः ।
जातवेदःशब्दस्यार्थः (गुणः) ततो विप्रकृष्टः । वैश्वानरस्य
ततोऽपि विप्रकृष्टतरः ।

४ व्यवधानेन = इध्मादीनां तु न माक्षात् (= अभिधया)
अस्यर्थः । किं तु लक्षणया ।

९ अग्नेः स्थानमात्रं - पृथिवीमेव ।

६ उदिता प्राणवृत्तिः प्राणनं येषु तानि ।

७ प्रथमं निर्दिश्यन्ते ।

८ आद्वेद्वेभ्यः = ' उद्वलमुसले हविर्धाने द्यावापृथिव्या ' इत्या-
दीनि द्वंद्वानि (निघ० ९ । ३ । २९-३६) ।

१२-१३ ' क्रमप्रयोजनम्० ' अयं श्लोकोऽधुनोपलब्धबृहद्देवतायां न
विद्यते ।

१४ गुणस्यार्थस्याभिधानं तदेव मामान्यथ । अभिधाने अभि-
धाने कश्चिद्गुणो वर्तते येन तेषामभिधाना संबन्धः ।

१७ अभिधानस्य विशिष्टमभिधेयं किमर्थमिति नैरुक्ताः कारणं ददाति ।

१८ आप्नोतिवाचकं ब्राह्मणवाक्यं यास्क्यो न पठति (७३९।१-२) ।
तेन ' आप्नोतेः ' इति यास्कपाठो न भवेत् । अथवा ' इति च
ब्राह्मणम् ' (७३९।२) अनेन चकारेणान्यद्ब्राह्मणवाक्यं
यास्क्येन पठितं स्यात् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७४०

२० ' प्रजापतिरेता आप्रीरपश्यत्ताभिरात्मानमप्रीणीत । अग्निमेता-
भिर्यजमान आप्रीणीते ' (मैत्रा० सं० ३।४।६) । ' आप्री-
भिराप्युवन् । तदाप्रीणामाप्रीत्वम् ' इति शाखान्तरे (तै०
ब्रा० २।२।८ सायणः ऐ० ब्रा० ६।४) ।

२०-२१ आप्रीदेवताः=आप्रिय ऋचः । तामु या देवतास्ता अपि आप्रियः ।

२१-२२ ऋचो देवता आप्युवन्ति प्रीणन्ति वा । तस्मादृचः आप्रियः ।

२९ ' सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ' (पा० ३।२।७८) इत्यनेन
प्रथमागामी । अयं प्रत्ययः अताच्छील्येऽपि इति वार्तिकद्वया-
त्स्पष्टम् । इध्मं विना इज्या न शक्या । अग्नेरिध्मोऽवश्यः ।

७४१

१ ' तनूनपात् ' इत्यनेन नराशंस इत्यनेन वा अग्निर्न नित्यम-
भिधीयते । 'इध्मः समिन्धनात्' (७३९।२-३) न व्याख्यातम् ।

१६ ' सूक्तमेव ' इति ग. च. ज. पाठो (२७) दुर्बोधः । जम-
दग्निस्तत्पुत्रो वा परशुराम ऋषिः । नेयमेकैव ऋगाग्नेयी किंतु
सर्वं सूक्तमेवाऽऽग्नेयम् । ' आग्नेया इति तु स्थितिर्भक्तिमात्रमि-
तरत् ' (७७०।६) । तेन 'सूक्तमेवाऽऽहाऽऽग्नेयं यास्कः' इति
पाठः सुबोधः ।

१७ यजनीयं = यजनाय योग्यं हितं वा ।

१९ ' स्वतन्त्रः कर्ता ' (पा० १।४।९४) ' तत्प्रयोजको हेतुश्च ' (पा० १।४।९९) । यजमानो हवीषि ददाति । अग्निर्यज-
मानं हवीषि दापयति । एवमग्निर्हेतुः कर्ता च ।

७४१

७४२

२१ } इध्मो जातवेदसोऽग्नेराधारः ।
१ }

१-२ तेषां मन्त्रानां ' क्रोशन्ति ' इति क्रियया अभिधानं तस्य प्राप्तिः ।

३ यत्तत्त्वमेव = यत् तत् त्वमेव ।

४ मित्रमहः = मित्राणां पूजयितः = नित्यमभ्यपेक्षमाणानामुपकारे
प्रवृत्तः

९ अभ्यपेक्षमाणाः = ये त्वत्साहाय्यमपेक्षन्ते ते । अभ्युपेक्षमाणः
(पाठान्तरम् २१) = अभ्यपेक्षमाणः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७४२

९ यजमानानामुपकारे प्रवृत्तः (पाठान्तरे २१) । यजमानानां चिकित्त्वान् । कर्माणि षष्ठी । 'चेतनावान्' (७४१ । ७-८) न व्याख्यातम् ।

९ इध्मस्याग्नावावेशोऽग्निसाद्भवनम् । तस्मादिध्मोऽग्निः।

१०-१२ ' सर्वयजमानानां साफल्ये हेतुः ' इति च. पाठः (२२-२३) साधुः । ऋत्विजां साफल्यं नैव यागोद्देशः । सायुज्ये (पाठान्तरे २४) = समीभावे देवतासमभावे । ' सायुज्यं सलोकतामाप्नोति ' इति बहुकृत्वो ब्राह्मणवाक्यम् ।

१२ अस्माकं देवानाहूय यष्टुं तस्य तव युक्तम् ।

१४ यज्ञेध्मः= यज्ञेऽग्नावाधीयमान इध्मः ।

१५ समाप्तौ प्रणवेनावसानम् (आश्व० श्रौ० १।२) । सामिधेन्या अन्ते ॐ इति प्रणवः समिदाधानं च । 'समिद्धो अद्य०' अस्मिन्मन्त्रे इध्मशब्द इध्मावाचकशब्दो वा नास्ति । ' आसीनः प्रणवे प्रणवे समिधमादधाति' (सत्या० श्रौ० २।१) । ' अग्नये समिध्यमानायानुब्रूहीत्युक्त्वा प्रणवे प्रणवे समिधमादधाति ' (मान० श्रौ० १।३।१)

१८ ' समिद्धिः प्रेष्येति प्रथमं प्रेष्य प्रेष्येत्युत्तरान् ' (मान० श्रौ० १।८।३।१७) । ' समिद्धिः प्रेष्यति प्रथमं प्रयाजं संप्रेष्यति प्रेष्य प्रेष्येत्युत्तरान् ' (सत्या० श्रौ० ४।३।१०) ।

१९ ' श्रूयते ' नायं शब्दो योग्यो यस्माच्छ्रौतसूत्राणि न श्रुतिः । यदर्थं = समिदर्थम् । इध्मभावम्=इन्धनभावम् ।

७४३

१ व्यवहितं='समिद्धः' इति भिन्नशब्देन ।

२ ऐष्टिके=दर्शपूर्णमाससंबन्धिनि । हौत्रं = होतुः कर्म ।

३ 'समिधो यजेति प्रथमं यज यजेत्युत्तरान्' (मान० श्रौ० १।३ २।२) । प्रयाजं संप्रेष्यति (सत्या० श्रौ० २।२) ।

३-४ ' अध्वरुप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रेष्यति प्रैषैर्होतारम् । होता यजत्याप्रीभिः प्रैषसलिङ्गाभिः ' (आश्व० श्रौ० ३।२) । ' येऽ

पत्रं

७४३

पृच्छिः

३ ४ यजामहे भमिधः भमिधो अग्न आज्यस्य न्यन्तू ३ वौ ३
पळिति वपट्कारः ' (आश्व० श्रौ० १।१९) ।

७ प्रैष आराद्गृहारादुपकरोति यजति कर्मण्यङ्गमावं गच्छति ।

७-८ समिदादिभिरुपकृत्य दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेतेत्येवंरूपाणि यानि
विनियुज्यन्ते तान्यङ्गानि । तानि सिद्धरूपाणि क्रियारूपाणि
चेति द्विविधानि । क्रियारूपाण्येव संनिपत्योपकारकाण्यारादु-
पकारकाण्युच्यन्ते । तत्र कर्माङ्गद्रव्याद्युद्देशेन विधीयमानं
कर्म संनिपत्योपकारकम् । यथाऽवघातप्रोक्षणादि । द्रव्याद्यनु-
द्दिश्य केवलं विधीयमानं कर्म आरादुपकारकम् । यथा प्रया-
जादि । संनिपत्योपकारकमारादुपकारकाह्वलीयः । आरादुपका-
रकस्थले हि प्रकरणं विनियोजकम् । इतरत्र तु व्रीहीन्प्रोक्षतीति
वाक्यमेव (आपदेवः) ।

८ आप्रीः संनिपत्य संनिहितत्वेन उपकरोति । प्रैष आप्री यागः
इति क्रमः । आप्रिय एव मार आप्रीप्रैषः । तस्मदाप्री
संनिहिता । न तथा प्रैषः । यजतिः = यागः । ' आप्रियाम् '
इदं प्रायः ' आप्रियः ' इत्यासीन्मूलवृत्ता । प्रैषस्य यजता-
वारादुपकारित्वम् । आप्रियो यजतां संनिपत्योपकारित्वम् ।

१०-१२ कः समिद्धः । को देवान्यजति । को जातवेदाः । को मित्र-
महाः चिकित्वान् दत्तः कविः प्रचेताश्च । सर्वत्र 'अग्निः'
इत्येवोत्तरम् । सर्वार्थेतान्यग्निमेवाभिदधते । 'समिद्धः' 'यजमि'
इति द्वे एव कर्मणी । कदाचित् 'मित्रमहः' अत्र 'मह'
इति कर्म स्यात् । इतराण्यग्निवाचकान्यग्निविशेषणानि वा ।
एतेषामिधमे गोर्णा वृत्तिः (१३) । तस्मात्तान्यन्यर्थानि ।
यदा आप्रियोऽग्न्यथत्वं न विपर्यस्यते तदा साऽग्निमेवाभिधते
यदा गोण्या वृत्त्या सा न निरूप्यते तदा ।

१९ आप्री यागे बहुलमुपकरोति । एते आप्रीप्रियाजाः ।

२१ यथा तन्नपान्नराशंसदिशब्दा आप्रीषु विद्यन्ते न तथा अग्नि-
शब्दः । तस्मादाग्निराग्निदेवतासु नास्ति न कथितः ।

पत्रं

पङ्क्तः

७४३

२१-२२ 'अग्निः' (निघ० ९ । १ । १) इत्यत्र समासनातः ।

२२ 'तदपि (=इध्मस्य लिङ्गमपि) अस्यामाप्रियां नास्तीति असमासनात् इध्मशब्देऽपि समानमिति चेत्' इत्यन्वयार्थो ।

२३ (पाठान्तरे ३२) 'आ च वह' = आह्वय चास्माकं देवान् । (यस्माद्देवान्यजसि तस्मात्) यज । एवमाह्वानं यजनं चेति द्वे क्रिये । एते क्रिये आप्रियां प्रैषिके वा न विद्येते । 'ये ३ यजामहे समिधः समिधो अग्न आज्यस्य व्यन्तु' अत्र 'समिधः समिधः' इति समासनात् । 'होता यक्षदाग्निः०' इति मैत्रावरुणेन दत्तः प्रैषः । 'ये ३ यजामहे०' इति होतुरुत्तरं प्रैषिकम् । प्रैषिके समिधः समासनात् न इध्मः । तदाख्यताम् (३३) = इध्म इत्याख्यताम् । 'समित्' शब्द एव समासनात् व्यः किमिति 'इध्म' शब्दः । प्रैषिके समासनात् 'समिधः समिधः' इति । क्रिया = व्यन्तु (भक्षयन्तु) । तथा समिधो विशेष्यन्ते 'समिध आज्यस्य व्यन्तु' इति । एवम् इध्मशब्द आगतः । तेन इध्माभिधानेन अग्निः इज्यते । (पाठान्तरे ३३) अहमेवायमिध्म इत्याग्निः इध्ममभिसंपन्नः ।

७४४

४ यजमानानां यजमानैर्दत्तेन हविषा जातं प्रज्ञानं यस्य सः ।

११ नपात् = नप्ता ।

१२-१३ न विद्यते अन्तरं यस्याः सा । पितापुत्रयोर्मध्ये अन्तरं नास्ति । तस्मात् पुत्ररूपा कन्यारूपा वा प्रजा पितुरनन्तरा । 'पितुरनन्तरा या (प्रजा) सा पुत्रारूपा । पौत्रारूपा (पितुः) अननन्तरा इत्यर्थः' इत्यन्वयः । 'अननन्तरा' इत्यत्र द्वौ नञौ ।

१३ न अनन्तरा अननन्तरा । पौत्ररूपा प्रजा अननन्तरा । यस्मात् पितापौत्रयोर्मध्ये पुत्ररूपं कन्यारूपं वा अन्तरमास्ति । 'या पितुरनन्तरा पुत्रारूपा तस्याऽनन्तरा पौत्रारूपा' इति ग. ज. पाठः (२८) । अत्र तस्य = पुत्रस्य । 'तस्याः' अवश्यम् ।

१५ नततमः = नततरः । 'गौरत्र०' (७४१ । १०) । तत्रैतस्मिन् पक्षे इति दुर्गव्याख्या । 'अत्र' स्थाने 'तत्र' शब्दो दुर्गस्वीकृतमूले स्यात् । अथवा । 'अत्र' स्थाने 'तत्र' प्रामादिकम् ।

१७-१८ तस्मात् (पयः) तस्याः पुत्रः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७४९

१० यस्मात् हवीषि यान्ति तस्मात् तानि 'यानाः' इत्युच्यन्ते ।

१२ 'जिह्या हित' दुर्बोधम् । 'जिह्यायां हित' इति सुगमम् ।
आज्यं जिह्यायां धीयते । कस्य जिह्वा । अग्नेः । 'जिह्या =
जुह्वा । हित = अग्नौ प्रक्षिप्त' इत्यर्थः स्यात् । 'कल्याणजिह्व'
(७४९।४) न व्याख्यातम् । नापि (७४६।४) इत्यत्र । नापि
(७४९।९) इत्यत्र ।

१४ यानि ध्रुवाणि न भवेयुरिति तानि संपादय ध्रुवाणि कुरु ।
'ध्रुवाणि नः स्युः' (२७) इति पाठान्तरमपि साधु । अर्थवस्तूनि
= हवीषि । ध्रुवाणि = देवताः प्रति गन्तुं समर्थानि ।

१९ हविः आज्येन अभिघार्यते दिह्यते । अलंक्रियते = कृष्णी क्रियते ।
अद्विरुपस्तीर्यते च । एतैः संस्कारस्तानि ध्रुवाणि भवन्ति ।

१७ गमय = दूरी कुरु ।

१८ 'इत्यर्थः' व्यर्थं पदे ।

७४६

४ भमभिव्यञ्जयन् = दृष्टिमधुराणि मनोहराणि कुर्वन् । मृष्टी कुरु
— शुद्धानि कुरु । 'मृजू शुद्धा' (धा० २।९६) ।

१७-१८ 'देवानो यज्ञं गमय' (७४९।९) इति भाष्यवाक्यं न व्याख्या-
यते ।

७४७

१ कर्मणि वर्तमाने एव ।

२ एषां नराणामभिमतफलदाता । नराणां फलमाशंसतीति नराशंसः ।
'नराशंसस्य महिमानमेषाम्०' इत्यत्र 'एषाम्' इत्यस्य
नराणामित्यस्याहतेनान्वयः । एवं दुर्गः । ऋचि भाष्ये च
ये देवा इत्यादि एषां तेषामित्यन्वयः (७४६ । १७) ।

३ यज्ञः = मन्त्रैर्देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य दानम् । 'द्रव्यदेवते
कर्मणो रूपम्' इति मीमांसकाः । देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य त्यागः ।
अस्य प्रयोगस्याधिष्ठाता यज्ञः ।

४ तद्यज्ञकर्म जगदुत्पत्तिरेवानुग्रहस्तस्य बीजम् ।

६ यजनस्य = यागस्य । यजतस्य = यज्ञियस्य = यजनस्य
संपादयितुः = प्रयोक्तुरभिमतफलसंपादयितुः ।

पत्रं

७४७

पङ्क्तिः

- ७ प्रयोक्त्रेऽभिमतं फलं संपादयति । 'यज्ञैरुपस्तुतः' इत्यन्वयः ।
 < उपस्थित = उपस्तुत (च. ट.) । अग्न्युपस्थानम् = अग्नेः
 स्तुतिः । तदेवम् = अत एवम् (च. ट.) । किमपि =
 फलदानायानिर्वचनीयसामर्थ्यम् ।
- १२ सोमिकः = अग्निष्टोमे इत्यमानः (पशुः) । सोमः = मरुत्व-
 तीर्यैन्द्राश्वैश्वदेवादयः सोमग्रहाः । पशुङ्गानि = पशुहवीषि ।
 'हृदयस्यावद्यति' जिह्वाया वक्षसो दोष्णः पार्श्वयोरित्यादी-
 न्येकादशावदानानि (मैत्रा० सं० ३ । १० । ३) ।
- १२-१५ अयं प्रयाजमन्त्रः (?) इष्टिषु सोमे च प्रयुज्यते । सोमे
 भिन्नानि हवीषि । इष्टिष्वपि भिन्नानि ।
- १३ पशुङ्गानि पुरोडाशा धाना इत्यादीनि । 'त्रीहिमयः पुरोडाशो
 भवति' (मैत्रा० सं० ३ । १० । २) । 'हरिव इन्द्रो धाना
 अत्तु' (मैत्रा० सं० ३ । १० । ६) । 'पृष्वान्कर्ममः ।
 सरस्वतीवान् परिवापः । इन्द्रस्यापूपः । मित्रावम्णयोः पयस्या'
 (मैत्रा० सं० ३ । १० । ६) ।
- १४ तान्त्राणि = दर्शपूर्णमासयोः काम्येष्टिषु च विधीयमानानि ।
 दर्शपूर्णमासतन्त्रेण कर्तव्यानि । आहवनीयस्यैशानदेशे आशय
 आज्यभागो ह्यते । आशयेदेशे साम्यो ह्यते । एतां द्वौ
 आज्यभागौ । तन्त्रम् = अङ्गसंहतिः = विद्यन्तः । स च विद्यन्तः
 अवस्थानादिः संस्थाजपान्तः । प्रधानस्य तन्त्रणात्तन्त्रम् । तच्च
 दर्शपूर्णमासयोरेवाऽऽम्नातं नान्याधिष्टिषु । तथापि तत्सर्वासा
 मिष्टीनां साधारणम् (आश्व० श्रौ० टीका १ । १) ।
 तान्त्राणि = सर्वासामिष्टीनां साधारणानि । अग्निं भोममित्या-
 ज्यभागौ (आश्व० श्रौ० १ । ३) ।
- १४-१५ 'प्रयाजा आज्यभागौ स्विष्टकृतः' एतानीष्टिषु दक्षिमा-
 नानां हविषां नामानि ।
- १५ अन्वयुरग्नावेशानदेशे जुहोति । स स्विष्टकृद्धोमः । प्रधान-
 यागात्पूर्वमिज्यते यैरिति व्युत्पत्त्येते सर्वे मन्त्राः प्रयाजाः ।

पत्रं

७४७

पङ्क्तिः

१९ प्रकृतौ (दर्शपौर्णमासयोः) पञ्च प्रयाजाः । तत्र यज-
मानो यदा गोत्रेण वासिष्ठः शौनक आत्रेयो वाध्यश्वः
क्षत्रियो वा तदा द्वितीयः प्रयाज आदौ नराशंसपद्युक्तः ।
अन्येषु गोत्रेषु तनूनपात्पद्युक्तः । शौनकगोत्राणां यजमानानां
चातुर्मास्यगतमुख्येष्टिषु नव प्रयाजाः । पाशुके एकादश । ते
सर्वे वासिष्ठात्रेयवाध्यश्वतत्तद्विद्वत्सूक्तेभ्यो गृह्यन्ते । सर्वत्र
द्वितीया ऋचो नराशंसपद्युक्ताः । एते चतुर्विधाः प्रयाजा नारा-
शंसवन्त इत्युच्यन्ते । मेघातिथिदृष्टसूक्ते द्वादश ऋचः । तत्र
द्वितीयतृतीये ऋचौ क्रमेण तनूनपान्नराशंसवन्त्यौ । ताः सर्व-
विधयजमानार्थाः । तथैव दीर्घतमसा दृष्टे सूक्ते । एते प्रयाजा
उभयवन्तः । ऋष्यन्तरदृष्टप्रयाजास्तनूनपात्वन्तः । तत्र द्वितीयः
प्रयाजस्तनूनपात्पद्युक्तः । आवापः = हविर्धानाम्मुष्ट्यां व्रीहि-
ग्रहणम् । इमा व्रीहिमुष्टयो विशिष्टदेवतार्थं गृह्यन्ते । आवापिकाः =
आवापोद्धारयोग्याः = प्रधानदेवताः (आश्व० श्रौ० १ । ३) । आवा-
पिकानि = विशिष्टदेवतायोग्यानि = विशिष्टानि । न साधारणानि ।
प्रधानदेवतावाहने ' देवःनाज्यपानावह० ' इति मन्त्रं पठेत् ।
आज्यपाः = प्रयाजानूयाजदेवताः । ' अग्निं होत्रायावह । स्वं
महिमानमावह ' इति स्विष्टकृतमावाहयेत् (आश्व० श्रौ०
१ । ३) । प्रभृतिपदेनानूयाजाः पत्नीसंयाजाश्च
गृह्यन्ते (आश्व० श्रौ० १ । १०-११) ।

१७ ' अग्निरिति शाकपूणिः ' इदं मूले नास्ति (७४६ । २०) ।
' चेति वाग्निरिति शाकपूणिरिळ० ' एवं मूलपाठः स्यात् ।

७४८

१ आश्व० श्रौ० १ । ९ इत्यत्र ' इळः ' इति पाठः ।

३ तत्क्रियायुक्तः = इन्धनक्रियायुक्तः ।

१४ ' ईळितव्यो वन्दितव्यः (६४८ । ८) । यह्न इति महतो
नामधेयं यातश्च हूतश्च भवति ' (८-१०) न व्याख्यातम् ।

२० अध्येपितः = प्रार्थितो वृतो वा ।

२२ ' ईळ्यः अग्ने ' इत्यत्र न काऽप्यन्या देवता वर्तते । अग्निः

पत्रं

पङ्क्तिः

७४८

- २२ स्वरूपेणैव वर्तते । नान्यै रूपैरग्निरत्र ' ईड्य ' इति विशेषणाव्यवहितः । अत्र ' ईड्यः ' (७४८ । ६) इति पदं न ' इडः ' इति । तथा = अव्यवधानेन । ओषध्यादिरूपं विना ।
- २३ ऐष्टिके = इष्टिसंबन्धिनि । हात्रे = होत्रा पठितव्ये मन्त्रे । अग्नेरव्यवधानेन श्रुतत्वात् ।

७४९

- ९ ' इडः ' इति पदादाश्लेषोपधोरूपेण व्यवहितः (७४८ । २०) ।
- २२ प्राचीनं = प्राच्यां दिशि गतम् । प्राग्रं वा जातम् । अञ्चितं = गतम् ।
- २९ ' पुनरेव ' अत्र ' पुनरेवम् ' इति मूलपाठः स्यात् । ' एव ' इत्यस्य न कोऽप्यर्थः । प्रादिशा = विधिवाक्येन । तद्विधिवाक्यम् । ' प्रागुदम्बामिप्रव्रज्य बर्हिश्च्छति ' (मानवश्रौ० १ । १ । १ । २८) । बर्हिः अच्छ किमर्थमेति । लवनार्थम् । एवं प्राणि उदीचि वा जातं बर्हिः । प्राग्रं वा ।

७५०

- १ ' प्रागुदम्बा बर्हिश्छिनात्ति ' नैवं विधिवाक्यमुपलब्धं मया । ' तत्सामर्थ्यात् ' इति शब्दात् ' बर्हिश्छिनात्ति ' इति प्रामादिकम् । ' बर्हिश्च्छति ' अयं शुद्धः पाठः । प्रागुदम्बा बर्हिश्च्छ गच्छेत् । किमर्थम् । लवनार्थम् ।
- २ प्रादिशा = मन्त्रेण । स मन्त्रः ' देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां बर्हिर्देवसदनं दामि ' (मैत्रा० सं० १ । १ । २ ॥ ४ । १ । २ । मान० श्रौ० १ । १ । १ । ३४) । अयं मन्त्रो लवनार्थः । प्रेयमगाद्धिषणा बहिरच्छेति विद्या वै धिषणा विद्ययैवैनदच्छति ' (मैत्रा० सं० ४ । १ । २) । अयं बर्हिः प्रति गमनाय मन्त्रः ।
- ३-४ ' उरु प्रथस्वोर्णम्रदमिति प्रथयत्येवैनत् ' (मैत्रा० सं० ३ । १ । १३) । ' विप्रथस्व । इति प्रथयत्येवैनत् ' (मैत्रा० सं० ४ । १ । १४) ।
- ५ उरु प्रथस्वेति वेदिं स्तृणाति (मा० श्रौ० १ । २ । ६ । ७) । ' वृजी वर्जने ' (धा० २ । १२ ॥ ७ । २४ ॥ १० । २७९) । ' वृजी छेदने प्रस्तरणे वा ' धातुपाठे न विद्यते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७९०

११ सगुणीकृतात् = युक्तात् । देवानां = हविर्दातृणां यजमानानाम् ।
अभीप्सितेन = इष्टेन वस्तुना ।

१३--१४ ' आहुतिद्वारेण वृष्टिर्भवति तत ओषधिप्ररोहस्तत्सुखम् ' इदं
कस्यचिद्ब्राह्मणवाक्यस्य मार इव भाति ।

१९ ' अशिरिति शाकपूणिः ' इति यास्को न ब्रवीति । ' इदमपि '
अपिना किं द्योत्यते । पूर्वस्मिन् खण्डे इळः = अग्निः ओषधयो-
वा । यदा ओषधयस्तदौषधयो यज्ञाङ्गम् । बर्हिरपि यज्ञाङ्गम् ।

१६ तद्द्वारेण = बर्हिर्द्वारेण । बर्हिः पृथिव्यां स्तीर्यते तदाऽग्निः
स्तूयते । एवं बर्हिर्द्वयधानम् ।

१९ बर्हिः = ' बृहि वृद्धौ ' (धा० १ । ७३७) ।

२१ ' प्राञ्चमुद्धरन्ति ' (मैत्रा० सं० १ । ६ । ९) ।

२२ अनशिका = अ + नशिका ।

२४ आज्यभागौ प्रक्षिप्येते । घृतं च हृयते ।

७९१

३ ' पोऽन्तकर्मणि ' (धा० ४ । ४१) । अवस्यन्ति = व्यव-
स्यन्ति = तत्प्राप्तुं प्रयतन्ते । अन्ते प्राप्नुवन्ति वा ।

१९ व्यञ् = वि + अञ्च् । व्यञ्स्वतीः = विविधेनाञ्चनेन
तद्वत्यो युक्ताः ।

२१ विप्रियन्तां = विविधमाश्रिता भवन्तु (च.) । ' विप्रियन्तां '
'पृ पूरणे' इत्यस्य यकि रूपम् । विप्रियन्तां = व्यापृता भवन्तु ।

२३ ' वरतममङ्गमरू ' (१३) ' यज्ञे गृहद्वार इति कात्थक्यः '
(१४-१९) न व्याख्यातम् ।

७९२

३ ' विश्वं यज्ञे उपकरणमाभिरिति = इत्यन्वयः । उपकशरणम्
(च. पाठः २९) = उपकरणं + शरणम् । सर्वं यज्ञशर-
णमाभिरिति । यज्ञशरणं = यज्ञ एव शरणं गृहम् ।

१८ अवश्यायते (घनी भवति) इत्यवश्यायः । ' श्यैङ्गता ' (धा० १ । ९८८) । पुष्पा बिन्दवः । अवश्यायः = तुषारः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७९३

१२ 'यजते' स्त्रियां द्विवचनम् । न साक्षाद्यज्ञं कुर्वाणे । किंतु यजमानद्वारेण ।

१३ 'प्रशस्ये' मूले नास्ति । 'उपाके' (उप + अञ्च् इत्यस्मात्) = समीपे ।

१३-१४ योपणे = स्त्रियां ।

१६ 'आ' ऋचि प्रथमं पदम् । ततस्तदुत्कृष्य 'सदताम्' इत्यनेन च योज्यम् । दुर्गमते 'नियोनौ' इत्येकं पदम् । अथवा । 'नि' स्वतन्त्रमेव पदं स्यात् । 'आसीदताम्' इति यदा क्रियापदं तदा 'नि' इत्येकं पदम् । यदा 'न्यामीदतां' तदा 'नियोनौ' इति । प्रथमपक्षे 'निः' पादपूरणः । 'नियोनौ' इत्यत्र 'निः' किमर्थः । पादपूरणाय । वस्तुतः 'नि' अयमुपसर्गः 'सदताम्' इत्यस्माद्भवहितः पश्चात्प्रयुक्तः (छन्दासि परेऽपि । व्यवहिताश्च । १ । ४ । ८१ । ८२) । 'आसीदतामिति वा न्यामीदतामिति वा' अत्र द्विविधयोः क्रियापदयोः किं प्रयोजनम् । दुर्गम्वीकृतपाठे 'वा' पदे नास्तामिति भाति । 'निशब्दश्चोत्तरपादपूरणः' इदं प्राक्सिं स्यात् ।

१७ 'नियोनौ' इत्यत्र 'नि' उत्तरप(पा)दस्थम् । तथापि 'आसदताम्' इत्यनेन युज्यते ।

१८ यदा 'आसीदताम्' इति क्रियापदं तदा 'निः' पादपूरण एव । 'उत्तरपादपूरणः' इत्यत्र 'उत्तरः पादपूरणः' इति पाठ आवश्यकः । अथवा । उत्तरस्य द्वितीयस्य पादस्य पूरण इत्यर्थः स्यात् ।

७९४

१ 'अग्निरिति शाकपृणिः' इति किमर्थं न ब्रवीति यास्कः । 'अग्निः' इत्येकवचनम् । 'उपामानक्ता' इति द्विवचनम् । एतस्मात्कारणात् । अन्यर्थे द्विवचनं न युक्तम् ।

२ उपाः 'उच्छ्री विवासे' (धा० ६ । १९) इत्यस्मात् । अग्नेर्दीप्तिः 'उपाः' इत्युच्यते । किमिति । सा तमो विवासयति ।

पत्रं

७९४

पङ्क्तिः

२-३ आहुतिर्नक्ता यस्मात्साऽऽज्येनाक्ता । ' आहुतिरग्निमानकृत्याज्येन ' (२९) इति पाठान्तरम् । ' आहुतिं नक्ताज्येन० अग्निं ' इति ट. पाठः । स घ.पुस्तके ' आहुति अग्निं नक्ताज्येन अग्निं ' एवं लिखितः । इदं केवलं लेखकमौख्यम् । नक्ता = अक्ता । अत्र ' न् ' व्यर्थः । ' आहुतिरनकृत्याज्येन ' इति पाठः स्यात् ।

६ ' शुक्रपेशसम् ' इति घ. झ. ट. पाठः । ' शुक्रपेशम् ' इति च. पाठः (२८) ।

९ ' शुक्रं शौचतेज्वलतिकर्मणः ' न व्याख्यातम् (७९३ । ६) । ' पिश अवयवे ' (धा० ६ । १५६) दीपनायामपि । विपिशितं = विशेषेण दीप्तम् । अथवा । विविधेष्ववयवेषु विभक्तम् ।

१० यावानाश्रयस्तावति भवति रूपम् । रूपं सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति । विपिशितं = विनिहितं शरीरे ।

७९५

३ मनुष्यहोतारावपेक्ष्य दैव्यौ होतारौ । होतृमैत्रावरुणौ ; विशेषणम् (ग. च. ज. पाठः २२-२४) । ' होतृमैत्रावरुणौ ' अयं ' मनुष्यहोतारौ ' इत्यस्यार्थः मूले प्रान्तभागे लिखितः केनाप्यङ्गलेखकेनान्तर्भावितः स्यात् । तथा ' विशेषणम् ' इति ' दैव्यौ ' इत्यस्य व्याकरणभाषया निरूपणं प्रान्तभागे लिखितं तथैवान्तर्भूतं स्यात् । ' मनुष्यहोतारावपेक्ष्य दैव्यौ होतारौ ' इत्येव पाठो मौलिकः सुवचश्च । ' आनङ् ऋतो द्वंद्वे ' (पा० ६ । ३ । २९) इत्यनेन ' होतृमैत्रावरुणौ ' अशुद्धम् । ' होतापोतारौ ' इतिक्त् ' होतामैत्रावरुणौ ' । तेन ' होतृमैत्रावरुणौ विशेषणम् ' इदं प्रक्षिप्तम् ।

६-७ मनुष्यस्य (मनुष्यं) प्रचोदयन्तौ । ' मनुष्यस्य मनुष्यस्य ' इयं द्विरुक्तिर्न व्याख्याता (७९४ । २०) । ' पूर्वस्याम् ' (२०-२१) । इत्यस्य स्थाने ' प्राच्याम् ' इति दुर्गस्वीकृत-पाठः प्राय आसीत् ।

१३ अनुग्रहस्य कारू कर्तारौ । स्वाधिकारे यानि कर्माणि तेष्वनु-

पत्रं

पङ्क्तिः

७९६

१३ ग्रहेण मंनिधानं तयोः । तेनाऽऽदृतौ मनुष्यैः । पूर्वं कारु कर्तारावृ-
त्विजौ (७-८) । अत्र कर्तारावनुग्रहस्य ।

१४-१९ 'गार्हपत्येऽग्निप्रणयनान्यादधाति' (मान० श्रौ० १।९।३।
१९) । 'अग्निमुद्यच्छति' (मान० श्रौ० १।९।४।३) ।
'अग्निप्रणयनान्यादाय 'प्राचीमनु प्रादिशं प्रेहि विद्वान्' इत्यश्व-
प्रथमाः प्राञ्चोऽभिप्रव्रजन्ति" (मान० श्रौ० १।९।४।७)
इदं प्रणयनम् ।

१९-१६ 'उद्धराहवनीयमित्युक्त्वा गार्हपत्यादाहवनीयं ज्वलन्तमपराह्णे
व्युच्छन्त्यां प्रातः' (मान० श्रौ० १।६।१।१) । इद-
मुद्धरणम् । 'प्राञ्चमुद्धरन्ति' इदं विधिवाक्यम् । तत्कर्तव्यं
प्रादिशति ।

७९६

१ 'देवीः' इत्यस्य 'देव्यः' इति प्रथमाविभक्त्या विपरिणामः ।

१६ अनु पश्चात्प्रधानयागानन्तरमिज्यने येरिति व्युत्पत्त्या होत्रा
पठ्यमाना याज्यामन्त्रा अनुयाजा इत्युच्यन्ते । 'इडया वसु-
मत्या' अत्र 'वसुमत्या' 'इडया' इत्यस्य विशोषणम् । तेनेडा
पार्थिवाऽनुयाजशब्दसामर्थ्यात् ।

७९७

४-६ त्वष्टा = तु + अष्टा । तु = तूर्णम् । अष्टाऽश्नोतेः । ' त्वष्टा
तूर्णमश्रुते त्विषेवा वृद्धयर्थस्य ' इति दुर्गम्भाकृतपाठः स्यात् ।

६ 'त्विष दीप्तिः' (धा० १ । १०२६) । त्वष्टा = त्विष्टा ।
मूले 'त्विषेवास्यार्द्दीप्तिकर्मणः' । वृद्धयर्थो दुर्गण कुत उपलब्धः ।

७ 'तक्षतेः(२९)त्वक्षतेः' मध्ये दुर्गण कः पाठः स्वीकृत इति न
ज्ञायते । त्वक्षतिर्घातुः त्वष्टृशब्दस्य संनिहितः ।

८ 'करोति' इति त्वक्षते. सामान्यार्थः । 'तक्ष् त्वक्ष् तनूकरणे'
(धा० १ । ६९६-९७) । 'इति नैरुक्ताः' (७९६ । ८)
'स्यार्द्दीप्तिकर्मणः' (९) ' स्यात्करोतिकर्मणः' (९) न व्याख्या-
तम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७९८

१ ' इपितो यजीयान् ' (७९७ । १४) न व्याख्यातम् ।

७ व्यपदेशः = भेदेन निर्देशः ।

९-१० स यथा मनुष्यहोत्रा संबोध्यते ।

१२ वर्धकिः = तक्षा ।

१९ ' माध्यमकः ' इति छ. त. द. (७९७ । २७) ग. च. ज. (७९८ । २९-२६) पाठः ।

२१ ' अग्ने महँ अमि० आवह देवान् । अग्निमग्ग आवह । अग्नि-
मावह । अग्निपोमावावह । इन्द्राग्नी आवह । अग्नि होत्रायावह ।
स्वं महिमानमावह । मुयजा च यज जातवेदः ' (तै० ब्रा०
३ । ९ । ४ ॥ आश्र० श्रौ० १ । ३) ।

२२-२३ ' व्यपदेशे सति ' इत्यम्यानन्तरम् ' अपि 'शब्दोऽध्याहार्यः ।

२३ योदिन्द्रायोच्छुश्मनेन (च. पाठ. ३०) । ' दिन्द्रायोच्छुष्म '
एतान्यक्षराणि ' यो दशति ' (२८) इत्यत्र लिखितव्यानि ।
किंतु लेखकप्रमादात् ' थोऽनेन ' इत्यस्य मध्येऽन्तर्भाषितानि ।२४ ' तमद्य होतर् यज ' (७९९ । ९) अत्र अग्निर्होतरित्या-
ह्यते (= संबोध्यते) ' यज ' इति चेज्जते ।

७९९

१ ' स्विष्टकृत् ' नामाग्निर्यागश्च । ' हे अग्ने स्वं महिमान-
मावह ' (७९८ । २४) = आत्मानमावह । इदं विशेषलि-
ङ्गम् । स्वस्मात्स्वमहिमा पृथक्क्रियते । विधिवशात् = यागार्थम् ।२ स्वमात्मानं यागार्थं होतृगित्याह्वयं संस्मरति । तैस्तैर्गुणैरात्मानं
द्विधा त्रिधाऽनेकधा वा विभज्य यजति । ' आत्मना ' (१.)
पदं व्यर्थम् । अथवा । आत्मना = स्वयमेव । ' यजनादन्यद्वा
कार्यं संपादयति ।३ अग्नेः कर्मात्मा यज्ञसंपादनायाऽऽवश्यं आत्मा । यत्तत्क्षणगुण-
विधिष्ठो यदधिष्ठितः । परः = भिन्नः ।४ पाकेन = पक्त्वा परिणामेन । तं कर्मात्मानम् । तमधिकृत्य =
तं विपयीकृत्य । ' त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समा-
नजे । तेषां नः स्फातिमा यज ' (ऋ० मं० १ । १८८ । ९) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७९९

४ ' त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ' (ऋ० सं० १०।१८४।१) ।

' रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ' (ऋ० सं० १०।११०।९) ।

९ तत् = तस्मात् ।

६ देवशिल्पी = देववर्धकः । मनुष्यवर्धकेर्गुणस्तक्षणमशौ वर्तते विशेषरूपेण ।

७ अमावैपि = अशिःगपि ।

२० ' अव्ययात्त्यप् ' (पा० ४।२।१०४) । आविः
जातः = आविः + त्यः = आविष्टचः । ' त्यः ' इत्यस्य
दुर्गमतेऽर्थस्तानिता । तत्त्यः (३३) = तत् आविः + त्यः
भवो जातो वा ।

७६०

६ ' रात्राहाहाः पुंसि ' (पा० २।४।२९) इत्यनेन
' अहोरात्रः ' । कथम् ' अहोरात्रे ' । द्विवचने वक्तव्ये
' अहोरात्रौ ' इति रूपं योग्यम् ।

८ ' आवामन्यतरम् ' ' आवामन्यतमम् ' इति पाठान्तरे
(२४) । ' अन्यतरम् ' इति शुद्धः पाठः । अहश्च रात्रि-
श्चेति द्वे एव । तयोरन्यतरो न त्वन्यतमः ।

१४ ' चारु चरतेर्जिह्वं जिहीतेरूर्ध्वमुच्छ्रितो भवति ' (७९९ ।
१३) ' प्रत्यक्ते ' (१६) न व्याख्यातम् ।

७६१

९ उपाश्लिष्य = मृदुहस्तेन पशूनामङ्गानि स्पृष्ट्वा । क. ख. वर्जम्
' उपावाश्लिष्य ' (२९) इति प्रामादिकः पाठः । स च च.
पुस्तके ' उपाश्लिष्य ' इति शुद्धीं कृतः ।

१३ अनाश्रितविशेषः = अत्र विशिष्ट देवतावाचि ऽलिङ्गं नास्ति ।

१९ अम्य पशोरात्मानम् । आत्मना = स्वकृतेन केनचित्कमणा ।

७६२

४ यूपान्ननीया = यूपान्नसंबन्धिनी । यूपान्ननीया ऋक् ' अन्न-
न्ति त्वा० ' इति । दुर्गस्वीकृतपाठे ' अग्निरिति शाकपूणिः '
(७६१ । ६) नामीदिति भाति । स एव पाठो योग्यो

पत्रं

पङ्क्तिः

७६२

४ यस्मात् ' अञ्जन्ति - ' इयमृग्यूपपरा । अष्टादशखण्डे च
' अशिरिति शाकपूणिः ' (१२) इति वर्तते ।

५ ' वनस्पते ' इत्यभिधानेन । (होता) ' प्रेषितो यूपाया-
ज्यमानायाञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्त इत्युत्तमेन वचनेनार्धर्च
आरभेत् ' (आध्व० श्रौ० ३ । १ ॥ ऐ० ब्रा० ६ । २) ।

७६३

१४ ' निवित्पुरोरुचः प्रैषा विश्वामित्रस्य सर्वशः ' इति प्रवादः ।
२ प्रधानक्रिया = पशुविशसनम् । तस्य यूपः पूर्वमङ्गम् । पूर्वा-
ङ्गभावयित्वात् (च, पाठः २३) = पूर्वाङ्गभावयित्वात्
+ पूर्वाङ्गं भावयित्वा । भावयित्वा = संपाद्य । तद्द्वारेण =
पूर्वाङ्गद्वारेण । 'प्रधानांक्रिया पूर्वाङ्गभावयित्वात्' अत्र ' भाव-
यित ' इतीदं किंरूपम् । ' भावितम् ' इति शुद्धं रूपम् ।
' भावयितं ' प्रामादिकम् ।

५-७ अस्य वाक्यस्य यूपपरोऽर्थः । किंत्वस्य परा पुरोरुगग्निप-
रैव । अत्र ' इहापि ' अस्थाने लिखितमिति भाति ।
" ' अशिरिति शाकपूणिः ' इहापि " एवं मूलवृत्तिः स्यात् ।
यथा ' उपावसृज ' इत्यस्यामृचि वनस्पतिशब्देनाग्निरेवाभिहि-
तस्तथेहापि । कदाचित् ' उपावसृज ' इयमृग्यूपपरा
भवेत् । ' अञ्जन्ति ' इयमृगग्निपरैव । यथा परा नः सशय-
मग्निपरा । शाकपूणिमतेन ' उपावसृज ' इयमग्निपरैव । इहापि
' अञ्जन्ति ' इत्यस्यामप्यग्निपरत्वमेव ।

६ ' उपावसृज ' इत्यस्यामृचि वनस्पतिशब्दस्यार्थो नाऽऽविष्कृतः ।
तेन तस्य मन्त्रस्य यूपपरोऽर्थो भवतु । किंतु नायं शाक-
पूणिर्गभिप्रायः ।

७ ' तं (यज्ञं) पुरोःरुग्भिः प्रारोचयन् । यत्पुरोरुग्भिः प्रारो-
चयंस्तत्पुरोरुचां पुरोरुक्त्वम् ' (ऐ० ब्रा० ११ । ९) ।
वायुग्रेणा इति कुन्तापाध्याये पाठिताः सप्त पुरोरुचः । नेयं
पुरोरुह् । पाठान्तरे (७६२ । ३०) ' अञ्जन्ति ' (७) पुरोरुगु-
च्यते । ' देवेभ्यः ' इयं च । पुरोरुक् = पुरोनुवाक्या । यजतौ =
यागे । पुरोरुग्यजतौ = पुरोनुवाक्यासु । होता यक्षदित्यादिषु ।

पत्रं
७६३

पङ्क्तिः

७ ' अञ्जन्ति त्वा० ' इयं पुरोरूक् पुरोनुवाक्या । तथा ' देवेभ्यो वनस्पते ' इयं च । ' अञ्जन्ति ' इत्यस्य मन्त्रस्य परा पुरोरूक् । ऋगोव पुरोरूक् ।

७-८ अस्य मन्त्रस्य परा ऋक् पुरोरुग्यजता संनिपतति हविर्वहनलिङ्ग-
लिङ्गिता च । तेन सा वनस्पतिशब्देनाग्निमेवाभिधत्ते ।

१८ पर्णेर्ज्वलित । ' हिरण्यपर्णं ऋतपर्णापि वोपमार्थे स्याद्धिरण्यव-
र्णपर्णेति ' (१३-१४) । ' पुराणस्ते सोऽर्थो यं ते प्रब्रूमः ' (१४-१९) ' वा ' (१६) न व्याख्यातम् ।

२१ मन्त्रेण पितृणां कव्यवहनम् । तद्विपरीतेन = प्रदक्षिणम् ।

२१-२२ रशनया नियूय = सुनिपुणं निवन्ध्य ।

२२ अनवेक्षितं = अवेक्षणाभावात्प्रमादेन ।

७६४

३ रजः = उदकम् ।

४ प्रपिष्टं प्रहतं चूर्णाकृतं तमो यत्र । अथवा । प्रपिष्टाः=सुरूपाः ।

६-७ ' प्रदिवस्ते अर्थं विद्मः ' इति दुर्गस्वीकृतपाठो भवेत् ।

६-८ ' अयं यो होता ' (ऋ० सं० १० । १२ । ३) अस्या
ऋचः ' देवा दधिरे हव्यवाहम् ' इत्यन्तिमो भागः । एतादृश-
मन्त्रेभ्यस्ते हविर्वहनरूपमर्थं विद्मः ।

१० ' तस्यैषा ' (७६३ । १६) इत्यस्य स्थाने ' अथैषा ' इति दुर्गस्वीकृतपाठो भवेत् ।

११ वनस्पतिशब्दस्याग्नां प्रायेण वृत्तिरित्युपप्रदर्शनार्थम् ।

७६५

९ ' रुज्ञे ' (७६४ । १६) ' प्रब्रूहि ' (१६) न व्याख्या-
तम् ।

१६-१७ वनस्पतिशब्देन = यूपामिधानेन । यूपामिधानेन वनस्पति-
र्वनस्पतिशब्देन चाग्निग्निधेय इत्यन्वयः ।

१७ ' यूपामिधानेन वनस्पतिः ' इदमनवश्यं केवलं निरूपणम् ।

१८ अधियज्ञे भिन्नोऽर्थः । अधिदैवते भिन्नश्च ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७६५

१८-१९ ' अञ्जन्ति त्वा ' अस्य मन्त्रस्याग्निपरत्वम् ।

१९ यज्ञाङ्गम् = यूपः । अधियज्ञे = यज्ञे । अयं मन्त्रो यज्ञाङ्ग-
मभिवदति ।२० अस्या ऋचः । ' अस्य मन्त्रस्यास्या ऋचः ' अत्र बहुलो
भाषादोषः । लेखकप्रमादेन बहुलो विवरणभागः प्रान्तलिखितो
दुर्गवृत्तावन्तर्भावितः स्यात् । ' मन्त्रार्थे ' इदमनवश्यकम् ।
' सामर्थ्यम् ' इत्यभ्यान्तर्गं विरामचिह्नं भवेत् । मन्त्रार्थे इति
(एवम्) । कथम् ।

२४ यस्मात् = येनाञ्जनेन ।

७६६

३ काथनयपक्षेऽर्थयोजनायाम् ' ऋतपर्ण ' ' प्रब्रूहि ' पठ्यते ।
किञ्चूतपर्णशब्दस्यार्थो न दीयते । ' हतपर्ण ' इति ग. ज.
पाठः (२०) । ' ऋ ' स्थाने ' ह ' प्रमादेन पतितः स्यात् ।१६ उत्तमः प्रयाजः पञ्चमः । ' पञ्चमे स्वाहामुं स्वाहामुमिति
यथावाहितमनुद्गत्य देवता यथाचोदितमनावाहिताः स्वाहा देवा
आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्त्विति ' (आश्व० श्रौ०
१ । ९) । यथावाहितमग्निम् । अग्निवाहिताः । इतरेऽना-
वाहिता देवाः ।

१८ शौनकस्य मतेनाऽऽग्नेयः । न याज्ञिकानां मतेन ।

७६७

१ अग्नेः स्तुतिमनुद्गत्य शीघ्रमुच्चार्य ।

२ याभ्य आहुतीर्दीयते ताः संप्रदानम् । ' कर्मणा यमभिर्प्रेति स
संप्रदानम् ' (पा० १ । ४ । ३२ ।

३ अत्र देवताः संप्रदानं नाग्निः ।

८-९ अश्वर्युणा स्वाहाकृतिभ्यः प्रेष्येति प्रेषितो मैत्रावरुणो होतारं
प्रेष्यति । होता यक्षदाग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा
स्तोकानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यमूक्तीनां स्वाहा देवा
आज्यपा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्गजेति (प्रैपसूक्ते १३) ।
अथमेकादशस्य प्रयाजस्य प्रैपः स्वाहाकृतिप्रैप इत्युच्यते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७६७

९ प्रेषेण संस्कारः प्रैपसंस्कारः ।

१४-१५ ' प्रजापतिर्यदहोप्यत्तं स्वा वागभ्यवदञ्जुहुधीति सोऽजुहोत् ।
स्वाहा । इति स्वा ह्येनं वागभ्यवदत्तस्वाहाकारस्य जन्म '
(मैत्रा० सं० १ । ८ । १) ।

१९ अनेन स्वाहाशब्देन ।

"

२० सुष्टु = शोभनम् । आपाद्य = कृत्वा ।

७६८

१ ' हविरदन्तु देवा यजन्तीति ' (पाठान्तरम् २२) । अत्र
' यजन्ति ' इत्यस्य केनान्वयः ।

६ प्राधान्येनाग्रतोगामी ।

८ गार्हपत्यादुत्तरवेदिमुत्तरवेद्यां वर्तमानमाहवनीयं प्रति प्रणीतोऽग्निः ।
उत्तरा वेदिर्दिस्य स उत्तरवेदिक आहवनीयोऽग्निः ।

११ प्रजाया एकादर्शवेति प्रदर्शनार्थम् ।

१२-१३ ननु द्वादश आग्निदेवता यासामनुकीर्तनं = या अनुक्रान्ताः ।

१३-१४ ' मत्स्यम् । अनुक्रान्तानां द्वादश यासामनुकीर्तनम् ' (च.
पाठः २५-२६) ।

१५ प्रयाजास्तत्तद्देवतासंस्कारपराः ।

१६ ' दश वै पशोर्देवता दशास्मिन्प्राणा यद्दश प्रयाजा याः एवास्मिन्देव-
तास्ता एतद्यजथ य एष एकादशो यस्या एव देवतायै पशुरा-
लभ्यन्ते तामेवदद्यजथ ' (मैत्रा० सं० ३ । ९ । ८) ' एका-
दश प्रयाजान्यजति ' (तै० सं० ६ । ३ । ७) ।
यजतौ = यागे ।

७६९

१ देवताध्यानं दक्षाङ्गमिति श्रूयते । ' यस्यै देवतायै हविर्गृ-
हीतं स्यात्तां ध्यायेद्वपट्करिष्यन् ' (ऐ० ब्रा० ११ । ८) ।

२ एताद्विषयं = देवताविषयम् । तत्प्रकरणम् ।

५-६ ' आ श्रावय ' इत्यध्वर्युर्व्रवीति । एतदाश्रावणम् । (आश्रुता-
दिः) । ' अस्तु श्रौषट् ' इत्याग्निधः । एतत्प्रत्याश्रावणम् ।
तदनन्तरं प्रयाजयाज्या । ततः प्रयाजनान्वय आहुतयः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७६९

१-६ अन्ते यजमानोपरथानन्तः क्रियाकलापः = यजमानकृत-
मनुमन्त्रणम् (सत्या० श्रौ० ६ । ८) । ' प्रजाया इति
आश्रुतादि० प्रसिद्धत्वात् ' इदमसंबद्धं प्रान्तभागे लिखितमिहा-
न्तर्भावितमिव भाति ।

६ ओ श्रावथेत्यादिः प्रीणात्वित्यन्तः क्रियाकलापः (च.) ।

७ किमिति ' प्रयाजेषु ह्यमानेषु ' । ' प्रयाजा ह्यन्ते ' इति
किमिति न ।

८ आज्यस्य व्यन्तू ३ वाँ ३ पट् । अथवा । आज्यस्य वेतू ३
वाँ ३ पट् । एवं प्रयाजानामन्ते वपट्कारः (आश्व०
श्रौ० १ । ९) । प्रयाजप्रवादाः = प्रयाजसंबन्धिनो वादाः ।
• आप्रीणां वपट्कारसंबन्धात्० = सर्वासामाप्रीणामन्ते वपट्
कारो वर्तते । स एवैकस्तासां विशेषः । अन्यत्सर्वं स्वभावतोऽ-
विशिष्टम् । आप्रीवाक्येषु नास्ति किञ्चिद्विशिष्टं पदं येन देवता-
निश्चयः स्यात् ।

९ ' विशेषभावः ' (पाठान्तरे २५-२६) = विशेषः भेदः ।
अन्यो भेदो न निर्णायकः ।

१३ एतस्मिन्नर्थे = अशेः प्रयाजानुयाजसंबन्धे ।

१४ • ये द्वे ऋचां दृष्टे तयोर्मध्ये एपा ' इति वाक्यसमाप्तिरवश्यम् ।

१६ • त्रयो वै पूर्वोऽग्नयः प्राधन्वन् हव्यं देवेभ्यो वहन्तो वपट्कारः
प्रावृश्चदथ योऽयमिदानीं स भीषायाद्रवदीदृगु स आरिप्यतीति
तं देवा अपाशामुरूप ना आवर्तमेवेति सोऽब्रवीद्भागो मेऽस्त्विति
वृणीष्वेत्यब्रुवन्तोऽब्रवीन्नयो वै मे पूर्वे भ्रातरः प्राधन्वन्हव्यं
देवेभ्यो वहन्तो वपट्कारः प्रावृश्चत्तेषां भा ोऽस्त्विति वृणीष्वे
त्यब्रुवन्तोऽब्रवीद्यदेव किंचाहुतं बहिष्परिधिं स्कन्देत्तदेव तेषां
भागधेयमसादिति' (मैत्रा० सं० ३ । ८ । ६ ॥ शत० ब्रा०
१ । ३ । ६ । १३-१६) ।

' वपट्कारेण वृकणेषु भ्रातृषु '—' अपचक्राम देवेभ्यः सौची-
कोऽशिगिति श्रुतिः । म ऋतुष्वप्सु वनस्पतिषु निलीनोऽभवत् ।

पत्रं
७६९

पङ्क्तिः

१६ अन्यभावे अमुराः प्रादुर्बभूवुः । अमुरान्हत्वा देवा अग्निमन्ववै-
क्षन्त । हविविहेति ते तमूचुः । स वरानवृणोत् ।
आयुरस्तु च मे दीर्घं हवींषि विविधानि च ।
आरिष्टिः पूर्वजानां च भ्रातृणामन्वरेऽन्वरे ॥
प्रयाजाश्चानुयाजाश्च वृतं सोमे च यः पशुः ।
मद्देवत्यानि वै मन्तु यज्ञो मद्देवतोऽस्तु च ' ॥
द्वे ऋचो (ऋ० सं० १० । ११ । ८-९ ॥ बृहदे०
७ । ६१-७४) ।

७७०

१४-१९ सर्वस्य हविष ऊर्जम्बन्तं भागमवधार्यायं भागो रसवानिति
निश्चित्य दत्त ।

१६-१७ 'अग्निं सोममित्याज्यभागो' (आ० श्रौ० १ । ३) ।
'त्वमग्ने मप्रथा अग्नि ' इत्याग्नेयाज्यभागस्य पुरोनुवाक्या
(ऐ० ब्रा० १ । ४) ।

२० वपट्कारेण वज्रभूनेन प्रवृक्णा हिंमिताश्छिन्नाः ।

२१ तत्र पूर्वं इत्यादि (७६९ । १६ टिप्पणी) ।

७७१

४-९ प्रकृष्टा मरुत्या दिशः प्रदिशः ।

९ स्थितिः = निश्चयः ।

१० आशोयत्वं मन्यते (पाठान्तरे २३) = आचार्यः । ब्राह्म-
णमन्त्रः (पाठान्तरे २४) = ब्राह्मणमहितो मन्त्रः ।

१९ यदीतरद्भक्तिमात्रं (१३) किमर्थोऽयं विचारः ।

१७ 'उपदिश्यमानानुपनिष्ठतेऽनुमन्त्रयतेऽभिमन्त्रयतेऽभिमृशति ज-
पति ' (मत्या० श्रौ० ६ । १) ।

१८ अभिमंहितं = विशिष्टदेवतामुद्दिश्य देयमिति निर्धारितम् ।

७७२

१० 'इतीमानि' निरुक्तमूले 'तान्येतानि' (७७० । ८) । दुर्ग-
स्वीकृतमूले 'इतीमानि' पाठः स्यात् ।

पत्रं

७७२

पङ्क्तिः

११ ऋग्वेदे दशाऽऽप्रीसूक्तानि तत्र प्रथमं कण्वानां (मेधातिथेः)
 'मुममिद्धो न आवह' (१ । १३) । द्वितीयं (देवतमसं) तद्वर्ज्या-
 नामाङ्गिरसां • ममिद्धो अशः आवह ' (१ । १४३) । तृतीय-
 मगस्तीनां • ममिद्धो अद्य राजामि ' (१ । १८८) । चतुर्थं शुनकानां
 • ममिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्याम् ' (२ । ३) । पञ्चमं
 विश्वामित्राणां • ममित्ममित्मुमनाः ' (३ । ४) । षष्ठम-
 त्रीणां • मुममिद्धाय शोत्रिषे ' (५ । ५) । सप्तमं वमिष्ठानां
 • जुपस्व नः ममिधमशेः अद्य ' (७ । २) । अष्टमं कश्य-
 पानां • ममिद्धो विश्वतस्पतिः ' (९ । ५) । नवमं वाध्य-
 श्वानां • इमं मे अशेः ममिधं जुपस्वेळः ' (१० । ७०) ।
 शनकवाध्यश्ववर्जितानां भृगूणां दशमं • ममिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे'
 (१० । ११०) । अत्रेकादशाऽऽप्रियो (आश्रयूचः)
 ऽनुक्रान्ता न सूक्तानि । दुर्गकृतविवरणं प्रामादिकम् । तान्ये-
 तानि वक्ष्यमाणानि न त्वनुक्रान्तानि ।

१२-१७ वामिष्ठम् (७ । २) । अत्रेयम् (९ । ५) । वाध्यश्वम्
 (१० । ७०) । गात्रभेमदम् (२ । ३) ।

१८ अत्र भवत्र द्वितीया ऋचो नराशंसपदव्यदिताः । एतानि चत्वारि
 सूक्तानि नराशंसवन्ति ।

१९-२१ (मेधातिथेः) काण्वम् (१ । १३) । देवतमसम् (१ । १४२) ।
 एते द्वे प्रेषिकं चोभयवन्ति । शेषाणि तनूनपात्वन्ति ।

२० प्रेषिकं सूक्तं = कुन्तापाऽध्याये द्वितीयं प्रेषसूक्तम् । तदिह
 निरुक्तेऽभिन्नाकरण उपवर्णितम् । प्रयाजसूक्तसंबन्धेनैव तस्य
 निर्देशः कृतः ।

२३ नाराशंसं यजन्ते ते नाराशंसयाजिनः ।

७७३

१ अन्ये भवे न तनूनपाद्याजिनो यस्माद्द्वावुभयवन्तावुभययाजिनो ।

२ एकादशाऽऽप्रीसूक्तानि । एकं निर्वचनमवधारणं (निश्चयेन प्र-
 योगः) च येषां तानि ।

३ एतानि सूक्तान्यृक्शाखायां वर्तन्ते । एतेषु न विवादः । निश्चये-
 नैतानि तेषु तेषु यागेषु विनियुज्यन्ते । उभयवत्पक्षेऽपि निश्च-

पदं

७७३

पङ्क्तिः

- ३ यः । 'मौत्रामणी' इति यागस्य नाम । अस्मिन्पुराणं विहितं पशुत्रयहिंसा च । प्रथमे पशोः 'समिद्धो इन्द्र उपमामर्नाके' (मैत्रा० सं० ३ । ११ । १) । द्वितीये 'समिद्धो अशिरश्चिना' (मैत्रा० सं० ३ । ११ । ३) । उत्तमे 'समिद्धो अशिरः समिधा' (मैत्रा० सं० ३ । ११ । ११) । एतानि त्रीण्याप्रीमूक्तानि । दशतय्यासृग्भेदे भवात् ।
- ६ मौत्रामण्यां प्रथममंड्रं द्वितीयमाश्रितं तृतीयं छन्दोदेवताकम् । प्रैपिके = प्रैपमूक्ते । न परिमंख्यातान्याप्रीमूक्तेषु यास्काचार्येण ।
- ७ अशिरश्चितां ऊर्वा अस्य समिधो' (मैत्रा० सं० २ । १२ । ६) । अश्वमेधे 'समिद्धो अन्नन्कृदग्म्' (मैत्रा० सं० ३ । १६ । २) । अशिकम् = अशिरश्चितां प्रयुक्तं (मूक्तम्) ।
- ८-९ आशिक मदांष मूक्तामिष्टकानामुपधानं प्रयुज्यते । तैत्तिरीयवाजमनेयिशास्त्रयोगेताः पञ्च पञ्चवङ्गभृता आशिनयः सामिधेन्यः ।
- ९ उत्तमायां = पञ्चम्याम् । 'आशिकमुत्तमायां चिता' इदं सूत्रवद्भाति । मानवश्रांतमूत्रं स्यात् ।
- ९-१० 'समास्वारेः' : शत० ब्रा० ६ । २ । १ । २१) । आप्रियः (शत० ब्रा० ६ । २ । १ । २८ ॥ कात्या० श्रौ० १६ । १ । ११—१२) ।
- ११ 'द्वादशाप्रीरप्येषु' इदमपि मूतं स्यात् । 'अप्येषु' (२६) इदं दुर्बोधम् । अप्येषु = अपि + एषु (?) 'एषु' प्रामादिकम् 'एतेषु' इत्यस्य स्थाने । एतेष्विष्टकोपधानेष्वप्रीरपि विनियुज्यात् । 'एतेषु' अयमपि मांशयिकः पाठः ।
- ११-१२ 'उत्सकथ्या०' (वा० सं० २३ । २१) । इत्यश्वं यजमानोऽभिमन्त्रयते (वा० श्रौ० २० । ६ । १७) । यदाऽपोऽश्वमभ्यवगाह्यति तदा अहं च त्वं च वृत्रहन्ति ब्रह्मा

पत्रं

पङ्क्तिः

७७३

११-१२ यजमानस्य हस्तं गृह्णाति (तै० ब्रा० ३ । ८ । ९ ॥ तै० सं० ७ । ४ । १९) ।

१४ आप्रीकार्ये प्रयोगव्यभिचारात् । एतेषां सूक्तानामन्यत्राऽऽप्रीकार्यात्प्रयोगः । अयमेव व्यभिचारः । आप्रीकार्य एव नैतानि सूक्तानि प्रत्युज्यन्ते ।

२० प्रयोगादन्यथाभाविनि = प्रयोगेऽनावश्यके (देवतापदे) । अन्यत्रापि = अश्वमेध इतरयागेषु वा । देवतापदानिपातकल्पः । देवतापदं निपातत्वेन मन्तव्यम् । कल्पः = व्यवस्था ।

२१ अश्वप्रतिग्रहप्रायश्चित्तम् । वरुणो वा एतं गृह्णाति योऽश्वं गृह्णाति यावतोऽश्वान्प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारुणाञ्चतुष्कपालान्निर्वेपेद्वरुणमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति ' (तै० सं० २ । ३ । १२) । ' यो वा अश्वं प्रतिगृह्णानि वरुणं स प्रमीदति तदश्वहविषा यष्टव्यं निर्वरुणत्वाय चतुष्कपाला भवन्ति चतुष्पाद्वा अश्वः कपालैरेवैनमाप्नोति यावन्तोऽश्वान्तावन्तः पुरोडाशा भवन्ति सर्वेन एवैनं मुञ्चति अथ यः पुनः प्रतिग्रहीष्यन्त्स्यात्तस्य वारुणा नेमाः स्युः सौर्यवारुणा नेमाः । यद्रारुणो वरुणादेवं मुञ्चत्यथ यत्मार्यः स्वामेव देवतामुपप्रतिगृह्णात्यात्मनोऽहिंमार्य' (मैत्रा० सं० २ । ३ । ३) । चतुष्कपालः पुरोडाश एवाश्वहविः ।

७७४

२ ' रेजन्ते अशे पृथिवी मग्नेभ्यः ' अत्र ' अशे ' इति पदं संबोधनम् । तथाऽपि केवलमारुते हविषि नारोरुपयोगः । तस्माद्दशदेवताऽत्र निपातवन् ।

३ तदेवाशिपदम् । चातुर्मास्येषु वैश्वदेवं पर्व । तत्र विश्वान्देवान्पूजति (मैत्रा० सं० १ । १० । ६) । तत्र 'प्रचित्र०' इति याज्या (आ० श्रौ० २ । १६) । अत्राप्यग्निपदं मार्यम् ।

५ ' इडे अशि ' : त्विपीमन्तो ' : अशे याहि ' ' प्रचित्रैमर्क ' ' ये अँशयो ' ' आ वो र्यन्तू ' (मैत्रा० सं० ४ । १४ । ११) । एताः षड्ऋचः 'अशिमारुतीं पृश्मिालभेत वृषिकामः '

पत्रं

पङ्क्तिः

७७४

९ इति काम्ये पशौ विनियुज्यन्ते । अत्राशिपदं मार्षम् । ' त्विषी-
मन्तो० ' (ऋ० सं० ६ । ६६ । १०) इत्यत्र ' जुहो
नाशेः ' इत्याशिपदं नैपातिकमपि न निपातवदत्र । ' अग्ने
याहि ' (ऋ० सं० ७ । ९ । ९) ' अत्र ब्रह्मकृद्गणः सर-
स्वती अश्विनो आपो विश्वेदेवा नैपातिकाः । न मरुतः । एषोऽत्र
देवतापदनिर्णयः ।

८-९ अशिपक्षे ' तिस्रो देवीः ' भारती द्युस्थानेत्यादि कथं निरुच्यम् ।
भारतीमरस्वतीडा एता देवता अग्नेर्भिन्नाः । ' आ नो यज्ञं भारती'
इयमाप्रीऋत्क् (निरु० ८ । १३) । अश्विरेव द्युस्थाने भारती मन्व-
मस्थाने मरस्वती पृथिवीस्थाने इडेत्यभिधीयत इति प्रतिममा-
धानं न प्रतिममाधाननामयोग्यम् (१०-११) ।

१७ नराशंसस्थाने किं तनूनपादाप्री प्रयोज्या ।

१८ न्यायविदः = तर्केण निर्णयं कर्त्तव्या मीमांसकाः ।

१९ समनुगंस्यन्ते = समैकमत्येनानु तर्केण निश्चेप्यन्ति ।
' गमेरिट् परस्मैपदेषु ' (पा० ७ । २ । ९८) इत्ययमि-
डागमः परस्मैपद एव भवति ।

अथ नवमोऽध्यायः ।

७७६

१० तेषामपि = द्रव्याणामपि ।

१४ लक्षणं = यद्यत्पृथिव्यायतनं तदत्रान्तर्भाव्यम् । इदं लक्षणमिति
ग्रहीतव्यम् । अथवा । माधारणधर्म इति ।

१७ पुरुषान्तरजन्मा । पुरुषस्थानन्तरं जन्म यस्य ।

१९-२० अश्वमेधो विशिष्टं कर्म । तत्राश्वो मुख्याङ्गम् ।

७७७

२ अश्वस्य स्तोमः स्तुतिः । अश्वस्तोमस्येदं (सूक्तम्) अश्वस्तोमी-
यम् । ' अश्वस्तोमीय एव ' इत्यनेन ' मा नो० ' इत्येव दुर्ग-
स्वीकृतपाठे द्वितीयः खण्डः ।

४ ' अश्वो वोह्ला ' इति खण्डो दुर्गेण न व्याख्यातः

पत्रं

पङ्क्तिः

७७७

४ वोह्लाऽथः सुखं रथमिच्छति । उपमन्त्रिणो हसनां हास्यकारिकां नर्मवाचमिच्छन्ति । शेषः (पुंस्प्रजननं) रोमण्वन्तौ भेदौ (रोमशां योनिम्) इच्छति । मण्डूको वार्वारि इत् (एव) इच्छति । तस्माद्धे इन्द्रो (सोम) इन्द्रार्थं परिस्रव । यास्केन • वोह्ला • पदं त्रिः विधेयं क्रियते ।

६-७ ' सुखं कस्मात्मुहितं खेभ्यः ' (नि० ३ । १३) सुखं = कल्याणम् । कल्याणं = पुण्यम् । सुखं = मुहितं भवति । मुं (मुहितं) + खं = मं (भवति) । अथवा । सुखं = मु (मुहितं) + खं = गं (गम्यति) । • गम्यति ' इदं किं गमे रूपम् ।

७ ' कल्याणं कर्मायं भवति ' (नि० १ । ३)

८ ' हभैता० मृच्छतीति ' कम्पेदं व्याख्यातम् । • हभैता ' दुर्बोधम् ।

९ • मा नो व्याख्यातः ' कुत्र । • मा नः ममस्य दृढत्रः ' अयं मन्त्रः (निरु० ५ । २३ इत्यत्र) । ' मा नोऽहिर्बुद्ध्यो रिपे० ' अयं च (निरु० १० । ४९) इत्यत्र व्याख्यायते । • मा नो मित्रः ० ' अयं मन्त्र इहेव व्याख्यायते नान्यत्र । • मा ना ' इति तृतीयस्वण्डस्य प्रारम्भः । अयं स्वण्डः प्रक्षिप्त इव भाति । नाम्यात्र किमपि प्रयोजनम् । ठ. ड. पुस्तकयोरश्रो वोह्लेति महाराष्ट्रवादिक्पाठ इति लिख्यते । किं त्वयं स्वण्डः छ.त.द. पुस्तकेष्वपि विद्यते ।

१४ • मा नस्त्वं ' इत्यत्र • त्वम् ' इत्यनेन को निर्दिश्यते ।

२२ देवजातस्य = देवेभ्यो जातस्य ।

७७८

१ प्रजापतिर्द्वितीयामाहुतिमशावजुहोत् ।

२ विद्ये = भंग्रामे । ' यजे विद्ये ' इति किकारणो व्यत्यासः ।

४ परिग्या निरुक्त्वा । मा निरुक्त्वा । परिग्यानं = निन्दा (मायणः) ।

९ आयुः = वायुः । वायुशब्दस्याद्यो वकारो लुप्तः । वायुः = व + आयुः । आयुः = अयनः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७७८

६ ऋभुक्षा ऋभौ = उगै । विश्वं = नित्यम् (ट.) ।

८ ' राजेति च ' निरुक्तमूले ' राजेति वा ' (७७७ । १९) ।

१० शकुनिः = शक् + उ (उत्) + निः (नयतेः) । = शक् + उ (उत) + निः (नदतेः) (१२) । = शक् + उ (उत्) + निः (तक्तेः) (१२) । = श(शं) + कुनिः (कः) (१३) । = शक्रोर्नाति (१९) । • शकुनः शकुनिः शकुन्तः शकुन्तिका ' एते शब्दाः शक्धातोः । शक्यते भविष्यं ज्ञातुं येन । अथवा । शक्यते गगनं गन्तुं येन ।

७७९

१-२ वयमाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वा कनिकद्रज्जनुषं प्रब्रुवाण इति मृक्ते जपेत् (आश्र० मृ० ३ । १० । ९) ।

३ नुतिः = विपरिणामः । अयं विपरिणामो भाष्ये (७७८ । २१) न विद्यते ।

४ • जन्म ' (७७८ । २१) • ईर्यति ' (२२) ' कल्याण-मङ्गलः ' (२२-२३) • मा च त्वा ' (२४) इत्यत्र • च ' न व्याख्यातम् । • ईर्यति ' इत्यस्य स्थाने • इर्यति ' ' कल्याण ' इत्यस्य स्थाने • प्रशस्त ' इति दुर्गस्त्रीकृतपाठौ स्याताम् ।

८-९ विश्व्या = सर्वतः । कुतोऽपि ।

९-१० शकुर्नानां नामानि तेषां ध्वन्यनुगेधेन ।

१४ अस्म्येव = गिर्येतेषु ।

१९-२८ म् + अङ्गलं = मङ्गलम् । • अङ्गलमङ्गलवन्मज्जयति पापक-मिति नेरुक्ताः ' इत्येकं वाक्यम् (७७८ । २३-२४) ।

१६ मङ्गलं दधिमध्वक्षतादिभिः क्रियते । • मङ्गवत् ' (ग. च. ज. पाठः) = अङ्गवत् (पाठान्ते २९) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७७९

१७ मङ्गलं = म् (मज्जयति) + अङ्गलम् (अङ्गवत्) । अङ्ग-
वत्माङ्गं मत्पापकं मज्जयति नाशयति । अयं यास्कस्यार्थः ।

२० मामेतद्मङ्गलं गच्छतु ।

२१ अर्थमभ्युत्थितम् = अर्थं साधयितुमुत्थितम् ।

२३-२४ अभिववाशे = न्यवेदयत् ।

७८०

१० गृत्समदनः (पाठान्तरे २७) = गृत्सान्मादयति ।

११ ' इति मा निगदव्याख्याता ' (२) गृत्स इति मेधावि-
नाम गृणातेः स्तुतिकर्मणः ' (३) ' मण्डो मदेर्वा मुदेर्वा ' (६) न व्याख्यातम् ।

१६ मण्डति मण्डने वा मरः । अथवा । मण्डयति वर्षासमयम्
(इति त्रैयाकरणाः) ।

१७ भक्तयः = अलंकरणरूपा रेपाः ।

७८१

३ मानं व्रतं चरितुं शीलं येषां ते ।

६ लुप्तोपमो वाक्यार्थः । ' अपि वोपमार्थे स्यात् ' (७८०।२३-
२४) ' पर्जन्यधीनां ' (२४) न व्याख्यातम् ।

७ उपाकृत्य = उपकरणं वेदपठनार्थं माँङ्गीबन्धनाख्यं संस्कारं
कृत्वा । पवित्रे पाण्योर्थेषां ते ।

७-८ नियतः कालो वेदपठनस्य येषां ते ।

२५ ' इति मा निगदव्याख्याता ' (१५) न व्याख्यातम् ।

७८२

७ प्रतिक्रितवं = कितवे कितवे वर्तमानम् ।

२१-२२ प्रवेपाः = देवने चलन्तः । वृहतः = स्थूलाः । प्रवाते जाताः
(२३) वधृतानाः (२६) पुनः पुनश्चाल्यमानाः । अक्षाः ।
एतानि सर्वाण्यक्षविशेषजानि ।

२२ महतो वृक्षस्य । ' प्रवेपिणो महतो विभेदकस्य ' (११-१२) ।
इति भाष्यम् ।

२५ दुर्गः ' विभीदकस्य वा ' इति विकल्पेनार्थं करोति । यः को-

पत्रं

पङ्क्तिः

७८२

२९ पि वृक्षः स्याद्विभीदको वा । मूले वा नास्ति (११-१२) ।
इरणे = ऋणमोचनाय ।

७८३

१ आस्फुरकं = देवनम् । अयं शब्दः कोशेषु नोपलभ्यते ।
' आस्फारक ' (पाठान्तरे २९) । निर्गतर्णे = अक्षदेवनेन धनं
लभ्यते । तेन चर्णमुक्तो भवति । कुलस्य कृते कृतमृणं पुत्रपौ-
त्रैर्देयं भवति । न तथा देवने कृतम् ।

२ ' अपार्णं वा ' इति न विकल्पः । निर्ऋणम् = अपार्णम् ।
अपार्णं विभीदकवृक्षाय जलं नावश्यकम् ।

३ ' अपरता अम्मात्० ' (७८२ । १३) इति मूलम् । दुर्ग-
पाठेऽस्मान्नास्ति ।

४-५ सोमस्य भक्षो यथा जागृविस्तथा विभीदकः (अक्षाः) ।

६ कोष्ठे भवं कोष्ठ्यं जाड्यम् ।

५-६ द्यूतकारशब्दं श्रुत्वा जागर्ति ।

७ मह्यमचच्छदत् = मां वारं वारमचच्छदद्ब्रचलोभयत् ।

१३ ' इषिका तूलिका रुमे ' (अमरः २ । १० । ३३) ।
इषिका तृणकाण्डं वेतसकाण्डं वा । इषिकया तूलिकया सूचीस-
द्वैस्तैक्ष्णतृणैः । विमुच्यते = त्यज्यते । एवं मुञ्जो मुञ्चते ।
मुञ्जादिषीकास्तृणशलाका निर्गच्छन्ति । एवं स इषीकाभिर्विमु-
च्यते त्यज्यते ।

१४ ' इष इच्छायाम् ' (धा० ६ । ७०) । इष गतिर्हिंसाद-
र्शनेषु ' (धा० १ । ६१२) ।

१५ इतरेषीका = विलीनसुवर्णपरीक्षणार्थमुपयुक्ता शलाका ।
ईषाशब्द इषीकातो भिन्नः ।

१६ ' विभेदनात् ' (७८२ । १६) ' जागरणात् ' (१६)
' प्रशंसत्पेनान्० वेदयन्ते ' (१७-१८) न व्याख्या-
तम् । प्रथमया (१७) ऋचा । परिद्यूनः (१७) =
निर्विण्णः ।

पत्रं पङ्क्तिः

७८३

१७ ग्रावा सोमं हन्ति । तस्माद्धन्तेः । हकारस्य गकारः । हन् = गन् । राव उपजनौ । ग् + रा + व + अन् = ग्रावन् ।

७८४

६ अ + द्रर्णायाः (२५-२६) = विदारयितुमशक्याः ।

७ 'क्षिप्रकारिणः' (२) 'घुष्यतेः' (२) न व्याख्यातम् ।

७-१० आशवः क्षिप्रकारिणः (यास्कः १-२) । आशवः = अश्वीथ (दुर्गः) । यदद्रयः पर्वताः साकमाशवो वाचं वदन्ति तस्मात्तेभ्यो वाचं वदत हे ऋत्विजः । सोमिनश्च यूयमिन्द्राय श्लोकं घोषं भरथ ।

१४ 'नाराशंसः' पाठान्तरे (२८) । निघण्टुषु 'नाराशंसः' । 'कः पुनरेष नाराशंसः' इत्यत्र 'नाराशंसः' इत्यवश्यम् ।

१६ मन्त्रः केवलं नरन्तुत्यर्थः ।

२०-२१ सामान्या स्तुतिर्नास्तीति सत्यम् । किंतु केचिद्राजान एवैकशयेनैकैकशः स्तूयन्ते यथा भावयन्त्यः ।

२३ सर्वेषु पुस्तकेषु 'नाराशंसस्य' । 'नाराशंसस्य' इत्यवश्यम् । तस्य नाराशंसस्य मन्त्रस्यैषा ऋग्भवतीति यास्कस्यार्थः (४) ।

७८५

१२ बालः = बलवर्ती । बले वर्तते = बलिन्यायत्तो भवति । मातापितृभ्यां भर्तव्यो भवति । 'बलं भरं भवति' (नि० ३ । ९) । 'बालो बलवर्ती० प्रतिषेधव्यवहितः' (३-९) 'मनस ईषया' (९-६) 'राज्ञः' (६) न व्याख्यातम् । बा + अलः । बा = अम्बा (अस्मै बालाय) अलं भवति । अ + बलः । अ = अम्बा (अस्मै बालाय) बलं भवति । 'बलवर्ती' (पाठान्तरे २२) = बलेन भर्तव्यः । अ = अविद्यमानं बलं यस्य स अबलः = बालः । 'बाल' इत्यत्र 'बल' इति द्वे अक्षरे प्रतिषेधेनाकारेण व्यवहिते । यथा ब + अ + लः = बालः ।

१४ भावः = आर्जवम् ।

७८६

७ 'तत्' पदं व्यर्थम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७८६

८ भावयव्यस्य स्तुतेर्लाभः । तरय निमित्तम् । पूर्वं प्रकृतो भावयव्यः । भावयव्येन स्तुतिलेब्धा । तरय किं निमित्तम् । यज्ञसंयोगः ।

९ स्तुतिमेतां प्रभरे । सहस्रसवैर्योगाद्भावयव्यो राजा स्तुतिं लभते ।

११ सामान्यं युद्धोपकरणानाम् । स्तुतिर्न केवलं भावयव्यस्य ।

१४ स कस्मात्स्तुतिं लभत इत्युपोद्धातः ।

१५ नाराशंसमन्त्रे नराः स्तूयन्ते यथा भावयव्यः । राजानः केन कारणेन स्तुतिं लभेरन् । यज्ञेन तेषां संयोगस्तेन ।

१७ उपक्रियन्ते = गृह्यन्ते ।

२३ सर्वावस्थातः = सर्वावस्थामु ।

२४ 'स्थाने स्थाने स्थानाधिपतिभागिनी सर्वा स्तुतिः' इत्यन्वयः । स्थानाधिपतीन्भजत इति ।

७८७

३ स्थिरति = स्थिरी भवति (योद्धा) । स्थिरः विपरीतः रस्थिः रथः ।

४ 'रममाणो० रसतेर्वा' (७८६ । ४) न व्याख्यातम् । र = रममाणः । थः = तिष्ठति । रपति शब्दं करोति रसति शब्दं करोतीति रथः ।

१५ ततः = दृढाङ्गत्वात् ।

१७ अविक्रवा अनवखाण्डिता अधिष्ठातारो यस्य । सु = शोभनाः कल्याणा अविक्रवानवखाण्डिताः । वीराः = अधिष्ठातारः ।

१८ प्रतीकारः = हिंसाप्रतिबन्धः ।

२० संस्तम्नुहि = दृढं कुरु । मूले 'संस्तम्भस्व' (११) ।

७८८

४ 'दुन्दुभ्यतेर्वा स्याच्छब्दकर्मणः' (७८७ । १२) न व्याख्यातम् ।

५ निष्कृपितः = सुषिर उन्मत्तः ।

१४ भारद्वाजस्य = भरद्वाजपुत्रस्य गर्गस्य ।

१७ दुन्दुभिः शब्देन पुरुत्रा बहुषु स्थानेषु वर्तते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७८८

१८ विष्टितं (वि + स्थितं) = स्थावरम् । जवत् = जङ्गमम् ।
‘ जगत् ’ इत्यस्य जगदेवार्थः । ‘ विष्टितं स्थावरं जङ्गमं च
यत् ’ इति यास्कः (१०) । ‘ बहुधा ’ (१९) न
व्याख्यातम् । बहुधा = बहुभिः प्रकारैः ।

७८९

११ ‘ बह्वीनां पितेति । इषुधिरभिधेयः । बह्वीनामिषूणां पिता पाल-
यिता । तेन हि ताः पाल्यन्ते । अस्येषुधेर्बहुः पुत्र इषुकलापः,
पुत्रस्थानीयः । स हि तेनेषुकलापेन प्रायते । बहु वा हितं
तदर्थं कुर्वन्तीति । यश्चेषुधिः समना संग्रामानवगत्य ज्ञात्वा
च चिश्चाकृणोति । शब्दानुकरणम् । स हि इषौ निष्क्रम्यमाणे
चिश्चेति शब्दं करोति । स इषुधिर्धानुष्केण पृष्ठे निनद्धो बद्धः
प्रसूतः अनुज्ञातश्च सन्मंकाः । संकाशं दधतेऽस्मिन्योधा इति
संकीर्यन्ते वाऽस्मिन्योधा इति संकाः । शत्रुसंकटं सर्वाः पृतनाश्च
स्फुद्ध (?) निनीय तमाः (?) संग्रामभक्तीः जयति । विवक्षातः
कारकाणि भवन्तीतिपुधेः कर्तृत्वमित्युवटभाष्ये’ (८०) ।

११-१२ ‘ इषुर्द्रव्योः ’ (अमरः २ । ८ । ८७) । द्वयोः = स्त्रीपुं-
सयोः । इषवः कन्याः पुत्राश्च । एवमिषुधिर्बह्वीनां कन्यकानां
पिता बहवश्चास्य (इषुधेः) पुत्राः ।

१४ चिश्चाकृणोति = प्रस्मयते ।

१४-१९ ‘ अवाध्रियमाणः ’ इति छ. त. द. पाठः (२९) । ‘ अप-
ध्रियमाणः ’ इति ग. च. ज. पाठः (२६) । अवाध्रियमाणः =
अधोमुखो ध्रियमाणः । अयं पाठः समीचीनतरः । स्मयः =
आश्चर्यम् (प्रथमेऽर्थे) । हसनम् (द्वितीये) ।

१९ संकटान् = निविडान् ।

२० संपृक्तान् = संपर्केण स्थितान् ।

२०-२१ याः (पृतनाः) अभिलक्ष्य । इषव एव केवलं न त्वन्य-
दस्त्रम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७८९

२१ पताकार्थं = शत्रुपताकाग्रहणाय । आच्छादनार्थं वा ।
' इति व्याख्यातम् ' (<) न व्याख्यातम् । व्याख्यातं =
स्पष्टम् ।

२२ ' निनद्धः ' (<) इत्यस्य स्थाने दुर्गवृत्तौ ' निबद्धः '
इति पाठः ।

७९०

१ ' गोध्रे तले ज्याघातवारणे ' (अमरः २ । ८ । ८४) ।
कलापः = तूणीर. (अमरः ३ । ३ । १२) । कलापि-
भिरङ्गुलित्राणार्थं गृहीतं चर्मपट्टकम् । ' कलापिपट्टकम् '
(२४) अत्र ' पिः ' ह्रस्वो नतु दीर्घः ।

७९०

१२ ' भोगः० अहेश्च फणकाययोः ' (अमरः ३ । ३ । २३) ।

' अहिरिवेति । हस्तघ्नः स्तूयते त्रिष्टुभा । हस्ते स्थितो हन्ति
हस्तघ्नो घटकः (?) प्रकोष्ठादित्राणं वा योऽहिः सर्प इव भोगैः
शरीरावयवैर्बाहुं पर्येति पारिवेष्टयति । किंभूतः । ज्याया
हेतिमिषुं पारिवाधमानो बाणान् रक्षन्स हस्तघ्नो विश्वानि सर्वाणि
वयुनानि प्रज्ञानानि विद्वान्प्रजानन्परिदृष्टकारी पुमान्शूरोऽस्त्रीबः
पुमांसमस्त्रीबं विश्वतः परिषात्वित्युवटभाष्ये ' (ट०) ।

१५ ज्याया मौर्व्या वध आघातः ।

१६ ' सर्वाणि प्रज्ञानानि प्रजानन्पुमान्पुरुमना भवति ' (८-९)
न व्याख्यातम् । सर्वज्ञः पुरुषः पुमान्पुरुमना उदारचित्तो
भवति ।

१७-१८ अमनस्कां (स्वपतौ यस्या मनो नास्ति) स्त्रियमपेक्ष्य पुरुषे
तत्पतौ बहुतरमुदारं मनः । उदारमनाः खलु स पातिर्योऽमन-
स्कामपि भार्या न त्यजति । इदं पुरुमना इति निर्वचने । स्त्रिय-
मपेक्ष्येत्यादि न कस्यचिन्मूलस्यार्थः ।

१८ ' पुंस अभिवर्धने ' (धा० १० । १०४) । यः पुंसते पौरुषं
कुरुते स पुमान् ।

१८-१९ यस्य पौरुषस्य पौंस्यं (बलं) इति नाम । यत्पौरुषं पौंस्य-

पत्रं

पङ्क्तिः

७९०

१८-१९ मित्यभिधीयते । पुमांसम् । च. पुस्तके ' पुरुमांसम् ' (२७) ।
पुरुमांसं = पीनम् ।

२१ ' अम्भश्नुवते कर्माणि ' (निरु० ३ । ९) इत्यभिधानतः ।
' अङ्गुलयः ' इत्याभिधेयतः । अ ' अभीशवः ' = रज्जवो
रश्मयः

७९१

१२ उपविष्टो नयति । अत्र ' क ' पदं प्राग्वर्तमानं ' नयति ' ।
पदमपेक्षते ।

१६ निघण्टुषु ' अभाशवः ' इत्यस्य रज्ज्वर्थो न दीयते ।

१६-१७ मनोऽनुयच्छन्ति = अश्वस्य मनसो नियन्त्रणं कुर्वन्ति ।

१७ पनायत हे द्रष्टारः । विपरिणामोऽनवश्यः ।

२० ' धन्वन्त्यस्मादिषवः ' (६) न व्याख्यातम् ।

७९२

९ ' समे क्ष्मांशे रणेऽप्याजिः ' (अमरः ३ । ३ । ३२) ।
आजि रणं जयेत् । ' आजेवनम् अजेवनम् आजवनम् ' (२६)
इत्येतेषां कोऽर्थः ।

१३ अपकामं शत्रोः । शत्रोः कामं धनुरपकृणोतु नाशयतु ।

१५ प्रदिशः = प्रकृष्टा मुख्या दिशः ।

२० ' ज्या वयोहानौ ' (धा० ९ । २७) । जिनाति = वृद्धो
भवति न जयति । पुनः पुनः कर्षणेन ज्या कर्षिता घृष्टा दीर्णा
भवति । ' प्रज्यावयतीषूनिति वा ' (४) न व्याख्यातम् ।

२२ तस्या ज्यायाः । तस्य (२८) धनुर्गुणस्य । ' तस्याः तस्य ' ।
इति द्वौ पाठौ ।

७९३

११ कर्णं प्रत्यागनीगन्ति ।

१५ आत्मनो मध्यामिषुं निनाय ।

१७ आत्मानं प्रत्याकृष्यमाणा ।

२० शत्रूणामन्तं यन्ती मर्वाञ्छत्रून्नाशयन्ती ।

७९४

११ सुपर्णं = गार्ध्रं = गृध्रस्येदम् । सुपर्णं सौपर्णं गार्ध्रं पक्षं य-
इषुर्वस्ते पारिधत्ते । वाजान्पक्षानभिप्रेत्य (३) ऋचि सुपर्णं

पत्रं

पङ्क्तिः

७९४

११ मेकवचनमेव । इषुशब्दोऽत्र स्त्रीलिङ्गः (१) । 'पक्षो वाजः' (अमरः २ । ८ । ८७) । 'वाजा इषवः' इति दुर्ग-
कृतोऽर्थः प्रामादिकः । प्रथमार्धस्य विवरणं च । दुर्गमत इषुशब्दः
पुंलिङ्ग एव । 'सुपर्ण वस्ते । द्वाभ्यां त्रिष्टुबनुष्टुभ्यामिषुं
स्तौति । या इषुः सुपर्ण वस्ते परिधत्ते । सुपर्णः पक्षी । तस्य
विकारः सौपर्णमिति भवति । तत्र कृत्स्नवन्निगमः । पक्षमाभि-
प्रेत्यास्या इपोर्द्धगो दन्तः फलम् । मृगो मृगयतेः । स हि
वेध्यं मृगयते । या च गोभिर्गोविकारैः श्लेष्मैः स्नायुभिः
संनद्धा प्रसूता धनुष्मता प्रचोदिता सती पतति शत्रुबलं प्रति ।
या इषुर्यत्र नराः संद्रवन्ति विद्रवन्ति च तवास्मभ्यमिषवः ।
इषुरिति संततिः । शर्म शरणं यंसन् यच्छन्तु ददतु । यंसादि-
ति छेदो रूपम् । उवटभाष्यम्' (ट०) ।

११-१२ अत्र पशुपक्षिनामानि तदवयवानां स्थाने प्रयुज्यन्ते । सुपर्णः
= गृध्रो गरुत्मान् । सुपर्णं सौपर्णं गार्ध्रं पक्षम् । मृगः =
हस्ती । मृगः = मार्गः = हास्तदन्तः । गोभिः = गवामव-
यवैः ।

१३ फलं = बाणाग्रम् । अमार्गेषु तु = यदि फलानि न मृगाव-
यवमयानि । 'व्यध ताडने' (४।७९) इत्यस्मादध्यधनम् ।

१३-१४ वेद्धव्यं भागं मृगयतीति मृगो दन्तः ।

१५ अथ स्नाव च श्लेष्मा च 'गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता'
(निरु० २ । ९) ।

१६ अश्वमजति चोदयतीत्यश्व्राजनी ।

२२-२३ यस्माच्चर्मणोऽपकृष्टा भवति तस्मादण्वी ।

७९५

१३ 'आजङ्घन्ति । कशास्तुतिः । अनुष्टुप् । एषामश्वानां सानु
सानूनि समुच्छ्रितानि मांसोपचितान्यङ्गानि आजङ्घन्ति
आघ्नन्ति अश्ववाराः । जघनान् जघनानि चोपजिघ्रते उपनिघ्नन्ति ।
हे अश्व्राजनि अश्वानामश्व्राजनि । अजनिः क्षेपणी च । क्षेपणि

पत्रं

७९९

पङ्क्तिः

१३ तस्याः संबोधनम् । हे अध्वानि हे कशे प्रचेतसः परिदृष्टकारिणः प्रज्ञान् अध्वान् समत्सु संग्रामेषु चोदय प्रेरय । जयायेति शेषः । उवटभाष्ये ' (ट.) । आद्योऽर्धर्चः परोक्षः । उत्तरः प्रत्यक्षः । जिघ्रमाना इति घनघातोः शानाचि रूपम् । शत्रन्त-मृक्संहितायां नोपलभ्यते । ' एको वृत्रा चरासि जिघ्रमानः ' (ऋ० सं० ३ । ३० । ४) ।

१४ ' आघ्नति ' (६) ' उपघ्नति ' (७) दुर्गेण न पठितम् । तथा ' जङ्घन्यतेः ' (७९६ । ३) । सायणस्वीकृत-निरुक्तपाठे ' आघ्नन्ति उपघ्नन्ति ' । यया त्वया सादिन अध्वारोहा वा एषामश्वानां सानूनि आघ्नन्ति जघनांश्चोपघ्नन्ति सा त्वं कशे इत्यादि. सायणकृतोऽर्थः । किंतु ' जङ्घन्ति ' इदं न बहुवचनम् । हनो यङ्लुकि ' जङ्घति ' इति बहुवचनान्तं रूपं स्यात् । ऋक्संहितायां जिघ्रसे जिघ्रते जिघ्रन्ते जिघ्रमान इति रूपाणि वर्तन्ते । तानि हनसदृशस्य घनघातो रूपाणि । तेन जिघ्रते इति उत्तमपुरुषैकवचनम् । ' अभीमिन्द्रो०० जिघ्रते ' (ऋ० सं० १ । १४ । १०) । ' इन्द्रो वृत्रम्य सानु वज्रेणावजिघ्रते ' (ऋ० सं० १।८० । ९) । ' एको वृत्राणि जिघ्रभे । इन्द्रो०० ' (ऋ० सं० ८ । १९ । ३) । ' उजिघ्रन्ते० पर्वतान्० मरुतः ' (ऋ० सं० १।६४ । ११) । एवं ' जिघ्रते ' एकवचनमेव । ' जङ्घन्ति ' तथैव । कशा एषां सानु आजङ्घन्ति जघनांश्च उपजिघ्रते । यास्कसायणदुर्गकृतोऽर्थः प्रामादिकः ।

१५ मरणानि = चलानि ।

१७ रथ्या = रथयुक्ता अश्वाः । एते रथस्य पुरस्ताद्घूर्तन्ते । एषां पश्चात्पृष्ठ्याः । अभिहंघ्नन्ति (च. पाठः ३०) = अभिहन्ति + अभिघ्नन्ति ।

१४ ' उरुकम् ' इति ग. च. ज. पाठः (२३) प्रामादिको गम्मान्

पत्रं

पङ्क्तिः

७९६

४ ' करोतेरुत्तरपदम् ' (७) इत्युच्यते । उरु कमत्रं यस्मात्तदुंरु-
कम् । उरु = बह्वन्नम् । करं = करोति (९) ।

६ ऊर्जः = अन्नस्य । ऊर्जरम् = ऊर्जरम् = ऊर्क् + करम् ।

९ ' उरु मे करादिति तस्मादुरुकरमुरुकरं ह वै तदुल्लूखलमित्याच-
क्षते परोक्षम् ' (शत० ब्रा० ७ । ९ । १ । २२) ।
यास्कगृहीतपाठः कुत्रत्यः । दुर्गस्वीकृतपाठो यास्कपाठाद्भि-
न्नः । तथा शतपथपाठादपि केनचिदंशेन

१३ ' उरुकरम् ' इत्यत्र गुणम्य (= अर्थस्य) अभिधानं शब्द-
स्थाक्षराणां व्यत्यासेन न व्यवहितं परोक्षीकृतम् ।

१४ ' उल्लूखलम् ' इत्यत्राक्षराणां व्यत्यासेन गुणोऽर्थो व्यवहितो
न प्रत्यक्षः ।

७९७

१ (उल्लूखलं) ' वैष्णव्या मादयति वैष्णवं हुल्लूखलं भवति '
(मैत्रा० सं० ३ । २ । ७) ।

१-२ ' यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे उल्लूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद्
जयतामिव दुन्दुभिः ' इति दक्षिणस्यां श्रेण्यामुल्लूखलं मुसलं
प्रयुनक्ति (सत्या० श्रौ० ११ । १९) ।

२ ' तमेताभिश्चतसृभिरभिसुपाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे इति '
(ऐ० ब्रा० ३३ । ९) ।

२-३ प्रादेशमात्रमुल्लूखलं चयने उपधीयतेऽनेन मन्त्रेणाभिमन्त्र्य क-
स्मिञ्श्रौतसूत्र एतदुपलभ्येत ।

५ बहून्यन्नानि धान्यान्युल्लूखले कुट्यन्त । स तथा सस्कारः ।
तस्मिन्संस्कार उल्लूखलस्य गम्भीरो ध्वनिः ।

७ गम्भीरस्वनो दुन्दुभिर्जयस्य पूर्वरूपं विह्वम् ।

१९ वृष+भः । भं + वृषा = प्रजां वर्षति । वृष = वृष = बृहति ।
भम् = अति । ' वृहू उद्यमने ' (धा० ६ । ६६) ।
वृहू इत्यन्ये । अतिबृहति = अतिशयेनोद्यच्छति । किम् ।

पत्रं
१९७

पङ्क्तिः

१९ रेतः । कुत्र वडवायोर्नौ । तस्मात्सर्वो वृषकर्मा (वृषणकर्मैवे कर्म यस्य सः) वृषभः । कस्मात् । वर्षणात् । इदं मूलं दुर्बोधम् । ' वृषकर्मा वृषभः ' इत्येव सुवचम् [' अतिवृहति रेत इति वा ' अस्य ' तद्वृषकर्मा०० ' इत्यादिना कः संबन्धः । अति + वृहति (महत्यां योनौ) रेतः यस्य सः । बृह = वृष । भं = रेतः । वृषभः = अश्वो वृषकर्मणाऽ- अश्वो वृषभः । तैनेव वृषकर्मणा नृगोरपि वृषभः । दुर्गमते वृषः = अश्वः । वृषभः = नृगौः (२९) ।

१८-१९ अश्वस्य वर्षकर्म कट्टिशम् । रेतोवर्षरूपम् ।

१९ युक्त उद्यक्तो गोगोर्नौ रेतः सेक्तुम् । वृषभ इति शब्दो नतु वृषः । दुर्गमते ' वृषः कस्मात् ' इति प्रश्नः । अन्यथा भकार उपजनः कथं स्यान्नृगोरथे । अश्वो वृषा = अश्ववृषा । ' वृष- णात् ' इति क. ख. ग. च. ज. पाठः । ' वर्षणात् ' इति पाठान्तरम् (२८) । मूले इन्द्रोऽग्निर्वा वृषभः । कस्मात् । यस्मात्तौ प्रजां प्रजावृद्धय आवश्यकं जलं वर्षतः ।

१९८

११ व्याख्यातं (३) = स्पष्टम् ।

१२ मन्त्रस्थकवाक्यतया व्याख्या कर्तव्या ।

१४ आजि. = स्पष्टया पद्यायनं तदर्थं भूमिर्वा । ' आजयनस्याऽऽ- जवनस्य वेति वा ' (४) ' भवतिरत्तिकर्मा ' (९) ' प्रधनं संग्रामनाम प्रकीर्णान्यस्मिन्धनानि भवन्ति ' (७) न व्याख्यातम् । आजिगजयनः । आ + जि । मर्यादी- कृतायां नस्यां भूमौ जवनं जवो वेग इष्टो जयार्थम् । दुर्गकृतं विवरणं यास्ककृताद्विवरणाद्विज्ञम् ।

१५ ' युक्त्वा ग्यन्त युक्त्वा ग्यन्त ' इति च. पाठः (२६) । ' ग्यन्त ' किमिदं रूपम् । परस्मैपदं ' रयत ' । किंतु ' ग्य गतो ' आत्मनेपदम् । ' ग्यध्वम् ' इति शुद्धं रूपम् । हे जना युक्त्वा अवहिता एनं प्रति रयध्वं गच्छत इत्यारदन्त उपयन्ति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

७९८

१९-१६ न्यक्रन्दद्गुपयन्त इति ऋक् । ' न्यक्रन्दयन्त उपयन्ति ' इति दुर्गकृतो विपारिणामः किमर्थः । तथैव ' अमेहयन् ' इत्यस्य ' अमेहयन्तः ' ' मेहयन्तः ' वा (२७) । ' निक्रन्दयन्तः ' इत्यवश्यम् । अकारः किमर्थः ।

१६ ' मेहयन्तः ' पाठान्तरम् । ' अमेहयन्तः ' अत्राकारोऽ-
नवश्यः ।

१७ भविष्यति । ' भाविष्यति ' इति ग. च. ज. पाठो दुर्बोधः
(२८) । ' धाविष्यति ' इति पाठः स्यात् । मृत्रकरणानन्तरं
लघु मुधेन च धाविष्यति । ' भविष्यति ' पाठे न किमपि
स्वारम्यम्

१८ गावो विद्वन्ते येषां ते गोमिनः । सुभगम् । ' सुनगम् ' इति
ग. च. ज. पाठो दुर्बोधः (२८) ।

१९ तद्वा सुभगं वा महत्त्वरम् । ' मृभर्वा वृषभाः ' (ऋ० मं० १० ।
९, ४ । ३) मृभर्वा यवमारवादिनः ।

२१ ' वाहिका ' शब्दः कोशेषु नोपलभ्यते । वाहिका = गवां
बलेन नयनमित्यर्थः स्यात् ।

७९९

२ मूलं सर्वेषु पुस्तकेषु ' द्रुममयो ' (७९८ । ७) न
' द्रुमयः ' । ' वृषभं च ' (७९८ । ८) ' संग्रामे व्यवहृत्य '
(८) न व्याख्यातम् । व्यवहृत्य = युद्धव्यापारं कृत्वा ।

२१ अवसितं आजौ मरणं यस्य सः । ' अवसिताजिसरणं मुद्गरम् '
इत्यस्य केनान्वयः । अथवा । अवसितं आजौ सरणं यस्मि-
न्कर्मणि यथा न्यात्तथा । एवं ' जितायाम् ' इत्यस्य क्रिया-
विशेषणं स्यात् । अवसिताजिसरणं जितायाम् । ' जिताया०
पविद्धं मुद्गरम् ' इदं प्रक्षिप्तमिव भाति ।

८००

२ ' आद्यन्ते ' इति पाठान्तरम् (२६) । कोऽर्थः । ' आज्य-
न्तोऽपि काष्ठोच्यते ' (निरु० २ । १९) ।

३ अपविद्धः = त्यक्तः । उपदिशन् = दर्शयन् । अवसिताजि-
सरणमत एवाऽऽज्यन्त अपविद्धं मुद्गरमुपदिशन् । ' अवसित०

पत्रं

पङ्क्तिः

८००

३ मुद्गरः ' (७९९ । २१) इदमस्थाने प्रमादाह्लिखितम् ।
 'स' (२) इति पदे सति ' असौ ' इत्यस्य किं प्रयोजनम् ।
 'असौ (राजा) अज्ञ इति तम् ' मूलपाठः स्यात् । अथवा ।
 ' सावज्ञम् ' (अवज्ञया) इति पाठः स्यात् । तस्मिन्नाज्यन्ते ।
 तस्मिन्पदं निरर्थकम् । अथवा । तस्मिन्नाज्यन्त आजौ ।

४ तस्मै प्रत्याचक्षे = तस्य प्रत्याख्यानं निर्भत्सनमकरोत् ।

९ ' द्रुघणः ' अत्र कश्चित्पशुर्द्रुघणतुल्यो बलेन । न मुद्गरो
 यथा दुर्गमते ।

' मुद्गलस्य हृता गावश्चोरैस्त्यक्त्वा जरद्भवम् ।

स शिष्टं शकटे कृत्वा गत्वैक ऋजुराहवम् ॥

द्रुघणं युयुजेऽन्यत्र चोरमार्गानुसारकः ।

द्रुघणं चाग्रतः क्षिप्त्वा चोरेभ्यो जगृहे स्वगाः ' (सायणभाष्ये) ।

' आज्ञावनेन भार्म्यश्च इन्द्रासोमौ तु मुद्गलः ।

अजयद्वृषभं युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघणं रथे ॥

युद्धचन्संख्ये जयं प्रेप्सुरैन्द्रोऽप्रतिरथो जगौ ' (बृहद्दे० ८ ।

१२ - १३) । आजेरन्तः । अन्तस्य को मध्यः । 'आज्यन्तः=

आजिः ' इत्यर्थे भवेत् ।

७ घृतनानां शत्रुसेनानामजनात्पराचोदनात् । ' घृतनानां जय-
 नात् ' इति समीचीना व्युत्पत्तिः ।

८ ऋक्शाग्वायां घृतना = शत्रुसेना । घृतना जिगाय । घृतना-
 जयो यत्र तत्र स्तूयते । घृतनाज्यं = शत्रुजयः । घृतनाशब्दो
 न मनुष्यवाची ।

१० उत्तरपदविषय एव विकल्पः । ते = मनुष्याः । दुर्गविवरणं
 प्रामादिकम् । मुद्ग + लः = मुद्गवान् ।

१४ मदनं गिलति । तस्मान्मदनादपि मुन्दरतरः ।

८०१

१२ ' तवतेर्वृद्धिकर्मणः ' (१) दुर्गेण विवरणार्थं न पठितम् ।

' वा ' पदं (२४) किमर्थम् । ' तविषी ' पदं (निरु०

२ । २४) इत्यत्र किं न व्युत्पादितम् । किमर्थमत्र ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८०२

१० परुष्णि आ इति पदपाठः । यास्कमतेऽपि (८०१ । १८) ।
दुर्गमते ' परुष्ण्या ' इत्येकं पदम् । ' आसेवध्वम् ' इत्यत्र
' आ ' उपसर्गो दुर्गमते कुत आगतः ।

११ दुर्गमते ' आर्जाकीया ' एव ' मरुद्वृधा ' । किंतु ते भिन्ने ।
हे मरुद्वृधे असिक्त्रिया सह । हे आर्जाकीये वितरतया सुषो-
मया च सह । यास्ककृतोऽर्थः समीचीनः (८०१ । १९) ।

१६ प्रविद्युतं = प्रक्षेपेण मित्तम् । कृष्णजलत्वादन्याभ्यो भिन्ना यमुना ।
अत्र यकारान्तित्वात् ' यु मिश्रणे ' (धा० २१७) इति धातुः ।
स प्रपूर्वः स्यात्प्रविपूर्वो वा । गङ्गाद्याभिर्नदीभिर्युता भवति ।
अथवा । कृष्णजलत्वादन्याभ्यो वियुता भवति । ' मुना ' इत्यक्षरद्वयस्य कोऽर्थः का च व्युत्पत्तिः । गच्छत्यर्थः कथं
ताभ्यामुद्भाव्यते । ' प्रयुती गच्छतीति वा ' (८०१ । २१)
इत्यत्र ' वा ' ' ऋजीकप्रभवा वा ' (३) इत्यत्र ' वा ' दुर्गेण न पठिनः (८०३ । १२) ।

२१ ' यद्भार्गवो होता भवति श्रायन्तीयं ब्रह्मसामं सारस्वतीरापरत-
देवेन्द्रियं वीर्यं तेज आप्नोति वाचा वा एतमभिषिञ्चन्ति यम-
भिषिञ्चन्ति वाक्सरस्वती सारस्वतीरापो यत्सारस्वतीभिः सूयते
यावत्येव वाक्तया सूयते ' (मैत्रा० सं० ४ । ३ । ९) ।
सरस्वत्या अद्भिरभिषेकेण राजेन्द्रियं वीर्यं तेज आप्नोति ।
अर्थवादः = इयं सरस्वत्या अपां स्तुतिः । स्तुत्यर्थमेवेयं कथा ।

२३ ' सरस्वतीं तृतीयम् ' इति मैत्रायणीसंहितापाठः । तृतीयं
सरस्वतीं प्राविशत् । स एव शुद्धः पाठः ।

२४ शु + द्राविणी । अत्र ' तु ' व्यर्थम् । अथवा । शु = आशु ।
तु = तुन्ना । द्री = द्राविणी ।

८०३

२ कुटिलानि = कुटिला वक्रा गतयः । ' पर्ववती भास्वती कुटिल० ' इति महाराष्ट्रीयपाठः (८०१ । ३०) । नायं दुर्गसमत इति तेनापठनाद्भाति ।

४-९ बलदेवः सितो वासुदेवोऽसितः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८०३

- ६ यद्यपि सर्वा नद्यो मरुद्वृथास्तथाऽप्येकैव मरुद्वृथेत्यभिधीयते ।
दुर्गमते ' मरुद्वृथे ' इति सर्वासां विशेषणम् ।
- ८ वितस्ता विदग्धा इति पदे । अथवा । वितस्ताऽविदग्धा इति ।
' तसु उपक्षये ' (धा ४ । १०६) । वि + तस्ता =
विक्षीणा विदग्धा । ग्रीष्मे माऽतिक्षीणा भवेत् । अविदग्धा
इति पदेऽकारः कुत्रत्यः । वितस्तपा सदानीरा इत्यत्र किं
प्रमाणम् । यागकाले ' तसु वृद्धां ' स्यात् । वि + तस्ता =
विवृद्धा । महती दूरे अस्याः कृते । विस्तीर्णयं नदी ।
- ९ विदग्धो माथथोऽग्निः वैश्वानरं मुषे वभार । अग्निर्मुषान्निष्पद्ये
तेति भोत्या एतः एतः पृच्छ्यमानाऽपि न किञ्चिदुवाच । ' तं
त्वा वृत्तस्त्रवीमहे ' इत्यृग्भागश्रवणादाग्निवैश्वानरो मुषादुज्ज-
ज्वाल । तं न शशाक शारयितुम् । सोऽभ्य मुषान्निष्पदे इमां
पृथिवीं च प्राप । मग्न्वतीमारभ्य प्राङ्दहन्नभीयाय । स
इमाः सर्वा नदीरतिददाह नतु सदानीगम् । ब्राह्मणास्तां न
तरन्त्यनतिदग्धऽग्निना वैश्वानरणेति (शत० ब्रा० १ । ४ ।
३ । १०-१४) ।
- १० महाकुला महती दूरे कृते यस्याः सा । महाकुला (२९)
महती चामो आकुला च । ' महाकुला ' इति समीचीनः पाठः ।
- १२ तद्धितेन = तद्धितवृत्त्या । ' ऋजूकप्रभवा ' इति ड. घ. ठ.
ड. पाठः । ' ऋजूक० ' इति थ. पाठः (८०२ । २८) ।
वृत्तां मेवेषु पुस्तकेषु ' ऋनीकप्रभवा ' ।
- १४ ' विप्रापणाद्वा ' इदं ' विपाशनाद्वा ' इत्यस्यानन्तरं मूले
(८०२ । ४) । दुर्गवृत्तौ ' उरुंजिरा ' इत्यस्यानन्तरं
पठ्यते (८०३ । १८) ।
- १८ उरुंजिरा = उरुमपि गंगं नग्यति । उरुजलेति दुर्गः ।
- १९ शोभनाः सोमा यस्यास्मिन्ने सा ।
- २१ स्यन्दते = गच्छति ।

- पत्र
८०४ ७ आप आपयिष्य इति दुर्गस्य न यास्कस्य । तदर्थमेव ' याः ता. ' इति दुर्गकृतोऽन्वयः (<) ।
- १० ' भोजनाय च ' चपदं किमर्थम् ।
- ११-१८ ' एता रोगं धयन्ति ' इति कर्तारि कारके । ' रुग्णा एना धयन्ति ' इति कर्मणि । ' ओषं धयन्ति ' इति छ. त. द. पाठः (२३) । ' ओषधयन्ति ' इति ग. च. ज. पाठे (२६) अनुस्वारः प्रमादाद्गणितः स्यात् । ओषं दाहं धयन्ति । ' उपति ' इति ग. च. ज. पाठः (२७) इदं ग्रामादिकम् । ओषं दोषं धयन्ति । अत्र दृक्कारप्रक्षेपः ।
- ८०५ ८-१० निरुक्तमूले ऋक्पाठो न यजुःपाठः । यजुःशाखासु ' या ओषधयः प्रथमजाः ' इति पाठः । ' मनै ' इत्यस्य स्थाने ' मन्वे ' इति च । यजुःशाखाया ऋगग्निचयने विनियुज्यते । ऋक्शाखाया यजमानस्य ज्वराद्युपतापशान्त्यर्थम् (आश्व० श्रौ० ६ । ९.) ।
- १४ जीविनं हेतुः प्रयोजनमस्य तर्जीविनहेतु (अन्नम्) । अन्नाभावे स्थितिर्जीविनं नारतीत्यस्मात्कारणात् । देवानां जन्माऽऽपेक्षिकमन्नव्यवृत्तिवात् ।
- २१ धामशब्दस्य त्रयोऽर्थाः ।
- २२ ' महाशानं पुरुषस्य मर्गणाम् ' (निरु० १४ । ६) । ' सप्तोत्तरं मर्मशानम् ' (गर्भोपनिषत्) ।
- ८०७ १८ परार्चाव नश्यति = अरण्ये प्रवसते जनान्यारण्यमपसरतीति भाति । तेन मनसि भीरुत्वद्यते ।
- १९ यथा जना ग्रामवाटे पृच्छन्ति तथा ।
- २० भारिव = भीमदृशो मनोविकारः । विन्दीती३ (९) । प्लुतः प्रश्ने ।
- ८०८ १ परिमयुरं पर्याप्तम् । अत्र परिः सर्वतोभावे नेपथ्ये ।
- ५ आशेषमग्न्यधिष्ठितं सर्वं वस्तुजातं प्रकाशम् । श्रद्धया सर्वं प्रकाशं न किञ्चिदज्ञेयम् । एवं श्रद्धा = अग्निः ।

पत्रं पङ्क्तिः

८०८

२१ • प्रधानाङ्गे ' (११) न पठितम् ।

८०९

१ शिरः श्रद्धारूपम् ।

१३-१४ • भौममेककपालं यस्य हिरण्यं नश्येद्यो वा हिरण्यं विन्देत् ।
अशिर्ना अग्ने हिरण्यमिन्दत् । अस्यां वै स तदविन्दत् ' (मंत्रा० सं० २ । २ । ७) । • कण्टकः कन्तपो वा कृन्त-
तेर्वा ' (८-९) न व्याख्यातम् । • स्याद्गतिकर्मणः ' (९)
न पठितम् ।

८१०

१३ • प्रज्ञानानि ' (७) न व्याख्यातम् ।

१८ शोकैः = ज्वालाभिर्गर्हः । • शुच ज्वलने ' वेदे ।

८११

६ • इति मा निगदव्याख्याता ' न व्याख्यातम् (२) ।

८ असाधारण्येन = न सर्वाः किंतु विशिष्टा देवताः ।

८-११ ' इन्द्राणीं च० मध्यमा ' इति प्रतिपक्षः । • नैतदुपपद्यते ' (११-१३) । इति दुर्गकृतं समर्थनम् । नेदं समीचीनं समर्थनं यस्मादत्र तिस्रो देवता आहूयन्ते ।

११ मध्यमा = इन्द्राणी । इदमपि न समीचीनं समर्थनं यस्माद्-
ज्ञायया एतदुदाहरणं भाष्यकारमतेन ।

८१२

१ अश्वादय एतस्मिन्नेव खण्डे समाम्नाताः । अश्वादिः पूर्वो वर्गः ।

४ द्वित्वे नियमार्थं = द्विवचनयुक्ता ये शब्दास्ते अष्टावेवेति नियमार्थम् ।

७-८ मित्रावरुणावशीपोमाविन्द्राशी इत्यन्यान्यपि द्वंद्वानि सन्ति ।
तान्यत्र किं न समाम्नातानि ।

१० केवलयोः = एकैकयोः । अस्मात्प्रकरणादन्यत्रापि ।

१३ उपमः कालमध्ये समाम्नातम् । उपःप्रभृतीनामुपसा सह
समाम्नातं यस्मात्तस्मात्तेषां प्राय एक एव कालः । • उपसः
कालमध्ये ' इदमपूर्णं वाक्यम् । नायं मूलपाठो भवेत् ।

१३-१४ पृथिवीस्थानद्युस्थानदेवतानामत्र समाम्नातानेन महान्संकरः स्यात् ।

पत्रं

परुक्तिः

८१२

१४ शुनो वायुर्मध्यमस्थानीयः । सीर आदित्यो द्युस्थानीयः । यदि द्वंद्वसामान्यं मित्रावरुणादीनां समाम्नानेऽहेतुस्तर्हि शुनासीरसमाम्नाने तत्कथं हेतुर्भवेत् ।

१५ तेनेमां पृथिवीमुपासिञ्चतम् । एवं वाग्वादित्यौ पृथिवीं सेवेते तस्मात्तौ पृथिव्यर्थौ । पृथिवीसंभोगायोपयुक्तौ । 'पृथिव्या वाग्वादित्याभ्यां संभोगः' (निरु० ७ । २) ।

१६-१७ 'उलूखलमुसले हविर्धाने द्यावापृथिवी' अयं क्रमः । किंतु द्यावापृथिव्यौ देवतात्वात्प्रथमं समाम्नातव्ये ।

१९ अवचनम् = अहेतुः । एता देवता अत एव प्रथमं समाम्नातव्या इति न वक्तव्यम् । नायं समर्थो हेतुः ।

२० निर्भत उपचारो लक्षणावृत्तिर्गौणीवृत्तिर्यस्याम् । उलूखलमुसल्योः पृथिव्यायतनमिति मुख्या प्रसिद्धिर्न गौणी । इयं प्रसिद्धिः प्रचुरा बहुला ।

८१३

७ संभक्ततमे = संभक्तृते । एते अन्नं संस्कुरुतः कण्डनेन । तत्संस्करणं भक्षणमिव

८१४

२ 'आ वामुपस्थमद्रुहेति प्राचीनवंशं हविर्धानं मिनोति' (मान० श्रौ० २ । २ । २ । २६) । 'आ वामुपस्थमद्रुहेति य एव देवा यज्ञियास्तान् हविर्धाना आसादयति' (मैत्रा० सं० ३ । ८ । ७) । 'अनूच्यमानामु वै सामिधेनीषु हविरासादयन्ति । तस्मात्प्रवर्त्यमानयोर्होताऽन्वाह' (मैत्रा० सं० ३ । ८ । ७) ।

४-५ 'अद्रोग्धव्ये इति वा' (८१३ । १७) । अत्र 'अद्रोग्धव्या देवाः' इत्यवश्यम् । तदनन्तरम् 'अद्रोग्धव्ये इति वा' समीचीनं स्यात् । 'इति वा' दुर्गस्वीकृतपाठे नाऽऽसीत् ।

७ 'पृथिवी व्याख्याता' (निरु० १ । १४) । 'द्यौः' न कुत्रापि व्याख्याता । 'द्यावापृथिवी' इति द्वंद्वमपि न कुत्रापि व्याख्यातम् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८१९ ११ मेघानां वोपस्थानिर्झरात् ।
 १२ ' उशत्यौ उशन्त्यौ ' द्वावपि पाठौ शुद्धौ ।
 १३ वि + सिते (बद्धे) = विमुक्ते । ' षिञ्बन्धने ' (धा० ९ । ६) । ' साहिभ्यो ' ग. च. ज. पाठो लेखकप्रमादात् । सादिभ्योऽश्वारोहेभ्यो वा विमुक्ते । ' विमुक्ते इति वा ' (४) इत्यत्र ' वा ' ' हासतिः स्पर्धायां ' (४-९) ' पयसा ' (६) न व्याख्यातम् ।
 १३-१४ एकस्मिन्कस्मिंश्चिद्विभागे विशिष्टस्थाने वा युक्ते । वि = विभागे + षण्णे = युक्ते । युगादौ वा युक्ते ।
 १४ ' हर्षति ' पाणिनीयकाले । ' हर्षते ' यास्ककाले स्यात् । ' हृषु अलीके ' भौवादिः पाणिनीयकाले । स धातुर्यास्ककाले हर्षे स्यात् ।
 १५ ' विपाट्टुतुद्यौ ' इत्यस्य स्थाने ' विराड्विमुक्ते ' (२७) इति ग. च. ज. पाठो दुर्बोधः । ' शुभ्रे शोभने कर्त्वाण्यौ वा ' इति दुर्गस्वीकृतपाठः स्यात् ।
 १६ ' चरण्यौ ' (२७) ग. च. ज. पाठः । ' चरणार्थौ ' (२७) । ग. ज. पाठः ' रणार्थौ ' (२८) च. पाठः । ' वारण्यौ ' (६) = वा अरण्यौ = वा + आ + रण्यौ । ' वारिषण्यौ ' (६-७) = वा अरिषण्यौ = वा + आरिषण्यौ ।
 ८१६ १२ ' उपस्थाने ' (४) ' विघ्नत्यौ ' (९) ' शु ' (९) न व्याख्यातम् ।
 ८१७ ७ ' शुनासीरीया ' इति कर्मनाम । साकमेघमारभ्य या पञ्चमी पौर्णमासी तस्यां शुनासीरीया कर्तव्या । इयं तत्रानुवाक्यत् (आश्व० श्रौ० २ । २०) । मैत्रा० सं० शुनासीर्यमिति संज्ञा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८१७

१४ 'द्यावापृथिव्याविति वा' (३-४) 'अहोरात्रे इति वा' (९) अत्र प्रथमम् 'इति वा' द्वितीयम् 'इति' च न पठितम् ।

८१८

१० यानि द्वेषांसि घ्नन्ति तान्यस्माकमप्रियाण्यघानि । घ्नन्तीत्यघानि । 'हन्ति' पाठान्तरम् (२१) । ययोरन्याऽस्माकं द्वेषांस्यघानि हन्ति । यान्यप्रियाण्यस्माकं तानि युयवत् । 'घ्नन्ति' पाठः साधुः । द्वेषांस्यघानि कस्मात् । यस्मात्तानि घ्नन्ति ।

११ 'यूयवत्' इति छ. त. द. पाठो (८१७ । १८) यजुः-शास्त्रीयश्च ।

१२-१३ यजमानाय यानि वरणयानि तानि वसूनि ।

१३ वसुवने = वसुवननाय वसुसंभजनाय । संभजनाय = भोगाय । 'वसुधानाय' इति निरुक्तपाठः (४) । वसुनो धानं निधानं रक्षणम् । 'वसुधान्यौ' (२) 'वसुधानाय' (४) न पठितम् ।

१३-१४ वसुधेयस्य = अवभुक्तातिशिष्टस्य विधानाय । अवभुक्तादतिशिष्टस्यावशिष्टस्य । 'अभुक्तातिशिष्टस्य' इति ग. च. ज. पाठः (२९) । अभुक्तस्यात एवातिशिष्टस्य । 'अवाशिष्टस्य' इति पाठः स्यात् । विधानम् = अवाशिष्टेन किं कर्तव्यं कुत्र निधेयं कस्मै देयमित्यादि ।

१५ यज इति प्रैपरयान्त्यः शब्दः । तेन प्रैषो दीयते-इदं कुरु यज इति होताऽऽज्ञाप्यते । 'देवी ऊर्जाहुती००० संप्रैषो भवति' (५-७) न व्याख्यातम् । संप्रैषः = प्रैषः । अनूयाजप्रैषोऽयं (प्रैषिकसूक्ते २९) ।

८१९

११ उपनागमितस्य (पाठान्तरम् २९) = उपगमितस्य + उपनामितस्य । उपगमितमुपनामितं वा तस्य = संनिधौ स्थापितस्य । सगुणस्य = उपसेचनयुक्तस्य । एकाऽन्नस्य सर्गिण (भक्षणम्) आवक्षत् । अन्या सपीतिमावक्षत् ।

पत्रं
८१९

पङ्क्तिः

१३ ' नवेन पूर्व्यम् ' इति ग. च. ज. पाठः (२७) ।

१५ यथा बलवती ऊर्जता ' ऊर्जता ' इति विशेषणमपेक्ष्यम् ।
ऊर्ज् + ता = ऊर्जता । ' ऊर्जता ' इति शब्दरूपं कथमुप-
पाद्यम् । ' ऊर्जिह्वाम् ' (३०) इति ग. च. ज. पाठो
दुर्बोधः । ' ऊर्जताम् ' इति पाठो न साधुः ।

इति नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः ।

८२१

१२ ' मध्यस्थानम् ' इति ग. च. ज. पाठः (२८) ' मध्यमं
स्थानम् ' इति स्यात् । ' मध्यमस्थानाः ' इति ग. च. ज.
पाठो (२९) निरुक्तमूलपाठः स्यात् ।

१४ तिम्र एव देवता इति नैरुक्तसिद्धान्तः । तेन मध्यमस्थाना
एकेव देवता ।

१५ त्रिंशष्टगुणैस्तत्तद्गुणसंबन्धान्मध्यमो वायू रोदसी रुद्र इत्यादि-
नामाभिरभिधीयते ।

२१ ' म्यात्तु कार्तिके । बाहुल्योर्जौ कार्तिकिको ' (अमरः १ । ४ ।
१७—१८) । सर्वासु दिक्षु भवं सार्वदिकम् । अन्तरिक्षलोकस्य
गर्भमुपचिनोति = अन्तरिक्षं संचिनोति ।

२१—२२ ' ओषधिवनस्पतिजलाशयेभ्य उदकम् ' इदं ' सार्वदिकमुदकम् '
इत्यस्य प्रान्ते लिखितं विवरणं भाति । नो चेत्कोऽन्वयः ।

२३ सोऽन्तरिक्षलोकः । प्रकल्पते = समर्थो भवति ।

८२२

३ विवृण्वन् = संवृण्वन् । (वि) वृणोति (सं) वृणोतीति
वरुणः । शत्रन्ते ' रुद्रन् ' ।

४ पर्जन्यः प्रार्जयति । इ = इरां + इन्द्रः = इदत् ।

५ गुणानां वरुणादीनामुपजनस्याऽऽधिक्यस्य क्रमः । यथाऽधिका
गुणास्तथाऽधिकानि नामानि ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८२२

६-६ गुणोपजनक्रमानुपूर्व्या = कश्चिद्गुणः प्रथमं मध्यमस्योपजायते कश्चिदनन्तरम् । एवं गुणोपजने क्रमो विद्यते । तस्मिन्क्रम आनुपूर्वी विद्यते । स क्रम एवाऽऽनुपूर्वी । वाति वृणोति रोदिति (गर्जति) वर्षत्यन्नं ददाति । अयं गुणानां क्रियाणां वा क्रम आनुपूर्वी । पर्जन्यानन्तरमिन्द्रः ।

७ गुणान्तरोपजनानुपूर्व्यं = अन्ये अन्ये गुणा मध्यमे क्रमेणाऽऽनुपूर्व्या वर्तन्ते । तदनुरोधेन भिन्नानि नामानि ।

११ एतीति आयुः । व + आयुः = वायुः । उपजनमात्रम् = वकारः केवलमधिकमक्षरम् । आयुश्च वायुरयनः (७७७।१९) । अत्राऽऽयुशब्दे वकारो लुप्तः । वायुशब्दे वकारोऽधिकः ।

२०-२१ ' आ वायो भूष ' इत्यनेन वायव्यग्रहोपस्थानम् । ' वायवा याहि ' इत्यनेन कस्यां यजुःशाखायामुपस्थानम् ।

२१ प्रातःसवने वैश्वदेवग्रहणादूर्ध्वं प्रउगशस्त्रं होत्रा शंसनीयम् । तच्च शस्त्रं वायवा याहीति सप्तऋगात्मकम् (ऐ० ब्रा० ३ । १ ॥ आश्व० श्रौ० ९ । १०) ।

२४ अरंकृताः = अलंकृताः । दुर्गमतेऽलंकृताः = पर्याप्ताः । अरंकृताः संस्कृताः ।

२९ ' तेषां ' मूले (१७) ' एतेषां ' वृत्तौ ।

८२३

१ सर्वस्थानतासंबद्धं विचारमागूर्योच्चार्योपोद्धृत्य ।

४ इन्द्रादन्यस्य तत्सोमपानमप्रसाध्यम् । न कदाऽपि साध्यम् ।

१९ ' योगाय ' (११) मूले ' योगार्थ ' वृत्तौ । ' रथस्य वोदारः ' (११) ' नवं च ' इत्यत्र ' च ' (१२) ' इति सतः ' (१२-१३) ' वायोश्च ' (१३) इत्यत्र ' च ' ' वायुकर्म ' (१४) न व्याख्यातम् ।

२३ अस्माकं यज्ञमायाहि ।

८२४

६ अतिग्राह्या ध्रुवश्च । एते कयोश्चित्सोमग्रहणोर्नामनी ।

पत्रं

पशुक्तिः

८२४

६ इदमैन्द्रं सूक्तम् । तेनेयमृगपीन्द्रप्रधाना । ' इन्द्रप्रधाना ' (१३)
मूले ' इन्द्रप्रधाने ' वृत्तौ ।

८ ' अपरं ' मूले ' अपरे ' वृत्तौ ।

१० निष्केवल्यं शस्त्रमैन्द्रमेव ।

८२९

४ सत्कर्षा = सन्नैहलौकिकः कर्षा कृषीवलः । ' सत्कर्षा ' अशुद्धः पाठः स्यात् । ' यवमिव वृष्टिः ' (२१) इति मूले । ' स्वल्पं यवं कश्चित्सत्कर्षा वृष्ट्येव ' इति वृत्तौ । ' यवमिव वृष्टिः ' (१०) ।

१४ ' बन्धिः ' धातुपाठे न विद्यते । सन्नन्तो बन्धिश्चित्तविकारे विद्यते । ' बध बन्धने ' (धा० १ । ९९८) । ' बध संयमने ' (धा० १० । १४) ।

८२६

१४ नाभाकस्य कस्यचित्काव्यकर्मणि निष्णातस्यर्षेः । सूक्तस्य कर्ता न स्वमात्मानं ' नाभाकस्य ' इति प्रशंसेत् । ' ऋषिर्नाभा० सप्तस्वसारमेनमाह ' (१-२) ' अथैष भवति ' (२-३) ' ये नो द्विषन्ति दुर्धियः पापधियः पापसंकल्पाः ' (३-४) न व्याख्यातम् । ' ये नो० ' इत्यादि पूर्वं व्याख्यातम् । अत्र प्रक्षिप्तं स्यात् ।

१९-१७ यास्कमते यो नाभाक एनं वाग्भिः सप्तस्वसारमाह (१-२) । दुर्गमते यो वरुणो मध्यमाभिर्वाग्भिरम्बाद्याभिः सप्तस्वसा संपद्यते । अन्तरिक्षलोके वर्षस्योपोद्गमे । ' आसामपाम् ' (१) इत्यत्र ' आसां ' न व्याख्यातम् । ' वाग्भिः (स्तुतिभिः) एनं सप्तस्वसारमाह ' (२) इत्यन्वयः । अथवा । ' वाग्भिः सप्तानां वाचां हेतोरेनं० ' ।

१७ निरुक्तवृत्तौ (७२८ । २१) ' अश्वानामाऽसि ' एवमष्टाऽऽकाशनद्यः पठ्यन्ते ।

२१ रु = रौति + द्रो नामकरणप्रत्ययः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८२६

२२ रु = रोरुयमाणः + द्रः = द्रवति । रोरुयमाणः = पुनः पुनर्भृशं वा शब्दं कुर्वाणः ।

२३ रुद् = रोदयति + रो नामकरणप्रत्ययः ।

२३-२४ 'कतमे रुद्रा इति । दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादश । ते यदाऽस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति । तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्बुद्राः ' (बृ० उ० । ३ । ९ । ४) ।

२४-२९ ' यत्समरुजन्तद्बुद्रस्य रुद्रत्वम् ' (काठ० सं० २९ । १) । ' यद्रोदन्तिद्बुद्रः ' (शत० ब्रा० ६ । १ । ३ । १०) ।

२९ एतत्काठकमैतिहासिकैः समवैति । ऐतिहासिकानामेतदेव निर्वचनम् ।

२९-२६ स किल पितरं प्रजापतिमिषुणा० । ईदृशी कथा (शत० ब्रा० १ । ७ । ४) इत्यत्र विद्यते । तथा (मैत्रा० सं० ३ । ६ । ९ ॥ ४ । २ । १२) इत्यत्र पूर्णा कथा विद्यते । ' तमभ्यायत्याविध्यत्सोऽरोदीत्तद्वा अस्यैतन्नाम रुद्र इति ' (मैत्रा० सं० ४ । २ । १२) ।

२७ ' शाखान्तरमन्यत् ' अन्यत्पदं व्यर्थम् ।

२८ देवताभिधानानां निर्वचनान्तराणि ।

८२७

१२ ' अन्यैः ' (४) ' तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मण आयुधमायोधनात् ' (९) न व्याख्यातम् ।

१९ सहमानाय ' इत्यनेन शत्रूणामिन्द्रकृतोऽभिभवः । अयमभिभवो बलकृतिः । सर्वा बलकृतिरिन्द्रस्यैव । तेन मध्यमः ।

१७-१८ रक्षःपिशाचान्विधत्त उत्पादयति ।

८२८

१३ अत्रात्पानाच्च समुद्भूता दिद्युद्रोगः ।

१४ सा दिद्युत्प्रभवो येषाम् ।

१४-१९ ' नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ' इति वाजसनेयिसंहितापाठः (१६ । ६६) । ' के च ' कस्यामपि

पत्रं

पङ्क्तिः

८२८

१४-१५ शाखायां नास्ति । 'नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये पृथिवीमनु' (मैत्रा० सं० २ । ७ । ९ ॥ तै० सं० ४ । २ । ८) । ' नमो अस्तु ' (मैत्रा० सं० २ । ९ । ९ ॥ काठ० सं० १७ । १६ ॥ कापिष्ठलसं० २७ । ६) । ' नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येऽन्तारिक्षे ये दिवि येषामन्नं वातो वर्षमिषवः ' (तै० सं० ४ । ९ । ११) । अयं क. ख. घ. झ. ट. ठ. ड. पाठः ।

२२ दिद्युत् = ' दो अवखण्डने ' (धा० ४ । ४४) इत्यस्याभ्यासः । तकारो नामकरणः । दो = द्यु । ' दिद्यु ' अभ्यासेन । दिद्युत्कारोपजनेन । अथवा । ' द्यु अभिगमने ' (धा० २ । ३०) । दि + द्युत् = दिद्युत् । अथवा । दि + द्युत् । ' द्योततेर्वा ' (२७ । २३) ' क्षमा पृथिवी ' (२३) न व्याख्यातम् ।

२३ क्षमया = क्षमापणेन । ' क्षमायी विधूनने ' (धा० १ । ४८७) तस्य णिच् क्षमापयति । विक्षमापयन्ती = विशेषेण धूनयन्ती ।

२७ यदि तोक्तनयौ समानार्थौ तर्हि जामिता पौनरुक्त्यम् । तत्परिहाराय तनयः पौत्रः ।

८२९

१ अग्निः पृथिवीस्थानः । तथाऽपि रुद्र इत्युच्यते । मध्यमनाम्नाऽऽहूयते । तेन संकरः । ' विचारानुस्मृतये ' अस्यार्थो न ज्ञायते ।

१७ ' जरतेः स्तुतिकर्मणः ' (९) न व्याख्यातम् ।

१९ ' तथा बोधयितः ' (६) यास्कः । ' जराबोधयितः ' दुर्गः । स स्तुत्या देवान्बोधयति ।

२१ ' मनुष्याय यज्ञियाय ' दुर्गः । ' मनुष्यस्य मनुष्यस्य यजनाय ' (६) यास्कः । यजनाय (७) = यागाय । ' मनुष्यस्य यजनाय तत्कुरु । तत्किम् । दर्शनीयं स्तोमं रुद्राय कुरु ' इति यास्कस्यार्थः । ' यज्ञियाय मनुष्याय तत्कुरु यत्त्वया कर्तव्यम् । ततस्तुभ्यं स मनुष्यो दर्शनीयं श्रवणीयं

- पत्रं
८२९ पङ्क्तिः
२१ स्तोत्रमुच्चारयिष्यति ' इति दुर्गस्यार्थः । ' स्तोमं ' (७) न पठितम् ।
- २२ रुद्राय = देवानां स्तोत्रे ।
- ८३० ४ ' तमिन्द्रकारितम् ' (२५) प्रामादिकोऽयं पाठः । तमि-
दिन्द्र० (२५) = तमिन्द्र + तदिन्द्र । वर्षेण क्लेदितं (३)
वर्षक्लेदितं वर्षक्लेदादुत्पन्नम् । तत् भेदनकर्म ।
- ७ आत्मनस्तत्त्वमन्तर्णयि = व्यवधायोऽऽत्मानम् = अविदुषां
परोक्षीकृत्य ।
- ११ ' प्राणश्रैष्ठ्यम् ' (वृ० उ० १ । ५ । २१-२२ ॥ छा०
उ० ५ । १ । १२-१५) । प्राणदेवताः = प्राणादि-
पञ्चानामधिष्ठात्र्यः । अध्यात्मे इन्द्रो मुख्यः प्राणः सन्भूयिष्ठं
भजते । इतरेषां प्राणानां शक्तयस्तस्मिन्वर्तन्ते । तेन प्राणस्य
श्रैष्ठ्यम् । अधिदैवते देवतामिन्द्रो भूयिष्ठं भजते । स हि
श्रेष्ठः ।
- २२-२३ 'स योऽयं मध्ये प्राण एष एवेन्द्रः । तानेष प्राणान्मध्यत इन्द्रि-
येणैव तस्मादिन्द्रः । इन्द्रो ह वै तमिन्द्रमित्याचक्षते ' (शत०
ब्रा० ६ । १ । १ । १) । 'तं वा एतमिन्द्रं सन्तमिन्द्रमि-
त्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ' (शत० ब्रा० १४ । ५ । ९ । २) ।
- २३ भूतेभ्योऽन्नं विभजमानः । इन्द्रोऽधिदेवस्थो देवेषु वर्तमानः ।
अध्यात्मस्थः प्राणरूपेण । भूतान्यभ्यवहारयन्वाद्यन् । भूते-
भ्यो भक्षणार्थमन्नं संपाद्य तत्तानभ्यवहारयति खादयति ।
- ८३१ १-४ शरीरस्य मध्यतोऽवस्थितम् । इतरान्प्राणान्विष्टभ्याऽऽश्रयं दत्त्वा ।
इतरासां वाक्चक्षुःश्रोत्रमनसां प्राणवृत्तीनां प्राणे वृत्तिरवलम्बनं
यासां तासां माहाभाग्यं वाचो वसिष्ठत्वं चक्षुषः प्रतिष्ठां श्रोत्र-
स्य संपन्नमनस आयतनम् । वागाद्याधिदेवता एतानि माहाभा-
ग्यानि प्राणाय ददुः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८३१

१ ' इन्द्रो भूतानीन्धे ' अत्रेन्द्रः कर्ता । ' प्राणदेवता इन्द्रं समैन्धत ' इहेन्द्रः कर्म ।

११-१२ ' दारयति वा द्रावयति वा ' (१०) अयं क्रमो व्याख्याने भिन्नः । इन् = इरां + द्रः = दृणाति । इन् = इरां + दः = ददाति । रेफोऽधिकः । इन् = इरां + दः = दघाति । रेफोऽधिकः । इन् = इरां + द्रः = दारयति । इन् = इन्दवे + द्रः = द्रवति । इन्द् = इन्दौ + रः = रमते । इन्द् = इन्धे + रः (नामकरणः) । इन्द् = इदं + रः = करः । इन् = इदं + द्रः = द्रष्टा । इन् = इन्दति + द्रः = दारयति । इन् = इन्दति + द्रः = द्रावयति । इन् = इन्दति + द्रः = आदरयति ।

८३२

१ ' अदृणाः ' (८३१ । १८) ' बाबध्यमानान् ' (२०) ' उत्सर्णात् ' (महाराष्ट्रीयपाठः ३०) न व्याख्यातम् ।

१० ' रम्णातिः ' अत्रापि मंयमनकर्मा स्यात् । जनानतिशयेन बाधमानानर्णवान् (अर्णव इत्यस्य द्वितीयाबहुवचनम्) अरम्णाः सम्यच्छः नियन्त्रितानकरोः ।

८३३

१५ ' प्रतिमुख्यताम् ' अत्र ' प्रति ' इत्यस्य कोऽर्थः । अयं शब्दः कोशेषु नोपलभ्यते । ' प्रथमुख्यताम् ' च पाठो दुर्बोधः ।

१८ ' पर्यभवत् ' (२) ' अपि ' (३) न पठितम् ।

८३४

३ आख्यातम् = इन्द्रपगक्रमाणां कथाः । प्रीतिः = प्रेमा ।

५ ' दृष्टार्थस्य ' ऋषिणेन्द्रप्रभावो दृष्टः साक्षात्कृतः । भावितं प्रेम्णा युक्तमन्तःकरणं यस्य ।

८ तृप् = तर्प् = पर्त् = पर् । तर्पयिता । जन्यः = जनेभ्यो हितः । पर् = पर्त् = तर्प् = तर्पयिता । पर्जन्यमन्तर्पयति

पत्रं

पङ्क्तिः

८३३

८ जनान्तेभ्यो हितश्च । ऐकदोशिकः = एकदेशे भवः । अल्पेभ्य एव हितः ।

१३-१४ परः + जेता । परः + जनयिता (रमानाम्) ।

१५ प्रार्जयिता (रमानाम्) । प्रार्जयिता संपादयिता ।

८३५

४ ' वर्षेणोषधी० ' (२८) इति क. ख. वर्जमितरेषु पाठः । वर्षेण + ओषधीः = वर्षेणोषधीः ।

८ ' भीतः ' (८३४ । २३) ' दुष्कृतः ' (२४) ' महान्धस्य वधः ' (२२-२३) न व्याख्यातम् । ' अप्यनपराधः ' (२३) मूले । वृत्तौ ' अनपराधोऽपि ' ।

८३६

१० ' चमन्त्यस्मिन्निति ' न व्याख्यातम् ।

८३७

२ अवतम् = अव + तम् = अव + अतितम् = अवाक् + अतितम् ।

२० तस्य क्षेत्रस्य पत्युः कर्म वर्षेणरूपं पालनम् । तस्योपपत्तौ सार्थत्वे क्षेत्रं क्षेत्रनामार्हति । यदि वर्षणं न स्यात्कथं जना ग्रामे वमेयुः । क्षेत्रमिति नाम्नः साफल्यं सार्थक्यम् ।

२२ ' क्षेत्रस्य पतिः ' इति मध्यमस्य विगृहीतं नाम । न क्षेत्रपतिरिति सामामिकम् ।

८३८

११ क्षेत्रस्य पतिनोपनामितानि वशीकृतानि प्रापितानि द्रव्याणि येषां तेषामभ्माकं शक्तिरस्तु ।

१२ ' पोषयित्नु + आ ' इत्यत्र ' आ ' (२) ।

१४ इदमाहरतेति परिचारकानाज्ञापयन्तः ।

१९-२० ' इयं क्षेत्रस्य पत्न्यस्यामेव प्रतितिष्ठति ' (मैत्रा० सं० २ । १ । १) । ' इयं क्षेत्रस्य पतिर्यत्क्षेत्रपत्योऽस्यामेव प्रतितिष्ठति ' (काठ० सं० ९ । १७) । ' इयं वै क्षेत्रं पृथिव्यस्यामदीनायामन्ततः प्रतिष्ठास्यामः ' (कौषी० ब्रा० ३० । ११) ।

- पत्रं पङ्क्तिः
 <३८ १९-२० ' इयं वा अदितिः प्रतिष्ठा वा अदितिरस्यामेवैनं तददीनाया-
 मन्ततः प्रतिष्ठापयन्ति ' (शाङ्खा० श्रौ० १६ । १०
 १६) । ' क्षेत्रपत्यं चरुं निर्वपेज्जनतामागत्येयं वै क्षेत्रस्य
 पतिरस्यामेव प्रतितिष्ठति ' (तै० सं० २ । २ । १) ।
 दुर्गेण पठितं वाक्यं कौषीतकिब्राह्मणस्थम् (कौषी० ब्रा०
 ३० । ११) । तस्य वाक्यस्य न काम्येष्ट्या क्षेत्रपत्येन चरुणा
 वा संबन्धः । नापि तत्र ' क्षेत्रस्य पतिः ' इति शब्दौ वर्तेते ।
 ' प्रतितिष्ठति ' इत्यस्य स्थाने तत्र ' अन्ततः प्रतिष्ठास्यामः ' ।
 अत्र मैत्रायणीकाठकतैत्तिरीयसंहितास्थं वाक्यमनुरूपम् । पृथिवी
 क्षेत्रस्य पतिः । अत्र तु मध्यमः क्षेत्रस्य पतिः । तेन नेयमृग-
 नुरूपा ।
- २१ कथं वा पृथिवी मध्यमश्च क्षेत्रस्य पतिः । पृथिवी क्षेत्रस्य
 पतिरिति यद्ब्रह्मणं पठति तद्भक्तिमात्रं रूपकं न वास्तवम् ।
- <३९ १६ ' धुक्ष्वेति ' (४) इत्यत्र ' इति ' ' वा पालयितारो वा '
 (९) ' मृळ्यतिरुपदयाकर्मा पूजाकर्मा वा ' (९) न
 व्याख्यातम् ।
- २१ अत एव = अस्मादेव । पदानां जाम्यजामिता ।
- २२-२३ मा संज्ञा निगमेन दीयते ।
- २३-२४ ' मरुद्भिर्वै वीर्येणन्द्रो वृत्रमहन्न ऋते मरुद्भ्योऽशक्तोद्वीर्यं कर्तुं
 यन्मरुत्वतीयो ग्रहो गृह्यते मरुत्वतीयं शस्यते तेन माध्यंदिनं सवनं
 वीर्यवन् ' (मैत्रा० सं० ४ । ६ । <) । ग्रहो मरुद्देव-
 ताकः शस्त्रं च मरुद्देवताकम् । इदमत्र पुनरुक्तम् ।
- <४० ६ किमर्थेयं पुनरुक्तिरिति यदा सर्माचीनं विशिष्टं प्रतिसमाधानं
 न विद्यते तदा ' अभ्यामे० ' इत्यादि प्रतिसमाधानम् ।
- २० समाने = एकस्मिन् ।
- २१ अविच्छिन्ना प्रसक्तस्यानुस्मृतिर्गस्मिन् ।

पत्रं
८७०

पङ्क्तिः

२४ पौनरुक्त्ये तत्पदं न योज्यम् । अयमेकः पक्षः । प्रयोगे वा तद्युक्तमन्त्रवाक्यमसाधु । अयमपरः । अथवा । पौनरुक्त्येन योज्यं युक्तं तत्पदमेवासाधु । अथवा । तत्संयोगात्तन्मन्त्रवाक्यमप्यसाधु ।

२६ ' तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ' (३ । १ । ९८) । इति पाणिनिमूत्रम् । ' यथाकथाच ' इदं कष्टार्थेऽन्ययम् ।

२७ ' छन्दसि दृष्टानुविधिः ' इति व्याकरणमहाभाष्ये । वेदे सर्वे साधु न किञ्चिदपि व्याकरणनियमभङ्गादसाधु । छन्दसोऽनुरूपो नियमः कल्प्यः ।

२८ ' अर्थानुविधाने = स्वार्थानुविधानाय तेनैव ' (ट.) ।

८४१

२ तदेतद्वगतं भवति = अयं सारः ।

१० ' कामतो देवताः कल्प्याः ' इति सार्वत्रिकः पाठः । ' सप्त-
त्नघम् ' इत्यनुक्रमणिकायाम् । ' सप्तन्नाशनरूपोऽर्थो देवता'
इति मायणः ।

२३ नतु० = किंतु मधुमान्मन्त्रपि मधु अविरतं न श्रोततीति विशेषः ।

२४ हिरण्यरूपः सन्नपि हिरण्यमिव न दृश्यमानः ।

८४२

३-४ यायावरः प्रयाणशीलः (तै० सं० ९ । २ । १ सा०
भा०) । यायावर्यं प्रयाणं तस्य प्रतिपत्तिः प्राप्तिः स्वीकारो वा ।
प्रयाण आवश्यकं वास्तोष्पतीयहोमः कर्तव्यः । यायावरः =
प्रयास्यन् ।

४ गृहाद्गमनं गृहगमनम् ।

४-९ हीनं बलीवर्देः । अन्वाहरेयुर्वास्तोष्पतीयामाहुर्ति दद्युः । बली-
वर्देर्युक्ते शकटे होमं न कुर्युः । तादृशो होमो रुद्रस्य भवति
न वास्तोष्पतेः । अग्निं रुद्रं क्रूरं भूतम् । अयुक्ते शकटे होमे

पत्रं

पङ्क्तिः

८४२

४-९ कृतेऽग्नी रुद्रः क्रूरो भवति । ' सर्वेष्वेव युक्तेषु होतव्यं वास्तो-
 ष्पत्यं होतत् । न हीनमन्वाहर्तवै रुद्राय हि तद्धीयते यद्धीनम-
 न्वाहरेयू रुद्रं भूतमन्वाहरेयुः ' (मैत्रा० सं० १ । ९ ।
 १३) । दुर्गदत्तपाठे ' अन्वाहर्तवै ' इत्यस्य स्थाने ' अन्वा-
 हरेयुः ' ।

२१ गृहकारिका = गृहस्य रचना गृहारम्भे स्थालीपाकः कर्तव्यः ।

२१-२३ ' वास्तोष्पत्यं पयसि स्थालीपाकं श्रपयित्वा तस्य जुहोति अमी-
 वहा वास्तोष्पते वास्तोष्पते इत्येताभ्याम् ' (मान० गृ० १ ।
 ६ । १९) । सर्वेषु युक्तेषु अमीवहा वास्तोष्पते वास्तो-
 ष्पते इत्येते निगद्याऽऽहुतिं जुहोति ' (मान० श्रौ०
 १ । ६ । ३) ।

२२ यायावराय हितास्नस्य वा यायावर्या बलीवर्दाः । तेषां प्रति-
 पत्तिः शकटेन योगः । युक्तेषु बलीवर्देषु ।

८४३

२ सर्पादिरस्मद्दुःखहेतुः । तस्य प्रतिपक्षो वैरी नकुलादिः ।

४ ' नः सुमुखः ' (८४२ । १९) न पठितम् ।

१० यस्माद्गुणो विकल्पेन तस्मात् ।

१२ अतोऽस्मात् ।

२० पौनःपुन्ये भृशार्थे च यद् । बोभवीति पुनः पुनर्भृशं वा
 भवति । बोभवीति मत्यं भवति भवत्येव ।

२३ मुहूर्तं क्षणेन । मुहूर्तकालं प्रत्येकस्मिन्मुहूर्ते क्षणे ।

२४ यागः सर्वदा भवति । न तत्र कालनिषेधः ।

८४४

७-८ ' वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ' इति अथ० सं०
 १ । १ । २ पाठः । ' उपग्रेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
 वसुपते विरमय मय्येव तन्नं मम ' इति मैत्रायणीसंहितापाठः
 (४ । १२ । १) ।

- पत्रं
८४४ पङ्क्तिः
११ ' इति सा निगद्व्याख्याता ' (८) न पठितम् ।
१२ निर्णेजनं शुद्धिः ।
- ८४५ १-६ यास्कभाष्ये प्रथमोऽर्धर्चः परोक्षकृत उत्तरः प्रत्यक्षकृतः ।
दुर्गः सर्वमेव प्रत्यक्षं मन्यते । तेन ' दीप्यते ' इत्यस्य
' दीप्यमे ' इति विपरिणामः ।
७ प्रदेशं प्रति = प्रदेशे । ' दीदयत् ' (८४४ । ३०) छ. त.
द. पुस्तकेषु न विद्यते । तेन दुर्गेण न पठितम् ।
१० इन्द्रोऽपि प्रत्यक्षीकृतो दुर्गेण । तेन ' वर्धते ' इत्यस्य
' वर्धथाः ' इति विपरिणामः ।
१२ ' इति सतः ' (२-३) न व्याख्यातम् ।
- ८४६ १ आज्यं पुरोडाशो वषा इति पशौ त्रय आहुतयः । प्रत्येकस्या
याज्यानुवाक्ये । इयमनुवाक्या ।
४ सर्वेऽपि भूतमवा यमवशाः । देवाः (उद्धतः ६) कथं यमव-
शा भवेयुः ।
८ मार्गेण = मरणहेतुना ।
८-९ तमेव मार्गं तस्य प्राणिनः स्पाशयित्वा रुद्ध्वा । ' तस्कर
इव ' तस्य मार्गं बद्ध्वा रुद्ध्वा । अयं प्राणी जीवितादनन्तरं
स्वर्गमार्गेणान्यमार्गेण वा गन्तुमिच्छति । तस्य तं मार्गं बद्ध्वा
रुद्ध्वा । अनुपस्पाशयमानं = सूक्ष्मदृष्ट्या चिह्नयितारं निरीक्ष-
माणम् ।
९ यमः सर्पो ज्वर इत्पादिर्मरणहेतुर्भवति । जीवनादुत्सर्पणस्यैते
मार्गाः । स्पाशयतिश्चिह्नार्थः (निरु० ३९६ । २१) इत्यत्र ।
अत्र बन्धनार्थः । स्पाशय इत्यस्याभ्यासो व्याकरणे निषिद्धः ।
तथाऽप्यत्र पस्पाशय् । अनु + पस्पाशयमानम् ।
अनुपस्पाशयमानं निरीक्षणम् । तत्र तस्मिन्नेव मार्गे ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८४६

९-१० उपयंस्यामि = नियन्त्रयिष्यामि हनिष्यामि ।

१३ ' राध्नुहीत्यर्थः ' इत्यत्र ' इत्यर्थो ' व्यर्थः ।

१५ ' प्र + वतः । उत् + वतः । नि + वतः ' इत्येतेषां शब्द-
व्युत्पत्तिः । यास्कमते ' प्र + अवतः । उत् + अवतः ।
नि + अवतः ' इति । ' अवतः ' इत्यत्राकारस्य लोपः ।
' उद्धतो निवतः ' एतौ शब्दौ व्युत्पत्त्यर्थमेवात्र पठितौ नार्थ-
पूरणाय । ये जना मरणानन्तरं स्वर्लोकं प्रयान्ति तान्महतो
बहुसंख्याकान्प्रवतो जनाननु पश्चात्परेयिवासमनुगच्छन्तम् ।
पन्थानं मार्गं चानुपस्पशानं दर्शयन्तम् ।

१८ यमशब्दप्रसङ्गेन । वैवस्वतो यमः । अग्निरपि यमः । अत्र
समाननामधेयत्वम् । न शब्दमारूप्यम् ।

१९ अग्निरपि यमनामा इति विचारो विषयः । इयं प्रतिज्ञा ।

८४७

११ द्वौ पादौ यस्याः मा । एकस्या ऋचो द्वावेव पादौ ।

१२ प्रातरनुवाकाश्विनयोर्विनियोगः । नायं विनियोग आश्वलायनसूत्रे
विद्यते । विनियोगो लैङ्गिक इति सायणः ।

१६-१७ ' महाप्रतीका भयप्रतीका दीप्तप्रतीका वा ' इति दुर्गस्वीकृत-
मूलं स्यात् । ' त्वेपप्रतीका बलप्रतीका यशःप्रतीका '
(१-२) न व्याख्यातम् ।

१८ ' दधाति ' (१) मूले ' ददाति ' वृत्तौ ।

१९ ' इन्द्रेण सह संगतः ' (३) न व्याख्यातम् ।

२५ यमां इति व्यपदेशो भेदेन कथनम् । एको यम एव । द्विती-
योऽग्निः । विभावयितुम् = उपपादयितुम् ।

८४८

१५ ' कन्यानां ' (८४७ । ९) न पठितम् ।

१७ यज्ञसंयोगेन = यज्ञे यजमानः पत्न्या सहाशौ व्रतमुपैति ।
तत्प्रधानाः = अग्निप्रधानाः । संपद्यन्ते जायाः । अशौ
साक्षिणि दीक्षाव्रतम् । दीक्षासमाप्तिपर्यन्तमशौ पारतन्त्र्यम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८४८

१७ व्रतोपगमनात् = ' व्रतमुपायानीति यजमानो ब्रवीति । सोऽ-
ग्निमेवाभीक्षमाणो व्रतमुपैति । अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि '
(शत० ब्रा० १ । १ । १ । १-२) । ' व्रतोपयानात् '
(२८) इति पाठान्तरम् । आव्रतविमोकात् = ' अथ
संस्थिते विमृज्यते । अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषम् ' (शतः
ब्रा० १ । १ । १ । ३) । ' हि यज्ञसंयोगेन ' (८४७ ।
९-६) न व्याख्यातम् ।

८४९

१ प्रथमं कौमारकं कुमारीभावः सोमदेवताकः ।

१-२ उपजायमानानि चारुताऽङ्गानां प्रविभागः स्वरसौष्ठवं च
यस्मात् ।

२ ईषदनङ्गेन समाहितं हृदयं यस्यास्ताम् । ' अनङ्गाङ्ग '
इत्यत्र ' अङ्ग ' शब्दस्य न किमपि प्रयोजनम् ।

३ वैवाहिके कर्मण्युपगतायाः ।

८ उपचयः = आधिक्यम् ।

१८ ' पश्चाहुत्या ' (८४७ । ७) ' समृद्धम् ' (२७)
इत्यपपाठौ ।

२० स्वेनोपकारेण = क्षीरदानेन । ' सायंवासाय ' इत्युक्ते
' स्वेनोपकारेण ' इत्यनवश्यम् । प्रान्ते लिखितं वृत्तावन्तर्भावितं
स्यात् ।

२९ मिन्वानः = प्रक्षिपन् । ' डुमिञ् प्रक्षेपणे ' (धा० ५ । ४) ।
किं प्रक्षिपति । ' उदकेन संमिन्वानः ' कोऽर्थः । उदकेन सर्वं
क्लृदयन्नित्यर्थः स्यात् ।

८५०

१ ' स्नेहति ' (२३) इत्यपपाठः ।

११ ' अववृष्टे मित्रो जनान्यातयतीति पूर्वामाहुतिं जुहुयात् । अन्यां
दुग्ध्वाऽथ पुनरग्निहोत्रं जुहुयात् ' (मान० श्रौ० ३ । २ ।
८) । अवपतितेन वर्षेण दूषितं हविरववृष्टम् । (तै० ब्रा०

- पत्रं पङ्क्तिः
 ८९० ११ सा० भा० ३ । ७ । २) । अग्निहोत्रे द्वे आहुती होतव्ये
 (तै० ब्रा० सा० भा० ३ । ७ । २) ।
 १६ ' शब्दं ' (९) ' जुहोतिर्दानकर्मा ' (८) न व्याख्यातम् ।
 ८९१ ४ पशवोऽपि कामकारतोऽङ्गानि प्रसारयितुं शक्नुवन्ति ।
 ६-७ प्राणसतत्त्वो बुद्धिसतत्त्वश्च । प्राणस्वरूपो बुद्धिस्वरूपश्च ।
 १४ अभिषेकस्योपरिष्ठादनन्तरम् ।
 १८ कं = सुखम् ।
 ८९२ ७ अस्य मन्त्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स आत्मानमधिकृत्य
 ' हिरण्यगर्भः समवर्तत० ' इति तृतीयपुरुषं कथं प्रयुञ्जीत । यतः
 स सर्वात्मा । सर्वे आत्मानो यस्य सः । तस्मादेक आत्मा
 हिरण्यगर्भमुद्दिश्य तृतीयपुरुषं प्रयुञ्जीत । नेदं पर्याप्तं प्रति-
 समाधानम् ।
 ९ कल्पान्ते तस्या अवस्थायास्तिरोभावः । कल्पादौ चाऽऽविर्भावः ।
 हिरण्यगर्भो महानात्मा बुद्धिरित्यर्थः । अविवक्षितावभिधानम-
 भिधाता च यस्य । हिरण्यगर्भ एव मन्त्रस्याभिधाता । किंतु
 व्यवहारे मन्त्रः कंचित्पुरुषविशेषमभिधातृत्वेन गृह्णाति । विशि-
 ष्ठार्थं चानुवक्ति । तस्मात्तृतीयपुरुषप्रयोगोऽकिंचित्करः । न
 तस्य कोऽप्यर्थः । मन्त्रा दृष्टा नतु कृताः ।
 १२ कृतकत्वेऽहमिति प्रयोग आवश्यकः ।
 २३ तस्मात् ' विधेम ' इत्यस्य हविःशब्देन नतिरन्वयः । हविः-
 शब्देन सह यथाऽनुकूलोऽर्थो भवेत्तथा ' विधेम ' इत्यस्यार्थः
 कार्यः । ' विधेम ' = परिचरेमिति वस्तुतोऽर्थः । कृष्णला =
 गुञ्जा । शतगुञ्जं हिरण्यं चरौ निधेयं तेन शतायुर्भवति ।
 २७ सर्वभूतानामन्तः प्रकाशस्तेन कृतः ।
 ८९३ २ हिरण्यगर्भः शरीराद्युपेतः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८९३

३ परमात्मा सर्वान्विशेषान्त्यजति तस्मात्स हिरण्यः । परमात्मा क्षेत्रज्ञस्य हिरण्यगर्भस्य प्रकृतिः । हिरण्यगर्भः स्वतो हिरण्यमयः सुवर्णमयो गर्भः (१) । अथवा । सर्वेषां प्राणिनामयं हिरण्यमयो गर्भः ।

१० ' अस्थिस्नायुमज्जानः ' पुरुषस्य गुणान्गृह्णाति (निरु० १४ । ९) ।

११-१२ इतरेतरशक्तिग्रहणमेव रक्तशुक्रयोर्व्यतिपङ्कः ।

२३ ' इति सा निगदव्याख्याता ' (२०) न व्याख्यातम् ।

८९४

९ कारिष्यमाणं क्रियमाणं च भूतम् । तस्य भूतस्य कर्ता । ' कृतं च ' किं न कथितम् । कृतस्यापि स एव कर्ता ।

१२ अप्मु भवमाप्यम् ।

१३ व्यूहेन = पृथक्पृथक् । धातू विचरन्नन्तःप्रविशन् । अकृतात्मभिर्धैरात्मा न वशीकृतस्तैरज्ञैः ।

१६ वैश्वकर्मणो मागः ।

२० विषुवान्नाभैकविंशमहः । यागविशेषस्य नाम ।

८९५

३ ' इन्द्रो विश्वकर्माऽभवत्प्रजापतिर्विश्वकर्माऽभवत् ' (ऐ० ब्रा० १८ । ८) । एवं विश्वकर्मणोऽनुभावः पराक्रमः सर्वस्थानेषु वर्तते । तथापि लिङ्गबहुत्वात्स मध्यमः ।

८९६

९ अभिसंपन्नानि = प्राप्तवन्ति । तद्भावं गतानि । ' इष इच्छायाम् ' (धा० ६ । ६०) ' इष गतौ ' (धा० ४ । २१) ' इष आभीक्ष्ये ' (धा० ९ । ९३) च । इष्टकान्तयोः को भेदः । तथा क्रान्तगतयोः । इषधातोर्मतनतार्थो कथमुद्भवतः । तेषां भूतानां तेषु भूतोप्विष्टानि० नतानि वाऽद्भिः सह संमोदन्त इष्टानि भूतानि (१४-१९) ।

१२-१३ भावना = संस्कारः (ट०) । तस्य विश्वकर्मणः परिज्ञानं तस्मिञ्श्रद्धा तस्योपासना ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८९६

१३ तेन विश्वकर्मणा सह ।

१४ परियुताभिः = परितो बहद्भिः ।

१४-१५ सम् = तेन कर्मणा समानम् ।

१६ सप्तशब्दो न कुत्रापि व्याख्यातः । सप्तऋषयः = सप्तर्षि-
संज्ञकस्तारकासमुच्चयविशेषः । ' ऋष आकर्षणे दर्शने वा '
' ऋषी गतौ ' (धा० ६ । ७) । नत्वाकर्षणे दर्शने वा ।

१६-१७ 'तत्र संमोदन्ते यत्रैतानि सप्तऋषीणानि ज्योतींषि' इति यास्क-
कृतोऽर्थः (८९५ । ११-१२) । तेभ्यो ज्योतिर्भ्यः परः ।
तानि ज्योतींष्यादित्येन संमिलन्ति ।

१७ अधिदैवते ' तेभ्यः पर आदित्यस्तान्येतास्मिन्नेकं भवन्ति '
(८९५ । १२) न व्याख्यातम् । दुर्गेण कृतोऽर्थो निरु-
क्तमूलार्त्तिकचिद्भिन्नः ।

१८ एकं सन्तं बहुधा विश्वमाहुः । परे = देवतासतत्त्वविदः ।
' यत्र परे सप्तऋषीनेकमाहुः ' (८९५ । ७) इति ऋग-
न्वयः । अस्य दुर्गेण द्वे वाक्ये कृते ।

२४ विज्ञानसतत्त्वमात्रं = केवलं विशेषरहितं विज्ञानम् । तच्च
सविशेषविज्ञानस्य बीजम् ।

८९७

१ ततः परमात्मनः प्रच्युताः । बिभ्रत इत्यादि वाक्यमपूर्णम् ।
बिभ्रतीति विपरिणामेन पूर्णं भवेत् ।

२ यावद्वेदान्तशास्त्रेण ताद्भाव्यं परमात्मैकीभावः शिष्यत उपदि-
श्यते तावत् । उपदेशात्प्रागित्यर्थः ।

३-४ शरीरं क्षेत्रं परमात्मा क्षेत्रज्ञः । कश्चिज्जीवात्मा स्वविशिष्टविज्ञान-
शक्त्याऽधिकां हिरण्यगर्भावस्थामनुभवति । हिरण्यगर्भावस्था-
मनुभवन्मन्त्रेण व्याख्यायत इति तद्व्याख्यानमधिदैवमि-
त्युच्यते ।

६ महतीमधिदैवावस्थामनपेक्ष्य ।

६-७ शरीरे शरीरे वर्तमान आत्मा विश्वकर्मा परमात्मैवेत्युपदेशः ।

पत्रं

८९७

पङ्क्तिः

- ६-७ अस्य विश्वकर्मणस्तद्व्याख्यानमध्यात्मम् । इमानि त्रिचतुराणि वाक्यान्यपूर्णानि गलितशब्दानि भवेयुः (१-७) ।
- ९ वायोर्यः क्रियापरिस्पन्दः प्राणस्तस्य तत्कृतत्वात् ।
- ११ सर्वप्रज्ञातः = सर्वैः प्रज्ञातः । सर्वेषां प्रज्ञातेतीष्टम् । ' सर्वप्रज्ञानः ' सर्वप्रज्ञाता ' वा पाठः स्यात् ।
- १४-१९ विक्षेपः = विभागोऽनेकधाकरणम् ।
- १९-१६ विक्षिप्तविहितानां च तेषामिन्द्रियाणाम् । भिन्नभिन्नशक्तिभिरिन्द्रियाणि विक्षिप्तानि विभक्तानि । अस्येन्द्रियस्यायं विषय एवं विहितानि च ।
- १६ संदर्शयिता = तान्विषयानिन्द्रियेभ्य आत्मा सम्यग्दर्शयति । विषयाणां सम्यग्ज्ञानं यदिन्द्रियैरवाप्यते तदात्माधीनम् । विक्षिप्तेभ्यो विहितानां तद्योग्यानां विषयाणाम् । परमात्मेन्द्रियेभ्यो विषयान्दर्शयति ।
- १७ तदधिष्ठितानां = तेन परमात्मनाऽधिष्ठितानाम् । विषयालोकाय विषयप्रत्यक्षयोन्द्रियेषु सामर्थ्यमुपजनयत्यात्मा ।
- १८ तेषु तोष्विन्द्रियादिषु परमात्मनः शक्तिविक्षेपात् । पूर्वस्मिन्नर्थे ' तेषाम् ' (८९९ । ९) इत्यनेन सर्वनाम्ना भूतानि न संनिहितानीति विज्ञाप्यते । अत्र तु ' एषाम् ' (८९९ । १४) इत्यनेन संनिहितानीन्द्रियाणि विज्ञाप्यन्ते । तथैव ' तेभ्यः पर आदित्यः ' (८९९ । १२) इत्यत्र ज्योतीषि दूराणि । ' एभ्यः पर आत्मा ' (८९९ । १३) इत्यत्रेन्द्रियाणि संनिहितानि । तथैव ' यत्रैतानि ' (११) ' यत्रेमानि ' (१६) इत्यत्र स एव भेदः । एतस्मिन्नात्मनि तानीन्द्रियाणि । अत्रेन्द्रियेभ्य आत्मा संनिहिततरः । ' यत्रैतानि ' अयं प्रामादिकः पाठः स्यात् । मूलपाठः ' यत्र तानि ' इति भवेत् । एषामिन्द्रियाणामिष्टानि जीवात्माख्यानि सत्त्वानि तत्र संमोदन्ते यत्रेमानि० इत्यादि

पत्रं

पङ्क्तिः

८५७

१८-२० क्षेत्रज्ञविभूतीनामिष्टानि यानि जीवात्माख्यानि सत्त्वानि तानि ।

२० सप्तेन्द्रियाणि = पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च ।

२०-२१ ऋषीणानि = विषयान्द्रष्टृणि । ऋषीणानि = द्रष्टृणि । इन्द्रियाण्येव ज्योतीषि ।

२१ अध्यात्मे ' व्याप्ता ' (८५५ । १३) ' एभ्यः पर आत्मा तान्येतस्मिन्नेकं भवन्ति ' (१६—१७) । उभयार्थनिरूपणे ' क्रान्तानि वा गतानि वा ' (१० ॥ १९) न व्याख्यातम् ।

२३-२४ ' यदुपविष्टम्भात् ' इदं दुर्बोधम् । ' यदवष्टम्भात् ' इति पाठः स्यात् । अथवा । उपविष्टम्भः = अवष्टम्भः । शक्तिरेवान्नम् । तस्यान्नस्यावष्टम्भ आश्रयः ।

८५८

३ स्वधारूपा शक्तिः । स्वधाऽन्नम् । सर्वेभ्यो भावेभ्यः परम् ।

४ मन्त्रः परमोष्ठिन आर्षम् ।

६ यावत्संभवस्तावन्मन्त्राणां विषयो योज्यः । योऽर्थः संभवति स उत्पाद्यः ।

१० इतिहासः = इतिवृत्तम् (११) ।

११ परस्य विश्वकर्मणः कृतिः । सैर्वार्थवादः । परकृतिवर्णनरूपोऽर्थवादः ।

१३ द्विष्टौ = विधौ । उदितो विवक्षितः (ट.) । विधौ चोदनायां योऽर्थो वक्तुमिष्टस्तस्य समर्थनाय । अर्थवादस्य प्रयोजनं विध्युदितार्थप्रतिपत्तिः

१५ ' विश्वकर्मा ह भौवनः ' निरुक्तमूले ' ह ' (८५५ । १७-१८) नास्ति । ' विश्वकर्मा ह भौवनोऽन्तत ईजे ' (शाङ्ख० श्रौ० १६ । २) । तेन हतेन विश्वकर्मा भौवन ईजे ' (शत० ब्रा० १३ । ७ । १ । १४) ' सर्वं सर्व-

पत्रं

८९८

पङ्क्तिः

- १९ मेघः ' (शाङ्खा० श्रौ० १९ । १९) । यथोदितं सर्वनामकं सर्वमेघनामकमिदं कर्म । संबन्धदर्शनेन = अस्य सर्वैर्वस्तुभिः संबन्धं दृष्ट्वा । यथोदितं = सर्वमेघवर्णनं शाङ्खा० श्रौ० १९ अध्याये । शत० ब्रा० १३ । ७ । १ । अध्याये च ।
- १६ ' सर्वं सर्वमेघः ' (शाङ्खा० श्रौ० १९ । १७) इत्यनेन सर्वस्य सर्वात्मकत्वम् । वैश्वकर्मणीमवस्थामात्मन्युक्तीय = अहं विश्वकर्मणि निश्चित्य ।
- १७ ' भूतेषु चाऽऽत्मनः ' (होता) इति पाठ इष्टः । होता = यो जुहोति । भूतान्यात्मनि जुहोत्यात्मानं च भूतेषु । ' हन्त सर्वेषु भूतेष्व्वात्मानं जुह्वानि ' (शा० श्रौ० १९ । २) । ' भुवनानामात्मनि होता भूतेषु चाऽऽत्मानम् ' (८९९ । १८) इदं निरुक्तमूले न वर्तते ।
- १८ ' सर्वमेघे सर्वाणि भूतानि जुह्वांचकार ' (८९९ । १८) न व्याख्यातम् ।
- २० सर्वमेघसंपत् दर्शनेन श्रुत्या शास्त्रेण वा कृता । ' दर्शनकृतः ' (२९) इति पाठे दर्शनं करोतीति दर्शनकृतस्य । यः शास्त्रं जानाति तस्य । सर्वेषु कर्मसु सर्वमेघः संपद्यते ।
- २०-२१ ' गार्हपत्येऽध्वरारणिमनुप्रहृत्याऽऽहवर्नीय उत्तरारणिमात्मन्यग्नीन्समारोप्यारण्यं प्रव्रजेत् ' (शा० श्रौ० १६ । १) ।
- २१ ' अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ' (शत० ब्रा० ३ । २ । १ । ३३-३६) अनेन = सायंहुतेन हविषा ।
- २१-२६ कस्माद्वाह्वणादिदमुद्धृतमिति न ज्ञायते । तेन तदर्थोऽपि न स्पष्टः ।
- २२ सर्वं हविरग्निमनुसरति । सर्वमग्निमनु ।
- २३ अनेन सकृद्दत्तेन हविषा सर्वं हुतं भवति । तेनेष्टा = तेन हविषा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८९८

२४ तावत् = तथैव । यस्यैते आहुती = यः सायं प्रातश्च जुहोति । ' द्वे आहुती ' (शत० ब्रा० २ । ३ । १ । २२-२९) ।

२९ न बद्धम् = अनन्तम् । यावज्जीवम् = जीवन्नेव । एतयोर्देव-
तयोः = एतयोरआहुत्योः । अन्यतरामाहुतिमनु दत्त्वा स बहूनि
नबद्धान्यनन्तान्याप्नोति । अग्निहोत्रात्सर्वप्राप्तिः । आनन्त्यप्रा-
प्तिरित्यर्थः ।

८९९

१ मेधे = कर्मणि । यथाऽग्निहोत्रे । सर्वः = न कश्चिद्विशिष्टो
जीवात्मा । यजमानस्य बुद्धिपुरःसरं सर्वात्मना तादात्म्यम् ।

१-२ सर्वेण हविषा । हविरपि सर्वम् । सर्वस्मिन्नग्नौ न विशिष्टे ।
सर्वस्यै देवतायै । सर्वार्थं = सर्वकामावाप्त्यर्थम् । आत्मानं
हुत्वा । सर्व एतादृशेन तादात्म्येन वस्तुतः सर्वं भवति । आदौ
भेदेऽप्यन्ते न कोऽपि भेदः ।

२ समासार्थः ' स यत्मायम्० ' इति ब्राह्मणवाक्यस्य ।

३ दर्शनतः = वैदिकवचसा ।

३-४ इतः सर्वमेधोऽर्हीतः । सर्वमेध इति निरूढा संज्ञा । तत्र सर्वप्रा-
णिनां होमो नाऽऽत्मनः ।

४ ' अश्वमेधस्त्रिरात्रो यज्ञक्रतुः ' (शा० श्रौ० १६ । १ । २) ।

' अश्वमेधादनन्तरं पुरुषमेधोऽवशिष्टकामावाप्तये ' (शा०

श्रौ० १६ । १० । २) । ' तस्मिन्सर्वमाश्वमेधिकं कर्म '

(शा० श्रौ० १६ । १० । ४) । ' तदनन्तरं सर्वमेधः ।

तस्मिन्पौरुषमेधिकं पुरम्नात्कर्म ' (शा० श्रौ० १६ । १९ ।

७) । ' पौरुषमेधिकं पञ्चममहः ' (शा० श्रौ० १६ । १९ ।

९) । ' तत्र पुरुषमालभन्ते ' (शा० श्रौ० १६ । १९ ।

१०) । ' वाजपेयः षष्ठम् ' (शा० श्रौ० १६ । १९ ।

११) । ' आप्तोर्यामः सप्तमम् ' (शा० श्रौ० १६ ।

१९ । १२) । ' तत्र सर्वान्मेधानालभन्ते ये केच प्राणिनः ,

पत्रं

पङ्क्तिः

८९९

४ (शा० श्रौ० १६ । १९ । १३) । ' अहीनः ' इत्या-
ङ्गिरसादियज्ञानां नाम (आ० श्रौ० १० । २) । ' अया-
हीनाः ' (आ० श्रौ० १० । १) । अश्रमेधे ' त्रीणि
मुत्यानि भवन्ति ' (आ० श्रौ० १० । ८) । इति त्रीण्या-
श्रमेधिकानि मुत्यानीत्यर्थः स्यात् । निरूढसंज्ञे सर्वमेधेऽहीने
त्रीण्याश्रमेधिकानि मुत्यानि पञ्च पौरुषमेधिकानि मुत्यानि
वाजपेयाप्तोर्यामौ च यागावन्तर्भवन्ति ।

६ आत्महोमस्याविधानात् = ' आत्मन्यग्नीन्तसमारोप्यारण्यं प्रत्र-
जेत् ' (शा० श्रौ० १६ । ६ । ३-४) ।
अनेनाऽऽत्महोमो विहित इति भाति । कदाचिद्विदं दुर्गपुस्तके
नाऽऽसीत् । ' आत्महोमस्य विधानात् ' (२६) इति पाठ
आत्महोमः कथमनुपपन्नः ।

७ सर्वभूतानि = विशेषान् = विशिष्टात्मनः = जीवात्मनः ।

८ पश्यन् तत्त्वम् । आत्मज्ञानीत्यर्थः ।

८-९ ' स्वयमेव जुहाव ' इत्यन्वयः ।

१८-१९ होता कथमृषिः । यथा ऋषिर्मन्त्रान्पश्यति तथा होता द्रव्य-
गुणकर्मदेवतायाश्चाथर्थ्यं पश्यति तस्मात् ।

८९०

१ मुख्यस्य निष्प्रपञ्चस्य पारमार्थिकरूपस्य च्छादयिता प्रजो-
त्पत्त्या । निष्प्रपञ्चं प्रपञ्चेनाऽऽच्छादयत् ।

२ तथा मुख्यो निष्प्रपञ्चः सन् ।

३ प्रजापतिः प्रयोगे सर्वमेधेऽवर्तत फले च । फलं प्राप्तवान् ।

१६ प्रयोगावस्था फलावस्था च=प्रयोगः सर्वमेधानुष्ठानम् । सैवावस्था ।
विश्वकर्मा सर्वमेधमनुष्ठितवान् सर्वमेधयागफलं च लब्धवान् ।
एतयोर्द्वयोरवस्थयोर्वर्तमानो विश्वकर्मोच्यते यजस्वेत्यादि ।

१८-१९ हविषि सर्वमेधो वर्तत इति वेदानुज्ञया मतिः कार्या । सर्वमेध
ईदृशेन दर्शनेनानया मत्या संपद्यते ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८६० १९ अनया बुद्ध्या विश्वकर्मा सत्यमेव विश्वकर्मा भवति । मूले
‘ वर्धयमानः ’ (११) । वृत्तौ ‘ वर्धमानः ’ ।
- २१ दर्शनकृते = सर्वमेधसंपहर्शनेनोत्पादिते ।
- २२ ‘ जनासः ’ (२६) इति छ. त. द. पाठो दुर्गेण स्वीकृतः ।
- २३ तव समानपतित्वमिच्छन्ति । यथा ज्ञानिनां पतिस्त्वं तथाऽ-
ज्ञानिनामपीति त्वामर्चयन्ति ।
- ८६१ ४ अधिभूतं प्रधानं येषां ते । ‘ त्वष्टा विश्वकर्मा ’ एते नामनी
कलाभिज्ञं भौतिकवस्तुषु कर्मकारिणं देवं दर्शयत इति पौरा-
णिका मन्यन्ते । त्वष्टा तक्ष्णाति । ‘ विश्वकर्मा ’ इत्यपि
तस्यैव नाम ।
- ५ आध्यात्मिकेऽर्थेऽपि सर्वज्ञानं सामान्यम् । त्वष्टेत्यादीनि ब्रह्म-
णोऽपि नामानि । तत्र न कोऽपि विरोधः । देवानां नामा-
न्यादौ मनुष्यनामान्यामन् ।
- ९-१ : ‘ तीर्णे ’ इत्यस्मात् ‘ त ’ ‘ अन्तरिक्षे ’ इत्यस्मात् ‘ अरु ’
‘ क्षियति ’ इत्यस्मात् ‘ क्षयः ’ ।
- १०-११ ‘ तूर्णमर्थं रक्षत्यश्नोतेर्वा ’ (८—६० । १४) इति मूले ।
‘ तूर्णं रक्षत्यश्नुते वा ’ इति दुर्गस्वीकृतपाठः । ‘ तूर्णम् ’
इत्यस्मात् ‘ त ’ ‘ अर्थम् ’ इत्यस्मात् ‘ अर ’ ‘ रक्षति ’
इत्यस्मात् ‘ क्षयः ’ ‘ अश्नुतेर्वा ’ इत्यस्मात् ‘ क्षयः ’ ।
- २३-२४ वाजिनं = भृशमन्नवन्तमिति यास्कः (१६) । दुर्गकृतोऽर्थो
भिन्नः । तेन ‘ भृशमन्नवन्तम् ’ इति दुर्गपाठे न स्यात् ।
- २४ गतं = ज्ञातम् । ‘ जृतिर्गतिः प्रीतिर्वा ’ (१६) ‘ सह-
स्वन्तं ’ (१७) ‘ घृतनाजितं ’ (१७) ‘ ताक्ष्यमिह ’
(१८) ‘ इति ’ (१८) न व्याख्यातम् ।
- ८६२ ८ किंतु तेन गरुत्मताऽस्य ताक्ष्यम्य वर्षकर्मासमानम् । तेनार्थं
पक्षिराजस्ताक्ष्यः ।
- २०-२१ मद्यःशब्दम्याजाद्येत्यादयोऽर्थाः ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८६२ २१ ' शवसा ' (१३) ' सहस्रसानिनी शतसानिनी ' (१४—
१५) ' सा ' (१५) ' एनां ' (१५) ' प्रयुवतीमिव '
(१५) वृत्तौ न पाठितम् ।
- ८६३ १-४ तेषां ब्राह्मणादानामनुग्रहः पूर्वः । यथा सूर्यो ज्योतिषाऽपस्त-
नोति तथेन्द्रो बलेन पञ्च कृद्धीरविलम्बेनैवेतस्ततः क्षिपति नाश-
यति ।
- ४ हविषा विधेम = हविर्दध्म इति हविषेत्यस्य हविरिति विपारिणामः ।
कस्मा इति संप्रदानार्थे चतुर्थी ।
- ५ अवैधुर्याय = अवैयश्याय ।
- ५-६ उपमानं ज्योतिषेति तृतीया । उपमेयमप इति द्वितीया ।
द्वितीयान्ततृतीयान्तयोः शब्दयोः कथमुपमानोपमेयभावः ।
- ७ सहस्रं शतं वा बहुसंख्याकं धनं ददातीति सहस्रसाः शतसाः ।
- ९ यथेषुसदृशीं युवतिं तरुणीं न वारयन्ते तथा । एवम् =
ईदृशी । अतितराम् ।
- ११ इषुः किमर्थं युवतिरित्युच्यते ।
- १४ ' वधकर्मणः ' (८६२ । १६) दुर्गस्वीकृतमूले नाऽऽसीत् ।
' मन्यन्त्यस्मादिषवः ' ' मन्युन्त्यस्मादिषवः ' वेति च (८६२
१६—१७) । अस्य कोऽर्थः । ' मन्यन्ति ' इति नैव
चतुर्थगणम्यमनघातो रूपम् ! किंतु ' मन्यन्ते ' इत्येव ।
- ८६४ २ इयेनः अभिचारयागः । अजिर एकाहः । आदिशब्देनेषुवज्रया-
गौ निर्दिष्टौ ।
- ३ ' मन्यो मरुत्वः ' (६) इतीन्द्रस्य नामनी ।
- ४ आरुजन्तः = आरुह्य रुजन्तः ! ' आरुह्य ' इत्यस्य स्थाने ' समा-
रुह्य ' वृत्तौ ।
- ५ धृषिता इति पदं नत्वधृषिताः ।
- ६ संशिश्रयमानाः = तीक्ष्णिकुर्वन्तः ।

पत्रं
८६४

षड्क्तिः

८ नरः = मरुतो न तु मनुष्यः ।

९ ' संनद्धाः कवाचिन इति वा ' (८६३ । २२) न व्याख्या-
तम् । कवचेनाग्निरूपाः । संनद्धा अत एवाग्निरूपाः ।

८६५

३ ' नः ' (८६४ । १८) ' वचनानि ' (१८) न
पठितम् ।

६ ' सविता सर्वस्य प्रसविता ' (८६४ । १९) इति भाष्ये ।
' सविता व्याख्यातः ' इति दुर्गः ।

१९ ' हैरण्यस्तूपः ' इत्यस्य स्थाने ग. च. ज. पुस्तकेषु ' आङ्गि-
रसः ' (३०) ।

२१ ' अरमयत् ' (१२) ' अतूर्णे ' (१४) न पठितम् ।

८६६

१ ' अनारम्भणे ' इत्यस्य स्थाने ' अनालम्बने ' इति पाठः
समीचीनः ।

२ ' सौवर्णी ' इति विशेषणस्य किं प्रयोजनम् । ' अतिजडाम् '
इत्यर्थः स्यात् । ' आभूतसंप्लवान् ' (२६) अत्र ' त् '
स्थाने ' न् ' प्रामादिकः ।

४ उपावृत्तं = भूमौ पतितम् । अनायासेन रजस्तस्मात्पदनेप्यलुपा-
वृत्तमश्वं यथाऽश्वबन्धो धृनुयादित्यन्वयः ।

५ धूयत इति धुनिर्मेघः ।

९ ' सविता समुदितारम् ' (८६५ । १४) इति न व्याख्यातम् ।
यस्मात्सवितुः समुदित्रा मेघेन संबन्धस्तस्मात्सविता मध्यमः । समु-
दितृ=सम्+ उन्+इत् । इधातोस्तृजन्तं रूपमेतृ नत्वितृ । समु-
देतृ । समुद्रं=सम्+उद्रम्=उद्रकसंग्रहयितारम्=उद्रकबन्धिता-
रम्(५) । अन्तरिक्षमेव समुद्रः । धुनिः=कम्पयिता । अतूर्तं=
अनवकाशे । अधुक्षदुदकानि ।

१३ कः स्तुतः । स्तुतः= स्तवः (दुर्गः) ।

१६ ' तदभिवादिन्येपरर्भवति ' इत्यस्य ' आदित्योऽपि सवितोच्यते '
इत्यनेन संबन्धः (१२) । ' तथा(१३) प्रोवाच ' (१६) इदं

पत्रं

पङ्क्तिः

८६६

१६ प्रक्षिप्तमिव भाति । दुर्बोधं च । अर्चन् हिरण्यस्तूपस्य पुत्रो न हिरण्यस्तूपः । हिरण्यस्तूपो हिरण्यरूपो हिरण्यव्रतो वा ।

८६७

१ 'अन्यकल्पीनः' एतत्प्रामादिकं रूपम् । 'आन्यकल्पिकः' इति साधु ।

१-२ हिरण्यमयः स्तूपो हिरण्यमयः स्तूपोऽस्येति वा (८६६।२२-२३) 'स्तूपः स्त्यायतेः संघातः' (२३) । 'आङ्गिरसः' (२४) न व्याख्यातम् । 'जुहे' (२४) न पठितम् ।

१९ तृतीयमण्डलद्रष्टा विश्वामित्रः । अस्य सूक्तस्य द्रष्टा प्रजापतिः । तेनायं प्रजापतिर्विश्वामित्रपुत्रः ।

२० 'सर्वरूपः पोषति प्रजा रमानुप्रदानेन' (१३-१४) सर्वाणि भूतानि' (१४) 'महच्चास्मै' (१५) 'प्रज्ञावत्त्वं' (१५) 'अपि वा' (१५) 'आदिलुप्तं' (१६) न व्याख्यातम् । 'इमाः' (१४) इत्यस्य स्थाने दुर्गवृत्तौ 'णनाः' (८६८ । १) ।

८६८

५ 'अस्मै' (८६७.१५) =त्वष्ट्रे । अस्य त्वष्टुरसुरत्वं महदित्यर्थः स्यात् ।

१२ 'अपि वा' (८६७ । १५) इत्यस्य न किमपि प्रयोजनम् । प्रक्षिप्तं स्यात् । दुर्गस्वीकृतपाठे 'अपि वा' नाऽऽसीदिति भाति । 'अस्मै' इत्यपि तथा ।

१४ व्यक्तेः सर्वं निरर्थकम् ।

१४-१५ प्रज्ञायां केचिदर्थं अभिव्यक्ता इतरेऽनभिव्यक्ताः ।

१५ 'असुरत्वमादिलुप्तं' (८६७ । १६) दुर्बोधम् ।

१९-२० वायुः 'वा गतिगन्धनयोः' (धा० २ । ४०) इत्यस्मात् । अथवा । वेतेर्गतिकर्मणः । अथवा । इ गतौ । वकार उपजनः ।

८६९

७ 'तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुत्तरः काल आयतिः' (अमरः २ । ८ । २९) ।

१० 'प्रवर्धय' इत्यस्य स्थाने 'प्रवर्धयतु' इति महाराष्ट्रपाठः (२९) ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८७१ १७ भाष्ये 'चोदयत्' (७) नतु 'चोदयति' ।
- ८७२ ७ जरया=वृद्ध्या ।
१५ भाष्ये 'चिरलब्धः' (८७१।११-१२) वृत्तौ 'अचिरलब्धः' ।
१७ प्राणानित्यादिपञ्चमाङ्कपाठभेदेषु च. पुस्तके 'प्राणान्० मा त्वमु-
त्क्रामीः' (२९) इत्यादि वर्तते । तत्र 'मा त्वमुत्क्रामीः'
इति शब्दा बृहदारण्यकोपनिषदि (६।१।१३) वर्तन्ते । तेषां
प्रयोजनम् (८७३।८) इत्यत्र । नात्र ।
- ८७३ १० 'प्रवर्धय च नः' (८७२।२५) 'रन्धय च' (२५)
न पठितम् ।
१०-११ अस्माकम् (अनुगृहाण) अस्मान् ।
१४ असुनीतिर्हविर्न भजते । तस्मै हविर्न दीयते । अतो घृतशब्दोऽ-
त्रोदकवाची ।
- ८७४ २० 'हि'(१४)न व्याख्यातम् । 'ज्योतिषो वोदकस्य वा' (१७)
इति भाष्ये । वृत्तौ 'वा' स्थाने 'च'कारः (८७५।७) । आयुः
ज्योतिः स्यादुदकं वा स्यादिति भाष्यार्थो भवेत् । दुर्गमतेऽयं
श्लोकः शब्दो मध्यमस्य ज्योतिष उदकस्य च ।
- ८७५ ५ 'बोधयत्यस्मृतः' इत्यपपाठो भवेत् । अस्मृतो न स्मृतोऽहं
त्वयेत्यायुं बोधयतीत्यर्थः स्यात् । भाष्ये 'बोधयन्' (८७४।
१६) इति न 'बोधयति' इति । 'बोधयत्यस्मृत इति' प्रक्षिप्तं
भाति यस्मात् 'मनुष्यस्य कर्णौ' इत्यन्वयः ।
७ सतत्त्वः=तत्त्वतः ।
- ८७६ ७-८ अभिमतफल० + अभिमतकाम० = अभिमतफलकाम० इति
ग. च. ज. पुस्तकेषु द्वौ पाठौ मिश्रितौ (२६) ।
९-१० अस्मानाकम्पितहृदयान्करोति ।
१३-१४ योऽस्मान्प्रति पापमतिस्तं पापमतिम् ।
२३ 'स्रवेदिति० नष्टमित्येवं' (२८-३०) ग. च. ज. पुस्तकेषु
(१६-१८) इत्यत्र वर्तमानमप्यत्राधिकं प्रान्तभागे विवरण-
मिति लिखितं वृत्तौ लेखकप्रमादादन्तर्भावितं स्यात् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८७७ ८-९ 'परुषि० सुखात्किल' दुर्बोधम् । पाठावपि न समीचीनौ (२९) ।
 ९ 'तस्य शेषोऽस्येति वा' इदमपि दुर्बोधम् ।
- ८७८ ८-९ 'हि' (१) 'जातानि तानि' (२) न पठितम् ।
 १ इति वा' इत्यत्र वाशब्दः । स वृत्तौ न व्याख्यातः ।
 २४ 'यज्ञोखा' (१८) न व्याख्याता । दुर्गस्वीकृतमूले
 'यज्ञोऽस्य' इति पाठः स्यात् । चयने मृत्तिकाया उखा निर्मा-
 यते । तस्यां चाग्निर्निधीयते । 'मित्रैतां त उखां परिददाम्य-
 भित्त्या एषा मा भेदि । इति मित्रायैवैनां परिददात्यभित्त्यै ।
 यदि मित्रायापरित्ता भिद्येत' (मै० सं० ३।१।८) । मा स्त्रिधत्
 = मा भिद्यताम् ।
- ८७९ १२ 'धर्मस्य' इत्यस्य स्थाने ग. च. ज. पुस्तकेषु 'वामदेवस्य' (२७
 २८) ।
 १७ पाकशब्द ऋग्वेदेऽपकप्रज्ञवाची ।
 १८ 'अन्तित इति ऋषेर्दृष्टार्थस्य' (८) 'एषा' (९) न
 पठितम् । प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता' (८) न व्याख्यातम् ।
 २० 'स च तामुपजीवति' इत्यवश्यमर्थसमाप्त्यर्थम् । 'वृत्तेरध्यात्म
 वत्' दुर्बोधम् ।
 २१ 'पुरुरवा असीति प्राण एव तत्' (मै० सं० ३।९।५) ।
- ८८१ १३ 'तथा तथैनम्' अत्रैतदशब्दो व्यर्थः ।
 १४ तस्य पुरुरवसोऽधिकारस्तस्मादुद्भवः । कस्योद्भवः । अथवा ।
 तदधिकारस्योद्भवः = तदधिकारः । उद्भवशब्दो व्यर्थः ।
 २१ ऐडे = इडापुत्रे ।
 २२ प्रजायमानां = प्रसूयमानाम् ।
 २३ 'अपरप्रहेयाः' इति ग. च. ज. पाठः (२९) । स
 एवार्थः ।
- ८८२ २ 'नोऽसुरान्' अत्र नःशब्दो व्यर्थः ।
 इति दशमोऽध्यायः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

अथैकादशोऽध्यायः ।

८८३ २०-२१ ' सोममादाय सहस्रं सवानयुतं च सवानभरत् ' इति सर-
लोऽन्वयः ।

८८४ १ तेषां केषाम् । पृष्ठ्यानां दक्षिणाभिः संबन्ध इत्यर्थः स्यात् ।

२-३ ' तृप्तौ प्राप्तायाम् ' इत्यन्वयः ।

३ पृथक्त्वपक्षः = अनेकदेवतापक्षः । पृथक्त्वपक्षे = यदा बहवो
देवास्तदेन्द्रः सोमपानेन मत्तो भूत्वेतगान्देवान्सोमपानविगहिता-
नृवाऽभ्यजयत् ।

३-४ सोमाहरणे ये प्रतिबन्धमकुर्वन्ते विश्वावस्वादयो गन्धर्वा अरा-
तयः । तान्पृथिव्यामवरुह्याजहात् । ते गन्धर्वा इन्द्रं पृथि-
व्यामनुसर्तुं नाशकनुवन् ।

४ त्रित्वं तिस्र एव देवता इति नैरुक्तपक्षः । दुर्गकृतमिदं विव-
रणं क्लिष्टम् । त्रित्वपक्षे = यदा तिस्र एव देवतास्तदाऽदाना-
न्यजमानान्दानमतीनकरोत् ।

८ ' ऐन्द्रे च सूक्ते सोमपानेन च स्तुतस्तस्मादिन्द्रं मन्यन्ते '
(८८३ । १४) न व्याख्यातम् । कोऽयं श्येन इति
प्रश्ने श्येन इन्द्रो यस्मादियमृगिन्द्रसूक्ते वर्तते । श्येनः सोमपाने-
नात्र युक्तः । सोमपानं च नित्यमिन्द्रेण संबद्धम् ।

९ यदा सहस्रशब्देन सहस्रसाव्यं सत्रमभिप्रेतं तदाऽयुतं दक्षिणा
न सवाः । ' सहस्रं सहस्रसाव्यम् ' इत्यत्र ' सहस्रं '
(८८३ । ??) ' तत्रायुतं सोमभक्षाः ' (१२)
' इति ' (' इत्येन्द्रे ' इत्यत्र १४) न पठ्यते ।

१० सहस्रसाव्यं सत्रं विकल्प्यते ।

१२ आवृत्तिरग्नेः = अग्निष्टोमभ्याऽऽवृत्तिः ।

१३-१४ अहनि दश चममभक्षाः ।

१५-१६ सोमपीथं निष्क्रीणीते = सोमपानमर्हति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८८४

१६ प्रश्लेषे = रूढिबाधकारणे । सहस्रशब्देन रूढ्या सहस्रसा-
व्यमेव सत्रमभिप्रेतम् ।

१७ सत्रे ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा न दीयन्ते । इदं रूढिबाधाय न पर्याप्तं
कारणम् ।

२० प्रसर्पका नाम ऋत्विग्विशेषाः । ते सोमयागे ब्राह्मणमनु प्रस-
र्पन्ति । तेभ्यो दीयमानः सोमः प्रासर्पकः (आ० श्रौ० ९ । ३) ।

२४ अस्ति प्राप्तिः = दृश्यत उदाहरणेभ्यः । हिमशब्दो विशिष्टा-
र्थवाची सामान्य उदकार्थं प्रयुज्यते ।

२९ एवं वाऽर्थः कर्तव्यः ।

८८५

२ हिमवति भवो हैमवतः । मूजवति भवो मौजवतः ।

८ स सोम आत्मानं त्रिषु स्थानेषु स्थापनेन तनूकरणे तनूत्रय-
करणेऽयतत । इदं प्रान्तभागे विवरणत्वेन लिखितं मूलेऽन्तर्भा-
वितं स्यात् । अथवा । सतनूकरण इति सर्वं सामासिकं
पदम् । इति सोमस्य सतनूकरणे ब्राह्मणम् । ' यत्र वा
एषोऽग्रे देवानां हविर्भवत् तद्धेक्षां चक्रे मैव सर्वेणैवाऽऽत्मना देवानां
हविर्भूवमिति स एतास्तिस्त्रस्तनूरेषु लोकेषु विन्यधत् ' (शत०
ब्रा० ३ । ९ । ४ । १२) । ' तद्धै देवा अम्पृण्वत् ।
तेऽस्यैतेनैवैतास्तनूराप्नुन्वत्स कृत्स्न एव देवानां हविरभवत् '
(शत० ब्रा० ३ । ९ । ४ । १३) । ' इति स तनूकरणे '
इति मैत्रायणीसंहितायां (४ । ९ । ४) नास्ति । तत्र
' स्वतनूभूतम् ' इत्यस्य स्थाने ' सतनुं भूतं ' वर्तेते । ' आ-
प्याययति ' इत्यस्य स्थाने च ' आप्याययन्ति ' ।

१० आमानं सोममेवाऽऽपाद्येत्यन्वयः ।

१३ आश्चर्यं = चित्रतः = विरला = कचित् ।

१६ परार्थं = परार्था ।

२३ 'इति सा निगद्व्याख्याता(१९)' न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

८८६

९ अप्राकृतः = अप्रकृतः = अप्रस्तुतः । तस्य प्रक्रिया उक्तिः ।

६ अधिदैवमापन्नश्चन्द्रमाः कथं प्रकृतः ।

१७ 'सूर्याविदे वधूवृखं दद्यात्' (आ० गृ० १।८।८)
इत्यनेन कथं विवाहे विनियोगः ।

८८७

८ एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः' (शत० ब्रा०
१।६।४।९) ।

८८८

३ 'नाराशंसावभिप्रेत्य पूर्वपक्षापरपक्षाविति वा' (८८७।१६)
न व्याख्यातम् । 'आप्यायितांश्चमसान्सादयन्ति ते नाराशंसा
भवन्ति' (आ० श्रौ० ९।६) । नाराशंसा नाम त्रयः
पितृगणा ऊमा और्वाः काव्याश्चेति । ते चानुसवनमाप्यायितानां
चमसानां देवता भवन्तीति नाराशंसाश्चमसा भवन्ति । सोमपक्षे
नाराशंसांश्चमसानाप्याययन्ति । चन्द्रमःपक्षे पूर्वपक्षे वर्धमानाः
कला अपरपक्षे विर्हायमानाः कलाः ।६ 'आप्यायस्व सं ते पयांमीति भक्षशेषान्' (आप्याययन्ति)
(मा० श्रौ० २।४।१।२) ।

१० अविनाभावात्कर्मणः । किमिदं कर्म ।

१४ एकैकश्येन = एकैकशस्तस्य भावः ।

१६ ओषधेः सोमस्य चन्द्रमसः संपद्यते । अम्मिन्वाक्ये कः कर्ता ।
चद्रममा साम्यं संपद्यत इति स्यत् ।

१७ स्मरन्ति (= पठन्ति) यस्मादायुर्वेदः स्मृतिसदृशः ।

'सवेषामेव सोमानां पत्राणो दश पञ्च च ॥

तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥

एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तथा ।

शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत्पञ्चदशच्छदः ॥

शीर्थते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।

कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ' ॥

(सुश्रुतः २९।२०—२२) ।

८८९

३ 'सोमो लक्षणत्वात्' दुर्बोधम् । सोमोपलक्षणत्वात् ' स्यात् ।
यथा मामोपलक्षण० पूर्वम् । मासश्चन्द्रमाः सोममुपलक्षयति
यथा पूर्वं सोमो माममुपलक्षयत् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
 ८९० १० अतिमूर्तिर्दूणाशो बहुसुवर्ण इत्येकाहस्य त्रीणि नामानि । 'शुक्लं चान्द्रमस्या' (आ० श्रौ० ९ । ८) ।
- १३-१४ पूर्वपक्षाद्युपक्रम्य = पूर्वपक्षादिमुपक्रम्य ' इति स्यात् ।
 ' पूर्वपक्षादिमभिप्रेत्य ' (३-४) इति मूले ।
- १५-१६ ' अपरपक्षान्तेषु ' अत्र बहुवचनस्य न किमपि प्रयोजनम् ।
- २१ ' एककर्म ' इदमशुद्धम् । सर्वं वाक्यं दुर्बोधम् ।
- २२ ' पूर्णे चन्द्रमस्युपवसेत्पौर्णमासीमदर्शनेऽमावास्थायाम् ' (मा० श्रौ० १ । ४ । १ । १) । वृत्तावुपवसेदित्यस्य स्थाने ' उपचये ' शब्दोऽशुद्धः । ' इत्यर्धमासेज्यामभिप्रेत्य ' (६) न व्याख्यातम् । अर्धमासेज्या = दर्शपूर्णमासेष्टिः ।
- ८९१ ६ समाने हविषि=राजयक्ष्मग्रह्रातस्येष्टौ (म० सं० २ । २ । ७ ॥ ४ । १२ । २) ।
- १५ ' इह तु० स्मरन्ति ' इति पूर्वपक्षः ।
 भूमैर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम् ।
 लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्मृतम् ॥ (ब्रह्मपुराणम् २३ । ९) ।
- १७-१९ ' सर्वदेवतानां द्युस्थानत्वे सत्यपि कर्मसंयोगेन विशेषस्थानानि-
 यमो विवक्षितः ' इत्यन्वयः ।
- २० ऐन्द्रेषु=इन्द्रकर्मसु ।
- २३ तस्य = इन्द्रस्य । कर्तृत्वेन मेघवधस्य ।
- ८९२ ७ मृत्युः = मृच्युः । मृ = मृतं + च्यु = च्यावयति ।
 ८ क्षीणकर्मा = हस्तपादान्प्रसारयितुं न शक्नोति ।
- १५-१७ ' परं मृत्यो ध्रुवं मृत्यो० भवति ' इदं दुर्गस्वीकृतमूले नाऽऽ-
 सीत् । ' परं मृत्यो ध्रुवं मृत्यो० ' इत्यादि न भाष्यम् । किं-
 त्वृक्सदृशो मन्त्रः । कुतस्त्य इति न ज्ञायते । ' कथितं तेन
 मृत्यो मृतं च्यावयते भवति मृत्यो० ' इदं दुर्बोधम् । ' मदेर्वा
 मुदेर्वा तेषामेषा भवति ' इदमसंबद्धम् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८९२ १९ 'संकुसुको नाम यमपुत्रस्तस्याऽऽर्षम्' इति पाठोऽवश्यः । अन्यथा नामपदस्य न किमपि प्रयोजनम् । 'संकुसुकस्याऽऽर्षम्' इति समीचीनतरम् ।
- २४ 'तवानाधृष्याः' इत्यन्वयः ।
- ८९३ १-३ 'त्वेषामित्था०' इदं कस्योदाहरणम् । इदमप्यसंबद्धम् । 'त्वेषामित्था० व्याख्याता' दुर्गम्बीकृतपाठे नाऽऽसीत् ।
- २१ 'मोदमानाय स्तूयमानाय' (१२) 'सर्वं विभूताय' (१३) न पठितम् । 'स्तूयमानाय' इति 'शब्दाख्यमानाय' (१२) इत्यस्यार्थः ।
- २२ 'प्रीती' (१३) न व्याख्यातम् ।
- ८९४ १ 'बलमायतिर्महती' इदं केषां शब्दानां विवरणम् । भाष्ये न तादृशाः शब्दाः ।
- ३ 'द्यावापृथिव्यौ वः परिचरतः' (८९३ । १४) अत्र 'वः' शब्दः किमर्थः । प्रसिप्तः स्यात् ।
- ६-७ उत्तमेन ज्योतिषा सह व्यपदेशात्पठनात् ।
- १९ 'उदाशिश्चियत्' (१०) 'सविता देव इति' (११) न पठितम् ।
- १७ सर्वगन्तृणां गमनस्य वायुपूर्वकत्वादित्यन्वयः । उच्छ्रयणमुपपद्यते ।
- २१ 'ऋत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविकर्मुर्वनं विश्वमुपाः' ।
- ८९९ ७ अथर्ववेदे 'ददातु' इत्यस्य स्थाने 'दधातु' सत्यधमेणः' इत्यस्य स्थाने 'विश्वराधसः' (अथ० सं० ७ । १७ । २) । मैत्रायण्ये 'ददातु दाशुपे' इत्यस्य स्थाने 'दधातु नो रायिम्' (मै० सं० ४ । १२ । ६) ।
- १७ 'ददाति' । मूले 'ददातु' (९) ।
- ८९७ १० यथा मध्यस्थानदेवतासु वायुः प्रथमस्तथा मध्यस्थानदेवगणेषु मरुतः प्रथमाः ।
- ११ यत्र बहुभिर्मरुद्भिर्मरुत्समुदायेन कर्म साध्यं तत्र वायुर्देवता ।
- ११-१३ मत्सकपालेषु मारुतेषु गणेषु विज्ञाताः । मरुत्त्वानि (मै० सं० १ । ६ ॥ २ । ११ । १) ।

१३
८९७

पङ्क्तिः

१२-१३ यत्र सप्तकपालेषु पुरोडाशः क्रियते तत्र मरुतः पृथक्शो निर्दिश्यन्ते । 'सप्तकपाला भवन्ति सप्तमस मारुता गणास्तस्मात्सप्तकपाला गणेन गणेन जुहोति गणश एव मरुतः प्रीणाति' (मै० सं० ३।३।१०) । 'सप्तकपालो भवति सप्त हि मरुतः' (मै० सं० २।१।८) ।

१३ सप्तस्कन्धाः । तैर्वायुना सह विचरन्ति मरुतः । स्कन्धाः = गणाः ।

१४-१५ सर्वे देवगणा मरुतः ।

१५ मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः पुमान्सार्धं च मध्यमः ।

गणाश्च सर्वे मरुतो गुणभेदात्पृथक्पृथक् ॥ (बृहद्दे० ९।४८) ।
दुर्गकाले वृहद्देवताग्रन्थे भिन्नाः पाठा आसन् । अधिकाश्च श्लोकाः । च. ट. पुस्तकयोः—

' सर्वा स्त्री मध्यमस्थाना पुमान्वायुश्च सर्वगः । गणाश्च सर्वे मरुत इति वृद्धानुशासनम् ' ॥ इति पाठान्तरं ग्रन्थे दीयते ।

२०-२१ 'वा मितरोचिनः' इत्यत्रापि 'वा+अमितरोचिनः' इति संधिविग्रहः शक्यः ।

२१ 'तेषाम्' इत्यस्य केनान्वयः । 'तेषां मरुतां भाष्यस्य' इत्यन्वये कोऽर्थः । समानमंहितत्वाद्भाष्यस्य तेषाम् । तेषां=मरुताम् । मरुच्छब्दस्य भाष्यं समानमंहितम् । समाना संहिता यत्र तत्समानसंहितम् । 'मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनः' । 'मरुतो मितराविणः' इत्यत्र मितराविणोऽमितराविणश्चेति द्वे अपि पदे संभवतः । ' वा मितरोचिनः' इत्यत्रापि तथैव । एवं भाष्यं समानसंहितम् ।

२२ 'महद्भवन्ति इति महाराष्ट्रपाठः । ग. ज. पाठः ' महद्भवन्ति ' (३०) । अयं पाठः शुद्धः । किंत्वयं निरुक्तमूले नैकस्मिन्नपि पुस्तके लभ्यते । ' रवन्ति ' इदमशुद्धम् । दुर्गस्वीकृतमूले 'महद्भवन्ति' इति पाठः स्यात् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ८९८ १ मितशब्देनामितशब्देन वा बाहुल्यं बहुप्रकारता च दर्शयते ।
‘महद्भुवन्ति’ इत्यनेन रवस्य महत्ता दर्शयते ।
- १७ ‘अश्रपतनैः’ (७) ‘कल्याणकर्माणो कल्याणप्रज्ञाः’ (८-९)
न पठितम् ।
- ८९९ १४ ‘सहजोषणाः’ (७) न पठितम् । ‘तृष्णाकृतृष्यतेरुदन्युरुदन्य-
तेः’ (८) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- २१-२२ तद्व्यापत्तये = विरिन्नं वा व्यापन्नं व्यर्थं मा भूत् ।
- २४ ‘मह्यं ग्रहं गृह्णाति’ इत्यस्य स्थाने मै० सं० (४।८।७) ‘मह्यं
गृह्णाति मह्यं गृह्णाति’ इति ।
- ९०० ३ मेघे भवा मेघ्याः ।
- १२ ऋतेन = भृत्या । भान्ति भवन्ति वा = युज्यन्ते ।
- ९०१ ३-४ अजामितायै = पुनरुक्तिपरिहाराय ।
- ९-१० ‘सूरख्यानाः सूरप्रज्ञाः’ (९००।१८) न पठितम् ।
- १० ‘तस्य यत्स्वपतः’ (९००।२४) अत्र ‘तस्य’ इत्यस्य स्थाने
दुर्गस्वीकृतमूले ‘अस्य’ आसीदिति भाति ।
- १९ ‘विभ्वा’ इदं प्रथमैकवचनम् । ‘विभ्वना’ इति तृतीयैकवचनम् ।
- ९०२ ९-१० ‘यदस्वपथ गृहे’ (९००।२४) न पठितम् ।
- १४ अङ्गानां रसोऽङ्गिरसः (बृह० उ० १।३।८) ।
- ९०३ १ पृष्ठत्रयस्येदं पार्थिकम् ।
- २ ‘बहुरूपाः’ (९०२ । १८) ‘गम्भीरकर्माणो वा गम्भीर-
प्रज्ञाः’ (१९) ‘इत्याग्निजन्म’ (२०) न पठितम् ।
- ९०४ १ तदधिकारो द्युलोकवामायाधिकारः पुण्यकर्म तस्य प्रक्षये ।
- ४ ‘प्राणमन्वीयुः’ (९०३ । १६) ‘सत्यज्ञा वा यज्ञज्ञाः’
(१७) ‘नः’ (१७) ‘हानेषु’ (१७) न पठितम् ।
- १३ प्रसङ्क्ष्यमाणान् = ऋद्धिनिर्वचनप्रसङ्गेन येषां निर्वचनमवश्यं-
भावि तान् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

३०९

७-८ 'नः' (९०४।२४) न पठितम् ।

१२ 'अपि चैषाम्' (२) मूले । वृत्तौ 'तेषाम्' ।

१८ स्तुत्युपपत्तेः = देवतामध्ये यस्मादेषां स्तुतिस्तरमास्तुतिरुपपन्ना योग्येत्यस्मात्कारणादेते देवा एव देवगणा वेति नैरुक्तमतम् ।

२० अग्न्यादिदेवानां विपर्ययो विरुद्धस्वभावः । नैतेऽग्न्यादिदेवसदृशाः । एतद्विवरणं तद्धर्मदेवताप्रकार इत्यनेन विरुद्धम् । तस्माद्विपर्ययः = विशिष्टः प्रकारः । एत ऋषयोऽग्न्यादिदेवतानामेव विशिष्टः प्रकारः । तत्तद्धर्मविशिष्टानां देवतानां प्रकारः ।

९०६

१२ अस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः स एव देवता ! ठ. ड. पुस्तकयोः 'वसिष्ठस्याऽऽर्षम् । इन्द्रदेवताकम्' । किंत्वत्रेन्द्रो न स्तूयते । श्रित्यञ्च इति सूक्तस्य नवानामादितस्त्वृचाम् ।

वसिष्ठ एव (आद्यानुक्रमणी ७ । ३ ॥)

संवादं सूक्तमैन्द्रं वा श्रित्यञ्चस्तु प्रचक्षते (बृहदे० ९।१६३) ।

२० अमङ्गेन = अप्रतिबन्धेन ।

९०७

१० एतस्मादेव दर्शनात् = अस्माच्छतपथवाक्यात् ।

१२ 'इन्द्रो० मृनि' इदं प्रान्ते लिखितम् 'ऐन्द्र्याम्' इत्यस्य विवरणं वृत्तावन्तर्भावितं स्यात् । ऐन्द्रीशब्दो बहुकृत्वः पूर्वमागतः ।

२६ 'आप्तव्यानां' (१७) 'दानवान्' (१८) न पठितम् ।

९०८

१ आ + दृ + स + ते = आदर्षते । इदं दृधातोर्लेटि रूपम् ।

३ सह् + स + ते = साक्षते । सहधातोर्लेटि रूपम् ।

१६ लिङ्गविशिष्टस्य मध्यमस्य विभवो व्याख्यातः । यदा मध्यमो देवगणस्तदा लिङ्गकथनमनवश्यम् । यदा मध्यम इन्द्रो वायुर्वा तदा तौ लिङ्गविशिष्टौ पुरुषावित्यर्थः ।

तयोः स्त्रियोऽत्र समाम्नाताः । :

९०९

१६ अवश्याय एव रस उदकं तस्यानुप्रदानं संधिवेलायाम् । तेन प्रथमं तामभिप्रेत्योच्यते ।

पत्रं
९०९

पङ्क्तिः

१६ यदादित्यः (२९) = यत् आदित्यः । यत् = यदा ।

१७ अदितिः = संधिवेला ।

१८ ' व्रते कर्मणि ' (३) ' आशास्तेर्वा ' (५) ' बहुरथ ' (५) ' अरी-
न्नियच्छति ' (६) ' जन्मसु कर्मसूदयेषु ' (७) न पठितम् ।

१९ तदेवं = तत् एवम् । तत् = तदा । ' अर्धवर्तिन्यादित्ये '
दुर्बोधम् । आदित्ये अर्धवर्तिनी अदितिः । अर्धेन रात्रौ वर्ततेऽर्धे-
नाहनि । एवमादित्येऽर्धवर्तिन्यादितिः । यतो यस्मादादित्या-
ल्लब्धस्त्वयाऽऽत्माऽस्मित्वं जन्म तस्मिन्नर्धवर्तिनी त्वम् ।

२० ' त्वमपि ' अत्रापिशब्दस्य किं प्रयोजनम् ।

२२ स्वाधिकारयुक्तासु = इतिकर्तव्यताः स्वाधिकारयुक्ताः ।
प्रत्येकस्य स्वोऽधिकारः । तत्संबद्धा इतिकर्तव्यताः कर्त-
व्यानि । नराः स्वाधिकारयुक्ता इतिकर्तव्यतां कुर्वन्ति ।

२६ ' स्तुवन्ति ' (७) इत्यस्य स्थाने दुर्गस्वीकृतमूले ' आह्वयन्ति '
आसीदिति भाति ।

९१०

२० वरुणादयः सर्वे आदित्याः । तन्मध्येऽयं स्तुतः । तस्मादयम-
प्यादित्यः । अदितेर्जात आदित्यः ।

२१ प्रमाणं विद्वन्ति ते प्रामाणिकाः । ' तदधीते तद्वेद ' (पा० ४ ।
२ । ५९) । स्तुतौ प्रामाणिकाः । स्तुतिं प्रमाणं ये विदुस्ते ।

९११

१-३ ' अदितिर्दाक्षायर्णा । अदितेर्दक्षो अजायत ' इत्येव पर्याप्तम् ।
' दक्षाद्वदितिः पारि ' इत्यनवश्यम् ।

३ संहितायां ' भूर्गज्ञे० ' इति पूर्वार्धम् ।

६-७ मनुष्यादिशः कथमजायन्तेति न ज्ञायते । दिशां प्रजननं स
एव भावः क्रिया । इदं कर्माभौ कथमकरोत् ।

७ ' देवताजन्म प्रतिक्रियया ' इदं दुर्बोधम् । दिश एव देवता
स्तासां जन्मार्थं प्रतिक्रिया यज्ञकर्म तद्द्वारेत्यर्थः स्यात् ।

११ समानजन्मानां समनन्तरजन्मानौ । प्रातःसंधिवेलाया आदित्या
जायते । सायंसंधिवेलाऽऽदित्याज्जायते । समानशब्दः कथं
समनन्तरवाची ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ९११ १३ देवधर्मेण = माहाभाभ्याद्देवताया इत्यादि (निरु० ७।४) ।
 १३-१४ अदितिर्महानात्मा । तदपेक्ष्यादितिः कारणं जन्महेतुर्दक्षस्य भवति ।
 १४-१५ यदा दक्षो महानात्मा तदा सा दक्षस्य कार्यं च भवति ।
- ९१२ १२-१३ ' किल्बिदं सुकृतकर्मणो भयं ' (९११।२४) न व्याख्या-
 तम् । ' इति वा ' (२४) न पठितम् । तेन ' किल्बिषं
 कीर्तिमस्य भिनत्ति ' इति दुर्गस्वीकृतपाठ आसीत् । किल् +
 विषं = किल् + भिदम् । किल् = सुकृतकर्म । भिदं =
 भयम् । पापं सुकृतकर्मणो बिभेति । अथवा । किल् =
 कीर्तिम् । भिदं = भिनत्ति । पापं (पापकर्म) अस्य पापकर्म यः
 करोति तस्य कीर्तिं भिनत्ति ।
- ९१३ ९ ' महदेतत् ' इति ' अध्वानम् ' इत्यस्य विशेषणम् । तद-
 शुद्धम् । ' महान्तमेतम् ' इति शुद्धम् ।
 १० ' जङ्गम्यतेः ' (९१२।२१) ' रसतेः शब्दकर्मणः
 कथम् ' (२४) न व्याख्यातम् ।
 १२ अर्थम्याऽऽधानम् = अर्थमस्मास्वाधत्से । ' का तेऽस्मास्व० '
 (९१२।२१) इत्यत्र वृत्तौ ' का तवास्मा० ' ।
 १४ ' पारित एनां तक्म ' (९१२।२२) ' इति सतः '
 (२३) ' पयांमीति ' (२३) इत्यत्र ' इति ' आख्यानं '
 (९१३।१) न पठितम्
 १७ धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यामां न विद्यते ।
 न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ (ख. पुस्तके
 टिप्पणी) ।
 १८ ' कथं रसानि० ' इत्यत्र ' कथम् ' आश्चर्ये । तान्युदकानि
 रसानि रसवन्ति पेषानि कथं स्युः ।
 २३ विरकादीनी वृष्टित्युपरमः

पत्रं

पङ्क्तिः

९१४

३ पुनरागच्छेत् = संतनुयात् = अविच्छिन्नं संततं कुर्यात् ।
पराचैः = पराङ्मुखैर्गमनैः । वर्षवर्त्माचिन्त्यम् । यस्मात्तच्चि-
रविच्छिन्नम् । अष्टम्मासस्यावद्देवो न वर्षर्ष तेन ।

४--५ अर्थं पूर्वमभिहितवती किं त्वं येनात्राऽऽगताऽसि ।

६ किं वा न जातं = किमस्माभिर्न कृतं येन पुनर्नाऽऽगता त्वम् ।

१६ आश्वलायनसूत्रे प्रउगं न कथ्यते । अन्वारम्भणीयेष्टावस्या ऋचो
विनियोगः (आश्व श्रौ० २ । ८) ।

२० ' अन्नवती ' (१३) ' कर्मवसुः ' (१४) न पठितम् ।

९१५

१२ ' इमानि च ' (३) न व्याख्यातम् ।

१४ वागर्थेषु सर्वेषु प्रज्ञानेषु प्रज्ञेयेषु वस्तुषु विधीयते । तस्मात्पर-
स्वती मध्यमा वाक् ।

९१६

६ ट. पुस्तके ' निर्वचयन्ती ' इत्यस्य ' प्रज्ञापयन्ती ' इति
प्रान्तेऽर्थो लिख्यते । स ठ. ड. पुस्तकयोः ' निर्वचयन्ती ' इत्यस्य
स्थाने लिख्यते (२३) ।

११-१२ ' एता ओपधीः ' इत्यन्वयः । ' एतानि ' (२५) इति
पाठे ' एतानि पयामि ' ।

९१७

१४ ' महोपम्यासः ' इत्यन्वयः ।

१६ ते अभिधाने निर्ज्ञाते = एतत्तयोर्निर्वचनम् अर्थः ।

२१ नक्षत्रेष्टकोपधानं (मै० सं० २ । १३ । २९ ॥ तै० सं०
४ । ४ । १०) । तेषां मध्ये पौर्णमास्यमावास्ये न निर्दि-
श्येने । तैत्तिरीयमंहिनायां नक्षत्राणामन्ते ' पूर्णा पश्चाद्यत्ते
देवा अदधुः ' इति वाक्यम् । तस्य कल्पसूत्रेऽयं विनियोगः ।
' पूर्णा पश्चादिति पौर्णमासी पुरस्तादुपधाय कृत्तिका नक्षत्रमिति
नक्षत्रेष्टका उपदध्यादा विशाखाभ्याम् । ततः ' यत्ते देवा अदधुः '
इत्यमावास्यां पश्चादुपधाय ततः शेषाः । सर्वान्ते पौर्णमासीम् ' ।
' पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तात् ' इति पौर्णमासीमुद्दिश्य
ऋक् । ' यत्ते देवा अदधुः ' इत्यमावास्यामुद्दिश्य (तै०
सं० ३ । ५ । १) ।

२२ ' प्रदर्शनात् ' अत्र ' प्र ' अर्थम् । दर्शनं = ब्राह्मणवाक्यम् ।

पत्रं
९१८

पङ्क्तिः

१ चतुर्दशके पक्षे = यत्र चतुर्दशाहान्येव वर्तन्ते । चतुर्दशी-
संयोगाच्चन्द्रमसि कलाहीने सत्यनुमतिरित्युच्यते । तत्संयोगा-
भावेन चन्द्रमण्डले पूर्णे सति राकेत्युच्यते ।

४ ' क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ' इत्यस्य स्थाने ' इषं तोकाय नो दध.'
इति काठकसंहितायाम् (१३ । १६) । तदेव यास्कमूलं
यस्मात्तस्य भाष्ये ' अन्नं च नोऽपत्याय धेहि ' (६) इति
वर्तते । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु = अस्माकं दक्षाय क्रत्वे दक्ष-
कर्तौ समृद्धयागे हिनु प्रीतियुक्ता भव ।

५ ' प्र ण आयूंषि ' इत्त्वत्र (मै० सं० ३ । १६ । ४) ' प्र ना
आयूंषि ' ।

९२०

१९ ' पृथुजघने ' (८) ' अमि ' (९) ' स्तृकः स्त्यायतेः
संघातः ' (८) न पठितम् ।

१६ ' सु अमाम्वेषु सीदतीति वा ' (९-१०) न पठितं न वा
व्याख्यातम् ।

९२१

४ ' काहुतं हविर्जुहोतीति वा ' (९२० । ११-१२)
न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

७ ' सुवृतम् ' (२६) इति पाठान्तरं ' सुकृतम् ' इत्यस्य
स्थाने । (तै० सं० ३ । ११ । ५) ' सुभगम् ' ।

८ तस्यामेव संहितायां ' पितृणां तस्यै ' इत्यस्य स्थाने ' पितृणां
तस्याः ' ।

१६ ' विदितकर्माणं (९) ' मुहानामाह्वये ' (१०) ' नः '
(१०) न पठितम् । विद्वाना ज्ञानेनापांसि यस्य ।

९२२

१३ ' प्रत्याचक्ष ' (९) इति परस्मैपदम् ।

१४ ' हि ' (६) ' परिष्वङ्क्ष्यते ' (७) ' अधानेन ' (८)
' प्रत्याचक्ष ' (९) न पठितम् । ' परिष्वजस्व ' भाष्ये किं
न लिखितं यास्केन । तदावश्यकम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९२२

१६ दुर्गस्वीकृतमूले कदाचित् 'परिष्वजस्व' 'परिष्वजताम्' इति पाठः स्यात् ।

१७ आधानेन = अध + अनेन ।

१८ उपगम्यमानेन समानेन त्वद्योग्येन पुरुषेण ।

१९ कल्याणाय भद्रां कल्याणभद्राम् ।

२१ उभयस्थानां = द्युलोकैऽन्तरिक्षे च वर्तमानाम् ।

९२३

२ संवित्साधनं = ज्ञानसाधनम् ।

२०-२१ आत्मनो ज्योतिरात्मनः शब्दश्च ।

२४ आत्मानं प्रतिलभते = विद्युतः पुनः पुनर्थोत्तनं पुनर्जन्म ।

९२४

१ अन्तरिक्षलोकस्य काम्यानीष्टान्युदकानि । 'अन्तरिक्षरमाणानि' इदम् 'अन्तरिक्षलोकस्य' विवरणम् । अन्तरि (मध्ये) + क्ष (क्षरमाणानि) = मेघोदरेषु मेघोदरेभ्यः क्षरमाणानि । अप्यान्यम्भयानि काम्यानीष्टानि वस्तुनि । अप्या = अद्भ्यो जाता । अथवा । अप्या = अप्यान्युदकसंबद्धानि ।

२ अधिपत्नी = आधिपत्यं कुर्वती ।

३ अपः = अध्यपः = अद्भ्यः । 'अयं' (९२३।१९) 'अद्भ्यः' (१९-१६) 'इति' (१६) न पठितम् ।

४ मनुष्यः = मनुषो जातो मनुषे हितो वा । 'मनुष्यः' (१६) न व्याख्यातम् ।

१० वपुष्मत्तया = सौन्दर्येण ।

१७ 'तस्य वाऽवश्यम्' अत्र 'वा' शब्दस्य किं प्रयोजनम् ।

१८ अस्या ऋचो भाष्यस्य च दुर्गकृतोऽर्थो न सरलः ।

२२ (मै० सं० ४।१२) 'बडित्था' ।

२३ 'जिनोपि' इत्यस्य स्थाने 'हिनोपि' ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९२५

१ अङ्कस्थाः पाठभेदा अल्पांशेन दुर्बोधाः (२५-२९) ।
‘अश्रिणवन्ति’ (२६) ‘अशृण्वन्ति’ (२७-२८) अस्य
शब्दस्यात्र न किमपि प्रयोजनम् । ‘इत्यविरोधः’ अस्य पाठा-
न्तरम् ‘असमानार्थो मे’ (२६) मम मते एतावर्थावसमानौ
विरुद्धाविति पाठान्तरमर्थः ।

५ ‘त्वं पर्वतानां मेघानां’ (९२४।२३-२४) ‘भेदनं’ (२४)
न पठितम् ।

१५-१८ यास्कमते भूमिरत्र न प्रधाना । विनियोगे भूमिः प्रधाना । अयं
विरोधो विद्वद्भिः परिहर्तव्यः । किंत्वयं दुष्परिहार्यः । सम-
नुगंस्यन्ते = साधयिष्यन्ति (च. घ.) प्रान्ते ।

१९-२० विभूतिरिन्द्रात् पृथक् । पौराणिकास्त्विन्द्राणी पृथक्त्वेन
मन्यन्ते । इन्द्रः पतिरिन्द्राणी पत्नीति ।

९२६

११-१२ अपरंचन = किंच । यास्कभाष्येऽपरंचन = अपरां समाम् ।
अपरंचन = अन्यद्भूतजातमिव (सायणः) । ‘अपरामपि स-
माम्’ इत्यस्य ‘न कदाचिदपि’ इत्यर्थः कथं लभ्यते ।

१७ वृषाकपिरादित्य इति नैरुक्ताः ।

९२७

९ सर्वेष्वपि देवेष्विति निर्धारणम् । ‘प्रियं’ (९२६।२२) हवि-
रित्यस्य विशेषणम् । निर्धारणार्थं ‘प्रियः’ इति तत्परिणम्यते
दुर्गेण । तद्भाष्यविरुद्धम् ।

९-१० यस्य यस्मै वृषाकपय इदं हविर्गच्छति (९२६।२१-
२२) । वस्तुतस्तु यस्मै वृषाकपेर्ऋषेरिदमप्यं हविः प्रियं
देवानामिति तेषु तान्प्रति नितरां गच्छति ।

१० ‘नि’ (निगच्छति) (९२६।२२) इत्यत्र न पठितम् ।

११ ‘तमेतद्ब्रूमः’ (२३) = सोऽप्यहमेवं ब्रवीमि । अयमर्थः
कथं भाष्यस्य स्यात् । सोऽहमेतद्ब्रवीमीति दुर्गस्वीकृतमूले
पाठः स्यात् ।

९२८

२ ‘निर्मिमाय’ (९२७।१९) न पठितम् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
 ९२८ < तदात्मना = तेनाऽऽत्मनैवभूता तद्रूपा सा गौरीः । ' एक
 आत्मा यस्तेनाऽऽत्मना ' इत्यन्वयः ।
- १०-११ गुणाभिधानं गुणवाचक पदम् ।
- ९२९ १ ' दिगाश्रयाणि ' (१६) ' सर्वाणि भूतान्युपजीवन्ति '
 (१६-१७) न पठितम् ।
- ४-९ अ (अभिव्यञ्जयत्) + क्षरं (क्षरति) इति दुर्गः । उद-
 कसाहाय्ये सर्वमिदं संचरति ।
- १९ ' इति वा ' (११) ' मननाय ' (११) ' आदित्य-
 मिति वा ' (१३) न पठितम् ।
- २४ ' मायुमिव ' (१२-१३) ' इति याज्ञिकाः ' (१३)
 न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- ९३० १ धर्मार्थं या पयो दुग्धे सा धर्मधुक् । धर्म इति दर्शयामार्थस्य
 पयसो नाम ।
- २१ ' सुदोहनां ' (१४) भाष्ये । ' सुधदुग्धां ' वृत्तौ ।
- २३ ' एनां ' (१५) भाष्ये । ' एतां ' वृत्तौ ।
- २४-२९ ' न इत्येष हि श्रेष्ठः सर्वेषां सवानां यदुदकं यद्वा ' (१५-
 १६) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- २६ ' सुप्रब्रवीमि वागेषा माध्यमिका धर्मधुगिति याज्ञिकाः ' (१७)
 न पठितम् ।
- ९३१ ५ प्रसूतम् = आज्ञप्तम् ।
- ६ रुचितः = शोभमानः ।
- १९ सूर्यादुदकमध्यात्मीकृत्याऽऽत्मसात्कृत्वा । तेनोदकेनेत्यन्वयः
- २२ तृणो मेघस्तमद्धि न तु तृणम् ।
- २४ आ = आसेवन्ती शुद्धमकलुषमुदकम् । आ = सर्वतः
 चरन्ती = मध्यस्थाने चरन्ती ।

- पत्रं
३३२ पङ्क्तिः
१ 'सूयवसात्०' इत्यस्मिन्मन्त्रे घर्मधुक् गौः स्पष्टा न तथा माध्यमिका वाक् ।
१५ 'इति सा निगदव्याख्याता' (१२) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- ३३३
४-५ सोमयागे प्रायणीया नामोष्टिः । तत्र 'पथ्यां यजति स्वस्ति यजति' इति क्रमो ब्राह्मणे (मै० सं० ३ । ७ । १॥ तै० सं० ६ । १ । ५ ॥ श० ब्रा० ३ । २ । ३ । ८) । स एव क्रमोऽत्र । 'पथ्यां स्वस्ति प्रथमां प्रायणीये यजति' (कौ० ब्रा० ७ । ८) । 'परस्तात्पथ्या इत्यादि च' (कौ० ब्रा० ७ । ८) ।
१८ 'वमूनि' (१०) न पठितम् । 'निरमणे' (१०-११) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
२२ 'हविषः' इत्यस्य केनान्वयः । 'हविषा दातृनिति स्यात् । च. पाठः (३०) 'हवि गोपायतु' = हविरस्मान्गोपायतु ।
- ९३४
१२ 'अनसः संपिष्ठान्मेघात्' (५-६) इति यास्कः । 'अनमो वायोः' इति दुर्गः ।
१३ 'यन्' (८) न पठितम् ।
१९ 'इवानः शकटमान० एतस्मादेव' (७-८) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
२२ 'मन्थ्यमास्वभावप्रायोवृत्त्युपप्रदर्शनार्थम्' अत्र 'प्रायोवृत्ति' इत्यस्य कोऽर्थः ।
- ९३५
५ 'मेघं दर्शयन्' इत्यन्वयः ।
७ शकटानः = शकटाख्यमनः । 'विमुक्तपाशि' (१) न पठितम् ।
९ 'प्रेरितवतः परागताद्वा' (२) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

- पत्रं षड्भक्तिः
- ९३६ ६ ' गृणाना ' (९३५ । १७) भाष्ये ' गृणातु ' वृत्तौ ।
 ७ ' प्रभृथस्य ' (९३५ । १८) ' नः ' (१९) ' महाद्विवा ' इत्यत्र ' दिवा ' (१७) न पठितम् ।
 १९ ' स्मदभि ' (९३५ । १६) ' ज्योतिषो वा ' (१८) ' उदकस्य वा ' (१८) इत्यत्र ' वा ' ' नः ' (१९) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- ९३७ ६ ' सुरमणीयानि ' (९३६ । १६) ' सचा ' (१६) न पठितम् ।
 ७ ' रोदमी रोदसी ' (९३६ । १६—१७) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

इत्येकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

- ९३९ १२ पक्षे = देवतानानात्वपक्षे ।
 १६ स्तुतानि शस्त्राणि यस्मिन् ।
 १९ च. ठ. पुस्तकयोः ' एकैकस्याश्विशब्दस्य ' (२७) इति प्रान्ते पाठभेदो लिख्यते । ' तयोरेकैकस्य पृथग्भावेन स्तुत्यभावात् ' इत्येव सुवचम् । ' अश्विशब्दस्य ' इति पदस्य न किमपि प्रयोजनम् ।
 १९—२० एकोऽश्वी न कुत्रापि भूयते ।
 २१ नासत्याविति नाम्ना तयोः पृथक्स्तुतिर्न विद्यते । अस्य विधा-
 नस्य किं प्रयोजनमत्र । ' नामत्यः ' इत्यप्येकैकस्य रतुनिर्न
 विद्यत इति सुवचम् ।
 २२ प्रथमस्य = मध्यस्थानस्याश्विनः ।
 २३ तमोभागो मध्यमः । स संधौ न स्थिरः । तमोभागो हीनो
 भवति ज्योतिर्भागो वर्धते च ।

- पत्रं
९३९ पङ्क्तिः २४ संध्यन्तरं द्युस्थाना देवतेति रूपान्तरं भवति न मिश्ररूपम् । तमोभागो नष्ट एव भवति ।
- ९४० १२ अथास्मिन्पक्षे राजानौ पुण्यकृताविति मतेऽश्वैरश्विनावित्येत-
न्निर्वचनं महाभारतादीतिहासग्रन्थैः संगतम् ।
- १३ ' ज्योतिषान्यः ' इत्यत्र ' अन्यः ' (९३९ । २) ' तमो-
भागो हि मध्यमो ज्योतिर्भाग आदित्यः ' (७—८) न
पठितम् ।
- १४—१९ अनुविष्टम्भाति = प्रविशति ।
- १९ अनु = अनुविष्टम्भानन्तरमेव । ' अनु ' (९३९ । ७) न
पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- १६ प्रातरनुवाक आग्नेयः क्रतुः प्रथम उपस्यो द्वितीय आश्विन-
स्तृतीयः । अग्निरुषाऽश्विनावेते प्रातर्यावाणो देवाः । ३.यं
प्रातरनुवाको महति रात्रिभागेऽवशिष्टेऽनूच्यः । पुरा मनुष्या-
दिप्राणिवाचः पुरा शकुनिवाशदनुब्रूयात्पुरा तमस अपघातात् ।
(ऐ० ब्रा० ७ । ९) । उदयात्पूर्वमाश्विनं स्तोत्रं संधिकाल-
संबद्धम् । ' पुरावाचः प्रवदितोः । व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोर-
नुब्रूयात् ' (मै० सं० ४ । ९ । ३) ।
- १८ ' तद्भागम् ' प्रामादिकम् । ' स भागः ' इति शुद्धम् ।
- ९४१ ४ उपजानं देवतादर्शनाय ऋक्षुयंस्य । तमसो ज्योतिषश्च संधिः ।
'इति सा निगद्व्याख्याता' (९४० । २२) न पठितम् ।
रात्रिपर्यायेषु=अतिरात्रोऽग्निष्टोमस्यैका संस्था । तस्यां द्वादश
शस्त्राणि पठ्यन्ते । चतुर्णां चतुर्णामेकः पर्यायः । एवं द्वादशानां
त्रयः पर्यायाः । दशानां षट्कानामेको भागः । एवं सञ्ख्यास्त्रयो
भागाः । प्रथमः पर्यायः प्रथमे भागे । द्वितीयो द्वितीये । तृती-
यस्तृतीये पठ्यते । एवं रात्रौ पठ्यमानत्वात्ते रात्रिपर्याया
इत्युच्यन्ते ।
- १३ तिरोअह्न्याः सोमाः । 'तिरोअह्न्या अहस्तिरस्कृत्य रात्रौ

- पत्रं पङ्क्तिः
- ९४१ १३ प्रयोक्तव्या अतिरात्रगताः सोमविशेषाः' (तै० सं० ७ । ३ ।
१३) अत्रत्यसायणभाष्ये आश्विनश्च द्विकपालः पुरोडाशः ।
१३-१४ आश्विनः पुरोडाशो द्विकपालः काम्येष्टिषु । यथा (मै० सं०
२ । ३ । ९) अग्निष्टोमे ग्रहश्च । इदं तयोः कर्म ।
१५ बाहुल्येन संस्तव एव न त्वसंस्तवः ।
- ९४२ ४ महाराष्ट्रमूले ' वसातिषु० सुरातयोः ' (९४० । २९-३०)
इत्यधिकः पाठः । रातिः = दानम् । वसातयः = रातयः । यस्मात्ता
रातयस्तयोरश्विनोर्वमन्ते स्म । वसातिशब्दो वक्तेर्वा वहतेर्वा ।
'अपे त्वा वृत्रहणं' दुर्बोधम् ।
१७-१८ सम्+अव+अवशीताम् । वश कान्तावित्यस्मात् ।
१८ 'पापेनालिप्यमानया' (११) न पठितम् ।
१९ देवाः शरीराणि संकल्पानुरूपाणि गृह्णन्ति । देवानां स्वतन्त्राणि
नामानि नान्याश्रितानि ।
- ९४४ ४ 'प्रहिणुत' (९४३ । १८) न पठितम् ।
७ 'एतदपि' (९४३ । १९) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
८ अनादृते त्वयि । त्वयीत्यनेन को बोध्यते । इदमसंबद्धमेव ।
अनादृतेषु युष्मास्वित्यवश्यम् ।
९ आवः 'अव तर्पणे' इत्यस्मात् ।
- १४-१६ 'सर्वा हास्मिन्देवताः प्रातरनुवाकमनुब्रुवति प्रमोदन्ते' (ऐ०ब्रा०
७ । ६) ।
१६ आ+उप्यन्ते = स्तूयन्ते ।
१९ 'उच्छ्री विवासे' (धा० १ । २१६) । विवासः समाप्तिः ।
- ९४५ ८ 'अन्नवति' (३) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
९ 'मंहनीयं' (३) 'अस्मभ्यं' (३) न पठितम् ।
- ९४६ १२ यतः = यस्मात्सूर्यात् ।
१७ 'स्यात्' (९४५ । १९) इदित्यनेन विकल्पो दर्शयते । प्रत्यह-
मायन्तीनामुषसां निर्देशः । अथवा । बहुवचनं पूजार्थम् ।

- पत्रं
९४६ पङ्क्तिः
२१ 'अपि निगमो भवति' (९४५ । २१-२२) न पठितम् ।
'स्यात्' (१९) ' गावो गमनादरुषीरारोचनान्मातरो भामो निर्माच्यः' (२२) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- ९४७
३ भृशं हीनोऽस्मीति = नाहं प्रथममक्षान्विसृजामीति (ट.) ।
७ आस्फारम् = महान्तं ध्वनिं कृत्वा । ' आस्फारं संस्कृतम् ' इति दुर्गः ।
२५ त्रित्वे = तिस्र एव देवता इति पक्षे । एतस्मिन्पक्षे सूर्या = सूर्य-प्रभा न तु सूर्यदुहिता ।
२६ यानश्चान्स्थे विनियुज्य । सूर्यस्य प्रभा सूर्यात्पृथक्संबोधनार्थम् ।
- ९४८
१ सूर्यप्रभाऽश्वाधिदेवता । ' सुकाशनं ' (९४७ । १७) ' प्रकाशयति कर्मणः ' (१९) न पठितम् ।
६ वहतुं = वहनम् । वहतुः = वहनस्यालंकारार्थं माङ्गल्यार्थं च वरस्य पुरतो वहनीयो हरिद्रागुडादिमङ्गलद्रव्यसंघः ।
१२ सुकिंशुकं शल्मलिमिव । तेन शल्मलिना सूर्य उपमीयते । उपमानयोगः पुष्टतरः = इयमुपमा सूर्यस्यातिरक्तत्वं दर्शयति । आदित्यो रक्तवर्णोऽनयोपमया रक्ततरो भाति ।
१३ सुकिंशुक इति विशेषणमादित्ये युक्ततरम् । शल्मलौ गौणम् ।
१७ हिंसायां = यदा हिंसाऽवश्या तदा ।
१७-१९ ' सविता सूर्याम्० ' इयं कथा कास्मिन्ब्राह्मणे विद्यत इति न ज्ञायते । ऐतरेयब्राह्मणस्था कथा भिन्ना (ऐ० ब्रा० १७।१) ।
२१-२२ ' प्रजापतये वा ' इत्यौतिहासिकपक्षो नास्मत्संमतः । तामितिहासमैतिहासिकाः कथयन्ति । कथमेतदिति = कोऽयमितिहास इति तान्पृच्छ ।
२२ ' इतिहासो मृग्यः ' (२८-२९) इति ग. च. ज. पाठ आसीदिति भाति । च. पुस्तके ' इतिहासं शृणु ' इति शोधः कृतः । किंतु स ट.पुस्तकानुरोधेन न कृतः । ' इतिहासं शृणु ' इत्यस्मात्पाठात् ' इतिहासो मृग्यः ' इति पाठः प्राचीनः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९४९

२-३ यदा सूर्यविभूतिरवश्यायान्वर्षति तदा स तान्कम्पयति । कम्प-
नयोगात्सा विभूतिः (वृषा)कपायीत्युच्यते ।

१८ मध्यम इन्द्रो वृषाकपाय्याः पुत्रस्तेन सा सुपुत्री ।

१९ माध्यमिका वाग्निन्द्रस्य पत्नी तेन तस्याः स्नुषा । रसहरणं
सूर्येण क्रियते नत्विन्द्रेण । तेन कथं सामान्यम् । कथं च तयोः
सहस्थानम् । इन्द्रोऽत्राऽऽदित्यस्तेन सामान्यम् ।

२० ' मिथुनसामान्यात् ' दुर्बोधम् । इन्द्रो मध्यमो वागपि माध्य-
मिका । तयोर्मिथुनम् । इदं सामान्यं स्यात् । घसत् = प्राश्नात् ।

२६ ' तमेतद्ब्रूम आदित्यं ' (१३-१४) न पठितं न वा
व्याख्यातम् ।

२८ ' सुखकरं हविः ' (१३) छ. त. द. पुस्तकेषु नास्ति ।
दुर्गस्वीकृतमूलेऽपि नाऽऽसीदिति भाति ।

९५०

१-५ स्तु = सूनुः । तं सनोतीति स्नुषेति समीचीना व्युत्पत्तिः ।

६ ' वृद्धिकर्मणः ' (९४९ । १२) ' सुखाचयकरं ' (१३)
न पठितम् ।

९५१

१ ' अप्यगूहन् ' (१५० । १५) भाष्ये । ' अपागूहन् ' वृत्तौ ।

४ ' विवस्वतेऽप्यश्विनौ ' (९५० । १५-१६) इत्यत्रा ' अपि '
न पठितम् ।

१४-१५ ' तेषु व्यस्तं रूपं च ' इत्यस्य ' तेष्वन्यत्तद्रूपं च ' (२७-२८)
इति पाठान्तरस्याप्यर्थो न ज्ञायते ।

१५ व्यवहारः = निरूपणम् ।

१६ तथा सति = यदा सरण्यूरश्चा भवेत्तदा ।

२१ ' त्वाष्ट्री सरण्यूः ' (९५० । १८) इतीतिहासश्च न पठितो
न वा व्याख्यातः । वृत्तिस्थेतिहासाद्भाष्यस्थेतिहासो भिन्नः ।
यास्ककथितेतिहाससदृश इतिहासः सायणभाष्ये वर्तते । कुत्र-
त्योऽयमितिहास इति न ज्ञायते ।

- पत्रं
९९२ १३ भविष्यता योगेन = सवितुः सरणव्याश्च योगो न भूतः किञ्चु
भावी ।
- १६ प्रथमखण्डे 'तमोभागो मध्यमः' इत्युच्यते (नि० १२।१)
अत्र 'त्वष्टा मध्यमः' । तेन 'तमोभागस्य' इत्यपपाठः स्यात् ।
- २० देवधर्मेण = देवोप्विदं शक्यम् । या जाया सा स्वभर्तु-
र्माताऽपि भवति । द्युस्थानस्य त्वष्टुः ।
- २१ जाया कथं माता । जायतेऽस्यां पुत्रत्वेन पतिरिति ।
- ९९३ ९ अस्यां = दिवि ।
- ९९४ ३-४ यजमान उख्याग्निं शिक्ये प्रणयति । उखायामग्निनिधा-
नात्प्राक्शिक्यपाशाः प्रतिमोक्तव्या भवन्ति ।
- ४ 'प्रज्ञानानि' (९९३।१९) 'मेधावी' (१६) 'वरणीयः'
(१७) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- १० 'व्यचिरूपपत्न' (९९३।१७) 'सविता' (१७) द्वितीयम्
'एतस्मात्सामान्यात्' (१९-२१) न पठितम् ।
- १७ 'पथेकादाशिन्यामापस्तम्बेनैकादशपशूनां लक्षणानि पठि-
तानि । तन्मध्येऽधोरामः सावित्र इति । सावित्रः पशुः =
सवितृदेवताक इत्यर्थः । अधस्तात्कृष्ण उपरिष्ठाच्छुभ्र
इति । रामशब्देन कृष्ण उच्यते । रामा शूद्रा । कृष्णवर्णा-
त्सामान्यात् । कृकवाकुः कुक्कुटः । चरणायुध इति यावत्' ।
(ट. ठ. ड.) ।
- ९९५ २-५ 'अग्निं चित्वा न रामामुपेयात्' । (वासिष्ठधर्मशास्त्रम् १८।
१७) । 'ग्योऽग्निं चित्वाऽन्यस्य स्त्रियमुपैति' तेन प्रायश्चित्तिः
कार्या (मै० सं० ३।४।७) । 'अग्निं चित्वा प्रथमं चित्वा
न रामामुपेयात् । द्वितीयं चित्वा नान्येषां स्त्रियः । तृतीयं
चित्वा न कांचन' (काठकसं० २।१।७) ।
- ६-७ रामशब्दो रामा स्त्रीति मूलमर्थं त्यजति सामान्यश्च भवति ।
वृत्तः = प्रवृत्तः ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ९९५ १८ 'प्रागुत्सर्पणात्' (९९३।२४-२९) = तस्मात्सावित्रात्काष्ठा-
त्परतः (दुर्गः) । सवितुरुत्सर्पणात्पुरतश्चलनात्प्रागित्यर्थः
स्यात् ।
- ९९६ ९ आघ्नः = आढ्यातुः ।
- ७ 'वार्ता वृत्तौ ' (अमरः ३ । ३ । ७९) । वार्तार्थम् = उप-
जीविकार्थम् । 'तुर इति यमनाम तरतेर्वा त्वरतेर्वा त्वरया'
(९९५।२४-२९) 'वा' (२७) 'उदयेन' (२८) न
पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- १४ अनुत्सृप्तः = उत्सर्पणात्प्राक् (९९३।२४-२९ ।) ।
- १५-१६ अन्धः = अ (अस्मिन्) + न् (न) + ध (ध्यानम्) ।
- १६-१७ ' तद्भगाय पर्योजहूरुस्तद्भगोऽवेक्षांचक्रे तस्याक्षिणी निर्देदाह
तस्मादाहुर्न्यो भग इति ' (शत० ब्रा० १।७।४।६) ।
प्राशिन्नभक्षणकथा (तै० सं० २।६।८) ।
- १७-१८ ऐतिहासिकपक्षस्याभिप्रायोऽयमर्थवाद एव ।
- १८-१९ ' जनं भगोऽगच्छत्तस्मादाहुर्जनो गन्तव्यस्तत्र भगेन संगच्छता
इति ' (मै० सं० १।६।१२) ।
- १९ ' जनं भगो गच्छतीति वा ' (९९५ । २७) अत्र वा-
शब्दः किमर्थः । चशब्दः आवश्यकः । इति च ब्राह्मणमि-
त्यर्थे ।
- २० यदा तदा = सर्वदैव । आत्मना = स्वयमेव ।
- ९९७ १० ' कमन्यमादित्यादेवमवक्ष्यत् ' (२६) इति महाराष्ट्रमूलेऽ-
धिकम् ।
- २४ ' उदगमत् ' (१७) न पठितम् ।
- ९९८ ८ एते सर्वे देवा आत्मैवेत्येकत्वपक्षः । चक्षुषा = सूर्यरूपेण
चक्षुषा ।
- ९ ' एष वै सर्वेषां देवानां चक्षुः ' । इदं ब्राह्मणवचनं भेदपक्ष-
याज्ञिकपक्षसमर्थनाय ।

- पत्रं
९९८ पङ्क्तिः
२४ व्यपदेशात् = सहर्निर्देशात् ।
२६ ' तस्मादेतौ यज्ञेन यजन्ते ' (मै० सं० १ । ६ । १२) ।
' भगांशौ ' पदं तत्र नास्ति । ' न यज्ञे यजन्ते ' इति ग. च.
ज. पाठः (३१) । ' यज्ञेन यजन्ते ' इति मूलपाठः स्यात् ।
' अयज्ञियम् ' (२९) इति न भाष्यकृतोऽर्थः । भाष्यमते
शुक्रं लोहितम् ।
- ९९९ }
२७ } ' विश्वरूपे अहनी ते कर्म ' (९९८ । १७) इत्यन्वयः ।
१ }
२ ' द्यौरिव चासि ' (९९८ । १७) इत्यत्र ' च ' ' सर्वाणि
' प्रज्ञानान्यवस्थन् ' (१७-१८) ' दत्तिः ' (१८) न
पाठितम् ।
९ ' भाजनवती ' (९९८ । १८) न पाठितं न वा व्याख्यातम् ।
२१ ' कृतः ' (१३) = व्यापारितः ।
२२ अभ्यानट् = अभ्यापन्नः । प्राप्त इत्यर्थः ।
- ९९० २२ ' त्रिधा ' (१२) ' सूयन्त इति वा ' (१९) इत्यत्र
' इति वा ' ' भवन्तीति ' (१६) इत्यत्र ' इति ' न पाठि-
तम् । ' त्रेधाभावाय ' (२८) इत्याधिकं महाराष्ट्रमूले ।
२३ ' निधानं पदैः ' किमर्थमेतत् ।
- ९९१ ४-९ पांसुरे = प्यायने ।
६-७ ' स्वपनमेतत्० ' इति निरुक्तमूले (नि० ९ । ३) ।
८ ' समूहळं पांसुल इव ' (९९० । १४-१९) भाष्ये ।
समूहळमिव पांसुले ' वृत्तौ ।
१४ ' पिंशानियाः ' इत्यस्य स्थाने ' पंसनीयाः ' (९९० । २९)
महाराष्ट्रमूले । ' पंसनीयाः ' इत्यस्य कोऽर्थः ।
- ९९२ १ ' नियमतः ' कोऽर्थः । अत्र द्युस्थानप्रकरणे तस्य नियमना-
त्पठनाद्विश्वानरो द्युस्थानः । वस्तुतस्त्वयं पृथिवीस्थानः ।
१३ ' महतो बलस्य ' (६) ' वा ' (७) ' स्थानां ' (७)
न पाठितम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९६२

१५ एवैः = कामैः । अथवा । = अयनैः (गमनैः) । अथवा । =
अवनैः (रक्षणैः) ।

१६ ऊत्या = पथा ।

९६३

११ ' भूरिमध्वानं नयति स्वर्गस्य लोकस्यापि वोह्ला ' (३)
' अनेन ' (४) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

११-१३ योऽग्निर्यजमानं स्वर्गं लोकं नयति सोऽपि भुरण्युः । तत्संपा-
ती = तेनाथवा स इव यः संपतति (३-४) ।

१३ अग्निचित् = योऽग्निं चिनुते स यजमानः । ' तत्संपाती
भुरण्युः ' (४) इत्यत्र ' भुरण्युः ' न पठितम् ।

१४ उपात्ताः संपादिता अपूर्वसंभारा यज्ञियवस्तुसंचया येन ।
तदेव = तदैवेति स्यात् । ' स्वर्गस्य लोकस्यापि ' (३) = स्वर्ग
लोकमपि । ' वोह्ला ' (३) = यो वहति ।

२१ ' उत्तरस्यामन्वयस्तेन व्येषि ' (६) इति सायणभाष्ये निरुक्तपाठः ।

९६५

२-३ प्रत्यङ्कृत्वा = प्रतीच्यां दिशि स्थापयित्वा ।

४ ' प्रत्यङ्ङिदं ज्योतिरुच्यते ' (९६४ । २१-२२) न पठितं
न वा व्याख्यातम् ।

५ ऋचि वर्तमानं ' दृशे ' (९६४ । २०) पदं भाष्ये वृत्तौ
च न व्याख्यातम् । दृशे = दर्शनाय ।

१६ ' अभिविपश्यति ' इत्यस्य स्थाने ' अभिविपश्येति ' दुर्गस्वी-
कृतमूले पाठः स्यात् ।

९६६

९-१० सूर्याद्वर्षः । वर्षादोषधयः । ओषधिभ्य आहुतयः । एवमग्निपोषणं
सूर्येण । ' अग्निं च विषं च ' (३) इत्यत्र ' चद्वयं ' ' विष-
मिति ' (३) अत्र ' इति ' ' द्यावापृथिव्यौ च धारयति ' (४)
' आह ' (५) न पठितम् ।

११ ' विपूर्वस्य स्नातेः शुद्धिचर्थस्य ' नेयं यास्कपद्धतिः । ' वि-
प्यातेः शुद्धिकर्मण ' इति यास्को ब्रूयात् ।

१९-२० निगूढस्याप्यग्नेः प्रकाशनाय धूम एव कारणम् ।

२० ' रजसा तु मध्यमः ' (२६) इति ग. च. ज. पाठः ।

पत्रं
९६७

पङ्क्तिः

१३ पर्वकालं = कर्मकालं कर्मयोग्यं कालम् ।

१४ ' इत्याग्निः ' (९) इत्यत्र ' इति ' ' सर्व ' (९) ' तत् ' (७)
' वृषाकम्पनः ' (७) न पठितम् ।

१५ कर्मण्या = कर्मणि साधुः कृषियोग्या ।

१९ उपसंहृतैः = उपसंपन्नैः = आत्मसात्कृतैः ।

९६८

११ ' एहि ' (३) ' वः ' (३) ' आदित्यः ' (४) न पठितम् ।

१३ ' समेतद्ब्रूमः ' (९) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

१३-१४ शोभनमर्थं = जगतोऽनुग्रहम् ।

९६९

६-७ आदित्यो वृक्षो यस्मात्स वृश्चति क्षपयति ।

७-८ वृ (वृतः) + क्ष (क्षये) = वृक्षः (९६८।२१) ।

८ पुण्यकृतो निवासायाऽऽदित्यं गच्छन्ति । पला (परा) + शं
(शरणम्) = पलाशः । क्षये = क्षयाय निवासाय । ' स्थाने '
(९६८।२१) ' वृक्षो ब्रश्चनात्पलाशं पलाशनात् ' (२२)
' तत्र ' (२३) ' इत्यपि ' अत्र ' इति ' (९६९।२) न पठितम् ।

१० ' सर्वस्य पाता वा पालयिता वा ' (९६८।२३) न पठितं
न वा व्याख्यातम् ।

१२ गत (आदित्यलोकम्) आत्मा येषाम् ।

९७१

६ ' अपि निगमो भवति ' (९७०।२०) ' पावीरवी च
द्विष्ट्या ' (२०) इत्यत्र ' पावीरवी ' ' च सर्वे च देवाः ' (२२)
' स्तुत्या ' (२३) ' इमानीति ' (२४) इत्यत्र ' इति '
न पठितम् ।

२१ ' प्रयुक्तानि ' (२३) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

२२ ' निर्वचनस्यास्यामृच्युत्तरे पादे सम्यक्पाठोऽन्वेप्यः ' दुर्वोधम् ।

९७२

८ ' इति सा निगदं व्याख्याता ' (६) न पठितम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९७३

६ 'रश्मिवन्तः' (९७२ । २०) 'पर्यासते' (२१) 'एषां' (२१)
'अन्तः' (२२) 'आरब्धुं' (९७३ । १) न पठितम् ।

१४-१९ 'आरम्भं शक्नुवन्ति' इत्यन्वयः ।

१८ पृथिवी व्याख्याता । इह द्यौरुच्यते (निघण्टुभाष्ये) । सैमुद्रो
व्याख्यातः । अन्तरिक्षनामसु (निघण्टुभाष्ये) । उत्तमोऽ-
भिधेयः (ट. ठ. ड.) ।

२० 'अज एकपाद्व्याख्यातः०' इत्यादि पुनरुक्तमेकस्यामृचि तेषां
स्तुतिरिति कथनार्थम् । पूर्वत्र भिन्नास्त्वृक्षैकैकस्या देवतायाः
स्तुतिः ।

९७४

१२ 'अम्माकं शृणोतु' नेदं शुद्धं संस्कृतं किंतु प्राकृतभाषादूपितं
संस्कृतमेतत् । 'अपि च नः' (३) 'अजश्चैकपात्पृथिवी च समु-
द्रश्च' (३-४) 'सर्वे च देवाः' (४) इत्यत्र सर्वे 'च' शब्दः
'कविशस्ता मेधाविशस्ताः' (५) न पठितम् ।

१९ 'यज्ञवृधो वा' (४) इत्यस्यानन्तरं दुर्गस्वीकृतमूले 'उदक-
वृधो वा' इत्यधिकमासीदिति भाति ।

१६-१७ 'कविभिर्मेधाविभिः शस्त्रैर्नैघण्टुकत्वेन शस्ताः' इत्यन्वयः ।

१७ 'मन्त्राः' (५) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

२१-२२ 'ध्यानरम्भणे युक्त उपयुक्तः । ध्यानायोपयुक्तः सन् ।

९७५

१८ 'कर्माणि' (१०) भाष्ये । 'अन्नानि' वृत्ता ।

१९ 'पूर्वेन्द्रे' (१०) न पठितं न वा व्याख्यातम् । 'पूर्वेन्द्रे' इदं
पूर्वेन्द्र इत्यस्यापभ्रंशः ।

२० 'अचैन्योऽनूपास्ते' (१०-११) इत्यत्र भाष्ये यः = इन्द्रः ।
वृत्तां तु यः = यजमानः । भाष्यकृतादर्थाद्वृत्तिकृतोऽर्थो भिन्नः ।

९७६

१ आदित्यादेते पृथग्भिन्ना इति पक्षे ।

१७-१९ आदित्यो दृश्यते तथाऽऽदित्या अपि । एवं ते प्रत्यक्षाः ।
सप्तऋषयो दूरे वर्तन्ते । तस्मात्ते नाऽऽदित्यवत्प्रत्यक्षाः । किंतु
ते परोक्षाः । इदं न वास्तविकं यस्मात्तेऽपि दृश्यन्ते । अपि

- पत्रं पङ्क्तिः
- ९७६ १७-१९ च । शब्दः कथं प्रत्यक्षः परोक्षो वा । अथवा । आदित्यशब्दो व्युत्पत्तिदृष्ट्या प्रत्यक्षवृत्तिः । 'आदितेः पुत्राः' इति । न तथा 'सप्तऋषयः' इत्यादयः शब्दाः । ते हि परोक्षवृत्तयः । तस्मात्प्रत्यक्षवृत्तिः शब्दः प्रथमं निर्देश्यः ।
- ९७७ १९-१६ 'आहुतीरादित्येभ्यश्चिरं' (४) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
 १६ अविद्यमान उत्सर्गस्त्यागो यस्य तत् । यावदायुषं जुह्वापत्रं न त्याज्यं यजमानेन
 १७ 'नः' (९) 'मित्रध्वार्यमा च भगश्च' (९-६) इत्यत्र 'च-शब्दाः' न पठितम् ।
- ९७८ २२ 'आदित्ये' (१०) 'अप्रमादं संवत्सरं' (१०) 'अस्नमितमादित्यं यन्ति' (११) 'अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ वाय्वादित्यौ' (१२) 'सप्तऋषयः प्रतिहिताः' (१३) 'पळ्' (१३) 'विद्या सप्तम्यात्मनि' (१३) 'सदमप्रमादं' (१४) 'इमान्येव' (१४) न पठितम् ।
 २३ तेनोदकेनेद्धाः । रश्मयोऽबिन्धनाः ।
- ९७९ १ स्वस्य कर्मणोऽनुत्सर्गेणेत्यन्वयः । उदकदानेनाऽऽदित्यं रक्षन्ति । उदकमादित्यस्य भक्षः । 'निरिन्धनोऽपि' इति द्वयो-रनयोः शब्दयोर्न किमपि प्रयोजनम् ।
 ३ आत्मानम् = आदित्यमेव ।
 १० अप्रमाद्यन्तीन्द्रियाणीत्यन्वयः ।
 १२ 'आत्मानं यन्ति' (९, ७८ | १९) 'अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ' (१९—१६) 'इत्यात्मगतिमाचष्टे' (१६) न पठितम् । 'संवत्सरं' (१०) 'अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ' (१२) 'विद्या सप्तम्यात्मनि' (१३) 'आत्मानं' (१९) न व्याख्यातम् ।
 १९-१६ 'अन्नं पानं पचनव्यूहं स्वरसान्तर्भूतं तेजो वायुवृत्तिः' इत्यस्य कावन्वयार्थो ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९८०

६ 'तिर्यग्बिल ऊर्ध्वबन्धन ऊर्ध्वबोधनो वा' (९७९ । २२-२३) 'सर्वरूपं' (२३) 'आदित्यरश्मयः' (२३-२४) इत्यत्र 'आदित्य' 'तिर्यग्बिल' (२५) 'सर्वरूपं' (९८० । १) 'अत्र' (१) न पठितम् ।

५-६ चमनम् = उदकम् । यथा चमसो मधुपूर्णस्तथा । रश्मिरूपाणि च्छिद्राणि । यथा चमसस्य तिर्यञ्चि च्छिद्राणि तथाऽस्य मण्डलस्य रश्मयस्तिर्यञ्चः । मधुपूर्णं चमसे छिन्द्राणि किंकृतानि ।

७ भूतानां संप्लवो नाशः । तदवधि ।

९ सूर्य उदकमस्तीति स चमसः ।

१२ तदधिष्ठात्रा सूर्येण ।

१९ आत्मगतिपक्षे 'ऊर्ध्वबोधनः' (९७९ । २५) 'ऋषयः सप्त' (९८० । १) 'इन्द्रियाणि यानि' (१) 'गोप्तृणि' (१) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

१९-२० इन्द्रियाननुभूतं = ब्रह्मरसो ब्रह्मज्ञानं वेन्द्रियैर्नानुभूयते । 'इन्द्रियत्वेन भूतं' (पाठभेदः २७-२९) अयं पाठभेदो दुर्बोधः ।

२० के ते विधातारः ।

९८१

१७ 'ऋजुगामिनाम्' (९) 'इति' (९) 'दानं' (९) 'अभि नो' (९) 'सर्वे देवाः' (११) न पठितम् ।

१७-१८ अन्तारिक्षं रश्मीन्नावृणोति न प्रतिबध्नाति ।

१९ 'कल्याण्यां मतौ' (८-९) 'चिरं' (११) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

९८२

२१-२२ 'मनुष्यधृतः' (११) 'सर्वे च देवा इहाऽऽगच्छत' (१२) न पठितम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९८३

९ 'दाशतयीषु' वृत्तौ । 'दशतयीषु' (९८२।१२) यास्कभाष्ये ।

१४-१५ विश्वशब्दोपेतं मन्त्रजातं सूक्तं वा कर्मणि योज्यमिति न्याय्यम् ।

२२ 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्शानाम्' (पूर्वमीमांसा १ । २ । १) समाम्नाये = वेदे ।

२२-२५ कर्मसु यावन्तो गायत्रच्छन्दोयुक्ता मन्त्रा आवश्यकास्तावन्तो वेदेनोत्पाद्याः । किंतु तादृशं मन्त्रजातं नालं कर्मोत्पादे कर्मसिद्धयै ।

९८४

२ ओप्यन्तां = प्रयुज्यन्ताम् ।

३ इति पश्यन्यास्कार्चार्य इत्यन्वयः ।

५ यावदलं कर्मणि (तावत्) वैश्वदेवानां मन्त्राणां गायत्रे छन्दसी-
यमनुत्पत्तिर्गमयतीत्यन्वयः ।

५-७ बहुविश्वशब्दावर्थे प्रत्यासन्नौ । तयोरर्थयोररूपो भेदः । प्रायस्तौ
समानार्थौ ।

७ अत्यन्तगतः = सार्वत्रिकः । अयं सिद्धान्तो नियमो वा न
सर्वत्र युक्तः । सर्वत्रगो नियमोऽवश्यः । 'अपि चैवमनत्यन्त-
गत इत्युद्देशः' अयं सर्वेषु पुस्तकेषु पाठः । किंत्वयं दुर्बोधः ।
भाष्ये 'इत्युद्देशः' इत्यस्य स्थाने 'एष उद्देशः' (९८२।१४) ।

१५ केषुचित्सूक्तेष्वेकस्यामेव ऋचि देवतालिङ्गं वर्तते । केषुचिन्नै-
कस्यामपि । यथा 'बभ्रुरेकः' इत्यस्मिन् । ' बभ्रुरेक इति दश
द्विपदा अलिङ्गाः' (९८२।१४-१६) इति छ. त. द. पुस्त-
केषु 'एकलिङ्गं' इत्यस्यानन्तरम् । इतरेषु 'भवति' इत्यस्या-
नन्तरम् । नेदं दुर्गेण व्याख्यातम् । ऋचि ऋचि भिन्ना देवता
विशिष्टलिङ्गा किंतु नामरहिता । अत्र विश्वशब्दो विश्वलिङ्गं
वा नास्ति । तथाऽपि वैश्वदेवानां स्थाने प्रयुज्यते । तस्माच्छ्राक-
पूणिमतं नात्यन्तगतम् ।

१६ 'ऋश्याम' इयमृगाश्विनी । जर्भरी तुर्फरी पर्फरी एतादृशाः
शब्दा अस्मिन्सूक्ते सन्ति । तेन सर्वं सूक्तं पर्फरीसूक्तमित्य-
भिधीयते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९८५

१ 'इम००००० वतः' अत्र चतुष्पञ्चाक्षराणि ग. च. ज. पुस्तकेषु गलितानि । 'इमं न अस्माकं मन्त्रम्' इति पाठः स्यात् । क. ख. घ. ट. ठ. पुस्तकेषु विद्यमाना वृत्तिः सायणभाष्यमेव ।

२ 'भक्षेमहि' इति पाठोऽशुद्धः । भक्षयेमहीत्यवश्यम् ।

९८६

१२ 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' (३) ' तमालभन्त तेनायजन्त' (४) ' ह' (५) ' समसेवन्त' (६) ' यद्विवसते' (७) न पठितम् ।

१३-१५ स्थावरजङ्गमभावमापन्नमत एव सर्वगणं सर्वनामानम् ।

१५ ' तं वः० ' इत्यत्रापि पश्चाहुत्या (चराथा) ओषध्याहुत्या (वसत्या) चाशिरिध्यत इत्युच्यते । सर्वमग्निरेव । एतच्चोक्तम् ।

१६ एतादृशं दर्शनं ज्ञानं यस्य जातं तस्य प्रयोक्तुर्यजमानस्य ।

१८ देवभाविनः = देवभावं प्राप्ताः ।

२२ अन्यद्भवतीति अन्यभावि । न अन्यभावि अनन्यभावि । तादृशयज्ञस्य फलमन्यथा न भवति ।

९८७

१ ' साधनाद्द्युस्थानो देवगण इति नैरुक्ताः । पूर्वं देवयुगमित्यारूयानम्' (९८६ । ६-७) न पठितं न वा व्याख्यातम् । क एते साध्याः । यज्ञकर्मसाधनात्ते दिवमाप्नुवन् । तेन साध्या द्युस्थानो देवगण इति नैरुक्तमतम् । पूर्वस्मिन्युगे पृथिव्यां साध्यनामका देवा आसन्नित्यारूयानं पौराणिकमतम् ।

२ वैदिकशब्दा अर्थाश्च नित्याः । तेन पूर्वं ज्ञानवन्तो यज्ञकर्माणि कृत्वा तत्पदमापोदरे ।

७ ' अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त' (तै० सं० ५ । ७ । २६) इत्येव । तत्र ' तमालभन्त' नास्ति ।

८-९ ते यस्मात् = यस्मात्ते ।

पत्रं

९८७

पङ्क्तिः

९ 'अग्निर्वसुभिर्वासवः' (९८६।८) भाष्ये । 'वासवोऽग्निः' वृत्तौ ।

१९ 'सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेदं सर्वनं जुषाणाः ।
भरमाणा वहमाना हवीःप्यस्मे धत्त वसवो वसूनि, (य० वा०
सं० ८ । १८) ।

स्वगा वो देवाः सदनमकर्म य आजग्म सर्वनेदं जुषाणाः ।

' जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ' (तै०
सं० १ । ४ । ४४) ।

' सुगा वो देवाः सदना कृणोमि य आग्मेदं सर्वनं जुषाणाः ।
जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ' (मै०
सं० १ । ३ । ३८) ।

' सुगा वो देवाः सदनेदमस्तु य आजग्म सर्वनेदं जुषाणाः ।
जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ' (काठकसं०
४ । १२) । कपिष्ठलसंहितायां (३ । १०) ' आजग्म ' स्थाने
' आजग्मुः ' इति विशेषः । इतरथा कपिष्ठलसंहितापाठः काठकसंहि-
तापाठसदृशः । इयमृक्कस्यां संहितायां वर्तत इति न ज्ञायते । उपरि
निर्दिष्टासु संहितासु ' सुपथा ' इत्यस्य स्थाने ' सदना ' अथवा
' सदनं ' वर्तते । दुर्गाभवीकृतमूले ' सुपथेदमस्तु ' (२६) इति
पाठ आसीदिति भाति । ' सवनार्नामानि ' (१७) इत्यस्य
स्थाने ' सवनमिदं ' (२४) च ।

९८८

३ 'आग्नेयं प्रातःसवनमैन्द्रं माध्यंदिनं वैश्वदेवं तृतीयं सवनम्'
(मै० सं० ४ । ९ । ९) । नव समिष्टयजूषि तृती-
यसवने हूयन्ते' (मै० सं० ४ । ८ । ४) । तेन वसवो
द्व्यस्थानाः ।

१६ 'अरमन्त' (९) 'भवाः' (१०) 'च' (१०) 'अर्वाच एना-
न्पथः' (११) न पठितम् ।

१९ 'रमयन्त' (१०-११) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
कदाचिद्धर्तमाना इत्येष शब्दो 'रमयन्त' इत्यस्य व्याख्या स्यात् ।

९८९

१ अहतान् = नवान् । प्रहतान् (पाठभेदे २२) = सदागमनेन
हतान् उत्तमान् ।

- पत्रं पङ्क्तिः
- ९८९ १९ वाजिनो देवाश्वाः । ' नो भवन्तु ' (१०) ह्यानेषु' (१०)
'सुमितद्रवः' (११) 'इति वा' (११) 'इति वा' (११)
'इति' (१२) 'अस्मत्' (१२-१३) न पठितम् । ' अर्मावा
देवाश्वाः' (९८९ । १३) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- ९९० १-२ अ(आ) + हिं (हन्ति) । र (रहसि) + क्षसः (क्षिण्वन्ति) ।
२ अर्मावाः = रोगान् ।
- २१ 'देवानां पत्न्य उशत्यः' (१३) ' अवन्तु नः' (१४) इत्यत्र
'नः' 'चान्नसंसननाय' (१४) 'ता नो देव्यः' (१५) ' शर्म'
(१६) न पठितम् ।
- ९९१ १५ अग्न्यादिभिः पुरुषैरित्यन्वयः । ' अपि च ' इत्यत्र ' च '
(१०) ' इन्द्रस्य पत्नी ' (१०-११) ' अग्नेः पत्नी '
(११) ' अश्विनोः पत्नी ' (११) ' देव्यः ' (१२)
न पठितम् ।
- १७ राष्ट्र राजमाना । ' राजतेः ' (११) ' कामयन्तां ' (१२)
न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- १८-१९ रोदसी इति प्रगृह्यं शाकल्यस्य पदकारस्य मतेन । तेन तद्द्वि-
वचनम् । किंत्वत्र तदेकवचनम् । तेन न प्रगृह्यम् ।
- ९९२ २ कश्चासौ कालः । भुक्तवत्सु पुरुषेषु = अग्न्यादिपुरुषभोजना-
नन्तरम् । ' य ऋतुः कालो ज्यायानां य ऋतुः कालो
ज्यायानाम् ' (९९१ । १३) इति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्ति-
द्योतनाय
- ९९४ १० अतिस्तुतय इति नरुक्तानां समयः सिद्धान्तः । तमनुसृत्य ।
११ ' अपो सुम्यक्ष० ' इत्यस्याऽऽर्षच्छन्दोविनियोगा न दीयन्ते ।
- ९९५ २ स्तोत्रियश्चानुरूपश्च स्तोत्रियानुरूपौ न तु स्तोत्रिनुरूपे ।
३ ' ते ' (९९४-२२) ' न त्वा ' (२२) इत्यत्र ' न
द्यावापृथिव्यां ' (२२) इत्यत्र च ' न ' न पठितम् ।
' वज्रिन् ' (२३) ' अभ्यश्रुवाताम् ' (२३) न पठितं
न वा व्याख्यातम् ।

- पत्रं
९९५ पङ्क्तिः
१९ ' यत् ' (१२) ' गतिकर्मणः ' (१३) ' एतत् ' (१४)
न पठितम् ।
- २१ व्यवधीयते = व्यवहितोऽदृश्यो भवति मनुष्यः ।
- ९९६ १४ ' हि ' (९) ' च ' (९) ' पोषेषु ' (१०) न
पठितम् ।
- १८ ' यत्रामाद्यद्रषाकपिरर्य ईश्वरः ' (९-१०) ' अथैपाश्विनोः '
(१२) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।
- २३-२४ ' अथैपा वाचः प्रवाहितेव ' इदमष्टमखण्डस्यान्ते । पञ्चमपष्ठ-
सप्तमष्टमखण्डा दुर्गस्वीकृतमूले नाऽऽसन् ।
- ९९७ ३ सृण्येवेति । नेयं यास्ककृतभाष्यपद्धतिः । यास्कः ऋक्प्रती-
कानि न पठति । द्विविधा सृणिर्भवति । अत्र सृणिशब्द-
स्त्रीलिङ्गः । तेन ' भर्ता हन्ता ' इति अशुद्धे रूपे । ' भर्त्रा
हन्त्री ' इत्यवश्यम् । ' सृण्येव ' अत्र न सृणिशब्दः । द्वौ
सृण्यौ न द्वे सृणी । ' सृण्यशब्दस्य कोऽर्थः ।
- ४ यथा सृणिः भर्त्रा तथा अश्विनौ अपि भर्तारौ । ' चापि '
इत्यत्र 'च' शब्दः अनवश्यः । जर्मरी = भर्तारौ । ' इत्यर्थः ' ।
यास्कः इत्यर्थशब्दौ भाष्ये न प्रयुनक्ति । तुर्फरीतू = हन्तारौ ।
- ६ तुर्फरी = क्षिप्रहन्तारौ । उदन्यजेव = उदकजे इव ।
- ७ रत्ने सामुद्रे चान्द्रमसे इति अध्याहृतम् । समुद्रे भवं सामुद्रम् ।
चन्द्रमसि भवं चान्द्रमसम् । किमिदं चान्द्रमसं रत्नम् । चन्द्र-
कान्तः चन्द्रमसि न विद्यते । किंतु चन्द्ररश्मिभिः स्पृष्टः सन्
द्रवते । जेमने = जयमने ।
- ८ जरायु = जरायुजम् । ' शरीरं ' अध्याहृतम् ।
- ९ ' शरदम् ' अयं कस्य अर्थः । अजरं = अजीर्णम् ।
अत्र सायणभाष्यम् । ' नृण्येव सृण्याविव । सृणिरङ्कुशः ।

पत्रं

९९७

पङ्क्तिः

९ अङ्कुशार्हो मत्तगजाविव । जर्भरी गात्रविनामं कुर्वन्तौ ।
यद्वा । सृण्येव । सृणिर्द्विविधा । मत्तगजस्यैकत्रावस्था-
पयिष्येका । अपरा बाधयित्री । तादृशौ सृण्याविव जर्भरी
भर्तारौ एकत्रैवावस्थापकौ । तथा तुर्फरीतू तार्फितारौ शत्रूणां
हन्तारौ । नैतोशेव । नितोशातिर्वधकर्मा । नितोशयतीति नितोशः ।
तस्यापत्यं नैतोशः । ताविव तुर्फरी शत्रूणां हन्तारौ । पर्फरीका
पर्फरीकौ शत्रूणां विदारयितारौ । यद्वा । स्तोतृजनानां घनादि-
दानेन पूरयितारौ । उदन्यजेव उदन्यजे इव । उदके भवं उद-
न्यम् । तत्र जाते रत्ने इव निर्मलौ । कान्तियुक्तावित्यर्थः ।
जेमना जेमनी जयशीलौ । मदेरू बलातिशयेन मत्तौ स्तुत्यौ वा ।
ता तौ पूर्वोक्तगुणौ अश्विनौ युवां मे मदीयं जरायु जरायुजमत
एव मरायु मरणशीलं शरीरम् । अजरं जरारहितं मरणधर्मरहितं
कुरुतम् । यास्कभाष्यं दुर्बोधम् । यस्मात् यास्कः सृण्यनैतोशश-
ब्दयोः अर्थो न ददाति । रत्नशब्दः नपुंसकः । अश्विनौ पुमांसौ ।
तौ रत्नाभ्यां कथं उपमीयेताम् । सायणभाष्यं अपि न साधु ।
कदाचित् अयं अर्थः स्यात् । ' जर्भरी ' इदं भृघातोः यङि
नामरूपं स्यात् । भृघातोः अभ्यासः जर्भृ । इकारो नाम-
करणः । यः पौनःपुन्येन भृशं वा विभर्ति सः जर्भरिः ।
पर्फरीका । अत्र कआगमः छन्दोर्थः स्यात् । जर्भरिवत्
पर्फरिशब्दः फृघातोः यङि नामरूपं स्यात् । घातुपाठे फृघातुः
नैव विद्यते । स कदाचित् भृघातोः उच्चारभेदः स्यात् ।
तुर्फरिशब्दः पर्फरिसदृशो भाति । ' पर् ' इत्यस्य
स्थाने ' तु ' इत्यादेशः ग्रामीणैः कृतः स्यात् ।
' तुर्फरीतू ' इत्यत्र तूआगमः छन्दोर्थः स्यात् । उदन्यज-
शब्दः ' उदन्य-उदज ' इत्यनयोः शब्दयोः समासेन घटितः
स्यात् । उदनि भवः उदन्यः । उदन्ः जातः उदजः । अयं
काश्चित् उदकचारी पक्षी स्यात् । धर्मकर्मशर्मभर्मवत्
जेमन्शब्दः जिघातोः मन्प्रत्ययान्तः उत्पन्नः स्यात् । जेमा
जमना जमनः इति तस्य रूपाणि भवेयुः । मदेरूशब्दः मदघातोः ।
अश्विनौ श्येनाभ्यां उपमीयेते । यथा—'विभिः श्येनेव दीयतम्'

पत्रं

९९७

पङ्क्तिः

९ (ऋ० सं० ९ । ७४ । ९) । ' कुह श्येनेव पेतथुः ' (ऋ० सं० ८ । ७३ । ४) । ' श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छतः ' (ऋ० सं० ८ । ३९ । ९) । सृण्य-नैतौश-उदन्यजाः इमानि केषांचित् पक्षिणां नामानि स्युः । यथा इमे पक्षिणः अरिभूतान् पक्षिणः जयन्ति स्वभक्ष्यं च अपहरन्ति तथा अश्विनौ अत्रिच्यवनादीन् आपदः उद्धरतः । ता तौ युवां अश्विनौ मे मम जरायु जरावशं मरायु मरणवशं शरीरं अजरं जरामरणमुक्तं कुरुतम् । अयं केवलः तर्कः ।

१२ तरत् = तरति स पापं सर्वम् । मन्दी = यः स्तौति ।

१३ धावति = गच्छत्यूर्ध्वं गतिम् । धारासुतस्य अन्धसः = धारया अभिषुतस्य अन्धसः = धारया अभिषुतस्य सोमस्य मन्त्रपूतस्य वाचा स्तुतस्य । अयं आत्मपरोऽर्थः ऋचि न विद्यते । तरत् = समुद्रं तरन् । ' तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा ' (ऋ० सं० ९ । १०७ । १९) । सोमरसः जलेन मिश्र्यते तस्मात् सोमः समुद्रं तरति इति ऋषिः वक्ति । सोमः मन्दी इति उच्यते । यस्मात् सः दृष्यति पातृन् हर्षयति च । एतादृशः सोमः पवित्रं प्रति धावति । सुतस्य अन्धसः सोमस्य धारा पवित्रं प्रति धावति । अस्य सूक्तस्य चतस्रः ऋचः । प्रत्येकस्याः अन्तिमः पादः तरत्स मन्दी धावतीति । इन्द्रादयो देवाः पिबेयुः इति सोमः त्वरया पवित्रं प्रति शुद्धीकरणार्थं धावति इति अतिशयोक्तिः ।

१९ चत्वारि शृङ्गेति । ईदृशानि प्रतीकानि अस्मिन् एव अध्याये दृश्यन्ते । आदौ त्रयः एव वेदाः आसन् । न चत्वारः ।

२० प्रातःसवनं माध्यंदिनं तृतीयं सवनं इति त्रौणं सवनानि । ' प्रायणीयोदयनीये ' इति द्वयोः इष्टयोः नामनी ।

२१ हस्तासः = छन्दांसि । त्रिधा = त्रेधा = मन्त्रब्राह्मणकल्पैः ।

२२ रोरवणमस्य सवनक्रमेण । आदौ ऋचः । तदनन्तरं यजूषि । तदनन्तरं सामानि । एवं सवने सवने क्रमः । अयं त्रिविधः पाठः अस्य वृषभस्य रोरवणमित्युच्यते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९९७

२३ यदेनमृग्भिः ० स्तुवन्ति । इदं ब्राह्मणवाक्यवत् भाति ।

२४ एष हि महान् देवो यद्यज्ञः । इदमपि तथैव ।

२४-२५ एष हि मनुष्यानाविशाति यजनाय । इदमपि तथैव ।

अत्र सायणभाष्यम् । “ यद्यपि सूक्तस्य अग्निसूर्यादिपञ्चदेवता-
 कत्वात् पञ्चधायं मन्त्रो व्याख्येयस्तथापि निरुक्ताद्युक्तनीत्या
 यज्ञात्मकाग्नेः सूर्यस्य च प्रकाशकत्वेन तत्परतया व्याख्यायते ।
 अस्य यज्ञात्मकम्याग्नेः चत्वारि शृङ्गा चत्वारो वेदाः शृङ्गास्था-
 नीयाः । यद्यपि आपस्तम्बेन ‘ यज्ञं व्याख्यास्यामः । स त्रिभिः
 वेदैर्विधीयते (परिभा. १।३) इत्युक्तम् । तथाऽपि आथर्वण-
 स्येतरानपेक्ष्यैवैकाग्निसाध्यानां कृत्स्नकर्मणां अभिधायकत्वात्
 तदपेक्षया चत्वारि शृङ्गेत्युक्तम् । त्रयोऽस्य पादाः सवनानि
 त्रीण्यस्य पादाः । प्रवृत्तिसाधनत्वात्पादा इत्युच्यन्ते । द्वे
 शीर्षे ब्रह्माँदनं प्रवर्धश्च । इष्टिसोमप्राधान्येन इदं उक्तम् ।
 सप्त हस्तासः सप्त च्छन्दांसि । हस्ता अनुष्ठानस्य मुख्यं साध-
 नम् । छन्दांस्यपि देवताप्रीणनस्य मुख्यसाधनमिति हस्तव्यव-
 हारः । त्रिधा बद्धः मन्त्रकल्पब्राह्मणैः त्रिप्रकारं बद्धः । बन्धन-
 मस्य तन्निष्पाद्यत्वम् । वृषभः फलानां वर्षिता । रोरवीति भृशं
 शब्दायते । ऋग्यजुःसामोकथैः शस्त्रयागस्तुतिरूपैः होत्राद्यु-
 त्पादितैः ध्वनिभिः अमो रौति । एवं महा देवः मत्यान्
 आविवेश । मर्त्यैः यजमानैः निष्पाद्यत्वान् प्रवेश उपचर्यते ।
 अथ सूर्यपक्षे व्याख्यायते । अस्य आदित्यस्य चत्वारि शृङ्गाणि
 चतस्रो दिशः । एताः श्रयणार्थत्वात् शृङ्गाणीत्युपचर्यन्ते ।
 त्रयो अस्य पादाः । त्रयो वेदाः पादस्थानीयाः भवन्ति गमन-
 साधनत्वात् । तथाहि ‘ ऋग्भिः पूर्वाह्नि दिव देव ईयते ’ इत्यु-
 पक्रम्य ‘ वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः ’ (नै. ब्रा० ३ । १२।
 ९ । १) इति हि वेदत्रयेण गतिगन्ताता । द्वे शीर्षे । अहश्च
 रात्रिश्च द्वे शिरसी । सप्त हस्तासो अस्य । सप्त रश्मयः
 पट् विलक्षणाः ऋतवः एकः साधारणः इति वा सप्त हस्ता
 भवन्ति । त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु क्षित्यादिषु अन्याद्यात्म-
 कत्वेन संबद्धः । ग्रीष्मवर्षाहेमन्ताख्यैः त्रिभिः त्रेधा बद्धो वा ।

पत्रं

पङ्क्तिः

९९७

२४-२९ वृषभः वर्षिता । रोरेवीति शब्दं करोति वृष्ट्यादिद्वारा । सः महो महान् देवः मर्त्यानाविवेश तन्नियन्तृतया । ‘ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुतश्च ’ (ऋ० सं० १ । ११९ । १) इति हि श्रुतम् । एवं तु अवादिपक्षेऽपि योज्यम् । ”

अत्र व्याकरणमहाभाष्यम् । “ चत्वारि शृङ्गाणि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च । त्रयो अस्य पादास्त्रयः कालाः भूतभविष्यद्वर्तमानाः । द्वे शीर्षे द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्यश्च । सप्त हस्तासो सप्त अस्य विभक्तयः । त्रिधा बद्धस्त्रिषु स्थानेषु बद्ध उरसि कण्ठे शिरसीति । वृषभो वर्षणात् । रोरेवीति शब्दं करोति । कुत एतत् । रौतिः शब्दकर्मा । महो देवो मर्त्या आविवेशेति । महान्देवः शब्दः । मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्याः । तानाविवेश ” ।

२८ यन्तः = गच्छन्तः ईजाना वा । अपेक्षन्ते = ईक्षन्ते । स्वर्गन्तो नापेक्षन्ते = ते अमुमेव लोकं गतवन्त ईक्षन्ते ।

९९८

२ विश्वतोधारं = सर्वतोधारम् ।

अत्र महीधरभाष्यम् । ‘ मुष्टु विदन्ति जानन्ति ते सुविद्वांसः ज्ञानकर्मसमुच्चयकारिणः । ये सुविद्वांसः यज्ञं वितेनिरे वितन्वन्ति अनुतिष्ठन्ति । कीदृशं यज्ञम् । विश्वतोधारं विश्वतो धारा यस्य तम् । आहुतिदक्षिणान्नानि यज्ञस्य धाराः । वैश्वानरमारुतपूर्णाहुतिवसोर्धारावाजप्रसवीयानि वा यज्ञस्य धाराः । यद्वा विश्वस्य जगतो धारयितारम् । ते यज्ञकर्तारः स्वः स्वर्गं यन्तो गच्छन्तो नापेक्षन्ते पुत्रपश्चाद्यपेक्षां न कुर्वते कृतकृत्यत्वान् । द्यां स्वर्गं चाऽऽरोहन्ति । कीदृशीं द्याम् । रुणद्धि जरा-मृत्युशोकादीन् सा रोदसी ताम् । रोदसी इति दिवो विशेषणं न तु द्यावापृथिव्योराभिधानम् । दिव इत्युपादानात् । यद्वा । ये यजमानाः सुविद्वांसः मुष्टु कर्मप्रकारं जानन्तः विश्वतोधारं जगद्धारणहेतुं यज्ञं वितन्वन्ति विशेषेण कुर्वन्ति ते द्यां अन्तरिक्षं आरोहन्ति । तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ आरोहन्ति । ततः स्वर्गन्तः स्वर्गस्थं आदित्यमण्डलं प्राप्नुवन्तः अन्यत्किमपि स्थानं न अपेक्षन्ते । ”

पत्रं

पङ्क्तिः

९९८

२ रोदसीपदस्य द्यावापृथिव्यौ इत्यर्थः । इदं पदं व्यर्थम् । यस्मात् पृथिव्याः अत्र न किमपि प्रयोजनम् । ' द्यां'पदेन द्यौः कथितैव । ' ईक्षन्ते ' ' विश्वतोधारं ' ' वितेनिरे ' एते शब्दाः ऋक्शाखायां न वर्तन्ते । अस्या ऋचः भाषाशैली अर्वाचीना । ये सुविद्वांसो विश्वतोधारं सर्वस्य जगतः धारयितारं यज्ञं वितेनिरे वितन्वन्ति ते द्यां आरोहन्ति । स्वर्धन्तः स्वर्गं गच्छन्तः स्वर्गादन्यत् न किञ्चिदपेक्षन्ते ।

३ प्रवहल्लितेव = प्रवहल्लिता इव । ' प्रवहल्लिता ' इत्यस्य कोऽर्थः । स्तुतिः वर्णनं वा इति अर्थः स्यात् । इव शब्दः किमर्थम् ।

९९९

१ ' गुहा गूहतेः ' (९९८ । ९) ।

६ ' ओंकारो महाव्याहृतयश्चेत्यार्ष ' (९९८ । १०) ' प्रजापतिः ० त्रयीं विद्यामभ्यतपत् । तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्राप्तवन्त भूर्भुवः स्वरिति ' (छा० उ० २ । २३ । २) । ' तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओंकारः संप्राप्तवत् ' (छा० उ० २ । २३ । ३) एतदार्षं विवरणम् ।

७-९ आख्यातानामर्थः कथमप्रसिद्धतरः । नामान्यप्यप्रसिद्धानि सन्ति । उपसर्गनिपातानामर्थोऽनिश्चितो भवेन्नत्वाख्यातानाम् । दुर्गकृतं विवरणमकिञ्चित्करम् ।

१५-१६ के एते एके । अधिभूतविदः । भूतानि सर्पादीनि ये जानते ते ।

१७ मृगाः पशुभ्यः कथं भिन्नाः । तूणवशब्दस्य कोऽर्थः । विशिष्टं वाद्यमित्येकोऽर्थः । पशुमृगयोर्मध्ये निर्देशात्तूणवः प्राणी स्यात् । ' पशुषु = गवादयः । तूणवेषु = वीणाजातिषु । वादित्रेष्वित्यर्थः । मृगेषु = सवगादिषु (?) ' (ट.) ।

१८ आत्मप्रवादाः = अद्यात्मवादिनः । प्रवदतीत्यशुद्धं प्रवदन्तीत्यवश्यम् ।

१९ ' एष्वेव लोकेषु त्रीणि ' (९९८ । १६) भाष्ये । ' एषु लोकेषु त्रीणि वै तुरीयाणि ' इति मै० सं० । ' वायौ ' (१७) भाष्ये । ' वाते ' मै० सं० । ' सादित्ये ' (१८)

पत्रं

पङ्क्तिः

९९९

१९ मै० सं० नास्ति । 'स्तनयित्नावथ' (१८) भाष्ये । 'स्तन-
यित्ना अथ' मै० सं० । 'ब्राह्मणाः वदन्ति' (१९)
भाष्ये । 'ब्राह्मणः वदति' मै० सं० । 'या च देवानां या
च मनुष्याणां' (२०) मै० सं० नास्ति । 'वाग्वै सृष्टा
चतुर्धा व्यभवत्ततो यास्त्यतिरिच्यत सा वनस्पतीन्प्राविशत्सैषा
याऽक्षे या दुन्दुभौ या तूणवे या वणिायाम्' (मै० सं०
३ । ६ । ८) ।

२० तदेतद्ब्राह्मणं स्पष्टम् । रथंतरं (९९८ । १७) वामदेव्यं
(१७) बृहत् (१८) एतानि साम्नां नामानि ।

२२ इतरे वर्णाः कीदृशीं वाचं वदन्ति । ते किं पशवः । एतेषां
मतानां मूलमन्वेप्यम् । ततोऽर्थः स्पष्टो भवेत् ।

१०००

१० 'ऋचो अक्षरे परमे व्यवने' (२) 'ऋचा' (३) न
पठितम् । 'ऋचश्च ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते० प्रति
प्रतीति च ब्राह्मणम्' (२-७) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

११-१२ अधियज्ञ ओंकारः । अधिदैव आदित्यः । अध्यात्मनि आत्मा ।

१५ ओंकारं विना देवा नाचर्यन्ते । तस्याः = वाचः ।

१६ व्यवनं विशिष्टं विविधं वा अवनं रक्षणम् । ऋचां परमं रक्षण-
मक्षरमोंकारः । नानादेवतेषु च मन्त्रेषु (६) उँकार आव-
श्यकः । विविधमस्मिञ्छ्रुजातमिति दुर्गः ।

२१ अक्षरं सर्वेषां शब्दानां मूलम् ।

२५ 'ओंकार एवेदं सर्वम् । ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' (मा०
उ० १) । 'ओमितीदं सर्वम्' (तै० उ० अनुवाकः ८) ।

२६ तानि = ऋगार्दानि ।

१००१

१ प्रणवः = उँ । प्रणवस्य विग्रहः शरीरम् आत्मा ।

११ ऋगेष आदित्य इत्यन्वयः ।

१३ प्रत्यूचः = सर्वाणि भूतानि (४-५) । 'प्रत्यूचः सर्वाणि
भूतानि' (४-५) 'यदेनेनार्चन्ति' (७) प्रत्यूचः

पत्रं

पङ्क्तिः

१००१

१३ सर्वाणीन्द्रियाणि ' (७) यान्यस्मिन्नात्मन्येकं भवन्ति '
(९) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

१३-१४ मात्रेभ्यः (९) = अवयवेभ्यः ।

१४ ' भवति ' (९) ' इत्यधिदैवतं ' (६) ' अथाध्यात्मं '
(६) ' अत्र ' (७) ' उच्यन्ते ' (७) ' भवति '
(८) न पठितम् ।

१९ अयमात्मा शरीरं वा ऋक् । यास्कभाष्ये शरीरमेव (७) ।

२१ ' अविनाशिधर्म ' (८) भाष्ये । ' अविनाशिधर्मि ' वृत्तौ ।
ऋक् प्रत्युग्यथाऽवयवः प्रत्यवयवः । ऋक् ऋग्यजुःसामानि ।
प्रत्युचो ब्राह्मणानि (?) । देवाः प्रसिद्धाः । अक्षरमोकारः ।
अथवा । ऋक् आदित्यः । प्रत्युचः सर्वाणि भूतानि । देवा
रश्मयः । अक्षरम् अन्यन्मात्रेभ्यो भूतेभ्यः । अथवा । ऋक्
शरीरम् । प्रत्युच इन्द्रियाणि । देवा इन्द्रियाणि । अक्षरम्
अविनाशिधर्म

१००२

१९ वाचः क्षयो निवामः । ' नास्य क्षयो भवति ' (२७) मूलः
च. पाठः । स . वाक्क्षयो भवति ' इति शुद्धी क्रियते । अ
(न) + क्षरं (क्षयः) । ' न क्षीयते ' (४) अस्य
विवरणम् ' अक्षयं ' । अथवा । ' अक्षयो भवति ' ।
' वाक्क्षयः ' इति दुर्गम्बीकृतपाठः । ' वाक्क्षरं ' (२९)
इति पाठभेदः । वाचः क्षरं निवामः । क्षयस्याभावोऽक्षयम्
(४) अव्ययीभावः ।

१७-१८ यथाऽरा अक्षे वर्तन्ते तथा ।

२२ ' अन्तम्योपप्रदर्शनार्थः ' इदं ' परिसमाप्त्यर्थः ' इत्यस्मात्कार्यं
भिन्नम् । ' वान्तस्य ' अत्र च. मूलपाठो दुर्वाच्यः । अन्तः
सिद्धान्तः स्यात् ।

१००३

१ ' अभ्यूहः ' इति क. ख. छ. त. द. पुस्तकेषु (१००२ ।
२६) । वृत्तौ ' अभ्यूहः ' ।

१-२ अभ्यूहः = वितर्कितः ।

टिप्पणी ।

पत्रं

पङ्क्तः

१००३

३ पुनरयं० = अयं पुनर्मन्त्रार्थः ।

४ निगमशेषाः = उपनिषदो वेदान्ताः ।

५ वाक्यार्थसामर्थ्यात् = वाक्यार्थाधारेण । उनीतं तर्कितमर्था-
भिधाने सामर्थ्यं शक्तिर्येषाम् । तस्य विचारस्यापरे पर्यायाः ।
' उपरि ' अशुद्धम् ।

१५ उपदेशेनार्थं गृह्णन्ति त औपदेशिका असाक्षात्कृतधर्माणः ।

१८ पारोक्ष्येण = आचार्यपरम्परया (निरु० पृ० ९८।५० ८) ।
एतषु = औपदेशिकेषु

२३ नियोगे = कर्माणि ।

२५ ' मनुष्या वा ' = मनुष्या वै ! उत्क्रामत्सु = स्वर्गं गच्छत्सु
मृतेष्वित्यर्थः ।

१००४

२ पुराकल्पः = पूर्वयुगवृत्तान्तः ।

३ ' तेभ्य एतं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूहं प्रायच्छन् ' इति वृत्तौ ।
' तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूहं '
भाष्ये (१००२।१०-११) । तर्क एव ऋषिः । अभ्यूहो वित-
र्कितो मन्त्रार्थचिन्तारूपोऽभ्यूहः । एतद्रूपस्तर्क एव ऋषिः ।
तं प्रायच्छन् ! ' को न ऋषिर्भविष्यति ' इति प्रश्नस्य उत्तर-
मिदम् ।

३-४ समस्तार्थरूपमेतद्गृहं प्रायच्छन्नित्यन्वयः ।

४-५ भवन्तः शक्यन्ते शक्नुवन्ति । ' शक विभाषितोऽमर्षणे '
(४।८१) ।६ सूक्ते = स्पष्टे । ' किञ्च ' (१००२।११) इत्यत्र
' किञ्चित् ' ।

२१ ' प्रजवेषु यत् ' (१३) ' अत्राऽऽह ' (१४) न पठितम् ।

२२ न साक्षात्तेऽर्था दृश्यन्ते ।

२४ संयजन्ते = परस्परेण संपूजयन्ति = एकमत्येन स्वर्गाद्यर्था-
न्पूजयन्ति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००९

९ प्रतिभानवतां = बुद्धिमताम् । तेषां मनोवृत्तयो न सर्वत्र संचरितुं शक्नुवन्ति ।

७ ऊहब्रह्मा = तर्करूपं ब्रह्म । शब्दानामर्थानां ये न्याया ये विवरणनियमास्तत्र संकटेषु । दुर्बोधार्थेष्वित्यर्थः । 'ऊह-ब्रह्माण ऊह एषां ब्रह्मेति वा' (१९) 'अथाऽऽगमो यां यां देवतां निराह तस्मास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवत्यनुभवति' (१००४।१७-१८) न पठितं न वा व्याख्यातम् ।

१० 'अस्या उद्वाहितोनेश्वानेदाद्वेदः' इदमतीव दुर्बोधम् ।

१२-१३ श्रुतिर्विद्यतेऽस्य स श्रुतिमान् । तस्य बुद्धिरियं विद्या । सा तां बुद्धिं वर्षति नरं श्रुतवन्तं करोति । 'श्रुतिमति बुद्धिः' इति विग्रहः । अन्यथा 'श्रुतिः मतिः बुद्धिः' एवं विग्रहो भवेत् । (निरु० १४ । १४ पृ० १०१३ । प० २२-२३) इत्यत्र 'विद्याबुद्धिमताम्' इति विद्यते । तेनात्र इयं विद्या श्रुतिरूपा मतिरूपा बुद्धिरूपा इत्यर्थः स्यात् । 'श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः' इत्येवं उपनिषत्सु उच्यते ।

१६-१८ वेदे विधयः प्रातपधाः प्रसवाः (तेषामपवादाः) नियमाः (नियम-विधयः) परिसंख्या (तद्रूपः प्रतिषेधः) पुनर्वचनं (पुनरुक्तिः) परार्थवादाः (अर्थवादाः) तैर्वेदो गहनः संकटः ।

१८ श्रुतमनतिक्रम्य प्रमां ज्ञानं यो गृह्णाति तस्य । श्रुतावलम्बिन इत्यर्थः । वेदशब्दान्वाच्यार्थेनैव गृह्णाति न लक्ष्यार्थेन ।

१९ परमं दुर्धिज्ञानानि दुर्धिज्ञेयानि तथाऽपि वेदनीयानि ।

१००७

२ व्याख्यातं दैवतं सप्तमाध्यायादारभ्य त्रयोदशः अध्यायं यावत् ।

यज्ञाङ्गं च । दैवतं प्रकरणं यज्ञस्य अङ्गं इति च व्याख्यातम् । यज्ञादृते दैवतस्य न कोऽप्युपयोगः । सर्वं दैवतं कर्मपरम् । 'यद्दैवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्दैवता भवन्ति' । (नि० अ० ७ ख० ४) । अत्र यज्ञाङ्गस्य भिन्नः अर्थः । ऊर्ध्वमार्गगतिं = ऊर्ध्वमार्गेण गमनम् । कः ऊर्ध्वमार्गः कथं च आत्मा तेन गच्छति इत्यस्मिन् अध्याये व्याख्यायते । यस्मात्कर्म समाप्तं तस्मात्

पत्रं

पङ्क्तिः

१००७

२ ऊर्ध्वमार्गस्य मोक्षस्य गतिः व्याख्येया । किंतु एतद् ऊर्ध्व-
मार्गप्रकरणं निघण्टौ नान्तर्भवति ।

३ सूर्ये आत्मेत्युदितस्य हि कर्मद्रष्टा । इदं दुर्बोधं अशुद्धं
अपूर्णं वा । 'सूर्ये आत्मेत्युदितस्य निर्देशः' इति वाक्यं
स्यात् । 'सूर्य आत्मा' अयं उदितस्य सूर्यस्य निर्देशः । स हि
कर्मद्रष्टा । स हि स्थावराणि जङ्गमानि च यानि कर्माणि
कुर्वन्ति तेषां द्रष्टा साक्षी । तस्मात् पापं कर्म हेयं पुण्यं च
कार्यम् ।

३-४ अथैतदनुप्रवादति । कः अनुप्रवादति । कुत्र चायं अनुप्र-
वादः । अयं अनुप्रवादः अत्र न दत्तः । 'सूर्य आत्मा'
इत्यत्र सूर्यः साक्षीत्युच्यते । अयं प्रवादः । तस्य अनुप्रवा-
दाय अन्याः ऋचः अवश्याः । किंतु अनुप्रवदन्ती ऋक्
नैकाऽपि पठ्यते । महागण्टपाठे 'अनुप्रवदन्ति' इति बहुवचनम् ।

४ अथैतं महान्तं० । अयं भिन्नः अधिकारः । 'ऋग्गणः' इत्य-
नेन बह्वचः ऋचः पठिताः आसन् इति भाति । किंतु अत्र
एकैव ऋक् पठ्यते । 'इन्द्रं मित्रं' इत्यादिः । एषः + ऋग्गणः
= एष ऋग्गणः । न तु एषर्गणः ।

५ आत्मजिज्ञासया । महति आत्मानि इयं जिज्ञासा कथं उद्भवेत् ।
स आत्मानं जानात्येव । आत्मजिज्ञासा व्यष्टीनां (जीवात्मनां)
स्यात् । तदर्थं महानात्मा स्वरूपं प्रवक्ति ।

८-९ जन्मना अहं जातवेदाः अग्निः अस्मि । जातः एव अहं जात-
वेदोऽग्निसंज्ञां प्राप्तवान् । घृतरूपं मे चक्षुर्भवति । अमृतं च मे
आस्यं भवति । अहमेव त्रिधातुः अर्कः । त्रिधातुः सुबद्धः
ध्रुवः । अर्कः = मन्त्रः । रजसः = लोकस्य । विमानः = विमाता ।
सर्वान् लोकान् अहं विमिमे । घर्मः = तप्तं दुग्धं यत् देवेभ्यः
निरुप्यते । अजस्रः = सततः । अहं देवेभ्यः अविच्छेदं घर्मं
ददामि । मम नाम हविः । अस्यां ऋचि अग्निः स्वं महिमानं
वर्णयति । न महतः आत्मनः ।

पत्रं पङ्क्तिः

१००७

१०-११

प्रथमजाः=प्रथमं जातः । ऋतस्य = महतः आत्मनः । महतः आत्मनः अहं अन्नं प्रथमं जातमस्मि । सर्वेभ्यो देवेभ्योऽपि प्रथमं जातं अस्मि । अहं अमृतस्य महतः आत्मनः नाम धारयामि । अहमेव अमृतः महानात्मा । यः यजमानः मां (अन्नं) अन्यस्मै ददाति सः एव मावत् मादृशः (महानात्मा) भवति । अन्ननामधेयं अहं यः केवलं अन्नमात्ति अन्नशब्देन महान्तं आत्मानं न जानाति तं अग्निं नाशयामि । महतः आत्मनः आत्मानं भिन्नं पश्यन्तः सर्वे नश्यन्ति । कस्यामुपनिषदि इयं ऋक् वर्तते इति न ज्ञायते । इयं ऋक् तैत्तिरीयोपनिषदि एवं पठ्यते—‘ अहमस्मि प्रथमजा ऋताऽस्य । पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाऽभायि । यो मा ददाति स इदेव माऽवाः । अहमन्नमन्नमदन्त माऽग्नि’ इति । अत्र शांकरभाष्यम् । ‘अहमस्मि भवामि । प्रथमजाः प्रथमजः प्रथमोत्पन्नः ऋतस्य सत्यस्य मूर्तामूर्तस्यास्य जगतो देवेभ्यश्च पूर्वं अमृतस्य नाभिः अमृतस्य नाभिर्मध्यं मत्संस्थं अमृतत्वं प्राणिनां इत्यर्थः । यः कश्चित् मा मां अन्नं अन्नार्थिभ्यो ददाति प्रयच्छति आत्मना ब्रवीति स इदित्यं एवं अविनष्टं यथाभूतं आवा अवति इत्यर्थः । यः पुनरन्यो मामदन्वाऽर्थिभ्यः काले प्राप्ते अन्नं अत्ति तमन्नं अदन्तं भक्षयन्तं पुरुषं अहं अन्नमेव संप्रति अग्निं भक्षयामि ।’ तैत्तिरीयब्राह्मणे एवमेव ऋक्पाठः । मायणकृतः तदर्थः कर्मपरः ।

१२ स ह ज्ञात्वा० । स आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा कस्मैचित् जिज्ञासवे प्रादुर्भव । यदि स महान् आत्मा तर्हि तस्मिन् आत्म-जिज्ञासा कथं उद्भवेत् इति पूर्वं उक्तमेव ।

‘ इन्द्रिभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।

मनमस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ’ (कठोप० ३ ।

१०-११) । अत्र महानात्मा त्रिगुणाहंकाररूपः । स ‘अथैष महानात्मा’ इत्यत्र ‘स ह ज्ञात्वा’ इत्यत्र च अभिप्रेतः

पत्रं

पङ्क्तिः

१००७

१२ स्यात् । प्रादुर्बभूव = आत्मरूपं आविश्चकार कस्मैचित् जिज्ञासवे । तं च जिज्ञासुं एवं व्याजहार उवाच । किमुवाच ।

१३-१४ आत्मानं अध्यात्मजम् । आत्मा अध्यात्मजः कथं स्यात् । अध्यात्मजं = चित्स्वरूपम् । अन्तिकं = नैकटचेन अथवा सुज्ञेयतया । स्पष्टमित्यर्थः । अन्यस्मै जिज्ञासवे आचक्ष्व इति । ' आचक्ष्व ' इति अशुद्धम् । (निरु० ११ । ३४) इत्यत्र ' आचक्ष्व ' इत्यस्य स्थाने गुर्जरपाठः ' आचक्ष्व ' इति । यदि ' आचक्ष्व ' इति पाठः तदा स महान् आत्मा आत्मानं अन्यस्मै आचक्ष्व आचक्ष्वे इत्यर्थः । एवं तं व्याजहार (१२) = एवं तं आत्मानं निरूपयामास = अध्यात्मजं आत्मानं अन्यस्मै अन्तिकं आचक्ष्वे । प्रथमोऽर्थः साधीयान् । ' एवं तं० आचक्ष्वेति ' अशुद्धम् । महाराष्ट्रपाठः इतोऽपि अशुद्धतरः । पाणिनीयव्याकरणे ' आचक्ष्व ' इत्यपि अशुद्धम् । ' आचक्ष्वे ' इति शुद्धम् ।

१५-१६ पथिभिः आचरन्तं परा चरन्तं च अनिपद्यमानं गोपां आत्मानं अपश्यम् । सध्रीचीः विषूचीः वसानः सः भुवनेषु अन्तः आवरीवर्ति इत्यन्वयः । आ च परा च पथिभिः चरन्तं = सर्वत्र वर्तमानम् । अनिपद्यमानं = अशयानं सर्वदैव जाग्रतम् । गोपां = पालयितारम् । सध्रीचीः = ऋजुमार्गेण गच्छन्तीः प्रजाः । विषूचीः = विषममार्गेण गच्छन्तीः प्रजाः । वसानः = आच्छादयन् पालयन् । आवरीवर्ति = सर्वत्र सर्वदा वर्तते इत्यर्थः ।

१७ ' आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तारिति ' । एतादृक् ऋक्भाष्यप्रारम्भः गतेषु अध्यागेषु न दृश्यते । अथैष । अतः परं महतः आत्मनः लक्षणानि दीयन्ते । सत्त्वलक्षणः एव अयं आत्मा । न तस्मिन् रजस्तमसी वर्तेते ।

१८ तत्परम् । तत्सत्त्वलक्षणं वन्तु सर्वेभ्यः परम् । तद्ब्रह्मेत्युच्यते । सत्त्वलक्षणः = नित्यसत्त्वस्थः । (भ० गी० २ । ४९) ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०८७

१८ तत्सलिलम् । ' आपो ह वा इदं आसन् सलिलमेव ' । (नृ० पू० उ० १ । १) । ' सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति ' (बृ० उ० ४ । ३ । ३२) । अव्यक्तम् । ' अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपम् ' (कै० उ० १ । ६) ।

१८-१९ ' अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ' (कठोप० ३ । १९) ।

१९ अमृतम् । ' तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा ' (छा० उ० ८ । १४ । १) । शुक्लम् । ' तच्छुक्लं पुरुषलिङ्गम् ' (मै० उ० ६ । ३९) । तन्निष्ठः = तस्मिन् महति आत्मनि निष्ठा यस्य । भूतात्मा = पञ्चभूतैः परिवेष्टितः आत्मा = जीवात्मा । सर्वे जीवात्मानः महति आत्मनि स्थिताः भवन्ति । न ते स्वतन्त्राः । भूतात्माशब्दः मैत्रायण्युपनिषदि बहुकृत्वः प्रयुज्यते । दशसूपानिपत्सु नैकदाऽपि दृश्यते । ' असां भूतात्मा अन्तःपुरुषणाभिभूतः ' (मै० उ० ३ । ३) ।

२० भूतप्रकृतिः = पञ्चमहाभूतानां प्रकृतिः महान् आत्मा इति वैशेषिकाः वदन्ति । तत्क्षेत्रम् = ' इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ' (भ० गी० १३ । १) । ' तत् महान् आत्मा क्षेत्रं ' इदं वैशेषिकमनस्य व्याख्यानम् । तत् ज्ञानात् क्षेत्रज्ञम् = तत् (महानात्मा) क्षेत्रज्ञानात् क्षेत्रज्ञम् । ' एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ' (भ० गी० १३ । १) । ' अनुप्राप्य निरात्मकं ' इदं किमर्थं अत्र पठ्यते । अस्य पूर्वेण परेण वा न कोऽपि संबन्धः । ' अनुप्राप्य ' इदं ' अप्राप्य ' अथवा ' अननुप्राप्य ' इति स्यात् । क्षेत्रज्ञं अप्राप्य अननुप्राप्य वा क्षेत्रं निरात्मकम् । क्षेत्रज्ञाभावे क्षेत्रं नास्त्येव ।

२०-२१ अथैष महानात्मा० । यदि महानात्मा सत्त्वलक्षणः तर्हि तस्मिन् त्रैगुण्यं कथं उद्भवेत् । त्रैगुण्यं भूतात्मनि वर्तते । महति आत्मनि सत्त्वं विशुद्धरूपेण तिष्ठति । किंतु रजस्तमसां अभितः वर्तते ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००७

२२ कामद्वेषः = ' काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ' (भ० गी० ३ । ३७) । ' कामद्वेषः ' इति समाहारद्वंद्वः कथं स्यात् । ' स नपुंसकम् ' (पा० २ । ४ । १७) इत्यनेन ' कामद्वेषं ' इत्यवश्यम् । ' कामद्वेषौ ' इति सरलम् । रजः-शब्देन कामद्वेषौ सूच्येते । तमसः किं प्रयोजनम् । तमोगुणेन क्षेत्रज्ञानां भूतात्मनां पृथक्त्वं भिन्नत्वं संपाद्यते । तमोगुणाभावे क्षेत्रज्ञभेदो न स्यात् ।

२३ अविज्ञातस्य=यावन्महानात्मा न ज्ञायते तावत् । विशुद्धचतः= विशुद्धस्य । विभूतिं कुर्वतः = सर्वाः विभूतयः महतः आत्मनः रूपाणि । सर्वाः विभूतयः महानात्मैव । किंतु ज्ञानाभावेन ताः भिन्नाः दृश्यन्ते । एतदेव क्षेत्रज्ञपृथक्त्वम् ।

' यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोशंसंभवम् ' (भ० गी० १० । ४१)
एतासां विभूतीनां वर्णनं भगवद्गीतायां दशमेऽध्याये ।

१००८

१ परिभातिलिङ्गो महानात्मा । ' प्रतिभातिलिङ्गः ' इति महारा-
ष्ट्राणः । महानात्मा पारितः सर्वत्र भाति । आत्मनः ऋते न
किञ्चिदपि वर्तते । प्रतिभाति = आत्मा आत्मानं प्रति भाति ।
आत्मा आत्मनः अन्यत् न किञ्चित् पश्यति । चतुर्थे खण्डे
' महानात्मा प्रतिभां अप्येति ' इत्युच्यते । तेन ' प्रतिभातिलिङ्गः '
इति पाठः स्यात् । ' तमोलिङ्गः ' अस्य कः अन्वयः । ' तमो-
लिङ्गो भवति ' इति स्यात् । स्वयं परिभातिलिङ्गोऽपि सन्
केनचित् कारणेन महानात्मा तमोलिङ्गो भवति । तत्कारणं
माया । ' विद्या प्रकाशलिङ्गस्तमः ' इदं अतीष अशुद्धम् ।
' विद्या प्रकाशलिङ्गा ' इत्यवश्यम् । विद्या प्रकाशलिङ्गाऽपि
सती केनचित् कारणेन तमः (अविद्या) भवति । महान्
आत्मा = विद्या । परिभातिलिङ्गः = प्रकाशलिङ्गा । द्वयोर्वा-
क्ययोः एक एव अर्थः ।

१-२ ' अपि निश्चयलिङ्गः ' इत्यादि । अपिशब्देन सिद्धान्तः
सूच्यते । आकाशः = महानात्मा । निश्चयः लिङ्गं यस्य ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००८

१-२ आकाशस्य महतः अत्मानः लिङ्गं स्वरूपं निश्चितमेव । महानात्मा स्वयंप्रकाशः । अथवा । ' निश्चयलिङ्गः आकाशः ' इदं चतुर्थखण्डस्य सूचकं स्यात् । यस्मात् आकाशगुणः निश्चितः एव । अयं खण्डः अशुद्धः दुर्बोधश्च ।

४ ' आकाशगुणः शब्दः ' इत्यादि वैशेषिकमतम् । ' गन्ध-
रसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिन्यप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वं
अपोह्य आकाशस्य उत्तरः ' (न्यायदर्शने ३ । १ ।
६४) । पृथिन्यां स्पर्शान्ताः सर्वे गुणाः । अप्सु गन्धः
अपोह्यते । तेन अप्सु रसरूपस्पर्शाः । तेजसि गन्धरसौ अपो-
ह्यते । तेन तस्मिन् रूपस्पर्शौ । वायौ स्पर्शः एव । तथाच
आकाशे शब्दः । ' रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी । रूपरसस्पर्श-
वत्यो आपः । तेजो रूपस्पर्शवत् । स्पर्शवान् वायुः । ते
आकाशे न विद्यन्ते ' (वैशेषिकसूत्राणि २ । १-९) ।
शब्दः आकाशस्य एव गुणः इति गौतमकणादमतम् । शब्दः
पृथिन्यप्तेजोवायुषु अपि वर्तते इति सांख्याः वेदान्तिनश्च ।
' प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः । तस्मादपि
षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ' (सांख्यतत्त्वकौमुदी २२) ।
द्रविडोपाभिधराजेश्वरशास्त्रिकृतं अस्य श्लोकस्य विवर-
णम् । " शब्दतन्मात्राद्आकाशं शब्दगुणम् । शब्दतन्मात्रस-
हितात्स्पर्शनन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणः । शब्दस्पर्शतन्मात्र-
सहितात् रूपतन्मात्रात्तेजः शब्दस्पर्शरूपगुणम् । शब्दस्पर्श-
रूपतन्मात्रसहितात् रसतन्मात्रात् आपः शब्दस्पर्शरूपर-
सगुणाः । शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहितात् गन्धतन्मात्रात्
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा पृथिवी जायते इत्यर्थः " ।
पञ्चीकरणेन एतत् सिध्यति । " सर्गाद्यकाले परमेश्वरः सृज्य-
मानप्रपञ्चवैचित्र्यहेतुप्राणिकर्मसहकृतः मायासहितः नामरूपा-
त्मकानिखिलप्रपञ्चं प्रथमं बुद्धौ आकलय्य इदं कारिण्यामीति
संकल्पयति । ततः आकाशादीनि पञ्चभूतानि अपञ्चीकृतानि
तन्मात्रप्रतिपाद्यानि उत्पद्यन्ते । तत्र आकाशस्य शब्दो गुणः ।
वायोः शब्दस्पर्शौ । तेजसः शब्दस्पर्शरूपाणि । अपां शब्दः

पत्रं

१००८

पङ्क्तिः

४ स्पर्शरूपरसाः । पृथिव्याः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ” (वेदान्तपारिभाषायाम्) ।

६ ‘ पृथिव्या भूतग्रामस्थावरजङ्गमाः ’ । इदं अशुद्धम् । ‘ भूतग्रामाः ’ इत्यवश्यम् । भूतानां ग्रामाः संघाः । ते स्थावराश्च जङ्गमाश्च । पर्वतादयः स्थावराः । प्राणिनः जङ्गमाः । ‘ स्थावरजङ्गमाः ’ इदं विशेषणं अनवश्यम् । पृथिव्याः स्थावरजङ्गमा भूतग्रामा जायन्ते । तदेतद् मायोपाधिकं विपारिणतं ब्रह्म । अहर्गुणमहस्त्रमेतस्मिन्नेव खण्डे व्याख्यायते ।

७ ‘ सुपुप्स्यन् ’ कस्य विशेषणम् । ‘ तदेतत् ’ इदं नपुंसकम् । ‘ सुपुप्स्यन् ’ इत्यस्य विशेष्यं पुंलिङ्गं भवितुमर्हति । अङ्गानि प्रत्याहरति कूर्मवत् ।

‘ यदा संहरते चास्यं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ’ (भ० गी० २ । ९८) ।

८ अपियन्ति = तस्यां प्रलीना भवन्ति । एकी भवन्ति । पृथिवीरूपमापाद्यन्त इत्यर्थः । पृथिवी अपः अप्येति । अब्रूपं गृह्णाति । आपो ज्योतिषमपियन्ति । ‘ ज्योतिषम् ’ इति अशुद्धम् । ‘ ज्योतिः ’ इति शुद्धम् । ज्योतिः वायुमप्येति । वायुः आकाशमप्येति ।

९ आकाशः मनः अप्येति । मनः विद्यामप्येति । विद्या = व्यष्टिबुद्धिः । विद्या महान्तमात्मानमप्येति । महान् आत्मा = समाष्टिबुद्धिः । महानात्मा प्रतिभामप्यांते । कस्य प्रातिभा इति न ज्ञायते । सांख्यकारिकासु सा न दीयते । ‘ निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यमविसंवादकं द्राक् उत्पद्यमानं ज्ञानं प्रतिभा । विवेकात् पूर्वभावि ज्ञानं प्रातिभम् ’ (पातञ्जलयोगसूत्राणां भोजदेवविरचितवृत्तां ३ । ३३) । द्वयोर्वस्तुनोः बहूनां वस्तूनां वा भेदज्ञानं विवेकः । तद्विरुद्धज्ञानं प्रातिभम् । एतद् ज्ञानं वस्तुनि नावलम्बते । इदं ज्ञानं न केनापि वस्तुना संवदति नापि विसंवदति । तन्मनस एव झटिति उत्पद्यते । तस्मात् तत् निर्विकल्पकज्ञानवत् सामान्यम् ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००८

१० प्रतिभा प्रकृतिमप्येति । ' प्रलयक्रमः—पृथिव्याः अप्सु । अपां तेजसि । तेजसो वायौ । वायोराकाशे । आकाशस्य जीवाहंकारे । जीवाहंकारस्य हिरण्यगर्भाहंकारे । हिरण्यगर्भाहंकारस्य अविद्यायाम्' (वेदान्तपरिभाषायाम्) । सा प्रकृतिः स्वपिति । 'युगसहस्रं रात्रिः' एतस्य प्राक् 'युगसहस्रमहः' इत्यवश्यम् । अहः अनन्तरं रात्रिः । रात्रेः अनन्तरमहः । एतादृशं भ्रमणम् । अत्र 'अहोरात्रः' इत्यवश्यम् । 'अहोरात्रौ' इति किमर्थम् ।

१०-११ अजस्रं = अनवरतम् । परिवर्तते = चक्रवत् भ्रमतः ।

११ स कालः अरोरात्ररूपः । युगसहस्रद्वयपरिमाणः । तदेतत् अहः = ब्रह्मणः अहः । अहोरात्रकालः अहःपरिमाणः कथं भवेत् । 'स कालः ० भवति' इदं वाक्यं किञ्चित् दुर्बोधम् । युगसहस्रं ० । 'यत्' इत्यस्य स्थाने 'ये' इत्यवश्यम् । ये जनाः ब्रह्मणः युगसहस्रपर्यन्तमहर्विदुः युगसहस्रान्तां च रात्रिं विदुः ते अहोरात्रविदुः । भगवद्गीतायां 'सहस्रयुग' इति पाठः (भ० गी० ८ । १७) ।

१४ तं कालम् । अन्यः = जीवात्मा । जीवात्मा ब्रह्मणः अन्यः । अनुप्रवर्तते अहिं चेष्टते । रात्रौ स्वपिति । हिरण्यगर्भोऽपि परिवर्तमानं कालमनु प्रवर्तते । अहिं चेष्टते । रात्रौ स्वपिति । स्रष्टा सर्गकाले । 'बहु स्यां प्रजायेय' इति संकल्पं करोति । विभक्ता । 'तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्' (तै० उप० २ । ६ । १) अतिमात्रः = तन्मात्रेभ्यो भिन्नः ।

१५ अहमिति गम्यते । अयमहंकारस्य निर्देशः । 'स मिथ्या० भूतेषु' इदमपूर्णमतीवाशुद्धमतिदुर्बोधं च । सः जीवात्मा मिथ्यादर्शनेन जगतः आत्मनि अध्यासं करोति । 'पापकं' इत्यस्य स्थाने 'पापकं' इति पाठो भवेत् । इदं पापकं शरीरम् । इदं शरीरं महाभूतपरिणामः । सः जीवात्मा (भूतात्मा) मिथ्यादर्शनेन पाञ्चभौतिकं शरीरमहं मम इति मन्यते । पूर्णं वाक्यमित्थं स्यात् ।

पां

७८

पङ्क्तिः

१९ 'स मिथ्यादर्शनेन इदं पापकं शरीरं महाभूतेषु लभते' ।
चिरोष्वाकाशात् । किमिदं चिरोणु । 'अस्मिन् पञ्चात्मके
शरीरे यत्कठिनं सा पृथिवी । यद् द्रवं ता आपः । यदुष्णं
तेजसः । यत्संचरति स वायुः । यत्सुषिरं तदाकाश-
मिति । तत्र पृथिवी धारणे । आपः पिण्डीकरणे । तेजः
प्रकाशने । वायुर्व्यूहने । आकाशमवकाशप्रदाने' (गर्भोपनिषदि) ।
चिरोणु = सुषिरम् (?) । अयं शब्दः कुत्रापि नोपलभ्यते ।

१६ आकाशात् चिरोणु लभते । वायोः प्राणं लभते । तेजसः
चक्षुश्च वक्त्तारं लभते । अद्भ्यः स्नेहं लभते । पृथिव्याः
मूर्तिं लभते । 'मूर्तिः' इति अपपाठः । वक्त्तारं = जिह्वां वाचं
वा । 'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्' (ऐ० उ० २ । ४) ।
'वक्त्तारं' इत्यस्य स्थाने 'पक्त्तारं' इति पाठोऽवश्यः ।
यस्मात् वाग्भटकृते अष्टाङ्गहृदये शारीरस्थाने 'वहेः दृक्-रूप-
पक्तयः' (३ । ३) । वहेः = तेजसः । दृक् = चक्षुः । पक्तिः =
पक्ता । पक्ता = कोष्ठयः अग्निः । 'अन्नं पचत्यामाशय-
स्थितम् । औदर्योऽग्निः (वाग्भट-शारीर० ३ । १९-१६) ।

१७ विद्यात् = विन्दते लभते ।

१८-१९ 'त्रीन् मातृतः० पितृतः' ।

'अस्थि स्नायुश्च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज ।

त्वङ्मांसशोणितश्चेति मातृजान्यपि शुश्रुम' (महाभा०
शां० प० ३०९ । ६) । 'गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनख-
दन्तसिरास्त्रायुधमनीरेतःप्रभृतीनि स्थिरगणि पितृजानि । मांसशो-
णितमज्जाहृद्भाभियकृन्ध्रीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि'
(सुश्रुते) । मज्जा मातृतः इति चरकसुश्रुतौ । पितृतः
इति निरुक्तम् ।

१९ सर्वमयः = सर्वाणि महाभूतानि तस्मिन् वर्तन्ते । क्लृप्तः =
रचितः । स्वरूपेण आत्मा सर्वज्ञः । तथाऽपि मायया (अविद्यया)
सः जगत् आत्मानि अध्यास्ते । तेन सर्वस्मात् भिन्नोऽपि सर्वमयो
भवति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००८

२१ 'यदि' इत्यस्य स्थाने 'यत्' इत्यवश्यम् । स भूतात्मा यत्
अनुरुध्यते तत् भवति ।

'यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते केलवरम् ;

ते तमं वै नि कौन्तेय सदा तद्भावभाविनः' (भ० गी० ८।६) ।

'अनो रुध् कामे' (घा० ४।६८) । अनुरुध्यते = काम-
यते । यदि धर्म० । धर्मः अनुरुध्यते पुरुषेण । 'धर्मः' इत्यस्य
स्थाने 'धर्म' इत्यवश्यम् ।

२२ संच्यवते = पतति । 'सं' अनवश्यम् ।

२३ संदध्यात् । इमां मानवयोनिं संदध्यात् संकल्पयेत् । मतम् ।
मतं शरीररचनामन्तरेण । कस्य इदं मतम् । गर्भोपनिषदि
'श्लेष्मा रेतमः संभवति । श्लेष्मणो रसः' इति न विद्यते ।
नापि सुश्रुतचरकयोः ।

२५ गर्भोपनिषदि 'रेतः' इत्यस्य स्थाने शुक्रम् ।

२५-२६ तदिदं० संभवति । 'शुक्रशोणितसंयोगाद्भावते गर्भः' इति
गर्भोपनिषदि ।

२६ पुरुषः = मानवदेहः ।

१००९

१ 'समेन' इत्यत्र 'समाभ्यां' इत्यवश्यम् ।

२ यमो भवति । 'बीजेऽन्तर्वायुना भिक्षे द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ।
० ० ० ० यमौ इत्यभिधीयेते' (सुश्रुते) । शुक्रशो-
णित० । इदं वाक्यमशुद्धम् । शुक्रशोणितसंयोगः
मातृपितृसंयोगात्' इत्यवश्यम् । इदं वाक्यं 'पुरुषः संभ-
वति' (१००८ । २) इत्यस्य अनन्तरं भवितुमर्हति ।
रेतःशब्दस्थाने शुक्रशब्दादेशः किमर्थः ।

३ 'परं' इत्यस्य कोऽर्थः । संयम्यते = घनी भवति । 'संयम्यते'
इत्यस्याः क्रियायाः 'परं' विशेषणं स्यात् । इदं घनीभूतं शरीरं
कथमुत्पद्यते । सौम्यो भवति । अस्य कोऽर्थः । सुश्रुते इदं लिख्यते ।
स्त्रीपुंसयोः 'संयोगे वायुः शरीरात् तेजः उदीरयति । ततः

पः

१००२

पङ्क्तिः

३ तेजोऽनिलसंनिपातात् शुक्रं च्युतं सत् योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चाऽऽर्तवेन । ततः अग्निसोमसंयोगात् संसृज्यमानः गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते । क्षेत्रज्ञः वेद्यिता स्पष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोतारसयिता पुरुषः म्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता योऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकैः नामाभिः अभिधीयते । दैवसंयोगात् (दैवं = प्राक्तनजन्मकर्म) अक्षयः अचिन्त्यः भूतात्मना सह अन्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिः देवासुरैः अपरैश्च भावैः वायुना अभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्राविश्य अवतिष्ठते । सौम्यः = अग्निसोमसंयोगात् संसृज्यमानः देहः । ' सौम्यो भवति ' इदमपि ' पुरुषः संभवति ' (१००८ । २६) इत्यस्यानन्तरं भवितुमर्हति । एकस्यां रात्रौ योनौ स्थितं रेतः कल्लमित्युच्यते । वाग्भटस्तु ' अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कलली भवेत् ' इति ।

३-५ पञ्चरात्रात्० कठिनो भवति । ' द्वितीये मासि कललात् घनः पेशी अथवा अञ्जुदम् । पुंस्त्रीकृत्वाः क्रमात्तेभ्यः ' (वाग्भटः) । बुद्बुदरूपः रेतःपरिणामः कस्मिन् वैद्यकग्रन्थे उपलभ्यते । गर्भोपनिषदि ' सप्तरात्रोपितं बुद्बुदं भवति ' इति । ' पञ्चविंशतिरात्रः ' इत्यस्य स्थाने ' पञ्चविंशतिरात्रात् ' इत्यवश्यम् । गर्भोपनिषदः नारायणविरचितर्दीपिकायां यास्कमतं पठ्यते । तत्र ' बुद्बुदाः ' इत्यस्य स्थाने ' बुद्बुदः ' । ' द्विसप्तरात्रात् ' इत्यस्य स्थाने ' द्विः सप्तरात्रात् ' इति । (गुर्जरपाठोऽपि तथैव) । ' मासचतुष्केण ' इत्यस्य स्थाने ' मासचतुष्टयेन ' । ' अश्ववस्यति ' इत्यस्य स्थाने ' व्यवस्यति ' । गर्भोपनिषदि शरीरसंघातस्य इदं वर्णनम् । ' ऋतुकाले प्रयोगात् एकरात्रोपितं कलिलं भवति । सप्तरात्रोपितं बुद्बुदं भवति । अर्धमासाभ्यन्तरेण पिण्डो भवति । मासाभ्यन्तरेण कठिनो भवति । मासद्वयेन शिरः कुरुते । मासत्रयेण पादप्रदेशः भवति । अथ चतुर्थे मामि अङ्गुल्य(गुल्फ)जठरकटिप्रदेशो भवति ।

पत्रं

१००९

पङ्क्तिः

३-९ पञ्चमे मासे पृष्ठवंशो भवति । षष्ठे मासे नासाऽक्षिणी श्रोत्राणि भवन्ति । सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति । अष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति । कापिलगीतायां ' कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ' (८ । २) इत्युच्यते । ' प्रथमे मासि कललं (सिङ्घाणं) जायते । द्वितीये शीतोष्मानिलैः अभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते । यदि पिण्डः पुमान् । स्त्री चेत् पेशी । नपुंसकं चेत् अर्बुदमिति । तृतीये हस्तपादाशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्तन्ते । अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति । चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति । गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावात् चेतनाधातुः अभिव्यक्तो भवति । गर्भः चतुर्थे मासि अभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति । द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमित्याचक्षते । पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति । षष्ठे बुद्धिः । सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः । अष्टमे अस्थिरी भवति ओजः । तत्र जातश्चेन्न जीवेत् निरोजस्वात् । नवमदशमैकादशद्वादशानां अन्यतमस्मिन् जायते ' (सुश्रुते) ।

९ द्विमासाभ्यन्तरे = द्विमासात् पूर्वम् । गर्भोपनिषदि ' मास द्वयेन ' ।

६ व्यादेशः = परिणामः ।

९-१३ मृतश्चाहं ००० पञ्चविंशकमिति ।

' नानायोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।

आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः ॥ ९ ॥

मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ।

अवाङ्मुखं पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ॥ ६ ॥

जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः ।

अहो दुःखोदधौ मग्धो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ ७ ॥

यन्मया पारिजनस्यार्थं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

एकार्का तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥ ८ ॥

पत्रं
१००९

पङ्क्तिः

९-१३ यदि योन्यां प्रमुञ्चामि सांख्यं योगं समभ्यसेत् ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥ ९ ॥
यदि योन्यां प्रमुञ्चामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् ।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायिनम् ॥ १० ॥

(गर्भोपनिषदि) ।

१२-१३ एव समन्वितः । अत्र ' एव ' इत्यस्य स्थाने ' एवं ' इत्य-
वश्यम् । समन्वितः प्राक्तनजन्मकर्मणा शरीरेण च ।

१३ ' समभ्यसेत् ' इत्यस्य ' जन्तुः ' कर्ता ' । सांख्यशास्त्रं योग-
शास्त्रं पञ्चविंशकं पुरुषं च समभ्यसेत् । पञ्चविंशकम् । ' मनो
दशोन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी ' (चरक० ११९) ।
चतुर्विंशक इत्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः ' । (चरक० १३३) ।
आत्मा पञ्चविंशः । पञ्चविंश एव पञ्चविंशकः । पञ्चविंशकं
पुरुषं समभ्यसेत् = पुरुषः आत्मा चतुर्विंशतितत्त्वेभ्यः भिन्नः
इति मनसि निश्चिनुयात् । ' द्विर्द्वादशेभ्यस्तत्त्वेभ्यः ख्यातो
यः पञ्चविंशकः । पुरुषो निष्क्रियश्चैव ज्ञानदृश्यश्च कथ्यते '
(म० भा० शां० प० ३३९ । २४) । ' अहं हि पुरुषो
ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः । ' (म० भा० शां० प०
३३२ । ४२) ।

१४ ' जातश्च० । ' जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृश्य तदा न
स्मरति जन्ममरणं न च कर्म शुभाशुभम् (गर्भोपनिषदि(१०) ।

१५ ' जन्ममरणेऽन्ते ' अयं संधिः अशुद्धः । ' जन्ममरणे अन्ते '
इति शुद्धः । एतच्छरीरस्य प्रामाण्यम् । गर्भोपनिषदि वर्तमानं
एतत् वर्णनं शरीरप्राप्तिं शरीररचनां च विवृणोति । गर्भो-
पनिषद् अत्र प्रमाणम् ।

१७ अष्टोत्तरं संधिशतम् । ' साशीतिकं संधिशतम् ' (गर्भोपनि-
षत्) । ' द्वे संधिशते ' (चरकः) । ' द्वे दशोत्तरे संधि-

पत्र

पङ्क्तिः

१००९

१७ शते । (भुश्रुतः) । अष्टाकपालं शिरः । ' चतुष्कपालं शिरः ' (गर्भोपनिषत्) । ' पोटश पलानि वपा ' इत्यन्वयः । वपा मांसजन्यस्नेहः ।

१८ नव स्नायुशतानि । ' सनवकं स्नायुशतं ' (गर्भोपनिषत्) । सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणाम् । ' सप्तोत्तरं मर्मशतं ' इति चरकः गर्भोपनिषच्च ।

१९ हृदयं ह्यष्टकपालानि । ' हृदयं पलान्यष्टौ ' (गर्भोपनिषत्) द्वादश कपालानि जिह्वा । जिह्वायाः कपालानि कथं स्युः । ' कफशोणितमांमानां सारो जिह्वा ' इति सुश्रुतः । ' द्वादश पलानि जिह्वा ' इति गर्भोपनिषत् । ' सुवर्णौ ' इत्यस्य स्थाने ' सुपर्णौ ' इति महाराष्ट्रपाठः अशुद्धः ।

२० ' उपस्थगुदपायु ' ममाहारद्वन्द्वः । गुदं = पायुः । ' गुदं त्वपानं पायुर्ना ' (अमरः । २ । ६ । ७३) । पायुशब्दः अनवश्यः । उपस्थं = योनिः शिशं च । ' आहारपानसिक्तत्वात् ' इति अशुद्धम् । ' आहारस्य पानसिक्तत्वात् ' इति शुद्धम् । आहारः = जडान्नम् । तत् पानेन पेयवस्तुना सिच्यते आर्द्रा भवति । जडान्नात् पुगीपं पानात् मूत्रम् ।

अत्र वाग्भटः किट्टं • सारश्च तत्पक्रमन्नं संभवति द्विधा ।

तत्राच्छं किट्टमन्नस्य मूत्रं विद्यात् घनं शकृत् ' (वाग्भटः ३।६) ।

२०-२१ अनुपचितं० इति । इदं आकस्मिकं अतिदुर्बोधं च । इति-शब्देन अनुपचितेत्यादि आहारपानसिक्तत्वात् इत्यस्य कारणं भाति । ' अनुपचितकर्माणि ' इति म्यात् । यदा आहारः उपचेतुं अशक्यो भवति तदा पुगीपं उद्भवति । मूत्रमपि तथैव । यदा शरीरे आहारः पानं वा पूर्णं भवति तदा मूत्रपुगीपे उद्भवतः इत्यर्थः म्यात् । अस्मिन् शरीरवर्णने शोणितं मांसं मेदः अस्थीनि किमर्थं न पठ्यन्ते । इदं वर्णनं त्रुटितं भाति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१००९

२१ तं = जीवात्मानम् । विद्या अन्वेति कर्म च । पूर्वजन्मनः प्रज्ञा स्मरणं च । ' तं परलोक्याय गच्छन्तमात्मानं विद्या-कर्मणी । विद्या सर्वप्रकारा विहिता प्रतिपिद्धा च अविहिता अप्रतिपिद्धा । तथा कर्म । विदितं प्रतिपिद्धं च अधिहितम-प्रतिपिद्धं च । समन्वारभेते सम्यगन्वारभेते अनुगच्छतः । पूर्वप्रज्ञा च । पूर्वानुभूतविषया प्रज्ञा पूर्वप्रज्ञा । अतीतकर्मफला-नुभववामना इत्यर्थः ' (बृ० उ० शा० भा० ४ । ४ । २) । इदं पूर्वेण असंबद्धम् ।

२३ द्वेष्टैः = चित्तक्षोभकारिभिः भावैः । अभिभूयमानः = पीड्य-मानः । अम्मात् = शरीरान् ।

१०१०

१ आर्जवं० ... । इदमनवश्यमतीवाशुद्धं दुर्बोधं च । महाभूमि-कावत् । यथा नरः महाभूमिकां कम्पचित् महतः पुरुषस्य भूमिकां गृह्णाति अन्यभूमिकाग्रहणाय च तां त्यजति । तथा अयमात्मा इदं पापं शरीरं त्यक्त्वा तैजसं शरीरं गृह्णाति ।

२ निमेषमात्रैः = अल्पेन कालेन । प्रक्रम्य = निष्क्रम्य । शरीरात् निष्क्रम्य = प्रकृतिं स्थूलदेहमधिपरीत्य त्यक्त्वा । ' प्रकृतिः ' इति अशुद्धम् । ' प्रकृति ' इत्यवश्यम् । तैजसं शरीरं = लिङ्गशरीरम् ।

३ अनुभूय परस्मिन् लोके । इमं लोकं = पृथिवीलोकम् ।

६ हिंसां = यज्ञकर्मसंबद्धां प्राणिहत्याम् । विद्यां = ब्रह्मविद्याम् । ततः यत् कायं क्लिश्नाति । हटयोगात्मकं कर्म । ' तोषरे ' अत्र लिट् अनवश्यः । ' तपन्ति ' इति इष्टम् ।

७ धूममभिसंभवन्ति = धूमाभिमानिनीं देवतां प्रतिपद्यन्ते । धूमरूपं गृह्णन्ति ।

८ अपक्षीयमाणपक्षं = कृष्णपक्षं यस्मिन् चन्द्रकला अपक्षीयन्ते ।

९ ' ओपधयः ' इति अशुद्धम् । ' ओपधीः ' इत्यवश्यम् ।

१० एतद्भूत्वा = ओपधयो भूत्वा । तस्य संक्षये = कृतकर्मफलस्य

पत्रं

१०१०

पङ्क्तिः

१० संक्षेपे । अत्र च्छान्देसायम्—‘अथ ये ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति । धूमात् रात्रिम् । रात्रेः अपरपक्षम् । अपरपक्षात् यान् षट् दक्षिणा एति मासान् तान् एते संवत्सरं अभिप्राप्नुवन्ति ’ (५ । १० । ३) । ‘ मासेभ्यः पितृ-लोकम् । पितृलोकात् आकाशम् । आकाशाच्चन्द्रमसम् । एष सोमो राजा । तत् देवानामन्नम् । तं देवा भक्षयन्ति ’ (४) । ‘ तस्मिन् यावत्संपातमुपित्वा अथ एतमेवमध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशम् । आकाशात् वायुम् । वायुर्भूत्वा धूमो भवति । धूमो भूत्वा अन्नं भवति ’ (५) । ‘ अन्नं भूत्वा मेषो भवति । मेषो भूत्वा प्रवर्षति । ते इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयः निलमापा इति जायन्ते । अतो वै खलु दु-र्निष्प्रतरम् । यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ’ (६) ।

बृहदारण्यकं च—‘ अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकान् जयन्ति ते धूममभिसंभवन्ति । धूमात् रात्रिम् । रात्रेः अपक्षीयमाणपक्षम् । अपक्षीयमाणपक्षात् यान् षण्मासान् दक्षिणा आदित्य एति । मासेभ्यः पितृलोकम् । पितृलोकात् चन्द्रम् । ते चन्द्रं प्राप्य अन्नं भवन्ति । ताम्भ्यः देवा यथा सोमं राजानमाप्यायस्व अपक्षीयस्व इत्येवमेनास्तत्र भक्षयन्ति । तेषां यदा तत्पर्यवति अथ इममेव आकाशमभिनिष्पद्यन्ते । आकाशाद्वायुम् । वायोः वृष्टिम् । वृष्टेः पृथिवीम् । ते पृथिवीं प्राप्य अन्नं भवन्ति । ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते । ततो योषाग्नौ जायन्ते । लोकान् प्रत्युत्थायिनः ते एवमेव अनुपरिवर्तन्ते । अथ ये एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गाः यदिदं दन्द्शकम् ’ (६ । २ । १६) । भगवद्गीतायामपि ‘ धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् । तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ’ (भ० गी० ८ । २९) ।

१२ महत्तपस्तेपिरे । येन ब्रह्म प्राप्येत तादृशं तपः । ‘ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ’ (तै० उ० ३ । २ । १) । ‘ सत्येन लभ्यस्तपसा हि एष आत्मा ’ इति (मुण्ड० ३ । १ । ५) ।

पत्रं पङ्क्तिः

१०१०

१२-१६

ज्ञानोक्तानि । उपनिषत्सु अथवा ब्रह्मविद्यायामुक्तानि । श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इत्यादीनि । आपूर्यमाणपक्षम् । यस्मिन् चन्द्रकलानां वृद्धिर्भवति । अथ ये हिंसामुत्सृज्य ००० न पुनरावर्तन्ते ।

अत्र च्छान्दोग्यम्—‘तद्य इत्थं विदुः ये चेमे अरण्ये श्रद्धां तप इत्युपासते तेऽर्चिगमभिसंभवन्ति । अर्चिषो अहः । अहः आपूर्यमाणपक्षम् । आपूर्यमाणपक्षात् यान् षड् उदङ् एति मामाँस्तान्’ (१) । ‘मासेभ्यः संवत्सरम् । संवत्सरात् आदित्यम् । आदित्यात् चन्द्रमसम् । चन्द्रमसो विद्युत्तम् । तत्पुरुषो मानवः । स एनान् ब्रह्म गमयति । एष देवयानः पन्थाः इति ’ (९ । १०) । बृहदारण्यकं च—‘ ते ये एवं एतद् विदुः ये चामी अरण्ये श्रद्धां मत्यमुपासते तेऽर्चिः अभिसंभवन्ति । अर्चिपाँऽहः अहः आपूर्यमाणपक्षम् । आपूर्यमाणपक्षात् यान् षण्मासान् उदङ् आदित्य एति । मासेभ्यो देवलोकम् । देवलोकात् आदित्यम् । आदित्यात् वैद्युतम् । तान् वैद्युतान् पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति । तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति । तेषां न पुनरावृत्तिः ’ (६ । २ । १९) । भगवद्गीतायामपि—

• अग्निर्ज्योतिरहः शुक्रः षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ’ (८ । २४) ।

छान्दोग्ये—‘ मानवः पुरुषः ’ न तु ‘ मानसः पुरुषः ’ ।

‘ आदित्याच्चन्द्रमसम् । चन्द्रमसो विद्युत्तं ’ इति च ।

१६ शिष्टा दन्दशुका इत्यादि । एताभ्यां द्वाभ्यामन्ये दन्दशुका भवन्ति । दन्दशुकाः = दंशमशकाः । अष्टमनवमखण्डौ कस्याश्चिदुपनिषदः उद्धृते अवतरणे भातः । बृहदारण्यके ‘ अथ ये हिंसां आश्रित्य ० ० ० कुर्वन्ति । ’ ‘ अथ ये हिंसामुत्सृज्य ० कुर्वन्ति ’ इति च नास्ति ।

१६-१७

अत्र च्छान्दोग्यम्—‘ अथैतयोः पथोः न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राणि असकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति । जायस्व म्रियस्व इत्येतत्तृतीयं स्थानम् ’ (८) । अत्र बृहदारण्यकं च—‘ अथ ये एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गाः

पत्रं पङ्क्तिः

१०१०

१६-१७ यदिदं दन्दशूकम् ' (६ । २ । १६) । अष्टमनवमखण्डयोः
बृहदारण्यकेन साम्यं स्पष्टम् ।

१७ इदं = ब्रह्म । अथाप्याह मन्त्रदृक् ।

१९ तं = विश्वकर्माणम् । विदाथ = विदथ । यः = विश्वकर्मा ।
इमाः = इमानि भुवनानि । जजान = जनयामास । अन्तरं =
अन्तःकरणं मनः । युष्माकं मनः अन्यत् विश्वकर्मज्ञानाय ।
अनुपयुक्तं बभूव भवति । यूयं विश्वकर्माणं ज्ञातुमसमर्थाः ।
यस्मात् युष्माकं ज्ञानमैहिकमेव ।

२० जल्प्या । इदं जल्पिशब्दस्य तृतीयैकवचनम् । जल्पिः =
जल्पनं वावदूकत्वम् । ' मा नो निद्रा ईषत मोत जल्पिः ' (ऋ० सं० ८ । ४८ । १४) । वयं निद्रावशाः मा भूम
नापि जल्पिवशाः । नीहारशब्दः सकृदेव ऋकूशाखायां
वर्तते । ' अवश्यायस्तु नीहारः ' इत्यमरः (१ । २ । १९) ।
नीहारः = निद्राः । नीहारेण निद्रया जल्प्या वावदूकत्वेन
च प्रावृताः पूर्णाः जडा इत्यर्थः । उक्थशासः = ये केवल-
मुक्थानि शामति पठन्ति । ये अर्थं न जानन्ति । असुतृपः ।
' उरुणसावसुतृपा उदुम्बल्यै यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु ' ।
(ऋ० सं० १० । १४ । १२) । अत्र यमस्य दूतौ द्वौ
श्वानौ । तौ असुतृपा इति उच्येते । तौ अमुभिः तृप्येते ।
जनानां मरणं ताभ्यां गेचते । इमे उक्थशासः जनानाममुभिः
तृप्यन्ति । जनान् घातयन्ति इत्यर्थः । यस्मात् ते जडाः ।

२१ ' विद्यया विदुषः ' अयं कस्य अर्थः ।

२१-२२ ' यं ० ब्रह्मणस्पतिं ' इदं न केषामपि शब्दानां विवरणम् ।
' विद्यया ' इदमस्थाने स्यात् । ' एवं विद्वांसः ' इत्यस्य
प्राक् भवितुमर्हति । ' विदुषः ' इदं विदथ इत्यस्य अपपा-
ठः स्यात् । न तं विदथ यं ब्रह्मणस्पतिं विद्यया एवं विद्वांसः
अक्षरं वदन्ति । युष्माकमविदुषां मनः अन्यत् बभूव भवति ।
एषां विदुषां तु अन्तरमन्यत् भवति । इतिशब्दः न तं
विदथ इत्यस्य कारणं दर्शयति ।

१ :

पङ्क्तः

१०१०

२२ गुप्माकं = अविदुषाम् । अन्तरं = मनः । एषां = विदुषाम् ।
नीहारेण = तमसा ।

२३ नीहारेण तमसा प्रावृताः यूयम् । तेन यूयं न किमपि
जानीथ ।

२४ अविद्वांसः० । अविद्वांसः क्षेत्रज्ञं कथमनुप्रवदेयुः । ' अवि-
द्वांस ' इति अशुद्धं भाति । यस्मात् विद्वांसः एव क्षेत्रज्ञम-
नुप्रवदितुं समर्थाः । ' न अनुप्रवदन्ति ' इति स्यात् ।
अविद्वांसः क्षेत्रज्ञं नानुप्रवदन्ति । अथाहो विद्वांस० । विद्वांसस्तु
तत्कर्तुं समर्थाः । क्षेत्रज्ञः अनुकल्पते । इदं 'क्षेत्रज्ञमनुकल्पन्ते'
इति स्यात् । अथ विद्वांसः क्षेत्रज्ञमनुकल्पन्ते । क्षेत्रज्ञं ज्ञातुं
समर्थाः भवन्ति ।

१०११

१ ' तस्य ' इत्यस्य स्थाने ' तं ' स्यात् । विद्वान् तपसा सह
तपःसाहाय्येन अप्रमादं प्रमादं विना तं क्षेत्रज्ञमेति । उक्तं
च मैत्र्युपनिषदि । यथा ' विद्यया तपसा चिन्तया वा
उपलभ्यते ब्रह्म ' (४ । ४) इति ।

१-२ क्षेत्रज्ञः आप्नयो भवति । ' असंततं ' इति अशुद्धं भाति ।
' संततं ' इति स्यात् । संततं सख्यमिच्छेत् । तेन असंतत-
मिच्छेत् इति अनवश्यम् ।

३ अत्र ' ज्ञातृ ' शब्दः कुत्र वर्तते । ज्ञातृशब्दः जायतेः कथं
स्यात् । ' जानतेः ' इत्यशुद्धम् । ' जानातेः ' इत्यवश्यम् ।
सख्यभातुः धातुपाठे न वर्तते ।

३-४ स = सह + स्व = भूतेन्द्रियैः । ' शेते ' इति अध्याहतम् ।
अथवा । स + स्व = सेन्द्रियाणि महाभूतानि । ' प्रज्ञया
कर्म कारयति ' इति अध्याहतम् ।

५ तस्य = क्षेत्रज्ञस्य । यदापः = यत् आपः । यत् आपः
सा प्रतिष्ठा ! क्षेत्रज्ञस्य प्रतिष्ठा स्थिरस्वरूपमप्सदृशमेव ।
' तदापः ' इति पाठे ' तत् ' व्यर्थम् । क्षेत्रज्ञस्य शीलमुप-
शमः इत्यर्थः । यस्मात् आत्मा ब्रह्म तस्मात् स क्षेत्रज्ञः
ब्रह्म भवति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०११

६ अबन्धः = बन्धाभावः । स बन्धाभावः ज्ञानोत्पन्नः ।

७ भूतनामधेयानि । भूतानां नामधेयानि । एकादशखण्डे वर्तमानानि सर्वाणि नामानि न भूतनामधेयानि । यथा—विभुः प्रभुः यज्ञः । ‘ भूतनामधेयानि ’ इदं ‘ भूतस्य नामधेयानि ’ इति स्यात् । आत्मा महत् भूतम् । तस्य एतानि नामधेयानि ।

९ आत्मार्थे हंसशब्दः उपनिषत्सु बहुकृत्वः प्रयुज्यते । यथा ‘ एष हि खलु आत्मा हंसः ’ (मै० उ० ६ । ८) । ‘ हंसो लेलायते बहिः ’ । (श्वे० उ० ३ । १८) । ‘ घर्म ’ शब्दः जेकबकृतोपनिषद्वाक्यकोशे न विद्यते । ‘ अजस्रो घर्मो हविराम्मि नाम ’ (निरु० १४ । २) । घर्मः = अग्निः । अथवा तप्तं पयः । यज्ञः । ‘ त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोकः ’ (वृ० उ० १ । ९ । १७) । वेनः । ‘ वेनस्तत्पश्यन् विश्वा भुवनानि विद्वान् ’ (महा० ना० उ० २ । ३) । भूमिः ।

‘ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ’ (भ० गी० ७ । ८) । विभुः । ‘ आदिदेवमजं विभुम् ’ (भ० गी० १० । १२) । ‘ विभु ’ शब्दः उपनिषत्सु बहुकृत्वः ।

१० ‘ प्रभु ’ शब्दोऽपि तथैव । ‘ लोकस्य सृजति प्रभुः ’ (भ० गी० ९ । १४) ‘ महान् प्रभुर्वै पुरुषः ’ (श्वे० उ० ३ । १२) । शंभुः । ‘ एष हि खल्व्वात्मा शंभुः ’ (मै० उ० ६ । ८) ‘ राभु ’ शब्दः कुत्रापि नोपलभ्यते । कदाचित् अयमाभुः इति स्यात् । शंभुः + आभुः = शंभुराभुः । प्रमादेन संघेः शंभुः राभुः इति विग्रहः कृतो भवेत् । आ सर्वत्र भवतीति आभुः । अग्रे आत्मैव सर्वत्र आसीत् । ‘ तुच्छेनाऽऽभ्वपिहितं यदासीत् ’ (ऋ० सं० १० । १२९ । ३) । वधकर्मा । अस्य अत्र न किमपि प्रयोजनम् । कश्चित् धातुः वधकर्मा वधार्थः

पः

पङ्क्तिः

१०११

१० भवेत् । तस्यात्र किं प्रयोजनम् । सोमः । ' यास्ते सोम प्राणा-
श्स्ताञ्जुहोमि । ये ब्राह्मणाः त्रिसुपर्णं पठन्ति । ते सोमं
प्राप्नुवन्ति' । (म० ना० उ० १७ । ६) ' यश्च सोम-
स्तस्मिं वो नमो नमः' (नृ० पू० ता० उ० ४ । ३ । २९) ।
भूतम् । ' विश्वं भूतं भुवनम् ' (म० ना० उ० २४) ।
' स एव सर्वं यद्भूतम् ' (कै० उ० १ । २) । ' पुरुष
एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ' (ऋ० सं० १० । ९० । २) ।

११ भुवनम् । ' विश्वं भूतं भुवनम् ' (म० ना० उ० २४) ।
आपः । ' भूमिरापः० ' (म० गी० ७ । ८) । ' एष
ब्रह्म० आपो ज्योतीषि इत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव '
(ऐ० उ० ९ । ३) । महत् । ' अस्य महतो भूतस्य
निःश्रसितम् ' (वृ० उ० २ । ४ । १०) । आत्मार्थं महच्छब्दः
उपनिषत्सु बहुकृत्वः । व्योम । ' तदक्षरे परमे व्योमन् ' (म०
ना० उ० १ । २) । यशः । ' यशोऽहं भवामि ब्राह्म-
णानां० ' (छा० उ० ८ । १४ । १) । ' संज्ञानं० यशः
इति । सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ' (ऐ०
उ० ९ । २) । महः । ' मह इति ब्रह्म ' (तै० उ०
१ । ३) ।

१२-१३ गहनम्-गभीरम् । ' अचिन्त्योऽमूर्तो गभीरो गुप्तोऽनवद्यो
वनो गहनो निर्गुणः ' (मै० उ० ७ । १ । १) ।

१३ कम् । ' कस्मै देवाय हविषा विधेम ' (ऋ० सं० १० ।
१२१ । १) । अन्नम् । ' अहमन्नम् ' (तै० ब्रा० २ ।
८ । ८) । हविः । ' हविरस्मि नाम ' (निरु० १४ । २) ।
मद्म । विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ' (कठो० २ । १३) ।

१४ ऋतम् । ' ऋतं सत्यं परं ब्रह्म ' (म० ना० उ० ९
६) । ' अहमस्मि प्रथमजा ऋताश्चस्य ' (निरु० १४ । २) ।
योनिः । ' मम योनिर्महद्ब्रह्म ' (म० गी० १४ । ३) ।
' शिवं प्रशान्तं ब्रह्म योनिम् ' (कै० उप० ६) । ऋतस्य

पत्रं

पङ्क्तिः

१०११

१४ योनिः । ऋतम्य योनिः—योनिं—योनौ इति प्रयोगः अग्नि-
संबन्धेन सोमसंबन्धेन च बहुकृत्वः । ऊनविंशतिप्रयोगेषु नैक-
दाऽपि आत्मार्थे अस्ति । सत्यम् । 'तत्सत्यं स आत्मा '
(छा० उ० ६ । ८ । ७) । 'सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्य-
मिति ' (छा० उ० ७ । १६ । १) । 'ब्रह्मणो नाम
सत्यमिति ' (छा० उ० ८ । ३ । ४) । 'सत्यं ज्ञान-
मनन्तं ब्रह्म ' (तै० उ० २ । १ । १) । सत्यशब्दः
आत्मार्थे उपनिषत्सु बहुकृत्वः ।

१५ हविः । हविः केषुचित् पुस्तकेषु नास्ति । अयं शब्दः अत्र
पुनरुक्तः । रयिः । 'एष वै रथिरात्मा ' (छा० उ० ९ ।
१६ । १) । सन् । 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे सच्च त्यच्च । न
विदुः मतिं संपद्यामहे ' (वृ० उ० २ । ३ । १) ।
आत्मार्थे सच्छब्दः बहुकृत्वः । पूर्णम् । 'ॐ पूर्णमदः
पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्गच्छते । पूर्णस्य पूर्ण-
मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ' (ई० उ०) । सर्वम् ।
'सर्वाय स्वाहा ' (वृ० उ० ६ । ३ । ३) । 'सर्वः
कश्चित् प्रभुः साक्षी ' (मै० उ० ६ । १६) । 'यो वै
नृसिंहः यच्च सर्वं तस्मै नमो नमः ' । (नृ० उ० ता०
उ० ९) । अक्षितम् । 'अक्षितमसि अच्युतमसि '
(छा० उ० ७ । १ । ४) ।

१६ अपः । कर्मार्थे अपशब्दः उपनिषत्सु नास्ति । आपः प्रथमा-
बहुवचनम् । अपः द्वितीयाबहुवचनम् । 'अपशब्दः
पूर्वं (पङ्क्तिः ११) उक्तः एव । पवित्रम् । 'पवित्रं परमं
भवान् ' (म० गी० १० । १२) । 'पवित्रमहम् ' ।
(अथर्वशीर्षो० १) । अमृतम् । 'एतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म '
(छा० उ० ४ । १९ । १) । उपनिषत्सु बहुकृत्वः ।
इन्दुः । 'एष हि ग्वत्वात्मा इन्दुः ' (मै० उ० ६ । ८) ।

१७ व्योम । अयं पूर्वं (पङ्क्तिः ११) उक्त एव ।

१८ आकाशम् । 'इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते ' ।
(छा० उ० १ । ९ । १) । 'आकाश आत्मा ' ।

त्रं

पङ्क्तिः

१०११

१८ (तै० उप० १ । ७ । १) । आत्मार्थे आकाशः न तु आकाशम् । आपः । अयं शब्दः (पूर्व पङ्क्तिः ११) उक्त एव । पृथिवी । ' पृथिवी वायुराकाश इत्यादि ' (ऐ० उप० ३ । ९ । ३) । स्वयंभूः । ' पराञ्चि स्वानि व्यतृणत् स्वयंभूः ' । (कठो० ४ । १) । ' परिभूः स्वयंभूः ' (ईशा० उप० ८) ।

१९ पुष्करम् । ' क्षरमहं पुष्करमहम् पवित्रमहं ' (अथर्वशीर्षो० १) । समुद्रः । ' अपरिमितानन्दसमुद्रः स तत्पदार्थः परमात्मा परं ब्रह्म ' (सर्वोपनिषत् ४) । तपः । ' तपो ब्रह्म ' (तै० उप० ३ । २ । १) । ' यद्धि परं तपस्तददुर्धर्षं तस्मात्तपसि रमन्ते ' (म० नाग० उप० २१ । २) । तेजः । ' अयमशरीरः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव ' (बृह० उप० ४ । ४ । ७) । ' यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते ' (छा० उप० ६ । ८ । ७) । तेजसा हि तदा संपन्ने भवति ' (छा० उप० ८ । ६ । ३) ।

२० नाभिः । ' अमृतस्य नाभिः ' (निरु० १४ । २) । तत् । ' तत्त्वमासि श्वेतकेतो ' (छा० उप० ६ । ८ । ७) । ब्रह्म । उपनिषत्सु अनेकशः । वरेण्यम् । ' एतज्जानथ सदसद्वरेण्यम् ' (मुण्ड० उप० २ । २ । १) ।

२१ हंसः । पूर्व (पङ्क्तिः ९) उक्त एव । आत्मा । उपनिषत्सु अनेकशः ।

२२ अव्ययम् । उपनिषत्सु अव्ययमनेकशः । ' अव्ययं च संस्कुरुते ' इति नोपलभ्यते । यज्ञः । पूर्व (पङ्क्तिः ९) उक्त एव । आत्मा । पूर्व (पङ्क्तिः २१) उक्त एव । अस्मिन्नामधेयगणे कानि चिन्नामानि पुनरुक्तानि । कानि चित् क्रियापदानि । कानि चिद् वाक्यानि । क्रियापदानि वाक्यानि च आत्मनः नामधेयानि कथं स्युः । तथैव ' शरीराणि ' (पङ्क्तिः २२) इति शब्दः । ' यद्वाहिष्या ' (पङ्क्तिः २१) इदं कस्याश्चित् ऋचः प्रारम्भ इव भाति । अयं खण्डः केषां

पत्रं

पङ्क्तिः

१०११

२२ चिद् वाक्यानां पृथक्करणं स्यात् । तानि वाक्यानि मया नोप-
लब्धानि । एतानि नामधेयानि ' भूतनामधेयानि ' इति
किमर्थमुच्यन्ते । हंसः विभुः प्रभुः महत् सत्यम् सत् अमृतम्
ब्रह्म आत्मा अव्ययम् एतानि आत्मार्थे अनेकशः उपनिषत्सु
प्रयुज्यन्ते । मेघः कृमिः भविष्यत् गह्वरम् सदनम् ऋतस्य
योनिः नीरं बर्हिः सर्पिः अपः हेम स्वः सर्गाः शम्बरम्
अम्बरम् वियत् धन्व अन्तरिक्षम् भूः अध्वा सगरः सिन्धुः
अर्णवः वृक्षः ऊर्ध्वः यत् किम् भवति वधन्त्यध्वानम् यद्वा-
हिण्या शरीराणि अव्ययं च संस्कुरुते यदेनं तन्वते एतानि
आत्मार्थे प्रयुज्यमानानि न मया कापि दृष्टानि । राभुः स्वर्णा-
कम् स्मृतीकम् स्मृतीकम् सतीनम् एते शब्दाः अत्यन्तमप-
रिचिताः । मया न कदा श्रुताः । हंसः यज्ञः आपः व्योम
हृषिः बर्हिः भवति आत्मा एतानि द्विः पठ्यन्ते । सत् भूः तत्
यत् किं यदेनं तन्वते इमानि किमर्थं स्वररहितानि । कदा
चित् ' हंस आत्मा भवति ' ' शरीराणि अव्ययं च संस्कुरुते '
' यज्ञ आत्मा भवति ' एतादृशानि इमानि वाक्यानि स्युः ।

१०१२

- १-२ एतानि सूक्तानि । अतः परमृचः एव पठ्यन्ते न सूक्तानि ।
६ सोमः=सूर्यः । 'सूर्यः सतेर्था सुवतेर्वा स्वीर्यतेर्वा' (निरु० १२।१४)
यस्मान् सूर्यः सर्वं जगत् प्रमृते । 'सोम'शब्दः सूतेः धातोः
व्युत्पादितः । मृ + मः = सोमः । 'सोमः सुनोतेः । येदनम-
भिपुण्वन्ति' (निरु० ११।२) ।
७ जनिता = जनायिता । मर्तीनां = प्रकाशकर्मणामादित्यरश्मा-
नाम् । रश्मीनां कर्म प्रकाशः । 'रश्मयः' मतयः इत्यु-
च्यन्ते । यस्मात्ते मन्यन्ते प्रकाशयन्ति । द्यौः द्योततेः ।
८ पृथिवी प्रथयतेः । अग्निः गच्छतेः । 'अग्निशब्दः' (निरु०
७।१४) इत्यत्र व्युत्पादितः । यथा अग्रणीर्भवतीत्यादि ।
९ सूर्यः स्वीकरोति सर्वमात्ममात्करोति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

०१२

१० इन्द्रः इन्द्रतेः ऐश्वर्यकर्मणः (निरु० १०।८) । विष् व्यापने ।
‘ अथ यद्विपितो भवति तद्विष्णुर्भवति । विष्णुः विशतेर्वा
व्यश्नेतेर्वा ’ (निरु० १२।१८) ।

११ अधिदैवतम् । अस्याः ऋचः देवतापरत्वे सोमः सूर्यः । तस्य
रश्मयः प्रकाशयन्ति द्योतयन्ति प्रथयन्ति गच्छन्ति स्वीकुर्वन्ति
ईशते व्याप्नुवन्ति च । अद्यात्मम् । ऋचः आत्मपरत्वे सोमः
आत्मा । तस्य इन्द्रियाणि अर्थान् प्रकाशयन्ति द्योतयन्ति प्रथ-
यन्ति गच्छन्ति स्वीकुर्वन्ति व्याप्नुवन्ति तेषामीशते च । अयं
द्विविधः अर्थः क्लिष्टः । सोमः सोम एव । सः न केवलं जनानां
मर्ता जनयति किंतु सर्वाः देवताः अपि जनयति ।

१२ ‘ इत्यर्थः ’ इदं ‘ इत्यादीनि ’ स्यात् । पृथिव्यादयः सर्वाः
आत्मनः एव विभूतयः । ‘ विभूततः ’ अयं शब्दः दुर्बलः ।
कदाचित् कस्यचित् क्रियारूपस्य अपभ्रंशः स्यात् । कदाचित्
‘ स्तूयते ’ इति स्यात् ।

१७ ब्रह्मा = वर्णयिता नेता वा । ‘ बृह वृद्धौ ’ (धा० १ ।
७३७) ।

१८ देवनं = द्योतनम् । ‘ दिवु द्युनौ ’ (धा० ४ । १) ।

१९ पदवीः = पदं वेत्ति । ‘ वी गतिव्याप्त्यादिषु ’ (धा० २ ।
३८) । पदं वेत्ति अयं स्थानं गच्छति । कविः कवते
वर्णयति । ‘ कुङ् शब्दे ’ (धा० १ । २७६) । ‘ कवीय ’
इति नामधातुः । कवीयमानानां = गच्छताम् ।

२० ऋषिणः = द्रष्टा । ‘ ऋषी रतौ ’ (धा० ६ । ७) ।
(निरु० १० । २६) इत्यत्र ‘ ऋषीणानि ’ इति रूपम् ।
विप्राणां = व्यापनकर्मणाम् ।

२१ महिषः = महत् । वस्तुतः महिषः कश्चित् हिंस्रः प्राणी ।
मृगाणां = मार्गणकर्मणाम् । मृगाः हिंस्राः पशवः ।

२२ गृध्राणाम् । ‘ गृध्रु अभिकाङ्क्षायाम् ’ (धा० ४ । ३७) ।
अत्र गृह्यतिः स्थानार्थः । यस्मात् एतस्मिन् आदित्ये तिष्ठति ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१२

२२ यदि श्येनः आदित्यः गृध्रोऽपि आदित्यः तर्हि श्येनो गृध्राणा-
मित्यस्य आदित्यः आदित्यानामित्यर्थः स्यात् । कोऽर्थः ।

१०१३

१-२ 'गृध्र आदित्यो० तिष्ठति' अयमपपाठः स्यात् । गृध्राणां गर्ध-
नकर्मणां (गतिकर्मणाम्) आदित्यरश्मीनामिति पाठः अवश्यः ।
'यतः एतस्मिन् तिष्ठति' इत्यत्र 'एतस्मिन्' इत्यस्य स्थाने
'एतेषु' इत्यवश्यम् । श्येनः आदित्यः । एतेषु आदित्यर-
श्मिषु तिष्ठति ।

२ स्वधितिः = स्व + धितिः । स्व = स्वयम् + धितिः = धत्ते
(कर्माणि) । स्वधितिः परशुः 'द्वयोः कुठारः स्वधितिः पर-
शुश्च परश्वधः' (अमरः २ । ८ । ९३) ।

३ वनानां = वननकर्मणाम् । वनानां = वृक्षसमूहानाम् ।

४-५ 'एष हि पवित्रं रश्मीनामत्येति स्तूयमानः' इत्यस्य कोऽर्थः ।
पवित्रं = रश्मीन् । 'रश्मीनां' इत्यस्य स्थाने 'रश्मीन्'
इत्यवश्यम् । यथा आत्मपरे अर्थे 'पवित्रमिन्द्रियाणि'
(१४) इत्युच्यते । आदित्यः स्वरश्मिभ्यः अधिकः । रेभन् =
स्तूयमानः ।

६ अक्षरम् । देवतापरे अर्थे आदित्यः अक्षरं ब्रह्म कथं म्यात् ।

११ 'शैङ् गतौ' (घा० १ । ९६३) । 'यतः एतस्मिन्
तिष्ठति' इत्यस्य पूर्वेण कः संबन्धः । एतस्मिन् कस्मिन् ।
एतस्मिन् ज्ञाने इति म्यात् । 'एतेषु' इत्यवश्यम् । एतेषु
इन्द्रियेषु आत्मा तिष्ठति ।

१३ 'आत्मनि धत्ते' 'आत्मनि' इत्यस्य स्थाने 'आत्मा'
इति स्यात् । यथा पूर्वं 'एष हि स्वयं कर्माणि आदित्यो
धत्ते' (पङ्क्तिः २-३) इत्युक्तम् ।

१३-१४ अयमपि आत्मा स्वयमिन्द्रियेषु कर्माणि धत्ते । पवित्रम् =
इन्द्रियाणि । आत्मा इन्द्रियेभ्यः अधिकः । इन्द्रियाणि केवलं
ज्ञानसाधनानि । आत्मा ज्ञानमेव । अयमेव आत्मा एतत्सर्वम-
नुभवति । सर्वज्ञः अयमित्यर्थः ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१३

१५ आत्मगतिं ' इत्यस्य प्राक् ' इति ' शब्दः अवश्यः ।

ऋचः देवतापरत्वे अयमर्थः । आदित्यः स्वरश्मान् वर्धयति ।
गमनकर्मणः तान् जानाति । व्याप्नुवतः तान् पश्यति ।
तेभ्यः महत्तरो भवति । तेषु तिष्ठति । तेषु कर्माणि आधत्ते ।
तेभ्यः अयमतिशयेन अधिकः । तस्मात् आदित्यः स्तुतिमर्हति ।
आत्मा इन्द्रियाणि वर्धयति । अर्थेषु संचरन्ति तानि जानाति ।
व्याप्नुवन्ति तानि पश्यति । तेभ्यः महत्तरो भवति । ज्ञान-
साधनानि तानि जानाति । तेषु च विषयज्ञानार्थं तिष्ठति ।
सर्वथा आत्मा इन्द्रियेभ्योऽधिकः । तस्मात् स स्तुतिमर्हति ।
एतौ द्वावपि अर्थौ क्लिष्टौ । केवलेयं सोमस्तुतिः । यथा
देवानां ब्रह्मा श्रेष्ठः कवीनां अग्निः श्रेष्ठः विप्राणां (ज्ञानिनां)
ऋषिः श्रेष्ठः मृगाणां (हिंस्रपशूनां) महिषः (कश्चित् हिंस्रतमः
पशुः) श्रेष्ठः गृध्राणां श्येनः श्रेष्ठः वनानां
छेत्ता स्वधितिः श्रेष्ठः एवं सोमः श्रेष्ठः । रेभू धातुः
ऋकृशाखायां स्तवने वर्तते । ' कविर्गीर्भिः काव्येना कविः
सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ' (ऋ० सं० ९ । ९६ ।
१७) । अत्र सोमः कविः । सः देवान् गीर्भिः काव्येन
च रेभति स्तौति । ' महान् कविर्निर्वचनानि शंसन् ' (ऋ०
सं० ९ । ९७ । ९) । अत्रापि महान् कविः सोमः
निर्वचनानि स्तुतीः शंसति । अतः रेभन् = शंसन् । क्वचित्
प्रकाशनेऽपि । रेभः = स्तोता । सोमः बहुकृत्वः रेभः
इत्युच्यते । पवित्रं = सोमरसपावनं साधनम् । सोमः पवि-
त्रमत्येति = पवित्रे सोमरसः गाल्यते । तेन शुद्धिः भवति
प्रकाशते च ।

२१ धीतिं = कर्माणि । मनीषां = मतानि ।

२२-२३ विद्यामतिबुद्धिमताम् = विद्यावतां मतिमतां बुद्धिमतामेतेषां
त्रयाणां तिस्रो वाचः । विद्यावतां वाग् भिन्ना । तथा मति-
मताम् । तथैव बुद्धिमताम् । ते विद्यावन्तः ये श्रुतिं जानन्ति ।
ते मतिमन्तः ये तर्केण अर्थान् निश्चिन्वन्ति । ते बुद्धिमन्तः ये

पत्रं पङ्क्तिः

१०१३ २२-२३ ब्रह्म जानन्ति । (निरु० ३१ । १३) इत्यत्र ' सेयं विद्या-
श्रुतिमतिबुद्धिः ' इत्युच्यते । श्रुतिरूपा विद्या प्रथमा ।
मतिरूपा उह्रूपा वा अस्याः उच्चतरा । बुद्धिरूपा सर्वासा-
मुत्तमा । ' विद्यामतिबुद्धिमतां ' इत्यत्र विद्याशब्दस्य 'श्रुतिः'
इत्यर्थः स्यात् ।

२४ 'आत्मगति' इत्यस्य प्राक् इति शब्दः अवश्यः । अस्यामृचि
आदित्यस्य आत्मनासांप न किंमां प्रयोजनम् । अत्र वाहः
सोम एव । मर्षेणां देवानां कर्माणि शक्तयश्च सोमे स्तुत्यर्थमा-
रोप्यन्ते । वाहिः सोमः तिसृणां वाचां प्रेरकः अग्निः । अत्र
सोमः मनुष्यपशुपक्षिणां तिस्रो वाचः प्रेरयति । ऋतस्य
यज्ञस्य श्रुतिं स्तुतिं ब्राह्मणश्च मनीषां स्तुतिं प्रेरयति । यथा
गावः गोपतिं (गोस्वामिनं न तु वृषभं) पृच्छमानाः
अन्वेषयन्त्यः तमेव यन्ति तथा वावशानाः सोमं कामयमानाः
मतयः स्तनयः भोममेव यन्ति ।

१०१४ १-८ गावः धेनवः = रश्मयः । वावशानाः = वावश्यमानाः कामयमानाः
सोमं = आदित्यम् । 'यन्ति' एतत् पदमध्याहृतम् ।

३ विप्राः = रश्मयः । पृच्छमानाः = कामयमानाः ।

४ स्तनः = प्रेरितः । अज्यमानः = गच्छन् । एतम् = आदित्यम् ।

५ संनवन्ते = एकी भवन्ति । ते एते सर्वे रश्मयः एतस्मिन्
सोमे आदित्ये एकं भवन्ति ।

६ गावः धेनवः = इन्द्रियाणि । वावशानाः = वावश्यमानानि
कामयमानानि ।

७ विप्राः = इन्द्रियाणि ।

८ पृच्छमानाः = पृच्छमानानि । कामयमानानि सोमम् = आत्मानम् ।

९ अज्यमानः = इन्द्रियेषु प्रचरन् । 'इमम्' इत्यस्य कः संबन्धः
इमम् = आत्मानम् । अर्काः त्रिष्टुभः = आत्मा च सप्त ऋष-
यश्च । आत्मा = बुद्धिः । सप्त ऋषयः = इन्द्रियाणि ।
नानि इमानि इन्द्रियाणि ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१४

९ अत्रापि सोमपरः एव अर्थः । गावः धेनवः = पयः । पयः सोमेन मिश्रयते । तेन पयः सोमं काभयते इत्युच्यते । विप्राः स्तोतारः मतिभिः स्तुतिभिः पृच्छमानाः अन्वेपयन्तः सोममेव यन्ति । सोमः प्रथमं सृयते पश्चाज्जंघेन मिश्रयते । अर्काः स्तुतयः त्रिष्टुभः त्रिष्टुप् छन्दसि विरचिताः स्तुतयः सोमे मंमिलन्ति । अर्काः = स्तुतयः त्रिष्टुप् छन्दसि वर्तमानाः ।

१४ अक्रान् = अति+अक्रमीत् । समुद्रः = आदित्यः ।

१५ प्रथमे = परमे व्यवने । विधर्मन् = वर्षकर्मणा । भुवनस्य = सर्वस्य ।

१८ समुद्रः = आत्मा ।

१९ विधर्मन् = ज्ञानकर्मणा ।

देवतापरत्वे अयमर्थः । समुद्रः आदित्यः प्रथमे परमे व्यवने उच्चतमं स्वर्गं लोकमक्रान् अतिक्रामति । विधर्मन् वर्षकर्मणा भुवनस्य सर्वस्य राजा सन् प्रजाः जनयति । वृषा वर्षस्य कर्ता सोमः आदित्यः पवित्रे स्वर्गलोके अधि सानो उच्चतमे अव्ये अव्यये सुवानः गच्छन् बृहत् वावृधे अतिशयेन वर्धते । ऋचः आत्मपरत्वे अयमर्थः । आत्मा उच्चतमायामवस्थायां विधर्मन् ज्ञानकर्मणा प्रजाः ज्ञानिनः जनयति । ऋचः द्वितीयस्य अर्धस्य अर्थः यास्केन न दीयते । अत्रापि सोमः सोम एव । 'अक्रान्' इदं न क्रियापदम् । किंतु विशेषणम् । तस्य 'सर्वव्यापी विस्तृतः' अर्थः स्यात् । सोमः अत्र विस्तृतः समुद्रः इत्युच्यते । 'त्वं समुद्रो अग्नि विश्ववित्' (ऋ० सं० ९ । ८६ । २९) । 'अक्रान् देवो न सूर्यः' (ऋ० सं० ९ । ६४ । ९) । अत्र सोमः । देवः सूर्यः इव अक्रान् । 'विधर्मन् = विधर्माणि । 'हिन्वानो वाचमिष्यासि पवमान विधर्माणि' (ऋ० सं० ९ । ६४ । ९) । 'विधर्मा' इति स्वर्गस्य नाम । यथा तिस्रो द्यावः त्रीणि रोचनानि तथा त्रयो विधर्माणः आसन् इति भाति । अत्र विधर्मा पवित्रम् । 'त्वं पवित्रे जसो विधर्माणि देवेभ्यः

पत्रं

१०१४

पङ्क्तिः

१९ सोम पवमान पूयसे ' (ऋ० सं० ९ । ८६ । ३०) ।
 ' त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वत्सं जातं न
 धेनवः पवमान विधर्मणि ' (ऋ० सं० ९ । १०० ।
 ७) । अनयोः द्वयोः ऋचोः ' पवित्रं ' ' विधर्मा ' इत्यु-
 च्यते । जनयन् प्रजाः यथा सूर्यादयः प्रजाः जनयन्ति तथा
 सोमः । इन्द्रादिवत् सोमः भुवनस्य विश्वस्य राजा । यथा •
 इन्द्रादयः वृषपः वृषभाः उच्यन्ते तथा सोमः वृषा उच्यते ।
 सानो = सानौ श्रेष्ठे स्थाने । पवित्रं श्रेष्ठं स्थानम् ।
 ' अन्ये ' शब्दे परे ' सानौ ' इत्यस्य ' सानो ' भवति ।
 अव्ययवयः मेघाः तेषां बालाः । तन्मयमव्ययम् । पवित्राणि
 अविरोम्णामक्रियन्त । अत एव पवित्रमव्ययमिति उच्यते ।
 यथा ' सुताः पवित्रमति यन्ति अव्ययम् ' (ऋ० सं० ९ ।
 ६९ । ९) । पवित्रं ' मानु ' इत्युच्यते । यथा ' यदव्यय
 एषि सानवि ' (ऋ० सं० ९ । ९० । २) । ' दश
 क्षिपो अव्ययत सानो अन्ये ' (ऋ० सं० ९ । ९७ । १२) ।
 अन्ये सानौ पवित्रे अधि सुवानः सूर्यमानः इन्दुः सोमः बृहत्
 महत् वावृधे वर्धते ।

१०१४

१०१५

२४ }
१ }

' देवानामाधिपत्यमदधात् ' इदं केषां शब्दानां विवरणम् ।

देवतापरत्वे इन्दुः आदित्यः । सः अपां गर्भः सन् (समु-
 द्रात्) उद्यन् देवानामाधिपत्यमिन्द्रे अदधात् । आत्मपरत्वे
 इन्दुः आत्मा । देवानामिन्द्रियाणामाधिपत्यमिन्द्रे आत्मन्येव
 अदधात् । भाष्ये यास्कः ' इन्दुरादित्य इन्दुरात्मा ' इत्येव
 ब्रवीति । देवतापरमात्मपरं वा अर्थं न ददाति । महिषः =
 कश्चित् हिंस्रतमः महान् पशुः । तेन सोमः उपमी-
 यते । महिषः इव उग्रः अथवा निर्भीकः । सोमः अपां गर्भः
 यस्मात् सोमलनावर्धनार्थं जलमवश्यम् । अथवा । यस्मात्
 अद्भिः सांमिश्रयते तस्मात् सोमः पानार्थं दवान् अवृणीत । देवाः
 सोमरसं पिबन्तु इति ऐच्छन् । एतत् सोमस्य महत् कर्म ।

पत्रं

१०१५

पङ्क्तिः

१ पवमानः पूंयमानः सोमः इन्द्रे ओजः बलमदधात् । बलार्थ-
मिन्द्रः सोममपात् । तस्य मदे च वृत्रवमधीत् इति बहुकृत्वः
उच्यते । इन्द्रः वृत्रेण प्रावृतं सूर्यं ज्योतिः तमसः निरमुञ्चत् ।
तत् सूर्यस्य जननमित्युच्यते । इदं सोमे आरोप्यते । बह्वीषु
ऋक्षु सोमस्य इन्द्रेण तदात्म्यं दृश्यते ।

६ विधुं = विधमनशीलम् ' दद्राणं = दमनशीलम् ।

७ युवानं = चन्द्रमसम् । पलितः = आदित्यः । जगार = गिरति ।
अद्या = अद्यः । ममार = म्रियते । स चन्द्रमाः दिवा समु-
दितः सन् । ' समुदिता ' इत्यस्य स्थाने ' समुदितः ' इत्य-
वश्यम् । सूर्यैजसा छत्रः चन्द्रमाः दिवा न दृश्यते । अयं
देवतापरः अर्थः

९ युवानं = महान्तम् । पलितः = आत्मा । अद्या = रात्रौ ।

९-१० ' रात्रिः समुदिता ' इत्यस्य कोऽर्थः । आत्मा महान्तमात्मानं
हिरण्यगर्भस्य बुद्धिं प्रलयकाले गिलति । प्रलये आत्मा एव
अवशिष्यते । एवमात्मपरोऽर्थः । ऋच आभ्यामर्थभ्यां
भिन्नः अर्थः । ' पलितो धूमकेतुः ' (ऋ० सं० १०।४।९)
इत्यत्र अग्निः पलितः इत्युच्यते । ' दिवा न नक्तं पलितो
युवाजनि ' (ऋ० सं० १।१४।४) । ' नि वेवेति पलितो
इत आसु ' (ऋ० सं० ३।९९।९) इत्यत्रापि तथैव ।
' विधुं दद्राणं ' इति ऋक् इन्द्र-रूक्ते विद्यते । तेन पलितः
इन्द्रः । बहूनां तारकाणां समने संगतौ दद्राणं गच्छन्तं विधुं
चन्द्रमसं युवानं सन्तमपि पलितः इन्द्रः जगार निर्गर्णवान् ।
देवस्य इन्द्रस्य काव्यं कृतिं पश्य । तस्य महित्वा महत्त्वेन
विधुः अद्य ममार । स एव विधुः ह्यः समान सजीवः आसीत् ।
इन्द्रः सर्वेभ्यः अधिकः सन् उपआदीन् सर्वान् हिनस्ति ।
' समान ' इत्येतत् ' अन प्राणने ' (धा० २.६०) इत्यस्य
लिटि रूपम् । विधुशब्दः अत्रैव प्रयुज्यते । तस्य वृत्रः इत्यपि
अर्थः स्यात् । इन्द्रः वृत्रं युवानमपि सन्तं मिलति । वृत्रः
इन्द्रेण अल्पायुः कृतः । इदमिन्द्रस्य काव्यम् ।

पत्र

पङ्क्तिः

१०१५

१४ साकंजानां = साकं सह जानां जातानाम् । ' षण्णां ऋषीणाम् ' इति अध्याहृतम् । एकजः = आदित्यः । तं विद्वांसः सप्तथं सप्तममाहुः ।

१५-१६ इष्टानि = क्रान्तानि । अथवा । क्रान्तानि गतानि मतानि नतानि ।

१६-२१ ' आद्भिः सह० एकं भवन्ति ' अयं कस्य अर्थः । ' तेषामिष्टानि० एकं भवन्ति ' इदं सर्वं (निरु० १० । २६) इत्यत्र वर्तेते । तत्र तत् अवश्यं न अत्र ।

१८ साकंजानां = सह जातानां षण्णामिन्द्रियाणाम् । एकजः = आत्मा । आभ्यां द्वाभ्यामर्थ्याभ्यामृगर्थो भिन्नः ।

अत्र सायणभाष्यम्— ' साकंजानामेकस्मादादित्यात् सहोत्पन्नानां मत्यानामृतानां मध्ये सप्तथं सप्तममृतम् । एकजमेकेनोत्पन्नमाहुः कालतत्त्वविदः । चैत्रादीनां द्वादशानां मासानां द्वयमेलनेन वसन्ताद्याः षड् ऋतवो भवन्ति । अधिकमासेनैक उत्पद्यते मरुमर्तुः । न च तादृशो नास्तीति मन्तव्यम् । अस्ति त्रयोदशो मास इत्याहुः (तै० सं० ६ । ५ । ३ । ४) इति श्रुतेः । तदेवोच्यते— ' षड्विंशत्याः ' इच्छब्द एवकारार्थः । षडेव ऋतवो मामद्वयरूपाः ' ऋषयः ' गन्तारः । ते च ' देवजाः ' देवादादित्यात् जाता इत्येवमाहुः । सप्तमाधारस्य त्रयोदशम्य मामस्य देवाभावः । ' निःसूर्योऽधिकमासो मण्डलं तपते रवेः ' इत्यादि श्रुतेः । तस्मात् षडेव देवजाः । अदेवजः एकः । ' तेषाम् ' ऋतूनां स्वरूपाणि ' इष्टानि , सर्वल्लोकाभिमतानि ' श्रामशः ' तत्तत्स्थाने ' विहितानि ' पृथक् पृथक् स्थापितानि । ' रूपशः ' रूपभेदेन विकृतानि विविधाकृतनियुक्तानि । स च रूपभेदस्तैत्तिरीयैरास्नातः ' स रसमह वरुन्ताय प्रायच्छत् यवं ग्रीष्माय ' (तै० सं० ७ । २ । १० । १) इत्यादि । ' स्थात्रे ' अधिष्ठात्रे । तदर्थाय ' रेजन्ते ' चलन्ति जगद्व्यवहाराय पुनः पुनरावर्तन्त इत्यर्थः । ऋगर्थः सायणभाष्यादपि भिन्नः । साकंजाताः मरुतः । एकजः

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१५

१८ इन्द्रः । ऋषयः सप्तथमेकजमाहुः । पङ् यमाः देवजाः इति च आहुः । तेषां मरुतामिष्टानि कर्माणि धामशः तत् तत् प्रभावानुरूपं विहितानि इन्द्रेण । यथा इन्द्रः तान् आज्ञापयति तथा ते कुर्वन्ति । स्थात्रे = इन्द्राय । इन्द्रः सर्वेषामुपरि तिष्ठति तस्मात् सः स्थाता । रेजन्ते = भयेन कम्पन्ते । विकृतानि = कृत्रिमाणि । रूपशः = स्वभावानुरूप्येण । यदा मरुतः इन्द्राज्ञप्ताः स्वकर्माणि कुर्वन्ति तदा सर्वे जगत् भयेन कम्पते । पङ् यमाः के इति न ज्ञायते । ' स हि द्युता विद्युता वेति माम पृथुं योनिमसुरत्वा समाद् । स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ' (ऋ० सं० १० । ९९ । २) । अस्यामृचि ' सप्तथः ' इति कस्य चित् इन्द्रस्य शत्रोः नाम । सरस्वती सप्तथी इत्युच्यते (ऋ० सं० ७ । ४६ । ६) ।

१०१६

३-४ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यः इन्द्रियमात्राः । ताः आत्मने प्राणाय वा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान् आहरन्ति । किंतु आत्मा प्राणो वा निराहारः शब्दादीन् नेच्छति ।

४ अमुं प्राणमित्यर्थः । ताः अमुं पुंशब्देन पश्यन् = इन्द्रियमात्राः प्राणः एव इति विद्वान् पश्यति । स च प्राणः पुमान् ।

५ अन्धः एतन् न विजानाति यस्मात् तत् ज्ञानं कष्टं कठिनम् । ईमाः = इमाः । इदं सूक्तं कृतार्थपरिपूर्णम् । तस्यार्थः अतीव दुर्बोधः । यास्कभाष्यस्य कश्चित् भागः गलितः इति भाति । अत्र सायणभाष्यम् । मे मदीया या दीधितयः स्त्रियः संरत्यानवत्यो योषितः सतीः सत्यः । योषिद्वत् उदकरूपगर्भधारणात् स्त्रीत्वम् । एषां रश्मीनामाविष्टलिङ्गत्वात् स्त्रीलिङ्गता । तान् उ तान् रश्मिनेव पुंसः आहुः प्रभूतवृष्ट्युदकसेक्तृन् पुरुषानाहुः । प्रतिनिर्देशापेक्षया पुंलिङ्गता । अमुमर्थमत्यन्तनिगूढमक्षणवान् ज्ञानदृष्ट्युपेतः कश्चित् महान् पश्यत् जानाति । अन्धः अतथारूपः स्थूलदृष्टिः न विचेतत् न विचेतयति न जानाति । किंच यः कविः क्रान्तदर्शी पुत्रः स्त्रीपुरुषरूपाणां रश्मीनां पुत्रस्थानीयः । पुरु जगतां त्राता वृष्ट्युदकलक्षणोऽस्ति । सः ई स एव पुत्रः ।

पत्रं

१०१६

पङ्क्तिः

१ यद्वा । ईमेनमर्थं स्त्रीणां सतीनां पश्चात् पुरुषभावमा चिकेत सर्वतो जानाति । पित्रोः स्थितिं पुत्र एव जानाति न अन्यः । यः कश्चित् ता तानि विजानत् स्त्रीपुरुषपुत्ररूपाणि जानीयात् । सः पितुः पिता असत् । पिता वृष्ट्या जगत्पालको रश्मिसमूहः । तस्यापि पिता आदित्यः स भवति । आदित्य एव भवतीत्यर्थः । यद्वा । लौकिकोक्तिरियम् । यस्तानि जानाति स एवं भवति । स्वयं पितुः पुत्रः सन्नपि स्वपुत्रापेक्षया पिता च भवति । पुत्रपौत्रादिसहितश्चिरकालं जीवी भवति । इत्याधिदेवतम् । अथाध्यात्मम् । या इदानीं स्त्रियः सतीः स्त्रीत्वं प्राप्ताः आहुः लौकिकाः तानु तानेव मे मह्यं पुंसः पुरुषान् आहुः प्रतिपादयन्ति तत्तद्ज्ञाः । कथमन्यस्य अन्यभावः उच्यते । एकस्यैव निरस्तसमस्तोपाधिकस्याऽऽत्मनस्तद्देहावस्थानमात्रेण तत्तद्व्यपदेशोपपत्तेः । द्वितीयः पादः पूर्ववत् । किञ्च पुत्रो वयसाऽल्पोऽपि यः कविः क्रान्तप्रज्ञः ज्ञानी स्यात् ईमिममर्थं स विचिकेत जानाति । एवमुक्तलक्षणस्य परमात्मनः ता तानि स्त्रीपुंस्त्वादीनि यो विजानात् औपाधिकानि जानीयात् । सः पितुः स्वोत्पादकस्यापि ज्ञानरहितस्य पिता असत् पितृवत् पृज्यो भवति ।

वस्तुतः एताः स्त्रियः किंतु अज्ञाः एताः पुमांसः इति वदन्ति । अक्षण्वान् यस्य ज्ञानचक्षुः वर्तते सः एव तत्त्वं पश्यत् पश्यति । अन्धः तत्त्वं न विचेतत् जानाति । कविः बुधः पुत्रोऽपि मन् ईमेताः स्त्रियः आचिकेत । तस्य पिता एतत् न विजानाति । तस्मात् ज्ञानेन स्वपितुः पिता असत् अस्ति । अज्ञाः इन्द्रियाण्येव आत्मा इत्याहुः । वस्तुतः इन्द्रियाणि स्त्रीसदृशानि एव । उपभोगसाधनानि इत्यर्थः । तानि पुमान् आत्मा उपभुङ्क्ते । वयसा वृद्धाः अपि एतन्न जानीयुः । अल्पवयस्कोऽपि कश्चित् तत् जानीयात् । तस्मात् वृद्धादपि सः प्रशस्यतरः ।

१० सप्त आदित्यरश्मयः तान् आदित्यः गिरति इति ऋचः संक्षेपार्थः ।

पत्रं

१०१६

पङ्क्तिः

११ ' मध्यस्थानोर्ध्वशब्दः ' इदं दुर्बोधम् । मध्यस्थानश्च उर्ध्व-
शब्दश्च इति विग्रहः । आदित्यः उर्ध्वशब्दमर्हति । किंतु
वर्षणार्थं स मध्यमे स्थाने तिष्ठति ।

१२ तानि = ये रश्मयः अग्निन् आदित्ये तिष्ठन्ति तानि । ते
धीतिभिश्च मनसा च स्तुतिभिः वि-परि-अयन्ति । पृथिव्यां
वर्षन्ति । परिभुवः पृथिवीं व्याप्नुवन्तः प्राणिमात्राणां सर्वाणि
कर्मणि वर्षकर्मणा परिभवन्ति व्याप्नुवन्ति । सर्वं प्राणिकर्म
वर्षायत्तम् । वर्षाभावे प्राणिनः न किमपि कर्तुं शक्नुयुः ।

१३ सप्त इन्द्रियाणि । तानि आत्मा गिरति इति मथितार्थः ।
आत्मा ऊर्ध्वशब्दमर्हति । किंतु शरीरमध्ये अन्तःकरणे तिष्ठति ।
यानि याः शक्तयः अग्निन् आत्मनि तिष्ठन्ति तानि ताः
धीतिभिश्च मनसा च चेतनत्वेन च विपर्ययन्ति संसारविपरीतं
कर्म कुर्वन्ति । सर्वं व्याप्नुवत्यः ज्ञानकर्मणा सर्वाणि इन्द्रियाणि
परिभवन्ति । ज्ञानदशायामिन्द्रियाणि निष्क्रियाणि भवन्ति ।
सप्त = सप्त मानरः आपः । अर्धे स्थाने उदरे गर्भः यासां
ता अर्धगर्भाः । ताः भुवनस्य रेतः आत्मनि गर्भत्वेन धारयन्ति ।
ताः विष्णोः प्रदिशा सूर्यस्य आज्ञया विधर्मणि नाके तिष्ठन्ति ।
विपश्चितः बुद्धियुक्ताः सन्तः देवाः विश्वतः सर्वत्र परिभुवः
वर्तमानाः परिभवन्ति जानन्ति धीतिभिः मनसा च ।

अत्र सायणभाष्यम् । सप्त रूर्पणस्वभावाः सप्तसंख्या वा रश्मयः
अर्धगर्भाः संवत्सरस्यार्धे गर्भं गर्भस्थानीयमुदकं धारयमाणाः ।
यद्वा । ब्रह्माण्डस्यार्धे मध्येऽन्तरिक्षे गर्भवद्गर्भानाः । भुवनस्य
लोकस्य रेतः सारं वृष्टिप्रदत्वेन रेतोभूताः तादृशा रश्मयः
विष्णोः व्यापकस्याऽऽदित्यस्य विधर्मणि जगद्धारण-
व्यापारे प्रदिशा प्रदेशेन तिष्ठन्ति वर्तन्ते । किंच ते धीतिभिः
प्रज्ञाभिः मनसा जगदुपकारः कर्तव्य इति बुद्ध्या च विश्वतः
सर्वतः । द्वितीयार्थे तसिः । विश्वं परिभवन्ति परितो भावयन्ति ।
कृत्स्नं जगद् व्याप्नुवन्ति इत्यर्थः । यस्मादेवं तरमात् ते एव
विपश्चितः बुद्धियुक्ताः परिभुवः सर्वत्र व्याप्ताश्च । यद्वा ।
सप्तार्धगर्भाः । ' सप्त महदहंकारौ पञ्च तन्मात्राणीति मिलित्व

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१६

१३ सप्तसंख्याकानि तत्त्वानि । अर्धगर्भाः अविकृतिरूपाः ।
विकाराश्रयाया मूलप्रकृतेः प्रकृतिविकृतेः उदासीनस्य आत्मन-
श्चोत्पन्नत्वात् अर्धांशेन प्रपञ्चाकारेण परिणामादर्धगर्भाः ।
पुरुषांशस्याविक्रियत्वात् इत्यभिप्रायः । अत एव तेषां प्रकृति-
विकृतिवत्त्वम् । यस्मादेवं तस्मात् भुवनस्य रेतः कारणम् ।
कारणभूतानि तान्येव विष्णोः व्याप्तस्य पुरुषस्य विधर्मणि
प्रदिशा प्रदेशेन तिष्ठन्ति । इतरत् ममानम् ।

१८-१९ इयमृक् यास्केन (निरु० ७।३) इत्यत्र पठिता ।

१ ' न हि० परिवेद्यन्ते ' अयं कस्य अर्थः । इदं वाक्यमशुद्धं
दुर्बोधं च । अत्र दुर्गवृत्तिः (६२२) इत्यत्र द्रष्टव्या ।

२ अयमादित्योऽयमात्मा = अस्याः ऋतः आदित्यपरः आत्मपरः
इति द्वावर्थौ । किंतु एतौ द्वावर्थौ अत्र न दीयेते । आदित्य-
परः कः अर्थः ।

अत्र सायणभाष्यम् । ' अहं यद् इव इदं यदपीदं विश्वं अस्मि
कृत्स्नः प्रपञ्च्योऽप्यहमेवास्मि । नामरूपांशं परमार्थं त्यक्त्वा
सर्वत्रानुगतोऽस्मि । योऽयं सच्चिदानन्दाकारोऽस्ति सोहम-
स्मीति न विजानामि । विदिच्य नान्नाभिपम् । परं शास्त्रज-
नितमिदमहमस्मीति ज्ञानं न जातम् । अविवेकी अहमित्यर्थः ।
कार्यकारणयोरभेदात् । कृत्स्नप्रपञ्चस्यापि ब्रह्मानन्यत्वेन ब्रह्म-
कत्वावगमे प्रपञ्चजातमपि स्वरूपमेव भवति । ' इदं सर्वं
यदयमात्मा ' ' ब्रह्मैवेदं सर्वं ' ' आत्मैवेदं सर्वं ' ' स ईक्षत
बहु स्यां प्रजायेय ' इत्यादिश्रुतिभ्यः एकविज्ञानेन सर्वविज्ञान-
प्राप्तिज्ञानात् । ' तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ' (वेदान्त०
२ । १ । ४) इत्याद्युपपत्तिभिश्च प्रपञ्चस्य ब्रह्मानन्यत्वं
सिद्धम् । यद्वा । इव शब्द उपमार्थः । यदिव परोक्षज्ञानं
सर्वैकात्म्यरूपमानुभाविकमस्ति तदिव तद्वदेवाहमस्मि । इदं
सर्वमहमस्मीति ज्ञानं मे जातम् । अपि त्वेतद् दार्ष्टान्तिकभूतम् ।
आनुभाविकं सार्वःत्म्यं यदस्ति तत् न विजानामि न
प्राप्तोऽस्मि । शास्त्रजनितं सार्वःत्म्यं जातं न त्वानुभाविकमि-

पत्रं
१०१७

पङ्क्तिः

२ त्यर्थः । तत्र कारणमाह- यतोऽहं निष्पद्यः । अन्तर्हितनामैतत् । अन्तर्हितः मूढचित्तः चित्तप्रत्यक्प्रवणताभावेन पारिच्छिन्न इत्यर्थः । तत्रोपपत्तिमाह-संनद्धः अविद्याकामकर्माभिः सम्यक्बद्धो वेष्टितः । अत एव मनसा युक्तः भावनासहिष्णुना बहिर्मुखेण विक्षिप्तेन चेतसा युक्तः संचरामि संसारे । अथवा । मनसा संनद्धः चरामि । इन्द्रियपरवश एव सन् संसारे दुःखमनुभवामि । न सार्वार्थ्यं जानामि इति पारिदेवते । यास्कोऽपि इमं पारिदेवनार्थत्वेन उदाजहार ' अथापि पारिदेवना कस्माच्चित् भावात् न वि जानामि यदिवेदमस्मि ' (निरु० ६१८ । १९-२१) । बहिर्मुखचेतसः स्वरूपापारिज्ञानजनितं दुःखमन्यत्र श्रूयते । ' पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ' (कठो० ४ । १) इति । तर्हि कर्तृत्वं भवति इत्याह । यदा माऽऽगन् आगमिष्यति तदा । किं तत् इति उच्यते । ऋतस्य परमार्थस्य परस्य ब्रह्मणः प्रथमजाः प्रथमोन्मेषः प्रथमोत्पन्नः चित्तप्रत्यक्प्रवणजनैतोऽनुभवः । स यदा मा मां प्राप्नोति आदित् अनन्तरमेव अव्यवधानेन अभ्याः वाचः ऐकात्म्यप्रतिप्रादिकाया उपनिषद्वाचो यदिवेदमस्मीत्युक्ताया वा । भागं भजनीयं शब्दब्रह्मणा व्याप्त्यं परं ब्रह्मपदं अश्रुवे प्राप्नोमि । चित्तस्य बहिर्मुखतां परित्यज्य अन्तर्मुखतैव दुःसंपादा । सा यदा स्यात् तदानीमेष स्वरूपं द्रष्टुं मुशकं भवति पश्चात् विलम्बाभावात् । यथा गिरिशिखरात् पतन् पापाणोऽविलम्बेन पतति तद्वत् । चित्तप्रत्यङ्मुखत्वस्य दुःशकत्वमपि तत्रैव श्रूयते । ' कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमच्छदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् '(कठो० ४ । १)' इति । इदं = शरीरम् । किमहमिदं शरीरमस्मि अथवा अशरीरः आत्मा अस्मि इति न विजानामि निष्पद्यः = शरीरे अन्तर्हितः । संनद्धः शरीरेण । मनसा चरामि = मनोव्यापारान् अनुसरामि । किंतु आत्मज्ञानाय मनोव्यापारः अकिंचित्करः । यदा ऋतस्य परमात्मनः प्रथमजाः बुद्धिः मां आगन् आगच्छत् । आत् इत्

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१७

२ तदनन्तरमेव अस्याः वाचः आत्मतत्त्वस्य भागमश्रुवे आत्मतत्त्वं जानामि । आत्मज्ञानाय महत्तत्त्वं बुद्धिः अवश्या ।

६ अपाङ् एति = अपाञ्चयति = अपगच्छति । प्राङ् एति = प्राञ्चयति = प्रगच्छति । चुरादिगणस्थस्य अञ्चधातोः इमे रूपे । 'अपाञ्चयति प्राञ्चयति' इत्यनयोः कोऽर्थः ।

७ स्वधया = जलरूपेण अन्नेन । गृभीतः = गृहीतः । अमर्त्यः = आदित्यः । मर्त्येन = चन्द्रमसा । सयोनिः = सह ।

७-८ शश्वन्ता = शश्वद्रामिनौ । विपूचीना = विश्वगामिनौ । वियन्ता = बहुगामिनौ । 'वा' शब्दो ऋचि नास्ति । नि अन्यं चिक्युः = आदित्यं पश्यति । न नि चिक्युरन्यं = चन्द्रमसं न पश्यति । आदित्यः जलं गृहीत्वा चन्द्रमसा सह उदेति अस्तं च गच्छति । नौ सर्वदा सह वर्तेते । जनाः दिवा आदित्यमेव पश्यन्ति न चन्द्रमसम् ।

१० अमर्त्यः = आत्मा । मर्त्येन = मनसा ।

११ 'नि अन्यं चिक्युः अत्र अन्यम् = आत्मानम् । 'न नि चिक्युः अन्यम्' अत्र अन्यं = मनः । आत्मा ज्ञानं गृहीत्वा मनसा सह जगति आविर्भवति तिरोगच्छति च । आत्मा मनश्च सर्वदा सह वर्तेते । ज्ञानी आत्मानं पश्यति न मनः ।

अत्र मायणभाष्यम् । अमर्त्यः अमरणधर्मा अयमात्मा मर्त्येन मरणधर्मणा भूतात्मना देहेन मयोनिः ममानस्थानः । यत्र परिच्छेदको देहोऽस्ति तत्र सर्वत्र सोऽयमपि तिष्ठन्नित्यर्थः । यद्वा । ममानोत्पत्तिः सहवासेन स्वस्मिन्नप्युत्पत्तिरुपचर्यते । एवंभूतः मन् स्वधया अन्नोपलक्षिततद्भोगेन गृभीतः । यद्वा । स्वधाशब्देन अन्नमयं शरीरं लक्ष्यते । तेन गृहीतः सन् अपाङ् एति । अशुक्लं कर्म कृत्वा अधो गच्छति । प्राङ् एति । स्वर्गादिलोकं प्राप्नोति । परमात्मैव सूक्ष्मशरीरोपाधिकः सन् नानाविधं कर्म कृत्वा तद्भोगाय जीवसंज्ञां लब्ध्वा शरीररूपेण संवद्धो लोकान्तरेषु संहरति । स्थूलमूक्ष्मोभयशरीरपरिशुद्धेण

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१७

११ लोके गुणत्रयान्वितः सन् परिभ्रमति । तथा च श्रूयते—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।

स विश्वरूपस्त्रिगुणास्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ।

(श्वे० उ० १ । ७) इति । इदानीमुभयप्राधान्येन आह—ता तौ

भूतात्मकर्त्रात्मानौ शश्वन्ता अविभागेन सर्वदा वर्तमानौ । यद्वा ।

सूक्ष्मशरीरपक्षे सर्वदा सहवास उपपद्यते । स्थूलशरीरपक्षेऽपि

सात्त्विकजातेः । तत्कारणानां भूतसूक्ष्माणां सद्भावात् तत्र

शरीरसंबन्धः उपपद्यते । विपृचीना इह लोके सर्वत्रगमनौ

वियन्ता तन्फलोपभोगाय सर्वत्र लोकान्तरेषु गच्छन्तौ वर्तते ।

तत्र नराः अन्यं भूतात्मानं नि चिन्त्युः । नितरां विशेषण पश्यन्ति

जानन्ति । अन्यमपरं देहवच्छायातिरिक्तं न नि चिन्त्युः न जान-

न्ति । केचन पामरा देहन्यतिरिक्तं न जानन्ति । केचन विवेकिनः

कर्तृत्वभोक्तृत्वोपेतः देहातिरिक्तः कश्चिदस्ति इति अनुमिमते । न

केऽपि देहत्रयव्यतिरिक्तमात्मानं जानन्ति । अतो दुर्लभमात्मज्ञान-

मित्यर्थः । अमर्त्यः आत्मा मर्त्येन देहेन मर्यानिः समानस्थानः स्व-

धया अन्नेन गृभानः गृहीतः सांसारिकैः कर्मभिः परिवेष्टितः अपाङ्

एति नीचानि जन्मानि प्राप्नोति । प्राङ् एति उत्तमानि जन्मानि

प्राप्नोति । ना तौ देहात्मानौ शश्वन्ताः शश्वन्तौ द्वे भिन्ने

व्यर्त्ता । विपृचीना विपृचीना विरुद्धस्वभावौ न सध्रीचीनौ ।

वियन्ता वियन्तौ भिन्नमार्गौ । देहात्मानौ भिन्नौ एव । प्राकृताः

तयोः देहात्मनोः अन्यं देहं नि चिन्त्युः निश्चयेन जानन्ति ।

अन्यमात्मानं न जानन्ति ।

११ आस = भवति । भुवनेषु = भूतेषु । ज्येष्ठं = आदित्यम् ।

१२ त्वेषनृम्णः = दीप्तिनृम्णः ।

१३ ज्येष्ठम् = अव्यक्तम् ।

१४ त्वेषनृम्णः = ज्ञाननृम्णः ।

पत्रं

पङ्क्तः

१०१७

२० विश्वे = सर्वे । देवनापरेऽर्थे ' जज्ञे ' इत्यस्य जायते ' विश्वे ' इत्यस्य सर्वे इत्यर्थो किमिति न दीयेते । आदित्यमित्यस्य स्थाने आदित्य इत्यवश्यम् । सर्वेषु भूतेषु आदित्यः ज्येष्ठः । तस्मात् आदित्यात् दीप्तिरूपमुग्रं बलं जायते । जातमेव शत्रून् देवानां शत्रून् निरिणाति हिनस्ति । अत्र निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वा कथं स्यात् । इममादित्यं विश्वे सर्वे ऊमाः अवितारः देवाः अनुमदन्ति अनुहृष्यन्ति । आदित्यं दृष्ट्वा सर्वे प्राणिनः हृष्यन्ति । अयं देवतापरः अर्थः । सर्वेषु भूतेषु किंनित् अव्यक्तमात्मरूपं तत्त्वमस्ति । तस्मात् आत्मनः ज्ञानरूपमुग्रं बलं जायते । जातं च शत्रून् अनात्मवस्तूनि निरिणाति हिनस्ति । अत्रापि निरिणातिः प्रीतिकर्मा दीप्तिकर्मा वा नास्ति । इममात्मानं दृष्ट्वा इतरे सर्वे आत्मानः हृष्यन्ति । अयमात्मपरोऽर्थः । अत्र सायणभाष्यम् । तत् जगत्कारणत्वेन सर्ववेदान्तप्रसिद्धम् । इत् शब्दोऽवधारणे । भुवनेषु । भू सत्तायाम् । सत्सु पृथिव्यादिषु लोकेषु मध्ये जगत्कारणं ब्रह्मैव ज्येष्ठं प्रशस्ततममास बभूव । तस्य परमार्थत्वात् तद्व्यतिरिक्तानां व्यावहारिकत्वाच्च । यद्वा । ज्येष्ठं वृद्धतमं जगत्कारणत्वेन सर्वेषामादिभूतं बभूव । यद्वा । वृद्धं तदेव ब्रह्म स्वप्रकाशतया आस दिदीपे । यतः उपादानभूतात् यस्मान् ब्रह्मणः उग्रः उदूर्णः त्वेषनृष्णः प्रदीप्तबलः सूर्यात्मकः इन्द्रः जज्ञे जातो बभूव । श्रूयते हि— ' चक्षोः सूर्यो अजायत ' (ऋ० सं० १० । १९० । ३) इति । ' सूर्याचन्द्रमसौ भाता यथापूर्वमकल्पयन् ' (ऋ० सं० १० । १९० । ३) इति च । स च जज्ञानः जायमानः एव मद्यः शीघ्रं शत्रून् शानयितुं मन्देहादीन् राक्षसान् निरिणाति निहिनस्ति । यद्वा । उपासकानां पापरूपान् शत्रून् निहन्ति । तथा च ब्राह्मणम् ' सद्यो ह्येष जातः पाप्मानमपाहन ' (ऐ० आ० १ । ३ । ४) इति । विश्वे सर्वे ऊमाः अवन्ति रक्षन्ति इति ऊमाः प्राणिनः । सर्वे प्राणिनो यं सूर्यात्मकमुद्यन्तमिन्द्रमनुलक्ष्य मदर्थमुदगात् मदर्थमुदगात् इति मदन्ति हृष्यन्ति । तथा च ब्राह्मणम् ' भूतानि वै विश्व ऊमास्त

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१७

२० एतमनुमदन्ति उदगादुदगात् ' (ऐ० आ० १।३।४)
इति । तौत्तिरियकं च ' तस्मात्सर्वे एव मन्यन्ते मां प्रत्युदगा-
दिति ' इति । यद्वा । यं स्तुत्यादिभिर्मान्यन्तमनु पश्चात् सर्वे
प्राणिनोऽभीष्टप्राप्त्या हृष्यन्ति स इन्द्रो यज्ञे इत्यन्वयः ।
सूक्तमिन्द्रपरम् । ऋगपि इन्द्रपरैव । यतः यदा त्वेपनृष्णः
महावीर्यः उग्रः भयंकरः इन्द्रः जज्ञे अजायत तदा इन्द्ररूपं
तत् एव सर्वेषु भूतेषु ज्येष्ठमास आसीत् । इन्द्रः एव सर्वेषां
ज्येष्ठः । सद्यो जज्ञानः जायमानः एव शत्रून् वृत्रादीन् निरि-
णाति हिनस्ति । यमिन्द्रं दृष्ट्वा ऊमाः अवितारः सर्वे मरुतः
हृष्यन्ति ।

१०१८

३ कः = आदित्यः ।

४ गाः = रश्मीन् । शिमीवतः = कर्मवतः । भामिनः = भानु-
मतः । दुर्हणायून् = दुराधर्षान् । आसून् = असून् = असु-
नवन्ति ।

४-९ इषून् = इषुणवन्ति । मयोभून् = मयोभूनि = सुखभूनि । एषा-
मिमम् ।

९ भृत्यां = संभृतम् । ऋणधत् = वेद । स जीवात् = कथं स
जीवति । अत्र ' कथं ' कस्यार्थः । आत्मपरे अर्थे ' चिरं '
शब्दः प्रयुज्यते । ' असुनवन्ति ' ' इषुणवन्ति ' इत्यनयोः
कोऽर्थः । असुनवन्ति इषुणवन्ति मयोभूनि एतानि कस्य विशे-
षणानि । असुमतः इषुमतः मयोभून् इति पुंलिङ्गानि एव
विशेषणानि । तेषां रश्मीन् इति विशेष्यम् । एवं गुणयुक्तान्
रश्मीन् आदित्यः धुरि नियुङ्क्ते । यः मनुष्यः इममादित्य-
मेव जानाति स कथं जीवेत् ।

६ कः = आत्मा । गाः = इन्द्रियाणि ।

७ शिमीवतः = कर्मवन्ति । भामिनः = भानुमन्ति । दुर्हणायून्
= दुराधर्षान् । ' दुराधर्षाणि ' इत्यवश्यम् । आसून् = असून्
= असुनवन्ति । ' असुमन्ति ' इत्यवश्यम् । इषून् = इषुण-

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१८

७ वन्ति । ' इधुमन्ति ' इत्यवश्यम् । आत्मा एवंगुणयुक्तानि इन्द्रियाणि ज्ञानाय उपयुङ्क्ते । यः ज्ञाता संभृतानि एवंगुणयुक्तानि इन्द्रियाणि वेद स चिरं जीवति ।

अत्र सायणभाष्यम् । अद्य अग्निन् कर्मणि ऋतस्य गच्छतः इन्द्रसंबन्धिनो रथस्य धुरि अश्वहनप्रदेशे गाः गतिमन्तोऽश्वान् कः युङ्क्ते । को नाम नियोक्तुं शक्नोति । न कोऽपीत्यर्थः । कीदृशान् अश्वान् । शिमीवतः वीर्यकर्मोपेतान् भामिनः तेजसा युक्तान् दुर्हणायून् परैर्दुःसहेन क्रोधेन युक्तान् । आसन्निपून् येषामामनि आस्ये मुखप्रदेशे शत्रूणां प्रहरणार्थमिषवः बाणाः बद्धाः तान् । हृत्स्वमः हृत्सु शत्रूणां हृदयेषु अस्यन्ति स्वकीयं पादं क्षिपन्तीति हृत्स्वमः । ' मयोभून् ' मयसः सुखस्य भावयितृन् । स्वकीयानां सुखप्रदान् इत्यर्थः । यः यजमानः एषामीदृशानामश्वानां भृत्यां भरणक्रियां रथवाहनक्रियां ऋणधत् समर्धयति । स्तौतीति यावत् । मः यजमानः जीवात् जीवनवान् भवेत् । यद्वा । क इति प्रजापतिरुच्यते । 'को ह वै नाम प्रजापतिः' इति श्रुतेः । ऋतस्य यज्ञस्य धुरि निर्वाहे गाः वेदरूपान् वाग्विशेषान् अद्य इदानीं युङ्क्ते ' संयोजयति । कीदृशान् शिमीवतः प्रतिपाद्यैः कर्मभिः युक्तान् भामिनः उज्ज्वलान् दुर्हणायून् । हर्णायतिर्हानिकर्मा । हातुमश्वान् । वेदाध्ययनस्य नित्यत्वात् । आसन्निपून् आसनि आस्ये इषुः एषणं गमनमुच्चारणं येषां तान् । हृत्स्वमः हृत्सु हृदयेषु दीप्यमानान् । प्रकाशमानान् इत्यर्थः । मयोभून् मयसः अध्ययनप्रभवस्य सुखसाधनस्य अदृष्टस्य भावयितृन् । यः यजमानः एषां वचसां भृत्यां भरणक्रियामृणधत् ऋद्धिमतीं करोति स जीवात् स एव जीवति । अन्ये जीवन्मृताः इत्यर्थः । सूक्तमिन्द्रपरम् । ऋगपि इन्द्रपरा । कः युङ्क्ते । अस्योत्तरमिन्द्रः एव युङ्क्ते इति । कान् युङ्क्ते । गाः वृषभान् । के ते वृषभाः । मरुतः । शिमीवतः बलिनः । भामिनः बलिनः । दुर्हणायून् शत्रुनाशकान् । आसन्निपून् । आसनि इषवः येषां तान् । हृत्स्वमः हृत्सु हृदयेषु (इषून्) अस्यन्ति

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१८

७ ते हृत्स्वसः । मरुतः अतिशयेन बलवन्तः । आस्येषु इषून् धारयन्ति । शत्रूणां हृदयेषु च तान् अस्यान्ति । एवं कृत्वा तान् नाशयन्ति । यज्वनां च मयः सुखं भावयन्ति । इन्द्रः एतान् मरुतः ऋतस्य यज्ञस्य धुरिं नियुङ्क्ते । अत एव सः नियुत्वान् इत्युच्यते । यस्मात्ते इन्द्रमेव विश्रान्ति तस्मात् सः एव एषां मरुतां भृत्यां सेवां ऋणधत् समर्धयति सफलीं करोति । सोमपानेन तान् तर्पयति । तस्मात् सः एव इन्द्रः सत्यं जीवति । मरुद्रूपाः वृषभाः यस्य स एव जीवितु-मर्हति ।

१२ कः = कः एव । ईषते = गच्छति । तुज्यते = ददाति ।

१३ त्रिभाय = त्रिभंति । तोकाय = अपत्याय : इभाय = महते ।

१३-१४ ' नो रणाय ' इदमृचि नास्ति । अस्याः ऋचः = भाष्यम-पूर्णम् । अत्र देवतापरः आत्मपरश्च अर्थो न दीयते ।

अत्र सायणभाष्यम् । अनुग्रहीतरि इन्द्रे आगते सति कः ईषते । शत्रोः भीतः सन् को निर्गच्छति । न कोऽपीत्यर्थः । कः तुज्यते को हिंस्यते । शत्रुहिंस्योऽपि कश्चिन्नास्तीत्यर्थः । कः यजमानः त्रिभाय त्रिभेति । इन्द्रे रक्षके सति भयमपि नोपपद्यते । दूरे तस्य शत्रुकृता हिंसा । अन्ति अन्तिके समीपे सन्तमस्माकं रक्षकत्वेन वर्तमानमिन्द्रं कः पुरुषः मंसते जानाति ! वयमेव जानीमः न अन्यः इत्यर्थः । एकः कः पूरकः । युद्धे सहायार्थमिन्द्रे आगते सति कः यजमानः तोकाय पुत्राय अधिब्रवत् । हे इन्द्रः अस्मदीयं पुत्रं रक्षेत्येवंरूपमधि-वचनं पक्षपातेन दचनं ब्राह्मणायाधिब्रूयादिति यथा एंवरूपमधि-वचनं को यजमानः कुर्यात् । स्वयमेवेन्द्रो रक्षतीति भावः । इभाय गजाय कः अधि ब्रवत् । उत अपि च राये शत्रुभि-रपहियमाणाय धनाय कः अधि ब्रवत् । अपहियमाणमस्मदीयं धनं रक्षेत्यधिवचनमपि को यजमानः कुर्यात् । न कोऽपीत्यर्थः । अपि च तन्वे स्वकीयाय शरीराय जनाय परिजनाय च कः अधि

पत्रं पङ्क्तिः

१०१८ १३-१४ ब्रवत् । स्वशरीररक्षार्थं परिजनरक्षार्थं च इन्द्रस्याधिवचनं नाप-
क्षितम् । स्तुत्या प्रीत इन्द्रः स्वयमेव रक्षतीत्यर्थः । यदा तु
कशब्दाभिधेयस्य प्रजापतेः संबन्धिनि कर्मणि विनियोगः
तदानीं परमैश्वर्ययोगात् इन्द्रशब्देन प्रजापतिरेवाभिधीयते ।
यथा ' ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते ' इतिविनियोगानुसारेण
कदाचन इत्यस्यामृचि विद्यमान इन्द्रः गार्हपत्यपरतया नीयते
तद्वत् ।

ईषते = पलायते । तुज्यते = कम्पते । इभाय = राये ।
इन्द्रमन्ति सन्तमिन्द्रे अन्तिके सति कः ईषते पलायते ।
तुज्यते कः । कः कम्पते । विभाय कः । कः विभेति ।
मंसते कः । शत्रुणा आत्मानं हतं कः मन्यते । इन्द्रात्
अन्यः कः तोकाय तनयाय इभाय धनाय राये धनाय तन्वे
शरीराय जनाय भृत्यादिभ्यः अधि ब्रवत् अधिब्रूयात् नः ।
इन्द्रात् अन्यः कः अस्मभ्यं तनयं धनं भृत्यान् सुखमयशरीरं
च दद्यात् ।

१८ अग्निम् = आदित्यम् । ईष्टे = पूजयति ।

२० होम = अर्थान् । सुदेवः = कल्याणदेवः ।

२१ अग्निम् = आत्मानम् ।

१०१९ १ सुदेवः = सुप्रज्ञः कल्याणप्रज्ञः । ' सुप्रज्ञः ' इत्यस्य म्याने
' सुदेवः ' इत्यवश्यम् ।

अत्र सायणभाष्यम् । कः यजमानः अग्निर्माष्ट्रे इन्द्रार्थं हवि-
र्निरूप्य अग्निं स्तौति । इन्द्राय हविर्निर्वापोऽपि सम्यक् कर्तुं
न शक्यते । इन्द्रस्य दुर्बिज्ञानत्वात् । को वा इन्द्रयागार्थमग्निं
शुचा जुह्वा ध्रुवेभिः ध्रुवैः नित्यैः ऋतुभिः वसन्तादिकालैरु-
पलक्षितेन घृतेन हविषा यजति यजेत् । यद्वा । ऋतवः प्रया-
जदेवताः ' ऋतवो वै प्रयाजाः ' इति श्रुतेः । ताभिः
ध्रुवैः प्रकृतौ विकृतौ च अनुप्रेयतया निश्चलैः ऋतुभिः सह
अग्निमाज्यभागदेवतां घृतेन हविषा को यजेत् । न कोऽपीत्यर्थः ।
कस्मै यजमानाय होमं ह्यातव्यं प्रशस्यं धनमाशु शीघ्रं देवाः

पत्रं

पङ्क्तिः

१०१९

१ आ वहान् आवहन्ति प्रयच्छन्ति । न कर्मै अपि इत्यर्थः । इन्द्र एव धनस्य दाता नाग्ये देवा इति इन्द्रः स्तूयते । वीति-होत्रः प्राप्तयज्ञः सुदेवः शोभन्देवताकः कः यजमानः मंसते इन्द्रं सम्यक् जानाति । न कोऽपीत्यर्थः । बहुविधेन स्तोत्रेण चिरकालोपासनेन च इन्द्रः प्रत्यक्षो भवति । नाग्येन प्रकारेण इति तात्पर्यार्थः ।

इन्द्रमूक्ते इयमेव एका अग्निपरा ऋक् । अरयामिन्द्रस्य नाम अपि नास्ति । हविषा = घृतं । इदं घृतरूपं हविः स्त्रुचि दर्व्या गृह्यते । अग्ने च तन् देवानां कृते प्राक्षिप्यते । अग्निः ऋतुभिः सह हविः पिबति । ' नोऽधत्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ' (ऋ० सं० २ । ३७ । ३) । अथवा । ऋतुभिः = ऋतुनामकैः पात्रैः । ध्रुवेभिः = ध्रुवामिः । यजाने = यजते । एतेषु पात्रेषु सोमं गृह्णित्वा अग्ने प्राक्षिपन्ति । सः तेन कर्मणा देवान् प्राणयति । अग्निं घृतेन सोमेन च कः प्राणयति । अग्निः देवान् आशु त्वरितमध्वरस्य होम (गृहं) यज्ञभूमिमावहति । अग्निं पुनः के देवाः यज्ञगृहमावहन्ति । वीतये होत्रं यस्य सः वीतिहोत्रः । अग्निः होत्राणि हवीषि देवानां वीतये भक्षणाय गृह्णाति । एवं कृत्वा देवान् मंसते देवान् तर्पयति । अग्न्यर्थं होत्राणि कः नयति । तत् कृत्वा च अग्निः कः मंसते तर्पयति । ईष्टे = यजते = मंसते । अग्निः देवानां दूतः । न कोऽपि देवः अग्नेः दूतः ।

१-७ मर्दिता -- पाता वा पालयिता वा जेता वा सुखायिता वा । मर्दिता=पालयिता एव । ' न ह्यन्यं बलाकरं मर्दितां शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळ्य ' (ऋ० सं० ८ । ८० । १) । हे शविष्ठ इन्द्र त्वमङ्ग एव मर्त्यं प्रशंसिषः । साधुः अयं मर्त्यः इति प्रशंससे । हे मधवन् इन्द्र त्वत्तः अन्यः मर्दिता रक्षिता नास्ति । इदं सत्यं स्तुतियुक्तं वचः ते तुभ्यं ब्रवीमि ।

६ प्र शंसिषः = प्र शंसीत । तृतीयपुरुषविपरिणामः क्रिमर्थः । 'प्रशंससि' इत्यवश्यम् ।

पत्रं पङ्क्तिः

१०-९

१०-११ अस्या ऋचः भाष्यमतीवाशुद्धं दुर्बोधतमं च ।

१२ हंसः = हंसाः = सूर्यरश्मयः । हंसः = परमात्मा परं ज्योतिः ।

१३ शुचिः = पृथिवी । सा सूर्यरश्मिभिः व्याप्ता । सर्वं जगत् वननकर्मणा आदित्यमण्डलेन व्याप्तम् । द्वितीयं 'व्याप्तं' पदं किमर्थम् । 'अनभ्यासेन' इत्यस्य कोऽर्थः ।

१४ 'त्ययतीति लोको त्ययतीति हंसयन्त्ययतीति' अयं कस्या-
अर्थः । कश्चासौ अर्थः । 'त्ययति' अत्र कः धातुः । गुर्जर-
पाठः 'त्यजतीति लोकत्यजतीति हंसस्त्यजतीति' इति ।
लोकः हंसो वा किं त्यजति । हंसः = हंसाः = परमहंसाः ।

१५ हंसः = परमात्मा । 'सूर्यरश्मिभिः ००० कुटुन्ता रिभन्ता'
अयं कस्यार्थः । कश्चासौ अर्थः । वमतीतिवमुः । सः रश्मिरू-
पेण वह्निरूपेण मुवर्णरूपेण च त्रिभिः त्रिधा वमति ।

१७-१८ अन्तरिक्षसन् = अन्तरिक्षा अन्तर्गक्षेण पथा चरन् चरति ।

१८ अन्तरिक्षा चरन् = अन्तर्निक्षयोः = दिवि भुवि । चरन् =
गमनम् । 'वा'शब्दः किमर्थः ।

१८-१९ 'मुभानुः ० गता भवन्ति' अयं कस्य अर्थः को वा अर्थः ।

१९ 'सर्वे दुरोणमन् द्रवं' । कोऽर्थः । 'सर्वे रमाः' इत्यस्य स्थाने
'सर्वान् रमान्' इत्यवश्यम् ।

१०२०

१ आदित्यः सर्वान् रमान् विकर्षयति । तथैव रश्मिः । तथैव
वह्निः । 'विकर्षयति' इति अशुद्धम् । 'विकर्षति' इति
शुद्धम् । 'वननं भवति' । कस्य अर्थः को वा अर्थः ।

१-२ अञ्जाः = अश्रगोजाः ।

२ अद्रिजाः = अद्रिगोजाः = अग्निगोजाः । सर्वं गोजाः ऋतजाः ।
ऋतजाः = बहुशब्दाः । के सर्वं गोजाः । 'गोजाः' इत्ये-
कवचनं न बहुवचनम् ।

३ 'निगमो निगमयति' कोऽर्थः । 'निगमयति' इति किं रूपम् ।
'भवत्येष निर्वचनाय' । निर्वचनाय किं भवति । अथवा । एषः
उत्तरः मन्त्रः निर्वचनाय भवति ।

पत्रं पङ्क्तिः

१०१९-२०

३ अत्र सायणभाष्यम् “ अनया सौर्यर्चा य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः दृश्यते हिरण्यश्मश्रुरित्यादि श्रुत्युक्तो मण्डलाभिमानो देवोऽस्ति यश्च सर्वप्राणित्तरूपस्थितः परमात्मा यश्च निरस्तसमस्तौपाधिकं परं ब्रह्म तत् सर्वमेकमेव इति प्रतिपाद्यते । हंसः हन्तिर्गत्यर्थः । सर्वत्र सर्वदा गन्ता योऽहं सोऽसावित्यादिश्रुत्युक्तप्रकारेण एकीकृत्य उपास्य-परमात्ममन्त्रप्रतिपाद्यः आदित्यः । स च शुचौ दीप्ते द्युलोके सीदतीति शुचिषत् । अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्ते इत्यादिश्रुतेः । अनेन द्युस्थान आदित्यः प्रतिपादितः । स एव मध्यस्थानो वायुः इत्याह । वसुः सर्वस्य वासयिता वायुः । स च अन्तरिक्षसत् । अन्तरिक्षसंचारी । अथ तस्यैव स्थितिस्थानवैदिकाग्निरूपतामाह—होता देवानामाह्वाता होम-निष्पादको वा । वेदिषत् वेद्यां गार्हपत्यादिरूपेण स्थितः । अतिथिः अतिथिवत् सर्वदा पूज्योऽग्निः । दुरोणसत् । दुरोणं गृह्णाम । तत्र पाकादिस्नाधनत्वेन स्थितः । अनेन लौकिका-भ्यात्मकत्वमुक्तम् । नृषत् । नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत् । अनेन परमात्मरूपत्वमुक्तम् । पुनरप्यादित्यात्मतामाह । वरमत् । वरे वर्णीये मण्डले सीदतीति वरसदादित्यः । वरं वा एतत् मन्त्रनां यम्मिलेप आमन्नः तपतीति हि श्रूयते । ऋते सत्यं ब्रह्म यज्ञो वा । तत्र सीदति इति ऋतसद् अग्निः । व्योमान्तरिक्षम् । तत्र सीदति इति व्योमसत् वायुः । इदानीमादित्यतोऽप्यने । अत्रजा उदकेषु जातः । उदकमध्ये खल्वयं जायते । गोत्रा गोषु रश्मिषु जातः । ऋतं सत्यम् । मर्षैः दृश्यत्वेन सत्यजातः । न ह्यमो इन्द्रादिषु परोक्षो भवति । यद्वा । उदकेषु वैद्युतरूपेण वा इव रूपेण वा जातः । अद्रिजा अद्रौ उदयाचले जातः । एवं महानुभाव आदित्यः ऋते सत्यमवाच्यं सर्वाभिष्टानं ब्रह्मतत्त्वम् । तद्रूपो ह्यमो एव । आदित्यस्य उक्तरूपत्वं । हंसः शुचिषत् इत्येव वै हंसः शुचिषत् ’ इत्यादिना ब्राह्मणे (ए० ब्रा० ४ । ३ । ९) समाक्षानम् ” ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०२०

३ दधिक्रावणः सूक्ते इयमृक् अस्थाने यस्मात् अस्याः
 अर्थः आत्मपरः । आत्मा हंसः इन्द्रः अग्निः इत्युच्यते ।
 शुचिपत् अन्तरिक्षसत् इत्यादयः शब्दाः अस्यामेव ऋचि
 उपलभ्यन्ते । उपनिषत्कालीना इयमृक् स्यात् । यथा
 हंसः शुचां जले सीदति तथा सोमः शुचां प्रदेशे
 वर्तते । वसुः इन्द्रः अन्तरिक्षे सीदति । होता अग्निः
 वेद्यां सीदति । अनिधिः अग्निः दुरोणे यजमानगृहे
 सीदति । तथा सोमः सर्वत्र वर्तते । सः नृणां
 मध्ये सीदति । वरे श्रेष्ठे स्थाने सीदति । ऋते यज्ञे
 जले वा सीदति । व्योम्नि सीदति । जलमिश्रणात् सोमः
 अठजाः ऋतजाश्च । क्षीरमिश्रणात् गोजाः । ग्रावभिः सव-
 नात् अद्रिजाः इत्युच्यते । तथा च सः ऋतं ब्रह्माण्डतत्त्व-
 मुच्यते । सोमस्य सर्वैः देवैः तादात्म्यं वर्तेते । तस्मात् आत्मा
 वेदान्तिभिः 'सोमः' इति निरूप्यते । इयमृक् कठोपनि-
 षदि (९ । २) महानारायणोपनिषदि (९ । ३ । १७ । ८)
 नृमिहपूर्वतापन्युपनिषदि च (३ । १) वर्तते ।

७ ' द्वा द्वौ ' इयं द्विरुक्तिः किमर्था । मुकृतौ = धर्मकर्तारौ ।
 ' प्रतिष्ठितौ मुकृतौ ' इदमृचि न वर्तते ।

८ परिभारकम् = यत् अमृतत्वात् अथवा देवयानपितृयाणाभ्यां
 परिभारयति बहिष्करोति । अतः पापं परिभारकमित्याचक्षते
 विद्वांसः । यदि ' मुकृत् ' विरुद्धः ' दुष्कृत् ' शब्दः तर्हि
 दुष्कृत् दुष्टस्य कर्मणः कर्ता पापः परिभारकः । सः दुर्मर्गिणं
 देवयानपितृयाणाभ्यामन्येन पथा याति ।

८-९ आत्मानं = दुर्गत्मानं (नीचात्मानं) परमात्मानं च । एवं
 द्वा आत्मानो इयमृक् कथयति । तत् आत्मद्वयं प्रत्युत्तिष्ठति
 मर्जीवे शरीरे एव जायते । द्वावप्यात्मानौ शरीरे तिष्ठतः ।

९ ' वृक्षं वृक्षं ' इति कस्यार्थः । शरीरं = शरीररूपं वृक्षम् ।

पत्रं

१०२०

पङ्क्तिः

१० ' पक्षौ ' इत्यस्य केनान्वयः । कश्च प्रतिष्ठापयति । ऋचि ' तयोः अन्यः ' । भाष्ये ' तयोः अन्यत् ' । अन्नं भुक्त्वा किं करोति । ऋचि ' अनश्नन्नन्यो ' । भाष्ये ' अनश्नन्नन्या ' । अत्र मायणभाष्यम् ' अन्नं लौकिकपक्षिद्वयदृष्टान्तेन जीवपरमात्मानौ स्तूयेते । यथा लोके द्वौ सुपर्णौ सुपतनौ शोभनगमनौ सयुजा समानयोगौ । सखाया समानख्यानौ समानं वृक्षं परि पस्वजाते । एकमेव वृक्षं परिपस्वजाते आश्रयतः । तयोरन्य एकः पिप्पलं पत्रं स्वादुतरमत्ति । ३.परोऽनश्नन् अभि चाकशीति अभिपश्यति । तद्वत् द्वौ सुपर्णस्थानीयौ क्षेत्रज्ञपरमात्मानौ । सयुजा समानयोगौ । योगो नाम संबन्धः । स च तादात्म्यलक्षणः । स एवाऽऽत्मा जीवात्मनः स्वरूपं यस्य परमात्मनः स तदात्मा । एवमन्यस्यापि स एव आत्मा परमात्मनः स्वरूपं यस्य जीवात्मनः । एवमेकस्वरूपौ इत्यर्थः । अनेन भास्करमतानुसारीणः अतिरेकिनाम्नः जीवात्मा परमात्मनः नून्यः । स च परमात्मा जीवादन्यः नानाजीवाश्रयणात् इति मतं निरस्तं भवति । ननु संबन्धः द्विष्टः । स च पक्षिणोरिव भेदमपेक्षते । अतः कथमैकात्म्यमिति । न । औपाधिकभेदं वास्तवभेदं चापेक्ष्य प्रवृत्तः । अत एव सखायौ समानख्यानौ नान्यख्यानौ । ननु एकस्य यादृशं ख्यानं तादृशमेव अन्यस्य इति व्युत्पत्त्या भेदः स्फुटं प्रतिभाति । कथं तादात्म्यमुच्यते इति न वक्तव्यम् । नात्र परस्परं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावः । अपि तु यस्य यादृशं ख्यानं स्फुरणं परमात्मनस्तदेव ख्यानमितरस्यापि जीवात्मनः इति सखायौ इत्युच्यते । एकरूपप्रकाशौ इत्यर्थः । अतः उपपन्नमैकात्म्यम् । अनेन वास्तवभेदोऽपि निरस्तः । समानं वृक्षं परि पस्वजाते इत्यत्र यथा आश्रयान्तराभावात् उभयोः एकाश्रयत्वमभ्युपगन्तव्यं तद्वत् सयुजा सखायौ इति उभयत्रापि एकयोगस्थाने आश्रयणीये । वृश्चते इति वृक्षो देहः । स च उभयोः समानः एक एव । जीवस्य भोगार्थत्वात् परमात्मना सृष्टैः महाभूतैः आरब्धत्वात् तस्मै उपलब्धिस्थानत्वाच्च उभयोः अपि समानः । तादृशं समानं वृक्षं परि पस्वजाते

पत्रं

पङ्क्तिः

१०२०

१० परिप्वजतः आश्रयतः । न च जीवस्य वस्तुतः ईश्वरत्वे कथं जीवबुद्ध्या संसारशोकौ इति वाच्यम् । तयोः मोहदृष्टत्वात् । तथा चाऽऽथर्वणिका अनुमन्त्रमात्राय अस्य संदेहनिवर्तकमुत्तरं मन्त्रमेवमामनन्ति- 'समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः' । (मु० उ० ३।१।२) इति । अस्य अयमर्थः । एक एव शरीरे पूर्णः पुरुषः परमात्मा निमग्नो निगूढः सन् स्वयमपीश्वरोऽप्यनीशत्वबुद्ध्या मुह्यमानः मूढः सन् शोचति । संसारेऽहं कर्ता सुखी दुःखी इति जननमरणे अनुभवति । यदा तु जुष्टं नित्यतृप्तमन्यं संसारशोकातीतमीशं परमेश्वरं पश्यति स्वानन्यतया साक्षात्करोति तदा वीतशोकः देहात् व्यतिरिक्तः स्वस्वरूपमाक्षात्कारेण गततापत्रयः सन् अस्य महिमानमिति । निरस्तसमस्तोपाधिकस्य परमेश्वरस्य महिमानं सार्वत्म्यसर्वज्ञत्वादिमहिमानमिति एति प्राप्नोति । न च तद्भावनासौ तन्महिमा प्राप्यते । अतस्तद्रूपो भवतीत्यर्थः । तस्मात् वस्तुत एक एव । भेदस्तु मोहकृतः इति प्रसिद्धम् । अनुभवदृशायां लौकिकबुद्ध्या भेदमस्युपेत्य उच्यते । तयोरन्यो जीवात्मा पिप्लं कर्मफलं स्वादुभूतमिति भुङ्क्ते । यस्य यदुपाजितं तत्तस्य स्वादु भवति । अन्यः परमात्मा अनश्वन् आप्तकामत्वेन अभुञ्जानः । स्पृहाया अभावात् । 'आप्तकामस्य का स्पृहा' इति स्मृतेः । तस्माद् वास्तवभेदमुपजीव्य तयोरन्य इत्युक्तम् । वस्तुतस्तु 'अनीशया शोचति मुह्यमानः' इत्युक्तत्वात् अभेद एव । तादृशः परमात्मा स्वात्मनि अन्धस्तं जगत् साक्षित्वेन ईक्षते । 'अत्र द्वौ द्वौ प्रतिष्ठितौ सुकृतौ धर्मकर्तारौ' इत्यादि निरुक्ते (१४।३०) गतमस्य मन्त्रस्य व्याख्यानमनुसंधेयम् ।

इयमृक् मुण्डकोपनिषदि (३ । १ । १) श्वेताश्वतरोपनिषदि च (४ । ६) वर्तते । यथा द्वौ पक्षिणौ सह बर्तमानौ सखायौ सन्तौ एकस्मिन्नेव वृक्षे नैकद्वयेन वसेते यथा च तयोरेकः तस्य वृक्षस्य स्वादु फलमिति अन्यस्तु फलानि अनशनन्नेव इतन्ततः पश्यति एवं संसारयात्रायां सह वर्तमानौ सखायौ

पत्रं

पङ्क्तिः

१०२०

१० बद्धात्ममुक्तात्मानौ वदन्ते । बद्धात्मा ससारं भुनक्ति । परमात्मा तु केवलं साक्षी भवति । अयमर्थः 'अज्ञानंकां लोहित-शुक्लवृष्णां' इत्यत्र स्पष्टः । ऋग्भाष्यमतीवाशुद्धं दुर्बोधं च ।

१६ आयाहि = आगमिष्यन्ति । इन्द्रः = शक्रो देवतास्ताः । पथिभिः ईळितेभिः = त्रिभिः तीर्थेभिः

१७ शक्रप्रतरैः ईळितेभिः = त्रिभिः तीर्थैः । भागधेयं = यज्ञभागम् = अग्नीषोमभागौ ।

१८ ' इन्द्रो जुषस्व ० निदर्शनम् ' अयं कस्यार्थः । कश्चार्थः । हे इन्द्र, इमं नः यज्ञमीळितेभिः पूज्यैः पथिभिः आयाहि । भागधेयं जुषस्व । उत्तरार्थः दुर्बोधः ।

१०२१

२-६ ' विदुर्वेद ००० वदन्ति ' अयं कस्य अर्थः ।

७ ' अग्निः सर्वा देवताः ' इति (निरु० ७ । १७) । तस्य अग्नेः भूयसे निर्वचनाय उत्तरा ऋक् निरुच्यते । विप्रासः विप्राः मर्तासः मर्ताः उतये अवसे रक्षणाय गीर्भिः स्तुतिभिः विप्रं देवमग्निं हवामहे ।

११ जातवेदसे = जातमिदं सर्वं सचराचरं स्थित्युत्पत्तिप्रलयन्यायेन । इदं विवरणमपूर्णम् । 'यः वेद' इति अवश्यम् । यः जातमिदं सर्वं सचराचरं जगत् स्थितौ उत्पत्तौ प्रलये च वेद जानाति स जातवेदाः । उत्पत्तिस्थितिप्रलय० इति क्रमः अवश्यः । ' न्यायेन ' इत्यस्य कोऽर्थः । इदं पदमनवश्यम् ।

१२ ' अच्छाय ' इत्यस्य कोऽर्थः ।

१२-१३ ' प्रसवेनाभिषवाय सोमं राजानममृतमरातीयतो यज्ञार्थमिति स्मः ' अयं कस्य अर्थः । कश्चार्थः ।

१३ नि = निश्चये ।

१४ दहाति = दहति भस्मी करोति । सोमः दददित्यर्थः । अत्र ' ददत् ' इति कस्यार्थः । दुर्गाणि = दुर्गमनानि स्थानानि ।

पत्रं

पङ्क्तिः

१०२१

१९ 'सिन्धुः' अयमपपाठः । 'सिन्धुः' इत्यवश्यम् । 'सिन्धुः
स्यन्दनात्' (निरु० ९ । २६) ।

१६ सिन्धुं = नदीं जलदुर्गां महाकृलाम् । पर्षत् = तारयति ।

१७ तस्य = अग्नेः । इयमृक् गुर्जरनिरुक्तमूले सममाध्यायस्य
एकोनविंशत्पञ्चम्य अनन्तरं दीयते । यास्कभाष्यं च तत्र
वर्तते । द्वयोर्भाष्ययोः बहवः अपपाठाः । द्वयोः पाठभेदोऽपि ।
तद्भाष्यमालोचनीयं विद्यार्थिभिः । जातवेदसे सोमं मुनवाम् ।
यस्मात्सः अगतीयतः शत्रुवत् आचरतः । वेदः धनं निदहाति
निश्चयेन दहति । स अग्निः नः विश्वा विश्वानि दुर्गाणि
नावेव सिन्धुमति पर्षत् अति पारयतु । दुरिता दुरितानि
अति पर्षत् पारयतु ।

१०२२

३ 'अममानाभिः' अयम् 'असमानमाद्भिः' इत्यस्य अपपाठः
स्यात् । सिन्धुं प्रवहन्ति = सिन्धुं पतिं कृत्वा वहन्ति ।

४ जहानि = त्यजति । पापं त्यजन्ति । बहुवचनं किमर्थम् ।

४-९ 'आप आप्नोतेऽनामामेषा भवति' इदं (निरु० ९ । २६)
इत्यत्र वर्तते । अत्र तत् अस्थाने एव । यस्मात् 'अयम्ब्रह्मं
यजामहे' इत्यस्यामृचि आपो न विद्यन्ते । याः काश्च सर्वाः नद्यः
सिन्धुं समुद्रं प्रवहन्ति । हे नदि इदं ते जलमन्याभिः
अद्भिः अन्यामां नदीनामाद्भिः असमानम् । तव जले पाप-
क्षालनसामर्थ्यमस्ति न तामाम् । यथा मशिगम्कः सर्पः जीर्णां
त्वचमनायामेन जहानि तथा नरः तव जलमभि उप-
इत्य तत्र जलं स्पृष्ट्व पापं जहानि । अहो तव महिमा ।
एवं काचित्प्राची संवाच्यते । मशिगम्कः इत्यनेन शरीरच्छादिर्ना
मर्था त्वक् सृच्यते ।

९ 'अममानाभिः' = अयम् । मुगान्धि = मुष्टुगान्धिम् ।

१०-११ पृष्टिकारकम् = पृष्टिकारकम् ।

१२ 'पृष्टिकारकम्' अत्र 'इव' शब्दः अनवश्यः ।

पञ्च

पङ्क्तिः

१०२२

१० उर्वारुकम् = तन्नामकं फलम् । बन्धनात् = आरोधनात् ।
बन्धनं फलानि पतनात् ऋणाद्धि ।

१०—११ मृत्योः = मृत्योः मकाशात् ।

११ मुक्षीय = मुञ्चस्व । ‘ मुक्षीय ’ इत्तुत्तमपुरुषस्यैकवचनम् ।
मुच् धातुः । लेट् सः । ईय लिट् प्रत्ययः । मा = माम् =
‘ कस्मादित्येषामितरेषा ’ अस्य कोऽर्थ कश्च संबन्धः ।

अत्र सायणभाष्यम् “ अत्र शौनकः — ‘ त्रिरात्रं नियतोऽ-
पोप्य श्रपथेत् । पायमं चरुम् । तेनाऽऽहुतिशतं पूर्णं जुहुया-
च्छमितव्रतः ॥ समुद्दिश्य महादेवं त्र्यम्बकं त्र्यम्बकेत्यृचा ।
एतन् पर्वशतं कृत्वा जीवेद्वर्षशतं सुग्धी ’ (ऋग्विधानं २ ।

२७) । त्रयाणां ब्रह्मावप्युस्रुद्राणामम्बकं पतर यजामहे
इति शिष्यसमाहितो वसिष्ठो ब्रवीति । किंविशिष्टमित्यतः
अ.ह—सुगन्धिं प्रसारितपुण्ड्रकीर्तिम् । पुनः किंविशिष्टम् ।

पुष्टिवर्धनं जगद्बीजम् । उरुशक्तिमित्यर्थः । उपासकस्य वर्ध-
नमणिमादिशक्तिवर्धनम् । अतस्त्वं प्रसादादेव मृत्योर्म-

रणात् संसाराद्वा मुक्षीय मोक्षय । यथा बन्धनादुर्वारुकं कर्क-
टीफलं मुच्यते तद्वत् संसाराद्वा मोक्षय । किं मर्या-

दीकृत्य । आ मृतात् । सायुज्यतामोक्षपर्यन्तमित्यर्थः । अथ
तैत्तिरीयभाष्ये (तै० सं० १।८।६।२) ‘ शोभनः शरीरगन्धः

पुण्यगन्धो वा यस्य अर्सा सुगन्धिः । यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य
दूराद्गन्धो वाति एवं पुण्यस्य कर्मणः दूराद्गन्धो वाति ’ इति

श्रुतेः । पुष्टिं शरीरधनादिविषयां वर्धयतीति पुष्टिवर्धनः ।
तादृशं त्र्यम्बकं यजामहे पूजयामः । लोके यथा उर्वारुकफ-

लानि बन्धनात् वृन्तान् स्वयमेव मुच्यन्ते तद्वदहं त्र्यम्बकप्र-
सादनं मृत्योः मुक्षीय मोक्षनयुक्तो भूयासम् । अमृतात् चिरजी-

वितात् स्वर्गादेवो मा मुक्षीय । चतुर्थपादार्थमत्रस्य तात्पर्या-
तिशयं दर्शयति ‘ त्र्यम्बकं यजामहे इत्याह । मृत्योर्मुक्षीय
मामृतादिति वाच्यतदाहेति ” ।

त्र्यम्बकं यजामहे पूजयामः । यथा सुगन्धिं सुगन्धिं पुष्टिवर्धन-

पत्रं पङ्क्तिः

१०२२

११ मत एव पिपतिषु उर्वारुकं बन्धनात् स्वयमेव मुच्यते तथा अहं मृत्योः मुक्षयि । अमृतात् ब्रह्मणः मा अहं हीये ।

१९-१६ ' इत्यपि निगमो भवति ' । इदमनवश्यं यस्मादत्र सर्वा ऋक् पठ्यते

१६ शातं = दीर्घमायुः । ' मरुतः एनां वर्धयन्ति ' इदं 'मरुदृषा' इत्यस्य भाष्यं (निरु० ९।२६) अत्र असंबद्धमेव ।

१६-१७ ' शतमेनमेव ० ऐश्वर्यं भवति ' अयं कस्य अर्थः ।

१७ ' शतात्मानं भवति ' इदमशुद्धम् ।

१७-१८ ' शतमिति शतं दीर्घमायुः ' इदं पूर्वत्र कथितमेव । राजयक्ष्ममुक्तः अत एव शरीरेण वर्धमानः त्वं शतं शरदः शतं हेमन्तान् शतं उ च वसन्तान् जीव । इन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा दीर्घमायुः ददाता हविषा इमं राजयक्ष्म-मुक्तं जनं शतं वर्षाणि जीवतु इत्यर्थमस्मभ्यं पुनः दुः अदुः अयच्छन् ।

२२ राधांसि = धनानि । ' कदा च नः सरिषुः ' अयं कस्य अर्थः ।

१०२३

१ विश्वा = सर्वाणि । ' प्रज्ञानानि ' इति अत्र्याहृतम् । उपमि-मीहि = उपनामय । मानुष = मनुष्यहितः । ' अयमादित्योऽ-यमात्मा ' । अयमादित्यः इत्यभिद्वैतम् । अयमात्मा इत्यत्र्या-त्मम् । इमां द्वां अर्थो भाष्ये न दीयेते ।

अत्र मायणभाष्यम् ' हे वसो निवामयितरिन्द्र ते तव संत-र्धानि राधोन्त्येभिर्गिति राधांसि मृतान्यस्मान् कदाचन कदाचि-दपि मा दधन् मा विनाशयन्तु । तथा उक्तथा गन्तारः । यद्वा । धृनयः इत्यत्र वर्णलक्षणः । धृनयः कम्पयितारस्ते त्वदाया मरुतश्च मा दधन् । हे मानुष मनुष्यहितेन्द्र चर्षणिभ्यो मन्त्रद्रष्टृभ्यो नो अस्मभ्यं विश्वा विश्वानि सर्वाणि वसुनि धनानि च आ उपमिर्माहि सर्वत आदृत्य अस्मत्समीपे कुरु । गर्वो वर्तमानं धनमस्मभ्यं प्रयच्छ इत्यर्थः ' ।

त्र

१०२३

पङ्क्तिः

- १ हे वसो इन्द्र ते राधांसि धनानि उतयः रक्षणानि कदाचन कदापि अस्मान् मा दभन् हिंसन्तु । हे मानुष मनुष्यहित नः अस्मभ्यं चर्षाणिभ्यः जनेभ्यः आ(=च) वमूनि धनानि उपामिमीहि देहि ।
- १-२ 'अथैतदनुप्रवदति ० प्रवदति' इदं प्रथमखण्डे उक्तमेव ।
- २ 'वैश्वकर्मणे' इत्यस्य केनान्वयः । 'सूक्ते' इत्याध्याहृतस्य विशेष्यस्य इदं विशेषणं स्यात् । किंतु 'देवानां नु वयं जाना' 'नासदामीत्' इति च द्वे ऋचां न विश्वकर्मपरे ।
- २ ३ 'देवानां नु वयं जाना न प्रवोचाम विपन्यथा । उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे' (ऋ० सं० १०।७२।१) । 'नासदामीत्' (ऋ० सं० १०।१२९।१) इति । जाना=जन्मानि । अस्मिन् सूक्ते देवानां जन्म वर्णयते । असतः सदजायत इत्याप उच्यते । 'असतः सदजायत' इत्येतद्वजायत्वा अस्मिन् सूक्ते आत्मपरोऽर्थो नास्ति । अस्मिन् अःशब्दे आत्मा कीदृशः तस्मात् सर्वाणि भूतानि च कथं जायन्ते इत्येतत् निरूप्यते ।
- ४ सारिष्टम् । छान्दोग्ये (२।२० २) महानारायणार्णये च (१२ । ३) 'सार्ष्टिना' इति विद्यते । 'रिषि हिंसायाम्' (ध० ४।२१ ।) इत्यस्य क्तान्तं रूपं 'रिष्टम्' । न रिष्टम् अरिष्टम् । 'अरिष्टं' अत्र नामीभूतम् । अरिष्टम् = हिंसा-भावः = दुःखाभावः । ब्रह्म अरिष्टं दुःखरहितम् । ममानम् अरिष्टं यस्य सः सारिष्टः । तस्य भावः सारिष्टता । एवं 'सारिष्टतां' इति भाववाचकं रूपमवश्यम् । यथा सरूपतां सलोकताम् । उपनिषदि 'सार्ष्टिता' शब्दः 'सारिष्टता' इत्यस्य अपभ्रंशो भाति । समानं रूपं यस्य सः सरूपः । तस्य भावः सरूपता । समानः लोकः यस्य सः सलोकः । तस्य भावः सलोकता । ब्रह्मज्ञः ब्रह्म-वत् दुःखरहितो भवति । ब्रह्मणः रूपं ब्रह्मणः लोकं च आप्नोति ।
- ४-५ आत्मजिज्ञासा तं ब्रह्मज्ञं सारिष्टतां सरूपतां सलोकतां गमयति ।
- ५ महते भूताय । इदं महद्भूतं ब्रह्म एव ।
नमः पारस्कराय । अयमध्यायः पारस्करेण रचितः । तत्र च तेन यास्कानुकरणं कृतम् । तस्मात् यास्कायापि नमः । पारस्करः ऋचा-मध्यात्मार्यान् निरूपयति । तस्मात् सः यास्कात् पूज्यतरः ।
- ६ कठोपनिषदि (६।३५) 'तच्छुक्लं पुरुषमलिङ्गम्' इति । 'असीय' इति अशुद्धम् । 'सीय' इति शुद्धम् । असीय=स्यात् ।

समाप्त्यं टिप्पणी ।

पत्र पङ्क्तिः

अनुपलब्धसूक्तानि

| | |
|-------------|---|
| ६१४ । १०-११ | इन्द्रे कामा अयंसत० । |
| ६२७ । १० | अत्र वै सर्वा वसति देवता । |
| ६२७ । १२ | अवारिग्रहे च श्रेष्ठगामानि न्यायः । |
| ६२९ । ८-९ | अवारिग्रहे च प्रधानगामानि न्यायः । |
| ६३१ । १७-१९ | अणिमा महिमा कथिमा प्राप्तिः० । |
| ६३४ । १३ | कोष्ठचादरोर्नाद इन्द्रो० । |
| ६३९ । ७-८ | आत्मैवैषां ग्थो भवति० । |
| ६६० । ३ | ऋतुयाजेषु विनियोगः । |
| ६७३ । ९ | नाच्छन्दमि वागुच्चगति । |
| ६७३ । १०-११ | यदेभिर्गत्मानमच्छादयन्देवाः० । |
| ६७४ । १२-१३ | गायत्रीमेव त्रिपदां सर्वा० । |
| ६७५ । १ | शरो वेणुः शृङ्गं शल्यमिति ह विज्ञायते । |
| ६७५ । १९-२० | जलाल्यमानोऽसृजदिति च ब्राह्मणम् । |
| ६८२ । २ | शब्दब्रह्मणि निष्पातः परब्रह्मणि च्छन्ति । |
| ६८२ । ११ | अग्निर्वै देवानां मनःताः । |
| ६८४ । ८-९ | आश्विने विनियोगः । |
| ७१५ । ९ | प्रातरनुवाकाश्विनयोः शरयते । |
| ७१८ । १३-१४ | शश्वद्ध वा एष नोदिया० । |
| ७१९ । २-३ | यदस्य दिवि तृतीयं तदमावादित्य इति ब्राह्मणम् । |
| ७३३ । १०-११ | मामिधेर्नीप्वस्येऽन्नाद्यकामकर्मणि धाम्या । |
| ७३३ । १६ | अग्ने वाजस्य० (अत्र टिप्पणी द्रष्टव्या) |
| ७५० । १ | प्रागुदम्वा बर्हिश्छिनत्ति । |
| ७५० । ३ | प्राचीनं बर्हिः स्मृणति । |
| ७५० । २० | प्राञ्चमुद्धरन्ति । |
| ७५५ । ८ | नानशिको यजोऽस्ति । |
| ७६७ । १०-११ | किञ्चिदाज्यस्य । तुभ्यमिदम् । |
| ७६९ । २३ | आग्नेया वै प्रयाजा आग्नेया अनुयाजाः । |
| ७६९ । २३-२४ | छन्दांसि वै प्रयाजाश्छन्दांस्यनुमानाः । |
| ७७० । १ | ऋतवो वै प्रयाजाः पशवोऽनुयाजाः (अथवा ऋतवोऽनुयाजाः) पशवो वै प्रयाजाः पशवोऽनुयाजाः (२४) । |

पत्रं पङ्क्तिः

- ७७० । २-३ प्राणा वै प्रयाजाः प्राणा अनुयाजाः (२४) ।
- ७७० । ४-९ आत्मा वै प्रयाजा अत्मा वा अनुयाजा (२६) ।
- ७७३ । ९ आशिकमुत्तमायां चितौ ।
- ७७३ । ११ द्वादशाप्रीरप्येषु ।
- ७७३ । १३ आप्रीभिर्हृत्तं गृह्णाति ।
- ७७६ । १७ पुरुषानन्वरजन्मेति हि विज्ञायते ।
- ७८९ । १७ विकारपक्षेषु तदर्थान्यथात्पादानम् ।
- ८०३ । ४ मितामितौ यद्वृषां ।
- ८०३ । ९-१० वैदेहको नामातिः । स किल नदीरन्या निर्देहाह न ताम् ।
- ८०३ । १९ पाशा अस्यां व्यपाद्यन्त वसिष्ठस्य मुमुर्षतः ।
- ८०३ । १८ पूर्वमामीदुल्लसिग ।
- ८०८ । १९ नाश्रद्धधानाय हविर्जुषन्ति देवः ।
- ८०९ । १ अश्रद्धामनृते दध्याच्छूद्धां मृत्ये प्रजापतिः ।
- ८२१ । २४-२९ नान्ति पर्णशुषो वाताः० ।
- ८२२ । २०-२१ आर्द्यवे वायव्योपर्याने विनियोगः ।
- ८२४ । १०-११ निष्कैवल्ये विनियोगात् ।
- ८२६ । २९-२६ स किल पितरं प्रजापतिमिदुषा विव्यन्तमनुशोचन्नरुद्वरुद्रस्य रुद्रत्वम् ।
- ८३९ । १३-१४ विनियोगो महाव्रते । अदित्यं चतुरूपश्चतुस्तनग्रहः । तस्य तृतीयमनयर्त्ता गृह्यते ।
- ८४७ । १२ प्रातरनुवाकाश्चिनयोर्विनियोगः ।
- ८९० । ११-१२ अववृष्टहोमे प्रायश्चित्तम् ।
- ८९१ । १३-१४ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः । तयोपारंष्टादभिषेकस्य जुहुषात्
- ८९९ । २ यद्यन्त्री वैश्वकर्मणी विद्यात्तयैव गृह्णीयात् ।
- ८९८ । २१-२६ स यत्मायं जुहोति० ।
- ८९९ । ७-९ सर्वभूतानि विशेषान् सामान्यान्मानि जुहाव० ।
- ८६७ । १० वैश्वदेवे विनियोगः ।
- ८७३ । २१ दर्शपूर्णमासादिषु हविषामभिमर्शने विनियुज्यते ।
- ८८७ । ८ सोमो नृगमेव तद्देवानामन्नमिति ह विज्ञायते । (' एष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति' छा० उ० ९।१०।४) ।

पत्रं पङ्क्तिः

- ८९२ । २० आज्यहोमः ।
- ८९७ । १२-१३ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्चेत्येवमादयः सप्तसप्तका मरुद्गणाः
प्रासिद्धा अग्निपुराणे ।
- ८९९ । १२ आग्निमारुते शम्यते ।
- ९०९ । १३ वैश्वदेवे शम्यते ।
- ९३३ । ४-६ पश्यां स्वांस्त पूर्वो यजांत ।
- ९३७ । १ आग्निमारुते विनियोगः ।
- ९४० । ७-८ तौ यौ प्रत्यक्षदैवतमश्विनाविमे एव ते द्यावापृथिव्यौ ।
- ९४८ । १७-१९ सविता सूर्या प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे प्रजापतये वेति च
ब्राह्मणम् ।
- ९५८ । ९ एष वै विश्वेषां देवानां चक्षुः ।
- ९५९ । १८-१९ पाँष्णे हविषि पञ्चमेऽहनि व्यूढे विनियोगः ।
- ९६२ । १२ निष्केवल्ये विनियोगः ।
- ९७० । ५ एकं पादं नोत्पिदांतं० ।
- ९७१ । १ वैश्वदेवे शस्त्रे विनियोगः ।
- ९७८ । १९-२० आथर्वणे आत्मस्तुतां विनियोगः ।
- ९८२ । १९ प्रउगे ग्रहे विनियोगः ।
- ९८६ । ४-६ अग्निः पशुगमीत्तमालभन्त तेनायजन्त ।
- ९८७ । १५-१६ सुगा वो देवाः० ।
- १००० । १५ अँकारमृते न ह्यर्चयन्ति ।
- १००० । २५ अँकार एवेदं सर्वम् ।
- १०२२ । १-२ इदं तेऽन्याभिग्ममानं ।
- मुद्गणानन्तरमुत्पद्यमूलम् ।
- ७४३ । १३-१४ गौणमुख्ययोश्च मुख्ये संप्रत्ययः (पा० ८ । ३ । ८२
व्याकरणमहाभाष्ये ' गौणमुख्ययोर्मुख्ये संप्रतिपत्तिः ') ।
' गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्ये संप्रत्ययः ' (परि० शेषरः ३२) ।



शुद्धिपत्रकम् ।

विषयानुक्रमणी ।

| पत्रं | अर्थ | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|------|----------|------------------|----------------------|
| १ । | १ । | १७ | अध्व | आध्व |
| ३ । | २ । | १६ | अग्नि | आग्ना |
| ४ । | १ । | २८ | केषां चि | केषांचि |
| ४ । | २ । | १६ | अग्निर्माले | ' अग्निर्माले ' |
| ४ । | २ । | १७ | अग्निः पूर्वेषि० | ' अग्निः पूर्वेषि० ' |
| ४ । | २ । | २१ | अभि० योषा | ' अभि० योषा ' |
| ४ । | २ । | २४ | समुद्रादूर्मिः | ' समुद्रादूर्मिः ' |
| ४ । | २ । | २८ | इन्द्रं मित्रं० | ' इन्द्रं मित्रं० ' |
| ५ । | १ । | ८ | प्र० वेदसम् | ' प्र० वेदसम् ' |
| ५ । | १ । | १० | दृशाणां | दृशानां |
| ५ । | १ । | १० | मन्त्रानां | मन्त्राणां |
| ५ । | १ । | १७ | वैश्व० मतौ | ' वैश्व० मतौ ' |
| ५ । | १ । | २१ | प्र नू महित्वं० | ' प्र नू महित्वं० ' |
| ५ । | २ । | २४ | कृष्णं नियानम् | ' कृष्णं नियानम् ' |
| ६ । | २ । | १८ | यो | ' यो |
| ७ । | १ । | ४ | द्राञ्च्यः | ' द्राञ्च्यः |
| ८ । | २ । | ८ | ध्वरे | ध्वरे ' |
| ९ । | १ । | ५ | पात्वन्वि | पात्वन्ति |
| १० । | १ । | ७ | पृतनाज्य | पृतनाज्य— |
| १० । | १ । | १४ | ष्ठा | ष्ठा ' |
| १० । | १ । | २८ | मुपह्वये | मुप ह्वये |
| १० । | १ । | २४ | आसस्त्रा | असस्त्रा |
| ११ । | २ । | ८ | ७४३ | ८४३ |
| १२ । | २ । | २१ | एष | एषु |
| १३ । | १ । | १८ | अत्रा | अत्रा— |
| १३ । | १ । | २५ | वाद् | पाद् |

शुद्धिपत्रकम् ।

| पत्रं | अर्थ | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|------|----------|--------------|-----------|
| १३ । | १ । | २९ | प्रवो | प्र वो |
| १३ । | २ । | १६ | त्स्वमा | त्स्वस्मा |
| १५ । | १ । | १४ | उपह्वये | उप ह्वये |
| १५ । | १ । | २२ | पथ्ना | पथ्या |
| १५ । | १ । | २५ | अनस | अनसः |
| १५ । | २ । | ३ | द्युस्थान | द्युस्थान |
| १५ । | २ । | ९ | | ... ” |
| १५ । | २ । | १० | कर्मणोः | कर्मणोः |
| १५ । | २ । | २१ | प्रातर्यु | प्रातर्य |
| १६ । | १ । | १५ | विश्वारू | विश्वा रू |
| १६ । | २ । | २७ | परिवाच | परि वाच |
| १६ । | २ । | २८ | उतनो | उत नो |



| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|----------------|
| ६११ | < | भवन्ति | भवन्ति । |
| " | ३० | °यंसतेति | ठ. ड. °यंसतेति |
| " | ३१ | व्यानि । स्तो | व्यानि ; मा |
| " | " | °व्यानि~ स्तो | °व्यानि~ मा |
| ६१२ | २३ | रेणो | रेणो° |
| " | " |) |) |
| " | २७ | श्चेष्टे, | श्चेष्टे. |
| ६१३ | २९ | रेणो° | रेणोः |
| ६१४ | ३२ | क्रियते. | क्रियते). |
| ६१५ | २१ | चिद् | चिद् |
| " | २६ | ह | हे |
| " | २७ | च | च. |
| ६१६ | ५ | कीळं | ‘ कीळं |
| " | २७ | नास्ति | नास्ति. |
| " | ३० |) |) |
| ६१७ | " | २ | ११ |
| " | " | ३ | १२ |
| " | " | ४ | १३ |
| ६१९ | २७ | त्सू°, | त्सू°; |
| ६२० | ६ | च | च |
| " | " | नापि° | नापि° |
| " | ७ | आसीत् | आसीत् |
| " | १० | ह्येते° | ह्येते° |
| " | १७ | दिति° | दिति° |
| " | २० | आसीत् | आसीत् |
| " | " | गूहळ | गूहळ |
| " | २७ | ३ | ४ |
| " | २८ | ४ | ५ |
| " | " | ५ | ६ |
| " | २९ | ६ | ७ |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|-------------------------------------|
| " | " | ७ | < |
| " | ३० | < | ९ |
| " | ३१ | ९ | १० |
| ६२१ | २६ | त्वा°; म | त्वा° म. |
| ६२३ | २३ | त्वैबं | त्वैघं |
| " | २६ | देवता | ' देवता |
| " | २७ | याश्चं | °याश्चं |
| " | " | मृसंज | संमृज |
| ६२४ | " | मर्दीव्यः | °र्मा दीव्यः |
| ६२६ | १९ | ऐन्द्रं | ऐन्द्रैः |
| " | २६ | कल्पेषु | °कल्पेषु |
| ६२७ | १० | °ताः ' अ० | °ताः ' (का० सं० १० । १) । ' अ० |
| ६३१ | १९ | २९ | १९ |
| ६३३ | ४ | हि । ' स | हि ' स |
| " | २९ | प्रकृ°; °त्यु | प्रकृ°; च. °त्यु |
| ६३४ | २७ | आत्मनः | आत्मनः. |
| ६३९ | ९ | रथादिस° | रथादि स° |
| " | १२ | रथादिसा° | रथादि मा° |
| " | २९ | प्र°, ठ. | प्र°; ठ. |
| " | " | आदिता | आदितो |
| ६३७ | २३ | निःश्रेणी | निःश्रेणी°. |
| " | २४ | ठ ड | ठ. ड. |
| " | २९ | सेन | सेन° |
| ६३८ | २६ | बृह | बृह° |
| " | २७ | स्थानं तिस्र | स्थानंस्तिस्त्र |
| ६४० | २९ | न स° | न स°. |
| ६४१ | < | पायि | पायि- |
| " | १३ | गुणयोगे | गुणयोगे |
| ६४३ | २८ | भेदेद् | भेदे द् |
| ६४४ | ३ | तत्रत | तत्रैत |

| अं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-----|----------|-------------------|---------------------|
| ६४४ | २३ | नाभेदा | न भेदा |
| ६४५ | २४ | सहे | सहेति |
| ॥ | ३० | कारवत्त्वं | कारवत्त्व° |
| ६४६ | २९ | धावनत्वं | °धावनत्वं |
| ६४७ | १८ | नत्वान् । | नत्वात् |
| ॥ | २४ | संशय. | संशयः. |
| ॥ | २६ | नास्ति. | नास्ति; |
| ६४८ | ३१ | (शेन) | (शेन). |
| ६५१ | ७ | कमदने | कमदन |
| ६५३ | ॥ | मिति ^३ | मिति ^३ |
| ॥ | २१ | रैथा | रैथा |
| ॥ | २९ | ड. भूता | ड. °भूता |
| ॥ | ॥ | च. भूता | च. °भूता |
| ६५४ | २० | वा पुरुष | वापुरुष |
| ६५५ | १ | मेतेना | मेतेना |
| ॥ | ॥ | धीयैत | धीयत |
| ॥ | २ | अथवा देवताः | देवताः |
| ६५७ | ९ | तैत्समा | तत्समा ^३ |
| ॥ | २६ | इडा | इत्था |
| ६५९ | २० | वरुणे° | वरुणे°. |
| ३६० | २२ | दशतय्यः | दशतय्यः । |
| ६६१ | २५ | दधाते° | °दधाते° |
| ॥ | २७ | स्कर्णे; | स्कर्णे°; |
| ६६४ | २२ | यायेषु | यागेषु |
| ६६५ | ३ | बृहस्पतिना | ब्रह्मणस्पतिना |
| ॥ | २४ | किंच; ७ च. | किंच; च. |
| ॥ | २६ | मदत्ता | मदन्ता |
| ६६६ | २ | निः पी | निः पी ^२ |
| ॥ | २७ | रान | रान |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|----------------|-----------------|
| ६६७ | २६ | ख्यास्तु | ख्या स्तु |
| ६६८ | २७ | सोमः | सोमः. |
| ६७१ | २४ | परतौ, | परतौ. |
| ६७३ | २७ | भतीति | भतीति. |
| ६८८ | २८ | रणत्वस्या | रणत्वस्य |
| " | " | रणस्या | रणस्य |
| ६८९ | ६ | प्रपीन | प्रपीने |
| " | ७ | १६ | १७ |
| " | २९ | अङ्का | अङ्को |
| ६९० | ९ | तद्वान् | तद्वान् । |
| ६९१ | २७ | (तथैव) | (तथैव). |
| ६९३ | ६ | १७) | १७) । |
| " | २७ | पादः | पादः. |
| ६९४ | २ | निर्धारणे | निर्धारणे |
| ६९६ | १३ | वितं कुत्स | वितं । कुत्स |
| ६९८ | ८ | श्चिकीर्षितस्त | श्चिकीर्षितस्ता |
| ६९९ | २२ | ड नात्मा | ड. °नात्मा |
| ७०२ | २९ | प्रविभा° । | प्रविभा°. |
| ७०४ | २८ | । एवा | । ~ एवा |
| ७०७ | ८ | छ° | छा° |
| ७०९ | " | षड्भि | षड्भि |
| " | १२ | तदा वृत्ति | तदावृत्ति |
| " | १८ | इरयति | ईरयति । |
| " | २९ | भिमंपाति | भिमंप्रति |
| ७११ | " | अन्तं | अन्त |
| ७१३ | ११ | हविः | । हविः |
| ७१४ | " | भावयि | भावयि |
| ७१९ | २६ | ८ | ७ |
| ७१६ | २७ | ६ म | ६ ग |
| ७१९ | २६ | ३ ठ. | ९. ठ. |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|---------------|
| ७२० | २४ | न्मिनैथु | °त्वान्मिनैथु |
| ७२१ | १६ | संहर्ष | संहर्ष |
| " | " | नयाः | नयोः |
| " | ३२ | ड त्युक्त | ड. °त्युक्त |
| ७२३ | २७ | °ध्यम वो | °ध्यमं वो |
| " | " | मो < | मो. < |
| " | " | १० ग. | १० क. स्व. |
| ७२४ | ११ | कृतौ | कृतौ |
| ७२५ | < | पद नि° | पदं नि° |
| " | २३ | मुतमन्य | मुत मन्य |
| " | ३० | छत. | छ. त. |
| ७२६ | ४ | मुतमन्य | मुत मन्य |
| " | ३१ | नि मो | निगमो |
| " | ३२ | इति मे | इति । मे |
| " | ३३ | हस्ताइ | हस्ता इ |
| ७२७ | १६ | क्रोष्टकिः | क्रोष्टुकिः |
| " | २४ | द्रविणो | द्राविणो |
| " | २७ | तर्हि | तर्हि । |
| ७२८ | २ | किं | । किं |
| " | २१ | °द्याः यश्च । | °द्याः । यश्च |
| " | २७ | मारि इ | मारि° इ |
| " | " | त्वाहि तृ | त्वाहि° तृ |
| ७३० | १४ | संस्क्रियते | संस्क्रियते |
| " | २१ | च पाटो | च. पाटो |
| " | " | ते । ; | ते ; |
| " | २२ | मृज्यते | मृज्यते). |
| " | २६ | स्मिन्प्रैषे | °स्मिन्प्रैषे |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|----------------------------|---------------|
| " | २७ | च; हो° | च. हो° |
| " | २८ | वतु ऋ. | वतु ऋ; |
| " | " | ट | ट. |
| " | २९ | ठ. | ठ. |
| ७३२ | २१ | मुत जातम् उत मन्ये मन्य | मुत मन्य |
| ७३३ | १९ | रिति | रिति° |
| " | " | रिति° | रिति |
| ७३४ | २७ | देवस्थ | देवस्य |
| " | २८ | स्तस्य. | स्तस्यै° |
| " | " | देनस्य | देवस्य |
| ७३६ | २० | इत्यत्र | इत्यत्र |
| ७३८ | २८ | रार्थोय° | रार्थो य° |
| " | ३० | दशा | दशा- |
| ७४१ | २७ | वाहाग्रयं | वाहाग्रयं |
| ७४२ | ३ | यत्तत्त्व | यत् तत् त्व |
| " | ५ | पेक्षमाण उप | पेक्षमाणोप |
| ७४४ | १७ | दन्या | दन्या |
| " | २३ | एर्ष | एर्ष |
| " | २६ | वा ३ | वा. ३ |
| ७४५ | १४ | वयं | वयं |
| " | २१ | यानि° | याति |
| " | " | यानि° | यानि |
| " | २४ | वं तदे | वं० तदे |
| ७४६ | २५ | वेल इ° | वेल ई° |
| ७४७ | १२ | सामं | सोमं |
| ७४८ | २९ | द. | द. ५. |
| ७५० | १२ | ति तन्मुखम् । | ति । तत्सुखम् |
| " | " | पृथिव्यै | पृथिव्यै । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|--------------|---------------|
| ७९० | १९ | ख्य ज्यो° | ख्यं ज्यो° |
| ७९१ | १२ |) |) ॥ |
| " | २९ | वा दे°. | वा दे;° |
| ७९२ | २ | ब्रवीमि | ब्रवीमि । |
| ७९५ | २६ | धादृद्धात् | धानाद्धात् |
| " | १) | दानात् | दादृत् |
| ७९७ | ९ | इनोते | दमश्नोते |
| " | २३ | मध्यस्था° | मध्यस्था°. |
| ७९८ | १६ |) |) । |
| ७६० | २ | माश्रित्य | मनाश्रित्य |
| ७६१ | ४ | मृतौ | वृत्तौ |
| " | २३ | मन्या | त्मन्या |
| ७६२ | २४ | ३ | .३ |
| ७६३ | ८ | शब्दना | शब्देना |
| " | २९ | ड. | ड. |
| ७६४ | ८ | -९२- | । ९२ । |
| ७६५ | २९ | ड. | ड. |
| ७६६ | २८ | प्रज्ञानानि. | प्रज्ञानानि; |
| " | २९ | निर्वक्त°. | निर्वक्त°; |
| ७६७ | २७ | ३ | .३ |
| ७६८ | २४ | तस्यौ | °तस्यौ |
| " | २५ | एकादश° | एकादश°; |
| " | २६ | ता° इ. | ता°. |
| " | २८ | क्रान्ताः | °क्रान्ताः |
| " | १) | क्रान्तास्ता | क्रान्तास्ता |
| ७६९ | २९ | ठ. २ | ठ. यज्ञो २ य° |
| ७७० | २७ | तत्र | तत्र° |
| ७७१ | १३ | मेवे | मेवे |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|------------|------------|
| ७७१ | २६ | भव | भव. |
| ७७२ | २४ | प्राप्त° | प्राप्त°; |
| ७७३ | १७ | धाम | धाम' |
| " | २५ | तय्यादा | तय्यादा° |
| " | २९ | ज. °सौर्या | ज. सौर्या |
| " | " | च. सौर्या | च. °सौर्या |
| ७७४ | २८ | निरु° | निरु°; |
| ७७६ | १० | सत्त्वा | सत्त्वा |
| " | १६ | भवति | भवति' |
| ७७७ | २७ | बोल्हा | बोल्हा |
| ७७८ | २८ | हुरु.° | हुरु.° |
| " | " | हुरु° | हुरु° |
| " | ३१ | ठ | ठ. |
| ७७९ | २६ | इति | इति । |
| ७८१ | २० | उप गम्य | उपगम्य |
| " | ३० | ण्डूकि० | ण्डूकि० |
| " | ३२ | ड | ड. |
| " | " | ३० | ३२ |
| ७८२ | ४ | वा । | वा ' । |
| " | २४ | वाँ | वाँ |
| ७८४ | २५ | घ. | घ. |
| " | २७ | ङ | ङ. |
| " | २८ | ७ | .७ |
| ७८५ | १५ | धिक्षि | धि क्षि |
| " | २२ | राजातूर्ण | राजा तूर्ण |
| " | २६ | ति | ति° |
| " | २७ | १० | . १० |
| ७८६ | २५ | ॥ इति | इति |
| " | २९ | त्मेवा | मेवा |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|------------|
| ७८६ | २९ | त्मे° | त्मे° |
| " | " | ई | . ई |
| ७८७ | २३ | पात्तिः | पात्ति.. |
| ७८८ | १९ | जाषेणः | जाषेणः |
| " | २५ | ड | ड. |
| " | २६ | ड | ड. |
| ७९० | २१ | अभीषवो | अभीशवो |
| ७९१ | २५ | शिक्षितो° | शिक्षितो.° |
| ७९२ | १८ | द्वितीयम् । ६ | द्वितीयं ६ |
| ७९३ | ५ | रिपते | रिपते |
| " | ११ | प्रत्या | प्रति आ |
| " | २५ | छ. त. द. | छ. द. |
| ७९४ | " | द | द. |
| ७९६ | १२ | तेऽप | ते प |
| " | २५ | ऊः | ऊ°; |
| " | " | ऊ. | ऊ°. |
| ७९७ | " | शस्यपादः | शस्य पादः |
| ७९८ | १२ | ति । म | ति म |
| " | २४ | यदध्वे | यदध्वे— |
| " | २५ | बूध्वे के | बूध्वेके |
| " | " | द्वध्वे के | द्वध्वेके |
| ७९९ | २२ | भार्ग्यश्च | भार्ग्यश्च |
| " | " | म्यश्च. | म्यश्च; |
| " | २६ | द | द. |
| " | २९ | माज्यन्त | माज्यन्त |
| ८०० | २२ | (२४) | २४ |
| ८०१ | ८ | पितुम् | पितुः |
| " | २५ | (२५) | (२५); |
| ८०२ | २ | वितस्ता वि | वितस्तावि |
| " | ५ | स्य । मु | स्य मु |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------------------|---------------------------|
| ८०२ | ६ | दापआ | दाप आ |
| " | २० | १-९६०॥३-१७ | १।९६०॥३।१७ |
| ८०४ | १८ | कर्मणि | कर्मणि ^{१३} |
| " | २६ | हीध्वम् | हीध्वम्. |
| " | " | धयन्ति | धयन्ति. |
| " | २७ | आत्ताः | आत्ताः. |
| ८०५ | १ | बभ्र | बभ्रू |
| ८०७ | ४ | १-९६१॥३-१६ | १।९६१॥३।१६ |
| " | १५ | बहु वच | बहुवच |
| " | १९ | । असौ | असौ |
| " | २२ | खण्डः, | खण्डः; |
| ८०९ | १४ | पुरोऽनु | पुरोनु |
| ८१० | १३ | यन्ती ^१ | यन्ती |
| " | १४ | यन्ती | यन्ती ^१ |
| ८११ | २४ | इति ^० : | इह; |
| ८१२ | २७ | वचने | ^० वचने |
| ८१३ | ९ | हरी- | हरी |
| " | २६ | १२ क. | १३ क. |
| ८१४ | ८ | तयोरेषो | तयोरेषा |
| " | १८ | नियच्छातां | नियच्छ्रतां |
| ८१५ | २५ | उशत्यौ | उशंत्यौ |
| " | २६ | सादि ^१ भ्यौ | सादिभ्यौ |
| " | " | हि न्यौ | हिन्यौ |
| " | २७ | वाचरण्यौ | वा चरण्यौ |
| ८१७ | २५ | काथक्यः | कांथक्यः |
| " | २८ | जोष्टी | जोष्टी |
| ८१८ | २६ | थिऽथ्यौ ^१ वस्य | थिऽथ्यौ ^१ वस्य |
| ८१९ | १९ | अधीतां | अधातां |
| " | २२ | हुतीति | हुतीति |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|------------|------------|
| ८१९ | २६ | तीति) | तीति) |
| " | २९ | नः | नाः |
| ८२० | ५ | सुपर्ण | सुपर्ण |
| " | ६ | पितुन्वि | पितुंन्वि |
| " | " | म आ | मआ |
| " | " | धारा | धरिा |
| ८२१ | २० | वाय्वा | वाय्वा |
| " | २५ | ॥ इति | इति |
| ८२२ | २७ | वरुद° | व रुद° |
| " | " | वरुद्रः | व रुद्रः |
| ८२५ | १८ | उन्तरस्यां | उत्तरस्यां |
| ८२८ | ६ | त तव | ते तव |
| ८३१ | २४ | दह. | दहं |
| " | २५ | ड | ड . |
| ८३३ | १ | ॥) |) ॥ |
| " | १० |) |) । |
| ८३५ | २९ | °शनिमु° | °शनि मु° |
| " | " | °शनेमु° | °शने मु° |
| ८३९ | १५ | दम्, उ | दम् उ |
| " | २१ | मतः परं | मतःपरं |
| ८४१ | ४ | यथां | यथा । |
| " | २४ | त्रभवति | त्र भवति |
| ८४२ | २५ | द्यते | द्यते, |
| ८४३ | १ | अर्मावा | अर्मावा |
| ८४७ | २८ | आं- | आ- |
| ८४९ | १५ | दाद्ददाति | दात् ददाति |
| ८५३ | २ | सतत्त्वं | सतत्त्वं |
| ८५४ | १८ | बद्ध | बद्धं |
| ८५६ | १५ | मादन्ते | मोदन्ते |
| " | २४ | मात्रं स | मात्रं सं. |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------------|---------------------|
| ८९७ | ८ | वतमान | वर्तमान |
| " | २० | पीन् ^० य | पीन् य ^० |
| " | २२ | मस्ति | मस्ति ^० |
| ८९८ | ३ | तत्परं | तत् परं |
| " | ८ | मान । एष | मान एष |
| ८९४ | ७ | भिन्द | भिन्द |
| ८९२ | १४ | वा त्वर | वात्वर |
| ८९६ | ११ | अत्र | अत्र |
| " | २४ | हे वाजे | हे वाजे |
| ८९७ | ९ | मिअन | मि अन |
| " | १९ | रत्वमेकं | रत्वमेकं |
| " | १६ | यनर्था | त्यनर्था |
| " | २३ | मे कत्वं | मेकं त्वं |
| ८९८ | २१ | ३४ | ॥ ३४ |
| ८७१ | १८ | आष्टः आसः | आष्टः आसः |
| " | २७ | आसः | प्रासः |
| ८७२ | २९ | प्राणान् नने | प्राणान् नने |
| ८७३ | ९ | प्रतिरा | प्र तिरा |
| ८७४ | २५ | त्यृचं | त्यृचं. |
| ८७६ | १४ | स्मद् अघ | स्मद्घ |
| " | १७ | स्तुतः । अ | स्तुतः अ |
| " | २६ | ७ ग. | ७ क. ख. स्तुतः; ग. |
| ८७७ | २ | तत् | तत् |
| " | ३० | पेक्ष्य | पेक्ष्य |
| ८८० | १३ | नन्य | नमन्य |
| " | २० | मिका वाक् | मिका वाक् |
| ८८२ | ३ | समाप्तम् | समाप्तम् |
| " | २९ | नास्ति | नास्ति. |
| ८८३ | २६ | नास्ति | (८८४ । २) नास्ति |
| ८८४ | २९ | क्रीतः; इति | क्रीतः इति; |

| अं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-----|----------|-----------------|-------------------|
| ८८५ | २५ | २० | २५ |
| " | २८ | स्वात | स्वा त |
| " | ३२ | २७ | ३२ |
| " | २९ | सोमैमेऽथ° | सोमैमे° य |
| ८८६ | ५ | ११ । २ | ८८५ । ८ |
| " | १७ | नितिं | नितिं । |
| ८८७ | २४ | भक्ष्यत्ये | भक्ष्यत्वे |
| ८८८ | २८ | तेन | तेन० |
| " | ३० | च. सौपल | च. सौपल |
| ८८९ | ३१ | तरे | तरे— |
| ८९० | २५ | विभा० | विभा° |
| " | ३० | च. °धात्यै | च. °धात्यै |
| " | " | त्ये; | त्ये; |
| " | ३२ | म्युप | °म्युप |
| ८९१ | १५ | इहँ तु | इह तुँ |
| " | २६ | पठचने | पठचते. |
| ८९२ | २४ | स्तव पि° | स्तव । पि° |
| " | ३१ | गवर्ज | ग, वर्ज |
| ८९४ | १५ | मुप. | मुप— |
| " | २५ | रिति व° | रिति । व° |
| ८९५ | २१ | धा | धाघ्रा |
| ८९६ | २६ | वृत्तु | वृत्तु |
| ८९८ | १७ | वतो | वन्तो |
| ८९९ | २९ | र्मणि, (स्मै) | र्मणि; |
| " | " | स्मिन्न्; | स्मिन्न् (स्मै) |
| " | " | (णे) | (णे). |
| " | ३० | णे. ७ | ७ |
| ९०२ | २४ | निगू ५ | निगू. ५ |
| ९०३ | ११ | तिं ॥ १७ | तिं' ॥ १७ |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|--------------|--|
| ९०४ | २८ | णाः पिं यां, | णाः पिं यां; |
| ९०६ | २३ | गम्भीरा वि | गम्भीरावि |
| ९०८ | ॥ | न वान् | नवान् |
| ९०९ | २८ | ड. | ड. |
| ९१० | १३ | पावकमृ | पावक मृ |
| ॥ | ३० | ई ज | ई ज. |
| ९११ | २८ | दाश्यना° | °दाश्यना° |
| ९१३ | ११ | अचिता° | अचितो गतो |
| ॥ | १४ | परितकम् | परितकनम् |
| ॥ | २७ | सम् | सम्° |
| ९१४ | २ | स्यात्सा | स्यात्स |
| ॥ | ३ | पतनुयात्सं | संतनुयात्प |
| ॥ | ३० | इति ७ | इति. ७ |
| ॥ | ॥ | हविषि च. | हविषि; च. |
| ९१५ | २५ | पया- | पयां- |
| ९१६ | १३ | हरन्तीति | हरन्तीति । |
| ॥ | २४ | यित् | °यित् |
| ॥ | ॥ | यित्° | यित्° |
| ॥ | २५ | कैत नि | कैतानि |
| ॥ | २७ | जानाति. जगाम | जानाति जगाम. |
| ९१७ | ॥ | वृत्तेः. | वृत्तेः व्य°; च. °न्ति ५ व्य° तत्पूर्वकत्वाद् वाक्प्रवृत्तेः. |
| ९१८ | १ | श्चातु | श्चतु |
| ॥ | २७ | भाष्ये | भाष्ये° पञ्चमाध्याये ३० खण्डः । ग. च. वर्जमितरे- ध्वङ्को नाम्नि. |
| ९२० | २३ | तेनि बोध्ये | तेति° बोध्ये |
| ॥ | २८ | दिदिद्धदिनः | दिदिद्धदि नः |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|---------------|
| ९२१ | २७ | वा ११ | वा. ११ |
| " | २८ | °द्वेष्येत्य° | °द्वेष्य° |
| ९२२ | १० | एर्का | एर्कां |
| " | १२ | इति | इति |
| " | १४ | यमि | यमि |
| " | २६ | छ | छ. |
| " | ३१ | मुपवि | नुपवि |
| ९२३ | २९ | छ | छ. |
| ९२४ | ३० | द. न. | द. |
| ९२८ | २४ | (ट | (ट. |
| ९२९ | १३ | यमिवा | गुमिवा |
| " | १८ | महद्भिः । | महद्भिः |
| " | २८ | रश्मीन् | रश्मीन् . |
| ९३० | २ | मपि च | मपि |
| " | १७ | प्रब्रवीमि | मु प्रब्रवीमि |
| " | २७ | च | च. |
| " | २८ | हर | हर° |
| ९३१ | ४ | दोग्ध्वेनाम् | दोग्ध्वेनाम् |
| " | ६ | । स्तम | । तम |
| ९३२ | २७ | दार्ष । | दार्ष । |
| ९३३ | २९ | दात् | दात्° |
| ९३४ | १८ | संपि प्य | संपिप्य |
| ९३६ | २३ | यन्ती ७ | यन्ती. ७ |
| ९३७ | १६ | यद्वा | यद्वा |
| ९३८ | २ | पोषा ए | पोषाए |
| " | " | अमि | अभि |
| ९३९ | २६ | । व्या° | । व्या°. |
| " | २७ | तेषोर | तेषोर |
| | १ | | |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|----------------|--|
| ९४० | २ | दकेन सर्व | दकेन |
| " | ३ | प्रोति । | प्रोति सर्वम् । |
| " | ३० | °स्तयोः° | °स्तयोः° इ क. ख. घ. ट. ठ. ड. 'सर्वम्' नास्ति; च. सर्वम्. |
| ९४१ | १३ | समाने | समाने । |
| " | १५ | रूपाणि | रूपाणि । |
| " | २६ | ट | ट. |
| ९४४ | २९ | तौ श्चिना | तौऽश्चिना |
| ९४६ | २७ | ली. | ली. |
| " | २८ | ण्येभि | ण्येभिः |
| ९४७ | २७ | ग. ज. | ग. ज. ठ. ड. |
| " | २७-२८ | ; ठ ड. ण्येभि° | . |
| " | २९ | ४ | .४ |
| ९४८ | ६ | कुरुप्वेति | कुरुप्वति |
| " | १६ | वा' | वा' |
| " | २८ | हिंसायां | हिंसायां |
| ९४९ | १८ | धनवति | धनवति |
| " | २७ | भूति. | भूतिः. |
| ९५० | ५ | मु | सु |
| " | १७ | यर्मा | यर्मा |
| ९५१ | ४ | त्तस्म | सत्स |
| " | २३ | ननाश । | ननाश |
| " | २७ | (तद्) | (तद्); |
| " | २८ | भाविष्य | भाविष्य |
| ९५४ | १६ | अनुप्रया | अनु प्रया |
| ९५६ | ५ | नां । स्पृह | नां स्पृह |
| " | ६ | हअन्य | अहन्य |
| " | " | पूजन् | पूजयन् |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-------------------|--------------------------|
| ९५७ | ३ | सूर्यमिति | सूर्यमिति |
| " | १३ | पग | पगं |
| ९५८ | ९ | हि । | हि |
| " | २३ | रूपम् | रूपम् । |
| ९५९ | ८ | इयं वै पृषा | ' इयं वै पृषा ' |
| ९६० | २८ | ड | ड. |
| ९६१ | ३ | °ध्यन्दि | °ध्यंदि |
| " | ५ | °ध्यन्दि | °ध्यंदि |
| " | ६ | स्वप्ने | स्वप्ने |
| " | २६ | पि | पि |
| ९६२ | ६ | रयनरव | रयनैरव |
| " | २५ | ३ ङ. थ. ध. छ. २१. | क. म. २ (२१); त. द. २. |
| ९६७ | २७ | वपति° द. | वपति द° |
| ९६९ | १५ | प्रस्यं सुग्वनि | प्रस्यं सुग्वनि |
| ९७० | ७ | | |
| ९७१ | २६ | याँ. वाँ | याँ वाँ |
| " | २८ | सर्वे; च. देवाशू | सर्वे च देवाः शू |
| ९७२ | १ | पृथिव्या | पृथिव्याः |
| " | २१ | भते माध्य | सने माध्य |
| " | २५ | °ग्नीवृष | °ग्नी वृष |
| " | २८ | निरुक्ताप्ये | निरुक्ताप्ये |
| ९७३ | ५ | प्रवभ्येवि | प्रवभ्ये वि |
| " | २८ | वृ० | वृ० |
| ९७४ | ६ | दध्यङ् प्र | दध्यङ् प्र |
| " | २८ | वाहु | वा हु |
| " | " | कवि | कवि— |
| " | २९ | एक° | ए क° |
| " | " | स्तुताः | स्तुताः° |
| ९७५ | २ | मुञ्चति | मुञ्चति । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-------------------------------|--|
| ९७१ | १९ | गच्छन्ति | गच्छन्ति' |
| " | २६ | छ | छ. |
| " | २८ | १२ | ११ |
| " | २९ | अभि ^० न्द्रं | अभि ^० न्द्रं |
| ९७६ | १ | ७६ | ९७६ |
| " | २० | —इत्यत्र | इत्यत्र |
| " | ३२ | प्वको | प्वक्को |
| ९७७ | २६ | गिर इति कू | गिर इति । कू |
| ९७८ | ३ | ऋषिद् | ऋषिर्द् |
| " | ४३ | विद्यासप्त | विद्या सप्त |
| ९८३ | १ | ०न्तः । म | ०न्तः म |
| " | १२ | यत् | यत |
| " | २६ | मन्तीति | सन्तीति । |
| " | ३० | छन्दस्ये | छन्दस्ये |
| " | " | तच्छन्दस्ममयेष्व ^० | तच्छन्दस्माभ्येष्वलम् |
| ९८४ | १ | ०दलं कर्म | ०दलं कर्म |
| " | २३ | ग. ०यामेति | ग. ०यामेति ३८ |
| " | २४ | सर्वस्थम ^० | सर्वस्य म ^० |
| " | " | रणस्थाने | रणस्य स्थाने |
| " | २२ | मेव; | मेव । |
| " | " | लिखते. वयं | लिख्यते । वयं |
| " | ३३ | मध्यमः । | मध्यमः ' । इदं सर्वं सायण- भाष्यम्. |
| " | ६ | सूक्तं | सूक्तं ' |
| " | ८ | मंजितं | मंजितं |
| " | २० | कर्माणि उ | कर्माणि० उ |
| " | " |] किञ्च |] ०किञ्च |
| " | २६ | ठ ड | ठ. ड. |
| " | " |] |]. |
| ९८६ | " | नेतित्यत्र । | नेनि त्यत्र |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|--------------------|---|
| ९८६ | २६ | श्चरवाँ | |
| ,, | २७ | द्दर्शन | द्दर्शनं |
| ९८७ | ३० | यूयं; च, यूयं | यूयं; च, यूयं |
| ९८८ | २४ | ड, वति | ड, °वति |
| ,, | २९ | °यन्त | °गमयन्त |
| ९९२ | १ | दाज्यज्यम् । | दाज्यम् । |
| ,, | ८ | साति+षु | सातिषु + |
| ,, | ,, | मुषस्त | मुषस्त |
| ,, | १८ | + °ति | + ड. °ति |
| ९९३ | १४ | तदथ | तदर्थ |
| ,, | २८ | नियत्ताः | नियताः |
| ९९४ | ९ | इति । (ऋ० | (ऋ० |
| ,, | ६ |) । |) इति । |
| ,, | ८ | श्च नेश | श्चनेश |
| ,, | १० | हो । नहि | हो नहि |
| ९९६ | ९ | ममद्वृसत | ममंसत |
| ,, | २८ | रश्मिः° | रश्मि° |
| ९९७ | १८ | आविवेश | आ विवेश |
| ,, | २८ | निरे ॥ | निरे (य० वा० सं० १७ । ६६) |
| ९९८ | ९ | कप्तमानि | कतमानि |
| ९९९ | १८ | प्रवदन्त्याचा | प्रवदन्त्याचा |
| ,, | २९ | ॥ ९ ^३ ॥ | ॥ ९ ^४ ॥ |
| ,, | ३० | ३ | ३ ग. च. ज. घ. ट. ठ. ड. °दत्याचा° . ४ |
| १००० | १९ | अक्षरम् । ॐ | अक्षरम् ॐ |
| १००१ | २९ | इति । प्रान्ते | इति प्रान्ते |
| १००२ | २९ | २ ड. | २ क. ख. वाक्षयो; ड. |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---|---|
| १००२ | २५ | वाक्क्षरं भ | वाक्क्षरं भ |
| " | २६ | भ्यृहं | भ्यृहं. |
| १००३ | १७ | इति (| (|
| " | " |) । |) इति , |
| " | २३ | ज्ञानयोगे | ज्ञाननियोगे |
| " | २५ | स्तांति । | स्तांति । |
| १००४ | २२ | ते । दृश्यन्ते ते | ते दृश्यन्ते । ते |
| १००५ | २७ | श्रानदोदेशे | श्रानेदोदेश |
| " | " | तीत्याद्य | तीत्याद्य |
| " | २८ | च. | ; च |
| १००६ | ९ | ॥ १३ ॥ | ॥ १३ ॥ |
| " | ११ | वांसिनो | वांसिनो |
| " | १२ | वृत्ता | वृत्ता |
| " | १४ | निर्हेक्त | निर्हेक्त |
| " | १८ | ईति | ईति |
| " | २२ | २ ट. | २ क. ख. वर्जमितरेष्वङ्को नास्ति ३ ट. |
| " | २३ | ममाप्तः क. ख. वर्ज- मितरेष्वङ्को नास्ति. ४ | ममाप्तः. ५ |
| " | २४ | ५ | ६ |
| १००७ | १२ | इति म | इति । म |
| " | १३ | न्यस्या | न्यस्मा |
| " | २६ | अह° ७ | अह.° ७ |
| १००८ | २८ | न. न. | त. |
| १००९ | १६ | वपापला | वपा प |
| " | १८ | ह्यप्रकपा | ह्यष्ट कपा |
| " | " | द्वादशकपा | द्वादश कपा |
| १०१० | १ | स्मात्पान्म | स्मात्पान्म |
| " | २५ | १ क. ख. | १ क. ख. °स्मापानं महा°; |
| " | " | घ. त. द. | घ. द. |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|----------------|
| १०१० | २८ | तेन° | तेन पु° |
| १०१२ | २३ | २४ द. | २४; द. |
| " | २९ | २९ ब्रह्मा | २९ । ब्रह्मा |
| १०१३ | २९ | २७ द. | २७; द. |
| १०१५ | २३ | ३० द. | ३०; द. |
| " | " | (३१) | (३१); |
| " | २४ | ३१ द. | ३१; द. |
| १०१६ | २१ | ताः २ | ताः . २ |
| " | २३ | एतस्मिन्मिति. | एतस्मिन्मिति°. |
| १०१७ | ६ | प्राञ्चयति । | प्राञ्चयति |
| " | ७ | तो मर्त्य | तोऽमर्त्य |
| १०१८ | १७ | मंसन्ते | मंसते |
| " | २४ | चिरंजी° | चिरं जी° |
| १०१९ | १७ | न्तरिक्षा | न्तरिक्षा |
| " | २१ | < (| २८ (|
| " | २३ | मुपणा° | मुपर्णा |
| " | २४ | मुपर्ण° | मुपर्णाः |
| " | २७ | त. द. | त. द. |
| १०२१ | ९ | तेज. प्रभं | तेजःप्रभं |
| " | २५ | जातवेसे | जातवेदसे |
| " | " | सुन° | सुन° |
| " | २९ | ४६ द. | ४६; द. |
| १०२२ | १ | समन | समान |
| " | २ | इदं— | इदं |
| " | १३ | ञ्छत° | ञ्छत° |
| " | १६ | शतमेन | शतमेन |
| १०२३ | ६ | ब्रह्मशुक्ल | ब्रह्म शुक्ल |
| " | १० | द्रोणंभीकं | द्रोणंभीकं |
| " | १८ | शृङ्खला | शृङ्खला |
| " | " | शृङ्खला | शृङ्खला |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-----------|----------|--------------|--------------------|
| १०२३ | १९ | शङ्खलानास्ति | शृङ्खला नास्ति |
| ----- | | | |
| टिप्पणी । | | | |
| १ | ६ | शास्त्रेण | शास्त्रेण । |
| " | ९ | तानि | तानि । |
| २ | १४ | येन | 'येन' |
| " | " | सूर्य | 'सूर्य' |
| " | " | यजेत | यजेत' |
| ३ | २१ | येषाम् | विद्यते येषां तानि |
| ४ | ९ | । इति | इति |
| " | २२ | क्षुत्त्वा | 'क्षुत्त्वा |
| " | २३ | जपेत् | जपेत्' |
| " | २९ | = ईष्टे | ईष्टे |
| ५ | ६ | आख्या | आख्या |
| " | १५ | हं | ह |
| ६ | २४ | स = | स + |
| " | १३ | उच्चतमा | उच्चतमा । |
| " | २० | यदि | 'यदि |
| " | २१ | इति | 'इति |
| ७ | १५ | विमानम् । | विमानम् |
| " | २५ | प्रमादात् | प्रमादान् |
| " | २७ | अश्विना | आश्विना |
| " | १८ | किं | 'किं |
| " | १९ | पितामहः | पितामहः' |
| " | २५ | यज्ञो | 'यज्ञो |
| " | २६ | प्रजापतिः | प्रजापतिः' |
| " | " | तद् | 'तद् |
| " | २७ | प्रजापतिः | प्रजापतिः' |
| " | २८ | प्रजापतिः | प्रजा-पतिः |
| " | ३१ | अग्नि | 'अग्नि |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-------------|---------------|
| ९ | ३ | मनुष्याणाम् | मनुष्याणाम् ' |
| , | ५ | अग्नि | 'अग्नि |
| " | " | देवताः | देवताः' |
| " | " | स० | सं० |
| " | ६ | अग्नि | 'अग्नि |
| " | ७ | देवता | देवता' |
| १० | ११ | कचित् नतु | =न तु कचित्= |
| " | १२ | विस्तृतः | =विस्तृतः |
| " | १३ | स । | । |
| " | १६ | पितरः तथा | पितरः |
| ११ | १२ | अगत | 'अगत |
| " | १४ | भवति | भवति ' |
| " | २३ | ऋषभो | 'ऋषभो |
| " | " | सादयति | सादयति' |
| " | २५ | प्रजापतये | 'प्रजापतये |
| " | २६ | जुहोति । | जुहोति' |
| " | २७ |)) |) । |
| " | ३० | संस्कार | 'संस्कार |
| " | " | श्रुतेः | श्रुतेः ' |
| १२ | ५ | नैष्टिको | 'नैष्टिको |
| " | ६ | विमोक्षात् | विमोक्षात् ' |
| " | " | वेद | 'वेद |
| " | ७ | उदाहृतः | उदाहृत. ' |
| १३ | " | अश्वः | 'अश्वः |
| " | " | मण्डूकाः | मण्डूकाः ' |
| " | < | अक्षा | 'अक्षाः |
| " | " | रथः | रथः ' |
| " | ९ | अथा | 'अथा |
| " | " | द्वंद्वानि | द्वंद्वानि ' |
| " | १० | भाति | भाति । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-----------------|---------------|
| १३ | १६ | (देवता) | (देवता—) |
| " | २२ | न क्लिष्टम् | क्लिष्टम् |
| " | २६ | न शब्दो | 'न' शब्दो |
| १४ | ९ | इत्यन्वयः | इत्यन्वयः । |
| " | २४ | यावद्वधारणे | 'यावद्वधारणे' |
| १५ | २६ | ३ | ४ |
| " | " | १००७ अत्र | अत्र |
| " | २८ | (१८) | (१८) । |
| १६ | ८ | वाक्यं स्यात् । | वाक्यम् । |
| " | १० | बहो | 'बहो |
| " | ११ | बहोः | बहोः ' |
| " | १८ | द्यौस्ते | 'द्यौस्ते |
| " | १९ | पठति | पठति ' |
| " | २९ | हरेत् | हरेत् ' |
| १७ | ५ | नलोपः | 'नलोपः |
| " | " | न्तस्य | न्तस्य ' |
| १९ | १७ | र्थान् ' | र्थान् ' |
| " | २२ | प्रलये | । प्रलये |
| २० | ४ | योगेन । | योगेन |
| " | " | ततः | ततः । |
| " | " | त्मनः | न्मनः । |
| " | ६ | ४ | ४-६ |
| " | १० | तत् | । तत् |
| २१ | ३ | १ | १५ |
| " | ९ | इति | 'इति' |
| " | " | योगान् । | योगान् |
| " | १२ | अर्थाः । | अर्थाः |
| " | " | मनुष्याणाम् । | मनुष्याणाम् |
| " | १३ | इति | इति । |
| " | १४ | दृश्यते । | दृश्यते |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|------------|-----------------|
| २१ | १४ | तथा | तथा |
| " | १६ | अरोपयेत् | आरोपयेत् |
| २२ | ८ | शरीरे | शरीरे स्वशरीरे |
| " | २४ | तदनु | तदनु |
| २४ | ९ | वशा स्त्री | १० ' वशा स्त्री |
| " | " |) वशा । |) । वशा |
| " | १० | च | च ' |
| " | १६ | तथाऽपि | तथापि |
| २८ | २१ | यज्ञम् | यज्ञम्, |
| २९ | १७ | अनियमः | अनियमः । |
| " | १९ | = को | को |
| ३० | ३ | तत्= | तत् |
| " | ४ | इति | इति न |
| " | ६ | अन्यत् | अन्यत् कारणम् |
| " | ७ | मति | मति । |
| " | १४ | एकं | एकं |
| ३२ | २० | विकल्पने (| विकल्पने |
| " | " | स विकल्पं | विकल्पं |
| " | २१ | अयमर्थः | अयमर्थः |
| " | " | वदति) | वदति |
| ३३ | ९ | (भावना | भावना |
| " | " |) स | |
| " | ९ | शक्तिम् । | शक्तिः |
| " | २९ | भुक्तम् । | भुक्तम् |
| " | " | कतमच्च नाह | कतमच्चनाह |
| ३४ | २२ | सह स्थानेन | सहस्थानेन |
| " | ३१ | संदेहा | संदेहाः ' |
| ३५ | ९ | प्यम् | षाञ् |
| " | ६ | याद्व | यावद् |
| " | १४ | दधते, | दधते |

| पत्रं | पङ्क्तः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|---------|-----------|-------------------|
| ३६ | ६ | (१०) | (१०) । |
| " | २६ | = | (६४८ । १) = |
| ३७ | १२ | नामानि | नामानि । |
| ३८ | ११ | , यत्र | यत्र |
| " | २९ | < | ७ |
| " | २८ | लोट् प्र | लोट्प्र |
| ३९ | ३ | < | ७ |
| " | < | ११-१२ यदि | यदि |
| " | १० | १४ | १३ |
| " | ११ | २१ | २० |
| " | १९ | १८-१९ | १७-१८ |
| " | २६ | रथस्य । | रथस्य |
| ४२ | ४ | वर्तमानां | वर्तमानां देवताम् |
| " | " | एवम् | एवं ते |
| ४३ | ९ | येषु | येषु मन्त्रेषु |
| ४६ | ४ | २२९ । २ | ७२९ । ९ |
| " | ६ | परित | परितः |
| " | " | (= भव) | = भव |
| " | १३ | ' दर्श | १३—१४ : दर्श |
| " | १४ | आन्वा | अन्वा |
| ४७ | १६ | गीयते | गीयते । |
| ५० | २३ | यश्च । | यः । |
| ५१ | ४ | १६ | १५ |
| " | ९ | —शब्दो | शब्दो |
| ५२ | ३ | १३ | १२ १३ |
| ५३ | " | वायुना च | वायुना |
| " | ९ | उक्ताः । | उक्ताः |
| " | ११ | पृथिवी. | पृथिवी— |
| " | १७ | (मं०) | (मं०) |
| ५५ | २० | पङ्क्तिः | पङ्क्तिः |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-----------------|-------------------|
| ६० | ३ | ग्रन्थोः | ग्रन्थो |
| " | ४ | विदुस्ते । | विदुस्ते |
| " | १५ | मन्यमाना गा | मन्यमानागा |
| " | १७ | यगांस्तत्रे | यगांस्तत्रे |
| ६१ | १६ | चतुष्पाद् | चतुष्पाद् |
| ६३ | १२ | पिपीलिकामध्या | पिपीलिकामध्या |
| " | २५ | । (| (|
| ६५ | ११ | शब्देन । | शब्देन ' |
| " | १८ | विशेषणैः | विशेषणैः |
| ६६ | ४ | २२ | २३ |
| ६७ | ५ | १८ | १४ |
| " | १२ | पद्धतौ ' | पद्धतौ ' । |
| " | १५ | २२) | २२) । |
| " | १९ | च स्थानं | च कर्म |
| ६९ | ५ | कर्तव्यरूपे | कर्तव्यरूपे । |
| ७१ | १० | एव | एवं |
| " | १६ | स्तुत्वा | स्तुत्या |
| " | २० | इग्निफर | इग्निफर |
| ७२ | ५ | अपत्यं- | अपत्यं |
| " | १० | यज्ञाः ' | यज्ञाः |
| " | ११ | इत्यादि | इत्यादि ' |
| ७३ | १३ | २३ ' अग्निः | ' अग्निः |
| ८० | ३ | इतरयोः | इतरयोः इतराभ्यां |
| " | ८ | २० | २०-२२ |
| " | २४ | ध्याहरेण (३) या | ध्याहारेण (३) या- |
| ८२ | १८ | शंसामो दै | शंसामोदै |
| " | २१ | " | " |
| " | ३१ |) ॥ (| ॥ |
| ८३ | ३ | प्रजापतिः | प्रजापतिः ० |
| " | ४ | मिद्वाय | मिन्द्राय |

| पंथं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|------|----------|-----------|----------------------------|
| ८३ | ९ | भजत् । अ | भजत्' (ऐ० ब्रा० १२।२) । 'अ |
| ८४ | ११ | नुचरः । | नुचरः |
| " | १२ |) |) । |
| " | २१ | पद्यत ' । | पद्यत ' |
| ८५ | २३ |) |) । |
| " | २९ |) । |) |
| ८६ | २७ | । (| (|
| " | २८ | । सौर्य | सौर्य |
| " | ३० |) ॥ (| ॥ |
| ८९ | ८ | < | ९ |
| " | १२ | मध्यम | मध्यमे |
| " | १४ | अथवा | अथवा । |
| ९० | २१ |) ॥ (| ॥ |
| ९१ | १५ | अग्नि | । अग्नि |
| " | २५ |) |) — |
| ९२ | १५ | संहिता पा | संहितापा |
| ९४ | २१ | ११ | ९. |
| ९७ | ९ | अन्तःस्थः | अन्तस्थः |
| " | ९ | । इत्यनेन | इत्यनेन |
| " | १७ | १७ | १८ |
| " | १९ | , | । |
| " | २० | (प्रति | । प्रति |
| ९८ | २१ | श्वानरीय | = श्वानर |
| ९९ | ३ | हेतवः = | (हेतवः) |
| " | " | अधिकाः = | अधिकाः |
| " | २२ | २२-२३ | २३ |
| " | " | = (| (|
| १०० | १६ | < । ९ | < - ९ |
| " | २२ | = द्रवि | = "द्रवि |
| " | २३ | इति | " इति |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|------------------|-----------------------|
| १०० | २७ | ‘ अपि ’ | ‘ अपि ’ (७२५ । २५) |
| ” | २९ | दुलात्र | दुला च |
| ” | ३० |) ॥ | ॥ |
| १०१ | २९ | ब्रा० | ब्रा० भाष्ये |
| ” | ३० | द्रवि | ७ द्रवि |
| ” | ३ | ६ पो | पो |
| १०२ | ५ | निरुक्तम् ५१ | ५१ |
| ” | ७ | मितिशब्दात् | मिति शब्दात् |
| ” | १० | ‘ इन्द्रस्य ’ | ७३० । < ‘ इन्द्रस्य ’ |
| ” | १३ | < | ७२९ । < |
| ” | १४ | = | (१०) = |
| ” | १५ | ‘ तेषां | तेषां |
| ” | १९ | १० तत्पात्रस्य | ९ तुरीयपात्रस्य |
| ” | ” | एतमेव | ७२८ । < एतमेव |
| ” | २० | मन्त्रः | स मन्त्रः |
| ” | ” | त्राक्यरचना | विग्रहः |
| ” | २१ | क्लिष्टा | क्लिष्टः |
| ” | २२ | पठति | पठति (७२५ । २७) |
| ” | २३ | ऋगन्तः | ऋगन्तः (७२९ । १०) |
| ” | २४ | ‘ तथा | “ ‘ तथा |
| ” | ” | इति | इति ” |
| १०३ | ९ | मांसैः | मांसैः |
| ” | २१ | ४-५ | ७२९ । <-१० |
| ” | २५ | ५ | ७३० । ५ |
| १०४ | ५ | अत्र ऋक्पाठोऽना- | । |
| ” | ” | वश्यकः । | |
| ” | ६ | ७-८ | ७ शेषः |
| ” | ” |) शेषः |) |
| ” | १० | ‘ इदं | । ‘ इदं |
| ” | १२ |) |) । |
| ” | १४ |) |) । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------------|-------------------|
| १०४ | १६ | १-४ | १-६ |
| " | २० | कर्माणिक | कर्माणि क |
| " | " | तस्य | तस्या |
| " | २२ | इन्द्र स्तुति | इन्द्रस्तुति |
| १०५ | ८ | ७३२।२ | ७३६।११-१२ |
| " | १६ | १२ | १३ |
| १०७ | २२ | अभित्यं | अभि त्यं |
| ११० | ६ | ८ | ८ इति |
| " | " | ४ | ४ भाष्ये |
| " | २७ | प्रवृत्तः | प्रवृत्त |
| ११२ | ५ | यजति क | यजतिक |
| ११३ | १३ | ३३ | ३२ |
| ११४ | ७-८ | इत्यत्र । नापि (७४५ | इत्यत्र |
| " | " | । ५) इत्यत्र । | इत्यत्र |
| " | १६ | ४ | ३-४ |
| ११५ | ९ | ' हृदयस्यावद्यति ' | हृदयस्यावद्यति |
| ११७ | ८ | ओषधी | ओषधि |
| " | १३ | क्यम् । | क्यम् |
| ११८ | ७ | ' इदमपि | ' इदमपि ' |
| ११९ | ३-४ | । न सा० द्वारेण । | । |
| " | १८ | पुग्णः | पूग्णः (१८-१९) |
| १२० | १७ | मनुष्य | ' मनुष्य |
| " | " | वरुणा । | वरुणा |
| " | १८ | णम् | णम् ' |
| " | २९ |) । |) |
| १२२ | ७ | १५ | ४-५ |
| " | १५ | यो दशति | दशति |
| " | " | इत्यत्र | इत्यत्र 'श'स्थाने |
| " | २६ | यत्तक्ष | यं तक्ष |
| १२३ | २४ | विशिष्ट दे | विशिष्टदे |

| पं० | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-----|----------|----------------------|--------------------------|
| १२४ | १३ | किंरूपम् | किं रूपम् |
| १२५ | ६ | पुरोरुम्य | पुरोरुक् य |
| " | ९ |) । |) |
| " | २३ | १६ | १७ |
| " | २७ | वश्यं केवलं निरूपणम् | वश्यम् |
| १२७ | १४ | प्रजाय | प्रयाजा |
| " | २१ |) |) । |
| " | २८ | इत्याग्निधः | इत्याग्नीधः |
| १२८ | ४ | प्रजाया | प्रयाजा |
| " | २० | दृष्टे | दृष्टे (ऋ०सं० १०।११।८-९) |
| " | २२ | भीषाया | भीषापा |
| १२९ | ९ | द्वे ऋचौ० बृहद्दे० | बृहद्दे० |
| " | २६ | १६ | ११ |
| १३० | ३ | तत्र | । तत्र |
| " | ५ | १४३ | १४२ |
| १३१ | २८ |) । |) । |
| १३२ | २६ | प्रचित्र | प्र चित्र |
| " | २७ | अत्राप्य | अत्रा |
| " | २९ | प्रचित्रै | प्र चित्रै |
| १३३ | ११ | माप्रीऋत्क् | माप्री ऋक् |
| " | १६ | समैकमत्येनानुं | सम् ऐकमत्येन अनु |
| १३४ | ५ | षार्वारि | वार्वारि |
| " | ८ |) |) । |
| " | १२ | गमे | गमेः |
| " | १७ | इत्यत्र) |) इत्यत्र |
| १३६ | ४ | वत्साङ्गं सत्पा | वत् साङ्गं सत् पा |
| १३७ | ३ | मूले धा | मूले ' वा ' |
| " | ७ | घर्ण | घ ऋण |
| " | १२ | ठेऽस्मात् | ठे ' अस्मात् ' ना |
| " | १६ | वारं वार | वारंवार |

| पत्रं | व्यक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-----------------|------------------|
| १३७ | १६ | च्छदद्वय | च्छदत् व्व |
| " | २० | मुञ्जादि | मुञ्जात् इ |
| १३९ | २५ | १२) । | । १२) |
| १४२ | ६ | अ ' अभी | अत्र ' अभी |
| " | २४ | प्रत्याग | प्रति अग |
| " | २६ | प्रत्याकृ | प्रति आकृ |
| " | २८ | य- | व |
| " | २९ | वाजान्बक्षान | वाजाम् बक्षान् अ |
| " | " | क्रन्धि | । क्रन्धि |
| " | " | सुपर्ण | सुपर्ण- |
| १४३ | १२ | तवाम्म | तत्रास्म |
| " | २९ | अश्वानामश्वा | अश्वानाम् अश्वा |
| १४४ | २० | एको वृत्राणि | एको वृत्राणि |
| १४५ | ३ | कमन्नं | कम् अन्नं |
| " | २१ | मन्त्र्य | मन्त्र्य । |
| " | २४ | संस्कार | संस्कारे |
| १४६ | ३ | वृषण | वर्षण |
| " | ८ | अश्वो | अश्वः । |
| " | १० | २६ | २० |
| १४७ | १५ | सुभगं वा | सुभगं |
| " | १६ | रवादिनः | स्वादिनः |
| " | ३० | ज्यन्त | ज्यन्ते |
| १४८ | ७ | आज्वन्त | आज्वन्ते |
| १५१ | १० | इदं प्रामादिकम् | प्रामादिकः |
| १५२ | २२ | रुणात् | रणौ अ |
| " | " | मात्रि | मै इ |
| १५४ | ३ | स्थानि | स्थान् नि |
| " | १९ |) । |) |
| १५६ | ४ | उक्तं | उक्तं न |
| " | १७ | वायू | वायुः |
| " | २४ | सोऽन्त | सः अन्त |

| पत्रं | षड्किः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|--------|----------------|--------------------|
| १५७ | २७ | २३ | २२ |
| १५८ | ३ | १३ | ८२३ । १३ |
| " | ५ | मूले | मूले (८२३ । १४) |
| " | ७ | सन्नै | सन् ऐ |
| " | " | कर्षा | + कर्षा = |
| " | १६ | अथैष | अथैष एव |
| " | २८ | द्रो | द्रः |
| १५९ | ५ | रो | रः |
| १६० | १२ | द्युत् = | द्यु + व् = |
| " | १६ |) |) । |
| १६२ | २७ | < | <-१२ |
| १६३ | ३ | जनान्तेभ्यो | जनान् तेभ्यो |
| " | " | ऐकदेशिकः | ऐकदेशिकः (११-१२) |
| " | १२ | न | (८३५ । २१) न |
| १६५ | ७ |) । |) |
| १६६ | < | रचना | रचना । |
| " | १९ | अतोऽ | अतः अ |
| १६९ | ११ | चारुताऽ | चारुता अ |
| " | १३ | अनङ् | अनङ् |
| " | ३० | हविरववृष्टम् । | हविः अववृष्टम् |
| १७० | २६ | मन्तः प्र | मन्तः प्र |
| १७१ | ३ | षान्त्य | षान् त्व |
| " | २५ | तेषु | = तेषु |
| " | " | भूतेष्वि | भूतेषु । |
| " | २६ | दन्त | दन्ते । |
| १७४ | १९ | सैर्वा | सैवा |
| " | २६ | शाङ्ग | शाङ्गा |
| १७५ | ३ | शाङ्ग | शाङ्गा |
| " | ६ | १ । | १ |
| " | २३ |) |) । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|----------------------|
| १७६ | १८ | इतः | इतरः |
| " | " | घोऽ | घः अ |
| " | २९ | केच | के च |
| १७७ | ६ | । इति | इति |
| १७८ | ७ | समानप | समानं प |
| " | १८ | ८-६० | ८६० |
| " | २० | अर | अर् |
| १७९ | " |) । |) |
| " | २७ | नत्व | नतु अ |
| १८० | ३ | मनुष्यः | मनुष्याः |
| " | " | रूपमेतृ | रूपम् एतृ |
| " | " | नत्वितृ | नतु इतृ |
| " | २९ | प्रोवाच | ०० प्रोवाच |
| १८१ | १२ | सर्वाणि | ' सर्वाणि |
| " | १६ | १५ | । १५ |
| " | २१ | व्यक्तेः सर्व | ' व्यक्तेः सर्व ' |
| १८२ | १२ |) |) = |
| १८३ | ६ | इति | ' इति |
| " | " | वाशब्दः | ' वा ' शब्दः |
| १८६ | ३० | सोमोप | ' सोमोप |
| " | ३१ | ण पूर्वम् | णं पूर्वम् (८८८१८) |
| १८८ | ३० | सं २ | सं २ |
| १८९ | ४ | सप्तसप्त | सप्त सप्त |
| " | ८ | सप्तस्कन्धाः | सप्त स्कन्धाः |
| १९० | १६ | १० | ९०२।१० |
| " | १८ | १५ | ९०१।१५ |
| १९१ | ९ | द्विपर्ययः | त् ' द्विपर्ययः ' |
| " | १३ | श्चि | 'श्चि |
| " | १४ | एव | 'एव ' |
| " | " | आद्या | आर्षा |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-------------|----------------------|
| १९१ | १५ | संवादं | ‘ संवादं |
| ” | ” | प्रचक्षते | प्रचक्षते’ |
| १९२ | ३ | यत् | यदा |
| ” | ” | यत् = यदा । | |
| ” | १० | ऽऽत्माऽ | आत्मा अ |
| ” | ” | जन्म | जन्म तस्मात् |
| १९३ | ९ | विषं | विपं |
| ” | ११ | पापकर्म यः | यः पापकर्म |
| १९४ | ६ | अर्थ | कम् अर्थ |
| ” | ” | किं त्वं | त्वं |
| ” | ९ | आश्व | आश्व० |
| ” | १२ | वाग | वाक् अ |
| ” | १४ | निवत्त | निर्वच |
| १९५ | १५ | असास्वेषु | असा स्वेषु |
| ” | २७ | भाप्ये | इति भाप्ये |
| १९६ | ३ | प्वजस्व ’ | प्वजस्व ’ अथवा |
| ” | ५ | आघा | अघा |
| ” | १२ | नीष्टान्यु | नि इष्टानि उ |
| ” | १४ | क्षर | वा क्षर |
| ” | १५ | न्यम्म | नि अम्म |
| ” | १७ | प्यान्यु | प्यानि उ |
| ” | २१ | १६ | ९२३ । १६ |
| ” | २७ | | (मै० सं० ४ । १२) । |
| १९७ | ३ | १ अ | १७ दशमा |
| ” | ६ |) |) । |
| ” | १५-१६ | अपरंचन | अपरं चन |
| १९८ | ९ | साहाय्ये | साहाय्येन |
| ” | १६ | सुघदुघां | सुदुघां |
| ” | २४ | ऽऽत्म | (आत्म |
| ” | ” | त्कृत्वा । | त्कृत्वा) |

| पत्रं | षड्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-----------------|----------------|
| २०० | २४ | स्तुतिर्नि | स्तुतिर्नि |
| २०१ | ३ | संध्यन्तरं | संध्यन्तरं |
| " | १३ | वाक | वाके |
| " | १५ | पुरा | 'पुरा |
| " | १६ | तमस | तमसः |
| " | " | | ' |
| " | १८ | पुरावाचः | पुरा वाचः |
| २०२ | ४ |) अत्र | भत्र |
| " | " | भाष्ये आशि०डाशः | भाष्ये) |
| " | ६ |) |) । |
| " | २८ | इदित्य | इत्य |
| २०५ | १२ | त्प्राक्शि | त्प्राक् शि |
| " | २५ | कार्या | कार्याः ' |
| २०६ | ६ | आढ्यातुः | आढ्यालुः |
| २०७ | ५ | यज्ञे | यज्ञेन |
| " | ११ | ' प्रज्ञा | प्रज्ञा |
| " | २४ | पिंशानि | पिंशानी |
| " | २८ | स्थानां | स्थानां |
| २०८ | २४ | चद्वयं ' | च ' द्वयं |
| २१२ | ५ | ग्विल | ग्विलः |
| २१३ | ६ |) |) । |
| २१५ | ७ | स्वगा | ' स्वगा |
| " | ८ | ' जक्षि | जक्षि |
| " | १० | आग्मे | आजग्मे |
| " | २९ | कदाचित् | कदाचित् ' |
| " | " | माना | मानाः ' |
| २१६ | ८ | = | (९८९ । १३) = |
| " | २४ | १० | १ |
| " | २६ | स्तोत्रिनु | स्तोत्रियानु |
| २१७ | १४ | शब्द- | शब्दः |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|---------------|--|
| २१७ | १९ | इत्यर्थः । | इत्यर्थः । |
| २१८ | ३ | ९ अ | अ |
| " | ६ | तुर्फरीत् | तुर्फरी |
| " | " | बर्फि | तुर्फरी |
| " | २१ | रिवत् | रिवत् |
| २१९ | ३ | ९ (| (|
| २२० | ११ | (| ' (|
| " | " | परिभा | परिभा० |
| २२१ | ३ | २४-२९ वृ | वृ |
| २२२ | " | २ रो | रो |
| " | १२-१३ | गुहा० १०) | गुहा० १०) न पठितं न वा व्याख्यातम् । |
| २२३ | १७ | यज्ञ | यज्ञे |
| " | " | दैव | दैवे |
| " | २३ | सर्वम् । | सर्वम् । |
| " | " | मा० | माण्डू० |
| २२५ | " | (| ('वा० |
| " | २४ | इत्यत्र | भाष्ये । वृत्तौ |
| २२८ | १४ | दन्त मा | दन्तमा |
| २३१ | १ | १३१ | २३१ |
| २३४ | २२ | काले । | काले |
| " | २५ | अह | ' अह |
| " | " | म्बते | म्बते ' |
| २३६ | ४ | चिरो | ' चिरो |
| " | " | काशात् | काशात् ' |
| " | ११ | वक्तारं | वक्तारं च |
| " | १८ | स्थितम् । | स्थितम् |
| २३६ | २८ | सौम्यो भवति | ' सौम्यो भवति ' |
| " | २९ | स्त्रीपुंसयोः | ' स्त्रीपुंसयोः |
| २४१ | १८ | = | । |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|--------------|------------------------|
| २४३ | ९ | १ | १ । १० । १ |
| " | १२ | १० | १० । २ |
| " | ३१ | ८ | १ । १० । ८ |
| २४५ | २८ | रूपमप्स | रूपम् अप्स |
| २४७ | २६ | विवृतं | ' विवृतं |
| २४८ | ४ | कृत्वः | कृत्वः ऋक्शास्त्रायाम् |
| " | ३२ | आत्मा ' । | आत्मा ' |
| २४९ | ७ | ।) |) |
| " | ९ | शीर्षि | शीर्षि |
| " | १६ | तेजसा | ' तेजसा |
| " | २७-२८ | कानि चित् | कानिचित् |
| " | ३१ | केषां | केषां- |
| २५० | ७ | सदसनम् | सदनम् |
| " | १४ | कदा | कदापि |
| " | १६ | कदा | कदा- |
| " | २२ |) |) । |
| " | २३ | यस्मात् | प्रसवनात् यस्मात् |
| " | " | ' सोम ' | अत्र ' सोम ' |
| " | २८ | ' रश्मयः ' | रश्मयः |
| २५२ | २० | शैङ् | शैङ् |
| २५३ | ४ | अय | आत्मपरस्त्वे चाय |
| " | २५ | शुद्धिः | शुद्धो |
| " | २८ | मतामेते | मताम् । ए |
| २५४ | ८ | इति | ' इति ' |
| " | ११ | अग्निः | अग्निवत् |
| " | १३ | ब्राह्म | ब्रह्म |
| " | १७ | कामयमानाः | कामयमानाः । |
| " | २० | सूतः | सुतः |
| " | २६ | । कामयमानानि | कामयमानानि । |
| " | २७ | संबन्धः | संबन्धः । |

| पत्रं | पङ्क्तः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|---------|--------------|---------------|
| २९६ | ७-८ | त्रिष्टुप् छ | त्रिष्टुच्छ |
| " | २६ | सोमः । | सोमः |
| २९६ | ९ | वृषपः | वृषणः |
| " | १२ | अव्ययम् | अव्ययम् अ |
| " | २९ | सोमः | सोमः |
| २९७ | ४ | तस्य | तस्य |
| " | २१ | इत | दूत |
| " | ३१ | आल्पा | अल्पा |
| २९८ | १४ | सत्याना | सप्ताना |
| " | " | एक | एक |
| २९९ | ३ | १८ इन्द्रः | इन्द्रः |
| " | १३ | कस्य चित् | कस्यचित् |
| " | २३ | मे | ' मे |
| " | २८ | निगूढम् | निगूढम् अ |
| २९० | ३ | ५ यद्वा | यद्वा |
| " | " | ईमेन | ईम् ऐन |
| " | " | भावमा | भावम् आ |
| " | १२ | तानु | तान् उ |
| " | १६ | पुत्रो | पुत्रो |
| " | १७ | ईमिम | ईम् इम |
| " | २० | असत | असत् |
| " | २९ | ईमे | ईम् ए |
| २९१ | ३२ | मिलित्व | मिलित्वा |
| २९२ | ३ | १३ सप्त | सप्त |
| " | १७ | प्रपञ्चयो | प्रपञ्चो |
| " | १८ | सोह | सोऽह |
| " | २३ | ईक्षत | ऐक्षत |
| " | २९ | वेदान्त० | वेदान्तसूत्रं |
| " | २७ | इव | ' इव ' |
| २९३ | ३ | २ त्यर्थः | त्यर्थः |

| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|-------------|------------|
| २६३ | ७ | हुवेण | मुवेन |
| " | २८ | निण्यः | । निण्यः |
| २६४ | ३ | २ तद् | तद् |
| " | १७ | चिक्युः | चिक्युः' |
| " | ११ | अमर्त्यः | ' अमर्त्यः |
| २६५ | ३ | ११ लोके | लोके |
| " | ११ | सर्वत्र | सर्वत्र |
| " | " | वर्तते | वर्तते |
| " | १७ | इत्यर्थः | इत्यर्थः ' |
| २६६ | १५ | तत् | 'तत् |
| " | १७ | मास | म् आस |
| " | २९ | ऊमाः | ऊमाः । |
| २६७ | ६ | यज्ञे | जज्ञे |
| " | " | न्वयः | न्वयः ' |
| " | ९ | मास | म् आस |
| " | १८ | मिमम् | म्=इमम् |
| " | ६ | अद्य | 'अद्य |
| २६८ | १३ | ' मयोभून् ' | मयोभून् |
| " | १९ | 'युङ्क्ते' | युङ्क्ते |
| " | २० | कीदृशान् | कीदृशान् । |
| " | २३ | गमनमु | गमनम् उ |
| " | २६ | क्रियाम् | क्रियाम् ऋ |
| " | २८ | इत्यर्थः | इत्यर्थः ' |
| २६९ | ३ | ७ ते | ते |
| " | ७ | विभ्रति | विभ्रति |
| " | १३ | अपत्यायः | अपत्याय । |
| " | १४ | ऋचः = | ऋचः |
| २६९ | १६ | अनु | ' अनु |
| " | २४ | अधिब्र | अधि ब्र |
| " | " | इन्द्रः | इन्द्र |

| पत्रं | परुक्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|-------|----------|------------|-------------|
| २७० | ३ | १३-१४ ब्र | ब्र |
| " | " | माप | नापे |
| " | ७ | इतिवि | इति वि |
| " | ११ | सन्तामि | सन्तम् इ |
| " | २३ | कः | ' कः |
| २७१ | ३ | १ आ | आ |
| " | ८ | यर्थः | यर्थः ' |
| " | २२ | अग्निः | अग्नि |
| २७२ | १४ | तीतिव | तीति व |
| " | २६ | श्रारि | धरि |
| २७३ | ३ | ३ अत्र | अत्र |
| " | ६ | समस्तौ | समस्तो |
| २७४ | २५ | पितृणाया | पितृयाणा |
| २७५ | ३ | १० ' पक्षौ | ' पक्षौ |
| " | ८ | योगौ । | योगौ |
| २७६ | ३ | १० परि | परि |
| " | १६ | मानमिति | मानम् इति |
| २७७ | ३ | १० व | व |
| " | ७ | तीर्थेभिः | तीर्थेभिः । |
| " | १८ | ११ | ११-१२ |
| २७८ | ३ | १५ | १६ |
| " | १० | । वेदः | वेदः |
| २७९ | ७ | माम् = | माम् । |
| " | १० | श्रपयेत् । | श्रपयेत् |
| २७९ | २० | आ मृ | आम् |
| २८० | ३ | ११ मत | मत |
| " | ७ | शातं | शतं |
| २८१ | ३१ | करणंकृतम् | करणं कृतम् |

| | | | |
|-------|----------|------------|------------|
| पत्रं | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
| २८२ | १८ | सनानाः | सेनानीः |
| ” | ३१ | स्यनुमानाः | स्यनुयाजाः |

अस्यां टिप्पण्यां बहुषु स्थानेषु स्वरे परेऽनुस्वारस्य मकारः
कर्तव्य आसीत् । सोऽनवधानेन न कृतः ।

इति शुद्धिपत्रकम् ।



